सचित्र आयुर्वेद

श्रीधन्वन्तरि-जयन्ती-अङ्क

वर्ष १०   कलकत्ता, दिसम्बर, १९५७   अंक ६

श्रीधन्वन्तरिस्तव:

यो विश्वंविदधाति पाति सततं संहारयत्यञ्जसा
सृष्ट्वा दिव्यमहौषधीश्च विविधान् दूरीकरोत्यामयान् ।
बिभ्राणोऽञ्जलिना चकास्ति भुवने पीयूषपूर्णघटम्
तं धन्वन्तरिरूपमीशममलं वन्दामहे श्रेयसे ।।

× × × ×

सुधाकुम्भंहस्ते दधदमरतार्थं सुमनसां ।
रहस्यं जिह्वाग्रे गदहरमथर्वोपनिषदां ।।
मणिं श्रीवत्सांके हृदि जलनिधेर्योऽजनिपुरा ।
विनिघ्नन्विघ्नं वः सुखयतु स धन्वन्तरिविभुः ।।



प्रकाशक
बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०



बैद्यनाथ डायरी

सन १९५८

डायरी आधुनिक ... र्य-सम्पादन में इनसे बड़ी सुविधा रहती है। ... ही नई डायरी की खोज करने लग जाते हैं ... अपने पास सुरक्षित रख छोड़ते हैं।

बैद्यनाथ डायरी ... विशेषता रखती है। इसमें मनुष्य के आरोग्य- ... पर काम आनेवाली कई दवाओं की सूचनाएँ ... को और परिवार को रोगों से मुक्त रख कर ड ... ।

बैद्यनाथ डायरी ... जिल्द रहती है और सोने के अक्षरों में सन् तथ ... ीले रंग के हैं, जिनमें प्रत्येक पृष्ठ पर दो तारी ... गेट-अप, बँधाई और साइज आदि सभी चीजें ... ने में कुछ भी असुविधा नहीं होती। इ ... है।

थोक खरीदारों को २५ % कमीशन। विशेष नियम नीचे लिखे अनुसार हैं :—

(१) १४४ डायरी एक साथ मँगाने से पैकिंग और रेलभाड़ा फ्री।
(२) ७२ से अधिक मँगाने पर केवल पैकिंग फ्री।
(३) एक साथ १४४ डायरियों के लिए पूरी कीमत पेशगी भेजने पर ६ डायरी मुफ्त।
(४) आर्डर के साथ चौथाई पेशगी भेजना जरूरी है।

विशेष :—वैद्यनाथ के स्थानीय बिक्री-केन्द्रों से फुटकर डायरी खरीदने पर डाक-खर्च और समय की बचत होगी। अतः खुदरा खरीदार वहीं तलाश करें।



थ
लि०
नागपुर

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
१, गुप्ता लेन, कलकत्ता—६

डायरी आधुनिक युग का एक आवश्यक उपकरण है ; क्योंकि मनुष्य के दैनिक कार्य-सम्पादन में इससे बड़ी सुविधा रहती है। इसलिए पढ़े-लिखे लोग तो वर्ष प्रारम्भ होने के कई मास पूर्व से ही नई डायरी की खोज करने लग जाते हैं और जहाँ मन-पसन्द की वस्तु पहले दिखाई पड़ती है, खरीद कर अपने पास सुरक्षित रख छोड़ते हैं।

बैद्यनाथ डायरी अन्य बाजारू डायरियों से सर्वथा भिन्न होती है और अपनी खास विशेषता रखती है। इसमें मनुष्य के आरोग्य-सम्बन्धी नियम, मौसम के अनुसार खान-पान के विधान तथा मौके पर काम आनेवाली कई दवाओं की सूचनाएँ रहती हैं, जिन पर यदि थोड़ा भी ध्यान दिया जाय तो मनुष्य अपने को और परिवार को रोगों से मुक्त रख कर डाक्टर-वैद्यों पर खर्च होनेवाले हजारों रुपयों का बचाव कर सकता है।

बैद्यनाथ डायरी चमड़े के मनीबेग के साइज की होती है, जिसमें सुन्दर रैक्सिन की जिल्द रहती है और सोने के अक्षरों में सन् तथा डायरी के नाम लिखे होते हैं। डायरी के भीतर के कागज हल्के नीले रंग के हैं, जिनमें प्रत्येक पृष्ठ पर दो तारीखें और आवश्यक पर्व आदि की सूचनाएँ दी गई हैं। डायरी का गेट-अप, बँधाई और साइज आदि सभी चीजें ऐसी हैं, जिनसे किसी भी आदमी को अपनी जेब में बराबर साथ रखने में कुछ भी असुविधा नहीं होती। इतनी विषताओं के बावजूद इसकी कीमत बहुत कम यानी १) मात्र है।

थोक खरीदारों को २५ % कमीशन। विशेष नियम नीचे लिखे अनुसार हैं :—

(१) १४४ डायरी एक साथ मँगाने से पैकिंग और रेलभाड़ा फ्री।
(२) ७२ से अधिक मँगाने पर केवल पैकिंग फ्री।
(३) एक साथ १४४ डायरियों के लिए पूरी कीमत पेशगी भेजने पर ६ डायरी मुफ्त।
(४) आर्डर के साथ चौथाई पेशगी भेजना जरूरी है।

विशेष :—बैद्यनाथ के स्थानीय बिक्री-केन्द्रों से फुटकर डायरी खरीदने पर डाक-खर्च और समय की बचत होगी। अतः खुदरा खरीदार वहीं तलाश करें।

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
१, गुप्ता लेन, कलकत्ता—६



बैद्यनाथ अवलेह-मोदक-पाक

आयुर्वेदिक चिकित्सा में अवलेह स्निग्ध (तर) इलाज के लिए बहुत गुणदायक है। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक को इसके सेवन में किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती। इनकी मात्रा ६ माशा से १ तोला तक है। रोगानुसार अनुपान के साथ इसका सेवन कर अपने स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिए।

च्यवनप्राश-अवलेह (अष्टवर्गयुक्त)--जीर्ण-शीर्ण शरीर का कायाकल्प करने के लिए यह सर्वविदित है। वृद्ध च्यवन ऋषि इसी से दुबारा नौजवान बने थे। अष्ट-वर्ग मिलाने की गारंटी है। फेफड़े के विकार, पुराना श्वास, कास, शारीरिक क्षीणता, पुराना बुखारा, स्वरभंग, खून की कमी, कैलशियम की कमी, कब्जियत, अम्लपित्त, मन्दाग्नि आदि रोगों को नष्ट करके यह शरीर को हृष्ट-पुष्ट और बलवान बनाता है और रस, रक्त आदि सप्त धातुओं को बढ़ाता है। "बैद्यनाथ-च्यवनप्राश" गुणों में श्रेष्ठ होता है; क्योंकि यह पूर्ण शास्त्रीय विधि के अनुसार ताजे-हरे आँवलों और प्रामाणिक ओषधियों के योग से तैयार किया जाता है। इसमें स्वाभाविक रूप से विटामिन सी. पर्याप्त मात्रा में होता है। इसका सेवन बारहों मास करना चाहिए। कीमत--४० तोला ४), २० तोला २।), १० तोला १।-)

चित्रक हरीतकी--पुराने और बराबर होनेवाले सर्दी-जुकाम (नजला) की अनुभूत दवा है। कीमत--१० तोला १।।=) ५ तोला ।।।≡)

बादाम पाक--दिल और दिमाग को ताकत देता है। पित्त-विकार, नेत्र एवं शिरोरोग में लाभकारी है। शरीर को पुष्ट बनाता है और वजन बढ़ाता है। सर्दियों में सेवन करने योग्य उत्तम पुष्टई है। कीमत--२० तोला ६), १० तोला ३=)

वासावलेह--उत्तम अड़ूसे की जड़ की छाल से बनाया गया है। इससे सभी तरह की खाँसी में फायदा होता है। यह पुरानी खाँसी के साथ खून आने को बन्द करता है। कीमत--१० तोला १।=), ५ तोला ।।।=)

वासाहरीतक्यवलेह--रक्तपित्त, सभी प्रकार की खाँसी, विशेषकर पुराने बुखारयुक्त खाँसी और शारीरिक क्षीणता में फायदा पहुँचाता है। कीमत--१० तोला १।), ५ तोला ।।।)

व्याघ्री हरीतकी--खाँसी, श्वास, दमा, आवाज बैठ जाना, मन्दाग्नि, कब्जियत आदि को दूर करती हैं। कीमत १० तोला १-), ५ तोला ।।=)।।

ब्राह्म रसायन--शरीर की दुर्बलता और दिमाग की कमजोरी दूरकर बल, कान्ति एवं स्मरण-शक्ति को बढ़ाता है। नियमित सेवन से खाँसी, दमा, शारीरिक क्षीणता और कब्जियत दूर होती है। कीमत--१० तोला १।।=), ५ तोला ।।।=)

भार्गीगुड़-- खाँसी एवं पुराने दमे की श्रेष्ठ औषधि है। कीमत--१० तोला १।=), ५ तोला ।।।-)

मूसली पाक--अत्यन्त पौष्टिक है। असंयमजन्य रोगों को दूरकर शरीर को मोटा-ताजा बनाने में सर्वश्रेष्ठ है। जाड़े में इसे जरूर खाना चाहिए। कीमत--२० तोला ५), १० तोला २।।=)

सुपारी पाक--बच्चा होने के बाद महिलाओं को इसका सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से दुर्बलता दूर होकर उनका शरीर पुष्ट और स्वास्थ्य उन्नत होता है। पूर्ण लाभ के लिए हर प्रसूता को २।। सेर तक खाना चाहिए। कीमत--२० तोला ३), १० तोला १।।=)

सौभाग्यसुंठी पाक--यह प्रसूता के लिए बहुत अच्छी पुष्टई है। इसके सेवन से भूख तथा बल बढ़ता है। साथ ही अग्निमान्द्य, अरुचि और पेट की वायु का नाश होता है। कीमत--२० तोला ३।।), १० तोला १।।।=)

आयुर्वेदीय एवं पेटेण्ट औषधियों के सबसे बड़े निर्माता

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

"सचित्र आयुर्वेद" के ग्राहकों से निवेदन

पिछले १० वर्षों से 'सचित्र आयुर्वेद' भारतीय जनता और खासकर भारत की प्राचीन चिकित्सा-पद्धति—आयुर्वेद की सेवा पूर्ण सफलता, सुयोग्यता एवं सत्यता के साथ करता आ रहा है। आयुर्वेद के पुनरुद्धार तथा राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के गौरवपूर्ण आसन पर इसको पुनः प्रतिष्ठित करने की दिशा में हमारे अबतक के यथासाध्य प्रयासों की भारतीय जनता एवं विद्वान वैद्य समाज ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। अतएव वैद्य-समाज के लिए यह आवश्यक है कि वे 'सचित्र-आयुर्वेद' को पढ़ें और पढ़ाएँ।

'सचित्र आयुर्वेद' के जिन ग्राहकों का चन्दा जनवरी से दिसम्बर १९५७ तक के लिए जमा था, वह इस दिसम्बर' ५७ के अंक के प्राप्त होने के साथ-साथ समाप्त हो गया है। यद्यपि चन्दा पूरा हो जाने की सूचना ग्राहकों को पृथक कार्ड द्वारा भी दी गयी है, फिर भी ग्राहकों को इस अंक में विज्ञप्ति द्वारा भी सूचना दी जा रही है और एक कार्ड भी दिया जा रहा है, जिसको भरकर ग्राहकगण हमारे पास भेज देने की कृपा करें। आशा है, ग्राहकगण अपने-अपने चन्दे के पाँच रुपये शीघ्रातिशीघ्र भेज देंगे।

जिन ग्राहकों का चन्दा आगामी २० दिसम्बर १९५७ तक कार्यालय में नहीं पहुँचेगा, उनको ५.६२ रुपये (पाँच रुपये ६२ नये पैसे) की वी० पी० द्वारा जनवरी १९५८ का अंक भेजा जायगा। ग्राहकों से अनुरोध है कि वी० पी०-के ६२ नये पैसे व्यर्थ खर्च से बचने के लिए ५) (पाँच रुपये) मनीआर्डर द्वारा भेज दें। जिन महानुभावों को किसी कारणवश ग्राहक नहीं रहना हो, वे कृपया एक कार्ड लिख कर हमें सूचित कर दें, ताकि उनके नाम वी० पी० भेजने के व्यर्थ खर्च से 'सचित्र आयुर्वेद' बच जाय।

ग्राहकों को नया कैलेण्डर मुफ्त

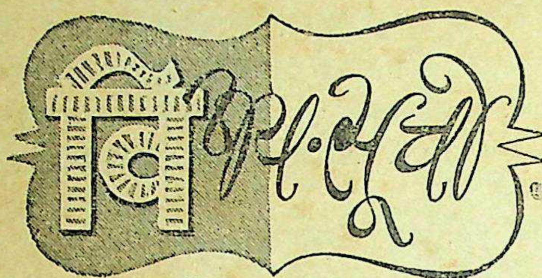
सचित्र आयुर्वेद के सभी नये और पुराने ग्राहकों को नये वर्ष का सुन्दर बहुरंगा कैलेण्डर मुफ्त दिया जायगा। हमें आशा है कि जनवरी मास के अन्तिम सप्ताह तक ग्राहकों के पास कैलेण्डर अवश्य भेज दिया जा सकेगा।

वैद्य महानुभावों को सूचना

श्री धन्वन्तरि-जयन्ती महोत्सव के सम्बन्ध में हमारे पास सारे देश से सहस्रों की संख्या में सूचनाएँ एवं विवरण आदि प्रकाशनार्थ प्राप्त हुए हैं। स्थानाभाववश सभी सूचनाओं को इस अंक में प्रकाशित नहीं किया जा सका। हम आशा करते हैं कि आगामी जनवरी १९५८ के अंक में शेष सभी सूचनाओं एवं चित्रों को हम प्रकाशित कर सकेंगे।

—सम्पादक

सम्पादक—कामेश्वर शर्मा 'कमल'

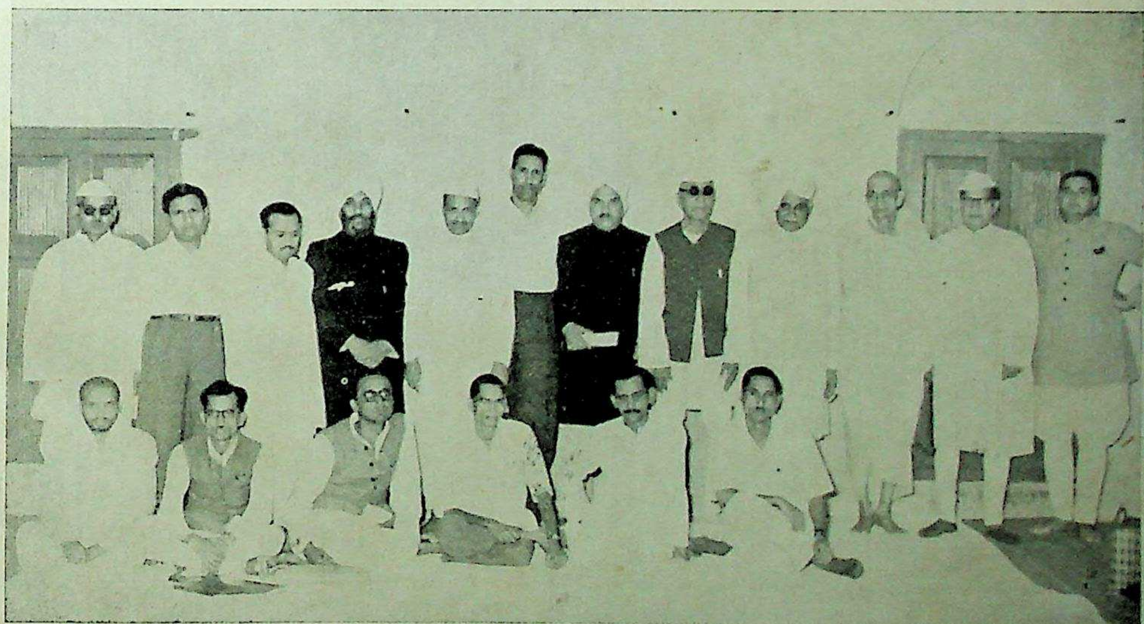


वार्षिक मूल्य ५)

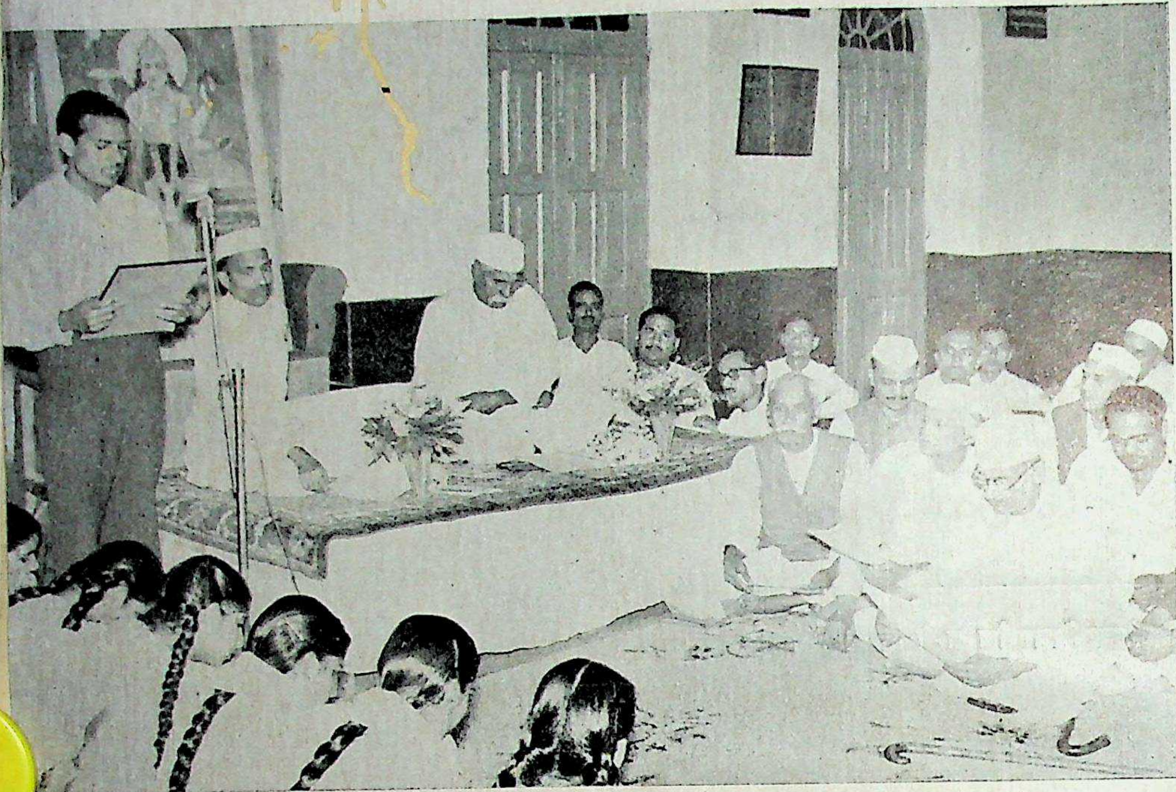
एक प्रति ।।) (५० नये पैसे)



अलीगढ़ जिला वैद्य सम्मेलन द्वारा वैद्य रामनारायण शर्मा के अभिनन्दन-अवसर के दो दृश्य । दाएँ वैद्य सम्मेलन के सभापति अभिनन्दन-पत्र भेंट कर रहे हैं ।



दिल्ली में अनुष्ठित अ० भा० औषध-निर्माता सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन में समवेत औषधि-निर्माताओं का समूह-चित्र ।

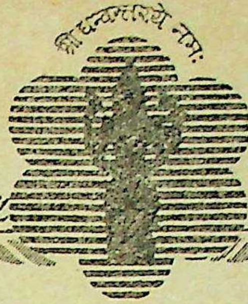


मेरठ आयुर्वेदिक कालिज की ओर से वैद्य पं० रामनारायण शर्मा को अभिनन्दन-पत्र प्रस्तुत किया जा रहा है।



मेरठ के वैद्य समुदाय द्वारा वैद्य श्री रामनारायण शर्मा के अभिनन्दन-समारोह के दो दृश्य। बाएँ आचार्य लक्ष्मीनारायण जी स्वागत-भाषण कर रहे हैं।

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होनेवाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख-मासिक पत्र



सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष १० | कलकत्ता, दिसम्बर, १९५७ | अंक ६

आयुर्वेद-महासम्मेलन-सदस्यों से नम्र निवेदन

बन्धुगण !

महासम्मेलन की स्थायी-समिति एवं विद्यापीठ की केन्द्रीय-प्रबन्धक-समिति का अधिवेशन दिल्ली में तारीख २७, २८ नवम्बर को हो रहा है। इस अवसर पर महासम्मेलन के माननीय सदस्यों से कुछ नम्र-निवेदन करना मुझको वांछनीय प्रतीत हुआ।

साधारणतः आयुर्वेद-जगत् से और मुख्यतः आपसे मेरी विनय है कि श्री शिवशर्मा और सचित्र आयुर्वेद के बीच जो विवाद चला और एक प्रकार का समुद्र-मन्थन हुआ, उसका फल अमृत-प्राप्ति ही होना चाहिए। भागीरथ ने गंगावतरण का जो यत्न किया था, वह लोक-कल्याणकारक हुआ था। इसी प्रकार मेरी कामना है कि आयुर्वेद-जगत् का यह विवाद भी, वैद्य-समाज के लिए रचनात्मक कार्य के श्रीगणेश का हेतु बन जाय। इसके विपरीत इस विवाद को आरोप-प्रत्यारोप के रूप में आगे बढ़ाकर यदि क्लेश-द्वेष बढ़ाया जाता है तो उससे वैद्यों में अनैक्य उत्पन्न होगा और सद्शक्तियों का अपव्यय होगा। इस प्रसंग को वाद-विवाद के रूप में बढ़ाने वालों का प्रयत्न ठीक वैसा ही है, जैसा कि अंग्रेजों ने करके भारत को पराधीन बनाया था; और जैसा कि आज भी वे अमेरिका से मिलकर भारत को अनिष्टकर हानियां पहुँचाने के लिए कर रहे हैं। वे चाहते हैं कि भारत किसी न किसी गम्भीर समस्या में उलझा रहे और उसके विकास-कार्य सम्पन्न न हो सकें; क्यों कि भारत में बड़े-बड़े कारखानें और उद्योग-विकास-कार्य होने से उनके बहुमुखी स्वार्थ नष्ट होते हैं। इसी प्रकार वैद्य-समाज में महासम्मेलन के द्वारा वास्तविक विकास-कार्यों के होने से यदि किसी वर्ग-विशेष के निहित स्वार्थों पर चोट पड़ती है और आयुर्वेद-जगत् का ध्यान परिवर्तित करने के लिए ऐसे वाद-विवाद को भयंकर रूप बनाकर एक हलचल एवं क्षुब्ध वातावरण बनाने का दुःष्प्रयत्न करता है, तो वह निन्दनीय ही कहा जायगा।

आप जानते हैं कि वैद्यों की जीवन-वृत्ति दिन प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है। एक ओर तो रोगियों का समूह वैद्यों को छोड़कर डाक्टरों के यहाँ बढ़ता जा रहा है। दूसरी

और नयी पीढ़ी के वैद्य अपने को वैद्य कहने में संकोच करने लगे हैं। चिकित्सा क्षेत्र में स्पष्टतः पाश्चात्य की नकल का प्रवाह बढ़ रहा है। क्या इस गति के रहते हुए, यह कहा जा सकता है कि आयुर्वेद का भविष्य दुविधा-ग्रस्त नहीं है? वैद्यों की स्थिति में सुधार के गम्भीर उपाय किये बिना, थोथे गौरव-प्रचार के आधार पर कैसे आयुर्वेद की उन्नति होगी? भाई शिवशर्मा के पास सुन्दर बंगला और दो मोटरें होने, अथवा वैद्यनाथ-भवन वालों के पास चार कारखाने और बीस मोटरें होने से वैद्यों को क्या लाभ होता है? अतः व्यक्तियों के महत्व को छोड़कर, आयुर्वेद और वैद्यों की इस जीवन-मरण की स्थिति में आपको सामूहिक हितों की रक्षा के लिए गम्भीरता के साथ सोचना चाहिए और शुद्ध एवं निर्लिप्त अंतःकरण से यथार्थ प्रयत्न करना चाहिए।

हमारा यह सामाजिक दोष नया नहीं है कि कोई भी अवसर एवं स्थिति की साधारण सी अनुकूलता पाकर लोगों को भ्रान्त कर देता है। 'सचित्र आयुर्वेद' की विजय के प्रसंग में कुछ व्यक्तियों ने मुझे भी उत्तेजित करने का प्रयास किया; परन्तु वस्तु स्थिति भिन्न थी; सचित्र आयुर्वेद ने जो यह विवाद लड़ा, अथवा महासम्मेलन की व्यवस्था के विषय में स्पष्टोक्ति युक्त लेखादि प्रकाशित किये, उनका लक्ष्य किसी भी दशा में संगठन, संस्था और समाज को हानि पहुँचाना नहीं रहा, वह प्रयास महासम्मेलन में, उसके कर्णधारों को कोंचकर, नवजीवन और सक्रियता लाने के लिए किया गया। वैद्य-समाज के हितों के विकास का, जो मार्ग अवरुद्ध हो गया था, उसको एक ऐसे ही झंझावात की अपेक्षा थी। जिससे संस्था सजीव हो और वैद्य-समाज जाग्रत, प्रेरित एवं सतर्क हो। अब उस विवाद को आगे कटुता की स्थिति में धकेलना नितान्त अकल्याणकर है।

वर्तमान में आयुर्वेद के लिये जितनी अनुकूल स्थिति है, इसके पहले कभी नहीं रही। राष्ट्रीय सरकार होते ही हमारे लिये अच्छा अवसर प्रस्तुत रहा है। आज देश के सर्वोच्च व्यक्ति—महामान्य राष्ट्रपति की चिकित्सा का आधार आयुर्वेद है। एक समय था कि दिल्ली के राज-भवन की ओर दृष्टिपात की सुविधा हमें नहीं थी; वहाँ आज मान्य चिकित्सक रूप में वैद्य स्थित हैं। राष्ट्रपति स्वयं आयुर्वेद की उन्नति के लिये बार-बार प्रेरणा देते हैं। संसद में आयुर्वेद के शुभ-चिन्तकों की संख्या कम नहीं है।

गत १४ अगस्त को, संसद-सदस्यों की आयुर्वेदिक चिकित्सा के हेतु श्री वैद्यनाथ-भवन द्वारा संस्थापित और सञ्चालित आयुर्वेदिक-औषधालय के उद्घाटनावसर पर संसद के माननीय अध्यक्ष श्री आयंगर महोदय ने केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री माननीय श्री करमरकर महोदय को सम्बोधित करते हुए कहा था कि यह राजनीतिक गोष्ठी नहीं है, आपको आयुर्वेद के लिये प्रतिज्ञात कार्य करने होंगे। स्वास्थ्य मन्त्री माननीय श्री करमरकर जी ने उद्बोधन किया था कि हम आयुर्वेद की सचमुच सहायता करना चाहते हैं, वैद्यों को भी इसमें सक्रिय सहयोग देना चाहिये। अब तक सर्वत्र ही यह सुनने को मिलता है कि वैद्य लोग कहते बहुत हैं, परन्तु करते कुछ नहीं। मैं आपसे नम्र निवेदन करना चाहता हूं कि इस अपवाद को मिटाइये। स्थायी-समिति और विद्यापीठ प्रबन्धक-समिति के इन अधिवेशनों में निश्चय-पूर्वक रचनात्मक और यथार्थ कार्य करने की दिशा में आगे कदम बढ़ाइये।

वैद्यों के आयुर्वेद-विद्यालय की स्थापना नितान्त आवश्यक है। आपके थोड़े से सहयोग से यह महत्त्वपूर्ण कार्य निश्चित रूप से संभव है। दिल्ली में वैद्यों के महाविद्यालय के लिए वैद्यनाथ-भवन से पाँच सौ रुपया मासिक सहयोग की घोषणा की जा चुकी है। श्री बनवारीलाल आयुर्वेद विद्यालय वालों से भी वार्ता हुई, प्रारम्भ में ३५०) मासिक की सहायता करने को उन्होंने कहा है। सुविख्यात विद्वान कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी निःशुल्क सेवा रूप से विद्यालय के प्रिंसिपल रूप में अपनी सेवाएं देने को सोत्साह प्रस्तुत हैं। उन्होंने अपने प्रयत्न से लोकसेवी श्री गौतम जी शर्मा से, उनके भारती विद्या भवन में एक भव्य और विस्तृत हाल, विद्यालय को निःशुल्क प्रदान करने हेतु आश्वासन मेरे सामने ले लिया था। ऐसे विद्यालय के लिए जो अपनी ओर से हो, और जिसकी शिक्षा-दीक्षा में राज्य का कोई हस्तक्षेप न हो—वैद्य समाज में मैंने सर्वत्र उत्साह पाया है। यद्यपि पिछले दिल्ली-अधिवेशन के अवसर पर भी बड़ा उत्साह था, ८५ हजार रुपया के वचन सभास्थल पर ही मिले थे। उनमें पाँच हजार भेंट करने का मैंने भी निवेदन किया था—परन्तु दुर्भाग्यवश —उत्तरदायी व्यक्तियों ने आगे उसकी चर्चा तक न बढ़ाई। इस बार के उत्साह का उपयोग पिछले अनुभव को ध्यान में रखकर करना चाहिए और दिल्ली में विद्यापीठ की ओर से महाविद्यालय स्थापन

कार्य का आयोजन एक तदर्थ समिति को सौंप दिया जाना चाहिए। आचार्यवर श्री मणिराम जी शर्मा ने अपने एकाकी प्रयत्न से एक बहुत बड़ा आतुरालय बना लिया है; श्री धन्वन्तरि मन्दिर के नाम से आचार्य जी की साधना का वह प्रतीक विख्यात है। जयपुर में धन्वन्तरि औषधालय स्वामी लक्ष्मीराम जी की कीर्त्ति विस्तारित कर रहा है। कलकत्ता में श्री श्यामादास जी वैद्य विद्यापीठ एक उच्च प्रतिष्ठान है। ऐसे व्यक्तिगत प्रयत्न जब आदर्श रूप से सफल हुए हैं, तो क्या विद्यापीठ की ओर से एक आदर्श आयुर्वेद महाविद्यालय नहीं चलाया जा सकता?

डाक्टरों और एलोपैथी को कोसने से हम कभी नहीं बढ़ सकते। अपनी योग्यता को और शास्त्रज्ञान को यथार्थ रूप में बढ़ाकर और डाक्टरों की कोटि के ही वैद्य तैयार करके हम अपने को निश्चय ही बड़ा सकते हैं। यह विकास हमारे अपने व्यवस्थित महाविद्यालय के द्वारा हो सकता है। मेरा साग्रह निवेदन है कि आप दिल्ली समितियों के अधिवेशन में इस कार्य को केन्द्र विन्दु बनाकर जावें।

विद्यापीठ की ओर से दिल्ली में आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना की योजना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। और उसके निमित्त सर्वथा अनुकूल स्थिति विद्यमान है। हमारे विद्यापीठ मन्त्री श्रीयुत् सीताराम जी मिश्र इस कार्य के लिये सचेष्ट हैं, ऐसा कहा जाता है। इस पर भी इस पुनीत कार्य में हमारे कुछ भाई दूषित और क्षुब्ध वातावरण पैदा करके विघ्न उपस्थित करने का दुःष्प्रयत्न कर रहे हैं, यह दुर्भाग्यपूर्ण है। मैं कह सकता हूँ कि विघ्नकारी कोई भी हो, उन्हें आयुर्वेद के लिये अपराधी ही कहा जायगा।

आयुर्वेद में राष्ट्रीय चिकित्सा होने की स्पष्ट क्षमता है। राष्ट्र के प्रधान कर्णधारों में आयुर्वेद के लिये प्रेम है, स्थितियाँ दूर तक दिखाई देती हैं जिनमें आयुर्वेद का विकास सुनिश्चित है। जरूरत है हमें काम करने की। आयुर्वेद के लिये यह स्वर्ण अवसर है, इसको यदि हमने हाथ से खो दिया तो आत्मघातक होगा। वर्तमान में आयुर्वेद के जो अच्छे ज्ञाता वृद्ध वैद्य हैं, जो शास्त्र ज्ञान का प्रकाश विस्तारित कर सकते हैं, यदि हमारे प्रमाद में समय निकल गया और वे उठ गये—तथा राष्ट्रीय क्षेत्र में संस्कृतनिष्ठ माननीयों की आयुर्वेद के प्रति सहानुभूति कुण्ठित हो गई तो, आयुर्वेद का दुःखद ह्रास संदिग्ध नहीं है। यही गति रही तो अगली पीढ़ी तक आयुर्वेद नहीं चल पायगा। आज श्रद्धेय यादवजी त्रिकम जी आचार्य जैसे मर्मज्ञ और मुल्तानी जी एवं श्री नन्दकिशोर जी जैसे उत्साही होते तो यह कार्य जितनी उत्तमता से होता, उतना होना आज दुष्कर साध्य है, परन्तु असम्भव कदापि नहीं है। हाँ, हमारी दृष्टि यदि यथार्थ की ओर न जायगी, और ऊपर-ऊपर की साधारण बातों में हम उलझे रहेंगे तो एक दशाब्दि के बाद हम कहाँ होंगे—कहा नहीं जा सकता।

संगठन एवं वैद्य-समाज तथा आयुर्वेद-हित के रचनात्मक कार्यों को कार्यान्वित करने में व्यक्तिवाद से ऊपर उठकर, और परस्पर के सम्पूर्ण विवादों को एक ओर रखकर कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ाना चाहिए। विवादीवर्ग के भाई यदि अपनी वृत्तियों का संवरण नहीं कर सकते, तो यथार्थ कार्य करने में प्रतिस्पर्द्धा करें! मैं उनको विनम्र चुनौती देता हूँ कि दिल्ली में विद्यापीठ के महाविद्यालय की स्थापना में वे स्वयं या समाज से जितना धन-साधन एकत्र करके देंगे, मैं उनसे अधिक जुटाने का आश्वासन देता हूँ। प्रभाव एवं कार्यशक्ति की यह कसौटी निर्णायक भी होगी और आयुर्वेद के लिए कल्याणकर भी!

मुझे विश्वास है कि मेरे नम्र निवेदन पर आप कृपाकर ध्यान दीजियेगा। मेरा पुनः आग्रह है कि समितियों के अधिवेशन में दिल्ली अवश्य ही पधारें और अपने प्रयत्न से इस बात पर बल देवें कि विद्यापीठ की ओर से कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी की योजनानुसार दिल्ली में आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना अविलम्ब की जाय। यदि किसी कारणवश आप न जा सकें तो इन विषयों पर अपनी सम्मति स्थायी समिति को डाक द्वारा अवश्य भेजें और उसकी एक प्रति कृपया मेरे पास भेजकर कृतार्थ करें।

योग्य सेवाओं के लिए सदैव प्रस्तुत—

आपका

रामनारायण वैद्य

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०

गुसाईंपुरा, झाँसी,

एहि भगवन् भारतं धन्वन्तरे ! पुनरेकवारम्

एहि, भगव ! भारतं धन्वन्तरे ! पुनरेकवारम्,
दीननयनाह्लादि रूपं दर्शयाशु तावात्युदारम्,

दाम्भिकाः परिखण्डयन्ते वैद्यविद्यायाः स्वरूपम्
भारतीयस्वास्थ्यहंतये हा ! खनति गभीरकूपम् ।
प्रत्यहं लुण्ठन्ति चौराः मानवाऽऽयुर्मणिमनूपम्
पीडिता आकारयामो रक्षणाय कमत्र भूपम् ।।

बोधयेदिह को बिना त्वाम् ; आततायिवधप्रकारम्
एहि ! भगवन् भारतं धन्वन्तरे ! पुनरेकवारम् ।।१।।

उग्ररोगवशप्रपन्नं तरुणमरुणिमहीनगण्डम्
प्रदरपाण्डुगदप्रसारं युवतियौवननाशचण्डम् ।
यक्ष्मयक्षगदाप्रहारं बालबाल्यविघातपण्डम्
वीक्षमाणस्यासवो मम सत्वरं धावन्ति तुण्डम् ।

वितर करुणाकर ! सुधां कुरु भारती यजनं ससारम्
एहि भगवन् ! भारतं धन्वन्तरे ! पुनरेकवारम् ।।२।।

शल्यशालाक्ये गते अत्यन्त दुरवस्थां जगत्याम्
वैद्यतंत्रस्यैकता हा विद्यते न तथापि मत्याम्,
कर्तुमितरे जागरूकाश्चपलमायुर्वेदहत्याम्,
कोऽपि श्रद्धत्ते न धूर्ता आप्तवाचं परमसत्याम्

वारयेदिह को विना त्वां दानवानां कामचारम्
एहि भगवन्, भारतं धन्वन्तरे ! पुनरेकवारम् ।।३।।

प्रतिगृहं परिपीडितानां श्रूयमाणा आर्तनादाः
यौवनेऽपि च युवजनानां जायमाना हृदवसादाः ।
बोधशून्यैरपि बलेन निबद्ध्यमाना विविधवादाः
शास्त्रपरिशीलनपराणां वर्धमाना हा विषादाः,

हे प्रभो व्यथयन्ति चेतः कुरु कृपां हर भक्तभारम्
एहि भगवन् भारतं धन्वन्तरे ! पुनरेकवारम् ।।४।।

—कविराजः सत्यनारायण प्रसादः शास्त्री



धन्वन्तरि जयन्ती अंक

यह सर्वविदित है कि गत कई वर्षों से श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० की प्रेरणा से धन्वन्तरि-जयन्ती को सामूहिक रूप में मनाने की परम्परा चल रही है। इससे पूर्व वैद्यगण व्यक्तिगत रूप से अपने घरों में श्री धन्वन्तरि-पूजन किया करते थे। श्री बैद्यनाथ-भवन के संचालकों ने अपने देशव्यापी बिक्री-केन्द्रों एवं एजेण्टों को प्रेरित करके सामूहिक आयोजन कराके वैद्य-हकीमों में सौहार्द और संगठन बढ़ाने का प्रयास किया जो बहुत सफल रहा। अब तो अन्य स्थानों पर भी श्री धन्वन्तरि-जयन्ती के सामूहिक आयोजन होने लगे हैं, यह बड़े हर्ष की बात है।

इस वर्ष वैद्य श्री रामनारायण शर्मा ने एक अपील प्रकाशित करके वैद्य-जगत् एवं जन-कार्यकर्ताओं से आग्रह किया था कि इस बार श्री धन्वन्तरि-जयन्ती के अवसर पर स्वास्थ्य-दिवस के आयोजन किये जावें, जिनमें वैद्य-हकीमों के अतिरिक्त सार्वजनिक जनता भी भाग लेवे। वैद्यजी की अपील सभी प्रमुख समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई थी और यह बड़े सन्तोष का विषय है कि इस वर्ष देश भर में सर्वत्र श्री धन्वन्तरि-जयन्ती को स्वास्थ्य-दिवस के रूप में ही मनाया गया। कई स्थानों पर इस अवसर पर स्वास्थ्य-सप्ताह का भी आयोजन किया गया। इस वर्ष यह महत्त्वपूर्ण बात हुई कि इन आयोजनों में स्थानीय सार्वजनिक कार्यकर्ताओं और जनता ने उत्साहपूर्वक भाग लिया, जिससे सार्वजनिक रूप से आयुर्वेद का पक्ष सबल हुआ। इस अवसर पर आयोजित सभाओं में जनता द्वारा यह प्रस्ताव स्वीकृत किये गये कि आयुर्वेद-यूनानी का विकास किया जाय और सरकार इनको ही राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति स्वीकार करे; जन-स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान दिया जाय और उस विषय में आयुर्वेद के व्यावहारिक स्वास्थ्य-सिद्धान्तों को जनता में अधिकाधिक प्रचारित किया जाय एवं सरकार उन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर स्वास्थ्य-रक्षा का प्रयत्न करे। वैद्यों द्वारा प्रस्ताव स्वीकार करके आयुर्वेदीय आसव-अरिष्टों को मद्य-श्रेणी में ले कर मद्य-कर लगाने की निन्दा की गई एवं सरकार से पुनर्विचार कर कानून की आयुर्वेद विषयक धाराओं को वापस लेने का अनुरोध किया गया। वैद्य-सभाओं में सर्वसम्मति से प्रस्ताव स्वीकृत करके आयुर्वेद महासम्मेलन एवं विद्यापीठ की वर्तमान अवस्था पर खेद प्रकट करके उनके सुधार का आग्रह किया गया एवं केन्द्र देहली में महाविद्यालय की स्थापना करके विद्यापीठ को उसमें सहयोग करने का सुझाव दिया गया। सब स्थानों से स्वीकृत प्रस्तावों की प्रतियाँ महामान्य राष्ट्रपति, केन्द्रीय तथा प्रादेशिक स्वास्थ्य-मंत्रियों, केन्द्रीय वित्तमंत्री तथा महासम्मेलन विषयक प्रस्तावों की प्रतियाँ सभी वैद्यों के पास प्रेषित की गयीं।

जनता की ओर से सार्वजनिक स्वास्थ्य-दिवस पर आयोजित सभाओं में स्वीकृत प्रस्तावों द्वारा सरकार से जो माँग की गयी है, उसमें जनता की भावना है और सरकारी अधिकारी वर्ग जो यदा-कदा यह कहा करता है कि आयुर्वेद को जनता नहीं चाहती--उसको इन प्रस्तावों से परिस्थिति जान लेनी चाहिए। क्या हम आशा करें कि राष्ट्रीय सरकार के माननीय स्वास्थ्य-मंत्रिगण एवं सरकारी स्वास्थ्य विभाग जनता की इस उचित माँग की ओर सहानुभूतिपूर्वक विचार कर देशी चिकित्सा-पद्धतियों के पक्ष में न्यायपूर्ण कदम उठाने को उद्यत होंगे ?

इसी प्रकार आयुर्वेद महासम्मेलन के अधिकारियों से भी यह अपेक्षा करना स्वाभाविक है। वैद्य सभाओं में स्वीकृत प्रस्तावों द्वारा महासम्मेलन की स्थिति पर चिन्ता प्रकट किया जाना कुछ अर्थ रखता है। हर प्रदेश के अगणित स्थानों के वैद्यों ने महासम्मेलन की स्थिति के सुधार की इच्छा व्यक्त की है। महासम्मेलन के अधिकारियों को बिना किसी बहाने के इस प्रसंग में अविलम्ब कार्यवाही करनी चाहिए और महासम्मेलन की गतिविधि से उन वैद्यों को ठुकराना नहीं चाहिए जिन्होंने उसके विषय में प्रस्ताव स्वीकृत करके अपने स्पष्ट विचार व्यक्त किये हैं।

विद्यापीठ के महाविद्यालय के बिना विद्यापीठ का कोई उपयोग नहीं है, इस विषय में दो मत नहीं हो सकते। प्रस्तावों द्वारा यह माँग कि केन्द्र में महाविद्यालय की स्थापना की जानी चाहिए, सर्वथा उचित और सामयिक

है। विद्यापीठ का भी इससे अधिक अच्छा उपयोग दूसरा नहीं हो सकता। यह महासम्मेलन और विद्यापीठ के अधिकारियों की निष्ठा पर निर्भर है कि वे आयुर्वेद-जगत के जनमत का कितना आदर करते हैं या अपने पूर्वाचरण की तरह ही अपनी बुद्धि का उपयोग अन्यथा करते हैं।

इस प्रकार की सभाएं देश भर में सौ से अधिक स्थानों पर हुई हैं, जिनका विस्तृत विवरण प्रकाशनार्थ हमें मिला है। सारे विवरण को किसी भी साधारण अंक में देना साध्य नहीं था, इसलिए हम श्री धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह के विवरण को अपने पाठकों तक पहुँचाने के लिए यह विशेष-अंक प्रकाशित कर रहे हैं, ताकि हमारा साधारण अंक भी विलम्ब से न निकले और पाठकों को समाचार भी उचित समय में प्राप्त हो जावे।

इस अंक में प्रकाशित विवरण से आयुर्वेद-जगत् के प्रमुख जन यह अनुमान करेंगे, कि इस बार श्री धन्वन्तरि-जयन्ती पर जैसा प्रयत्न हुआ है, यदि इस परम्परा को और अधिक उत्साह के साथ आगे बढ़ाया जावेगा तो आयुर्वेद के साथ नागरिक जनता का सम्पर्क अधिक बढ़ेगा और जनता यह अनुभव कर सकेगी कि उसको भी आयुर्वेद का अधिकार दिलाने के लिए कुछ प्रयत्न करना चाहिए। इससे आयुर्वेद का हित होगा। हमारी आकांक्षा है कि आयुर्वेद-जगत् इस महत्व को अनुभव करे और इस प्रकार के जन-सम्पर्क वाले समारोहों का आयोजन कराने की दिशा में अधिक सक्रिय होवे।

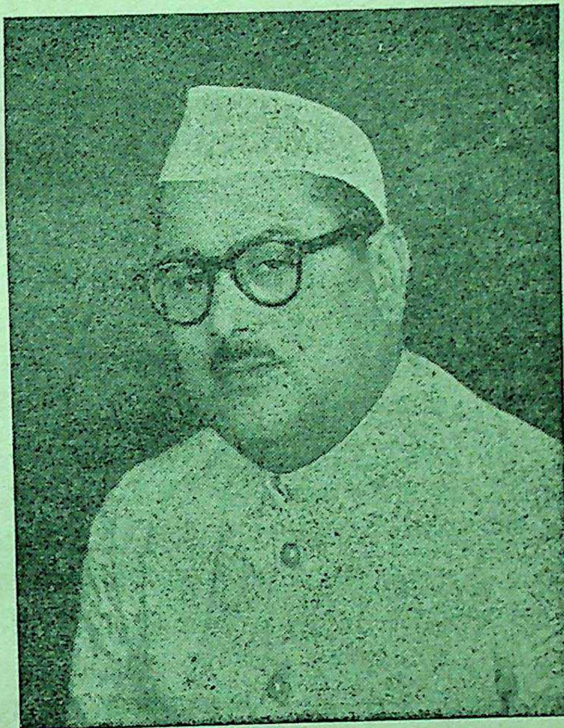
निम्न स्थानों पर प्रमुखता के साथ श्री धन्वन्तरि-जयन्ती पर स्वास्थ्य-दिवस एवं विराट् सभाओं के आयोजन किए गए—

गोरखपुर, भागलपुर, बनारस, गुदौलिया, छपरा, वस्ती, आरा, इलाहाबाद, समस्तीपुर, मुजफ्फरपुर, (मोतीझील), लहेरियासराय, सासाराम, टाटानगर, सीता-मढ़ी, सुलतानपुर, जौनपुर, देवरिया, सीवान, गया, बलिया, फारबिसगंज, सीतापुर, बेगूसराय, मोतिहारी, फैजाबाद, पूर्णियाँ, लखीमपुर-खीरी, झरिया, लखनऊ (अमीनाबाद), डालटनगंज, बक्सर, आजमगढ़, बैरगनिया, कटिहार, विहारशरीफ, बेतिया, राँची, पडरौना, गोण्डा, खगड़िया, रक्सौल, भभुआ, जयनगर, गिरीडीह, बरेली, मऊनाथभंजन, सहर्सा, मालदा, हरदोई, विक्रम, रावर्टस्गंज, मिर्जापुर, बैद्यनाथधाम, औरैया, आगरा, अलीगढ़, अमृतसर, अलवर, इन्दौर, इटावा, कासगंज, उज्जैन, कोटा, कानपुर, (विरहाना रोड), कानपुर (गोपाल टाँकी), कानपुर (मेस्टनरोड), कानपुर, (ग्वालटोली), कौंच, कानपुर (दालमण्डी), कटनी, खण्डवा, खतौली, गढ़मुक्तेश्वर, गुना, गाजियाबाद, चन्दौसी, जालन्धर, जयपुर, जोधपुर, डावरा, देहली (चाँदनीचौक) देहली (चावड़ीबाजार), देहली (सब्जी मण्डी), झींझक, देहरादून, पानीपत, पुखरायाँ, फतेहपुर, फर्रुखाबाद, बुलन्द-शहर, बाराबंकी, बाँदा, बदायूँ, भोपाल, भेलसा, भरतपुर, मेरठ, मुरादाबाद, मुजफ्फरनगर, मोरेना, मथुरा, मऊरानीपुर, रोहतक, रेवाड़ी, रतलाम, रीवाँ, लश्कर (ग्वालियर), ललितपुर, शाहजहाँपुर, सतना, सहारनपुर, सागर, हरिद्वार, हाथरस, हापुड़, हरदा, छतरपुर, टीकमगढ़, दतिया, अबोहर-मण्डी, उन्नाव, कोटपुतली, खरेला, गौहारी, जालौन, पावटा, पलपल, मोगा, मोठ, रूड़की, शिवपुरी, शिकोहाबाद, पौड़ी (गढ़वाल), धौलपुर, नीमकाथाना, अकोला, अमरावती, यवतमाल, गोन्दिया, जबलपुर, रायपुर, बिलासपुर, रायगढ़, राजनाँदगाँव, नागपुर (इतवारी), नागपुर (महालरोड), तुमसर, मण्डला, बर्धा, खामगाँव, औरंगाबाद, हैदराबाद, डोंगरगढ़, बालाघाट, सिवनी, जलगाँव, सिहोरा, कलकत्ता (महात्मा गाँधी रोड), हवड़ा मैदान, सलकिया, शिवपुर, रिसड़ा, मटियाबुर्ज, बेलियाघाटा, काशीपुर, बेलेस्ली स्ट्रीट, सियालदह, चाँपदानी, कमरहट्टी, खिदिरपुर, बारानगर, भवानीपुर, काँकीनारा, जगदल, सम्बलपुर, खड़गपुर, रानीगंज, आसनसोल, वर्द्धमान, कटक, पुरी, झारसुगुड़ा, कुल्टी, चाराली, बरहमपुर, कचरापाड़ा, पुरूलिया, गरूलिया, दक्खिनडाँडी, कलिम्पोङ्ग, आलम-बाजार, चामरची, सोनादा, सेपौंन, गौहाटी, टीटागढ़, रायगंगपुर, सिलीगुड़ी, वाउड़िया, स्ट्राण्डरोड, गौरीपुर।

धन्वन्तरि और उनकी जयन्ती

आचार्य शिवदत्त शुक्ल एम० ए०, आयुर्वेदाचार्य

ग्रीक पौराणिक गाथाओं के अनुसार सर्प को ज्ञान का प्रतीक माना जाता है। Asculepius अपने हाथ में एक दण्ड रखता है जिसके आसपास सर्प लिपटा रहता है। विश्व के इस परम विकसित युग में वैज्ञानिकता के शिखर पर पहुँचे हुए चिकित्सक मण्डल ने चिकित्सा शास्त्र के लिये यह दण्डयुक्त सर्प प्रतीक माना है। सभी देशों के वैज्ञानिक इस ग्रीक पौराणिक-परम्परा को अपने मस्तक पर मुकुटमणि की भाँति धारण करते हैं। इसी के धरातल पर चिकित्सा की मर्यादा को प्रतिष्ठापित करते हैं।



लेखक

भारत में पतञ्जलि को शेष का अवतार माना जाता था और वे योग, व्याकरण और वैद्यक तीनों शास्त्रों के निर्माता माने गये थे। पाश्चात्य चिकित्सक ग्रीक परम्पराओं का अनुकरण गौरव के साथ करता है। परन्तु भारतीय प्रतीकों को किंचित मात्र भी अपने मस्तिष्क में स्थान देने में विडम्बना समझता है। यही कारण है कि आज हम अपने देश के परम विख्यात वैज्ञानिकों और विद्वानों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते, या तो उनकी पूजा कुछ ऐसे व्यक्तियों द्वारा हो रही है जिन्हें अन्धश्रद्धा रखनेवाले कहा जाता है या वे पूर्णतया भूले जा चुके हैं। यही दुर्दशा शल्यांग-चिकित्सा-शास्त्र के अन्यतम प्रवर्तक धन्वन्तरि की भी हुई है।

हजारों वर्षों से हमें ज्ञात है कि हमारे देश में शल्यांग-प्रधान आयुर्वेद के उपदेष्टा काशिराज धन्वन्तरि हुए थे। देश में उनकी जयन्ती भी कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को मनाई जाती है। उसी समय में गतानुगतिक परम्परा के अनुसार स्वास्थ्य के महत्त्वपूर्ण अंग-घर की स्वच्छता आदि का आयोजन भी होता है परन्तु जिस पुरुष के नाम पर यह परम्परा प्रारम्भ हुई उसके सम्बन्ध में अबतक हम निश्चयात्मक रूप से अधिक कहने में समर्थ नहीं हैं।

काशिराज धन्वन्तरि अपने शास्त्र के व्याख्याता थे। उनके श्रोता सुश्रुत, औपधेनव, पौष्कलावत, औरभ्र, भोज, वैतरण आदि ऋषि थे। इन सभी शिष्यों ने शल्यतंत्र के पृथक-पृथक ग्रंथ लिखे। आज से १००० वर्ष पूर्व वे ग्रंथ मिलते थे क्योंकि अनेक ग्रंथकारों ने उनके पाठों का उल्लेख किया है। इनमें से औपधेनव, औरभ्र, सौश्रुत तथा पौष्कलावत तंत्र बहुत महत्व के माने जाते थे। भोज तंत्र के पाठ भी अनेक स्थलों पर प्राप्त होते हैं, किन्तु इन सभी ग्रंथों में से आज केवल सुश्रुतसंहिता ही उपलब्ध होती है।

इन उपदेष्टा धन्वन्तरि के विषय में आयुर्वेद के ग्रंथों से अधिक विवरण पुराणों में प्राप्त होता है। मुख्यतया हरिवंश, महाभारत, भागवत, विष्णु, वायु, ब्रह्माण्ड और आग्नेय पुराण में धन्वन्तरि का वर्णन मिलता है। हरिवंश में कहा गया है कि समुद्र-मंथन के समय विष्णु का अंशावतार हुआ। इसी को अब्जधन्वन्तरि कहा गया। इस अंशावतार के विषय में स्वयं विष्णु भगवान द्वारा कहा गया कि तुम दूसरे जन्म में ख्याति प्राप्त करोगे, गर्भस्थिति में ही तुम्हें

अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त होंगी, मनुष्य रूप में ही देवत्व प्राप्त होगा और द्विजातिगण तुम्हारी पूजा करेंगे—

द्वितीययां हि सम्भूत्यां लोके ख्यातिं गमिष्यसि,
अणिमादिंश्च ते सिद्धिं गर्भस्थस्य भविष्यति।
तेनैव त्वं शरीरेण देवत्वं प्राप्यसे प्रभो,
चरुमंत्रैर्व्रतैजाप्यै र्यक्ष्यन्ते त्वां द्विजातयः।"

यह समुद्र-मंथन की कथा सतयुग की है। भागवत पुराण में समुद्र-मंथन से धन्वन्तरि की उत्पत्ति का बड़ा सुन्दर वर्णन है—

अथोदधेर्मथ्यमानात् काश्यपैरमृतार्थिभिः,
उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः।
दीर्घपीवर दोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः,
श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः।
पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणि कुण्डलः,
स्निग्ध कुंचित केशान्तःसुभगः सिंहविक्रमः।
अमृतापूर्णकलशः बिभ्रद् वलयभूषितः,
स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांश सम्भवः।
धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेददृगिज्यभाक्,
तमालोक्यासुरा सर्वे कलशं चामृताभृतम्।

अर्थात्—अमृतेच्छुक कश्यप पुत्रों द्वारा समुद्र-मंथन से एक परम अद्भुत पुरुष उत्पन्न हुआ जिसकी लम्बी और पुष्ट बाहु थीं, सुन्दर शंखसदृश ग्रीवा थी, रक्त नेत्र थे, विशाल वक्ष था, मणिकुण्डलधारण किये था, स्निग्ध कुंचित केशान्त था, ऐश्वर्यवान तथा सिंह सदृश पराक्रमी था, जिसके वलय-भूषित हाथ में अमृतपूर्ण कलश था, वह विष्णु के अंशांश से सम्भूत था, वही धन्वन्तरि के नाम से प्रसिद्ध हुआ और आयुर्वेद का व्याख्याता हुआ। इन्हीं धन्वन्तरि के सम्बन्ध में अन्यत्र भागवतकार ने लिखा है—

धन्वन्तरिश्च भगवान् स्वयमेव कीर्ति—
र्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति।
यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध—
आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके॥

हरिवंश पुराण में आगे कहा गया है कि द्वापर में काशी के राजा धन्व ने पुत्र की कामना से अनेक प्रकार के तप किये तब उनके घर में धन्वन्तरि नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। वे चिकित्सक थे और नाना प्रकार के रोगों को नष्ट करने की उनमें शक्ति थी। उन्होंने आयुर्वेद की शिक्षा भारद्वाज से प्राप्त की। फिर उसे ८ भागों में विभाजित कर अपने शिष्यों को पढ़ाया—

द्वितीये द्वापरे प्राप्ते अग्निहोत्रिः स काशीराट्।
पुत्र कामस्तपस्तेपे धन्वो दीर्घ महत्तदा॥
तस्य गेहे समुत्पन्नः देवो धन्वन्तरिस्तदा,
काशिराजो महाराज, सर्वरोग प्राणाशनः॥
आयुर्वेदः भारद्वाजात् संप्राप्य सभिषक् क्रियम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्॥

इन्हीं धन्वन्तरि के विषय में अन्यत्र भागवत में भी कहा है कि—

"धन्वन्तरं द्वादशं त्रयोदशमेव च"

आश्वलायन गृह्यसूत्र में इन्हीं धन्वन्तरि के लिये वलि का विधान किया गया है—

"धन्वन्तरियज्ञे ब्रह्माणमग्निं चान्तरा पुरोहिताय वलिं हरेत्"

दैनिक वलि-वैश्वदेव-विधि के प्रकरण में भी—"ओं धन्वन्तरये स्वाहा" का विधान किया गया है। सुश्रुत-संहिता भी इसी प्रसंग की पुष्टि करती है।

अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो, जरारुजामृत्यु हरोऽमराणाम्।
शल्यांगमंगैरपैररुपेतं, प्राप्तोऽस्मिं गां भूय इहोपदेष्टुम्॥

इस प्रकार उपर्युक्त सभी प्रमाणों तथा उद्धरणों के द्वारा यह सिद्ध होता है कि सुश्रुतोपदेष्टा भगवान धन्वन्तरि विष्णु के अंशावतार थे जो कि अपने द्वितीय जन्म में प्रसिद्ध हुए। उन्होंने भरद्वाज से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया और उसे ८ अंगों में विभाजित किया। किन्तु सुश्रुत के अनुसार धन्वन्तरि को इन्द्र का ही शिष्य कहा जा सकता है। प्रचलित सुश्रुत में लिखा है—

ब्रह्मा प्रोवाच ततः प्रजापतिः अधिजगे, तस्मादश्विनौ, अश्विभ्यामिन्द्र इन्द्रादहम् मया त्विह प्रदेयमर्थिभ्यः प्रजाहित हेतोः॥

अर्थात्—आयुर्वेद-ज्ञान को ब्रह्मा ने प्रजापति को कहा, प्रजापति ने अश्विनी कुमारों को, अश्विनी कुमारों ने इन्द्र को तथा इन्द्र ने धन्वन्तरि को कहा। इस प्रकार सुश्रुतानुसार धन्वन्तरि का स्वयं इन्द्र से आयुर्वेद-अध्ययन सिद्ध होता है। शास्त्रों ने इन्द्र के परमगुरुत्व को इस विप्रतिपत्ति का समाधान मान लिया है।

इन दो धन्वन्तरि के अतिरिक्त सुश्रुत में वर्णित निम्न वचन पर विचार करने से कुछ विचित्रता और प्रतीत होती है—

अथ खलु भगवन्तममरवरमृषिगणपरिवृतमाश्रमस्थं काशिराज दिवोदास धन्वन्तरिमौपधेनव वैतरणोरभ्रपौष्कलावत करवीर्यगोपुर रक्षित सुश्रुत प्रभृतयः ऊचुः

इस वाक्य में धन्वन्तरि के साथ दिवोदास का नाम लिया गया है, हरवंश पुराण में वर्णित वंशावली के अनुसार धन्वन्तरि काशराजा के वंश में धन्व नरेश के पुत्र थे और देवदास इनके बाद तीसरी पीढ़ी में हुए थे। वे भीमरथ के पुत्र थे तथा प्रतर्दन उनका पुत्र था। काश-दीर्घतपा-धन्व-धन्वन्तरि-केतुमान-भीमरथ (भीमसेन)–दिवोदास-प्रतर्दन-वत्स।

विष्णु पुराण की परम्परा के अनुसार काश के काशेय पुत्र हुए और काशेय से काशीराज और उनके राष्ट्र हुए। राष्ट्रसे दीर्घतपा तथा इनके पुत्र धन्वन्तरि हुए। भागवत पुराणमें भी इसी प्रकार की परम्परा मिलती है। आयुर्वेदीय इतिहास के सम्बन्ध में गहन विचार प्रगट करनेवाले स्वनामधन्य स्वर्गीय पूज्य पं० हेमराज शर्माने धन्वन्तरि के प्रपौत्र देवदास को ही आयुर्वेद का सुश्रुतोक्त उपदेष्टा माना है। देवदास के पूर्व पुरुष धन्वन्तरि को अब्जदेवता स्वीकार किया है।

इस सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि हरिवंश तथा महाभारत के अनुशासन पर्व में देवदास के द्वारा ही वाराणसी के निर्माण का निर्देश है। प्रतर्दन के पौत्र अलर्क ने वाराणसी को पुनः बसाया था। कौशातकी ब्राह्मणोपनिषद् में भी देवोदास (देवदास के पुत्र) प्रतर्दन का ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है। काठक संहिता के ब्राह्मण अंश में भी भीमसेन के पुत्र देवदास का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में भी देवदास नामक एक राजा का उल्लेख मिलता है। इनकी शूरवीरता के बारे में कहा गया है परन्तु वैद्य नहीं कहा गया है। इन्हीं आधारों पर डा० गणनाथ सेन ने देवदास तथा धन्वन्तरि की एकता पर अविश्वास प्रकट किया है। उनका कहना है कि देवदास नामक धन्वन्तरि के प्रपौत्र जो कि काश वंश में उत्पन्न हुए थे प्रथम ही थे क्योंकि यदि धन्वन्तरि और देवदास को एक माना जायें तो उनके मुख से "अहंहिधन्वन्तरिरादिदेवो" यह वाणी उचित नहीं प्रतीत होती न उन्हें अमरवर कहा जा सकता है। देवदास को वैदिक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक वाङ्मय में कहीं भी आयुर्वेदिक उपदेष्टा नहीं कहा गया है।

इसके अतिरिक्त एक चौथे धन्वन्तरि नाम के विद्वान का परिचय, चाहे वे वैद्य हों या कवि, विक्रमादित्य की सभा में मिलता है। ये सभासद तथा विक्रमादित्य के नवरत्नों में एक थे। नवरत्न की कल्पना के आधार पर विभिन्न प्रकार के विद्वानों का सभासद होना युक्त ही कहा जा सकता है। इन नवरत्नों में धन्वन्तरि वैद्यराज, क्षपणक बौद्धभिक्षु, अमरसिंह शब्दकोषकार, कालीदास कविराज, वराहमिहिर ज्योतिषाचार्य आदि थे। इनके सुश्रुतोपदेष्टा होने की शंका किसी विद्वान को नहीं है किन्तु इनका भी काल २००० वर्ष के पूर्व का है जो कि इनके प्रचलित विक्रम सम्वत् से समझा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त एक धन्वन्तरि नामक अन्य ऋषि का वर्णन भी प्राप्त होता है। सारस्वत तथा अन्य प्रान्तों के कुछ ब्राह्मणों में जो पंजाब, सिन्ध, बंगाल, महाराष्ट्र आदि अनेक प्रदेशों में रहते हैं और जो अपने को वैद्य उपनाम से घोषित करते हैं, इनमें से कुछ अपने को धन्वन्तरि के गोत्र का बतलाते हैं। यह अपने को धन्वन्तरि अप्सरा नैयध्रुव काश्यप प्रवर के बतलाते हैं। इस प्रकार धन्वन्तरि के सम्बन्ध में कई प्रकार के वाद प्रचलित हैं किन्तु बहुसम्मति यही है कि द्वापर में होने वाले धन्वन्तरि ही सुश्रुत के उपदेष्टा हैं और उन्हीं की इतनी ख्याति हुई कि अवतार माने गये और अबतक उनकी पूजा होती चली आई है।

धन्वन्तरि का काल

यदि वैदिक तथा ब्राह्मण ग्रंथ में आये दिवोदास को हम सुश्रुत का उपदेष्टा न भी मानें तब भी धन्वन्तरि का काल महाभारत के पूर्व का है। महाभारत की रचना बुद्ध के पूर्व की है अतएव यह निश्चित सत्य है कि धन्वन्तरि का काल उपनिषद काल के लगभग हो सकता है। महाभारत का युद्ध द्वापर के अन्त तथा कलियुग के प्रारम्भ में हुआ था इसके काल को कुछ विद्वान ५००० वर्ष पूर्व का मानते हैं किन्तु डा० अलतेकर तथा डा० जयसवाल ने इसे लगभग १४०० ई० पू० स्वीकार किया है। डा० राय चौधरी ने इसे ई० पू० ९ वीं तथा पार्जिटर ने ई० पू० दसवीं शताब्दी माना है। इस युद्ध के पूर्व धन्वन्तरि सम्प्रदाय का विकास निश्चित हो चुका था। इसके अतिरिक्त मिलिन्दपल्लव नामक पालीग्रंथ (द्वि० शताब्दी पू०) तथा अयोधर जातक में धन्वन्तरि का उल्लेख मिलने से तथा महाभाष्य (पतञ्जलि-

कृत) में धन्वन्तरि का निर्देश होने एवं धन्वन्तरि के प्रपौत्र देवदास द्वारा वाराणसी के निर्माण का वर्णन होने से इनकी प्राचीनता का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। आयुर्वेद के प्राचीन-तम ग्रंथ चरक में (चि० स्था० अ० ५, शा० स्था० अ० ६) में धन्वन्तरि सम्प्रदाय का उल्लेख होने के कारण निश्चित रूप से धन्वन्तरि को आत्रेय से प्राचीन मानना पड़ता है। सुश्रुत संहिता का निर्माण भी बुद्धकाल (६वीं शताब्दी ई० पू०) में हो चुका था और उस समय से ही शल्य विद्या का ह्रास प्रारम्भ हो चुका था। ऐसी अवस्था में धन्वन्तरि का काल ३००० वर्ष से पूर्व का निश्चित रूप से माना जाना चाहिये, यही प्रायः सभी विचारकों का समन्वित मत है।

भारतवर्ष भावना प्रधान देश रहा है। इसमें राम, कृष्ण परशुराम, बुद्ध, धन्वन्तरि सभी अवतार माने जाते हैं। इनको देवता समझ कर पूजा जाता है। हमारे यहाँ का विश्वास है कि जब-जब मानवता संकट में पड़ती है तब-तब भगवान को ही मानव रूप धारण कर उसकी रक्षा का उद्योग करना पड़ता है। धन्वन्तरि का अवतार भी इसी प्रकार हुआ है। सर्व शक्तिमान भगवान भी पृथ्वी के दुःखों को उतारने के हेतु मनुष्य रूप में आकर ही लीला करते हैं। अपने कर्तव्यों के द्वारा आदर्श उपस्थित करते हैं। हम अपने महापुरुषों के चरित्रों को गम्भीरतापूर्वक देखें तो उनके कार्यों में लोक-कल्याण की परिपक्व भावना प्रतीत होती है। प्रायः सभी अवतारों की जयन्तियाँ मनाई जाती हैं। इनमें से कुछ का अधिक प्रचार है और कुछ का कम। हम रामनवमी तथा जन्माष्टमी को इसी दृष्टिकोण से मनाते हैं। धन्वन्तरि जयन्ती भी बहुत काल से हमारे देश में मनाई जाती है किन्तु इसके सार्वजनिक रूप में कुछ परिवर्तन हो गया है। हम में से अधिकांश लोग वर्तन आदि खरीद कर धन की पूजा कर धन्वन्तरि पूजा कर लेते हैं। वास्तव में धन्वन्तरि जयन्ती भगवान के उस पवित्र कार्य के संस्मरण के हेतु मनायी जाती है जिसके हेतु धन्वन्तरि का अवतार हुआ था। अर्थात् जनता के रोगों के नष्ट करने के सभी उपायों का अवलम्बन।

हम लोग इन्हीं दिनों में घर की सफाई करते हैं और लक्ष्मी पूजन करते हैं। इसका आशय यह है कि मानव जीवन में तीन प्रकार की एषणायें होती हैं। सब से पहली एषणा प्राण-एषणा कहलाती है। प्राणैषणा में दो विषयों का विचार किया जाता है स्वस्थ की स्वस्थ वृत्ति तथा आतुर के विकारों के प्रशमन् में अनालस्य। स्वस्थ-वृत्ति का पालन व्यक्ति-गत तथा सार्वजनिक रूप में दोनों प्रकार से होता है। धन्वन्तरि जयन्ती का व्यावहारिक स्वरूप सार्वजनिक स्वच्छता के रूप में अति प्राचीन काल से हमें दृष्टिगत होता चला आ रहा है। इस प्रकार इस त्योहार से हमें यह प्रेरणा प्राप्त होती रही है कि जीवन की रक्षा के लिये अपने तथा अपने पड़ोसियों के स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिये और ऐसे नियमों से रहना चाहिये कि हम स्वयं स्वस्थ रहें और हमारे आसपास के व्यक्ति भी। इसके बाद धनैषणा है। जब हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहता है तो हम धन को एषणा करते हैं। धन का अर्थ चरक के अनुसार उपकरण होता है। जब स्वास्थ्य एवं लक्ष्मी की प्राप्ति हो जाती है तब मानव शान्ति की ओर आगे बढ़कर परलोकैषणा की तरफ प्रवृत्त होता है। यह है धन्वन्तरि त्रयोदशी तथा उसके बाद होने वाले लक्ष्मी पूजन का रहस्य और उसके एक दिन बाद ही गोपूजन होता है। भारतवर्ष में कृषि प्रधान होने के कारण गाय का महत्त्व सबसे अधिक माना गया है। एतदर्थ गो पूजा की जाती है, जो हमें व्यावहारिक लक्ष्मी पूजन की ओर प्रवृत्त करती है। और उसी के दूसरे दिन भातृद्वितीया त्योहार हमें कर्त्तव्य कर्म की तरफ प्रेरित करता है। वह बत-लाता है कि संसार के प्राणियों तथा स्वयं एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ कैसा कर्त्तव्य होना चाहिये। संसार में किस प्रकार के व्यवहार करने से हम सफल हो सकते हैं। हमारी आवश्यकताएँ क्या है। हमें कब क्या करना चाहिये इसीका उपदेश देने के हेतु हमारे देश में त्योहारों की कल्पना की गई थी। महापुरुषों की जयन्तियाँ मनाने की परम्परा चलाई गयी थी। वरसात के बाद इन त्योहारों के मनाने का यही महत्त्व है। इनके वास्तविक रहस्य को समझने में हम आगे बढ़ सकते हैं और अपने जीवन को सफल बना सकते हैं अर्थात् पहले व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा तत्पश्चात् अर्थ तथा उपकरणों का संचय तदनन्तर कर्त्तव्य कर्म का यथायोग्य पालन।

रोगपरीक्षा-पद्धति का प्रथम सूत्र

वैद्य रणजितराय

आयुर्वेद के विलोप का एक कारण उसकी प्रायोगिक परम्परा की प्राप्ति वर्तमान पीढी को न होना है। इसके विच्छेद के कारण ऐतिहासिक हैं और सुविदित हैं। आयुर्वेद के प्रत्यक्षात्मक भाग का अन्वेषण कर उसे प्रकाश में लाना आयुर्वेद के पुनरुज्जीवन के लिए परमावश्यक है। आगे बढ़ने के पूर्व अपने वक्तव्य को कुछ स्पष्ट कर दूं।

आयुर्वेदीय संहिताओं के बहुत-से वचन ऐसे हैं, जिनका प्रत्यक्ष में उपयोग पुराकाल में कैसे किया जाता होगा यह आज समझ नहीं आता। कारण, हम तक संहिताओं के शब्द तो पहुँचे हैं परन्तु उनके उपयोग का प्रत्यक्ष स्वरूप पहुँच नहीं पाया है। निश्चित ही उसे हमें ऐतिहासिक प्रदर्शन की वस्तु नहीं रहने देना है। किन्तु सर्वत्र अन्वेषण कर, मनन और मन्थन कर, उसे पुनः क्रिया में लाना है। प्रसिद्ध पञ्चकर्म तथा अन्य कर्मों का ही उदाहरण लीजिए। पञ्चकर्म आयुर्वेद का प्रधान अङ्ग है। पञ्चकर्म की प्रधानता उसके संशोधनात्मक होने से है और संशोधन रोगों का मूलोच्छेदक होने से ; परिणामतया रोगों को पुनः उत्पन्न होने में बाधक (अपुनर्भवकर) होने से चिकित्सा में प्रधान है।

थोड़ा ठहर कर इन वचनों की भी व्याख्या कर लें।

व्याधितरूपीय अध्याय (विमान स्थान सप्तम अध्याय) में क्रमियों की चिकित्सा कहकर उसका उपसंहार करते चरकाचार्य ने **चिकित्सा के तीन प्रायमिक भेद** दर्शाए हैं। वे कहते हैं।—

अपकर्षणमेवादौ क्रमीणां भेषजं स्मृतम्।
ततो विघातः प्रकृतेर्निदानस्य च वर्जनम्॥

तात्पर्य—क्रमियों की चिकित्सा तीन प्रकार से की जाती है। **अपकर्षण** अर्थात् उन्हें तत्तत् उपाय से बाहर निकाल देना। **प्रकृति-विघात—नाम** क्रमियों की उत्पत्ति और वृद्धि की कारणभूत जो भूमिका आमपक्वाशय आदि में विद्यमान है उसे विरुद्ध गुणवाले द्रव्यादि के सेवन से नष्ट करना; इसे ही अन्यत्र संशमन भी कहते हैं। **निदान-परिवर्जन**—क्रमि जिस अहिताहारविहार से उत्पन्न और पुष्ट हों उसका परित्याग। क्रमियों के प्रसंग से कहे इस त्रिविध उपचार का उपदेश रोगमात्र की चिकित्सा के लिए करते तन्त्रकार आगे कहते हैं—

अयमेव विकाराणां सर्वेषामपि निग्रहे।
विधिर्दृष्टस्त्रिधा योऽयं क्रमीनुद्दिश्य कीर्तितः॥

आशय, क्रमियों को दृष्टि में रखकर उपचार के जो तीन प्रभेद यहाँ बताए गए हैं, रोगमात्र के उपशमन के यही तीन प्रभेद समझने चाहिए।

प्रथम पद्य में उपचार के तीन प्राथमिक भेदों के जो नाम दिए हैं वे वैसे प्रसिद्ध नहीं हैं। इस द्वितीय पद्य की आगे व्याख्या करते हुए इन भेदों के सरल और प्रसिद्ध नाम देते तन्त्रकार कहते हैं—

संशोधनं संशमनं निदानस्य च वर्जनम्।
एतावद् भिषजा कार्यं रोगे रोगे यथाविधि॥

च० वि० ७।३०

अर्थात्—प्रत्येक रोग में वैद्य को विधिपूर्वक तीन कार्य करने चाहियें—संशोधन, संशमन तथा निदान-परिवर्जन (पथ्य का सेवन तथा अपथ्य का त्याग)।

चिकित्सा के इन तीन प्राथमिक भेदों के विषय में वैद्य मात्र को पर्याप्त परिचय होता ही है। अतः उस विषय में विशेष न कहकर एक प्रासंगिक वस्तु का निर्देश करना उपयुक्त समझता हूँ।

अपने एक लेख में मैंने कहा था कि किसी राज्य में उद्योग-विशेष की उन्नति करना अभीष्ट होता है तो सरकार परदेश से होनेवाले उन द्रव्यों के आयात पर प्रतिबन्ध लगा देती है जिनका निर्माण उस उद्योग-विशेष से होता है। परिणाम यह होता है कि झख मारकर लोग देश के उस उद्योग से निर्मित पदार्थों को अपनाते हैं। निर्माता जन भी उत्साहित होकर उस पदार्थ के स्वरूप को सुधारने का प्रयत्न करते हैं। आयुर्वेद के उत्कर्ष पर यह दृष्टान्त उत्तमतया लागू होता है।

आयुर्वेद को उन्नतिपथगामी करना हो तो सिद्धान्त और क्रिया दोनों पक्षों में हमें ऐलोपेथी के आयात (इंपोर्ट)

पर कार्यक्षम प्रतिबन्ध लगाना होगा। अपने भाषणों, लेखों तथा ग्रन्थों में हमारी परिपाटी प्रायः यह रही है कि आयुर्वेद के एकाधवचन का उल्लेख कर उसका शाब्दिक अर्थ बता दिया जाता है और शेष स्थल तथा समय का उपयोग एलोपैथी के मत के प्रतिपादन के रूप में कर दिया जाता है। इससे हमारी आयुर्वेद के अवगाहन की वृत्ति पर ही ताला लग जाता है। इस स्थिति के विपरीत जो विद्वज्जन आयुर्वेद से ही आयुर्वेद को समझने का प्रयत्न करते हैं वे उसमें से अत्यन्त उज्ज्वल सिद्धान्त रत्नों को बाहर लाने में सफल होते हैं।

सिद्धान्त पक्ष की स्थापना के सदृश क्रिया पक्ष में भी एलोपैथी के आयात पर प्रतिबन्ध लगाए बिना हम प्रगति नहीं कर सकते। एलोपैथी के त्याग का अर्थ रोगी को मार देना ही लिया जाता है। आयुर्वेद की चिकित्सा से रोगी की मृत्यु ही एक परिणाम होता है सो तो बात है नहीं। साहस हो तो रोगी को हानि पहुँचाए बिना औषधोपचार का प्रयोग किया जा सकता है। एक बार इस मार्ग के अवलम्बन का विचार दृढ़ हो जाए तो प्रसंगोचित दिशा स्वयं सूझ जाती है। अतः इस विषय का अधिक विस्तार यहाँ न करूँगा। प्रस्तुत के सम्बन्ध में ही एक बात का निर्देश करता हूँ।

चिकित्सा के तीन प्राथमिक भेद हैं, इस बात का उल्लेख चिकित्सा के प्रारम्भिक अध्यायों में नहीं आया है। विमान स्थान में क्रिमिरोग के प्रकरण में यह बात कही गयी है। इस प्रकार एक विषय की बात दूर प्रसंगान्तर में कही जाने के शतशः उदाहरण संहिताओं में प्राप्त होते हैं। युगानुरूप नए सिरे से ग्रन्थादि की रचना करनी होगी तो एक-एक विषय से सम्बद्ध समग्र वचनों को प्रयत्न पूर्वक एक स्थान पर लाना होगा। अन्य शब्दों में कहना हो तो हमें आयुर्वेद और एलोपैथी के समन्वय पर प्रामुख्येन दृष्टि लगाने की अपेक्षया **आयुर्वेद का आयुर्वेद से समन्वय** करने पर अपना चित्त लगाना होगा। आयुर्वेद की पूर्ति के लिए यह कर्त्तव्य बड़ा श्रेयुक्त रहेगा। हम आज समझते हैं उस की अपेक्षया संहिताओं में यत्र-तत्र विकीर्ण विषयों के दोहन और संदोहन का यह कर्म कहीं अधिक श्रमसाध्य तथा कालसाध्य है। परन्तु विषय की पूर्ति और विशदता इसके बिना होगी नहीं[1]।

चिकित्सा के इन तीन प्राथमिक भेदों में जिनका वैद्य के कर्तव्य के साथ विशेष संबंध है वे दो हैं--(सं) शोधन और (सं) शमन। इन दो में भी मूलोच्छेदकरत्वात् अपुनर्भवकर होने से संशोधन का महत्त्व अधिक है। संशोधन की महत्ता के प्रतिपादक ये पद्य सद्वैद्यों के कण्ठाभरण हैं :—

दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जितालङ्घनपाचनैः।
जिताः संशोधनैर्ये तु न तेषां पुनरुद्भवः॥
च० सू० १६।२०

लङ्घन-पाचनादि शामक उपचारों से दोषों का उपाय किया गया हो तो प्रकोपक हेतु की उपलब्धि होने पर उनका कुपित होना संभव होता है। परन्तु जिनका उपाय संशोधन से किया गया हो उनके पुनरुत्पन्न होने की संभावना ही नहीं होती।

इसी बात को उपमा से विशद करते आचार्य आगे कहते हैं—

दोषाणां च द्रुमाणां च मूलेऽनुपहते सति।
रोगाणां प्रसवानां च गतानामागतिर्ध्रुवा॥

दोषों और वृक्ष-वनस्पतियों का मूल अक्षत हो तो दोषों के मूल के विद्यमान होने से रोग तथा वृक्ष-वनस्पतियों के मूल शेष रहने से पुष्प-फल एक बार नष्ट हो गए हों तो भी उनका पुनरावर्तन होता है।

महारोगाध्याय (सू० २०) में भी चरकाचार्य ने वस्ति, विरेचन और वमन के मूलोच्छेदकर होने के कारण उनकी ऐसी ही फल श्रुति और भी विशद पदों में बताई है। (देखिए: सूत्र १३, १६ तथा १९)। सुश्रुत ने भी संशोधन की इस मूलगामिता का निर्देश चिकित्सा स्थान में किया है। (देखिए—चि० ३३।१३, २८; चि० ३५।२७ ३१)।

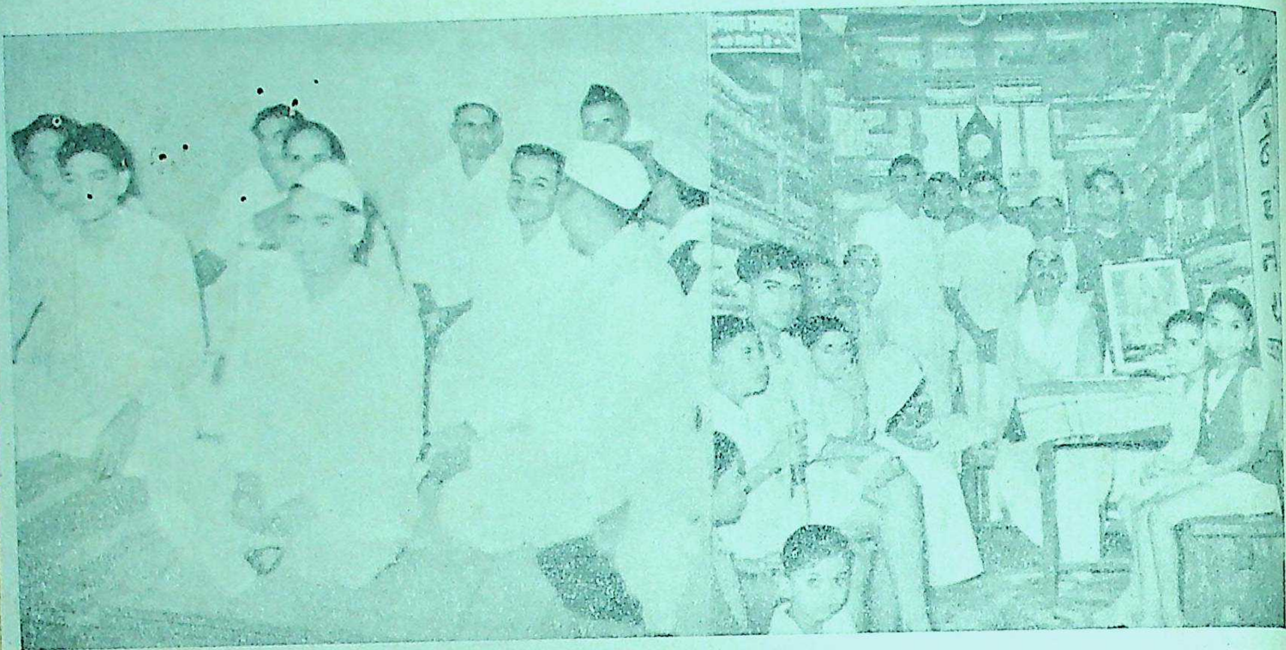
संशोधन अपुनर्भवकर होने से उसका चिकित्सा में विशेष महत्त्व है। वमनादि कर्मों को इतर कर्मों से पृथक् कर पञ्चकर्म नाम से पाँच के वर्ग में स्थापित करने का भी एक कारण यह है कि दोषों का संशोधन करने की सविशेष शक्ति उनमें होती है। च० सू० २।१५ की टीका में चक्रपाणि इस विषय की स्पष्टता करते कहते हैं—

१—एक अन्य छोटा-सा उदाहरण इस विषय में देता हूँ। सुश्रुत ने त्वचाओं में प्रथम अवभासिनी कही है, तथा उसे सिध्म का आश्रय बताया है। निदान के प्रकरण में यह विषय उद्धृत किया जा सकता है। साथ ही कहा जा सकता है कि कुष्ठ रस धातु या त्वचा में हो तो सुखसाध्य होते हैं। उस पर भी वे प्रथम त्वचा में हों तो और भी सुखसाध्य होते हैं। अतः सिध्म प्रायः सुखसाध्य होता है। इस उदाहरण को दृष्टि में रखें तो पाठक जान सकते हैं कि आयुर्वेद से आयुर्वेद के समन्वय की यह दिशा कितनी व्यापक और विषय की पूर्ति में सहायक होना संभव है।

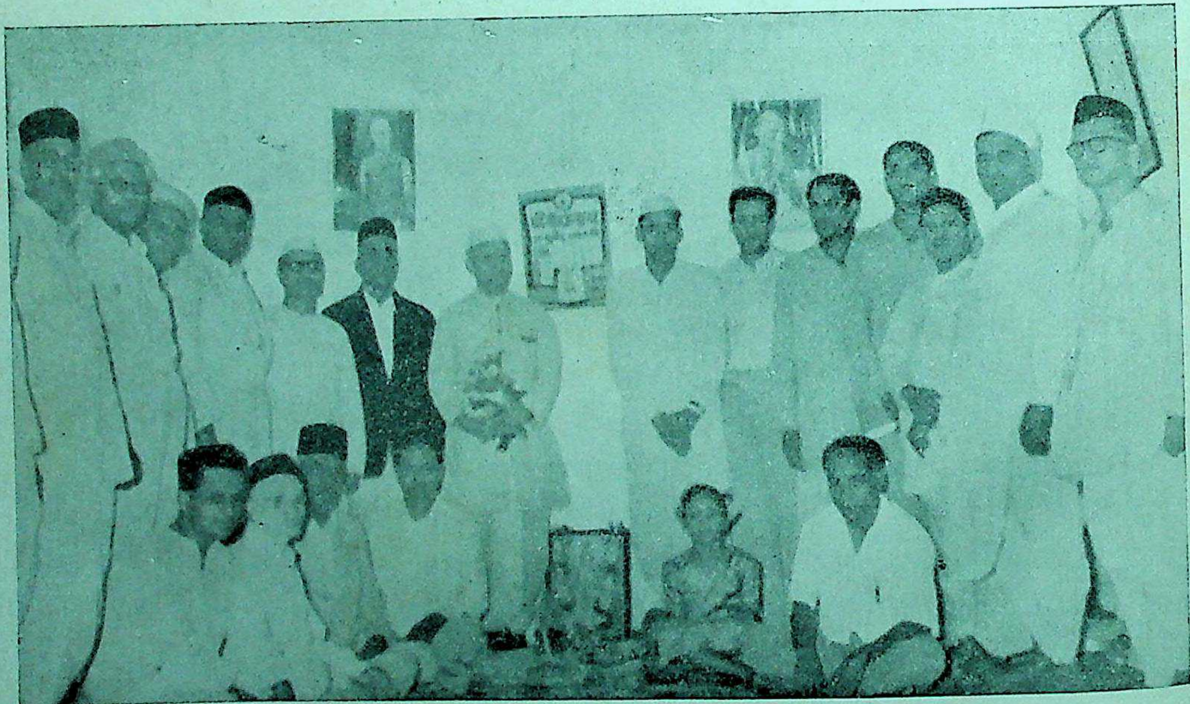
कटक में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा में समवेत वैद्यगण।



सम्बलपुर में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा का भव्य दृश्य



शिकोहाबाद में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा के दो भव्य दृश्य



जलगांव में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा का एक दृश्य

वमनादिषु कर्मलक्षणं बह्वितिकर्तव्यतायोगिदोषनिर्हरण-शक्तिज्यायस्त्वम् । वमनादि को ही पञ्चकर्म के प्रकरण में कर्म माना है उसका अर्थ यह है कि एक तो इनमें कार्य बहुत अधिक करना होता है। दूसरे, **इन कर्मों में अन्य कर्मों की अपेक्षया दोषों के निर्हरण की शक्ति बहुत अधिक होती है।**

स्नेहन-स्वेदन पञ्चकर्म के अङ्ग होते हुए भी उन्हें इसी कारण सप्तकर्म नाम देकर कर्मों में स्थान नहीं दिया गया है कि स्नेहन-स्वेदन से दोषों का संशमन एवं दोषों का शाखा (शरीरावयवों) से कोष्ठ में आनयन (उपस्थान) होता है। देखिए, चक्रपाणि जी आगे कहते हैं—तन्त्रान्तरे स्नेहस्वेदौ प्रक्षिप्य सप्त कर्माणीति यदुच्यते तन्न भवति। **न हि स्नेहस्वेदौ दोषबहिर्निःसरणं कुरुतः,** दोषसंशमनं तु तौ कुरुतः। पञ्चकर्माङ्गित्वेन व्याप्रियमाणौ तु स्नेह स्वदौ दोषोपस्थान एव परं व्याप्रियेते, **न दोषनिर्हरणे वमनादि-संपाद्ये।**

आगे अनुवासन के विषय में शङ्का उठाकर स्वयं ही उत्तर देते हैं कि, अनुवासन से यद्यपि वमनादि के सदृश बहु प्रमाण में दोष का निर्हरण नहीं होता तथापि पुरीष एवं पक्वाशयगत वात का उससे निर्हरण होता ही है, अतः कर्म का लक्षण उसपर भी घटित होता ही है।—अनुवासनं तु यद्यपि वमनादिवन्न बहुदोष निर्हरण कारणं भवति, तथापि **पुरीषस्य पक्वाशयगतवातस्य च बहिर्निर्हारकत्वात् कर्मलक्षणप्राप्तमेव।**

थूक अधिक लाने के लिए उपाय करना (निष्ठीवन), नेत्राञ्जन आदि में दोषों के निर्हरण की शक्ति है परन्तु वह इतनी अधिक नहीं। किं च, उनमें स्नेह-स्वेदादि के सदृश इतिकर्तव्यता भी बहुत नहीं होती। अतः उन्हें भी कर्म नाम नहीं दिया गया। निष्ठीवन नेत्राञ्जनादौ तु न स्नेहस्वेदादिवद् बह्वितिकर्तव्यतायोगो **न च बहुदोषनिर्हार-कत्वं** तेन न तत् कर्मशब्दवाच्यम्।

किं बहुना पञ्चकर्मों का प्राधान्य इसलिए है कि चिकित्सा का विशिष्ट अङ्ग संशोधन उनके द्वारा संपाद्य होता है। पञ्चकर्मों का यह प्रयोजन होने से कभी संशोधन और पञ्चकर्म शब्दों का व्यवहार पर्याप रूप से भी होता है। **वाग्भट ने अनुवासन को स्नेह का ही भेद मानकर उसे पञ्च-कर्मों में स्थान नहीं दिया है। उसने रक्तज रोगों की प्रधान चिकित्सा होने से रक्तमोक्षण की गणना पञ्चकर्मों में की है। वह समीचीन भी प्रतीत होता है।** विधि-शोणितीय अध्याय में चरक ने रक्तज रोगों की जो सूची दी है उससे विदित होगा कि ये रोग भी संख्या में कुछ कम नहीं हैं। रक्तमोक्षण इनका प्रमुख उपचार है। अतः वाग्भट ने संशोधन या पञ्चकर्म में इसे जो स्थान दिया है वह संगत ही है। कुपित वायु शारीरदोषों और मलों का निर्हरण सम्यक् करता नहीं, अतः उनके संचय, वृद्धि और प्रकोप तथा उसके द्वारा रोगोत्पत्ति में भी वायु ही कारण है और उसके शमनार्थ वस्ति सर्वोपरि चिकित्सा है। संप्राप्ति और चिकित्सा के इस क्रम को दृष्टि में रखते हुए चरक के निम्न वचन किंचित् परिवर्तन कर वाग्भट ने उद्धृत किए हैं—तस्माच्चिकित्सार्ध इति प्रतिष्टः, कृत्स्ना चिकित्सा-ऽपि च बस्तिरेकैः (अ. हृ. सू. १९।८७)।—कइयों के मत में संपूर्ण चिकित्सा का आधा और अन्य कइयों के मत में संपूर्ण ही चिकित्सा एक वस्ति में समा गयी है। इस पद्य के आगे सिरा द्वारा रक्तमोक्षण को भी अर्ध या संपूर्ण चिकित्साक्रम बताते वाग्भटाचार्य कहते हैं —

तथा निजागन्तु विकारकारिरक्तौषधत्वेन सिराव्यधोऽपि ॥

अ. हृ. सू. १९।८७।

दोनों टीकाकारों ने वचन को स्पष्ट करते कहा है— **न केवलं बस्तिः यावच्छिराव्यधोऽपि चिकित्सार्धः सर्वा वा चिकित्सेत्युपदिष्टः** (अरुणदत्त); **शिराव्यधोऽपि बस्ति-तुल्य इत्याह—तथेति** (हेमाद्रि)। रक्तज रोगों का कायचिकित्सकों द्वारा वातादि दोषजनित नानात्मज रोगों के सदृश पृथक् अध्याय में परिगणन एवं उसकी चिकित्साभूत रक्तमोक्षण की इस प्राणवान् फलश्रुति से एक बात फलित होती है कि, सुश्रुत ने दूष्य होते हुए भी रक्त को (**शोणित चतुर्थैः**) इन पदों द्वारा दोषों के समान कक्षा में ला दिया है। (स्मरण रहे रक्त स्वयं चतुर्थ दोष है ऐसा तो उसने नहीं कहा है), तो कायचिकित्सकों ने भी तज्जन्य रोगों तथा उनके उपचारों का पृथक् निर्देश करके रक्त को दोषों के सदृश ही महत्व दिया है। अन्य शब्दों में **रक्त की इतर-दूष्यापेक्षया विशिष्टता शल्यचिकिसत्कों के समान काय-चिकित्सकों को भी अभिमत है, यह आयुर्वेदीय मार्ग है।**

पञ्चकर्म, संशोधन तथा रक्तमोक्षण की इतनी महत्ता है। नस्य आदि अल्प प्रसिद्ध कर्मों की फलश्रुति भी ऐसी है कि चिकित्साशास्त्र में उन्हें पुनः समग्रतया स्थान दिया जाए

यही लालसा होती है। जो कहना है वह यह कि संहिताओं में इन कर्मों का इतना महत्त्व प्रतिपादित होते हुए भी आज इन का स्थान हमारे व्यवसाय में रहा नहीं है। ये कर्म श्रेयस्कर तथा आत्मसात् करने योग्य हैं इस में संशय नहीं। परन्तु उन्हें 'श्रुतौ तस्करता स्थिता' की अवस्था से मुक्त कर प्रत्यक्ष में लाने का मार्ग ढूँढना तथा आचरण में लाना चाहिए। ये तथा अन्य कर्म, औषध इत्यादि संहिताओं के सम्यक् अनुशीलन द्वारा किसी भी सुचिकित्सक द्वारा स्वयं अंशतः भी व्यवहार में लाए जा सकते हैं। आयुर्वेद के पुनरुज्जीवन की झाँकी करानेवाले इस युग में इसी पद्धति का अवलम्बन कर कई सुचिकित्सक शास्त्रस्थ कर्म, औषध आदि को प्रत्यक्ष कर-करा भी रहे हैं। विशेषतया परम्परागत चिकित्सकों में ये कर्म, औषधादि किसी रूप में प्रचलित भी होने संभव हैं। उनका सांनिध्य प्राप्त कर इस दिशा में प्रगति की जा सकती है। जो स्वयं वैद्य नहीं हैं, ऐसे वयोवृद्धों से भी इस दिशा में पर्याप्त जानकारी मिल सकती है। पञ्चकर्मों की ही बात करनी हो तो केरल, मद्रास तथा दक्षिणापथ के अन्य प्रान्तों में ये कर्म अक्षरशः आज भी चल रहे हैं। उत्तरापथ के वैद्यों को इन कर्मों का प्रत्यक्ष करने के लिए केरल आदि स्थानों में जाना और जाकर कुछ काल रहना चाहिए। आयुर्वेद महाविद्यालय, आयुर्वेदिक फेकल्टी, आयुर्वेदिक हॉस्पिटल आदि संस्थाओं तथा आयुर्वेद हितचिन्तक धनपतियों को छात्रवृत्तियाँ देकर इन कर्मों के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए विद्यार्थियों को भेजना चाहिए। **मैंने 'सचित्र आयुर्वेद' के संचालक तथा श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के मैनेजिंग डायरेक्टर माननीय वैद्य रामनारायण जी शर्मा** से इस प्रकार शिष्यवृत्तियाँ देने की प्रार्थना कुछ ही दिन पूर्व की थी। वे इस दिशा में उत्साही भी दीखते हैं।

इस प्रसंग में दक्षिणापथ की एक अन्य संस्था का भी उल्लेख आवश्यक ही नहीं, कर्तव्य है। **श्री पार्थनारायण जी पंडित** की प्रधान चिकित्सकता में एक विशुद्ध आयुर्वेदिक हॉस्पिटल बंगलोर में वर्षों से चल रहा है। इसमें दो सौ शय्याएँ हैं। प्रतिदिन एक सहस्र रोगी बाह्य विभाग में आते हैं। उपचार में प्रायः एक-एक द्रव्य, वह भी बहुधा वनौषधि, अन्य द्रव्यों से मिलाकर दिया जाता है। नगरके तथा बाहर के जानकार वैद्य, डॉक्टर जिस रोगी को अच्छा नहीं कर पाते उसे श्रद्धा और कौतूहल से प्रेरित होकर यहाँ भेजते हैं। परिणाम प्रायः अच्छा ही आता है। पण्डित जी ऐसे ही रुग्णों को प्रविष्ट करने में विशेष उत्साह दिखाते हैं तथा सहायक वैद्यों के प्रेरणामूर्ति सिद्ध होते हैं। इस संस्था के भी सांनिध्य में दक्षिणापथ तथा उत्तरापथ के वैद्यों को आकर आयुर्वेद के पुनरुज्जीवन के महायज्ञ में अपनी आहुति देनी चाहिए। महाविद्यालय आदि संस्थाएँ तथा धनपति इस संस्था में भी आयुर्वेदाभिमुख विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देकर भेजें यह नम्र विनति है। **वैद्य रामनारायण जी से** यह कार्य करने की भी प्रार्थना मैंने की थी। **आयुर्वेद की प्रगति के लिए होने वाले किसी भी कार्य के लिए संनद्ध रहने की अपनी स्वाभाविक वृत्ति के अनुसार इस कार्य के लिए भी छात्रवृत्ति देकर विद्यार्थियों को भेजने की अभिलाषा आदरणीय वैद्य रामनारायण जी ने दर्शायी है।** उत्सुक विद्यार्थी उनके संपर्क में आकर अधिक ज्ञान सकते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि, जैसा कि लेख के आरम्भ में कहा था, आयुर्वेद की प्रत्यक्ष क्रियाओं की परंपरा का बड़ा भाग तत्तत्कारणवश हम तक पहुँचा नहीं है। शास्त्र के अनुशीलन, मनन, स्वयं आचरण, उपलब्ध प्रत्यक्ष क्रिया का स्वयं प्रत्यक्षीकरण इत्यादि साधनों से आयुर्वेद की लुप्त परंपरा आदि को पुनः प्रकाश में लाया जा सकता है।

इस विषय में दूसरा उदाहरण प्रकृत रोगपरीक्षा-पद्धति का दिया जा सकता है। रोगपरीक्षा की जैसी व्यवस्थित पद्धति एँलोपैथी में हम पाते हैं वैसी आयुर्वेदीय संहिताओं में उपलब्ध नहीं होती। परीक्षणीय विषयों का विशद निर्देश संहिताओं में किया गया है, यह सत्य है, परन्तु परीक्षा का विशिष्ट क्रम दिया नहीं गया है। परिणामतया, उन्नत महाविद्यालयों में भी, विद्वान और विश्रुत अध्यापकों के होते हुए भी प्रायशः नव्य-मत का अनुसरण करते हुए ही रोगपरीक्षा की जाती है। इसके कारण आयुर्वेदीय रोग-परीक्षा में जिस जानकारी का प्राप्त करना आवश्यक माना गया है वह पुस्तकों या व्याख्यानों में ही धरी रह जाती है। नव्य-पद्धति का अनुसरण करने का एक अनभीष्ट परिणाम यह भी होता है कि हमारे ओष्ठ पर तो रोग के नाम आदि आयुर्वेदीय रहते हैं, परन्तु कोष्ठ में साद्यन्त एलोपैथी रहती है। योजना में द्रव्य प्रायः आयुर्वेदोक्त रहते हैं परन्तु उनके पीछे दृष्टि एलोपैथी की रहती है। यथा, मुक्ता या गोदन्ती केल्शीयम होने से दिए जाते हैं; गुडूची, किराततिक्ता आदि बिटर टॉनिक होने के कारण दिए जाते हैं और अब तो नवाविष्कृत औषधों को

भी आयुर्वेदिक जामा पहनाने की बात चल रही है, भले ही स्वयं डॉक्टर भी इन द्रव्यों के उपयोग के विषय में सशङ्क तथा उनके भविष्य के विषय में चिन्तित हों। आयुर्वेद को उज्ज्वल रूप देना हो तो यह स्थिति एक क्षण भी रहने न देनी चाहिए।

किं बहुना, प्रत्यक्ष परम्परा का लोप हो जाने के कारण जो आयुर्वेदीय विषय प्रथमतः पुनरुद्धरणीय हैं, उनमें आयुर्वेदीय रोग-परीक्षा-पद्धति भी एक है। संहिताओं का अनुशीलन कर एक निश्चित क्रम का निर्धारण करना चाहिए। इसकी उपयोगिता विशेषतया विद्यार्थियों को आयुर्वेद की दृष्टि से रोग-परीक्षा का प्रकार समझाने में है।

रोग-परीक्षा में नाड़ी, जिह्वा, मल, मूत्र आदि देखने का उपदेश तथा प्रचार है। ये परीक्षाएँ क्यों करनी चाहिए इस विषय का विचार प्रस्तुत लेख में यथामति किया जाएगा। इसके आधार पर रोग-परीक्षा का प्रथम व्याख्यान और अध्याय बनाने में अध्यापकों और लेखकों का मार्ग बनाना सुगम होगा, ऐसी आशा है। इस लेख में संक्षिप्ताक्षर में कहे विषय का विचार सुधीजन अनायास कर सकते हैं।

रोगों की उत्पत्ति दोषों के कोप या क्षय से होती है, यह आयुर्वेद का सिद्धान्त है। दोष विषम होकर धातुओं, उपधातुओं, उनसे बने अङ्ग-प्रत्यङ्गों, स्रोतों[1] तथा मलों में तत्तत् विकृति उत्पन्न करते हैं, यह भी आयुर्वेद का सुविदित सिद्धान्त है। कुपित या क्षीण दोषों का कोप और क्षय होने में जो वैषम्यकारक आहार-विहार निदानभूत होता है, उसके अनुरूप ही कुपित या क्षीण दोष के तत्तत् गुण का कोप या क्षय होता है; एवं निदान का सेवन जितने प्रमाण में होता है उतने ही प्रमाण में कुपित या क्षीण गुण-विशेष का कोप या क्षय होता है। इन बातों का सम्यक् विचार करके ही आहारौषध-योजना वैद्य को करनी चाहिए। इत्यादि सिद्धान्त आयुर्वेदीय निदानाधिकार में उपदिष्ट होने पर भी वस्तुस्थिति यह होती है कि, अन्तर्गूढ़ दोष, रस-रक्तादि धातु, उनके वाहक अन्तर्मुख (योगवह, अदृश्य) स्रोत तथा तद्घटित आभ्यन्तर अङ्ग-प्रत्यङ्ग परोक्ष होने से उनकी परीक्षा करना संभव नहीं होता। रोगजनक दोष का वैषम्य किस प्रकार का है—उसका क्षय हुआ है या कोप इत्यादि का ज्ञान केवल अनुमान का विषय होता है। केवल मल, जिनमें स्वयं दोष भी अन्तर्भूत हैं एवं उनको बहिः प्रवृत्त करनेवाले मलायतन (मलद्वार) प्रत्यक्ष होते हैं। उनमें हुई विकृति को—उनमें देखे जाने वाले परिवर्तनों को लक्ष्य में रखकर ही शरीर में दोषों के वैषम्य और उसके विकल्प (अंशांश) को जाना जा सकता है। और ये मल तथा त्वचा, जिह्वा आदि जिन द्वारों से इनकी प्रवृत्ति होती है वे प्रत्यक्ष स्थान ही आयुर्वेदीय रोग-परीक्षा के प्रसिद्ध विषय हैं।

त्वचा, जिह्वा, नख आदि की परीक्षा रोग-परीक्षा में प्रमुख होने का एक कारण यह भी है कि, दोषों द्वारा रोगोत्पत्ति में क्रम यह होता है कि, मुख्यतया अहिताहार-विहार से दोषों का वैषम्य होता है, विषम हुए दोष धातु-उपधातु को दुष्ट करते हैं तथा वे दोनों मिलकर मलों में दुष्टि उत्पन्न करते हैं। मलों की दुष्टि का प्रभाव मलायतनों पर पड़ता है। परिणामतया, मलों और मलद्वारों (बहिर्मुख स्रोतों) की परीक्षा कर जाना जा सकता है कि शरीर में दोषों के तरतमभाव का स्वरूप क्या है। अधोलिखित पद्यों में आचार्यों ने इस विषय का विवेचन किया है—

> दोषा दुष्टा रसैर्धातून् दूषयन्त्युभये मलान्।
> अधो द्वे, सप्त शिरसि खानि स्वेदवहानि तु॥
> मला मलायनानि, स्युर्यथास्वं तेष्वतो गदाः॥
>
> अ० हृ० सू० ११।३५-३६[1]

१—मूल विषय को विशद करने के प्रसंग में धातुओं के साथ उपधातुओं को भी याद रखना चाहिए। साथ ही इन शब्दों से धातु-उपधातु से बने शरीरावयवों का ग्रहण होता है, यह भी समझाते जाना चाहिए। कारण, जैसा कि हम रचना-शारीर का शिक्षण देते हुए कहते हैं, शरीरावयव तथा स्रोत तत्तत् धातु-उपधातु से ही बने हुए होते हैं। पूर्वाचार्यों ने आज के विद्वानों के समान दोषों द्वारा होनेवाली विकृतियों का उपदेश करते हुए अवयवों में भी विकृति उत्पन्न होने की बात कही है और धातुओं -उपधातुओं में भी दोषजनित दुष्टि का उल्लेख किया है। दोनों का फलितार्थ एक ही है। उसमें भी मूलभूत धातुओं, उपधातुओं और मलों की विकृति पर आचार्यों ने विशेष भार दिया है। कारण, एक धातु दुष्ट हो तो तद्घटित अवयव मात्र में विकृति पाई जायगी। अतः मूलभूत दूष्यों की विकृति का ही उल्लेख प्राचीनों ने किया है। जिस टेबल-कुर्सी का यह लेख लिखने में किंवा जिस गिलास का पानी पीने में मैं उपयोग कर रहा हूँ, उन्हें अपने नाम से पुकारना ठीक है तो प्रकरण-भेद से उन्हें लकड़ी, कांच या पीतल कहना भी उतना ही अन्वर्थक होता है।

१—विषय की स्पष्टता के लिए टीकाओं के उपयुक्तांश दिए जाते हैं—×× रसैः मधुरादिभिर्मिथ्यायोगातियोग सेवितैः। ×× **उभये दोषा धातवश्च मलान्, दूष-**

द्वे अधः सप्त शिरसि खानि स्वेदमुखानि च।
मलायनानि बाध्यन्ते दुष्टैर्मात्राधिकैर्मलैः॥
मलवृद्धिं गुरुतया लाघवान्मलसंक्षयम्।
मलायनानां बुध्येत सङ्गोत्सर्गादतीव च॥[२]

च० सू० ७।४२-४३

रोगों की उत्पत्ति में संप्राप्ति (क्रम) यह होता है कि प्रथम मधुरादि **रसों के** अयोग, मिथ्यायोग या अतियोग से वृद्धि या क्षय के रूप में दोषों की दुष्टि (विषमता) होती है।

इस वचन में रस शब्द आहार द्रव्यान्तर्गत गुण, वीर्य, विपाक का भी उपलक्षण (ग्राहक) है। दोषों की दुष्टि में आहार के अतिरिक्त विहार (विविध चेष्टा), काल, देश और औषध ये कारण भी होते हैं। परन्तु आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि दोषों के कोप और रोगों की उत्पत्ति का प्रमुख कारण आहार-विषयक वैषम्य ही है। इसके विपरीत प्रकृति, देश, काल, गुरु-लघु आदि गुण इत्यादि का विचार कर किया गया आहार (हिताहार) ही आरोग्य की उत्पत्ति और स्थिरता का कारण होता है। देखिए **हिताहारोपयोग एक एव पुरुषवृद्धिकरो भवति, अहिताहारोपयोगः पुनर्व्याधि निमित्त इति** (च० सू० २५।३१)[३]। इस वचन में 'एकः' और 'एव' शब्दों का संनिवेश कर दोषों के प्रकोप और रोगोत्पत्ति की कारणता में आहार ही प्रधान है यह सूचित किया है। (अहिताहार को व्याधि का निमित्त कहा है सो हिताहार आरोग्य का निमित्त है; उधर हिताहार को पुरुष की वृद्धि करने वाला कहा है अतः अहिताहार पुरुष के धातु आदि को क्षीण कर शरीर को क्षीण और दुर्बल करने वाला है यह बात अर्थापत्ति से निष्पन्न होती है)।

आहार द्रव्यों के रस प्रधान होने से स्वस्थवृत्त के प्रकरणों में भी तत्तत् ऋतु में तत्तत् रस के सेवन आदि के रूप में रसों का ही प्राधान्य दर्शाया है।

औषध-द्रव्यों के गुण-कर्म का निर्देश भी तत्तत् रसों के निर्देश के रूप में ही किया जाता है। उसमें कारण यह होता है कि, रसों के जो सामान्य गुण-कर्म बताए जाते हैं, तदनुरूप ही उन-उन रसों वाले द्रव्यों के गुण-वीर्य-विपाक तथा कर्म होते हैं। अतः द्रव्य-विशेष के गुण-कर्म बताते हुए केवल उसका रस बताने से तत्तुल्य होने से रस, वीर्य, विपाक और प्रभाव (कर्म) का भी उपदेश और ग्रहण हो ही जाता है। अतः पुनरुक्तिवत् होने से गुण आदि का उपदेश शास्त्रों में नहीं किया जाता। केवल उन द्रव्यों के गुणादि का उपदेश किया जाता है जिनके गुण-कर्मादि रस के विपरीत होते हैं। देखिए—

तेषां रसोपदेशेन निर्देश्यो गुण-संग्रहः।
वीर्यतोऽविपरीतानां पाकतश्चोपदेक्ष्यते॥

च० सू० २६-४६

इस पद्य के आगे जिन द्रव्यों के रस-गुण समान हैं उनका उदाहरण देकर आचार्य ने उन द्रव्यों का उल्लेख किया है जिनके गुण, वीर्यादि रस से विपरीत होते हैं। अन्त में प्रकरण का उपसंहार करते आचार्य ने कहा है—

तस्माद् रसोपदेशेन न सर्वं द्रव्यमादिशेत्।
दृष्टं तुल्यरसेऽप्येवं द्रव्ये द्रव्ये गुणान्तरम्॥

च० सू० २६-५२

इस प्रकार रोग मात्र की संप्राप्ति का प्रथम सूत्र यह है कि प्रधानतया आहार के वैषम्य से दोषों का वैषम्य होता है। दुष्ट हुए ये दोष धातुओं को क्षीण या वृद्ध करते हैं। जैसा कि ऊपर कहा है धातुओं की क्षीणता या वृद्धि या रूपान्तर का अर्थ है—धातुओं और उपधातुओं से बने शरीरावयवों एवं स्रोतों की रचना और क्रिया में परिवर्तन होना। यथा, गुदवली में हुए अर्शों को अधिमांस-विकार कहा है। उसका तात्पर्य यह होता है कि इस रोग में मांस धातु की दुष्टि (क्षय तथा तज्जनित दौर्बल्य) होता है। सुश्रुत-शारीर में कहा है कि सिराओं में रक्तधरा-कला होती है। एवं, यह रक्तधरा-कला 'मांसस्याभ्यन्तरतः' (मांस के अन्तर्गत, मांस से वेष्टित) होती है। नव्य प्रत्यक्ष भी यह है कि सिरा नाम रस और रक्त का वहन करने वाले स्रोतों में अन्दर रक्तधरा-कला होती है तथा चारों ओर मांसमय मंडल

यन्ति। मला मलायनानि दूषयन्तीति सम्बन्धः। तथा च मुनिः—**मलायनानि बाध्यन्ते दुष्टैर्मात्राधिकैर्मलैः** (च० सू० ७।४२)। कानि मलायतनानि इत्याह-अधो द्वे इत्यादि। ×× तेषु मलायतनेषु दुष्टेषु ××। (अरुणदत्त)। ×× रस ग्रहणं वीर्यादीनामुपलक्षणम्। ××× मलायतनानि स्रोतांसि। ×× (हेमाद्रि)।

२—××× **दुष्टैरिति** गोवलीवर्दन्यायेन **क्षीणैः।** मात्राधिकैरिति **वृद्धैः,** येनोत्तरत्र क्षयवृद्धयोरपि लक्षणं वदति। मलवृद्धिं गुरुतया मलायनानां गुरुतयेत्यर्थः। लाघवान्मलायनानां संक्षयं मलस्य स्वमानादपि क्षयमित्यर्थः ××। (चक्रपाणि)।

३—हिताहारोपयोग एक एवेत्यवधारणेनास्य **प्राधान्यं** दर्शयति, नान्यप्रतिषेधम्। आचारस्य स्वप्नादेस्तथा शब्दादीनामपि कारणत्वेनोक्तत्वात् ××× (चक्रपाणि)।

होता है। मांस धातु की सार्वदैहिक क्षीणता हो तो सिराओं को वेष्टित कर रहनेवाले इस मांसमय मण्डल में भी क्षीणता और दुर्बलता आती है। परिणामतया, स्वल्पमात्र पीड़न से वह पराजित हो जाता है और महास्रोत का दुर्बल भाग जैसे गुल्म के रूप में फूल जाता है वैसे सिरा भी फूल जाती है। मूलभूत मांस धातु के इस दौर्बल्य को लक्ष्य में रख कर ही गुदाङ्कुरों को पूर्वाचार्यों ने मांसाङ्कुर कहा है। उपचार में भी अतएव मांस धातु की वृद्धि करने की योजना की गयी है। इस प्रकार रोग मात्र में धातु-उपधातु की दृष्टि का अर्थ समझने का प्रयत्न करना चाहिए। इस दृष्टि से शरीर में आए उस प्रकरण को पुनः-पुनः देखना चाहिए जिसमें शरीरावयवों के घटक धातुओं का निर्देश किया गया है।

अब आगे संप्राप्ति का क्रम देखिए। विषम हुए दोष तथा उनके द्वारा वैषम्य को प्राप्त हुए धातु ये दोनों मिलकर मलों को दूषित करते हैं—उन्हें क्षीण या वृद्ध करते हैं; किंवा उनके स्वरूप में परिवर्तन करते हैं[1]। विषम हुए ये मल मलद्वारों को दूषित करते हैं। मलों और मल-द्वारों की दुष्टि का सामान्य लक्षण यह है।—जिस मल की वृद्धि हुई हो उसके द्वार में गौरव की प्रतीति होती है, तथा जिसका क्षय हुआ हो उसके द्वार में लघुता का भास होता है। मल-विशेष की प्रवृत्ति अत्यधिक हो तो उसकी वृद्धि हुई माननी चाहिए तथा उसका संग (अप्रवृत्ति) देखी जाए तो उसका क्षय हुआ समझना चाहिए। (और मल-विशेष के प्राकृत स्वरूप में कुछ भेद—वर्ण, गन्ध आदि में वैपरीत्य—देखा जाए तो रूपान्तर हुआ समझना चाहिए)।

इस प्रकार, जिनकी परीक्षा से शरीर को अपनी विकृति से पीड़ित करने वाले दोषों के वैषम्य और उसके तारतम्य का ज्ञान होता है वे मलद्वार अधोलिखित हैं—नीचे दो-गुद और लिङ्ग (स्त्रियों में अपत्यपथ तथा मूत्रपथ); शिर में सात-दो श्रोत्र, दो नासापुट, दो अक्षि तथा एक मुख; एवं सर्वशरीरगत असंख्य रोमकूप किंवा स्वयं त्वचा। रोग-परीक्षा में इन द्वारों की परीक्षा करनी चाहिए।

दोष स्वयं मलरूप हैं। उनकी पुष्टि अधिक हो जाए तो अपने-अपने द्वार से उसकी प्रवृत्ति होती रहती है। यथा, गुदमार्ग से वायु तथा पित्त की एवं मुख और नासिका से कफ की। इन द्वारों से उनकी प्रवृत्ति का प्रमाण तथा प्रवृत्त हुए दोषों का स्वरूप देखकर दोषों की अवस्था का कुछ प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। अतः इन द्वारों तथा उनसे प्रवृत्त हुए दोषों की परीक्षा की जाती है। इससे शरीर में दोषों का प्रमाण कैसा है इसका अनुमान हो जाता है।

मुख में अन्य अवयव—दन्त, दन्तवेष्टादि—हैं। तथापि विशाल और प्रत्यक्षीकरण में सुलभ होने से जिह्वा की परीक्षा अधिक की जाती है। जिह्वा मल से व्याप्त हो तो कफ तथा आम का प्रकोप समझा जाता है, वह शुद्ध और रक्तवर्ण हो तो कफ के क्षय या पित्त के प्रकोप की कल्पना की जाती है। इस स्थिति में कभी पाक भी पाया जा सकता है। शरीर में वात का प्रकोप हो तो जिह्वा रूक्ष, खर तथा उसमें चीर पड़े होते हैं। इत्येवमादि लक्षण दोषों की तत्तत् अवस्था में जिह्वा में परिलक्षित होते हैं जिन्हें देखकर दोषों के तरतमभाव का बोध चिकित्सक को हो सकता है। जिह्वा के समान ही प्रत्यक्ष में सुलभ तथा हाथ लगाने की जिसमें आवश्यकता विशेष नहीं ऐसा अवयव चक्षु है। अतः रोग-परीक्षा में परीक्ष्य पदार्थों में उसकी गणना सविशेष की गयी है।

परीक्ष्य विषयों में एक नाड़ी है। संक्षेप में इसकी उपयोगिता का विचार किया जाता है। सुश्रुत-संहिता में सिराओं का जो स्वरूप तथा कर्म बताया गया है उससे विदित होता है कि सिरा शब्द से आधुनिकों के धमनी, धमनिका, केशिका, सिरिका, सिरा तथा रसायनियाँ सब वाहिनियाँ गृहीत हैं। अर्थात् **सिरा शब्द सामान्य वाचक भी है। यह सिरा शब्द विशेषार्थ में भी व्यवहृत हुआ है।** इस अर्थ में इससे आधुनिकों की 'वेन' गृहीत है। व्यध जिन सिराओं का कहा गया है वे यही होती हैं। सिराओं के सामान्य वर्णन में उन्हें हृदय से निकलनेवाली कहा है (देखिए—भेल)। हृदय से जो निकलें उन धमनी इस अपर पर्यायवाली सिराओं का व्यध हो ही नहीं सकता। हृदय को चक्र की उपमा दी गयी है। चक्र में जैसे नाभि और अरे होते हैं वैसे हृदय में भी नाभि और अरे होते हैं। नाभि जिसे 'हार्ट' कहते हैं वह है, तथा अरे उससे निकलने वाली तथा उसमें प्रविष्ट होने वाली प्रणालियाँ हैं। **आयु-**

१—दोषों की दुष्टता का प्रकार बताते अ० हृ० नि० १।८ की टीका में हेमाद्रि ने विषम दोषों के तीन प्रकार बताए हैं—**रूपहानिर्वा, रूपवृद्धिर्वा, रूपान्तरं वेति दुष्टत्व प्रकारः॥**

वेंद का हृदय इस प्रकार 'हार्ट विद वेसल्स' है। इसके किसी भी भाग में हुए रोग हृद्रोग पदवाच्य हैं। यह संगति स्वीकृत हो तो सिरावर्णविभक्तिशारीर (सु० शा० ७) में जिस नाभि को सिराओं का मूल कहा है वह हृदय ही है। इस प्रकार इस प्रकरण की भी सुसंगत व्याख्या हो जाती है।

अस्तु। सिरावर्णविभक्ति अध्याय में सिराओं को प्राकृत तथा विकृत उभय अवस्थाओं में दोषों की वाहक होने से सर्ववहा कहा है। देखिए:—

नहि वातं सिराः काश्चिन्न पित्तं केवलं तथा।
श्लेष्माणं वा वहन्त्येता अतः सर्ववहाः स्मृताः ।।
प्रदुष्टानां हि दोषाणां मूर्च्छितानां प्रधावताम्।
ध्रुवमुन्मार्गगमनमतः सर्ववहाः स्मृताः ।।
सु० शा० ७।१६-१७

(यहाँ मूर्च्छित का अर्थ है परस्पर मिश्रित)। इस प्रकरण के उद्धृत करने का तात्पर्य यह है कि दोष कुपित या क्षीण होकर सिराओं में पहुँचते हैं। अतः सिराओं की पूर्णता, शिथिलता आदि अवस्थाएँ देखकर उनके अन्तर्गत दोषों की क्या स्थिति है यह जाना जा सकता है और उनके द्वारा सर्व शरीर में दोषों का तरतमभाव जाना जा सकता है। सिराएँ भेल के वचनानुसार हृदय से जाती हैं और पुनः हृदय में आती हैं। हृदय से निकलने वाली सिराओं के अमुक वैशिष्ट्य को लक्ष्य में रखकर इन्हें धमनी यह विशेष नाम दिया गया है। इस विषय का अधिक विस्तार न करते हुए इस प्रसंग में यही कहना है कि जैसे किसी **वॉटर-वर्क्स के वेग का स्वरूप** उसके आरम्भिक नलों में अधिकतम होता है, और वह शनैः-शनैः न्यून होता जाता है वैसे दोषों के वेग का स्वरूप उनसे प्रभावित सिराओं द्वारा जानना हो तो उनकी यात्रा के आरम्भिक स्थान हृदय से निकलने वाली सिराओं (धमनियों) से ही स्पष्टतम जाना जा सकता है। इस दृष्टि से जैसा कि सुविदित है प्रधानतया अंगुष्ठ-मूलगत धमनी हृदय के निकटतम एवं सुलभ होने से उसकी परीक्षा द्वारा ही दोषों का वृद्धिक्षय जाना जाता है। इस विषय में यह भी सुविदित है कि **संप्रदाय-भेद से नाड़ी-परीक्षा के दो प्रकार हैं।** एक संप्रदाय के मत से तीनों अंगुलियों के नीचे एक ही प्रधान दोष का निरीक्षण किया जाता है। हंस, मण्डूक आदि की गति के दृष्टान्त से नाड़ी का जो स्वरूप बताया गया है वह प्रथम संप्रदाय के अनुसार है। द्वितीय संप्रदाय के अनुसार प्रत्येक अंगुली के नीचे एक-एक दोष का प्रमाण पृथक्-पृथक् विदित होता है। दोनों संप्रदाय सत्य हैं और वैद्य जनों द्वारा अनुसृत हैं।

संक्षेप में, इस लेख में कही संप्राप्ति को लक्ष्य में रखकर निम्न सुप्रसिद्ध वचन में परीक्ष्य पदार्थों की गणना की गयी है :—

रोगाक्रान्त शरीरस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत्।
नाड़ीं मूत्रं मलं जिह्वां शब्द स्पर्श दृगाकृतीः ।।

आकृति से रोगी की प्रकृति तथा सार का सामान्यतया बोध होता है। इस दृष्टि से परीक्षा-पद्धति का अधिक विस्तार किया जा सकता है। योग्य लगे तो इस पद्धति से विचार करने की नम्र प्रार्थना विद्वज्जनों की सेवा में करता हुआ यह लेख समाप्त करता हूँ।

ओज—एक आयुर्वेदीय विवेचन

वैद्य नागरदास मोहनलाल पाठक, आयुर्वेदाचार्य

प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना समीचीन होगा कि ओज विषयक शास्त्रीय विवेचन को आयुर्वेद के सुविज्ञ पाठकों के समक्ष इस लेख के द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास मैंने इस दृष्टि से किया है कि शास्त्रीय विवेचन और अनुशीलन में आस्था रखनेवाले आयुर्वेदज्ञों का ध्यान इस दिशा में अधिक-से-अधिक आकृष्ट हो सके। इस सम्बन्ध में विशिष्ट विद्वानों द्वारा प्रामाणिक आलोचना-पर्यालोचना संभव हुई तो इससे बढ़कर प्रसन्नता का विषय एक आयुर्वेदज्ञ के लिये और क्या होगा। किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि आलोचना-पर्यालोचना समुपस्थित करते समय भाषा, भाव और विचार-शैली की दृष्टि से हम पूर्णतया मर्यादित हों और मात्र सत्यान्वेषण ही हमारा उद्देश्य हो।

ओज सम्बन्धी वाद-विवाद में मेरा स्थान पूर्वपक्ष में है। अतएव जो **पूर्वपक्ष** की पुष्टि करते हुए अपना मत प्रदर्शित करेंगे वे मेरे सहायक होंगे और जो विद्वान **सिद्धान्त पक्ष** का समर्थन करेंगे वे सिद्धान्त पक्ष के सहायक बनेंगे। मुझे विश्वास है कि इससे शास्त्र विषयोपकारक एक सत्य की प्राप्ति होगी।

सिद्धान्त पक्ष

ओज दो प्रकार का होता है—**पर** और **अपर**। अपर-ओज अर्द्धाञ्जलि परिमित और श्लेष्मात्मक है, जबकि पर-ओज का प्रमाण आठ बिन्दुमात्र है। वह हृदय में कायम रहता है, इधर-उधर नहीं जाता। देह-स्थिति-निबंधन है, अर्थात् जहाँतक यह पर-ओज ठीक प्रमाण में टिकता है, वहाँतक देह भी टिकती है और उसके नाश से देह का भी नाश हो जाता है। जहाँतक अपर-ओज का प्रश्न है, वह शरीर को उपचय और बल प्रदान करता है।

पूर्वपक्ष

आयुर्वेद में **पर** और **अपर-ओज** की जो कल्पना मिलती है, वह कदापि ऋषि-प्रणीत नहीं कही जा सकती। टीकाकारों ने विशेष कर श्री चक्रपाणि ने यह कल्पना प्रचलित की है, जो अवास्तविक और शिथिल है—इसलिए इस कल्पना को हटा देना चाहिए। एक ही प्रकार का ओज मनाने से ऋषि वचनों के अर्थ में सामञ्जस्य बना रहता है—कोई आपत्ति दिखायी नहीं देती। ओज का प्रकार मानने से जो कठिनाइयाँ दृष्टिगोचर होती हैं, वह एक ही ओज के मानने से नहीं रहतीं। प्रत्युत् सरलतया समझ में आता है कि ओज क्या वस्तु है और उसका कार्य क्या है। ओज विषयक जो वचन आर्ष ग्रन्थों में मिलते हैं, उनसे भी एक ही प्रकार के ओज का समर्थन होता है। इनमें पर-अपर भेद की कल्पना करने की जरूरत भी नहीं है।

परम्परा से ओज के लिए जो मत चला आया है, उसका ही सिद्धान्त पक्ष में प्रतिपादन किया गया है। किन्तु पूर्वपक्ष-कथन में जो विचार प्रदर्शित हुए हैं, वे नवीन हैं। चक्रपाणि ने ओज के जो दो भेद बताए हैं, उनका खंडन है और एक ही ओज की स्थापना है।

यहाँ पर एक स्पष्टीकरण आवश्यक समझता हूँ, वह यह कि आचार्य चक्रपाणि तथा डल्हण सरीखे विद्वद्वरों की योग्यता में शंका करने की धृष्टता मुझ जैसा अल्पज्ञ कदापि नहीं कर सकता और न उन महानुभावों का छिद्रान्वेषण करना मेरा उद्देश्य हो सकता है। ये दोनों ही महानुभाव मेरे पूज्य हैं। फिर भी आयुर्वेद जैसे गंभीर और विशाल शास्त्र सम्बन्धी विषयों के निरूपण में चक्रपाणि सरीखे विद्वानों का भी संशयावृत्त हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। डल्हण जैसे समर्थ वनस्पति विवेचक भी ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी के परिचय देने में संशय दोलारूढ़ हो गये हैं। उसी प्रकार ओज के पर—अपर नामक दो भेद करने में चक्रपाणि भी भ्रम में पड़ गए हैं। किस प्रकार वह भ्रम के शिकार हुए यह आगे होनेवाले विवेचन से स्पष्ट होगा।

चरकसूत्र ३०-७ टीका में चक्रपाणिदत्त ने "इति तन्त्रांन्तरम्" कहकर एक प्रमाण दिया है, वह यह है—"प्राणाश्रयस्यौजसोऽष्टौ बिन्दवः हृदयाश्रयाः"—जिसका अर्थ यह है कि प्राण का आधारभूत ओज अष्टबिन्दु है और वह हृदय का आश्रय लेकर रहता है। विचक्षण विवेचक, बहुश्रुत, अनेक शास्त्रज्ञ और अपार पाण्डित्य-विभूषित चक्रपाणि

ने तन्त्रान्तर के नाम से जिस प्रमाण का न्यास किया है, अवश्य कोई आर्ष प्रयोग ही होगा। स्पष्ट नाम-निर्देश के अभाव में ऐसी संभावना मात्र हो सकती है। अगर यह संभावना उचित मानी जाय तो चक्रपाणि की ओज द्वैविध्य की कल्पना को भी ठीक मानना पड़ेगा। मैं इस संभावना को उचित समझता हूँ लेकिन अन्य आर्ष ग्रन्थों के साथ समन्वय करके उसका पाठ होना चाहिए—ऐसा मानना भी अनुचित नहीं। इसलिए तन्त्रान्तर का यह अंश "प्राणाश्रयस्यौज सोऽष्टौ तिन्दवः हृदयाश्रिताः"—ऐसा होना चाहिए—यह मेरा निश्चित मत है। लेखन-दोष से तकार के स्थान में बकार आ गया है। तकार का निम्नभाग थोड़ा-सा खींचने से उर्ध्वरेखा के साथ मिलकर 'व' बन जाता है। बहुत संभव है कि श्री चक्रपाणि के पास लेखन दोष-युक्त कोई ग्रन्थ पाठ रहा हो। अतः ऐसा ज्ञात होता है कि 'तिन्दवः' के स्थान पर 'विन्दवः' पद जोड़ कर फिर इनकी सिद्धि के लिए पर-अपर भेद बना लिया गया होगा।

मैंने 'बिन्दवः' के स्थान पर "तिन्दवः" होना चाहिए—ऐसा कहकर जो पाठ दिया, उसके अर्थ में ओज जीवन का आधार है और हृदय में रहता है—इतना अंश तो दोनों में समान है। फिर रहा प्रमाण-परिचय। इनमें 'बिन्दवः' वाले पाठक कहते हैं कि ओज का प्रमाण अष्टबिन्दु है और 'तिन्दवः' वाले पाठ में ओज का प्रमाण अष्टतोलक होता है। 'तिन्दु' शब्द कर्ष का पर्याय है, यह सभी विद्वान जानते हैं। अब यह विचारणीय है कि ओज का आठ कर्ष—"श्लेष्मलस्यौजसोऽर्धाञ्जलिः" अर्धाञ्जलि मानो आठ कर्ष-दोनों आर्ष वचनों में साम्यदर्शन कराते हैं या नहीं। फिर श्लेष्मल ओज को छोड़कर अन्य 'पर' नामक ओज की कल्पना अप्रयोजनवती बन जाती है। 'तिन्दु' में 'बिन्दु' दिखाई देने से चक्रपाणि स्वयं संशय चक्रारूढ़ हो गये—ऐसा प्रतीत होता है।

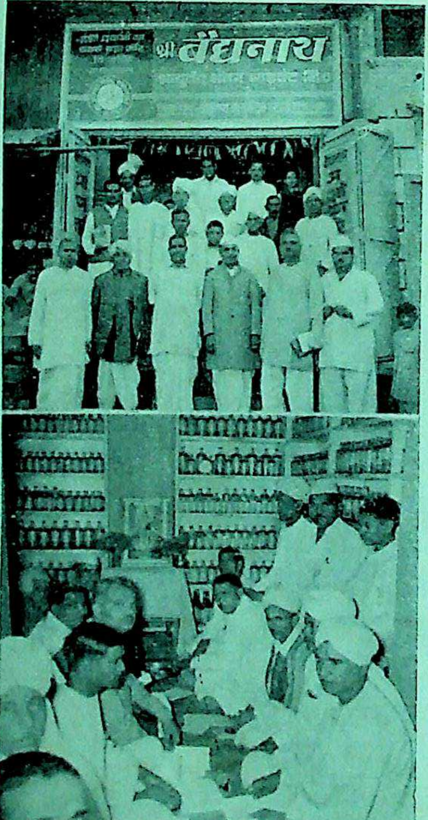
मेरे उपर्युक्त कथन का कदापि यह आशय नहीं है कि 'बिन्दु' में 'तिन्दु' दिखानेवाला मैं ही एकमात्र व्यक्ति हूँ। परमादरणीय श्री मस्तराम शास्त्री रावलपिण्डी वाले का "किमोजः" शीर्षक एक लेख वर्षों पूर्व प्रकाशित हुआ था, जिसकी अच्छी प्रसिद्धि आयुर्वेदज्ञों के बीच हुई थी। उक्त लेख में भी 'बिन्दु' के स्थान में 'तिन्दु' बनाने की बात युक्तिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत की गयी थी। श्री मस्तराम सरीखे भारत-विख्यात विद्वान के कथन से मेरे मत की पुष्टि होती है और इससे मेरा पक्ष प्रबल है।

पर-ओज और अपर-ओज जैसे दो प्रकार के विभाजन का उल्लेख चरक-सुश्रुत में नहीं मिलता। फिर भी इस तन्त्रान्तर वचन को और उसमें दिखाई पड़ने वाले अष्ट बिन्दु परिमाण को सच्चा मानकर संशयदोलारुढ़ चक्रपाणि जी की बुद्धि चरक में से ये दो भेद निकालने के लिए लालायित हो उठी। यह प्रवृत्ति अत्यन्त स्वाभाविक भी है। आज भी ऐसी प्रवृत्ति देखने में आती है कि अच्छे विद्वान लोग अपने संशयास्पद मन्तव्य को भी ठीक बताने के लिए यथाशक्ति अपनी बुद्धि का प्रदर्शन करते ही हैं। "बुद्धिमतामूहापोहवितर्काः" ऐसा शास्त्र भी कहता है। अष्ट बिन्दु शब्द का श्लेष्मल ओज के साथ समन्वय नहीं होने से चक्रपाणि परेशान हो गए और 'पर' नामक ओज की कल्पना में पड़ गए। इसीलिए मेरी दृष्टि में यह कल्पना अवास्तविक है। क्योंकि अज्ञात नाम तन्त्रान्तर के वाक्य को आधार मान कर चली है। इसलिए यह कल्पना मूलतः शिथिल है। चक्रपाणि की रची हुई टीका में और इसके आधार पर रची हुई अन्य टीकाओं में चक्रपाणि के इस पूर्वग्रह की स्पष्ट छाया सर्वत्र दिखायी पड़ती है। इस प्रकार आपने देखा कि चक्रपाणि जी ने चरक में से पर-अपर भेद निकालने के लिए कैसी युक्ति लगाई और पाण्डित्य का प्रभाव दिखाने के लिए कैसा प्रयत्न किया।

"तत्परस्यौजसः स्थानम्" च० सू० ३०-७। अर्थात् हृदय पर—श्रेष्ठ ओज का स्थान है—चरक के इस वाक्य में ओज के लिए आया हुआ विशेषण 'पर' शब्द की ओर चक्रपाणि का ध्यान आकृष्ट हुआ और इसको विशेषण न मानकर उन्होंने स्वतन्त्र भेदवाचक नाम माना और टीका में बताया कि—

"सतिहि परे चापरे चौजसि परस्य इति विशेषणं सार्थकं भवति न त्वेक रूपे ॥. . .प्रमेहेऽर्धाञ्जलि परिमितमेवौजः क्षीयते नाष्ट बिन्दुकम् अस्य हि किंचित्क्षयेऽपि मरणं भवति ॥

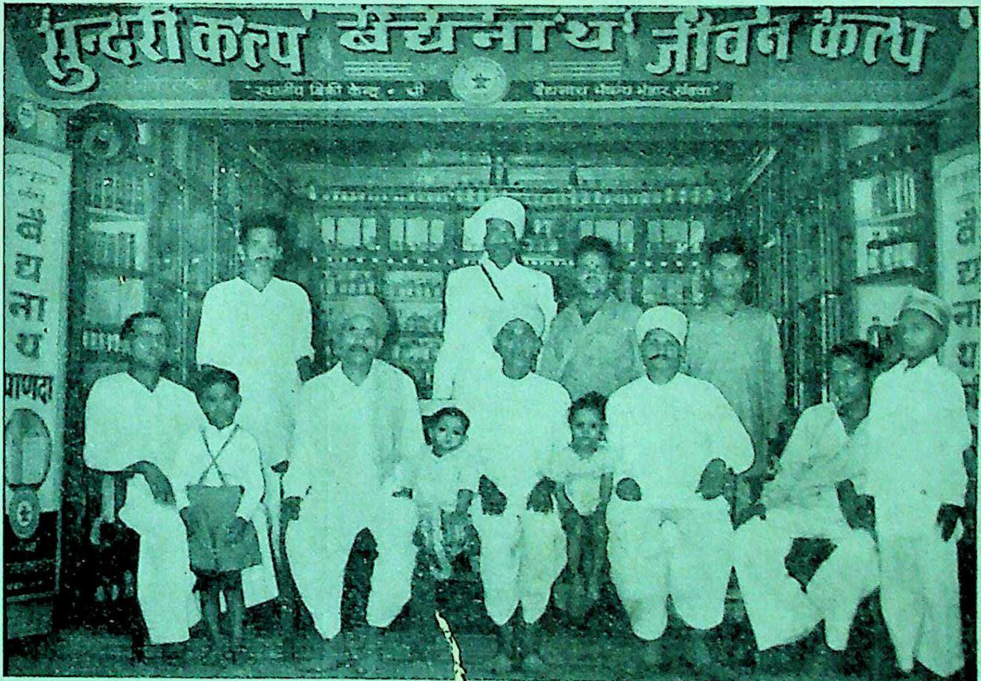
तन्त्रान्तर के वचन को प्रमाणतया उपन्यस्त करके श्री चक्रपाणि ने पर-अपर भेद की घोषणा यहाँ पर की है। पुनः आगे जाकर कई विद्वानों ने—"प्रधानस्यौजसश्चैव हृदयं स्थानमुच्यते" (च० चि० २४-३५) कहकर मदात्यय के प्रकरण में आये हुए प्रधान विशेषण को भी अपने मत



धन्वन्तरि जयन्ती पर रोहतक में अनुष्ठित स्वास्थ्य-समारोह



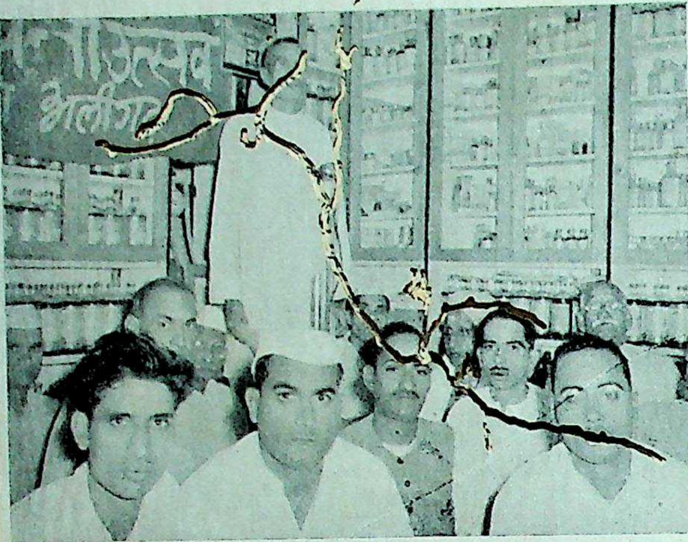
धन्वन्तरि जयन्ती पर खगौली में अनुष्ठित स्वास्थ्य-समारोह की सभा



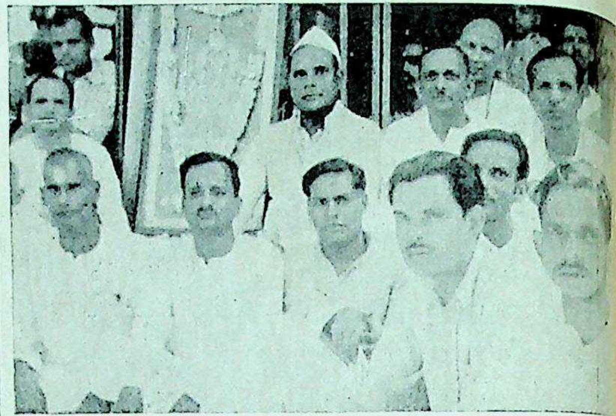
धन्वन्तरि जयन्ती पर खण्डवा में अनुष्ठित स्वास्थ्य-समारोह की सभा का दृश्य



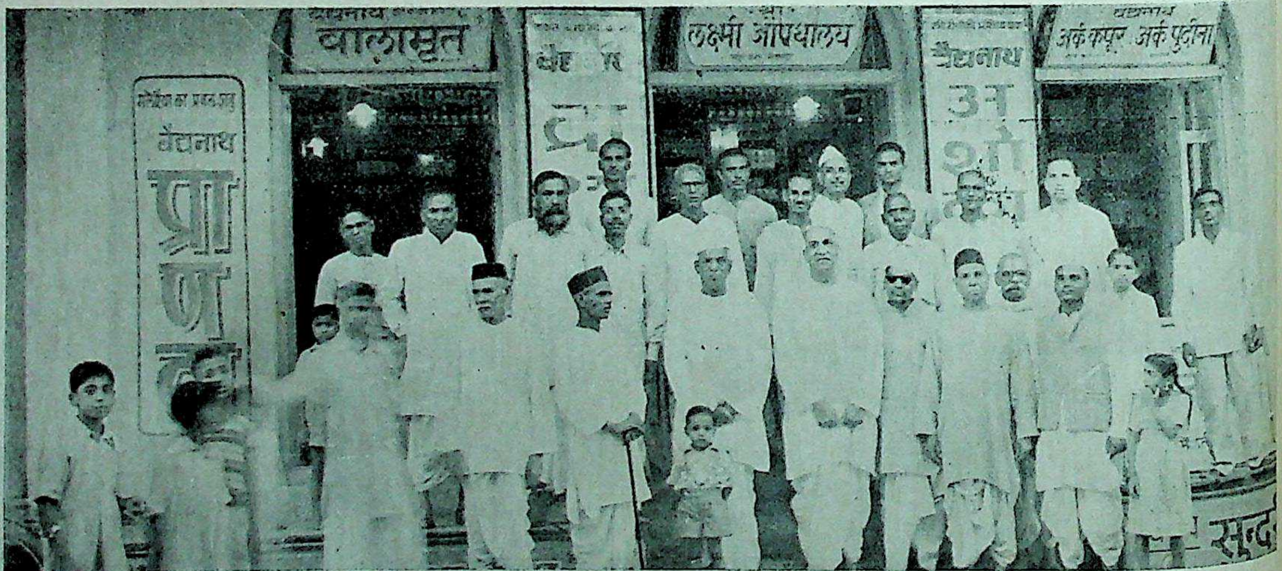
धन्वन्तरि जयन्ती पर बुलन्दशहर में अनुष्ठित स्वास्थ्य-समारोह की सभा



धन्वन्तरि जयन्ती पर अलीगढ़ में अनुष्ठित स्वास्थ्य-समारोह की सभा का दृश्य



धन्वन्तरी जयन्ती पर बक्सर में अनुष्ठित स्वास्थ्य-समारोह



धन्वन्तरि जयन्ती पर विलासपुरमें अनुष्ठित स्वास्थ्य-समारोह की सभा में समवेत वैद्यगण

की पुष्टि के लिए संस्थापित कर दिया। जो युक्ति 'पर' विशेषण के लिए चक्रदत्त ने लगाई, वही युक्ति यहाँ पर भी लगी। प्रधान--अप्रधान ऐसा भेद निकाल कर पर-अपर ओज की दृढ़ता और बढ़ा दी गयी और अन्ततोगत्वा पर-अपर कल्पना सुदृढ़ से सुदृढ़तर हो गई। अब इस विषय को छोड़कर पूर्व पक्ष के मत में ओज क्या चीज है--इसका स्पष्टीकरण करना उचित होगा। इससे पर-अपर ओज की कल्पना क्यों निकम्मी है यह स्पष्ट हो जायगा।

पूर्वपक्ष के मत में ओज का अर्थ पोषक रस है। चक्रपाणि ने कहा है--"पोष्य पोषक भावेन रसो द्विधा"--रसधातु दो प्रकार की है--**पोष्य और पोषक**। शरीर में सप्तधातुओं में जो आद्य धातु है, वह स्थायी है। उसका ही दूसरा नाम पोष्य रस है। अन्नपान से उत्पन्न हुआ रस रुधिर के साथ मिलकर हृदय में जाता है। फिर फेफड़ों में जाकर विष्णुपदामृत (ओक्सीजन) युक्त हो जाता है; तब उस रस में यथार्थ पोषक-तत्त्व आता है और शरीर के प्रत्येक परमाणु को पोषण देने की शक्ति पैदा होती है। इस रस-विशेष को आयुर्वेद में "ओज" कहा जाता है। फिर हृदय में आकर यह ओज हृदय के चतुर्थ अलिन्द के व्यान-वायु से प्रेरित होकर महाधमनी मार्ग से शरीर के प्रत्येक घटक में पहुँचता है। शरीर-घटक के अणु इस रस में अपनी ऊष्मा की और स्रोत की सहायता से अपना पोषण प्राप्त करते हैं--इस विधि को आयुर्वेद में **निष्ठापाक** कहा जाता है और इस रस को **पोषक-रस** कहा जाता है। पोषक-रस में सात धातुओं का जिससे निर्माण हो ऐसे पुरोगामी द्रव्य मौजूद रहते हैं--इससे पोषक-रस सप्तधात्वात्मक भी कहा जाता है। इसलिए यह पृथक धातु नहीं है। स्वभाव और स्वरूप से पोषक-रस की गणना आद्यधातु में अर्थात् रसधातु में भी की जा सकती है। इससे अष्टम धातुत्वापत्ति की आशंका उठ नहीं सकती। यह पोषक-रस जितना ही विशुद्ध और उत्तम बनेगा, शरीर की सब धातुएँ उतनी ही विशुद्ध बनेंगी। आहार रस से ही शरीर को पोषण प्राप्त होता है--इसी कारण आहार रस को ओज का पोषण देने वाला कहा है--"पुष्यंति चाहार-रसरुधिरमांसमेदोऽस्थि मज्जा शुक्रौजांसि" च० सू० २८।४। आहार-द्रव्य और आन्त्र में पैदा होनेवाला आहार रस यदि सुयोग्य नहीं है तो निष्ठापाक में गया हुआ पोषक रस भी योग्य नहीं होगा। फलतः शरीर का भी अच्छी तरह पोषण नहीं हो सकेगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि विशुद्ध और पोषक रस पर ही शरीर का पोषण निर्भर करता है। परम्परा से विशुद्ध खान-पान भी शरीर-पोषण का हेतु है। प्राणवायु के सम्बन्ध से विष्णुपदामृत मिला हुआ रुधिर को भी (Oxygenated blood) ओज कहा जाय तो कोई आपत्ति नहीं। आयुर्वेद में ही "रक्तं जीव इति स्थितिः"--ऐसा लिखा है। यह पोषक रस मिश्रित रक्त ही जीवरक्त है--जीवनाधार है--देहस्थिति-निबंधन है। ओज का जो कार्य--"देहस्थिति निबंधनम्॥ चि० सू० ११, देहः सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम्॥ सु० सू० १५-११, प्राणायतनमुत्तमम् सु० सू० १५, येनौजसा वर्तयन्ति प्रीणिताः सर्व जंतवः" च० सू० ३०-९ इत्यादि स्थानों में कहा गया है, वे सारे कार्य विशुद्ध पोषक रस से ही होते हैं। अतएव, विशुद्ध पोषक रस ही ओज है--और "ओजोवहाः शरीरेऽस्मिन् ओजोऽन्नानां रजनी चराणां--वायुरोज आदाय गच्छति (मधुमेहे)" आदि ओज शब्द युक्त जो-जो आर्ष वचन हैं, सभी इस पोषक रसात्मक ओज के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार 'श्लेष्मलस्योजसः अर्धाञ्जलिपरिमाणम्' सौम्य स्निग्धादि कफ गुण भूयिष्ठ होने से-वही पोषक रस श्लेष्मल ओज कहा जाता है। इसके लिए ही 'रसात्मकं वहत्योजः' पद का प्रयोग किया गया है। व्यापत-विस्रंसन और क्षय--ये तीनों प्रकार की ओज-विकृतियाँ भी पोषणात्मक रस में ही समन्वित हो सकती हैं। इसलिए हमारा यह नम्र विचार है कि ओज का पर-अपर इस प्रकार भेद करने की कुछ आवश्यकता नहीं है।

ओजस् शब्द का साहित्य में और भी अर्थ होता है--जैसे, शरीरोष्मा-सार-प्राकृत कफ-तेजस्विता (Lustre) इत्यादि। परन्तु इस वाद-विवाद की स्थापना के अनुसार ओजस् शब्द का अर्थ हृदयस्थ वहनशील पदार्थ है, जिसमें हृदयस्थता मात्र धर्मवाला एक पदार्थ **पर ओज** और हृदयस्थता और वहन शीलता दो धर्मवाला दूसरा पदार्थ **अपर ओज** इस प्रकार का भेद श्री चक्रपाणि जी को विवक्षित है। पूर्वपक्ष वाले हमलोग हृदयस्थता और वहनशीलता गुणद्वय-युक्त एक ही पदार्थ (पोषक रस) ओज है--ऐसा मानते हैं। हमारे विचार से पर ओज की कल्पना ठीक नहीं। प्रत्युत इस कल्पना से पर ओज क्या चीज है--यह समझ में नहीं आता और यह प्रश्न जटिल समस्या का रूप ले लेता है।

प्रौढ़िवाद से मान लिया जाय कि पर ओज है—इसका प्रमाण आठ बिन्दु है। यह हृदय में आश्रित है—अवहनशील है—स्वल्पतर मात्रा में भी इसके विनष्ट होने से मृत्यु हो जाती है।

अब अष्ट बिन्दु में किस प्रकार वैमत्य है, यह दिखाने का प्रयत्न करूँगा। वा० सू० ११–२७ की टीका में श्री अरुणदत्त लिखते हैं—"सकलशरीरव्यापिनस्तस्य षड्-विन्दुकस्य विशेषेण हृदयं स्थानम्।" श्री अरुणदत्त ६ बिन्दु को प्रमाण बताते हैं और विशेषेण हृदयस्थ होने पर भी वह (पर ओज) सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होनेवाला है—ऐसा अभिप्राय उनका है। इस प्रमाण से केवल हृदयस्थता और अष्ट बिन्दुता परास्त हो जाती है। युक्ति से विचार करने से भी **पर-ओज-कल्पना** नहीं ठहरती। हृदय के चारों अलिन्दों में रक्त का संचालन सर्वदा बना रहता है। जिस प्रकार नदी का प्रवाह कभी नहीं रुकता, उसी प्रकार रक्त-संचालन भी कभी नहीं रुकता। अब प्रश्न यह है कि हृदय के कौन-से अवकाश में पर ओज का आठ बिन्दु रहता है जो रक्त-संचालन से सर्वथा असम्पृक्त होकर अपने मूल रूप में स्थित रह सके। मेरी समझ में हृदय में आया हुआ रक्त संपूर्णतया आगे चल पड़ता है—बून्द मात्र भी अवशिष्ट नहीं रहता। जल-प्रवाह की तरह संतान-न्याय से हृदय में सर्वदा रक्त की यात्रा सदैव चलती रहती है। जहाँ एक बून्द का भी स्थैर्य संभव नहीं, वहाँ आठ बिन्दु की स्थिरता की बात करना मेरी अल्पमति में युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। यदि कोई सिद्धान्त पक्षवादी, किसी युक्ति से "अष्ट बिन्दु परिमित ओज हृदय में स्थिरता पाकर टिकता है"—ऐसा प्रमाणित कर सकेंगे तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी और उनका आभार भी मानूँगा। अतएव, मैं इस कथन से सहमत नहीं हो सकता।

अब एक दूसरे दृष्टिकोण से इस पर विचार करें। आयुर्वेद-शास्त्र में भेद का वर्णन तब किया जाता है, जब इसमें चिकित्सा-कार्य में सौकर्य हो। ऐसा भेद, जिससे रोग सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने में कुछ भी सुविधा नहीं प्राप्त होती हो अथवा चिकित्सा-कर्म के ज्ञान की वृद्धि न होती हो—प्राचीनों ने प्रायः नहीं बताया। ऐसा भेद बताने की शैली भी उन्हें नहीं पसन्द थी; यह विद्वान वैद्यों को भलीभाँति ज्ञात है। अब प्रकृत विषय पर विचार करने से प्रश्न यह उठता है कि अष्टबिन्दु परिमित **पर-ओज** मानने से आयुर्वेद का किस प्रकार और क्या लाभ होता है। जहाँतक मैं समझता हूँ, पर-ओज को स्वीकार कर लेने से न तो चिकित्सा के क्षेत्र में कुछ फल मिलता है, न निदान के ज्ञान में ही कोई सफलता प्राप्त होती है। जो कुछ हमें प्राप्त होता है, वह अपर-ओज से ही। हमारा मत-विशेषण रहित ओज से मिलता है। इसी कारण, मेरा निश्चित मत है कि परापर-ओज की कल्पना युक्ति-संगत नहीं है। इससे कोई प्रयोजन भी सिद्ध नहीं होता। इसको स्वीकार करने से ग्रन्थ में सारल्य की जगह जटिलता आ जाती है। ग्रन्थ के पठन-पाठन में दुष्परिहार्य कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यदि यह विचारधारा ठीक है तो इस कल्पना को हटाकर ग्रंथ-सारल्य करना उचित ही होगा।

पर-ओज का कार्य—"देहस्थिति निबन्धनम्" (वा० सू० ११-३७) ऐसा वाग्भट ने बताया है। अतः मैं पूछता हूँ कि क्या हृदय में से महाधमनी द्वारा सारे शरीर में जाने वाला पोषक रस में देह स्थिति निबन्धता नहीं है? मैं मानता हूँ, जरूर है। फिर पर भेद क्यों माना जाय? "सोमात्मकं स्निग्धं मृदु कृत्स्नं हृदयास्थं सर्वदेहव्यापी" इत्यादि सब वर्णन पोषक रसात्मक ओज से मिलते-जुलते हैं। फिर ऐसी लम्बी-चौड़ी अनुपयुक्त कल्पना कर ग्रंथ की जटिलता बढ़ाना मेरी समझ में नहीं आता। मैं सैकड़ों प्रमाण दे सकता हूँ कि सभी पोषक रसात्मक ओज का ही वर्णन करते हैं—दूसरा नहीं। पर जिन लोगों ने पर-ओज को माना है, उनका कल्पना-स्थान छोड़कर कहीं भी वर्णन नहीं मिलता। इसलिए "तत्परस्यौजसः स्थानं" और 'प्रधानस्यौजसः—' स्थानों पर आए हुए पर और प्रधान दो शब्दों का अर्थ 'सर्वश्रेष्ठ' लेना चाहिए। जिस वस्तु में शरीर के सभी धातुओं को बनाने वाली प्रतिनिधि सामग्री मौजूद है और जो सभी धातुओं को पोषण प्रदान करती है—साथ ही जिसके सहारे जीवन-यात्रा सुचारु रूप में चल पाती है, उसको सर्व श्रेष्ठ-पर-प्रधान इत्यादि विशेषण दिए जायँ तो इसमें क्या अनौचित्य है?

अष्टबिन्दु का परिहार "अष्टौ बिन्दवः" करने से हो जाता है। श्लेष्मल ओज का अर्द्धाञ्जलि परिमाण है, ऐसा शास्त्र-प्रमाण भी है। शरीर में रहने वाली चीजों के जो परिणाम शास्त्र में दिए गए हैं, वे सब-के-सब प्रायोवाद से बताए गए हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग, सिंहादिक में धातुओं का परिमाण अलग-अलग होता है। मनुष्यों में

(शेषांश पृष्ठ ६७० पर)

कब्ज—कोष्ठबद्धता

वैद्य रवीन्द्र शास्त्री

आज के सभ्य संसार का सर्वाधिक प्रचलित रोग कब्ज या कोष्ठबद्धता है। सभ्यता और भोजन के संस्कारों के साथ इसकी निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। शहरों में रहनेवालों का तो यह सदा का साथी है ही, अब तो गाँवों में भी इसके कदम पहुँचने लगे हैं। वैसे यह साधारण-सी खराबी समझी जाती है, लेकिन सारे रोगों का मूल यही है। न केवल हिन्दुस्तान में ही बल्कि संसार के सभी सभ्य देशों में कब्ज की जितनी दवा बिकती है, उतनी और सारे रोगों की नहीं। अकेले अमेरिका में ५० करोड़ रु० की कब्ज-नाशक-दवा भिन्न-भिन्न नामों से बिकती है। हमारे अपने देश में भी नाना नामों से कब्ज दूर करनेवाली दवाओं का विज्ञापन होता रहता है। त्रिफला चूर्ण, ईसबगोल की भूसी आदि के रूप में तरह-तरह की औषधि खानेवालों की तो कोई गिनती ही नहीं है।

कब्ज क्यों होती है?

इस राजरोग का वास्तविक कारण है आहार-विहार का अनियमित और अप्राकृतिक होना। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों की अवहेलना करने—या शरीर सम्बन्धी प्राकृतिक क्रियाओं एवं आहार में हस्तक्षेप करने से यह रोग होता है। आयुर्वेद के अनुसार मिथ्या आहार-विहार—रहने-सहने एवं खाने-पीने की गलत दिनचर्या सब विकारों की जननी होती है। प्राकृतिक चिकित्सकों का कथन भी यही है कि खान-पान का प्रकृति-विरुद्ध होना इसका कारण है। कहने का मतलब यही है कि सभी चिकित्सा-पद्धतियाँ इस रोग के कारण के सम्बन्ध में एकमत हैं कि स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों की अवहेलना ही इसका एकमात्र कारण है।

सारांश में यों कहा जा सकता है कि विलासिता और आरामपसंदगी का जीवन कुछ इस तरह का संयमहीन और अप्राकृतिक बन गया है कि खाने-पीने रहने-सहने में निरन्तर ही न केवल कुदरती क्रियाओं में हस्तक्षेप होता है—बल्कि भोजन सम्बन्धी नये-नये संस्कारों और रात्रि-जागरण आदि आधुनिक तौर-तरीकों से शरीर की प्राकृतिक क्रियाओं पर बराबर ही बेजा दबाव पड़ता रहता है। एक तरफ तो व्यायाम की उपेक्षा होती है—शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों के श्रम द्वारा स्नायुमंडल को सशक्त बनाने और नये रक्त के निर्माण द्वारा दिल और दिमाग को स्वस्थ और गतिशील बनाये रखने की आवश्यक क्रिया में लापरवाही बरती जाती है, और दूसरी तरफ वक्त-बेवक्त नयी-नयी किस्म के भोज्य पदार्थों द्वारा आंतों को दबाया—सताया जाता है। खाने पीने का असंमय तो इतना गलत हो गया है कि न पेट की मांग का ख्याल रहता है, न भोजन की पौष्टिकता का, न समय का और न मात्रा का। परस्पर विरोधी चीजें ही नहीं खाई जाती, चटपटी, मसालेदार और गरिष्ठ चीजों के द्वारा बेचारे गरीब पेट पर लगातार अत्याचार ही तो किया जाता रहता है। सड़े हुए फल भी हमारे पेट में पहुँच जाते हैं—मक्खियों के मल से भ्रष्ट सड़ी-बासी मिठाई भी हम खाते रहते हैं, सड़ी-बासी चीजों से कोई परहेज नहीं, चाय, काफी, कोकाकोला, आइसक्रीम आदि दुनियाँ भर की अलाय-बलाय चीजों को पेट में पहुँचाने में हम शान समझते हैं।

पेट को कभी आराम देने का तो हमें ख्याल ही नहीं होता, उपवास को हम उपहास की चीज मानते हैं। अधिक रात तक जगते रहना तो सोसायटी के लिहाज से जरूरी हो गया है, सिनेमा देखकर दिमाग को उत्तेजित रखना तो शहरी जीवन का एक अंग ही बन गया है और रात-दिन तोड़-फोड़, उखाड़, पछाड़ एवं लखपती बनने की भावना हर वक्त माथे में घूमती रहती है। सादा जीवन और सादा भोजन का सिद्धान्त हम हँसी में उड़ा देते हैं। पवित्रता, मनः शुद्धि एवं नैतिक जीवन का हमारे लिये कोई मूल्य ही नहीं।

वक्त पर शौच जाने की प्राकृतिक क्रिया में भी तो हस्तक्षेप होता रहता है। प्रथम तो शहरी जीवन में शौचालयों की समस्या ही इतनी गम्भीर है कि वे जनसंख्या के लिहाज से अपर्याप्त होने के साथ ही इतने गंदे हैं कि शौच-शुद्धि का होना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। ऐसे आदमियों की संख्या भी कम नहीं होती जो शौच जाने जैसे कुदरती

काम में भी बिलम्ब करते रहते हैं और ऐसे भी हजारों नर-नारी हैं जिन्हें हाजत होने पर भी नम्बर को इन्तजारी करनी पड़ती है। मल त्याग जैसे कुदरती वेग को रोकने का अपराध करनेवाले स्त्री-पुरुषों को कब्ज जैसे उदर विकारों का प्राकृतिक पुरस्कार मिलना तो फिर कोई अस्वाभाविक बात नहीं है।

इस तरह खान-पान की गलत चीजें, रात का जगना, मानसिक अशांति, मलविसर्जन में बिलम्ब, व्यायाम का अभाव आदि बहुत-सी ऐसी गलत चीजों के होते रहने का प्राकृतिक परिणाम यह होता है कि भोजन के परिपाक के बाद नियत समय पर नियमित रूप से होने वाली मलविसर्जन की शारीरिक क्रिया गड़बड़ाने लगती है जिसके फलस्वरूप कब्ज जैसे राजरोग की भूमिका तैयार होकर अनेक विकारों के आने की सूचना मिल जाती है।

कब्ज के लक्षण और उसकी प्रतिक्रिया

कब्ज—मलावरोध का सीधा-सा लक्षण है टट्टी की शकल में बने हुए आहारीय पदार्थ के अनावश्यकीय विकारी अंश का पेट में रहना। इसका सीधा-सा भाष्य यह हो सकता है कि कि शरीर-रक्षा के लिए खाये गये भोज्य पदार्थों का पाचन होकर जो विजातीय या विकारी यानी निरर्थकतत्त्व शरीर से बाहर निकल जाना चाहिए उसका आँतों में ही रुके रहना।

मलावरोध अर्थात् पेट में मल के रुके रहने पर होनेवाली प्रतिक्रियाओंका रूप क्या हो सकता है, इसकी कल्पना कोई कठिन तो कतई नहीं है, क्योंकि इतनी-सी बात को तो सहज बुद्धि से ही समझी जा सकती है कि बाहर निकले हुए जिस मल को देखकर ही हमारा नाक सिकुड़ने लगता है और जो शुद्ध हवा में रहकर भी थोड़ी देर बाद बदबू मारने लगता है, वही मल हमारे पेट में रहकर कड़ा हो जाता तथा उसके बारीक और मोटेकण आँतों में ही नहीं खून और शरीर की सारी मशीनरी में गतिरोध की अवस्था उत्पन्न कर देते हैं।

आयुर्वेद ने तो स्पष्ट लिखा है—"मलवृद्धया प्रवर्तन्ते विशेषेगोदराणितु।" (चरक) अर्थात्—मल के रुकने से उदर सम्बन्धी रोग होते हैं। महात्मा गाँधी तो कब्ज, बवासीर, दस्त और संग्रहणी को एक ही श्रेणी में मानते थे—और उनकी यह मान्यता थी भी सर्वथा शास्त्रसम्मत। इतना ही नहीं आयुर्वेद का तो यह भी कहना है कि मलावरोध से पेट की पाचकाग्नि अव्यवस्थित हो जाती है और जठराग्नि का दोष ही सारे रोगों की जड़ है।

अग्निदोषान्मनुष्याणां रोगसंघाः पृथक्विधाः। अर्थात्—अग्नि-दोष से ही शरीर में रोगों का संघ अपना अस्तित्व उत्पन्न करता है।

सुश्रुत में तो और भी स्पष्ट लिखा है—

आटोप शूलौ परिकर्तनं च
संगे पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः।
पुरीषमास्यादपि वा निरोति
पुरीष वेगेऽभिहते नरस्य॥

अर्थात् मलावरोध से पेट में अफारा-सा आ जाता, दर्द के साथ गुड़गुड़ाहट होने लगती, मलाशयद्वार में काटने जैसी पीड़ा होने लगती, मल का निकलना कठिन हो जाता, डकार आने लगती तथा मुँह के रास्ते भी पाखाना आने की स्थिति पैदा हो जाती है।

शरीर शास्त्रियों का कहना है कि आँतों में रुका हुआ मल उनकी स्वाभाविक स्थिति को इतना विकृत कर देता है कि पाचन-पोषण, मलविसर्जन आदि शरीर की नैसर्गिक क्रियाओं का कार्य-कलाप अस्तव्यस्त हो जाता है। इस अव्यवस्था का परिणाम यह होता है कि यकृत्, फुफ्फुस, हृदय जैसे प्रधान अवयवों के कार्य में बाधा पड़ने लगती है, जिससे न पाचक रस ही उचित मात्रा में तैयार होती है और न रक्त-शुद्धि एवं रक्तप्रवाह का कार्य नियमित रहता है।

बड़ी आँतों में रुके हुए मल का दूषित तत्त्व रक्त-दोष का उत्पादक होने के साथ ही हृदय सम्बन्धी विकारों का भी एक प्रधान कारण बन जाता है। अजीर्ण, अरुचि, पेचिश, संग्रहणी शिर-दर्द, रक्ताल्पता, पीलिया, प्रमेह, बल्डप्रेशर, जुखाम आदि रोगों के लिये उर्वरा भूमि तैयार करने का सारा श्रेय साधारण-सी दिखाई देने वाली कब्ज को ही तो है।

आलस्य, थकान, क्लान्ति, चिड़चिड़ापन, अनिद्रा, जैसे विकार तो फिर शरीर में अपना तम्बू ही गाड़ देते हैं। शरीर की जीवनी-शक्ति नष्ट होने लगती, कुदरत की तरफ से मिली हुई स्वाभाविक रोगक्षम-शक्ति क्षीण होने लगती, भरी जवानी में बुढ़ापा आ जाता और जिन्दगी का सारा सौन्दर्य फीका पड़ जाता है। कब्ज से पीड़ित लोगों की दशा इस बात की गवाह है कि भोजन उनके लिये विष बन

जाता है, नींद की हरदम कमी रहती है तथा जीवन का सारा आनन्द नष्ट हो जाता है।

कब्ज का उपचार

अपने ३० साल के आयुर्वेदीय चिकित्सा के लम्बे अनुभव के बाद आज मैं यह कहने की स्थिति में अवश्य हूँ कि कब्ज जैसे राजरोग का उपचार केवल ओषधियों के द्वारा कठिन ही नहीं, असंभव है। रोग होते ही दवा की तलाश में वैद्य-डाक्टरों की तलाश करने वाले कब्ज के रोगियों को सबसे पहली मेरी सलाह तो यह है कि इस रोग में दवा लेना या दवा के द्वारा मलावरोध को दूर करने का ख्याल करना निरा पागलपन है। किसी भी चिकित्सा-पद्धति में ऐसी कोई दवा नहीं है जो कब्ज को स्थायी रूप से दूर कर दे। यह सही है कि कब्ज को मिटाने वाली तरह-तरह की दवाओं के आकर्षक नाम और गुण लोगों को बताये जाते हैं,—साल्ट, सीरप, चूर्ण, बटी, आसव, मोदक आदि भिन्न-भिन्न रूपों में कब्जहर दवाओं का विज्ञापन भी होता रहता है, लेकिन यह भी सर्वथा सत्य है कि इन औषधियों से पेट का थोड़ा-बहुत मल अवश्य निकल जाता है—किन्तु कब्ज दूर नहीं होती, बल्कि और भी गहरी जड़ जमाने लगती है। कब्ज के किसी भी रोगी से पूछ देखिए, उसका उत्तर यही होगा कि दवा लेने से २-४ दस्त होकर एक बार तो पेट हल्का जरूर हुआ—लेकिन दूसरे ही दिन फिर वही हालत हो गई।

दवा के द्वारा कब्ज से छुटकारा पाना वास्तव में है भी अवैज्ञानिक और अटपटा; क्योंकि पानी की प्यास तो पानी ही से बुझती है,—और कब्ज भी तभी दूर होगी जब उसका कारण दूर होगा। रात के जगने से होने वाला सरदर्द 'सारीडन' या शंखभस्म से दूर नहीं होता—यह तो नींद पूरी कर लेने पर ही दूर होगा। इसी तरह यह मोटी-सी बात तो सहज में ही समझ में आ जानी चाहिये कि कब्ज करने वाले कारण को दूर किये बिना कब्ज दूर नहीं होगी, क्योंकि कारण के होते रहने पर उसका फल भी तो अवश्य होगा। क्रिया की प्रतिक्रिया होना जैसे एक साधारण नियम है, वैसे ही कब्ज करने वाले किसी भी कारण के होते रहने पर उसका होना स्वाभाविक क्रिया है—अतः कब्ज का सबसे पहिला उपाय है कारण को दूर करना और कारण को दूर करने का मतलब है खानपान, रहन-सहन, आहार-विहार को संतुलित एवं नियमित रख कर स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का पालन करना।

साधारणतः कब्ज को दो तरह का समझना चाहिए—(१) अस्थायी या कभी-कभी होने वाली और (२) स्थायी या बराबर रहने वाली। पहिली अस्थायी कब्ज भी कालान्तर में ही स्थायी बन जाती है, अतः अस्थायी कब्ज तो उसे समझिये जो कभी-कभी खान-पान में गड़बड़ होने या कारण-विशेष के होने पर जीवनचर्या में अनियमितता होने पर हो जाती है। ऐसी कब्ज किसी दावत में शामिल होने, देर तक जगने, गड़बड़ चीजें खा लेने आदि कारणों से होती है। इस दशा में सबसे पहिला आवश्यक उपचार है एक दिन का उपवास और आँतों की सफाई। कब्ज का वास्तविक मतलब ही है पेट में संचित विकारी पदार्थ की सूचना—और इसका वास्तविक उपचार भी यही है कि पेट को खाली रख कर संचित मल को निकाल देना।

पेट के खाली रखने का अर्थ है उपवास और साफ करने का मतलब है आँतों की धुलाई या एनीमा,—अतः अस्थायी कब्ज में खाना बन्द करके पेट की सफाई कर लेना ही उत्तम उपचार है। इस तरह पेट के पूरी तरह से साफ होने के बाद आहार-विहार को नियमित कर लेना भविष्य के खतरे से बचने का साधारण उपाय है।

स्थायी कब्ज के लिये थोड़ी साधना की जरूरत है और रोग को देखते हुए यह साधना कोई मँहगी या मुश्किल भी नहीं है। इस साधना या उपचार का क्रम इस रूप में रखिये—

उपवास और एनीमा

प्राकृतिक चिकित्सकों की चिकित्सा तो प्रधानतः इन दो ही चीजों पर निर्भर करती है। आयुर्वेद का पुरातन सिद्धान्त भी यही है और अब तो समझदार लोगों को भी यह ज्ञान होने लगा है कि हिन्दू जीवन का उपवास बहुत कुछ सारगर्भित ही नहीं चिकित्सा का एक अचूक साधन भी है। कब्ज के रोगियों को चाहिये कि चिकित्सा प्रारम्भ करने के पहिले वे पूरी तरह से जीभ पर लगाम रखने का निश्चय कर लें और दृढ़ चित होकर उपचार का श्रीगणेश करें।

उपवास या लंघन को 'परमौषधम्' कहा गया है, और हिन्दू संस्कृति के साप्ताहिक या पाक्षिक व्रतों में औषध की पूरी पुट रखी गई है। कब्ज के रोगी को ज्यादः उपवासों की जरूरत नहीं है। शुरू में २ दिन का उपवास पर्याप्त होता है, बाद में साप्ताहिक उपवास। प्रारंभिक

उपवास के समय संचित मल को निकालने का उद्देश्य होता है। अतः यदि पेट की पूरी सफाई नहीं होती है तो तीसरे दिन भी उपवास रख लेना चाहिए। उपवास में पानी अवश्य पीना चाहिए और पूरी मात्रा में पानी पीना चाहिए। दिन-रात में ४-५ गिलास पानी तो अवश्य ही पिया जाय। एक गिलास पानी में नींबू का १ तोला रस अवश्य डाल लिया जाय।

उपवास के समय शरीर और मन को पूरी शान्ति एवं विश्राम देना जरूरी है। उपवास का वैज्ञानिक रहस्य यह भी है कि आँतों के खाली रहने पर वे न केवल संचित विकार को बाहर निकालने का प्रयत्न करती है—बल्कि विश्राम के द्वारा खोई हुई शक्ति को भी प्राप्त करती है। अतः उपवास के समय पूरी सावधानी के साथ शरीर एवं मन की गतिविधि को शान्त रखा जाय।

एनीमा

एनीमा का प्रयोग बहुत आसान है। बाजार में किसी भी केमिष्ट की दुकान से यह लिया जा सकता है। शुरू में इसकी विधि किसी वैद्य-डाक्टर या प्राकृतिक चिकित्सक के पास देख लेनी चाहिये। फिर आवश्यकता के समय निस्संकोच होकर इसके द्वारा आँतों की शुद्धि करते रहना चाहिये।

उपवास और एनीमा के द्वारा संचित मल के बाहर निकल जाने एवं पाचन-क्रिया के ठीक से व्यवस्थित हो जाने पर अपनी दिनचर्या—खान-पान, रहन-सहन को पूरी तरह से नियमित तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों के अनुकूल बनाये रखने पर कब्ज जैसे राज रोग से पूरी तरह मुक्त रहने की निश्चित संभावना है। अतः अब कुछ आवश्यक सूचनाएँ यहाँ दी जा रही है जो जीवन को स्वस्थ—प्रसन्न रखने के स्वर्ण सूत्र हैं—और इनके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने को कब्ज-मुक्त रखने के साथ ही दीर्घजीवी भी बना सकता है।

उचित निद्रा

भूख की तरह नींद भी शरीर की स्वाभाविक माँग है। अतः जीवन-रक्षा के साधनों में नींद का महत्त्व पूर्ण स्थान है। आयुर्वेद का कहना है—

पुष्टिवर्णबलोत्साहमग्निदीप्तिमतंद्रिताम्।
करोति धातुसाम्यं च—निद्रा काले निषेविता।।

—सुश्रुत

अर्थात्—नींद से शरीर पुष्ट रहता, बल और उत्साह की वृद्धि होती, शरीर का रंग निखरता, पाचन-शक्ति उद्दीप्त होती, तन्द्रा दूर भागती और धातुओं में साम्य रहता है।

इसके विपरीत जब कभी नींद के वेग को रोकने का अपराध हो जाता है—किसी भी कारण से ठीक से नींद आने में बाधा पड़ जाती है, तो आयुर्वेद के कथनानुसार, जंभाई, शरीर में भारीपन, सर दर्द, आँखों का भारीपन, आलस्य, अरुचि आदि खराबियाँ उत्पन्न होकर जिन्दगी की गाड़ी में ब्रेक लग जाता है।

ठीक समय पर ठीक नींद लेने से शरीर में ताजगी बनी रहती और जीवन-यात्रा का चर्खा बड़े मजे में चलता रहता है। अतः निश्चित समय पर निश्चित मात्रा में नींद का सेवन अवश्य करना चाहिए।

अवस्था और कार्य के भेद से नींद की मात्रा में अन्तर जरूर रहता है, होना भी चाहिये। बच्चों को ज्यादा नींद चाहिये—शरीरी श्रम करने वालों को भी ज्यादा चाहिये। साधारणतः वयस्क व्यक्ति के लिये ६-७ घण्टे की गाढ़ निद्रा पर्याप्त होती है।

ब्राह्ममुहूर्त्त में शय्यात्याग

प्रातः ४ बजे से ५ बजे तक का समय ब्राह्ममुहूर्त्त कहलाता है। इस समय प्रकृति की तरफ से अमृत की वर्षा होती है। भारतीय ऋषि-महर्षि ही नहीं, बीसवीं सदी के महात्मा गाँधी भी इस समय के उठने की उपयोगिता को पूरी तरह समझते थे और गांधी जी के आश्रमवासियों के लिये इस समय उठना एक अनिवार्य नियम था। अतः नियमित रूप से इस समय चारपाई छोड़ देने का अभ्यास डाल देना चाहिये।

उषःपान और शौचक्रिया

शय्या से उठने पर एक ग्लास पानी पीने का अभ्यास अवश्य डालना चाहिये। इससे शौच में तो सुविधा होती ही है, पेट की एक जरूरी माँग की भी पूर्त्ति हो जाती है। शौच या मलविसर्जन की क्रिया में मनुष्य को पशु-पक्षी से शिक्षा लेनी चाहिये—क्योंकि पशु-पक्षी हाजत होते ही तत्काल मल-त्याग कर देता है—अतः शौच में तनिक भी विलंब करना घोर अपराध है। जिन लोगों को गप्प-शप्प मार कर या चाय पीकर या सिगरेट के कश उड़ाने के बाद धीरे-धीरे दस्त जाने की आदत है, उन्हें अविलंब अपनी इस कुटेव में सुधार कर लेना चाहिये।

शुरू में चाहे २-४ दिन उन्हें भले ही असुविधा हो लेकिन थोड़े समय बाद अवश्य लाभ होता है।

शौच का स्थान साफ होना चाहिये—गन्दे पाखाने तो कब्ज के ही कारण बनते हैं। संभव हो तो आबादी से दूर खुले स्थान में शौच-क्रिया की जाय। इस क्रिया में जल्दबाजी तो करनी ही नहीं चाहिये और न घण्टों लगाना चाहिये। शौच-क्रिया में १५ से ३० मिनिट का समय उचित होता है। वे व्यक्ति तो भाग्यशाली ही समझे जाने चाहिये, जो जाते ही अपना पेट साफ कर लेते हैं। चाहे रात हो या दिन, चाहे भोजन का समय हो, शौच के वेग को रोकने की मूर्खता हर्गिज कभी नहीं होनी चाहिये। शौच के सम्बन्ध में गांधी जी के इस उपदेश को ध्यान में रखना चाहिये कि मल-विसर्जन के बाद उस पर थोड़ी मिट्टी डाल दी जाय ताकि वह अच्छे खाद के रूप में परिणत हो जाय और गन्दगी का कारण न बने।

व्यायाम-कसरत

स्वास्थ्य को ठीक रखने और कब्ज को दूर करने में व्यायाम का शीर्ष स्थान माना गया है। व्यायाम के गुण-धर्म के विषय में आयुर्वेद का यह कथन—

"लाघवं कर्म सामर्थ्यं स्थैर्यं दुख सहिष्णुता
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते।"

—सर्वथा सत्य है। इसका अर्थ है कि व्यायाम से शरीर में हल्कापन रहता, कार्यशक्ति बढ़ती, स्थिरता उत्पन्न होती और कष्टसहिष्णुता आती है। बढ़े हुए दोष क्षीण होते और पाचन-शक्ति बढ़ती है। इतना ही नहीं, आयुर्वेद तो यह भी कहता है कि व्यायाम के द्वारा शरीर 'रोग प्रूफ' बन जाता है—

व्यायाम दृढ़गात्रस्य व्याधिर्नास्ति कदाचन।
(भावप्रकाश)

कार्य-शक्ति और शरीर की स्वाभाविक रोगक्षम-शक्ति को बढ़ाने वाले व्यायाम के द्वारा जब खोया हुआ स्वास्थ्य पाया जा सकता है, आयु बढ़ाई जा सकती है, तब कब्ज का दूर होना तो साधारण-सी बात है। शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग से आवश्यक हरकत हो जाने से पसीने के द्वारा विकारी पदार्थों के निकलते रहने से भूख ठीक लगती और आँतें साफ रहती हैं। अतः अपनी स्थिति के अनुसार आवश्यक व्यायाम को दिनचर्या का आवश्यक अंग बना लेना चाहिये।

व्यायाम के आजकल कई रूप है। दंड-कसरत, फुटबाल, हॉकी, टेनिस, कबड्डी, दौड़ आदि सभी ऐसी क्रियाएँ हैं जिनमें आवश्यक व्यायाम हो जाता है। सूर्य-नमस्कार के द्वारा भी उचित व्यायाम हो जाता है।

वयस्क और बुद्धिजीवियों के लिये प्रातःकालीन भ्रमण और हल्की दौड़ भी बहुत उपयुक्त व्यायाम है। तैरने से भी अच्छा व्यायाम हो जाता है।

व्यायाम का नियमित होना अत्यन्त आवश्यक है। पसीना आकर श्वास-प्रश्वास की गति का बढ़ जाना व्यायाम की उचित मात्रा बताई गई है। अतः मात्रा से अधिक व्यायाम भी नहीं करना चाहिए।

स्नान—बाहरी और भीतरी शुद्धि

शरीर की शुद्धि के लिये ही नहीं—दीर्घ जीवन एवं मानसिक शांति तथा कब्ज जैसे रोगों से मुक्त रखने के लिये भी स्नान की अत्यन्त आवश्यकता है। स्नान को केवल ५-७ लोटे जल डाल लेना कहना तो यथार्थता के विपरीत है—और जल-स्नान के साथ ही धूप-स्नान का भी उपयोग करना चाहिये। स्नान में केवल शरीर की त्वचा मात्र की सफाई का ध्यान रखना तो स्नान की कीमत कम करना है। वस्तुतः बाहरी स्नान के साथ एनीमा के द्वारा आंतों को स्नान कराना भी स्नान का वास्तविक प्रयोग है। अतः साप्ताहिक या पाक्षिक रूप में गर्म जल के द्वारा पेट की भीतरी सफाई भी कर लेनी चाहिये, ताकि कब्ज की जड़ का सफाया होने के साथ आन्तरिक स्नान भी हो जाय।

उचित आहार-

बिना आहार को ठीक किये कब्ज दूर नहीं होती, क्योंकि आहार ही तो रोग का उत्पादक कारण बनता है। अतः न केवल कब्ज के लिये ही वल्कि जीवन और स्वास्थ्य के लिये भी आहार के सम्बन्ध में आवश्यक सावधानी रहनी चाहिये। आहार-शुद्धि में सब शुद्धियाँ हैं और 'जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन' कहावतों में यथार्थ सत्य की पूरी मात्रा है। आहार का विषय बहुत ही गंभीर एवं विशद है, एक पूरे शास्त्र का विषय है। यहाँ भोजन सम्बन्धी आवश्यक सूचनाएँ मात्र दी जाती हैं।

भोजन की मात्रा

अवस्था और कार्य के हिसाब से मनुष्य को मात्राची होना चाहिए। आहार की मात्रा पाचक अग्नि और बल की

अपेक्षा रखती है। अतः जितना आहार प्रकृति और स्वास्थ्य को हानि न पहुँचा कर उचित वक्त पर हजम हो जाय वही भोजन की ठीक मात्रा है। इसी तरह 'त्रिविध-कुक्षीय' अध्याय में चरक संहिता में निर्देश हुआ है कि मनुष्य को अपने पेट में तीन स्थान रखने चाहिए। एक भोज्य पदार्थ के लिए, दूसरा पेय के लिये तथा तीसरा वात-पित्त-कफ दोषों के लिए। इस तरह स्थानविभाग करके खाने में विकार की कल्पना ही नहीं हो सकती।

आहार की ठीक मात्रा के चिह्न ये हैं—भोजन के बाद कोख पर दबाव न पड़े, श्वास-प्रश्वास की गति में कोई अन्तर न आवे, दर्द पैदा न हो, सब इन्द्रियां संतुष्ट हों, भूख-प्यास की शांति होकर उठने-बैठने, चलने-फिरने में सुखपूर्वक प्रवृत्ति हो, ठीक समय पर ठीक रूप में पाचन हो जाय।

आहारीय पदार्थ

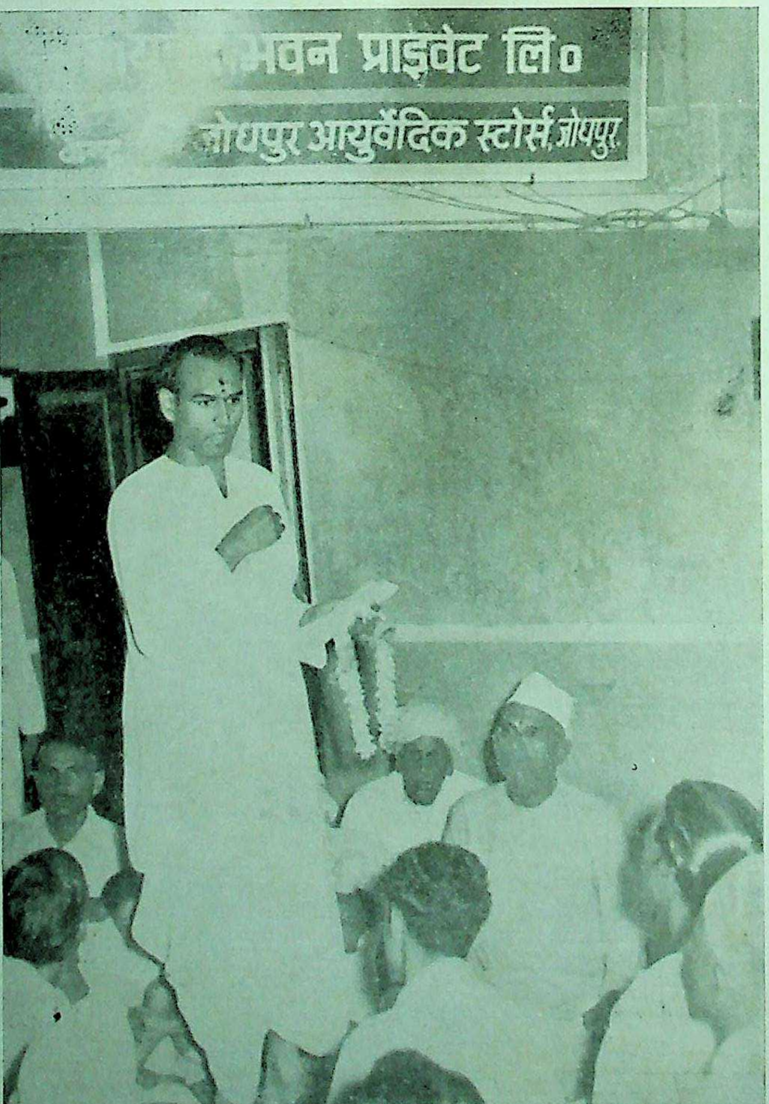
भोजन की चीजों के सम्बन्ध में देश-काल-अवस्था और कार्य के हिसाब से अन्तर जरूर होता है, होना भी चाहिए, किन्तु यह तो निर्विवाद तथ्य है कि आहारीय पदार्थों में वे ही चीजें होनी चाहिए जिन से शरीर के घटकों की पूर्ति होकर जीवन-निर्वाह के लिए उचित बल मिलता रहे। आहार-शास्त्र के दृष्टिकोण से खाद्यपदार्थों के गुणधर्म के सम्बन्ध में प्रकाश डालना तो यहां बहुत लंबी चीज बन जायेगी—संक्षेप में इतना ही बता देना पर्याप्त होगा कि हमारे भोजन में प्रोटीन, कारबोहाइड्रेट, चिकनाई और खनिज नमक के आवश्यक तत्त्व जरूर होने चाहिए और ये सब तत्त्व दूध-दही, मठा, चावल, गेहूँ, दाल, शाक, केला, मौसमी, संतरा, खजूर और हरे शाकों में उचित रूप में रहते हैं। अतः अपने भोजन में आवश्यक अन्न के साथ हरे शाक, दूध-दही और मौसमी फल रखना उचित है।

यह सूचना तो अत्यन्त आवश्यक ही समझनी चाहिए कि सादा और शुद्ध भोजन ही ठीक होता है। भोजन की विविधता और बहुलता न पेट के लिहाज से ठीक है न अर्थ-शास्त्र के दृष्टिकोण से। अतः दाल-रोटी, शाक दूध, दही, सब्जी और फल ही हमारा आदर्श भोजन है। बाजार की चाट, मिठाई, ठंडी-बासी रोटी, सड़ी-गली सब्जियां और फल भोजन का विकृत और हानिकर रूप है।

शेषांश] ओज—एक आयुर्वेदीय विवेचन [५६४ पृष्ठ का

भी ह्रस्वकाय, दीर्घकाय, स्थूल, कृश आदि भेद से धातुओं के परिमाण में भेद होता है। इस न्याय से अर्द्धाञ्जलि परिमाण को भी समझना चाहिए। अर्वाचीन एलोपैथी चिकित्सा-पद्धति के अन्तर्गत वैज्ञानिक औजारों की सहायता से प्रयोगशाला में यह देखा गया है कि प्रत्येक धमक (Heart beating) के साथ हृदय में से कितना रुधिर महाधमनी में चला जाता है। प्राणियों के दैहिक वजन में भिन्नता होने के फलस्वरूप रक्त की मात्रा में भिन्नता का होना अत्यन्त स्वाभाविक है। सामान्यतया प्रत्येक धमक के साथ प्रायः ७ तोला रुधिर महाधमनी में जाता है। यह अन्वेषण श्वान-बिड़ालादि प्राणियों के शरीर की बात है। फिर मनुष्य का शरीर कुछ और मोटा होने पर आठ तोला-अर्द्धाञ्जलि कहना बिल्कुल उचित है इस विचारधारा के अनुसार मेरा निश्चित मत है कि 'प्राणाश्रयस्यौजसोऽष्टौ-तिन्दवः" ऐसा पाठ होना चाहिए जिससे कि अन्य तन्त्रों के वचनों के साथ उसका भी समन्वय हो जाय। मैंने जिस एलोपैथिक परीक्षण का उल्लेख किया है, उसका "हलीबर्टन फिजियोलॉजी" में निहित वर्णन मिल सकता है।

पूर्व पक्ष के समर्थन में जो मुझे निवेदन करना था, वह सुविज्ञ आयुर्वेदज्ञों के समक्ष रखा जा चुका। अब इस पर सिद्धान्त पक्ष की प्रतिक्रिया जानने की मेरी इच्छा है। चक्रपाणि जी की कल्पना को गलत बताकर हटा देने सम्बन्धी मेरे सुझाव को संभव है कि अनधिकार चेष्टा कहा जाय; किन्तु मेरे इस प्रयत्न के पीछे यह जानने की इच्छा है कि मेरी विचारधारा में कहाँ दोष है। यदि कोई विद्वान यह सिद्ध कर सकेंगे कि परापर ओज सम्बन्धी कल्पना सुसंगत है—ओज का पर-अपर भेद समझ में भी आता है और इससे चिकित्सा-निदान आदि में अमुक लाभ होता है तो मैं उनका बड़ा आभार मानूंगा—फिर इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात मेरे लिए और क्या हो सकती है।



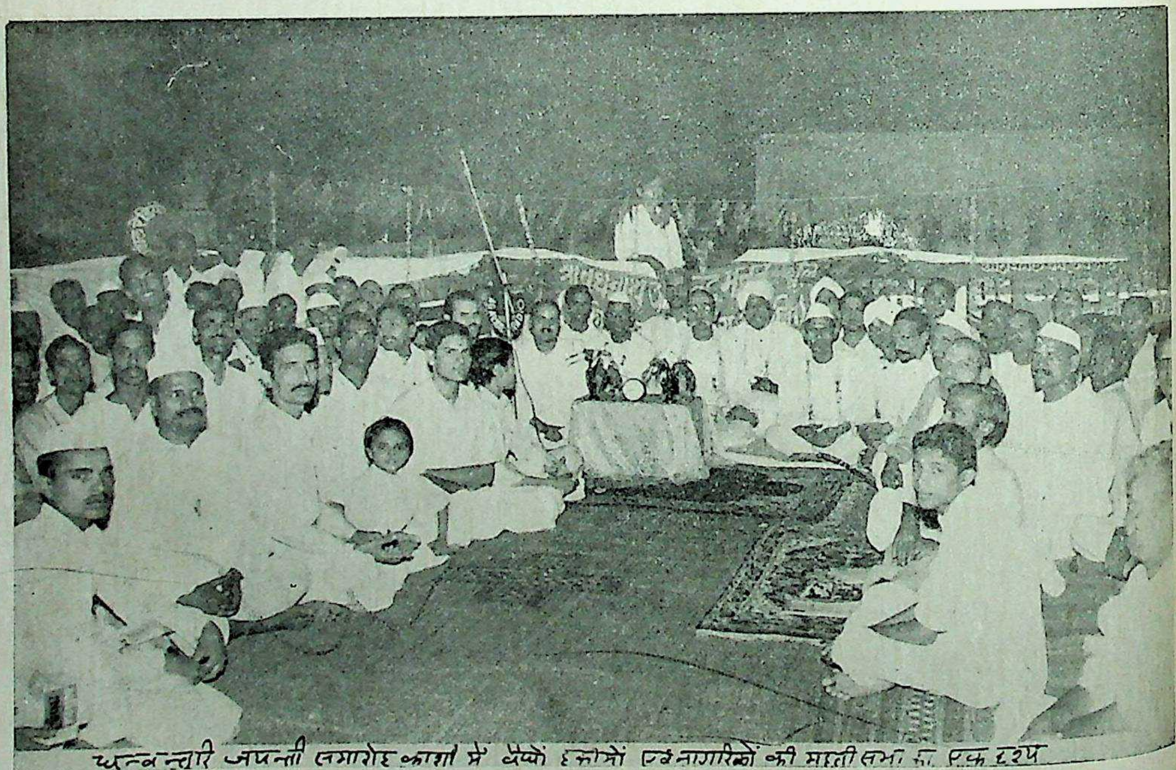
श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर जोधपुर में अनुष्ठित स्वास्थ्यदिवस

भवन प्राइवेट लि०
जोधपुर आयुर्वेदिक स्टोर्स, जोधपुर
श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव

श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर जोधपुर में अनुष्ठित स्वास्थ्यदिवस



श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर जबलपुर में अनुष्ठित स्वास्थ्यदिवस की सभा का एक दृश्य।



धन्वन्तरि जयन्ती समारोह काशी में वैद्यों छात्रों एवं नागरिकों की महती सभा का एक दृश्य

मेरठ में वैद्य रामनारायण शर्मा का स्वागत

मेरठ के वैद्य समुदाय ने दिनांक २८ अक्टूबर को 'सचित्र आयुर्वेद' के संचालक वैद्य श्री रामनारायण जी शर्मा के सम्मान में एक विशेष समारोह का आयोजन किया। श्रीयुत वैद्य जी "अखिल भारतीय देशी औषध-निर्माता सम्मेलन" की अध्यक्षता करने दिल्ली पधारे थे। इसी अवसर पर मेरठ और अलीगढ़ के वैद्य बन्धुओं ने वैद्यजी को अपने नगरों में आमन्त्रित किया था।

मेरठ में इस समारोह का आयोजन श्री सनातनधर्म मण्डल के भव्य प्रांगण में किया गया जो विशेष रूप से सजाया गया था। समारोह में मेरठ के स्थानीय तथा समीपवर्ती स्थानों के वैद्यगण पधारे थे। मेरठ आयुर्वेद विद्यालय के समस्त छात्र एवं छात्रायें उत्साहपूर्वक समारोह में सम्मिलित थे। वैद्य जी के सभास्थल पर पधारते ही तुमुल करतल-ध्वनि के साथ उपस्थित जन-समुदाय ने उनका हर्षपूर्वक स्वागत किया। प्रमुख वैद्यजनों ने पुष्पमालाएँ अर्पित कीं। मेरठ आयुर्वेद विद्यालय के प्रधान आचार्य श्रीयुत पण्डित लक्ष्मीनारायण मिश्र वैद्य आयुर्वेदाचार्य ने समारोह की संक्षिप्त प्रस्तावना प्रस्तुत करते हुए वैद्य जी के मेरठ पधारने पर हार्दिक हर्ष व्यक्त किया और स्वागत-समारोह की अध्यक्षता के लिए मेरठ क्षेत्र के प्रमुख एवं प्रसिद्ध वैद्य वयोवृद्ध पण्डित श्री गणेशदत्त जी शास्त्री का नाम प्रस्तुत किया। सर्व-सम्मति के आग्रह पर शास्त्री जी ने सभापति का आसन ग्रहण किया। तदनन्तर पण्डित दयाशंकर जी शुक्ल ने मधुर ध्वनि से वेदमन्त्रोच्चार कर मंगलाचरण किया। मेरठ आयुर्वेद विद्यालय के अध्यापक श्री शान्तिस्वरूप जी एम० एस-सी० ने विद्यालय की ओर प्रस्तुत अभिनन्दन पत्र पढ़ा और वैद्य जी को समर्पित किया। इसके अनन्तर मेरठ के प्रमुख चिकित्सक श्री शशिधर जी तिवारी ने अपने भाषण में वैद्य रामनारायण जी शर्मा के वास्तविक आयुर्वेद-हितैषी कार्यों का उल्लेख करते हुए उनका विनम्र अभिनन्दन किया। उन्होंने कहा कि हाल ही में आसवारिष्टों पर जो मद्य-कानून लगा दिया गया है, इसके विरोध के लिए वैद्य जी ने सबसे पहले आयुर्वेद-जगत् को प्रेरित किया है और कानून में सुधार कराने के लिए वैद्य जी विभिन्न प्रकार से गंभीर प्रयास कर रहे हैं। आसवारिष्टों पर लगे प्रतिबन्धों का उल्लेख करते हुए आपने कहा कि भारत की यह विशेषता है कि जब कभी हमारी संस्कृति पर कोई आघात हुआ तो पशुओं तक ने उसकी रक्षा में जीवन होम दिये। आयुर्वेद हमारी संस्कृति और हमारे जीवन का अंग है; सरकार इस महत्त्व को भले ही न समझे, किन्तु देश की कोटि-कोटि जनता से यदि पूछा जाय तो वह बता देगी कि वह आयुर्वेद को जानती है और आयुर्वेद को चाहती भी है। आयुर्वेद पर अनुचित कानूनों का आघात बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। आपने वैद्य-समाज से अपील की कि इस प्रश्न पर एक होकर अपने विज्ञान की रक्षा के लिए सक्रिय प्रयत्न करे। आपने कहा कि समय की यह मांग है कि देश के गाँव-गाँव में वैद्यों को जाग्रत करके दृढ़ संगठन बनाया जाय। आपने महासम्मेलन की स्थिति का उल्लेख करते हुए कहा कि उसमें कुछ स्वयंभू कार्यकर्त्ताओं ने धाँधलीबाजी करके उसको पवित्र उद्देश्य से विचलित कर दिया है। वैद्य-जगत् को सचेत होकर अपने इस प्राचीन संगठन को व्यवस्थित करना चाहिए ताकि उसकी व्यवस्था और आर्थिक स्थिति में जो गड़बड़ियाँ और धांधली हुई हैं, उनकी पुनरावृत्ति न हो सके। सम्मेलन की ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए। संगठन की दशा बहुत गिरी हुई है। इधर कई वर्षों में महासम्मेलन में आवरण के पीछे क्या होता रहा, इसका ज्ञान हमें 'सचित्र आयुर्वेद' द्वारा हो चुका है। इसका परिणाम यह होना चाहिए आयुर्वेद-जगत् सक्रिय होकर महासम्मेलन को सम्हाले। आयुर्वेद की शैक्षणिक अवस्था का उल्लेख करते हुए आपने कहा कि यह विचित्र बात है कि हमारे नये स्नातक अपने को वैद्य कहने में संकोच करते हैं। स्नातकों को कदापि आधुनिकता की ओर नहीं झुकना चाहिए। उनको कदापि मन में हीन भावना नहीं रखनी चाहिए। वे तो भविष्य के कर्णधार हैं; यदि भावी पीढ़ी में अभी से वैद्यकी को त्यागकर डाक्टरी-वृत्ति पनप जायगी तो आगे आयुर्वेद कहाँ रह सकेगा। संगठन और वास्तविक कार्य करके वैद्य-समाज को आयुर्वेद- शिक्षा के पक्ष को ऐसा बनाना चाहिए, जिससे आगे के स्नातक आयु-र्वेद के प्रति ही रुचि रख सकें। अन्त में आपने वैद्य जी के संगठनात्मक प्रयासों की प्रशंसा की और उस दिशा में अपना सहयोग देने का भरपूर आश्वासन दिया।

अभिनन्दन-पत्र

परमादरणीय श्रद्धेय वैद्यराज श्रीमान् पं० रामनारायण जी शास्त्री की पुनीत सेवा में सादर समर्पित

श्रद्धेय महानुभाव !

आज मेरठ आयुर्वेदिक कालेज के शिक्षक एवं विद्यार्थी वर्ग आपके मेरठ में शुभागमन पर अपने को गौरवान्वित समझते हुए परम प्रफुल्लित हो रहे हैं। आपका परिचय मेरठ निवासियों के लिये नवीन नहीं है। समाचार पत्रों, पत्रिकाओं में आपके लेख, आपके फोटो तथा आपका परिचय निरन्तर प्राप्त होता रहता है। आयुर्वेद-जगत में आपने जो ख्याति प्राप्त की है, वह अद्वितीय है। कहा जाता है कि सरस्वती और लक्ष्मी का परस्पर वैमनस्य होने से दोनों एक स्थान पर नहीं मिलतीं, किन्तु आप को दोनों ही का वरदान प्राप्त है ; लक्ष्मी और सरस्वती दोनों आपके यहाँ निवास करती हैं। एक ओर जहाँ आपकी गणना भारत के अच्छे विद्वानों, वैद्यराजों और लेखकों में की जाती है, तो दूसरी ओर आप आयुर्वेद-जगत् के कुबेरपति समझे जाते हैं। समुन्नत मस्तिष्क के साथ-साथ आपको हृदय की उदारता, सौम्यता, सरसता भी प्राप्त है। आधुनिक काल में आयुर्वेद की आप जो ठोस सेवाएँ कर रहे हैं, यह सर्वविदित है। आपके द्वारा संचालित बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की शाखाएँ, बिक्री-केन्द्र, एजेन्सियों तथा मासिक 'सचित्र आयुर्वेद' ने वास्तव में भारतवर्ष में आयुर्वेद का नाम तथा औषधियाँ घर-घर पहुँचा कर आयुर्वेद को पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त कराने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। आपके व्यक्तित्व से आयुर्वेद-जगत को बहुत आशाएँ हैं।

मेरठ नगर राजनैतिक, सामाजिक गतिविधियों का केन्द्र ही नहीं रहा है वरन् यह चिरकाल से प्रसिद्ध वैद्यराजों की भी भूमि रहा है, जिन्होंने यश और धन प्रचुरता से प्राप्त किया है। इस अवसर पर मेरठ आयुर्वेदिक कालेज का वर्णन करना भी अनुपयुक्त न होगा। यह संस्था ३ वर्ष पूर्व मेरठ के जनसमुदाय द्वारा स्थापित की गई थी, जिसमें बी० आई० एम० एस० डिग्री का पंचवर्षीय पाठ्य-क्रम है। इसमें इस समय एक सौ के लगभग छात्र और छात्रायें शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इस संस्था को इण्डियन मेडिसिन बोर्ड, लखनऊ द्वारा मान्यता प्राप्त है। गत वर्ष सरकार ने भी १५००) रुपये की अल्पराशि प्रदान करके इस संस्था को मान्यता दी है, किन्तु यह धनाभाव से पीड़ित है जिस कारण इसकी मान्यता नष्ट होने की सम्भावना बनी हुई है। अभी तक इसके पास न पर्याप्त भवन है न अन्य सामग्रियाँ ही, जिसके लिये यह संस्था आयुर्वेदप्रेमी महानुभावों की कृपादृष्टि के लिये एकटक निहार रही है। यह संस्था मेरठ तथा समीपवर्ती मुजफ्फरनगर, बुलन्दशहर, अलीगढ़, मुरादाबाद इत्यादि जिलों में एक ही है, जिस कारण इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

दानवीर यशस्वी महापुरुष !

हम अपने अतीव अल्प साधनों से आप का स्वागत करते हुए सकुचा-से रहे हैं, क्योंकि हम अनुभव करते हैं कि आप के गौरव एवं महानता के अनुरूप आपका स्वागत करने में हम असमर्थ हैं।

अन्त में हम पुनः अपनी श्रद्धाञ्जलि एवं पुष्पाञ्जलि आपकी सेवा में श्रद्धापूर्वक समर्पित करते हैं।

हम हैं आपके कृपाकांक्षी :
शिक्षक एवं छात्रवर्ग
मेरठ आयर्वेदिक कालेज,
नौचन्दी, मेरठ।

सोमवार दिनांक २८ अक्टूबर १९५७ ई०

वैद्य श्री लक्ष्मीनारायण पंचोली ने अपने भाषण में महासम्मेलन की स्थिति, 'सचित्र आयुर्वेद' की सेवायें, नेतृत्व की अकर्मण्यता, सुधार के प्रयत्न इत्यादि विषयों का उल्लेख करते हुए कहा कि छोटे-छोटे संगठनों के प्रयत्न से कुछ नहीं होगा। देश भर के वैद्यों का सच्चा प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था का प्रभाव हो सकता है। उस संगठन को ही सक्रिय बनाना चाहिए। यदि वर्तमान पदासीन लोग कार्य नहीं करना चाहते तो उन्हें सम्मानपूर्वक हट जाना चाहिए अथवा उनको योग्य और उदासीन विद्वानों को प्रेरित करके अपने साथ लेना चाहिए और यथार्थ कार्य करने की ओर प्रवृत्त होना चाहिए।

श्री विष्णुदत्त जी वैद्य ने निम्न प्रस्ताव प्रस्तुत किया—"मेरठ नगर के वैद्य बन्धुओं की यह महती सभा आयुर्वेद महासम्मेलन तथा तत्सम्बन्धित आयुर्वेद विद्यापीठ के वर्तमान वातावरण से अपने को असन्तुष्ट अनुभव करती हुई, यह निश्चय करती है कि आयुर्वेद के वास्तविक अभ्युत्थान के लिए आगामी आयुर्वेद महासम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में आयुर्वेद की ठोस सेवा करने के निमित्त बहुत सोच-विचार कर पग उठाती हुई, वर्तमान नेतृत्व का संगठित रूप से प्रतिरोध करके यथार्थ आयुर्वेद-सेवी भारतीय वैद्य जनता के शुभचिन्तक परमार्थी व्यक्तियों को सम्मेलन की बागडोर सौंपी जाय तथा इस सम्बन्ध में जो भी कठिनाइयाँ सम्मुख आवें उनका साहस के साथ सामना करने का पूर्ण निश्चय करके आयुर्वेद की वास्तविक सेवा का प्रण करती है।"

श्रीयुत पण्डित कृष्णदत्त जी वैद्य शास्त्री ने निम्न दूसरा प्रस्ताव प्रस्तुत किया—'मेरठ नगर के वैद्य जनों की यह सभा सरकार से अनुरोध करती है कि आयुर्वेद-चिकित्सा के प्राणगत आसवारिष्ट जो बिल्कुल ही मद्य की श्रेणी में आने योग्य नहीं हैं, परन्तु उन्हें मद्य की श्रेणी में रखकर उनके निर्माण तथा विक्रय पर जो प्रतिबन्ध लगाये गए हैं उन्हें शीघ्र ही बन्धनमुक्त कर अपनी आयुर्वेद-प्रियता का परिचय दे। पहले प्रस्ताव का समर्थन नगर वैद्य-सभा के प्रधान पण्डित श्री हरिदत्त जी शास्त्री ने किया। समर्थन के साथ शास्त्री ने अपनी संक्षिप्त किन्तु ओजस्वी वक्तृता में संगठन की वास्तविकता पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला।

दूसरे प्रस्ताव का समर्थन श्री रामतीर्थ धर्मार्थ चिकित्सालय के प्रधान जी ने किया और उक्त दोनों प्रस्ताव सर्वसम्मति द्वारा स्वीकार किये गए।

इसके उपरान्त मेरठ आयुर्वेद विद्यालय के विद्वान प्रधानाचार्य वैद्य श्री लक्ष्मीनारायण जी मिश्र आयुर्वेदाचार्य का बहुत ही गम्भीर भाषण हुआ। वैद्य रामनारायण जी के सम्बन्ध में बोलते हुए आपने कहा कि हम आज वैद्य जी का सम्मान करके अपने को ही गौरवान्वित कर रहे हैं। वैद्य जी उन विभूतियों में हैं जिनके हृदय में आज ही नहीं बहुत पूर्व से आयुर्वेद के उत्थान के लिए यथार्थ कार्य करने की लगन है। आपके द्वारा संस्थापित और संचालित श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन देखने में एक व्यावसायिक संस्था है, परन्तु उसके द्वारा आयुर्वेदोन्नति में विभिन्न स्रोतों से कितना कार्य होता है, यदि उसका अध्ययन कोई निकट से करे तो उसको मालूम होगा कि वह व्यावसायिक संस्थान से अधिक आयुर्वेद का एक व्यवस्थित विकास-केन्द्र है। इसी प्रकार वैद्य जी को जो कोई केवल व्यवसायी समझता है, वह इनके निकट संपर्क में आकर देखे तो सहज ही उसको यह आभास हो जावे कि वैद्य जी के प्रति अन्यथा सोचकर उसने अपनी बुद्धि के साथ कदाचार किया। वस्तुतः वैद्य जी जितने बड़े व्यापारी हैं, उससे बहुत बड़े मानव हैं, उनके मानव हृदय में वयोचित संस्कार हैं। आयुर्वेद के शास्त्रीय पक्ष के वे ज्ञाता हैं। देखने-सुनने में अत्यन्त साधारण लगने वाले श्री रामनारायण वैद्य अपने भीतर एक महान व्यक्तित्व छिपाये हुए हैं, जिसमें निर्दम्भ सात्विकता परिलक्षित होती है।

आपने आयुर्वेद और एलोपैथी की चर्चा करते हुए कहा कि भारत में एलोपैथी बहुत लोगों की सेवा नहीं करती। कुछ अंश में शिक्षित जनता के लोगों तक ही उसका कार्यक्षेत्र सीमित है; और यह नहीं कहा जा सकता कि शिक्षित जनता का वह थोड़ा-सा अंश भी एलोपैथी की अपेक्षा आयुर्वेद को पसन्द नहीं करता। ऐसी दशा में आयुर्वेद की जनप्रियता को कोई चुनौती नहीं दे सकता। जो कोई कहता है कि आयुर्वेद को जनता पसन्द नहीं करती, वह बड़ी गैर जिम्मेवारी की बात कहता है, और अगर वह आदमी जिम्मेवार है तो कहना होगा कि वह जिम्मेवारी के महत्त्व को नहीं समझता। विदेशी शासन काल में अंग्रेज हमारी हर चीज को हीन स्थिति का सोचता था। वही भावना उसने देश की जनता में भरी। इस प्रयास में अंग्रेज बहुत हदतक सफल हुआ। आज भी बाजार में साधारण चीजों में भी जब कोई रद्दी किस्म सामने आती है तो आसानी से कह दिया जाता है—'देशी है!'

खराब चीज का नाम ही देशी हुआ और देशी चीज का अर्थ ही खराब हो गया। हमारे नगरों के जन-जीवन में यह भावना अंग्रेजों की भरी हुई है। वह तो गये, परन्तु अंग्रेजियत हमारे मस्तिष्क पर शनि की छाया की भाँति विद्यमान है। वही भावना आज आयुर्वेद जैसा सर्वथा सम्पन्न चिकित्सा विज्ञान को अंग्रेजियत के साधनों से पढ़े लोगों को निरुपयोगी प्रतीत होता है; क्योंकि यह देशी है। परन्तु यह देश की करोड़ों जनता के जीवन में संस्कृति, सभ्यता, प्रकृति सबके साथ ऐसा घुला मिला है कि उसको विलग किया ही नहीं जा सकता। शासक वर्ग इस तथ्य को नहीं समझता, यह बात भी नहीं है। यह तो जनतन्त्र का समय है। इसमें सरकार का ध्यान वहीं ज्यादा जाता है, जहाँ ज्यादा शोर होता है। इसलिए आयुर्वेद के लिए पहले वैद्यों को सुसंगठित होना चाहिए, फिर जनता को साथ लेकर आयुर्वेद के उत्थान में सरकार को प्रवृत्त करने के हेतु ऊँचा स्वर उठाना चाहिए। निश्चय ही आज महासम्मेलन शिथिल है और उसमें बहुत खराबियाँ हैं। उसको सही मार्ग पर लाकर सक्रिय बनाना एक जिम्मेवारी का काम है। सारा वैद्य-समाज इस जिम्मेवारी को समझे। संगठन और कार्य-शक्ति दोनों पुष्ट हों तब आयुर्वेद की उन्नति होगी। सरकार को कोसने से कुछ नहीं होगा। सारे देश में वैद्य फैले हैं। गाँव-गाँव, नगर-नगर में उनकी सभाएँ हों—स्वर उठे तो सरकार का ध्यान अवश्य जायगा। हम एक होकर सरकार के सामने न्यायोचित मांगें रखें, वे न मानी जावें तो अहिंसात्मक सत्याग्रह की तैयारी की जाय। आज मामूली लोग भी संगठन के बल पर अपनी उन्नति कर रहे हैं। समय आयगा जब एलोपैथी वाले भी हिन्दी में नुस्खे लिखेंगे और आयुर्वेदिक चिकित्सा करेंगे। वह समय आपके त्याग और बलिदान से आयगा। उठिये और संगठन का शंखनाद कीजिए।

इसके उपरान्त वैद्य श्री रामनारायण जी शर्मा ने उपस्थित समुदाय को सम्बोधित करते हुए कहा कि आपने— मेरा सम्मान किया यह आपकी कृपा और उदारता है। मैं आयुर्वेद का साधारण सेवक हूँ। यदि आपलोगों को मेरी बात अच्छी लगती है तो वह भी आपकी गुणग्राहकता है। मैं तो एक ही बात आपसे कहता हूँ कि जिसके द्वारा आप जीविका पाते हैं उस आयुर्वेद की उन्नति के लिए जी-जान से प्रयत्न कीजिए। उसमें ही आपकी उन्नति निश्चित है। सरकार की आयुर्वेद-नीति का उल्लेख करते हुए आपने कहा कि वर्तमान में सरकार की नीति जो आयुर्वेद-विरोधी कही जाती है, उसका कारण हमारा स्वयं का अकर्तव्य है। केवल इस कारण से कि आयुर्वेद में कमियाँ हैं, उसको छोड़ा नहीं जा सकता। कमियाँ खादी में भी थीं, परन्तु उसको अपनाया गया। आयुर्वेद को भी उसी प्रकार निश्चित रूप से अपनाया जायगा। सरकार पंचवर्षीय विकास योजनाओं के कारण आर्थिक संकट में है। उस संकट में सरकार को आयुर्वेद का सहारा लेना पड़ेगा। आप सरकार की नीति की चिन्ता छोड़ कर अपना संगठन और अपने विज्ञान के विकास का काम कीजिए। अपने को शीघ्र उस दिन के लिए तैयार कीजिए जब सरकार देश की स्वास्थ्य-समस्या के समाधान में आपकी सहायता माँगे। आत्मविश्वास रखिए और हीनता की भावना मन से निकाल दीजिए। अपने अधिकार को पाने के लिए आपको साहस के साथ आगे आना होगा। हमारी संगठन-शक्ति न होने का परिणाम है कि देशी दवाओं पर सरकार के अनभिज्ञ अधिकारी मनमाना कानून लगा देते हैं। आसवारिष्ट कानून ऐसा ही है। पंजाब में वैद्यों को दवाओं के लिए अहिफेन और भंग नहीं दी जाती। यदि आपका संगठन दृढ़ हो और आपके स्वर में बल हो तथा सरकार को वस्तुस्थिति समझायी जाय तो कदापि ऐसा नहीं हो सकता। आसव-अरिष्ट पर मद्य-कर कानून ऐसा है, जिसके कारण प्रत्येक छोटे से छोटे वैद्य दिक्कत में आयंगे। अ० भा० देशी औषधि निर्माता संघ उस संकट के निवारण के लिए प्रयत्न कर रहा है। आपके हितों की रक्षा एक सुदृढ़ और सुव्यवस्थित संस्था ही कर सकती है। उसके लिए आपलोग मिलकर अपने महासम्मेलन को सुधारिये।

आयुर्वेदिक शिक्षण-प्रशिक्षण की स्थिति पर दुःख प्रकट करते हुए वैद्य जी ने कहा कि हमारी हीन दशा का सबसे मुख्य कारण यही है कि हमारा ज्ञान-प्रसार का साधन ही पर्याप्त और उचित नहीं है। इस दिशा में सबसे पहले ध्यान देना चाहिए। एलोपैथी विद्यालय की केवल इमारत में तीन लाख व्यय हो जाता है। उतने में आयुर्वेद के कई विद्यालय खुल सकते हैं। विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए वैद्य जी ने कहा कि आप डाक्टरों की नकल करने की बात मन में मत सोचिए। यथार्थवादी बनिये। वैद्यक बड़ा पवित्र

(शेषांश ५७८ पृष्ठ पर)

अलीगढ़ में वैद्य रामनारायणजी का अभिनन्दन

अलीगढ़ जिला वैद्य-सम्मेलन की ओर से गत २९ अक्तूबर को अपराह्न, अलीगढ़ में एक भव्य समारोह का आयोजन किया गया। आ० भा० देशी औषध-निर्माता-संघ में सहयोग के हेतु परामर्श करने वैद्य रामनारायण शर्मा श्री धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ के अध्यक्ष वैद्यराज श्री देवी शरण जी गर्ग से मिलने पधारे थे। उक्त समारोह इसी अवसर पर वैद्य जी के अभिनन्दन में सम्पन्न हुआ।

विशेष रूप से सुसज्जित पण्डाल में अलीगढ़ जिला के लगभग तीन सौ वैद्य उपस्थित थे। वैद्य जी के सभास्थल पर पहुँचते ही उपस्थित वैद्यवर्ग ने करतलध्वनि के साथ उनका स्वागत किया। जनपद वैद्य सभा के अध्यक्ष वैद्य पं० ईश्वरचन्द्र जी प्राणाचार्य, जनपद-सभा के मंत्री वैद्य पं० दीनदयालु जी उपमन्यु, नगर वैद्य सभा के मंत्री कविराज पं० रमेशचन्द्र जी शर्मा तथा संगठन मंत्री पं० प्यारे लाल जी शर्मा वैद्य, वाणीभूषण वैद्यराज पं० रामचन्द्र जी, वैद्य श्री रवीन्द्रचन्द्र जी कुलश्रेष्ठ तथा प्रचार मंत्री डाक्टर श्री तेजपाल सिंह जी बी० आई० एम० एस० इत्यादि प्रमुख व्यक्तियों ने वैद्य जी को मालार्पण किया।

नगर सभा के मन्त्री पं० श्री दीनदयालु जी वैद्य उपमन्यु के प्रस्ताव तथा आयुर्वेदाचार्य पं० रामदयालु जी एवं संगठन मंत्री जी के समर्थन तथा सर्वसम्मति के आग्रह पर करतल-ध्वनि के बीच वाणीभूषण मान्य श्री वैद्यराज रामचन्द्र जी शास्त्री ने सभापति का आसन ग्रहण किया। अभिनन्दन समारोह के स्वागताध्यक्ष एवं अलीगढ़ जिला वैद्य सम्मेलन के अध्यक्ष वैद्यराज श्री ईश्वरचन्द्र जी प्राणाचार्य ने अपना प्रस्तावना भाषण देते हुए कहा कि 'बहुधा लक्ष्मी एवं सरस्वती का विरोध देखा जाता है, परन्तु इन दोनों का अन्यतम सौजन्य एक व्यक्ति में हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं, यह आयुर्वेद-जगत् का सौभाग्य है और यह देखकर कि ऐसा महान व्यक्ति हम में से ही एक है, हम गर्व से उल्लसित हो जाते हैं। आज, हमारे अनेक बार के निमन्त्रण के बाद, वैद्य रामनारायण जी यहाँ पधारे और हमें उनके अभिनन्दन का अवसर मिला, यह हम सबके लिए सौभाग्य की बात है। वैद्य जी की आयुर्वेद-सेवाओं का विस्तार से उल्लेख करते हुए श्री प्राणाचार्य जी ने जिला वैद्य सम्मेलन की ओर से वैद्य जी को अभिनन्दन पत्र भेंट किया। जलाली (अलीगढ़) से पधारे विद्वद्वर पंडित श्री रघुवीरदत्त जी वैद्य ने ललित संस्कृत पदों में एक सुन्दर कविता वैद्य जी के सम्मान में प्रस्तुत की। जलाली के ही एक अन्य नवयुवक वैद्य श्री ओ३म्प्रकाश गुप्त ने अपनी संक्षिप्त वक्तृता में वैद्य रामनारायण जी के सम्पर्क में रहने विषयक अपने कुछ महत्वपूर्ण संस्मरण सुनाये। नेशनल मेडिकल एसोसियेशन उत्तर प्रदेश के सदस्य आयुर्वेदाचार्य श्री रवीन्द्रचन्द्र जी कुलश्रेष्ठ ने अपने भाषण में 'सचित्र आयुर्वेद' के उच्चस्तर की सराहना करते हुए कहा कि आयुर्वेद-जगत में एक मात्र यही पत्र है जिसको सर्वोपरि कहा जा सकता है और जिसके द्वारा आयुर्वेद-जगत् में ज्ञान-प्रसार का बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। आपने वैद्य जी के प्रयासों में श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की स्थापना और उसके द्वारा अद्वितीय स्तर के आयुर्वेद-यूनानी साहित्य-प्रकाशन की विस्तार से सराहना की। आपने कहा 'श्रीयुत वैद्य जी के अनुसन्धान इत्यादि के भावी कार्यक्रम निश्चय ही आयुर्वेद-जगत् के लिए आशा-केन्द्र हैं। आपने आग्रह किया कि जनता में अधिक संख्या में आतुरालय खोलें। आयुर्वेदोक्त पंचकर्म-विधान और रसायन-सेवन के प्रत्यक्षीकरण से आयुर्वेद का व्यापक प्रचार होगा। वास्तविक कार्य करने का अवसर आ गया है। अन्त में आपने वैद्यगणों को संगठित होकर स्वयं कुछ कहने और वैद्य जी सदृश व्यक्तियों से कार्य कराने का अनुरोध किया। कविराज डाक्टर श्री पन्नालाल जी ने अपने भाषण में इस बात पर अधिक बल दिया कि हमारा सम्मिलित प्रयास इस दिशा में अधिक होना चाहिए और प्रत्यक्ष कार्यों द्वारा हमें सिद्ध करना चाहिए कि आयुर्वेद केवल चिकित्सा का शास्त्र नहीं है। वह तो जीवन का शास्त्र है इसी लक्ष्य से आयुर्वेद का प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए। आयुर्वेदाचार्य पण्डित रामदयालु जी वैद्य ने अपने विस्तृत भाषण में आदर्श जीवन के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि जीवन की सच्ची परिभाषा का ज्ञान रखने वाले श्रेष्ठ मनीषी होते हैं—इस दृष्टि से हमारे मुख्य अतिथि वैद्य रामनारायण जी आदर्श वैद्य और विद्वान हैं। आगे आपने अतीत और वर्तमान का विश्लेषण करते हुए कहा कि इस देश पर आपत्तियों की

आयुर्वेदोद्धारक पं० रामनारायण जी वैद्य शास्त्री

के करकमलों में सादर समर्पित

अभिनन्दन-पत्रम्

भिषक् शिरोमणि !

आज हम सब अलीगढ़ जिला वैद्य सम्मेलन के चिकित्सक-वैद्य एवं हकीम श्रीमान् के सद्गुणों, आयुर्वेद के प्रति अगाध श्रद्धा एवं उच्चादर्श से सम्प्रेरित होकर संगठन में एकत्रित हुए, अवर्णनीय श्रद्धा के साथ आपका शुभाभिनन्दन करते हर्षित होते हैं।

हे सौजन्य धन्य मूर्ति !

आपने नियमित रूप से देववाणी एवं आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की और एक सफल चिकित्सक के रूप में जीवन संग्राम प्रारम्भ किया। अतुलनीय अध्यवसाय, अगाध परिश्रम और गहरी कर्त्तव्यनिष्ठा के द्वारा श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन जैसे आयुर्वेदीय प्रतिष्ठान को जन्म दिया और उसके कार्यकलाप की आशातीत वृद्धि की; इसे देखकर किस आयुर्वेद-प्रेमी को प्रसन्नता नहीं होती है। आपके द्वारा संस्थापित यह प्रतिष्ठान रूपी वृक्ष अपने फलों के रूप में देश और विदेश में विशुद्ध आयुर्वेदीय औषधियों की जिस प्रकार पूर्ति कर रहा है यह अनिर्वचनीय है। इस नवीनता के युग में आयुर्वेदीय चिकित्सक उत्तम औषधियों के बिना कभी भी जनता की समुचित सेवा करने में समर्थ नहीं हो सकते थे। ऐसी अवस्था में आपके द्वारा गाँव-गाँव और घर-घर में विशुद्ध औषधियों को पहुँचाने की चेष्टा व्यावसायिक दृष्टि से ही नहीं वरन् जनसाधारण के कल्याण की दृष्टि से परम महत्त्व का स्थान रखती है। एतदर्थ भारत की जनता और सरकार आपकी आभारी रहेंगी।

आयुर्वेदैकचिन्तन परायण !

आपके द्वारा अहर्निश आयुर्वेद की अभिवृद्धि के जो कार्य किये जा रहे हैं, उनकी सूची सम्भव नहीं है। प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वर्गीय आचार्य यादव जी के निर्देशन में उत्तमोत्तम आयुर्वेदीय एवं यूनानी ग्रन्थों का प्रकाशन, यहाँ तक कि स्वयम् महाराज के जीवन के अनुभवों का घर-घर प्रचार, शिक्षा सम्बन्धी तथा इसी प्रकार की विभिन्न आयुर्वेदीय संस्थाओं की प्रत्येक प्रकार की सेवा, विभिन्न प्रकार की शास्त्रीय गुत्थियों को सुलझाने के हेतु परिषदों का आयोजन, आयुर्वदज्ञों एवं विद्वानों को प्रोत्साहन देना, छात्रों की सहायता, चिकित्सालयों की स्थापना एवं नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की प्रशस्तता के लिये अकथ धनव्यय व परिश्रम आदि कितने ही कार्य हैं जिनसे आपकी कीर्ति की धवलिमा देश के कोने-कोने में फैल रही है। तथापि आपने एक विपुल धन राशि से आयुर्वेद के अनुसंधान कार्य को प्रारम्भ करने का जो शुभ संकल्प किया है, उससे सभी आयुर्वेद-प्रेमी एवं आयुर्वेदज्ञों को आपके सत्कार्यों में जो आस्था है उसमें वर्णनातीत वृद्धि हुई है।

विज्ञवर !

आपने अपने जीवन में जो धन और यश प्राप्त किया है वह दुर्लभ है। किन्तु इससे अधिक हमें आपके व्यक्तिगत गुणों पर श्रद्धा है। आप वैभव के मद में मत्त न होकर मानवोचित गुणों के आगार हैं। अभिमान आपको स्पर्श करने में भी समर्थ नहीं हो सका है। मित्रों के आप सदैव ही मित्र हैं। उनके प्रति आपका व्यवहार आधुनिक काल में भी कभी-कभी सुदामा और श्रीकृष्ण का संस्मरण कराता है। संयमित जीवन, संतुलित आहार, सुनियोजित आचरण, विनयसम्पन्न व्यवहार तथा अतुलनीय आस्तिकता आदि गुण आपके व्यक्तित्व की ओर बरबस प्रत्येक अपने-पराये को, जो संपर्क में आता है, आकर्षित कर ही लेते हैं।

महामाननीय !

यद्यपि आपकी संस्था के केन्द्र सारे देश में हैं किन्तु अब आपने अपना प्रधान केन्द्र जह्नुतनया भागीरथी, सूर्यतनया यमुना और अन्तःसलिला सरस्वती के पावन केन्द्रस्थल में संस्थापित करने का निश्चय किया है। इस शुभ समाचार से हम उत्तर प्रदेश के चिकित्सकों को परम संतोष है। हमें विश्वास है कि आपके द्वारा तीर्थराज प्रयाग में भारद्वाज के आश्रम की वह कल्पना एक बार पुनः साकार हो सकेगी और वहाँ से आयुर्वेदीय ज्ञान का प्रसार संसार को पुनः प्राप्त हो सकेगा। अन्त में हम अपने बीच में पधारने हेतु आपका आभार प्रदर्शित करते हैं।

अलीगढ़ जिला वैद्य सम्मेलन

ऐसी घटाएँ आईं कि जिनमें संस्कृति, विज्ञान, विद्वत्ता और साथ ही आयुर्वेद का भी दुःखद ह्रास हुआ। अब उसके उठने का अवसर आया है और आयुर्वेद को उठाने के लिए वर्तमान में गम्भीर प्रयास होने लगे हैं, उन कार्यों में वैद्य रामनारायण जी अग्रगण्य हैं। आयुर्वेद की शुद्ध औषधों के निर्माण और प्रचार-प्रसार का जितना विशाल और विस्तृत उद्योग आपका है, उतना विदेशों में भी ऊंगलियों पर गिनने योग्य होगा। अनेक आयुर्वेदीय शिक्षण संस्थाओं और सैंकड़ों छात्रों को प्रतिवर्ष आर्थिक सहायता देकर वैद्य जी ने आयुर्वेद के शिक्षण-क्षेत्र में उत्कृष्ट सेवायें की हैं।

सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति विद्वद्वर वैद्य पण्डित इन्द्रमणिजी शास्त्री ने अपने भाषण में कहा कि निश्चय ही वैद्य जी के दर्शनों की मेरे मन में उत्कंठा थी। इधर समाचार पत्रों में आपके कार्यों के विषय में पढ़ता रहा और उत्कण्ठा बढ़ती गयी। वैद्य जी आज आयुर्वेद में जागृति की ज्योति जगाने का जो कार्य कर रहे हैं; वह सबसे बड़ी सामयिक और अत्यावश्यक सेवा है। वैद्य-समाज में आज जागृति की ही कमी उसके ह्रास का प्रधान कारण है। वैद्य जी के कार्यों में हम सबको कंधा लगाना चाहिए। भूतपूर्व सभापति एवं अलीगढ़ के विख्यात चिकित्सक पण्डित वैद्य रामचन्द्र जी आयुर्वेद-साहित्य शास्त्री ने श्रीयुत वैद्य जी से अपने क्षणिक परिचय का उल्लेख करते हुए कहा कि आज ही श्री धन्वन्तरि कार्यालय जाते-आते वैद्य जी से मेरा सम्पर्क हुआ। इन कुछ घण्टों में ही मैंने देखा कि इस आत्मा में आयुर्वेदोत्थान के लिए वास्तविक और अप्रतिम लगन है। आसवारिष्टों पर लगे सरकारी कानून के प्रतिरोध के लिए वैद्य जी ने हालमें ही जो व्यापक प्रयास किये, शास्त्रीजी ने उनका विस्तृत उल्लेख करते हुए कहा कि किसी आयुर्वेद नेता को यह चिन्ता न हुई कि इस कानून के कारण आसवारिष्टों का अल्प साधन से जो प्रत्येक वैद्य निर्माण कर लेता है, वह संकट में आ जायगा और छोटे-छोटे निर्माता तो अपना निर्माण बन्द करने को ही बाध्य हो जावेंगे, ऐसी दशा में आयुर्वेद-पद्धति के इस महत्त्वपूर्ण अंग का जो ह्रास होगा उसके लिये क्या करें। मैं कह सकता हूँ कि वैद्य जी का आयुर्वेद और वैद्य समाज के लिए बहुत विशाल दृष्टिकोण है, सामूहिक हित के लिए कार्य करते रहने की इनमें अद्वितीय लगन है। संगठन में दृढ़ता लाने के लिए वैद्य जी के उद्बोधक प्रयत्न आयुर्वेद-जगत् के लिए कल्याणकर हैं। ऐसे महामनीषी के अभिनन्दन का आयोजन का अवसर हम अलीगढ़ वासी वैद्यों को मिल सका यह यथार्थ सौभाग्य की बात है। आपने कहा कि वैद्य जी के पधारने की अल्पसूचना के कारण यहाँ के वैद्य जैसा आयोजन करना चाहते थे, वैसा न हो सका और मैं तो वैद्य जी से सादर साग्रह अनुरोध करता हूँ कि कभी फिर पधार कर हमलोगों को अपने हार्दिक भाव व्यक्त करने का अवसर देवें।

सुविख्यात वैद्यराज पण्डित मुकुन्दहरि जी शास्त्री ने अपने भाषण में अलीगढ़ जिले की आयुर्वेदीय गतिविधियों का इतिहास विस्तार से प्रस्तुत किया। आपने विद्वत्सम्मेलन के कार्यों का भी उल्लेख किया। इसके अतिरिक्त आयुर्वेदाचार्य पण्डित चन्द्रभानु जी, वैद्य श्री प्रतिभारंजन जी ए० एम० एस० आदि वैद्यों के श्री रामनारायण जी वैद्य के सम्मान में महत्त्वपूर्ण भाषण हुए।

अलीगढ़ के परमोत्साही वैद्य और जिला वैद्य सम्मेलन के मन्त्री श्रीयुत पंडित दीनदयालु जी उपमन्यु वैद्य ने श्री रामनारायण जी के अभिनन्दन में अपना स्वरचित कवितावद्ध अभिनन्दन पत्र पढ़ा और वैद्य जी को भेंट किया।

समारोह के सभापति व्योवृद्ध वैद्यवर वाणीभूषण पण्डित श्री रामचन्द्र जी शास्त्री ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि इस प्रकार से समाज के उत्थान के लिए और विद्या के प्रचार के लिए महत्त्व पूर्ण और ऐतिहासिक कार्य करने वाले सद् विद्वानों का अभिनन्दन करके अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट करने की हमारे देश की सांस्कृतिक परम्परा बहुत प्राचीन है। वैद्य रामनारायण जी का अभिनन्दन करके हमलोग अपने कर्त्तव्य का ही पालन कर रहे हैं। इनके जीवन के उत्कृष्ट आयुर्वेद-सेवा के कार्यों से समाज को उठाने की और स्व-हित के लिए कुछ करने की प्रेरणा मिलती है। मैं इनकी चिरायु की कामना करते हुए इनके द्वारा आयुर्वेद और वैद्य-समाज के हित के बहुत से वास्तविक कार्य होने की आशा रखता हूँ।

अन्त में अभिनन्दन का उत्तर देते हुए वैद्य जी ने कहा कि मैं आपके यहाँ आकर जितना कृतकृत्य हुआ हूँ, उसको वाणी से व्यक्त नहीं कर सकता। आपके प्रेम में मुझं को सच्ची आत्मीयता के दर्शन हो रहे हैं। यहाँ उपस्थित वैद्य बन्धुओं की इतनी बड़ी संख्या देखकर मुझको आत्मिक आनन्द हो रहा है। हमलोग इस प्रकार यदा-कदा एकत्र होकर अपने विज्ञान की उन्नति के लिए अपनी समस्याओं

के सुलझाने के लिए विचारों का आदान-प्रदान किया करें तो हममें संगठित होकर कुछ वास्तविक कार्य करने की प्रेरणा जागृत होगी। अलीगढ़ में आपलोगों का इतना अच्छा संगठन है, यह हर्ष की बात है। आयुर्वेद की वर्तमान स्थिति का उल्लेख करते हुए वैद्य जी ने कहा कि निश्चय ही यह समय आयुर्वेद के लिए उत्थान पतन का निर्णायक है। मैं इस बात में रंचमात्र संदेह नहीं करता कि आयुर्वेद का भविष्य तो निर्विवाद रूप से असंदिग्ध हैं; परन्तु वर्तमान के प्रति सजग न रहकर हम आगे वाली अपनी पीढ़ियों के प्रति बहुत बड़ा अन्याय करेंगे। एक तथ्य है कि केवल भाषणबाजी और दूसरी पद्धतियों पर आरोप-प्रत्यारोप का समय अब नहीं है। चिन्ता यह करना है कि आयुर्वेद अपने निजके रूप में जीवित रहे और फले फूले! इसके लिए यथार्थ कार्य करने की आवश्यकता है। यथार्थता से भिन्न कार्य करते रहे तो कहा नहीं जा सकता कि आगामी पीढ़ी में कोई वैद्य होगा और सभी डाक्टर न होंगे। आज तो दशा यह है कि वैद्य जो हैं वे भी डाक्टर बनते जा रहे हैं—यह गति कहाँ ले जायगी। वैद्य-समाज को यदि वैद्य बनने की और आयुर्वेद की रक्षा करनी है तो उसको संगठित होना चाहिए और यथार्थ तथा सक्रिय कार्य करना चाहिए। विज्ञान की उन्नति तो अनुसन्धान से होगी, इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता; परन्तु समाज की उन्नति होगी ज्ञान के प्रसार से। जो जिस कार्य को कर सकता है, उसे वह कार्य करना चाहिए। सभी अनुसन्धान के लिए आवाज़ उठाते रहें तो कुछ काम नहीं होगा और ज्ञान का स्तर गिरता चला जायगा तो वैद्य समाज जीवित नहीं रहेगा। इसलिए आज यह आवश्यकता है कि, आयुर्वेदोत्थान और वैद्य समाज के विकास के लिए दोहरे प्रयत्न होने चाहिए। अनुसंधान का कार्य सरकार का है और साधनसम्पन्नों का है। उच्च-कोटि के विद्वानों के सहयोग से ही वह हो सकता है। दूसरी बात अनुसन्धान एक-दो दिन या एक-दो वर्ष का काम नहीं। युगों तक उसकी गति अबाध रहनी चाहिए। उसका कभी कोई अन्त नहीं है। जरूरत है उसको अबाध चलाते रहने के लिए ऐसे लोगों को बनाते रहने की जो समर्थता-पूर्वक उसको आगे चलाते रहें। लोगों का निर्माण ज्ञान-प्रसार से होगा, इसलिए मैं तो वैद्य समाज से पहला निवेदन यही करता हूँ कि आप प्राथमिकता दीजिए अपने शिक्षा के साधनों को दृढ़ और व्यवस्थित करने वाले प्रयत्नों को। जो लोग अनुसन्धान कर सकते हैं, वे उसमें लग जावें और हमारा समाज लग जावे अनुसन्धान करने वालों का निर्माण करने में। आपका स्थान बहुत बड़ा है। इतनी बड़ी संख्या में उत्साही वैद्य अन्यत्र सहज ही सुलभ नहीं। आप-लोगों में लगन है। अपने यहाँ एक अच्छा आयुर्वेद विद्यालय स्थापित कीजिए। कार्य करना आरंभ कर दीजिए; आपको सब ओर से योग मिलेगा। वैद्य जी ने अन्त में अभिनन्दन के लिए समारोह-आयोजन करने के प्रति वैद्यगणों का हार्दिक आभार माना और विनम्र कृतज्ञता व्यक्त की।

अन्त में उपस्थित जनों की सामूहिक स्वल्पाहार गोष्ठी का आयोजन हुआ।

शेषांश]

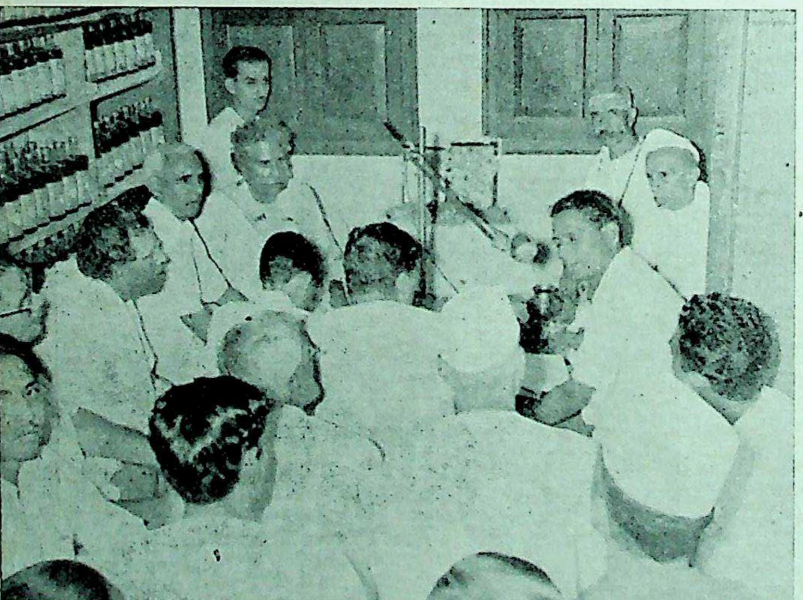
मेरठ में वैद्य रामनारायण शर्मा का स्वागत

[५७४ पृष्ठ का

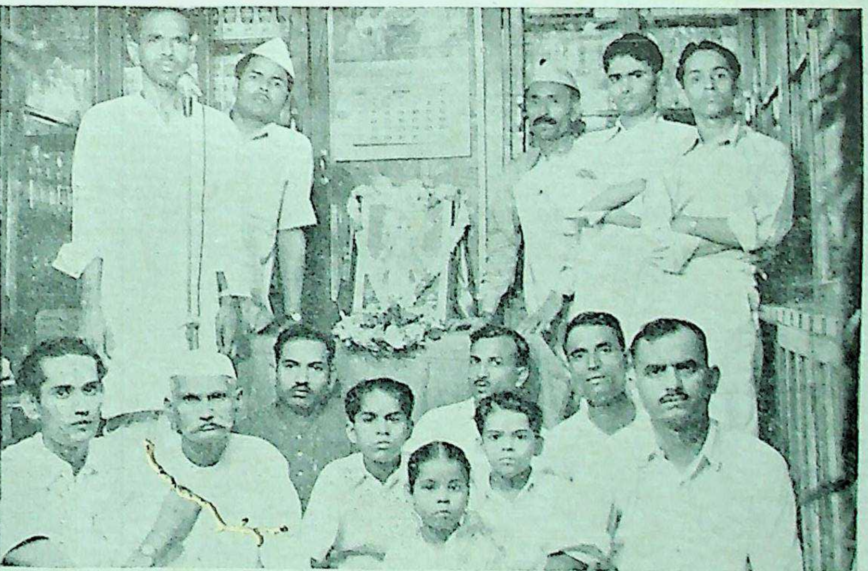
पेशा है और उसका उच्च स्थान है। सदाचारी, परसेवी, उदार और विशाल हृदय बनिये। आप जो शिक्षा ले रहे हैं उसको केवल कमाने के लिए मत समझिये। सेवा की भावना रखेंगे और अपनी परम्पराओं पर दृढ़ रहेंगे तो निश्चित रूप से आप सुख-समृद्धि से सम्पन्न होंगे। अन्त में वैद्य जी ने पुनः मेरठ के वैद्यजनों के प्रति आभार व्यक्त किया। अन्त में सभापतिपद से बोलते हुए वयोवृद्ध वैद्य पं० श्री गणेशदत्त जी शास्त्री ने वैद्य जी के आयुर्वेद-हित कार्यों की विस्तार से चर्चा करते हुए उनकी हार्दिक प्रशंसा की। आपने वैद्य समाज से अपील की कि वैद्य जी के प्रयासों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलें। आयुर्वेद महासम्मेलन की चर्चा करते हुए शास्त्री जी ने कहा कि वह हमारी एक मात्र पुरानी संस्था है; उसमें जो दोष आ गये हैं उनके परिहार की आप में शक्ति है, संगठित स्वर उठाइए और अधिकारियों को विवश कर दीजिए कि वे कार्य करें या करने दें। अन्त में पुनः वैद्य जी का उल्लेख करते हुए निम्न श्लोक के साथ शास्त्री जी ने अपना भाषण समाप्त किया।

भैषज्य निर्माणकला कलामणिः,
सच्छास्त्र साहित्य सुधाकरोऽयम्।
श्री रामनारायण वैद्यवर्यः,
चिरं चिरं जीवतु मेऽभिलाषा ।।

इस समारोह के अतिरिक्त वैद्य जी को मेरठ आयुर्वेदिक कालिज में अध्यापकों द्वारा स्वल्पाहार दिया गया।

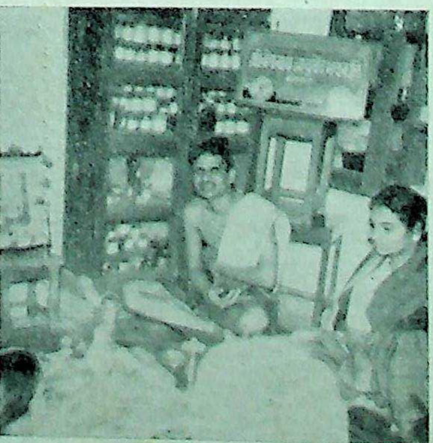


धन्वन्तरि जयन्ती पर इलाहाबाद में अनुष्ठित स्वास्थ्य-समारोह की सभा का दृश्य

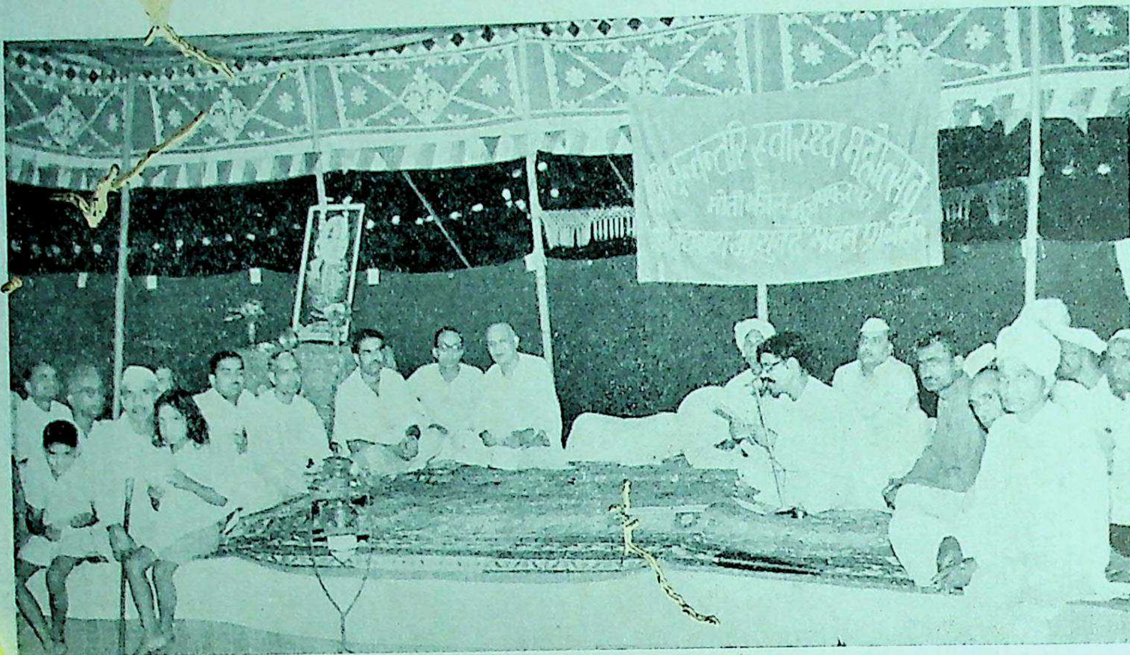


धन्वन्तरि जयन्ती पर खिदिरपुर (कलकत्ता) में अनुष्ठित स्वास्थ्य-समारोह

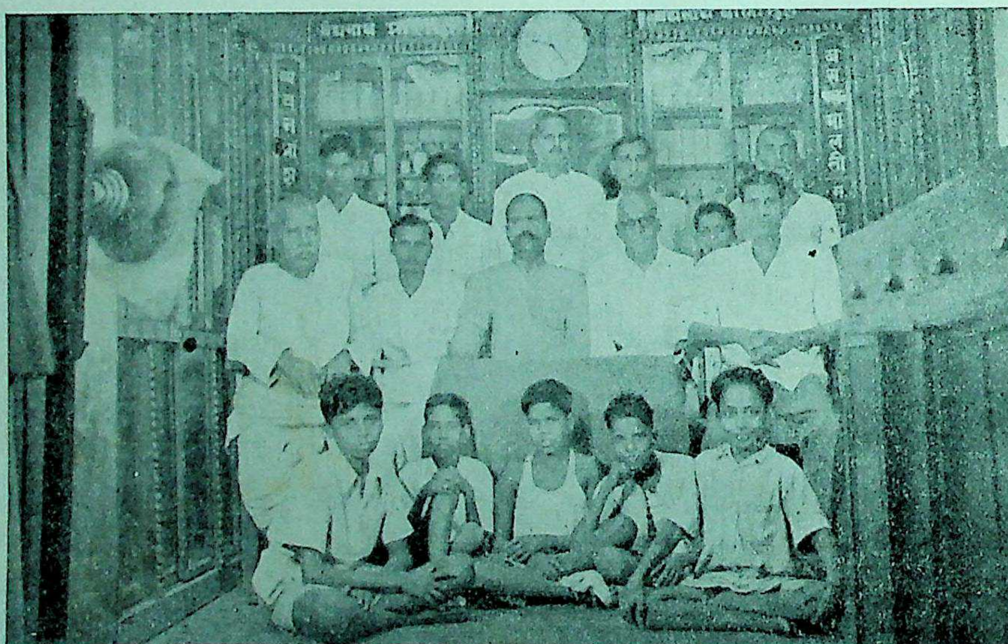




धन्वन्तरि जयन्ती पर काकीनद में अनुष्ठित स्वास्थ्य-समारोह की सभा के दो दृश्य



धन्वन्तरि जयन्ती पर मुजफ्फरपुर में अनुष्ठित स्वास्थ्य-समारोह की सभा का एक दृश्य



धन्वन्तरि जयन्ती पर टीटागढ़, (२४ परगना) में अनुष्ठित स्वास्थ्य समारोह की सभा का दृश्य

आयुर्वेद-यूनानी को राष्ट्रीय चिकित्सा बनाया जाय

देश भर में स्वास्थ्य-दिवस पर विराट सभाएं

आसवारिष्टों पर मद्य-कर का तीव्र विरोध

महासम्मेलन-विद्यापीठ के सुधार की सर्वत्र मांग

'सचित्र आयुर्वेद' के संचालकों की देशव्यापी अपील पर इस वर्ष सम्पूर्ण देश में श्री धन्वन्तरि-जयन्ती के उपलक्ष में समारोहपूर्वक स्वास्थ्य-दिवस मनाया गया। कुछ स्थानों पर तो इस अवसर पर स्वास्थ्य-सप्ताह का आयोजन किया गया, जिसमें सप्ताह भर जनता में स्वास्थ्य-रक्षण के नियमों का प्रचार किया गया और निःशुल्क चिकित्सा एवं परामर्श के केन्द्र चलाये गये।

धन्वन्तरि-जयन्ती के दिन श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के देशव्यापी केन्द्रों के सहयोग में प्रायः तीन सौ से ऊपर प्रमुख नगरों में सर्वसाधारण नागरिकों एवं वैद्य-हकीमों की वृहत् सभाओं का आयोजन किया गया, जिनमें स्थान-स्थान पर प्रमुख नागरिकों एवं आयुर्वेद के प्रभावशाली विद्वानों ने भाग लिया। इन सभाओं में जन-नेताओं, नागरिक प्रतिनिधियों एवं विद्वान वैद्य-हकीमों के ओजस्वी एवं महत्वपूर्ण भाषण हुए। भाषणों में आयुर्वेद-यूनानी की समन्वयात्मक विशेषताओं, जन-स्वास्थ्य की स्थिति और तदर्थ प्रयासों की अपूर्णता, देशी चिकित्सा-पद्धतियों के विकास की रूपरेखा, आयुर्वेदिक आसव-अरिष्टों पर मद्य-कर लगाये जाने की अविचारिता एवं अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन तथा विद्यापीठ की स्थिति इत्यादि विषयों पर अधिकारी वक्ताओं द्वारा गम्भीर एवं सतर्क प्रकाश डाला गया। देश के हर प्रान्त के प्रमुख नगरों में हुई इन सार्वजनिक तथा वैद्य-हकीम सभाओं में सर्वसम्मति से जन-स्वास्थ्य के रक्षण में आयुर्वेद-यूनानी का उपयोग करने, देशी चिकित्सा-पद्धति के अनुसन्धान का वास्तविक कार्य करने, आसवारिष्टों पर मद्यकर कानून का विरोध, यूनानी समन्वित आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति स्वीकार करने, तथा आयुर्वेद महासम्मेलन एवं विद्यापीठ का सुधार करके उसके संचित कोष से विद्यालय स्थापित करने विषयक प्रस्ताव स्वीकार किये गये। सभाओं में स्वीकृत प्रस्तावों की प्रतियाँ महामान्य राष्ट्रपति, केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्री माननीय करमरकरजी, केन्द्रीय वित्त-मंत्री, प्रादेशिक स्वास्थ्य-मंत्रियों तथा महासम्मेलन-कार्यालय को स्थान-स्थान से विषयानुसार प्रेषित की गयी हैं।

हमारे पास प्रकाशनार्थ हर स्थान से सभाओं का विस्तृत विवरण, उपस्थिति के हस्ताक्षर, वक्ताओं के भाषण एवं प्रस्तावों की प्रतियाँ आयी हुई हैं। परन्तु सभी सभाओं के विवरण और प्रस्तावों को यथारूप प्रकाशित करना स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं। इस कारण हम सभी स्थानों की सभाओं में स्वीकृत प्रस्तावों का मूलरूप यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं, जिनमें सभी स्थानों के प्रस्तावों के भाव सुरक्षित हैं।

श्री धन्वन्तरि-जयन्ती पर स्वास्थ्य-दिवस की सभाओं में स्वीकृत प्रस्ताव

प्रस्ताव संख्या १—यह सभा देश की जनता के शारीरिक स्वास्थ्य की गिरती हुई अवस्था को नितान्त चिन्तनीय समझती है और यह अनुभव करती है कि स्वाधीनता-प्राप्ति के उपरान्त देश के अन्य निर्माण-कार्यों के प्रति जितना अधिक मनोयोगपूर्वक ध्यान दिया गया है उतना जन-स्वास्थ्य के प्रति रचनात्मक कार्य नहीं किया गया। यह खेद की बात है कि जन-स्वास्थ्य जैसे गम्भीरतम विषय को अपेक्षित महत्त्व नहीं दिया जाता। परिणामतः सार्वजनिक रूप से देश की जनता का स्वास्थ्य एवं रोग-रोधिनी शक्ति का दुखद रूप से ह्रास हो रहा है। अतः यह यह सभा देश के जनप्रिय नेताओं, भारत के महामान्य राष्ट्रपति, केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों के स्वास्थ्य-मन्त्रियों तथा समस्त सम्बन्धित व्यक्तियों से इस प्रस्ताव द्वारा साग्रह प्रार्थना करती है कि इस प्रसंग पर देश के

समस्त राजनै..क एवं सामाजिक संगठनों के प्रतिनिधियों की एक परिषद गम्भीरतापूर्वक एवं राष्ट्रीय स्तर पर विचार करे और जन-स्वास्थ्य के विषय में भारतीय सिद्धान्त के आधार पर स्पष्ट राष्ट्रीय स्वास्थ्य-नीति का निर्धारण किया जाये।

यह सभा स्वास्थ्य-संरक्षण के प्रति साधारण जनता में व्याप्त उदासीनता तथा रोगनिरोधक स्वाभाविक शक्ति सुरक्षित रखने के प्रयासों में सरकार और जनता के बीच आवश्यक सहयोग के अभाव की स्थिति पर अत्यन्त चिन्ता प्रकट करती है और केन्द्रीय सरकार से प्रार्थना करती है कि स्वास्थ्य-संरक्षण के विषय में पाश्चात्य देशों की नकल की नीति का परित्याग करके राष्ट्रीय भावना के साथ प्रयास किये जावें।

इस सभा की सम्मति में सरकार की ओर से वर्तमान में विदेशी शासकों की परम्पराओं पर ही स्वास्थ्य विभाग के जो कार्य हो रहे हैं वे बहुत अधिक खर्चीले हैं और अधिक प्रभावकर नहीं हैं। अतः यह सभा केन्द्रीय सरकार से आग्रह करती है कि देश भर में स्वास्थ्य विभागों की कार्य-प्रणाली का पुनर्गठन किया जाय और रोगनिरोधक कार्यों में आयुर्वेदीय स्वास्थ्य-सिद्धान्तों को अधिकाधिक महत्त्व दिया जाय जो कि भारतीय संस्कृति और जन-स्वास्थ्यमय जीवन में बीजरूप में व्याप्त होने के कारण सहज ही ग्राह्य और व्यापक प्रभावकारी सिद्ध होंगे।

इस सभा का आग्रह है कि प्रतिवर्ष सरकार और जनता के सहयोग से श्री धन्वन्तरि-जयन्ती के अवसर पर अखिल भारतीय स्वास्थ्य-सप्ताह का आयोजन किया जाया करे, और केन्द्रीय सरकार स्वाधीनता दिवस और गणतन्त्र दिवस की भाँति ही श्री धन्वन्तरि-जयन्ती को राष्ट्रीय स्वास्थ्य-दिवस का अवकाश स्वीकृत करे।

प्रस्ताव संख्या २—नागरिकों की यह सार्वजनिक सभा इस बात पर खेद प्रकट करती है कि स्वाधीनता के बाद दस वर्षों के लम्बे समय में भी देश की राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति का निर्धारण नहीं किया जा सका। यह सभा देशी चिकित्सा-पद्धतियों को ही देश की जनता, वातावरण, जलवायु और देश की आर्थिक समृद्धि के लिये सर्वथा अनुकूल समझती है। अतः यह सभा केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों से साग्रह निवेदन करती है कि आयुर्वेद-यूनानी का समन्वय करके पाश्चात्य विज्ञान के आवश्यक अंग ले कर यथाशीघ्र भारतीय राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति को स्वीकार किया जाय। इस सभा की सम्मति में देश की जनता महँगी चिकित्सा पद्धति को अंगीकृत करने की स्थिति में नहीं है। अतः देशी चिकित्सा-पद्धतियों को ही प्रश्रय दिया जाय और उनका अधिकाधिक विकास किया जाय।

इस सार्वजनिक सभा की सम्मति में आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा-पद्धतियों के विकास के निमित्त सरकार की ओर से वास्तविक प्रयास किया जाना चाहिए। केन्द्रीय अनुसन्धानशाला के द्वारा आयुर्वेद के ढंग पर ही अनुसन्धान-कार्य होना चाहिए। अनुसन्धान के नाम पर आयुर्वेदिक औषधियों को एलोपैथी में मिलाने की नीति की यह सभा निन्दा करती है।

यह सभा देशी चिकित्सा-पद्धति के विकास के लिये यह आवश्यक समझती है कि देशी चिकित्सा-पद्धति के शिक्षण के लिये यथाशीघ्र ठोस पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाय और प्रत्येक जिले में कम-से-कम एक आयुर्वेद विद्यालय तथा एक साधनसम्पन्न आयुर्वेदिक चिकित्सालय की स्थापना की जाय। प्रत्येक राज्य में स्वतन्त्र आयुर्वेद विभाग स्थापित हो और उनका कार्य आयुर्वेद-ज्ञाता के अधीन हो। आयुर्वेद से सम्बन्धित सब कार्य स्वतन्त्र आयुर्वेदज्ञ द्वारा ही संचालित हो।

पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन समस्त विकास खण्डों में वैद्य-हकीमों को नियुक्त किया जाय और वैद्य-हकीमों को डाक्टरों के समान ही स्थान दिया जाय।

यह सभा केन्द्रीय सरकार के स्वास्थ्य विभाग से पुनः यह आग्रह करती है कि यूनानी मिश्रित आयुर्वेद को शीघ्र राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति स्वीकार किया जाय।

प्रस्ताव संख्या ३—श्री धन्वन्तरि-जयन्ती पर आयोजित वैद्य-हकीमों की यह सभा केन्द्रीय स्वास्थ्य-मन्त्री के रूप में माननीय डी॰ पी॰ करमरकर को पाकर हर्ष और सन्तोष व्यक्त करती है तथा केन्द्रीय एवं प्रादेशिक सरकारों द्वारा आयुर्वेद-यूनानी के हित में किये गये अच्छे राजकीय कार्यों की प्रशंसा करती है।

साथ ही यह सभा इस बात पर गम्भीर खेद प्रकट करती है कि देशी चिकित्सा-पद्धतियों के लिये कोई नियम बनाते समय सम्बन्धित वास्तविक वैज्ञानिकों से सम्मति नहीं ली जाती। परिणामतः कुछ ऐसे नियम बन गये हैं जिनसे देशी चिकित्सा-पद्धतियों का विकास अवरुद्ध हो

कर उनके अस्तित्व पर घातक प्रहार हो रहा है। आसव-अरिष्टों को मद्य की श्रेणी में लेनेवाले कानून की यह सभा तीव्र निन्दा करती है और यह अनुभव करती है कि आसव-अरिष्टों को मद्य की श्रेणी में लिया जाना कदापि योग्य नहीं है। ऐसे कानून के कारण देशी औषधि के चिकित्सा-क्षेत्र में अवरोध उत्पन्न हुआ है। अतः यह सभा सरकार से आग्रह करती है कि इस कानून पर पुनः विचार कर आसव-अरिष्टों पर लगे मद्य-प्रतिबन्धों को अविलम्ब वापस लिया जाय।

प्रस्ताव संख्या ४—श्री धन्वन्तरि-जयन्ती पर आयोजित यह सभा अखिल भारतीय महासम्मेलन की वर्तमान शिथिल और निष्क्रिय अवस्था पर गम्भीर खेद प्रकट करती हुई समय की परिस्थितियों के अनुसार सुदृढ़, सुव्यवस्थित और सक्रिय संगठन की आवश्यकता अनुभव करती है। अतः यह सभा आयुर्वेद के प्रमुख एवं प्रतिभाशाली विद्वानों से आग्रह करती है कि वे यथाशीघ्र सामूहिक रूप से महासम्मेलन की स्थिति पर विचार करके उसके सुधार का प्रयत्न करें। महासम्मेलन को योग्य, निस्वार्थी एवं सच्चे आयुर्वेद-हितैषी समाज-सेवियों के हाथ में दे कर उसको आयुर्वेद-जगत की वास्तविक प्रतिनिधि-संस्था के रूप में प्रस्तुत करें, ताकि आयुर्वेद के लिये सामूहिक प्रयत्न सम्भव हों।

यह सभा अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ की गति-विधि पर भी असन्तोष प्रकट करती है। विद्यापीठ की ऐसी परीक्षाओं को चलाने में यह सभा कोई हित नहीं समझती जो राजमान्य नहीं हैं। वैद्य-समाज के विकास के लिये यह सभा इस बात की गम्भीर आवश्यकता अनुभव करती है कि आयुर्वेद के रचनात्मक शिक्षण के लिये एक सर्वसाधन-सम्पन्न आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना का आयोजन वैद्यों की ओर से शीघ्र ही केन्द्र-स्थान में किया जाना चाहिए। इस सभा की सम्मति में अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ का समस्त संचित कोष इस विद्यालय की योजना में ही लगना चाहिए; क्योंकि मूलतः महासम्मेलन और आयुर्वेद विद्यापीठ की स्थापना का उद्देश्य ही महाविद्यालय का आयोजन कर वैद्य-समाज एवं आयुर्वेद का विकास करना रहा है।

प्रस्ताव संख्या ५—यह सभा प्रस्तावित करती है कि सरकार द्वारा तथा भारतीय चिकित्सा परिषद द्वारा संचालित आयुर्वेदिक विश्वविद्यालयों में एम० ए० एस०, ए० एम० एस०, बी० आई० एम० एस०, आई० एम० बी० एस० आदि-आदि उपाधियाँ न दी जा कर आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद-रत्न, आयुर्वेद-शिरोमणि आदि उपाधियाँ दी जावें, जिससे आयुर्वेद का अध्ययन किये हुए छात्र अपने को डाक्टर श्रेणी में घोषित न कर आयुर्वेदाचार्य लिखने में गौरव अनुभव करें तथा आयुर्वेद का सम्मान बढ़े। छात्रों के लिये प्रवेश-परीक्षा में संस्कृत अनिवार्य विषय होना चाहिए जिससे आयुर्वेदीय विश्वविद्यालयों में आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन और अनुशीलन आवश्यक विषय हो।

उत्तर प्रदेश की सभाओं का संक्षिप्त विवरण

आगरा में विराट सभा

स्वास्थ्य-दिवस के उपलक्ष में आगरा के 'अचल-भवन' में नागरिकों एवं वैद्य-हकीमों की विराट सभा सुविख्यात जन-सेवी श्रीयुत् अचलसिंहजी, सदस्य लोकसभा के सभापतित्व में सम्पन्न हुई। आरम्भ में बमरौली निवासी श्री पन्नालालजी मीतल ने आयुर्वेद पर कविता-पाठ किया। वैद्य शास्त्री श्री प्रभुदयालुजी उपाध्याय ने श्री धन्वन्तरि-जयन्ती की महत्ता पर प्रकाश डाला। जिला वैद्य सभा आगरा के मन्त्री श्रीयुत् वैद्य रणवीरजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य द्वारा संस्कृत पद्यों में श्री धन्वन्तरि-स्तवन किया गया। फिरोजाबाद के वयोवृद्ध वैद्यजी ने मसूरिका रोग पर अनुभूत आयुर्वेद ओषध 'सूर्यमुखी' का प्रदर्शन किया और इसके स्वानुभूत चमत्कारिक प्रयोगों का विवरण उपस्थित समुदाय को बताया।

जिला वैद्य सभा के प्रधान मन्त्री श्री अविनाशचन्द्रजी बंसल ने आयुर्वेद की वैज्ञानिकता पर विशद् प्रकाश डाला और कहा कि विज्ञान कभी पूर्ण नहीं होता। उसमें विकास का क्रम निरन्तर चलता रहता है। आयुर्वेद सम्पूर्ण पैथियों का जन्मदाता है और आज वह अनुसन्धान की प्रतीक्षा में है। आज भी उसमें जनता के स्वास्थ्य की रक्षा की शक्ति है।

आयुर्वेदाचार्य श्री प्रभुचन्द्रजी एम० ए० ने श्री धन्वन्तरि-स्तवन में सुन्दर कविता का पाठ किया। आयुर्वेदाचार्य

> "आज अपनी सरकार है और वह पंचवर्षीय योजना में आपका सहयोग चाहती है। विद्वान् वैद्यों का एक प्रतिनिधि-मण्डल मेरे साथ केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री माननीय करमरकर जी से मिले, उनके सामने आयुर्वेद की वास्तविक स्थिति रखी जाय, तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आपकी कठिनाइयाँ अवश्य दूर होंगी।"
>
> **—श्रीयुत् अचलसिंहजी,** सदस्य, लोकसभा, दिल्ली

श्री सत्येन्द्रनाथजी ने श्री धन्वन्तरि-जयन्ती को स्वास्थ्य-दिवस के रूप में मनाने की परम्परा पर बल दिया और 'अतिभूत दयांप्रति' के उपदेश की महत्ता पर प्रकाश डाला। आपने जन-स्वास्थ्य की गिरती हुई अवस्था पर चिन्ता व्यक्त की और कहा कि सरकार को वेजिटेबल तेल पर रोक लगानी चाहिए तथा शुद्ध दूध-घृत और रसायन के प्रचार पर ध्यान देना चाहिए।

आयुर्वेदाचार्य श्रीयुत् ब्रह्मानन्द जी दीक्षित ने विस्तृत प्रस्तावना के साथ प्रथम प्रस्ताव प्रस्तुत किया। आपने कहा कि देश में कुष्ठ, अस्थिक्षय, उन्माद एवं केंसर (अर्बुद) जैसे भयंकर रोगों का प्रसार हो रहा है। इस दुखद प्रसार को आयुर्वेद की सहायता से रोका जा सकता है। आपने बताया कि अर्बुद का एक स्वरूप ऐसा भी है जो न बढ़ता है और न पकता है। इस सम्बन्ध में अनुसंधान किया जाना चाहिए। प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए दीक्षित जी के यह सुझाव दिया कि जन-स्वास्थ्य की समस्या पर विचार करने के लिए आयुर्वेद के शीर्षस्थ प्रतिनिधियों के साथ एक राष्ट्रीय स्वास्थ्य-समिति का निर्माण किया जाना चाहिए। आयुर्वेदाचार्य पण्डित शीतल प्रसाद जी शर्मा ने संक्षिप्त किन्तु प्रभावपूर्ण वक्तृता के साथ श्री दीक्षित जी के प्रथम प्रस्ताव का प्रबल समर्थन किया। आपने कहा कि सरकार को चाहिए कि स्वास्थ्य-संरक्षण के तरीकों में आयुर्वेदसम्मत सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार करना चाहिए। वैद्यवर श्रीयुत् शिरोमणि जी ने भी प्रस्ताव का समर्थन किया और इस बात पर बल दिया कि नागरिक जनता में विश्वस्त औषधियों द्वारा आयुर्वेद के प्रति चिर विश्वास जागृत करने का वैद्यों को विशेष प्रयास करना चाहिए। आयुर्वेद के प्राचीन शल्यशास्त्र (सर्जरी) के विकास के प्रति आयुर्वेद जगत को सत्वर ध्यान देना चाहिए।

दूसरा प्रस्ताव उत्तर प्रदेशीय इण्डियन मेडिसिन बोर्ड लखनऊ के सदस्य और आगराक्षेत्र के प्रभावशाली वैद्य श्रीयुत् प्रयागदत्त जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य ने प्रस्तुत किया। आपने एलोपैथी में आयुर्वेदीय औषधियों के रूपान्तर की तीव्र निन्दा की। सरकार द्वारा अनुसन्धान की आयोजना कर आयुर्वेद एवं यूनानी पद्धतियों के सम्मिलित विकास किये जाने पर आपने बल दिया। आपने आसव-अरिष्टों को मद्यों की श्रेणी में लेकर साधारण वैद्यों तक को कठिनाई में डाल देने की नीति की भी कड़ी निन्दा की और एक उद्बोधक कविता द्वारा वैद्य-समाज को संगठित रूप से उठकर अपने हितों के लिए सजग हो जाने का आह्वान किया। इस प्रस्ताव का अनुमोदन पण्डित अम्बिकादत्त जी दीक्षित शास्त्री आयुर्वेदाचार्य ने किया। आपने स्वाधीन भारत की राष्ट्रीय सरकार द्वारा देशी चिकित्सा-पद्धतियों के विकास पर पूर्ण ध्यान न दिये जाने पर दुःख प्रकट किया। श्री ओमप्रकाश जी शास्त्री ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए मार्मिक शब्दों में सरकार से अपील की आयुर्वेद-यूनानी को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में स्वीकार करे।

आसव-अरिष्टों पर मद्य-कर लगाने और अन्य कानूनों द्वारा देशी चिकित्सा-पद्धतियों के विकास में अवरोध करने के बारे में तीसरा प्रस्ताव श्री युत् जगन्नाथ प्रसाद जी विद्याश्रयी आयुर्वेदाचार्य ने प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव का अनुमोदन हकीम सैयद बकार अहमद कामरी ने किया और प्रभावपूर्ण शब्दों में आसव-अरिष्टों पर मद्य-कर लगाने की निन्दा करते हुए सरकार से तुरन्त पुनर्विचार कर कानून को वापस लेने की अपील की। वैद्य सत्येन्द्रनाथ जी आयुर्वेदाचार्य ने भी इस प्रस्ताव का प्रबल शब्दों में समर्थन किया। आपने कहा कि आयुर्वेद के अस्तित्व पर कुठाराघात करने वाले इस कानून को वापस कराने के लिए वैद्यों को जनता से सहयोग लेकर आन्दोलन करना चाहिए।

चौथा प्रस्ताव जिसमें आयुर्वेद महासम्मेलन की अवस्था को सुधारने के आग्रह के साथ विद्यापीठ के संचित कोष से

> "आयुर्वेद महामण्डल तथा विद्यापीठ ने विश्व-विद्यालय की स्थापना में उचित कार्य न करके विघ्न ही डाले। अब समय है कि केन्द्र में आयुर्वेद का विद्यालय होना चाहिए और वह काम महासम्मेलन को करना चाहिए। विद्यापीठ को उसी विद्यालय में विलीन हो जाना चाहिए। इसके लिए महासम्मेलन का योग्य व्यक्तियों के हाथों में आना आवश्यक है।
>
> **—वैद्य रणवीर सिंह शास्त्री एम० ए०, आयुर्वेदाचार्य**

केन्द्र में आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना का आग्रह किया गया था—आगरा क्षेत्र के सुविख्यात आयुर्वेद-विद्वान वैद्य श्री सुखदेव जी शास्त्री एम० ए० आयुर्वेदाचार्य ने अपनी विश्लेषणात्मक वक्तृता के साथ प्रस्तुत किया। आपने कहा कि यह युग संगठन की महत्ता का है। जिस समाज का संगठन जर्जर है, वह समाज विकास क्योंकर कर सकता है। वैद्य-समाज का संगठन आयुर्वेद महासम्मेलन है, परन्तु उसकी अवस्था जितनी शोचनीय है, वह कहा नहीं जा सकता। विद्यापीठ शिक्षण के लिए बहुत कार्य कर सकता था, परन्तु न हो सका। अब विद्वान वैद्यों को ध्यान देकर इस संस्था का शीघ्र सुधार करना चाहिए और उचित रूप से संचालन कर दृढ़ संगठन बनाना चाहिए। प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए वैद्यवर श्रीयुत् रणवीर जी शास्त्री एम० ए० आयुर्वेदाचार्य ने कहा कि यह कितने खेद की बात है कि लाखों की संख्या वाले इस वैद्य-समाज के पास अपना निज का एक व्यवस्थित विद्यालय नहीं है। आयुर्वेद महामण्डल और विद्यापीठ ने—जिसका कि स्थापन ही इसी उद्देश्य से किया गया था— अपने लक्ष्य की दिशा में क्या कार्य किया है? इतनी बड़ी संस्था कोई ठोस कार्य न कर सके, यह लज्जाजनक बात है। वर्तमान नेतृत्व में महासम्मेलन और विद्यापीठ ने विश्वविद्यालय की स्थापना में उचित कार्य न करके विघ्न ही डाले हैं। अब समय है कि केन्द्र में आयुर्वेद का विद्यालय होना ही चाहिए और यह कार्य्य महासम्मेलन को करना चाहिए। विद्यापीठ को उसी विद्यालय में विलीन हो जाना चाहिए। इसके लिए महासम्मेलन का योग्य व्यक्तियों के हाथों में आना नितान्त आवश्यक है। आयुर्वेद के विद्वानों को इस दिशा में अविलम्ब ध्यान देकर उचित कदम उठाना चाहिये। वैद्यराज श्री जगन्नाथ प्रसाद जी विद्याश्रयी आयुर्वेदाचार्य ने प्रस्ताव का समर्थन किया और वैद्य श्री प्रभुचन्द्र जी एम० ए० ने अनुमोदन करते हुए कहा कि आयुर्वेद विद्यालय के विषय में महासम्मेलन एवं विद्यापीठ की अकर्मण्यता वैद्य-समाज के लिए चुनौती है, जिसके लिए आयुर्वेद-जगत को शीघ्र सक्रिय होना चाहिए।

आगरे की सभा में एक प्रस्ताव आयुर्वेद स्नातकों की उपाधियों के सम्बन्ध में भी स्वीकृत किया गया, जिसको श्रीयुत् पण्डित मनोहरलाल जी मिश्र साहित्यायुर्वेदरत्न ने प्रस्तुत किया। आचार्य श्री अम्बिका चरण जी दीक्षित शास्त्री ने प्रस्ताव का अनुमोदन किया एवं वैद्यराज पं० रघुवरदयालु जी उपाध्याय ने प्रस्ताव का समर्थन किया। सभा में सभी प्रस्ताव सर्वसम्मति से करतलध्वनि के बीच स्वीकार किये गए।

अन्त में सभापति-पद से अध्यक्षीय भाषण देते हुए उत्तर प्रदेश के जनप्रिय सार्वजनिक नेता श्रीयुत् सेठ अचल सिंहजी, सदस्य लोक सभा ने कहा कि आज का युग संगठन का और काम करने का है। देशी चिकिसा-पद्धतियों को जितना प्रोत्साहन मिलना चाहिए था, उतना नहीं मिला। इसका प्रधान कारण यही है कि इस क्षेत्र में संगठित शक्ति से रचनात्मक काम नहीं किया गया। आपने वैद्य-हकीमों को सम्बोधित करते हुए आग्रह किया कि आपलोग अपने संगठन को सक्रिय और सुदृढ़ कीजिए। आपने सरकार की रुचि का उल्लेख करते हुए कहा कि आज अपनी सरकार है और वह पंचवर्षीय योजना में आपलोगों का बहुत सहयोग चाहती है। जन-स्वास्थ्य और चिकित्सा के विषय में आप सरकार को बहुत बड़ा सहयोग दे सकते हैं। विद्वान वैद्यों का एक प्रतिनिधिमण्डल मेरे साथ केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्री माननीय करमरकर जी से मिले। उनके सामने आयुर्वेद की वास्तविक स्थिति रखी जाय तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि आपकी कठिनाइयाँ अवश्य दूर होंगी। उपस्थित जन समुदाय को सम्बोधित करते हुए श्री अचलसिंह जी ने कहा कि स्वास्थ्य के विषय में आप लोगों को सदा सचेष्ट रहा चाहिए। पराधीनता की अवस्था में दूध-घृत का अभाव होगा। सरकार जानती है कि वेजिटेवल तेलों से हानि होती है। इनमें रंग मिलाने के लिए कार्यवाही की जायगी। जनता को अपव्यय की भावना से दूर रहना चाहिए। पशुपालन की प्रवृत्ति बढ़नी चाहिए। आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना के प्रयत्न की आपने सराहना की और कहा कि यदि वैद्य वर्ग इस दिशा में संगठित होकर कार्य करें तो मैं भरसक सहयोग दूंगा।

धन्यवाद और प्रसाद वितरणोपरांत सभा समाप्त हुई। सभा में आगरा और आस-पास के सभी प्रमुख वैद्य-हकीम एवं बड़ी संख्या में नागरिक उपस्थित हुए।

झींझक (कानपुर) में सभा

झींझक तहसील के वयोवृद्ध वैद्यराज पण्डित बालदत्त जी त्रिपाठी आयुर्वेदशास्त्री के सभापतित्व में स्वास्थ्य दिवस का समारोह मनाया गया। तहसील वैद्यसभा के

मंत्री पं० काशी प्रसाद जी मिश्र वैद्य ने वेद-मन्त्रों से पूजन किया। सभा में श्रीयुत् पं० रामभद्र जी दुबे, श्री मान-सिंह जी चौहान, पं० रामभद्र जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, पं० काशी प्रसाद जी, डाक्टर वीरेन्द्रनाथ त्रिपाठी ए० एम० एस० पं० लक्ष्मीनारायण जी चतुर्वेदी ए० एम० एस०, आचार्य श्री शांतिदास ब्रह्मचारी, इत्यादि विद्वानों के भाषण हुए। सभा में उपस्थित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत किये गए। श्री काशीप्रसाद जी दुबे ने महासम्मेलन सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करते हुए कहा कि विद्यापीठ की स्थापना का उद्देश्य ही महाविद्यालय का आयोजन एवं वैद्य-समाज का शैक्षणिक विकास करना था। टाउन एरिया के चेयरमैन श्री श्यामबिहारीलाल जी त्रिपाठी एवं जिले के कर्मठ नेता श्रीयुत् नित्यानन्द जी पाण्डेय ने जन-स्वास्थ्य के लिए आयुर्वेद के प्रति सरकार का ध्यान आकर्षित करने तथा धन्वन्तरि महोत्सव को स्वास्थ्य-सप्ताह के रूप में मनाने की योजना का महत्त्व बताया। सभा में श्री शिवशर्मा-काण्ड में सचित्र आयुर्वेद की विजय की भी चर्चा हुई और तदर्थ वैद्य रामनारायण शर्मा को बधाई दी गई। सभा में पर्याप्त संख्या में जनता एवं वैद्यगण उपस्थित हुए जिनमें निम्न के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं :—

पं० बालादत्त त्रिपाठी वैद्यशास्त्री, पं० काशीप्रसाद मिश्र वैद्य, पं० रामनारायण अवस्थी वैद्य, पं० कन्हैयालाल शुक्ल वैद्य, पं० रामावतार तिवारी वैद्य, पं० काशीराम द्विवेदी (मेहरा), पं० रामगोपाल वैद्य (जलिहारपुर), पं० जगन्नाथ त्रिपाठी वैद्य, पं० शिवबालकराम मिश्र वैद्य, पं० रामदत्त दुबे वैद्य, श्री विश्राम सिंह, श्री सीताराम, श्री रामसेवक अवस्थी, श्री गिरिजाशंकर शुक्ल, श्री गोवर्द्धन प्रसाद शुक्ल, श्री मान सिंह चौहान, श्री रामप्रसाद शास्त्री, पं० केदार नाथ त्रिपाठी, पं० सूरज प्रसाद अवस्थी (अकारू), श्री शान्तिदास ब्रह्मचारी, आचार्य श्री लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी एम० ए०, डा० वीरेन्द्रनाथ त्रिपाठी ए० एम० एस०, श्री नित्यानन्द पाण्डेय, श्री सूबेदार प्रसाद अवस्थी वैद्य (जलिहारपुर), श्री० जे० पी० सिंह, श्रीश्यामबिहारी लाल त्रिपाठी वैद्यशास्त्री, श्री छोटे लाल जी वैद्य (रसूलाबाद), पं० मुरलीधर जी वैद्य, पं० देशराज जी वैद्य शास्त्री (भुप-लियापुर) इत्यादि।

सुल्तानपुर (उ० प्र०) में सभा

कैलाश औषधालय के भवन में श्रीधन्वन्तरि जयन्ती का उत्सव दिन भर विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा मनाया गया। संध्या को विराट सभा का आयोजन हुआ, जिसमें बड़ी संख्या में वैद्य-हकीमों के अतिरिक्त स्थानीय गण्यमान्य नागरिक उपस्थित हुए। श्री डाक्टर हरनाथ जी गर्ग के प्रस्ताव एवं श्री उमाकान्त जी मालवीय के समर्थन पर जिले के सुविख्यात पुराने वैद्यवर पंडित बलिराम जी त्रिपाठी वैद्य शास्त्री ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया। श्री सुभाषचन्द्र जी मिश्र ने धन्वन्तरि-बन्दना की एवं वैद्य श्री रामदेव मिश्र ने स्वागत-भाषण पढ़ा। मधुसूदन विद्यालय के प्रिंसिपल एवं प्रकाण्ड विद्वान पं० शंकरनाथ जी शुक्ल का बड़ा ओजस्वी भाषण हुआ। आपने कहा ।· आयुर्वेद विज्ञान इतना ऊँचा है कि उसको उपेक्षित [illegible] किया जा सकता। वास्तव में इसके विकास-उत्थान के लिए तीन पक्ष है—सरकार, जनता और वैद्य। यदि य[illegible] तीनों अपने कर्त्तव्य का थोड़ा भी ध्यान रखें तो आ[illegible] अपनी चरम सीमा पर पुनः पहुँच सकता है। [illegible] उपस्थित किये गये प्रस्तावों और उनके समर्थन में अन्य कई वक्ताओं के महत्त्वपूर्ण भाषण हुए और प्रस्ता[illegible] सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए। सभापति जी ने अपने भाषण में आयुर्वेद विद्यालय की स्थापना पर बल दिया और वैद्यों तथा जनता से आयुर्वेदोत्थान में कन्धा मिलाकर प्रयत्न करने की अपील की।

गोरखपुर में सभा

उर्दू बाजार स्थित श्री महाबीर औषधालय द्वारा स्वास्थ्य-दिवस की सभा करने का आयोजन हुआ। सभा कालीबाड़ी के विस्तृत प्रांगण में हुई, जिस में नगर वैद्य मण्डल के सभी सदस्य तथा जनता के प्रमुख जन उपस्थित हुए। इस अवसर पर श्री धन्वन्तरि पूजन एवं हवन किया गया। सभा का सभापतित्व वैद्यराज पण्डित रामचन्द्र जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य ने किया। वैद्य पं० श्रीपति जी शर्मा, पं० रामनिवास जी दूबे, श्रीयुत लालजी, पं० श्रीयुत् सत्यनारायण जी शर्मा आयुर्वेदालंकार आदि विद्वानों के ओजस्वी भाषण हुए। सभा में उपस्थित किये गये सभी प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किये गये।

मैनपुरी में जनसभा

श्रीधन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में आयोजित स्वास्थ्य दिवस के कार्यक्रम में २१ अक्टूबर को मैनपुरी में औषध भण्डार के तत्वावधान में एक विशाल जनसभा का आयोजन

हुआ। सभा में मैनपुरी और आसपास के वैद्य-हकीमों ने बड़ी संख्या में उपस्थित होकर उत्साह प्रकट किया। जनता की उपस्थिति भी उल्लेखनीय थी। सभापतित्व मैनपुरी नगरपालिका के चेयरमैन महोदय ने किया। नगरपालिका के नव-निर्वाचित समस्त सदस्यों की उपस्थिति महत्वपूर्ण रही जिन्होंने अपने भाषणों में मैनपुरी नगरपालिका क्षेत्र में आयुर्वेद को भरपूर प्रोत्साहन देने का आश्वासन दिया। जन-स्वास्थ्य के विषय में अनेक ओजस्वी भाषण हुए। आयुर्वेदीय विद्वानों ने अपने भाषणों में अ० भा० आयुर्वेद म[illegible]सम्मेलन एवं विद्यापीठ की वर्तमान अवस्था पर खेद [illegible] कक्षा एवं उत्तर-प्रदेशीय वैद्य-सम्मेलन को गतिमान [illegible]रने पर भी [illegible]जोर दिया। यह इच्छा व्यक्त की कि [illegible]देशीय सम्मेलन का अधिवेशन मैनपुरी में किया जाय। [illegible] में उपस्थित किये गये सभी प्रस्ताव सर्वसम्मति से [illegible]र्वक स्वीकार किये गए।

कासगंज में सभा

कासगंज में श्री लखपतराम गुप्त के प्रयत्नों से श्री धन्वन्तरि जयन्ती समारोह का भव्य आयोजन हुआ। वैद्यराज पं० श्री रामगोपाल जी की अध्यक्षता में सभा हुई सभी गण्यमान्य वैद्य उपस्थित हुए। वक्ताओं ने जनस्वास्थ्य, आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा, सरकार के कार्य और महासम्मेलन तथा वैद्यों के संगठन विषयों पर महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये। सभा में प्रस्ताव उपस्थित किये गये जो सर्वसम्मति से स्वीकार किये गए।

दौलतपुर (बुलन्दशहर) में सभा

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के दौलतपुर बिक्रीकेन्द्र में श्री धन्वन्तरि जयन्ती पर सार्वजनिक स्वास्थ्य-समारोह मनाया गया। श्रीयुत् वैद्य शम्भूदत्त जी शर्मा के सभापतित्व में कार्यवाही सम्पन्न हुई। सभी प्रमुख वैद्यों एवं नागरिकों ने सभा में उपस्थित होकर उत्सव को सफल बनाया। कविराज श्री कन्हैयालाल जी 'बेचैन' की कविता एवं भाषणों का उपस्थित समुदाय पर प्रभाव पड़ा। प्रस्ताव स्वीकृत किये गये।

खरेला (उ० प्र०) में सभा

खरेला जिला हमीरपुर में वैद्य श्री रामसहाय द्वारा श्री धन्वन्तरि जयन्ती का विशेष समारोह स्वास्थ्य-दिवस के रूप में किया गया। सभास्थल की सजावट और बिजली की जगमगाहट में श्रीधन्वन्तरि भगवान की झाँकी दर्शनीय थी। वैद्यसभा खरेला एवं आस-पास के सभी वैद्यों ने समारोह में उत्साहपूर्वक भाग लिया। सभा का कार्यक्रम प्रसिद्ध वैद्य श्रीयुत् रणधीर सिंह जी शर्मा के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। के० बी० विद्यालय खरेला के प्रिंसिपल श्रीयुत् दयाप्रकाश जी दीक्षित, ग्रामसभा खरेला के प्रधान श्री सुदर्शन सिंह जी वैद्य, श्री० पं० जगन्नाथ प्रसाद जी पालीवाल, श्रीयुत् वैद्य प्रताप सिंह जी, वैद्य भोला सिंह जी और अन्य वैद्यों के प्रभावशाली भाषण हुए। सभा में उपस्थित सभी प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किये गये।

फर्रुखाबाद में भव्य आयोजन

फर्रुखाबाद (उ० प्र०) में श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर स्वास्थ्य-दिवस का महत्त्वपूर्ण आयोजन किया गया। श्री धन्वन्तरि पूजन के अनन्तर प्रस्ताव अनुमोदनोपरान्त करतलध्वनि के बीच जिले के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता लोकसभा के सदस्य श्रीयुत् पण्डित मूलचन्द जी दूबे एडवोकेट ने सभापति का आसन ग्रहण किया। सभा में बड़ी संख्या में स्थानीय वैद्यगण, डाक्टर, नगरपालिका के सदस्य, व्यापारी वर्ग और नागरिक उपस्थित थे। सर्वप्रथम स्वास्थ्य दिवस पर प्रसारित वैद्य रामनारायण शर्मा का भाषण पढ़ा गया। वक्ताओं के ओजस्वी भाषणों के अनन्तर श्रीयुत श्रीयांशशरण जी वैद्य ने प्रस्ताव संख्या १ व २ प्रस्तुत करते हुए अपनी वक्तृता में विद्वत्तापूर्वक प्रस्तावों में वर्णित विषय पर गंभीर प्रकाश डाला। आपने कहा कि जनसाधारण के स्वास्थ्य तथा आर्थिक दशा के सुधार में भी आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा प्रणालियाँ हितकर हो सकती हैं। सरकार को विचारपूर्वक देशी चिकित्सा-पद्धतियों को राजमान्य करना चाहिए। इनका विकास तभी सच्चे रूप में हो सकता है। अपने भाषण में आपने वैद्यनाथ के गुणकारी औषध-निर्माण तथा प्रसार एवं सच्चे अर्थों में आयुर्वेदोत्थान के प्रयत्नों की प्रशंसा भी की। दोनों प्रस्तावों का समर्थन श्रीयुत पण्डित प्रकाशचन्द्र जी वैद्य एवं पं० रामस्वरूप जी वैद्य द्वारा सारगर्भित भाषणों द्वारा किया गया। दोनों प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। तीसरा प्रस्ताव श्रीयुत प्रकाशचन्द्र जी वैद्य ने प्रस्तुत करते हुए कहा कि आयुर्वेदीय आसव-अरिष्टों को मद्य की श्रेणी में किसी भी प्रकार नहीं लिया जा सकता।

आपने जोरदार शब्दों में सरकार से इस कानून में सुधार करने की अपील की। केन्द्र में सर्वसाधनसम्पन्न आयुर्वेद विद्यालय की स्थापना पर विशेष बल देते हुए पं० हीरालाल जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य वैद्य ने चौथा प्रस्ताव प्रस्तुत किया। आपने वैद्य समाज से मार्मिक अनुरोध किया कि महासम्मेलन एवं विद्यापीठ की अवस्था को शीघ्र सुधार कर संगठन स्थापित करें और आयुर्वेद की शिक्षण-व्यवस्था को विधिवत बनायें। इस प्रस्ताव का समर्थन श्री वृजविहारी लाल जी पाण्डेय तथा श्री कल्लूमल जी वैद्य ने किया सभी प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार किये गये। तदुपरान्त उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य श्री रामकृष्ण जी सारस्वत ने अपने विस्तृत भाषण में आयुर्वेद की चिकित्सा का महत्त्व बताते हुए जनता से आग्रहपूर्वक देशी चिकित्सा अपनाने का निवेदन किया। आपने जनता से यह भी आग्रह किया कि राष्ट्रीयता के नाम पर वह आयुर्वेद के उत्थान और मान्यता के लिए राष्ट्रीय सरकार से प्रबल मांग करे। इसके द्वारा जनता के स्वास्थ्य की पूर्ण रक्षा हो सकती है। सभापति पद से बोलते हुए श्री पं० मूलचन्द जी दुबे संसद सदस्य ने कहा—विज्ञान का युग होने के कारण आयुर्वेद में भी वैद्यगणों को अधिकाधिक आधुनिकता लानी चाहिए। आयुर्वेद के विकास के लिए यह अत्यावश्यक है। प्रत्येक वैद्य को आयुर्वेद-औषधों का प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिए। आयुर्वेद का प्रचार ऐसे ढंग से किया जाना चाहिए जिससे डाक्टरजन भी उसको अपनाने के लिए उत्साहित हो सकें। आपने सार्वजनिक स्वास्थ्य दिवस के आयोजन पर बहुत ही हर्ष व्यक्त किया और कहा कि इस प्रकार के आयोजन यदा-कदा होते रहना चाहिए जिससे जनता को स्वास्थ्य रक्षा की प्रेरणा मिलती रहे। सभापति जी ने यह भी रक्षा की प्रेरणा मिलती रहे। सभापति जी ने यह भी आश्वासन दिया कि लोक सभा में आयुर्वेद के लिए वे आवाज उठायेंगे और जितना संभव हो सकेगा सरकार को विवश करेंगे कि वह आयुर्वेद की सहायता करे।

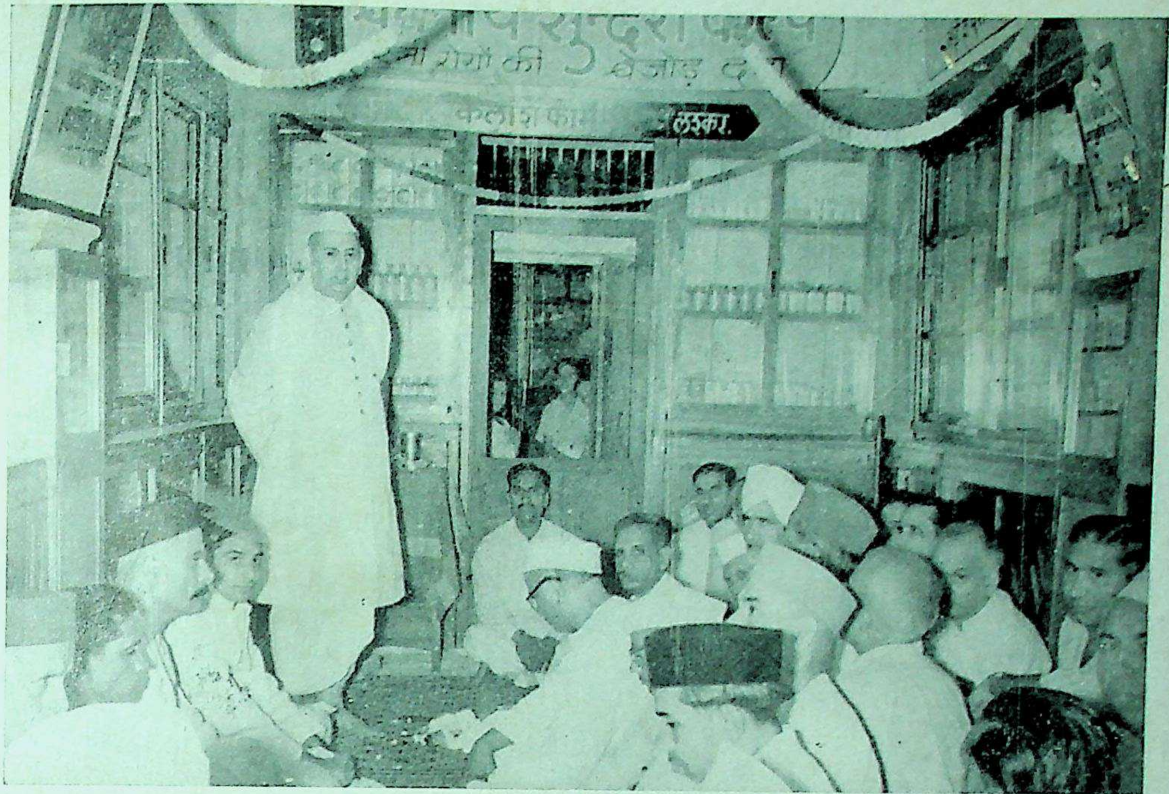
शिकोहाबाद में आयोजन

शिकोहाबाद से प्रेषित विस्तृत समाचारों से विदित होता है कि वहाँ स्वास्थ्य-दिवस का बहुत ही भव्य आयोजन किया। जिसमें समस्त वैद्य-हकीमों के अतिरिक्त स्थानीय अधिकारी वर्ग एवं जनता ने बड़ी संख्या में भाग लिया। उपस्थित वैद्यवर्ग में निम्न की उपस्थिति उल्लेखनीय रही—वैद्य श्री कृष्णशंकर शास्त्री, श्री चन्द्रशेखर शर्मा वैद्य, श्री श्रीनिवास चतुर्वेदी बी० आई० एम० एस०, श्री केदारनाथजी वैद्य, श्री श्रीकृष्णजी वैद्य, श्रीयुत् श्रीरामजी वैद्य, वैद्य श्री जयकुमार जैन, श्री गुरुदत्तजी शर्मा, श्री गोविन्दराम शास्त्री, श्री विद्याधरजी शर्मा वैद्य, श्री गौतमसिंहजी वैद्य, श्री नेकरामजी वैद्य, श्री जयसिंहजी वैद्य, श्री भद्रदत्तजी शर्मा, श्री लक्ष्मीदत्तजी शर्मा, श्री रामकुमारजी गुप्त, श्री श्रीकृष्ण मिश्र इत्यादि।

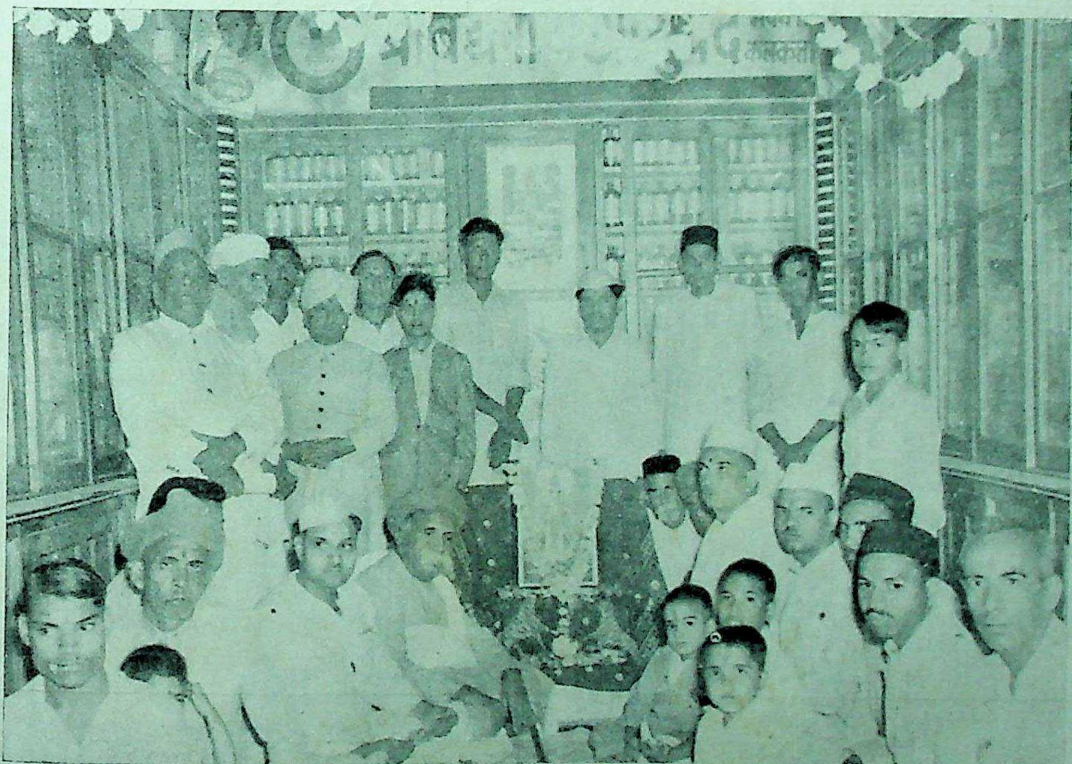
सभा में अनेक वैद्यों एवं प्रभावशाली व्यक्तियों के भाषण हुए। प्रस्ताव संख्या १ एवं २ को श्रीयुत् कृष्णशंकरजी शास्त्री ने प्रस्तुत किया तथा श्री इन्द्रदत्त गर्ग वैद्य ने समर्थन किया। प्रस्ताव संख्या ३ श्रीयुत् पं० रामजीललाजी शास्त्री द्वारा प्रस्तुत किया गया। प्रस्ताव संख्या ४ श्रीयुत् वैद्य कृष्णशंकरजी शास्त्री द्वारा प्रस्तुत हुआ। सभी प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किये गए। सभा का सभापतित्व श्री पण्डित रामजीलालजी शास्त्री वैद्य ने किया।

स्याना, जिला बुलन्दशहर में स्वास्थ्य सप्ताह

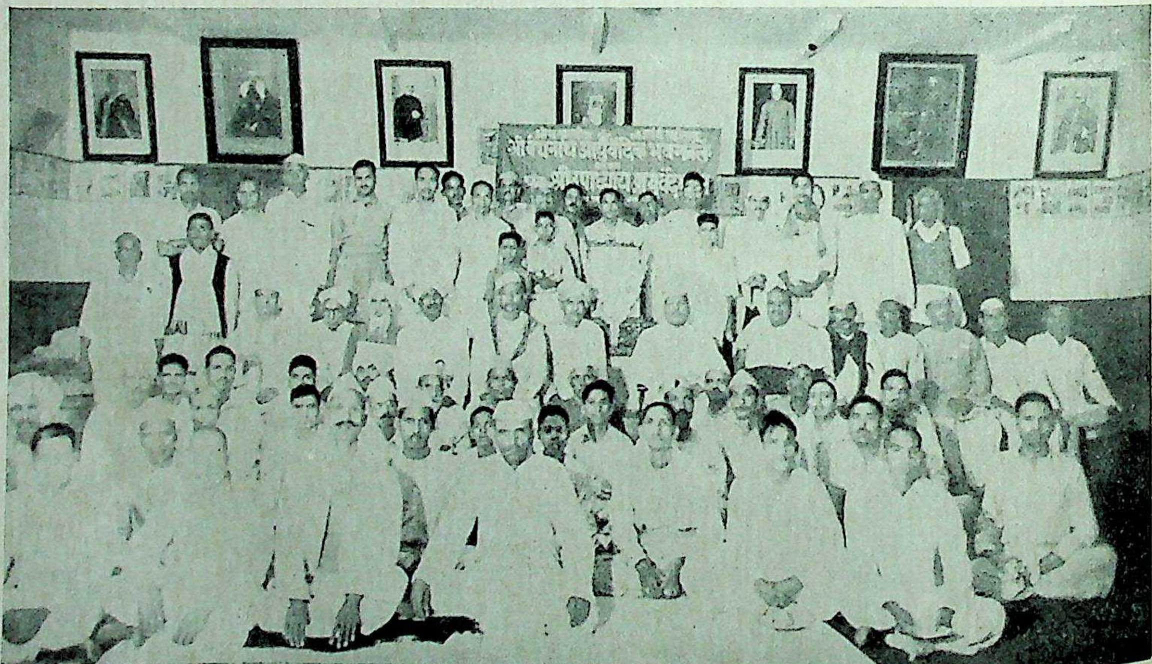
भारत मेडिकल स्टोर के प्रमोद भवन में समारोह का आयोजन हुआ। वैद्यशास्त्री श्री पं० द्विजराजजी शर्मा ने वेद मन्त्रों से भगवान धन्वन्तरि का पूजन किया। सर्वसम्मति के आग्रह पर आयुर्वेद वाचस्पति पण्डित त्रिलोकीनाथजी शास्त्री एम० एस० सी० ए० ने करतलध्वनि के मध्य सभापति का आसन ग्रहण किया। वैद्य शास्त्री श्री द्विजराज शर्मा ने वेदों में आयुर्वेद की महत्ता तथा कीटाणुवाद पर बहुत ही विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया। श्रीयुत् पुष्करदत्त बी० ए० द्वारा स्वागत-भाषण पढ़ा गया। स्वागत भाषण का उपस्थित जन-समुदाय पर व्यापक प्रभाव पड़ा और तुरन्त ही सर्वसम्मति से निश्चय किया गया कि श्री धन्वन्तरि महोत्सव के उपलक्ष में स्वास्थ्य-सप्ताह का ही आयोजन किया जाय। श्रीयुत् वैद्य त्रिलोकीनाथजी के नेतृत्व में स्वास्थ्य-सप्ताह का पूरा कार्यक्रम निश्चय किया गया, जिसमें ग्राम पंचायतों के प्रधानों ने अपने-अपने यहाँ कार्यक्रम संचालित करने का भार वहन किया। दिनांक २२ से २८ अक्टूबर तक स्वास्थ्य-सप्ताह मनाने का सर्वसम्मति से निश्चय किया गया। निश्चय हुआ कि सप्ताह में प्रमुख वैद्यगण गाँव-गाँव जा कर जनता



श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर लश्कर, ग्वालियर में अनुष्ठित स्वास्थ्यदिवस की सभा का दृश्य।



श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर अमीनाबाद, लखनऊ में अनुष्ठित स्वास्थ्यदिवस की सभा का दृश्य।



श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर आगरा में अनुष्ठित स्वास्थ्यदिवस की सभा का भव्य दृश्य।

को स्वास्थ्य-रक्षा के भारतीय सिद्धान्त समझायें और आयुर्वेद के महत्व पर प्रकाश डालें।

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी कलकत्ता के भूतपूर्व चिकित्सक आयुर्वेदभूषण पण्डित गणपति शर्मा शास्त्री ने अपने दो घण्टे के लम्बे भाषण में आयुर्वेद शास्त्र के प्रधान उद्देश्य 'नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम्—कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामर्ति नाशनम्—का विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया। आपने वैद्यवर्ग को सम्बोधित करके कहा कि आप लोग देश-सेवा तथा जनहित की भावना रख कर चिकित्सा-कार्य-सम्पादन करें। अपनी प्राचीन चिकित्सा-पद्धति की उन्नति का प्रयास करना प्रत्येक वैद्य एवं प्रत्येक भारतीय का परम कर्त्तव्य है। आयुर्वेद राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के पद पर आसीन हो कर रहेगा, इसमें कदापि सन्देह नहीं है। परन्तु वैद्यवर्ग को अपना संगठन सुदृढ़ और वास्तविक बनाना चाहिए। आपने दृढ़ शब्दों में सरकार से आयुर्वेद को राज्य-प्रश्रय देने का आग्रह किया।

अध्यक्ष पद से अपना भाषण देते हुए आयुर्वेद-वाचस्पति पं० त्रिलोकीनाथ जी शास्त्री एम० एस० सी० ए० ने कहा कि निकट भविष्य में राष्ट्रीय सरकार को यह मानना पड़ेगा कि आयुर्वेद ही केवल ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा भारत की विशाल जनसंख्या की स्वास्थ्य-समस्या का समाधान हो सकता है। आपने विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हुए वैद्य श्री रामनारायण शर्मा के वास्तविक आयुर्वेद-हित-कार्यों की प्रशंसा की। दिल्ली में संसद-सदस्य औषधालय की चर्चा करते हुए आपने कहा कि यह अत्यन्त ही सामयिक कार्य है जिसके द्वारा आयुर्वेद का पक्ष राजकीय क्षेत्र में बहुत प्रबल होगा। हमें बैद्यनाथ की सच्ची कार्यशैली पर गर्व करना चाहिये। आयुर्वेद-यूनानी के समन्वय को आपने बहुत ही उचित बताया। निखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की चिन्तनीय स्थिति का उल्लेख करते हुए आपने कहा कि यदि वैद्य-समाज इसी लीडरबाजी के दाव-पेंच में फँसा रहा तो आयुर्वेद-विरोधी-तत्त्व बढ़ सकते हैं, और पूर्वजों द्वारा लगाया गया पौधा बिनाश गति को प्राप्त हो जायगा। आयुर्वेद-जगत् के विद्वान लोगों को विशेष ध्यान देकर कार्यक्षेत्र में आना चाहिए और अपनी संस्था को सक्रिय बनाना चाहिए। दिल्ली में देशी औषध-निर्माता सम्मेलन का भी आपने उल्लेख किया और कहा कि यह बड़ा सामयिक कदम है। छोटे-बड़े औषध-निर्माता मिलकर अपने सामान्य हितों की रक्षा तो कर ही सकते हैं, देशी चिकित्सा-पद्धतियों के विकास में उनका संगठन बड़ा योग दे सकता है। इस संगठन के प्रति सम्पूर्ण आयुर्वेद-यूनानी समाज की सहानुभूति होनी चाहिए।

इस अवसर पर प्रसिद्ध नेत्र चिकित्सक पं० विश्वनाथ जी एम० ए० ने प्रदर्शिनी-कक्ष में समागत सज्जनों को गुण-वर्णन सहित जड़ी-बूटियों का परिचय कराया। बाद के समाचार में स्वास्थ्य-सप्ताह के कार्यक्रम के विधिवत सम्पादित होने और ग्राम-ग्राम में सफाई एवं स्वास्थ्य-चर्चा-कार्यों का विवरण प्राप्त हुआ है।

भारतगंज (इलाहाबाद) में सभा

श्री रामकृष्ण जी केशरवानी के प्रयत्न से श्री धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह बहुत ही धूम-धाम से मनाया गया। भारतगंज के सभी वैद्य और आयुर्वेद प्रेमी सज्जन उत्सव में सम्मिलित हुए। पण्डित श्री आद्याप्रसाद जी द्विवेदी ने विधिवत् धन्वन्तरि-पूजन एवं स्तवन किया। वक्ताओं ने आयुर्वेद के महत्त्व पर विद्वत्तापूर्ण भाषण दिये और उपस्थित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत किये गए।

मुजफ्फरनगर (उ० प्र०) में समारोह

मुजफ्फरनगर में नयीमण्डी स्थित आयुर्वेद भवन में श्री धन्वन्तरि जयन्ती का उत्सव स्वास्थ्य दिवस के रूप में बड़े उत्साहपूर्वक सम्पन्न किया गया। शहर के वैद्य-हकीम, अधिकारी, व्यापारी, प्रमुख नागरिक और सर्व साधारण जनता पर्याप्त संख्या में उपस्थित हुई। श्रीयुत् वैद्य कविराज कुलानन्द जी, श्री देशराज जी वैद्य, श्री कालूराम जी शर्मा, वैद्य निरञ्जन लाल शर्मा, वैद्य जी जीवनराम जी, श्री डा० सुशील कुमार जी, वैद्य लीलापति जी तथा वैद्यराज श्री बोधराज इत्यादि विद्वानों के सारगर्भित भाषण हुए, जिनका उपस्थित जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। भाषणों में स्वास्थ्य-रक्षा के लिए देशी चिकित्सा-पद्धति को अपनाने के लिए आग्रह किया गया। सभा में प्रस्तुत प्रस्ताव विस्तृत विवेचना के उपरान्त स्वीकार किये गए।

बलिया (उ० प्र०) में सार्वजनिक सभा

बलिया के चौक में धन्वन्तरि जयन्ती पर विराट सभा हुई, जिसका सभापतित्व भूतपूर्व आनरेरी मैजिस्ट्रेट श्रीयुत पं० लक्ष्मीनारायणाचार्य जी ने किया। सभा में

वैद्य हकीमों के अतिरिक्त अधिक संख्या में नागरिक उपस्थित हुए। नगर के पत्रकार एवं जन-नेताओं की उपस्थिति उल्लेखनीय थी। सभापति के आसनग्रहण करते ही व्याकरणाचार्य पण्डित सरजू प्रसाद जी उपाध्याय ने मंगलाचरण पाठ किया। वैद्यराज श्री सुरेन्द्रदत्त जी आयुर्वेदाचार्य, वैद्य दिवाकर जी उपाध्याय, डाक्टर भगवती प्रसाद एवं जनप्रिय नेता श्री हितनारायण सिंह जी वकील तथा अन्यान्य वैद्यों के जन-स्वास्थ्य, देशी चिकित्सा-पद्धति, वैद्य-हकीम एकता एवं संस्था-संगठन विषय पर प्रभावपूर्ण भाषण हुए। सभा में पाँच प्रस्ताव प्रस्तुत किये गए जिनके प्रस्तावक एवं समर्थकों ने प्रस्तावों के विषय की विवेचनापूर्ण व्याख्या की। प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार हुए। अन्त में सभापति महोदय ने अपने भाषण में जनता के गिरते हुए स्वास्थ्य पर चिन्ता-व्यक्त करते हुए उसके सुधार के लिए भारतीय स्वास्थ्य-सिद्धांत एवं देशी चिकित्सा-पद्धति को अंगीकार करने पर जोर दिया। भगवान धन्वन्तरि को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए आपने अपील की उनके उपदेशों से हमें प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। अन्त में उपस्थित जनसमुदाय को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई। समारोह के आयोजन में श्री सूरजमल मदनलाल शर्मा एवं श्री वासुदेव जी त्रिपाठी का परिश्रम प्रशंसनीय रहा।

गौहारी (उ० प्र०) में सभा

गौहारी जिला हमीरपुर में इस अवसर विशेष सभा का आयोजन किया गया। सभा का सभापतित्व उस क्षेत्र के प्रसिद्ध जन श्रीयुत पं० रुद्रप्रताप जी शर्मा ने किया। पर्याप्त संख्या में जनता के अतिरिक्त प्रमुख नागरिक, व्यापारी और साहित्यिक तथा वैद्य वर्ग उपस्थित थे, जिनमें निम्न व्यक्ति उल्लेखनीय हैं :—

श्री बिहारीलाल जी प्रजापति, श्री योगेश्वर प्रसाद त्रिपाठी, श्री आर० सी० जौहरी, श्री गुलजारीलाल जी, श्री फूलचन्द जी सर्राफ, श्री शिवप्रसाद प्रधान तथा श्री किशोरीलाल त्रिपाठी (कबरई), पं० गौरीशंकर वैद्य, श्री बलदेव प्रसाद वैद्य, श्री छंगूलाल तिवारी वैद्य, श्री भगवान दास वैद्य, श्री दुर्गाप्रसाद वैद्य, श्री गोरेलाल वैद्य, श्री रघुवर प्रसाद वैद्य, श्री भवानीदीन शास्त्री वैद्य, श्री चुखर सिंह वैद्य, श्री पं० बाबूलाल वैद्य, श्री पं० बद्रीप्रसाद शास्त्री, श्री जगन्नाथ सिंह जी वैद्य तथा श्री गोरेलाल जी इत्यादि। सभा में अनेक प्रभावशाली वक्ताओं के ओजस्वी भाषणों के अतिरिक्त चार प्रस्ताव प्रस्तुत किये गए जो सर्वसम्मति से हर्षपूर्वक स्वीकृत हुए। प्रस्तावों में आयुर्वेद-यूनानी को राज्यमान्य करने, जनस्वास्थ्य के लिए भारतीय स्वास्थ्य-नियमों के आधार पर प्रयास करने, आसव-अरिष्टों पर मद्य-कर न लगाने तथा महासम्मेलन एवं विद्यापीठ की दशा सुधार कर उत्तम आयुर्वेद महाविद्यालय स्थापित करने का आग्रह किया गया। प्रस्तावों की प्रतियाँ सम्बन्धित व्यक्तियों को भेजी गई। सभापति श्री रुद्रप्रताप जी शर्मा ने जनता को देशी-चिकित्सा अपनाने के लिए उत्साहित किया।

मेरठ में विराट सभा

श्री धन्वन्तरि जयन्ती पर आयोजित सार्वजनिक स्वास्थ्य समारोह के क्रम में दिनांक २१ अक्टूबर को मेरठ के सुभाष बाजार स्थित शहीद स्मारक पर विराट सभा हुई। अपराह्न ४ बजे वेद मंत्रों से श्री धन्वन्तरि पूजन के कार्यक्रम के साथ स्वास्थ्य-दिवस का समारोह आरम्भ हुआ। सभा में सभापति का आसन उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध जननेता एवं संसद-सदस्य श्री कृष्ण चन्द्र जी शर्मा एम० ए० एल० एल० बी० ने ग्रहण किया। वैद्यवर श्री लक्ष्मीनारायण जी पंचोली में विस्तृत स्वागत-भाषण पढ़ा। फिर विद्वानों के महत्त्वपूर्ण एवं सारगर्भित भाषण हुए। वैद्यवर श्री धर्मप्रकाश जी आयुर्वेदालंकार ने आयुर्वेद विज्ञान की ह्रास-स्थिति के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि हमारी संस्थाओं में दलबंदी हो गई और संगठन निर्बल हो गया। जो अग्रगण्य नेता हैं वे वास्तविक कार्य नहीं करते। इसी कारण इस राष्ट्रीय स्वाधीन युग में भी आयुर्वेद की उन्नति नहीं हो रही है। पुराने लोगों में अनुभूत और चमत्कारिक प्रयोगों को गोपनीय रखने की वृत्ति थी। उसका परिणाम यह हुआ कि क्रियात्मक ज्ञान जिसके पास था उसके साथ ही गया। आजकल के वैद्यों को इस वृत्ति से दूर रहना चाहिए क्योंकि आयुर्वेद के ह्रास का एक यह भी मुख्य कारण है। श्रीयुत शशिधर जी तिवारी ने अपने संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित भाषण में सरकार की आयुर्वेद के प्रति उदासीनता की कारणों सहित भर्त्सना की और वैद्यों को विद्वानों की छाया में अपना संगठन दृढ़ बनाने की सलाह दी। मेरठ आयुर्वेदिक कालेज के प्रधानाचार्य सुख्यात विद्वान् श्री पं० लक्ष्मीनारायण जी मिश्र आचार्य का भाषण अत्यन्त

प्रभावशाली हुआ। उन्होंने कहा कि पाश्चात्य चिकित्सा न तो भारत की जलवायु के अनुकूल पड़ती है और न वह भारत जैसे अल्प साधन वाले गरीब देश के लिए उचित एवं उपयुक्त ही है। देश की आर्थिक स्थिति को बड़ा बल मिल सकता है यदि सरकार देश की चिकित्सा में देशी औषधि विज्ञान का अनुसरण कर ले। आपने मार्मिक शब्दों में भारत सरकार से इस दिशा में सक्रिय कदम उठाने का आग्रह किया और धन्वन्तरि जयन्ती पर इस प्रकार स्वास्थ्य समारोह मनाने की परम्परा की बड़ी सराहना की। इसके उपरान्त विवेचनात्मक भूमिकाओं के साथ सभा में चार प्रस्ताव उपस्थित किये गए जो सर्व सम्मति से स्वीकार किये गए।

सहारनपुर में सभा

सहारनपुर में श्री माहेश्वरी औषधि भण्डार के तत्वावधान में धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह पर भव्य सभा का आयोजन किया गया। श्रीयुत सोमदत्त जी वैद्य की प्रधानता में कार्यवाही सम्पन्न हुई। बड़ी संख्या में वैद्य-हकीम, कार्यकर्ता एवं जनता के जन एकत्र हुए। मुख्य वैद्यों एवं विद्वानों के जन-स्वास्थ्य, आयुर्वेद-यूनानी, देशी चिकित्सा विज्ञान की स्थिति पर सारगर्भित भाषण हुए। चार प्रस्ताव सभा में प्रस्तुत हुए जिनमें प्रस्ताव संख्या २ बहुमत से तथा प्रस्ताव संख्या १, ३ और ४ को सर्व सम्मति से स्वीकार कर लिया गया। प्रस्तावों की प्रतियाँ सम्बन्धित व्यक्तियों को उचित कार्यवाही के हेतु भेजने का निश्चय किया गया। प्रसाद एवं स्वास्थ्य-साहित्य वितरणोपरान्त सभा की कार्यवाही उत्साह पूर्ण वातावरण में समाप्त हुई।

मथुरा में सभा

प्रसिद्ध तीर्थ मथुरा नगरी में एक सभा मथुरा आयुर्वेदिक एजेन्सी के तत्वावधान में छत्ता बाजार में हुई। सभा में लगभग ६० वैद्य-हकीम एवं पर्याप्त संख्या में नागरिक उपस्थित हुए। सभा का सभापतित्व श्रीयुत तेजसिंह जी वैद्य ने किया। वैद्यों और नागरिक क्षेत्र के प्रमुख व्यक्तियों के महत्त्वपूर्ण विषयों पर भाषण हुए। वक्ताओं ने देशी चिकित्सा-पद्धतियों के विकास के लिए सरकार पर जोर डालने के हेतु जनता से सहयोग की अपील की गयी। संगठन में सुधार एवं दृढ़ता के हेतु वक्ताओं ने वैद्य समुदाय का आह्वान किया। सभा में चारों प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार किये गये। प्रस्तावों की प्रतियाँ सर्वत्र सम्बन्धित व्यक्तियों को भेजने का निश्चय किया गया। प्रसाद वितरण के उपरान्त सभा समाप्त हुई। ताजा समाचार आया है कि मथुरा ने कुछ वैद्यजनों ने इस अवसर पर स्वास्थ्य सप्ताह का भी आयोजना किया, जिसमें निःशुल्क चिकित्सा एवं स्वास्थ्य परामर्श का कार्यक्रम सम्पादन किया गया।

मऊरानीपुर (उ० प्र०) में समारोह

श्रद्धेय पं० रामदयालु श्री श्रोत्रिय वैद्य विशारद की अध्यक्षता में सभा का आयोजन हुआ। श्री युत पं० हीरालाल जी सीरोठिया वैद्य विशारद, डाक्टर प्यारेलाल जी मिश्र इत्यादि वैद्यों के ओजस्वी भाषण हुए। भगवान धन्वन्तरि का भव्य पूजन एवं स्तवन किया गया तथा उपस्थित जनता को स्वास्थ्य के भारतीय सिद्धान्तों को सरलता के साथ समझाया गया। डाक्टर श्री ओमप्रकाश जी लवानिया ने अपने भाषण में कहा कि आयुर्वेद की औषधियों को ही लेकर एलोपैथी के विज्ञान ने इतना विकास किया है। यदि सरकार आयुर्वेद को उसके असली रूप में स्वीकार करे और प्रोत्साहन देवे तो उसके द्वारा भारत की गरीब जनता की स्वास्थ्य-समस्याएं हल हो जावें। सरकारी पक्ष वास्तव में आयुर्वेद को समझता नहीं। वहाँ जो लोग हैं वे ऐसे वातावरण में पले हैं जिसमें आरंभ से एलोपैथी से पाला पड़ता है। वैद्यों को चाहिए कि आयुर्वेद का शिक्षित जनता में अधिक प्रचार करने के लिए कुछ त्याग करें। धन्यवादोपरान्त सभा विसर्जित हुई।

वाराणसी में वैद्यों की सभा

बड़ादेव वाराणसी में श्री धन्वन्तरि-जयन्ती राष्ट्रपति के प्रधान चिकित्सक कविराज पं० सत्यनारायण जी शास्त्री महाराज के सभापतित्व में समारोहपूर्वक मनायी गयी। श्री धन्वन्तरि भगवान का षोड़शोपचार पूजन स्थानीय चिकित्सक श्री विश्वनाथ पाण्डेय ने किया। श्री सुधाकर पाण्डेय ने मंगलाचरण किया। सभा में अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव वैद्यों-हकीमों-नागरिकों के समर्थन एवं अनुमोदन द्वारा स्वीकृत किए गये।

सभा में अनेकानेक विद्वानों, वैद्यों, हकीमों एवं नागरिकों ने भाग लिया था जिनमें महामहोपाध्याय पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, पं० रामनाथ द्विवेदी, पं० रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी, पं० वेणीप्रसाद जी पुरोहित (व्यायाम प्रचारक), पं० काशीनाथ शास्त्री, श्रीत्रिवेणीप्रसाद वर्नवाल, वैद्य ताराशंकर

मिश्र, पं० रामशंकर जी शास्त्री, रामबिहारी शुक्ल, हकीम जाहिद हुसेन, हकीम बन्दे हसन, हकीम रामसिंह जी प्रभृति उल्लेखनीय है।

महामहोपाध्याय जी ने कहा कि हम सभी नवयुवक वैद्यों को इस वैज्ञानिक युग में आयुर्वेद का अनुसंधान एवं रिसर्च अवश्य करना चाहिये। और वैद्यों को इसी प्रकार बराबर आयोजन करके अपना ज्ञान बढ़ाना चाहिये।

हकीम बन्देहसन साहब ने अपने भाषण में कहा कि हमारी आयुर्वेदिक एवं यूनानी औषधियों में कोई रोगोत्पादक पदार्थ नहीं रहता और न तो प्रत्यक्ष देखने में ही आता है कि किसी वैद्य या हकीम की दवा खाकर रोगी को राजयक्ष्मा हुआ हो। किन्तु यह प्रत्यक्ष दिन-रात के अनुभव में देखने को मिलता है कि एलोपैथिक औषधि के सेवन से यक्ष्मा का शिकार होकर रोगी वैद्यों और हकीमों के पास आता है और पथ्य-परहेज के साथ औषध सेवन करके स्वस्थ हो जाता है। अतः सरकार को इस ओर आँख खोल कर देखना चाहिये और देशी चिकित्सा का प्रचार एवं अनुसन्धान अवश्य करना चाहिये।

अन्त में सभापति जी ने बताया कि जैसे राष्ट्र की सुरक्षा के लिये सेनाओं का पृथक्-पृथक् दल होते हुए भी उनका आपस में एक ही ध्येय रहता है—राष्ट्र की सुरक्षा, उसी प्रकार हम सभी चिकित्सकों को, चाहे काय-चिकित्सक हों या शल्यशालाक्य-चिकित्सक हों, सबको स्वास्थ्य-रक्षा कार्य में दत्तचित्त होकर एक मन से देश के प्राणिमात्र की स्वास्थ्य कामना करनी चाहिये। आयुर्वेद विश्व की सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा-प्रणाली है। यह ऐहलौकिक-पारलौकिक सुख का साधन है। इस वेद के साथ प्रमाद नहीं करना चाहिए। आयुर्वेद शास्त्र का गहन अध्ययन होना चाहिये। स्वार्थ के बशीभूत हो यह काम नहीं रहना चाहिए। सरकार का भी इस दिशा में ध्यान देना परम कर्त्तव्य है, किन्तु वैद्य समाज का भी जागरूक होना उतना ही आवश्यक है। अतः अब वह समय आ गया है जब कि आप लोगों को अपने आयुर्वेद का गौरव बढ़ाने के लिये श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की तरह जगह-जगह पर सामूहिक आयोजन करना चाहिये। इस दिशा में इनका कार्य सराहनीय है।

अन्त में केन्द्र-व्यवस्थापक पं० विश्वनाथ पाण्डेय वैद्य ने सभापति महोदय के प्रति आभार-प्रदर्शन किया और धन्यवाद दिया। पश्चात् आपने सचित्र आयुर्वेद की प्रति भेंट करते हुए कहा कि यह पत्रिका आप लोगों की सेवा के लिये ही प्रकाशित की जाती है। इसको सहयोग प्रदान करना वैद्यमात्र का परम कर्तव्य है। प्रसाद वितरण के साथ-साथ सभा विसर्जित हुई।

देवरिया में सभा

देवरिया में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव अतीव उत्साहपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ। आचार्य पं० वासुदेव जी के आचार्यत्व में वैदिक विधियों द्वारा पूजन एवं स्तुतिपाठ और श्रद्धांजलि समर्पित की गयी। पश्चात् पं० रामानुज त्रिपाठी वैद्य आयुर्वेदशास्त्राचार्य के सभापतित्व में सभा हुई जिसमें विद्वान् वैद्यों ने जयन्ती के महत्त्व, आयुर्वेद की उपादेयता एवं अन्य चिकित्सा पद्धतियों की अपेक्षा श्रेष्ठता, सर्वसुलभता आदि विषयों पर पूर्ण प्रकाश डाला। वैद्य विद्याधर शुक्ल बी० ए० ने आयुर्वेद की विशिष्ट मान्यताओं का दिग्दर्शन कराया। वक्ताओं में श्री ओझाजी वैद्य, ज्योतिषी शुक्ल जी और पं० वासुदेव जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अन्त में सभापति जी ने आयुर्वेद की स्वास्थ्य-सुखद-शीतल छाया में ही विश्वकल्याण निहित है ऐसी प्रेरणा प्रदान की। तदनन्तर विक्री-केन्द्र के अध्यक्ष श्री निवास शर्मा द्वारा धन्यवाद एवं प्रसाद वितरण के पश्चात् सभा विसर्जित की गयी।

गोरखपुर (अलीनगर) में सभा

अलीनगर (गोरखपुर) में धन्वन्तरि जयन्ती पं० श्रीपति जीके सभापतित्व में सोत्साह मनाई गई। वैद्य रूपनारायण शर्मा ने धन्वन्तरि भगवान की पूजा-प्रार्थना के उपरांत समागत वैद्य महानुभावों के समक्ष मुद्रित स्वागत-भाषण पढ़ा। सभापति महोदय ने पाँच प्रस्ताव उपस्थित किए जो एकमत से उपस्थित महानुभावों ने स्वीकार किए।

पं० महावीर प्रसाद शर्मा ने समागत वैद्य महानुभावों के प्रति आभार प्रदर्शित किया तथा उपस्थित वैद्यों को एक-एक प्रति सचित्र आयुर्वेद तथा प्रसाद वितरण करने के बाद सभा विसर्जित हुई।

पड़रौना

पड़रौना (देवरिया) में धन्वन्तरि-जयन्ती बड़े धूमधाम से मनायी गयी। भगवान धन्वन्तरि के पूजन के पश्चात् स्थानीय वैद्यों-हकीमों एवं नागरिकों की एक सभा हुई, जिसमें पं० ब्रजमोहन शर्मा वैद्य ने सभापति का

आसन ग्रहण किया। अनेक वक्ताओं ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए अयुर्वेदोन्नति के के लिए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के महत्वपूर्ण प्रयत्नों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सभापति जी ने अपने भाषणों में बैद्यनाथ औषधियों की गुणवत्ता की सराहना करते हुए वैद्यों से संगठित होकर कार्य करने की अपील की। शुरू में श्री चन्द्रभानु गुप्त ने स्वागत-भाषण पढ़ा। पांचों प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। अन्त में प्रसाद-वितरण और धन्यवाद-ज्ञापन कर सभा समाप्त हुई।

फैजाबाद

जिला वैद्य सभा, फैजाबाद, की बैठक श्री भगवती सिंह शास्त्री वैद्य की अध्यक्षता में हुई, जिसमें समस्त वैद्योंने अखिल व्याधि विनाशकारी भगवान धन्वन्तरि को सामूहिक श्रद्धांजलि-अर्पण किया। पश्चात् श्री मदन-गोपाल वैद्य एम० एल० ए० ने अपने संक्षिप्त भाषण में भगवन धन्वन्तरि के परिचय एवं महत्व पर प्रकाश डाला। अन्त में अगले वर्ष के लिए निम्नांङ्कित व्यक्तियों को पदाधिकारी सर्वसम्मति से निर्वाचित किया गया—श्री मदन-गोपाल वैद्य एम० एल० ए० अध्यक्ष, श्री भगवती सिंह शास्त्री श्री रामनाथ वैद्य एवं उपाध्यक्ष, श्री विद्याधर शर्मा वैद्य कोषाध्यक्ष, श्री देवीप्रसाद मिश्र वैद्य आयुर्वेदाचार्य प्रधान मन्त्री, श्री रुद्रदेव वैद्य शास्त्री, श्री रामेश्वर प्रसाद कुमार,उपमन्त्री दथा श्री कन्हैयालाल जी वैद्य आय-व्यय निरीक्षक। इसके बाद श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के विक्री-केन्द्र में वैदिक विधि से भगवान धन्वन्तरि के सामूहिक पूजन के पश्चात् श्री मदन गोपाल वैद्य एम० एल० ए० की अध्यक्षता में सार्वजनिक सभा हुई जिसमें अनेक वक्ताओं एवं अध्यक्ष महोदय ने भाषण करते हुए, आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली की श्रेष्ठता बतलायी। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की ओर से समस्त आगन्तुक वैद्यों को सचित्र आयुर्वेद, वैद्य समाज की उन्नति का साधन, मिष्ठान्न सहित भेंट देकर सभा विसर्जित हुई।

तुलसीपुर (गोण्डा)

श्री पाटेश्वरी आयुर्वेद भवन तुलसीपुर (गोण्डा) में श्री भगवती प्रसाद गुप्ता वैद्य की अध्यक्षतामें बड़े समारोह के साथ धन्वन्तरि-जयन्ती मनायी गयी और धन्वन्तरि भगवान का पूजन, हवन, तथा आयुर्वेद-प्रचार आदि करने के पश्चात् प्रसाद-वितरण कर सभा समाप्त की गई।

हरदोई

हरदोई में आयुर्वेद प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि का जन्म-दिवस अत्यन्त धूमधाम के साथ श्री जगन्नाथ प्रसाद जी वैद्य के सभापतित्व में मनाया गया। इस शुभ अवसर पर जिले के वैद्यों के अतिरिक्त जनता ने अपार उत्साह के साथ समारोह में भाग लिया। सुसज्जित दूकान के मध्य ऊँचे आसनपर विराजमान भगवान धन्वन्तरि की वेद मन्त्रों के साथ सर्वप्रथम पूजा की गई। भदईचा सरकारी औरधालय के अध्यक्ष श्री रामदेव जी शर्मा वैद्य एवं पं० जगन्नाथ प्रसाद जी वैद्य ने स्वागत भाषण पढ़ने में उत्साह से भाग लिया।

पश्चात अपने संक्षिप्त भाषण में पं० जगन्नाथ मिश्र जी ने वर्तमान राष्ट्रीय सरकार द्वारा आयुर्वेद की उपेक्षा पर खेद प्रकाश किया एवं उपस्थित वैद्य बन्धुओं एवं जनता से अपील की कि निकट भविष्य में होने वाले यू० पी० वोर्ड-आफ इण्डियन मेडिसिन में ऐसे सदस्य को चुनकर भेजा जावे जो आयुर्वेद का उन्नति पर तन-मन से प्रयत्न करें।

बिक्रीकेन्द्र व्यवस्थापक श्री महादेव प्रसाद अग्रवाल द्वारा स्वागत भाषण एवं प्रसाद वितरण के पश्चात् सभा की कार्यवाही समाप्ति हुई।

आजमगढ़

श्री जीवन आयुर्वेदिक औषधालय, चौक आजमगढ़ में वैद्य पं० चन्द्रदत्त जी आयुर्वेद आचार्य के सभापतित्व में श्री भगवान धन्वन्तरि का जयन्ती समारोहमनायागया। सर्व प्रथम मंगलाचरण से सभा आरम्भ हुई। पश्चात् वैद्य पं० जीवन राम शर्मा ने स्वागत भाषण पढ़ा पश्चात् आये हुए वैद्यों ने तथा नगर के प्रतिष्ठित वकील श्री भवानी प्रसाद जी ने आयुर्वेद-विज्ञान पर अच्छा प्रकाश डाला। इसके पश्चात् श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के पांच प्रस्तावों को वैद्यों ने सर्वसम्मति से पास कर दिल्ली तथा लखनऊ स्वास्थ्य विभाग के मन्त्रियों को भेजने का निश्चय किया। अन्त में धन्यवाद ज्ञापन और प्रसाद वितरण कर सभा समाप्त हुई।

जौनपुर

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के बिक्रीकेन्द्र ओलनगंज, जौनपुर में भगवान धन्वन्तरि का जन्मोत्सव

श्री गौरी शंकर सिंह वैद्य, साहित्यायुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में समारोह पूर्वक मनाया गया। सर्व प्रथम भगवान धन्वन्तरि का पूजन करने के पश्चात् श्री लक्ष्मी प्रसाद जी वैद्य आयुर्वेद विशारद द्वारा स्वागत भाषण पढ़कर सुनाया गया। इसके बाद वैद्य शिवदत्तजी, वैद्य दूधनाथ शास्त्री, वैद्य सुदर्शन दुबे, वैद्य बद्री प्रसाद पाठक, वैद्य कुंज विहारी लाल, वैद्य ओरज सिंह जी का आयुर्वेद के विषय पर सार-गर्भित भाषण हुआ।

श्री वैद्य अमरेज सिंह जी ने अपने भाषण में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की उत्कृष्ट औषधियों की काफी प्रशंसा की। श्री सभापति जी द्वारा धन्यबाद ज्ञापन के पश्चात् श्री पं० हीरालालजी शर्मा अध्यक्ष बिक्री-केन्द्र जौनपुर द्वारा प्रसाद वितरण कर सभा समाप्त की गयी।

हरिद्वार

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की हरद्वार शाखा की ओर से धन्वन्तरि-जयन्ती धूमधाम से मनायी गई जिसकी अध्यक्षता श्री शिवप्रसाद झा एम० ए० साहित्यरत्न सेक्रेट्री म्यु० बोर्ड ने की। बिक्रीकेन्द्र के चिकित्सक श्री द्वारकानाथ कुमार आयुर्वेदाचार्य ने धन्वन्तरि-वंदना के पश्चात् स्वागत भाषण पढ़ा। तदनंतर सभा के मुख्य वक्ता कविराज श्री योगेन्द्रपाल जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य-धन्वन्तरि का भाषण हुआ, जिसमें आपने भारत की स्वास्थ्य समस्याओं पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए बतलाया कि "कितनी विडम्बनापूर्ण स्थिति है कि भारत की केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारें नगरों के कार्पोरेशन म्युनिसिपल बोर्ड टाऊन एरिया और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अपना अनुदान उन चिकित्सालयों की बढ़ाते चले जाते हैं जिनमें रोगियों की संख्या अधिक होती है जब कि उन चिकित्सालयों के चिकित्सकों का उत्तर-दायित्व यह होना चाहिए कि उनके क्षेत्र में रोगी कम हों। फलतः औषधालयों की रोगी संख्या कम से कम होती चली जाए। जब तक स्वास्थ्य विभाग स्वस्थ रहने के सुलभ साधनों के प्रचार का दृष्टिकोण नहीं अपनाएगा तब तक देश के गिरते स्वास्थ्य का स्तर ऊँचा नहीं उठ सकता। इसके अतिरिक्त जब तक करोड़ों रुपया विदेशी औषधियों पर बाहर भेजना बन्द होकर देशी औषधियों के महाभण्डार हिमालय में अनुसन्धान केन्द्र नहीं खोले जाते तब तक भारतीय मुद्रा का तो अपव्यय होता ही रहेगा भारतीय स्वास्थ्य भी श्रेष्ठतम नहीं बन सकेगा।" इसके बाद कई वक्ताओं के सामयिक भाषण हुए और प्रसाद वितरण एवं धन्यवाद ज्ञापन कर सभा की कार्यवाही समाप्त की गयी।

अल्मोड़ा

जौहरी मुहल्ला, अलमोड़ा में बड़े धूमधाम के साथ धन्वन्तरि जयन्ती मनायी गयी। भगवान धन्वन्तरि के पूजन के पश्चात् स्थानीय वैद्य-हकीमों एवं नागरिकों की एक महती सभा का आयोजन किया गया, जिसमें वैद्य पंडित केदारनाथ पन्त ने सभापति का आसन ग्रहण किया। अनेक वक्ताओं ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की महत्त्वपूर्ण आयुर्वेद-सेवाओं तथा आयुर्वेदोन्नति के हेतु 'भवन' द्वारा किए जाने वाले श्रेष्ठ प्रयत्नों की सराहना की। सभापति जी ने अपने भाषण में बैद्यनाथ औषधियों की गुणकारिता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए वैद्यों से संगठित होकर आयुर्वेद के उत्थान के निमित्त श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा किये जाने वाले कार्यों में सहयोग प्रदान करने की अपील की। आरम्भ में मंगलाचरण के अनन्तर श्री पं० गोवर्द्धन शर्मा ने स्वागत भाषण पढ़ा। पाँचों प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। अन्त में प्रसाद-वितरण और धन्यवाद-ज्ञापन कर सभा समाप्त हुई।

रोहतक

रोहतक में आयुर्विज्ञान के प्रवर्त्तक भगवान धन्वन्तरि का जन्म दिवस अति उत्साह व धूमधाम के साथ मनाया गया। सर्व प्रथम राजस्थानी वैद्यराज उमाशंकर जी की अध्यक्षता में भगवान धन्वन्तरि जी का विधिवत पूजन-अर्चन समस्त वैद्य-हकीम तथा प्रतिष्ठित नागरिकों द्वारा किया गया। पश्चात् रोहतक बिक्री-केन्द्र के व्यवस्थापक आयुर्वेद विशारद रामप्रसाद जी वैद्य ने मुद्रित स्वागत भाषण पढ़कर वितरित किया।

इसके बाद चार प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए। अनन्तर कविराज हरनारायण जी शास्त्री के संयोजकत्व में गूढ़ व्याधि परीक्षण हुआ। उपस्थित वैद्य-हकीम एवं नागरिकों में प्रसाद व सचित्र आयुर्वेद के वितरण के साथ उत्सव की कार्यवाही आचार्य उमाशंकर जी ने समस्त उप-स्थित जनसमूह को धन्यवाद देकर समाप्त की।

लखनऊ (अमीनाबाद) में समारोह

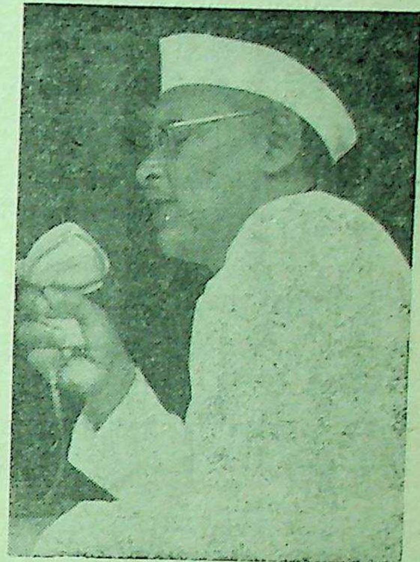
धन्वन्तरि औषधालय, अमीनाबाद लखनऊ में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव आयुर्वेदाचार्य श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी,

उपसंचालक, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य उत्तर प्रदेश की अध्यक्षता में खूब धूमधाम से मनाया गया। इस स्वास्थ्य-दिवस के पुनीत अवसर पर वैद्य महानुभावों के अतिरिक्त प्रतिष्ठित नागरिक एवं आयुर्वेद-प्रेमी सज्जन भी उपस्थित थे। उल्लासमय वातावरण में सस्वर मंत्र उच्चारण करते हुए भगवान धन्वन्तरि की प्रतिमा को पुष्पांजलियाँ समर्पित की गयी।

श्री ब्रह्मानन्द शर्मा वैद्य (व्यवस्थापक) ने मंगलाचरणोपरान्त अपने स्वागत भाषण में कहा कि देवताओं को असुरों पर विजय पाने तथा मानवों को रोग मुक्त कराने के लिये भगवान धन्वन्तरि का अवतार हुआ। भगवान ने देवताओं को अमृत तथा मानव को आयुर्वेद का ज्ञान प्रदान किया। प्राणीमात्र को स्वास्थ एवं सुखी रखना ही भगवान धन्वन्तरि का उद्देश्य था। उसी समय से धन्वन्तरि महोत्सव स्वास्थ्य दिवस के रूप में युग-युग से हमारे देश में मनाया जा रहा है। स्मृति दिवसों के समारोह आयोजन की परम्पराओं से भी यह स्पष्ट है कि धन्वन्तरि महोत्सव विशाल एवं सुव्यवस्थित ढंग से शारीरिक स्वास्थ्योत्सव के रूप में मनाया जा रहा है, जो कालक्रम की कड़ियों में गुथी हुई परम्पराओं में धनतेरस के नाम से अटका चला आ रहा है। इस अवसर पर केवल भगवान धन्वन्तरि की पूजा करना ही यथेष्ट नहीं है अपितु आयुर्वेदीय सिद्धान्तों का जनता में अधिकाधिक प्रचार-प्रसार करना अत्यन्त आवश्यक है जिससे लोग उनपर नियमित आचरण करके अपना स्वास्थ्य सबल और सुरक्षित रख सकें।

श्री चतुर्भुज शर्मा ने संक्षिप्त एवं सारगर्भित भाषण में कहा कि बौद्ध काल तक आयुर्वेद काय-चिकित्सा में ही नहीं वरन् शल्य-चिकित्सा में भी काफी उन्नत था किन्तु कालक्रम में आयुर्वेदीय शल्य-चिकित्सा लुप्त-सी होती गई। आज का अधिकांश वैद्य समाज केवल काय-चिकित्सा पर ही निर्भर है। अन्य चिकित्सा पद्धतियों में शल्य-चिकित्सा को बहुत महत्त्व दिया जाता है किन्तु आयुर्वेद इस क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है। आज के वैज्ञानिक युग में आवश्यकता इस बात की है कि आयुर्वेद के पुनरुद्धार के लिये शल्य चिकित्सा को प्रोत्साहन देकर उसके इस अधूरे अंग को पूरा किया जाय। इसीसे आयुर्वेद अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त कर भारत के ही नहीं वरन् विश्व के कल्याण में समर्थ हो सकेगा।

नगर के अन्य प्रतिष्ठित वैद्यों ने भी आयुर्वेद की वर्तमान विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डाला और उनके निराकरण के हेतु कई प्रस्ताव पेश किये जो सर्व सम्मति से पास हुए। इन प्रस्तावों की प्रति विभिन्न सम्बन्धित मंत्रियों को भेजने का निश्चय किया गया।



श्री दत्तात्रय अनन्त कुलकर्णी

अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री कुलकर्णी ने धन्वन्तरि महोत्सव के महत्त्व पर सुन्दर प्रकाश डाला। आपने काय-चिकित्सा एवं शल्य-चिकित्सा के संप्रदायों की विवेचना करते हुए बताया कि भगवान धन्वन्तरि ने कायचिकित्सा के अनेक सिद्धान्तों को, जो शल्य-विज्ञान के अनुकूल थे, सूत्रबद्ध करके जनता के सामने रखा। यह शास्त्र कई शताब्दियों से जनता की सेवा करता आ रहा है। आपने वैद्य समाज से अनुरोध किया कि उन्हें उन उपदेशों का अनुकरण कर कार्य रूप में परिणत करनी चाहिए। आपने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के इस देश-व्यापी विशाल आयोजन की प्रशंसा की।

लखनऊ (चौक) में सभा

चौक (लखनऊ) में श्री दयाराम जी अवस्थी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में बड़े धूमधाम से धन्वन्तरि-जयन्ती मनायी गयी। इस अवसर पर नगर के वैद्य एवं आयुर्वेद-प्रेमी सज्जन भी उपस्थित थे। आगत सज्जनों ने एक स्वर से मन्त्र का उच्चारण करते हुए आयुर्वेद प्रवर्तक

भगवान् धन्वन्तरि को पुष्पांजलियाँ समर्पित कीं। श्री जयराम शर्मा वैद्य (बिक्री-केन्द्राध्यक्ष) ने उपस्थित महानुभावों का आभार प्रकट करते हुए हार्दिक स्वागत किया।

श्री ब्रह्मानन्द शर्मा वैद्य ने बताया कि धन्वन्तरि-महोत्सव हम सदियों से मनाते चले आ रहे हैं। इस अवसर पर हमें उनके उपदेशों का जनता में प्रचार करना चाहिए। आपने वैद्य समाज को संगठित होकर आयुर्वेद के पुनरुद्धार के पथ पर अग्रसर होने की अपील की। श्री चतुर्भुज शर्मा ने कहा कि आयुर्वेदीय-चिकित्सा प्रणाली अपने देशवासियों के प्रवृत्ति के अनुकूल है। काय-चिकित्सा में तो हमने काफी प्रगति की है किन्तु शल्य-चिकित्सा में काफी पिछड़ गए हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इस अंग को भी पूरा किया जाय जिससे आयुर्वेद सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा-प्रणाली हो सके। इस सम्बन्ध में आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों पर भी उदारतापूर्वक विचार करना चाहिए। आपने पांच प्रस्ताव प्रस्तुत किये जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए।

सभापति जी ने अपने भाषण में कहा कि भगवान धन्वन्तरि ने विश्व के कल्याणार्थ आयुर्वेदशास्त्र का प्रवर्तन किया। आपने इस पुनीत पर्व के वैज्ञानिक महत्व की सुन्दर विवेचना की। आपने कहा कि भगवान धन्वन्तरि ने शल्य-चिकित्सा का विशेष ज्ञान दिया था किन्तु आजकल अधिकांश वैद्य समाज केवल काय-चिकित्सा पर ही निर्भर है। आपने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के संचालकों से अनुरोध किया कि जिस प्रकार उन्होंने सचित्र आयुर्वेद एवं अनेकों आयुर्वेदिक ग्रंथोंका प्रकाशन और दातव्य औषधालयों की स्थापना कर तथा शास्त्रीय औषधियों का निर्माण कर कायचिकित्सा को आसान बना दिया है उसी प्रकार शल्य-चिकित्सा के भी विकास का प्रयत्न कर आयुर्वेद के इस अपूर्ण अंग को पूरा करने में सहयोग दें। आपने बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा देश व्यापी धन्वन्तरि महोत्सव की भूरि-भूरि प्रशंसा की। कई अन्य वैद्य-बन्धुओं के भाषणोपरान्त प्रसाद वितरण कर कार्यवाही समाप्त की गई।

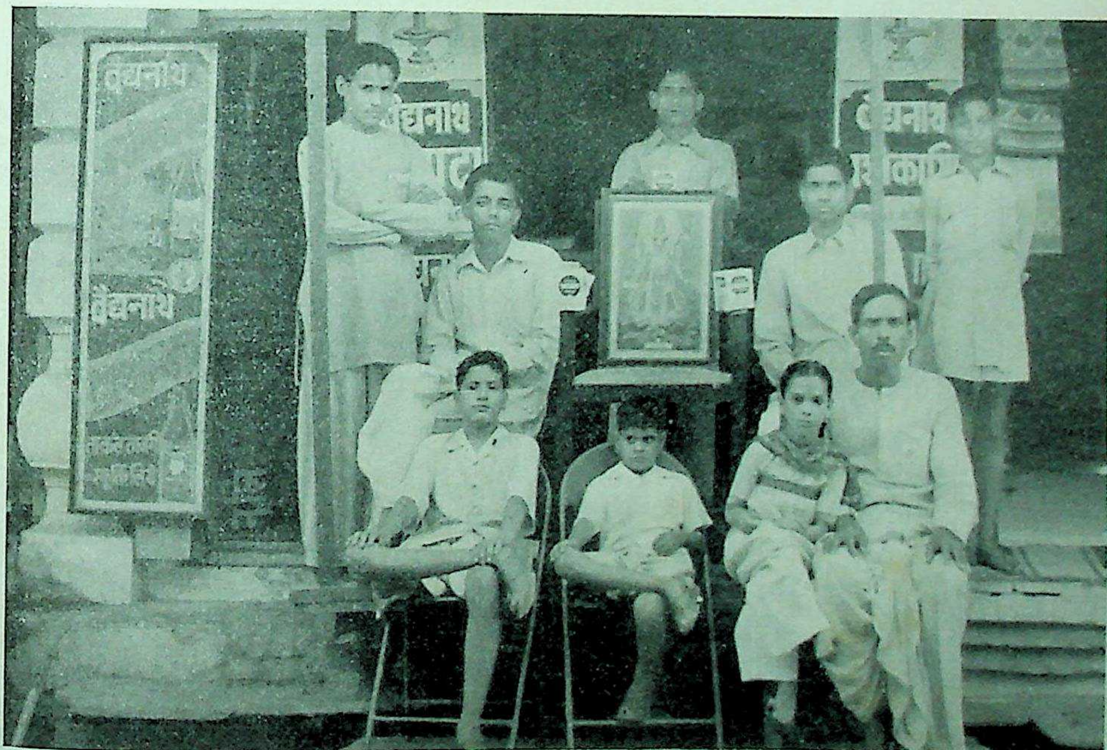
मुरादाबाद

धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के मुरादाबाद बिक्री-केन्द्र में बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। उत्सव में शहर के सभी प्रतिष्ठित वैद्य व सामाजिक कार्यकर्ता बड़ी संख्या में उपस्थित थे। धन्वन्तरि पूजन श्री बैद्यराज बनवारी लाल जी दीक्षित द्वारा संपन्न हुआ। पूजन के पश्चात् नगर के प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री गोस्वामी सच्चिदानन्द जी और मनमोहन जी का संगीत हुआ। संगीत के सुन्दर कार्यक्रम के साथ प्रसिद्ध नृत्यकार श्री गोवर्धन जी ने अपने कत्थक नृत्य द्वारा समागत सज्जनों को आनन्द विभोर किया।

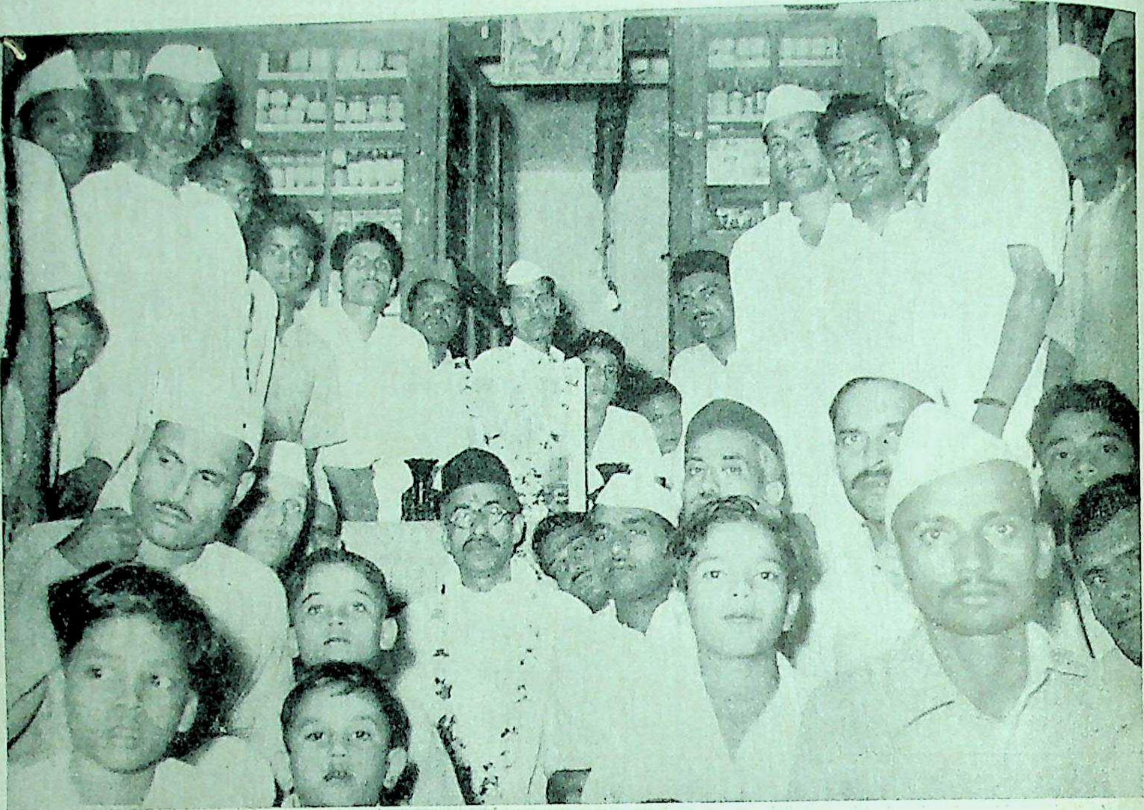
नगर के यशस्वी सुविख्यात वैद्यराज श्री टीकादत्त जी के सभापतित्व में सभा का कार्यारम्भ हुआ। प्रारम्भ में बिक्री-केन्द्र के अध्यक्ष श्री प्रभुदयाल जोशी आयुर्वेदाचार्य का स्वागत भाषण हुआ। नगर के सुप्रसिद्ध समाज सेवी व मजिस्ट्रेट श्री रमेशकुमार जी ने अपने अनुभव बताते हुए आयुर्वेद की वैज्ञानिकता को एक प्रसिद्ध एलोपैथ द्वारा स्वीकार करने की रोचक घटना सुनाई और कहा कि कुछ वैद्यों द्वारा एलोपैथिक दवाओं का व्यवहार आम जनता में भ्रम फैलाता है। श्री धर्मवीर जी आयुर्वेदालंकार ने बैद्यनाथ द्वारा संचालित अनेक धर्मार्थ औषधालयों की चर्चा करते हुए कहा कि भवन को मुरादाबाद में भी एक धर्मार्थ औषधालय खुलवाना चाहिये। श्री जगदीश प्रसाद जी वैद्य वाचस्पति ने आयुर्वेद-वर्णित स्वास्थ्य विषय की अधिक आवश्यकता बतलाते हुए उक्त विषय की सुंदर मीमांसा की और इस दिशा में बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा किये जाने वाले सत्कर्मों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। आपने अपने वक्तव्य में वर्तमान पीढ़ी के वैद्यों से भी यह निवेदन किया कि वह अपने आपको डाक्टर कहलाने का प्रयत्न न करें। यदि उक्त शब्द का अर्थ भी वैद्य ही होता है तो वह एलोपैथों, होमियोपैथों से भी आग्रह करें कि वह भी अपने आपको वैद्य कहलाएँ। इससे हमारी हिन्दी भाषा और राष्ट्रीय दृष्टिकोण को बल मिलेगा। अन्यथा आयुर्वेदज्ञों की योग्यता का लाभ भी एलोपैथी को मिलेगा। वैद्य श्री भोला दत्त जी पन्त ने वैद्यों से सुसंगठित होने की अपील की। वैद्य श्री उमाशंकर जी ने आयुर्वेद के महत्व पर प्रकाश डाला। श्री सभापति महोदय ने भवन के कार्यों की प्रशंसा करते हुए आशा प्रकट की कि भविष्य में भी भवन द्वारा आयुर्वेद के उत्थान हेतु कार्य होते रहेंगे। अन्त में सभी समागतों का साधुवाद करते हुए मिष्ठान्न और भाषण-प्रतियाँ भेंट की गई।



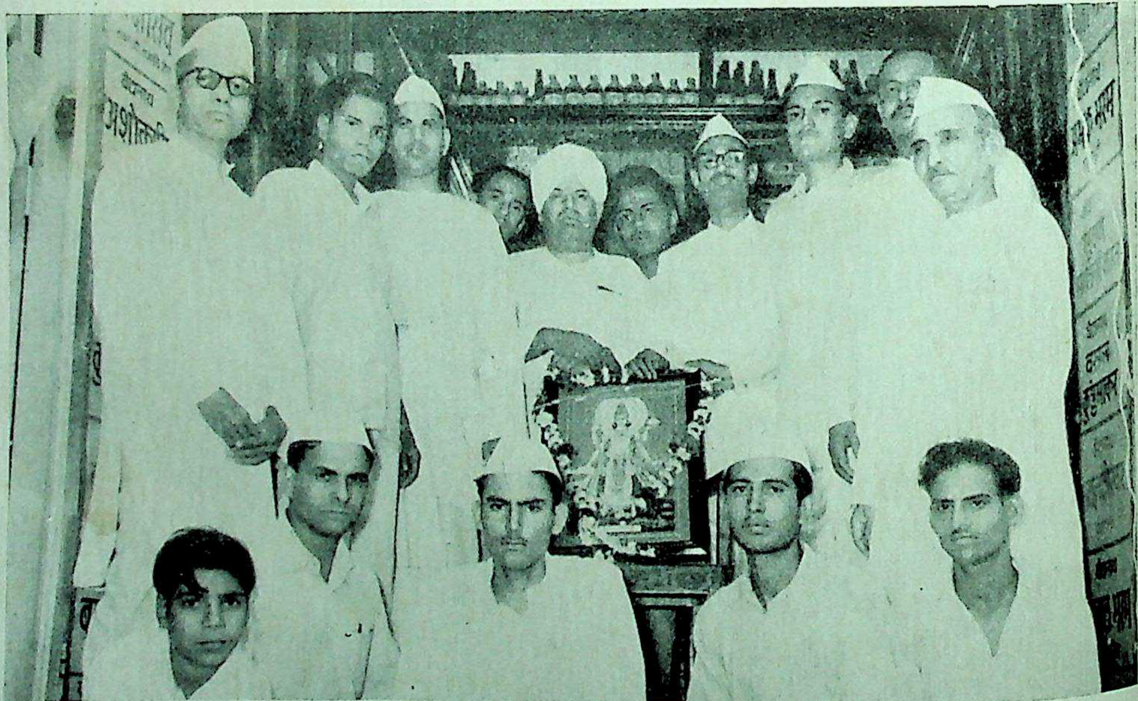
श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर महावीर औषधालय, अलीनगर, गोरखपुर में अनुष्ठित स्वास्थ्यदिवस की सभा का एक दृश्य।



श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर महावीर औषधालय, उर्दूबाजार, गोरखपुर में स्वास्थ्यदिवस समारोह।



श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर कटनी में अनुष्ठित स्वास्थ्यदिवस की सभा का दृश्य।



श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर नागपुर आयुर्वेद औषधालय, भंडारा रोड, इतवारी, नागपुर में अनुष्ठित स्वास्थ्यदिवस की सभा का सुन्दर दृश्य।

चन्दौसी (मुरादाबाद)

चन्दौसी (मुरादाबाद) में भगवान धन्वन्तरि जी का पूजन बड़े समारोह के साथ किया गया। नगर के सभी प्रतिष्ठित वैद्य-हकीमों व नागरिकों ने इसमें बड़े उत्साह से भाग लिया। शुरू में भगवान धन्वन्तरि जी का अर्चन किया गया। बाद में वैद्य श्री लीलाधर जी उप्रेती ने भगवान की स्तुति की। तत्पश्चात् सभा की कार्यवाही शुरू हुई। सर्व सम्मति से वयोवृद्ध श्री मुन्शीलाल जी सिद्ध वैद्य सभापति चुने गए। श्री गजानन्द शर्मा ने स्वागत भाषण पढ़ा। इसके पश्चात् वैद्य श्री लीलाधर जी ने भाषण दिया। आखिर में श्री सभापति जी का ओजस्वी भाषण हुआ एवं प्रस्तुत चारों प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए। अन्त में सभी वैद्यों ने श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० को धन्यवाद दिया और सभा समाप्त हुई।

बरेली

बरेली स्थित श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के बिक्री-केन्द्र श्री सत्यनारायण औषधालय टाउनहाल रोड बरेली में श्री पं० दरबारीलाल जी शर्मा वैद्य के सभापतित्व में श्री धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह मनाया गया, जिसमें नगर के प्रतिष्ठित वैद्यों, पत्रकारों एवं प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने भाग लिया। सर्वप्रथम सभी वैद्यजनों ने वेदध्वनि के साथ श्री धन्वन्तरि भगवान की अर्चना की। तदुपरान्त स्वागत मंत्री पं० बजरंगलाल शर्मा ने स्वागत भाषण पढ़ा। देश की जनता के शारीरिक स्वास्थ्य की गिरती हुई अवस्था की ओर श्री चन्द्रेश्वर जी द्विवेदी ने सभा का ध्यान आकर्षित करते हुए पांचों प्रस्तावों को उपस्थित किया, और सभी प्रस्तावों को सभा ने स्वीकार किया। तदुपरान्त सभापति महोदय ने अपने भाषण में बताया कि उन्होंने उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री डॉ० सम्पूर्णानन्दजी से चर्चा की थी तथा उन्होंने यह आश्वासन दिया था कि इस द्वितीय पंचवर्षीय योजना में उत्तरप्रदेश में एक आयुर्वेद-विद्यालय की स्थापना की जायगी। सभापति जी ने श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा कि यह संस्था देश की जनता की सेवा के लिए हमेशा कदम उठाती रही है और इसके द्वारा आयुर्वेद की काफी उन्नति हुई है।

इसके पश्चात् अन्य वैद्यगणों के भाषण हुए, जिनमें सभी ने आयुर्वेद की उन्नति के लिए सरकार से अनुरोध किया कि वह आयुर्वेद की ओर शीघ्र से शीघ्र उचित कदम उठाकर आयुर्वेद को प्रोत्साहन दे।

तदुपरान्त केन्द्र के व्यवस्थापक पं० मधुसूदन शर्मा ने प्रसाद वितरण किया तथा धन्यवाद देकर कार्यवाही समाप्त की गयी।

गढ़मुक्तेश्वर

गढ़मुक्तेश्वर में धूमधाम के साथ धन्वन्तरि जयन्ती मनायी गयी। भगवान धन्वन्तरि के पूजन के पश्चात् स्थानीय वैद्य-हकीमों एवं नागरिकों की एक महती सभा का आयोजन किया गया, जिसमें वैद्य रघुवीरदत्त जी आयुर्वेदाचार्य ने सभापति का आसन ग्रहण किया। अनेक वक्ताओं ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की महत्त्वपूर्ण आयुर्वेद-सेवाओं तथा आयुर्वेदोन्नति के हेतु 'भवन' द्वारा किए जाने वाले श्रेष्ठ प्रयत्नों की सराहना की। सभापति जी ने अपने भाषण में वैद्यनाथ औषधियों की गुणकारिता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए वैद्यों से संगठित होकर आयुर्वेद के उत्थान के निमित्त वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा किए जाने वाले कार्यों में सहयोग प्रदान करने की अपील की। आरम्भ में मंगलाचरण के अनन्तर श्री पं० रामानुज शास्त्री ने स्वागत भाषण पढ़ा। पांचों प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। अन्त में प्रसाद वितरण और धन्यवाद ज्ञापन कर सभा समाप्त हुई।

पुखरायाँ (कानपुर)

धन्वन्तरि जयन्ती समारोह बड़े धूमधाम के साथ श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के पुखरायां (कानपुर) स्थित बिक्री-केन्द्र पर मनाया गया। तहसील वैद्य परिषद पुखरायां के वैद्य गण एवं एजेण्ट गण तथा प्रमुख नागरिक एकत्र हुए थे। सर्वप्रथम भगवान धन्वन्तरि जी की पूजा की गई। पूजा के उपरान्त कीर्त्तन अच्छे गायकों द्वारा हुआ। श्री गयाप्रसाद जी शास्त्री, सभापति तहसील वैद्य परिषद के सभापतित्व में सभा-कार्य सम्पन्न हुआ। स्वागत भाषण पं० वैद्यनाथ द्वि`दी द्वारा पढ़ा गया। अन्त में चारों प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए। मिष्ठान्न वितरण कर सभा समाप्त हुई।

कोडा जहानाबाद (फतेहपुर)

कोडा जहानाबाद (फतेहपुर) में बड़े धूमधाम के साथ धन्वन्तरि-जयन्ती मनायी गयी। भगवान धन्वन्तरि

के पूजन के पश्चात् स्थानीय वैद्य-हकीमों एवं नागरिकों की एक महती सभा का आयोजन किया गया, जिसमें श्री रामगोपाल गुप्त, आयुर्वेदाचार्य ने सभापति का आसन ग्रहण किया। अनेक वक्ताओं ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की महत्त्वपूर्ण आयुर्वेद सेवाओं तथा आयुर्वेदोन्नति के हेतु 'भवन' द्वारा किए जाने वाले श्रेष्ठ प्रयत्नों की सराहना की। सभापति जी ने अपने भाषण में बैद्यनाथ औषधियों की गुणकारिता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए वैद्यों से संगठित होकर आयुर्वेद के उत्थान के निमित्त बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा किए जाने वाले कार्यों में सहयोग प्रदान करने की अपील की। आरम्भ में मंगलाचरण के अनन्तर बिक्री-केन्द्र व्यवस्थापक ने स्वागत भाषण पढ़ा। पांचों प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। अन्त में प्रसाद वितरण और धन्यवाद ज्ञापन कर सभा समाप्त हुई।

औरैया (इटावा)

औरैया (इटावा) में धन्वन्तरि-जयन्ती बड़े धूमधाम से मनायी गयी। भगवान धन्वन्तरि के पूजन के पश्चात् स्थानीय वैद्यों-हकीमों एवं नागरिकों की एक सभा हुई, जिसमें पं० कृष्णपोपाल शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य ने सभापति का आसन ग्रहण किया। अनेक वक्ताओं ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आयुर्वेदोन्नति के लिए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के महत्त्वपूर्ण प्रयत्नों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सभापति जी ने अपने भाषण में बैद्यनाथ औषधियों की गुणवत्ता की सराहना करते हुए वैद्यों से संगठित होकर कार्य करने की अपील की। शुरू में श्री रामचन्द्र बंसल ने स्वागत भाषण पढ़ा। पांचों प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। अन्त में प्रसाद वितरण और धन्यवाद ज्ञापन कर सभा समाप्त हुई।

खतौली

पं० हरद्वारी लाल जी आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में भगवान धन्वन्तरि का जयन्ती समारोह बड़े उत्साहपूर्वक श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के खतौली स्थित बिक्री-केन्द्र में मनाया गया। उत्सव का प्रारम्भ श्री महेश प्रसाद एम० ए०, शास्त्री के स्वागत भाषण द्वारा हुआ। श्री ओम्प्रकाश जी शास्त्री ने आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डाला। डॉ० शिवकुमार शर्मा बी० आई० एम० एस० का भाषण बहुत महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली रहा। उन्होंने आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति की सराहना की तथा एलोपैथी से उसकी तुलना की। सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास किये गये और सभापति द्वारा धन्यवाद ज्ञापन दिया गया। तत्पश्चात् प्रसाद आदि का वितरण हुआ।

बुलन्दशहर

बुलन्दशहर में वैद्य पं० सुधानिधि जी आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में धन्वन्तरि-जयन्ती समारोहपूर्वक मनायी गयी। सर्वप्रथम श्री धन्वन्तरि-पूजन बड़े उत्साहपूर्वक किया गया और हवन भी सभी आगत सज्जनों मिल कर किया। तत्पश्चात् स्वागत भाषण केन्द्राध्यक्ष द्वारा पढ़ा गया। सभापति जी ने आयुर्वेदोन्नति कार्य प्रत्येक वैद्य का ध्येय बताते हुए आयुर्वेदीय चिकित्सा पर मुख्य प्रकाश डाला और भेषज निर्माण कार्य के लिये श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड के महान कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। पश्चात् सभी आगत वैद्य महानुभावों को तथा अन्य उपस्थित महोदय को प्रसाद वितरण किया गया। अन्त में सभी उपस्थित वर्ग को गुप्ता आयुर्वेदिक स्टोर के अध्यक्ष ने धन्यवाद दिया और जयन्ती महोत्सव समाप्त किया गया।

सीतापुर

गल्ला-पड़ाव सीतापुर में वैद्य श्री वृजकुमारजी शर्मा के सभापतित्व में यथासमय सविधि भगवान धन्वन्तरि जी का पूजन हुआ, जिसमें विद्वान वैद्य महानुभावों के अतिरिक्त साधारण जनता भी अधिक उपस्थित थी। सर्वप्रथम श्री प्रभुदयालजी वैद्य ने धन्वन्तरि-बन्दना की। इसके बाद स्वागत-भाषण हुआ। वैद्य भागवत सहायजी ने कहा कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली प्राचीन है, मुसलमानों तथा अंग्रेजों ने भी अपने शासन काल में अनेक बार कुठाराघात किये, फिर भी यह चालू है। अतः सभी को आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर उसका प्रचार करना चाहिए। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की दवाइयां ऐसी हैं जो मनुष्यों को जीवन दे सकती हैं। इसके बाद वैद्य कमलापति जी ने बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के इतिहास को बताते हुए और पं० शिवशर्मा के मानहानि के मुकदमे में सचित्र आयुर्वेद के विजयी होने के बारे में बताया तथा बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की प्रशंसा करते हुए कहा कि श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० ने आयुर्वेद

की प्रतिष्ठा बढ़ाने में आशातीत उन्नति की है। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के अध्यक्ष आयुर्वेद-शास्त्र के विद्वान वैद्य पं० रामनारायणजी शर्मा हैं। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० का प्रधान उद्देश्य आयुर्वेद की प्रतिष्ठा बढ़ाना है। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की प्रत्येक दवा आज देश के कोने-कोने में मिलती है। वैद्यनाथ दवाओं के स्टैन्डर्ड को कायम रखने में पूरा ध्यान रखा जाता है। पूर्ण सत्यता के कारण श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० ने उन्नति की दौड़ में पुराने औषध-निर्माताओं को बहुत पीछे छोड़ दिया है। अन्त में प्रस्ताव स्वीकृत हुए और धन्यवाद ज्ञापन तथा प्रसाद वितरण कर सभा समाप्त हुई।

मिर्जापुर

राबर्ट्सगंज, मिर्जापुर में धन्वन्तरि-जयन्ती का उत्सव बड़े ही समारोह के साथ मनाया गया। समारोह में स्थानीय कस्बे के अनेक प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे। इनके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों के अनेक वैद्यों एवं डाक्टरों ने उपस्थित होकर उत्सव को सफल बनाया। उन लोगों ने आयुर्वेद की उपयोगिता, आयुर्वेदिक प्रणाली की उत्तमता एवं उसकी स्थिरता आदि के विषय में अतीव सुन्दर प्रकाश डाला। श्री पं० सीतारामजी वैद्य, श्री पं० राममनोहर दीक्षित, कविराज श्री रामरेखा पाण्डेय तथा श्री पं० यदुनाथ पाण्डेय आयुर्वेदाचार्य ने श्री भगवान् धन्वन्तरि जी के प्रादुर्भावकाल, उनका महत्व तथा उनके द्वारा रचित ग्रन्थों की विशद विवेचना की। उत्सव के आरम्भ में ही पूजन का कार्य संपन्न हुआ। फिर स्थानीय विक्रय-भवन के व्यवस्थापक श्री महादेव प्रसाद जी ने स्वागत-भाषण पढ़ कर सुनाया। उत्सव के अन्त में सभी अभ्यागतों को धन्यवाद के साथ प्रसाद-वितरण किया गया।

लखीमपुर (खीरी)

लखीमपुर (खीरी) में बड़े धूमधाम के साथ भगवान धन्वन्तरि का जयन्ती समारोह मनाया गया। सर्व प्रथम भगवान धन्वन्तरि का पूजन नगर के वैद्य-हकीमों और प्रमुख नागरिकों की उपस्थिति में सविधि सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् सभा की कार्यवाही डा० शिवसहाय जी शर्मा के सभापतित्व में आरम्भ हुई। श्री भगवती प्रसाद पाण्डेय ने स्वागत भाषण पढ़ा। अनेक वक्ताओं के भाषणोपरांत सभापतिजी ने अपने भाषण में बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के आयुर्वेदोन्नति के कार्यों की सराहना की। प्रस्तावों के स्वीकृत होने के बाद प्रसाद-वितरण और धन्यवाद ज्ञापन कर सभा की कार्यवाही समाप्त की गयी।

कानपुर में समारोह

धन्वन्तरि-जयन्ती महोत्सव के अवसर पर अनुष्ठित स्वास्थ्य-दिवस को मनाने के लिए इस वर्ष मारवाड़ी औषधालय काहू कोठी, कानपुर में निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासम्मेलन के उपाध्यक्ष आचार्यप्रवर तीर्थत्रय पंडित बदरी विशाल जी त्रिपाठी के सभापतित्व में एक विराट् जन सभा का आयोजन किया गया। सभा में नगर के विशिष्ट व्यक्तियों के अतिरिक्त अनेक गण्यमान्य वैद्य और आयुर्वेदज्ञ सम्मिलित हुए। सर्वप्रथम उत्तर प्रदेशीय स्वास्थ्य विभाग के उपमंत्री डाक्टर जवाहरलाल जी रोहतगी ने झण्डोत्तोलन किया। तदुपरान्त आयुर्वेद के गौरव, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संचालक, वैद्यराज श्री रामनारायण जी शर्मा ने सभा का शुभारम्भ करते हुए कहा कि आज देश पूर्ण स्वतन्त्र है। केन्द्र और राज्यों में जनता द्वारा चुनी गयी सरकारें सत्तारूढ़ हैं। सरकार भी यथाशक्ति कुछ कर ही रही है। फिर भी इस व्यवस्था में कहीं-न-कहीं त्रुटि अवश्य है, जिससे कि दिन-पर-दिन आयुर्वेद शास्त्र की मर्यादा व्यावहारिक रूप में घटती जा रही है। आपने कानपुर जैसे उद्योगप्रधान बड़े नगर में एक श्रेष्ठ आयुर्वेदिक कालेज की स्थापना पर जोर देते हुए नगर के धनीमानी सज्जनों से जोरदार शब्दों में अपील की कि वे लोग इस दिशा में कदम उठावें। आपने कहा कि जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं भी इस सत्कार्य में पीछे न रहूँगा।

वैद्य श्री रामनारायण जी के विचारों का समर्थन करते हुए उत्तर प्रदेश सरकार के उप-स्वास्थ्य-मंत्री ने प्रशासकीय तथा व्यक्तिगत तौर पर सहायता देने का आश्वासन दिया। इसके पश्चात् झाँसी के विख्यात वैद्य श्री रघुबरदयाल जी भट्ट तथा अन्य विद्वानों के भाषण हुए।

अन्त में मनोनीत अध्यक्ष ने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण में एक सुदृढ़ वैद्य-संगठन की आवश्यकता पर जोर देते हुए बताया कि आयुर्वेद इस देश की प्राचीनतम विद्या है और इस कारण हमारी सांस्कृतिक निधि है—अतएव इस निधि की न केवल रक्षा ही, प्रत्युत इसका विस्तार भी आवश्यक है।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा प्रेषित प्रस्तावों को सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया। प्रस्ताव में सरकार से इस आशय की माँग की गयी कि वह जन-स्वास्थ्य-संरक्षण में आयुर्वेद को पूर्ण प्रोत्साहन दे और द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आयुर्वेद का अधिकाधिक जन-स्वास्थ्य के लिए उपयोग करे।

देशी चिकित्सा-पद्धति के विकास के लिए अनुसंधान पर जोर देते हुए दूसरे प्रस्ताव में बताया गया कि इस देश की प्राचीनतम चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद ही है। आयुर्वेद की श्रेष्ठता और उपयोगिता स्वयंसिद्ध है—अतः सरकार को चाहिए कि अपने देश के प्राचीन विज्ञान को पुनस्संस्थापित करने के लिए प्रत्येक राज्य में अतिशीघ्र अनुसंधान-कार्य प्रारम्भ करे। तीसरे प्रस्ताव द्वारा आसव-अरिष्टों को मद्य की श्रेणी में रखे जाने का विरोध किया गया और सरकार से अनुरोध करते हुए आसव-अरिष्टों पर से यथा-शीघ्र प्रतिबन्ध हटाने देने की माँग की गयी। चौथे प्रस्ताव में यथाशीघ्र एक केन्द्रीय आयुर्वेद महाविद्यालय या आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना की माँग की गयी। धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

बाँदा में स्वास्थ्य-दिवस

धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के अवसर पर अनुष्ठित स्वास्थ्य दिवस को मनाने के लिए बाँदा में एक जनसभा हुई। नगर तथा पार्श्ववर्त्ती गाँवों के प्रायः सभी प्रमुख वैद्य, हकीम तथा सम्भ्रान्त व्यक्ति इस आयोजन में शामिल थे। भारी संख्या में सभा में लोगों की उपस्थिति यह स्पष्ट बता रही थी कि आयुर्वेद के लिए कितना प्रगाढ़ प्रेम उनके हृदय में है। इस अवसर अपने विचार प्रकट करते हुए श्री भवानीदत्त जी व्यास ने कहा कि आहार, स्वप्न और ब्रह्मचर्य रूपी त्रिस्तम्भ का प्रभाव ही भारत में स्वास्थ्य की अवनति होने का कारण है।

स्वास्थ्योन्नति के लिए ब्रह्मचर्य की रक्षा पर बल देते हुए श्री रघुवंश मणि वैद्य ने कहा कि ब्रह्मचर्य की रक्षा के फलस्वरूप हमारे पूर्व-पुरुष दीर्घजीवी होते थे और व्याधियाँ उन्हें नहीं सता पाती थीं किन्तु आज की स्थिति ही सर्वथा विपरीत हो गयी है।

आयुर्वेदोत्थान के क्षेत्र में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा किए गए अभिनन्दनीय प्रयासों का उल्लेख करते हुए आपने बताया कि बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा पूर्ण शास्त्रोक्त पद्धति से औषधियाँ तैयार की जाती हैं—इसी कारण वे अत्यन्त गुणकारी होती हैं।

बैद्यनाथ भवन द्वारा प्रेषित प्रस्तावों का पाठ हुआ और सर्व-सम्मति से सभी प्रस्ताव स्वीकृत हुए। प्रस्ताव में सरकार से इस आशय की माँग की गयी कि वह जन-स्वास्थ्य-संरक्षण में आयुर्वेद को पूर्ण प्रोत्साहन दे और द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आयुर्वेद का अधिकाधिक जन-स्वास्थ्य के लिए उपयोग करें।

देशी चिकित्सा पद्धति के विकास के लिए अनुसंधान पर जोर देते हुए दूसरे प्रस्ताव में बताया गया कि इस देश की प्राचीनतम चिकित्सा-प्रणाली आयुर्वेद ही है। आयुर्वेद की श्रेष्ठता और उपयोगिता स्वयंसिद्ध है—अतः सरकार को चाहिए कि अपने देश के प्राचीन विज्ञान को पुनस्संस्थापित करने के लिए प्रत्येक राज्य में अतिशीघ्र अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करे। तीसरे प्रस्ताव द्वारा आसव-अरिष्टों को मद्य की श्रेणी में रखे जाने का विरोध किया गया और सरकार से अनुरोध किया गया कि आसव-अरिष्ट पर से यथाशीघ्र प्रतिबन्ध हटा ले। चौथे प्रस्ताव में शीघ्रातिशीघ्र एक केन्द्रीय आयुर्वेद महाविद्यालय या आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना की माँग की गयी। धन्यवाद-ज्ञापन के पश्चात् कार्यवाही समाप्त हुई।

भगवन्तनगर (उन्नाव) में सभा

गत कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी को स्वास्थ्य-दिवस समारोह के सिलसिले में भगवंतनगर (उन्नाव) में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन बड़े उल्लासपूर्ण वातावरण में किया गया। सभा में इस क्षेत्र के प्रतिष्ठित वैद्यों, आयुर्वेदज्ञों, हकीमों के अतिरिक्त विशिष्ट नागरिक भी उपस्थित थे। मंगलाचरण के साथ कार्यवाही प्रारंभ हुई। तत्पश्चात् पं० कृष्णकुमार जी ने आयुर्वेदोन्नति के बारे में अपने विचार व्यक्त किये। इस अवसर पर आयुर्वेद की उन्नति, वैद्यों के कर्त्तव्य और उनकी एकता, समुद्र-मंथन से उत्पन्न विष और अमृत के बारे में विद्वानों द्वारा सम्यक् विवेचन हुआ। भाषणकर्त्ताओं में सर्वश्री शुकदेव प्रसाद जी, लल्लू प्रसाद जी पुजारी, महाबली प्रसाद शर्मा वैद्य, गया प्रसाद जी त्रिपाठी आदि प्रमुख थे। वक्ताओं ने एक स्वर से आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-प्रद्धति के रूप में मान्यता प्रदान करने की अपील सरकार से की।

सभा में सर्वसम्मति से चार प्रस्ताव स्वीकृत किये गए। उन प्रस्तावों में सरकार से इस आशय की माँग की गयी कि जनस्वास्थ्य-संरक्षण को दृष्टिगत करते हुए राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय स्वास्थ्य-नीति निर्धारित करे। साथ ही प्रतिवर्ष सरकार और जनता के सहयोग से श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर अखिल भारतीय स्वास्थ्य-सप्ताह का आयोजन किया जाय और केन्द्रीय सरकार स्वाधीनता दिवस और गणतंत्र दिवस की भाँति ही श्री धन्वन्तरि जयन्ती को राष्ट्रीय स्वास्थ्य-दिवस का अवकाश स्वीकृत करे। दूसरे प्रस्ताव द्वारा देशी चिकित्सा-पद्धति के शिक्षण के लिए प्रत्येक जिले में एक आयुर्वेद विद्यालय तथा साधनसम्पन्न एक आयुर्वेदिक अस्पताल स्थापित करने की माँग की गयी। तीसरे प्रस्ताव द्वारा आसव-अरिष्टों के मद्य की श्रेणी में रखे जाने का तीव्र विरोध किया गया और सरकार से यह माँग की गयी कि वह अविलम्ब इस प्रतिबन्ध को हटा ले। चौथे प्रस्ताव द्वारा अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ की गतिविधि पर असन्तोष प्रकट करते हुए एक सम्पन्न आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना का आयोजन वैद्यों द्वारा किए जाने की माँग की गयी। अंत में सभा सधन्यवाद विसर्जित की गयी।

पानीपत में स्वास्थ्य-दिवस

धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष में स्वास्थ्य दिवस स्थानीय जैन धर्मशाला में श्रीयुत् वैद्य ऋषिकुमार शास्त्री की अध्यक्षता में मनाया गया। इस अवसर विविध विद्वानों के भाषण, संगीतज्ञों के सुललित गायन और कवियों के सुमधुर कविता पाठ का भी सुन्दर आयोजन किया गया था। आयुर्वेद और स्वास्थ्य के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए सर्व श्री वैद्य रामकृष्ण जी शास्त्री, वैद्य रामधन जी शास्त्री, रामजीदास वैद्य कविराज एवं मदनलाल शास्त्री के भाषण हुए। तदुपरांत वैद्य नारायण दत्त जी आयुर्वेदालंकार ने चार प्रस्ताव उपस्थित किये जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। अध्यक्षीय भाषण, स्वल्पाहार और धन्यवाद-ज्ञापन के बाद कार्यवाही विसर्जित हुई।

पलपल में स्वास्थ्य-दिवस

श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में आयोजित सार्वजनिक स्वास्थ्य दिवस श्री लक्ष्मी जेनरल स्टोर पलपल में श्री सोहनलाल शर्मा वैद्य की अध्यक्षता में समारोहपूर्वक मनाया गया। आयुर्वेद विषयक सारगर्भित भाषण विद्वानों द्वारा इस अवसर पर दिए गए। वक्ताओं के भाषणोपरान्त चार प्रस्ताव बारी-बारी से सभा में प्रस्तुत किए गए, जो सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए।

प्रस्तावों में राष्ट्रीय स्तर पर स्वास्थ्य-नीति-निर्धारण की माँग केन्द्रीय सरकार से की गयी। प्रस्ताव में कहा गया कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली को ही राष्ट्रीय चिकित्सा प्रणाली के रूप में मान्यता दी जाए। साथ ही धन्वन्तरि जयन्ती के दिन सार्वजनिक अवकाश की घोषणा प्रशासकीय आधार पर की जाय। इस के अतिरिक्तआसव-अरिष्टों पर से अविलम्ब प्रतिबन्ध हटाने एवं केन्द्रीय आयुर्वेदिक महा-विद्यालय की स्थापना करने की माँग की गयी। अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन के बाद कार्यवाही समाप्त हुई।

गोपीगंज (बनारस) में सभा

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के गोपीगंज (बनारस) बिक्री केन्द्र में धूमधाम से धन्वन्तरि जयन्ती मनायी गयी। सभापति का आसन श्री पं० रामनरेश जी वैद्य ने ग्रहण किया। भगवान धन्वन्तरि की पूजा के बाद सभा का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम श्री रमेशचन्द्र जी ने स्वागत भाषण पढ़ा। तत्पश्चात् अनेक वैद्यों के सामयिक भाषण हुए। सभी वक्ताओं ने बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की महान आयुर्वेद-सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की और वैद्यों से संगठित होकर आयुर्वेत्थान के कार्यों में सहयोग देने पर जोर दिया। सभापति जी ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आयुर्वेदोन्नति के लिए प्रयत्नशील बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के संचालकों की सराहना की। अन्त में में धन्यवाद ज्ञापन और प्रसाद वितरण कर सभा की कार्यवाही समाप्त की गयी।

ढ्यावोला (शिमला हिल्स) में समारोह

ढचावोला (शिमला हिल्स) में श्री धन्वन्तरि जयन्ती बड़े धूमधाम से सम्पन्न हुई। उत्सव में स्थानीय सज्जनों ने अभूतपूर्व उल्लास तथा आह्लाद का प्रदर्शन किया। यह जयन्ती श्री तुलसीराम कौशल की अध्यक्षता में हुई। सर्वप्रथम श्री धन्वन्तरि भगवान का पूजन हुआ। श्री काहानचन्द परीहार ने आयुर्वेदीय औषधियों के गुणों पर प्रकाश डालते हुए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के संचालकों की प्रगाढ़ प्रशंसा की। अन्त में अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए श्री तुलसीराम कौशल ने कहा कि आज भगवान

जो निर्लेप हैं, उनसे आगे श्री धन्वन्तरि जी बढ़ चुके हैं। उन्होंने संसार को अदभूत तथा बहुमूल्य औषधियाँ भेंट कीं, जिनसे प्रत्येक प्राणी को दीर्घ आयु का वरदान प्राप्य है। सब कुछ केवल श्री धन्वन्तरि भगवान के दिव्य परीक्षण का नवीन तथा नवजीवनदायक सफल तथा स्थिर चिह्न है। प्रसाद वितरण कर सभा समाप्त हुई।

दिल्ली में भव्य समारोह

श्री देहली आयुर्वेदिक स्टोर्स चांदी चौक देहली में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। देहली की सब से पुरानी वैद्य संस्था "इन्द्रप्रस्थीय वैद्य सभा" ने भी धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के बिक्री-केन्द्र चांदनी चौक में ही मनाया। सब से पहले भगवान् धन्वन्तरि जी का पूजन किया गया। तत्पश्चात् भारत के प्रसिद्ध वैद्य-कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी की अध्यक्षता में सभा हुई, जिस में देहली के सभी प्रमुख वैद्यों ने भाग लिया और आयुर्वेद की स्थिति पर तथा भगवान धन्वन्तरि जी के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला गया। श्री बैद्यनाथ सरकार ने अपने विचार प्रकट करते हुए भारत सरकार से अनुरोध किया कि आयुर्वेद चिकित्सा को राष्ट्रीय चिकित्सा स्वीकार करे। वैद्य घनानन्द जी पन्त ने अपने भाषण में कहा कि वैद्यबन्धु जो चिकित्सा करते हैं, वे जनता की निःस्वार्थभाव से सेवा समझ कर यह करें। केवल आय के लिये नहीं करें।' वैद्य समाज को उन्नत करने का केवल एक यही साधन है। वैद्य मोहनलाल शास्त्री जी ने अपने भाषण में बताया कि हम किस प्रकार वैद्य समाज को ऊँचा उठा सकते हैं और भगवान् धन्वन्तरि जी के जीवन तथा उनके उपदेशों से शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। उन्होंने कहा भगवान धन्वन्तरि जी का यही आदेश है कि वैद्य केवल लोक सेवा के लिए ही बना है। वैद्य जगदीश चन्द्रजी आयुर्वेदाचार्य ने कहा कि एक वैद्य का कर्तव्य केवल धन इकट्ठा करना ही नहीं है, उसका कर्तव्य गरीब जनता की सेवा चिकित्सा तथा धन द्वारा करना है। जब तक हम केवल धन कमाने की इच्छा को नहीं त्याग देंगे तब तक हम उन्नति नहीं करेंगे। श्री जागेराम गुप्ता वैद्य ने अपने भाषण में कहा कि सरकार आयुर्वेद को अच्छा इसलिये नहीं समझती कि एक डाक्टर बनने में जितना धन खर्च होता है, उतना एक वैद्य बनने में नहीं होता। अतः सरकार को आयुर्वेदिक कालिज आदि खोलने चाहिये तथा वहां वैद्यों को दोनों ही पद्धति का ज्ञान कराना चाहिए। जो कुछ सरकार ऐलोपैथिक के लिए कर रही है वही आयुर्वेद के लिए भी करे तो निःसन्देह आयुर्वेद बहुत आगे बढ़ सकता है। सब के बाद में सभापति जी ने अपना भाषण दिया और कहा कि आयुर्वेद सब से पुरानी पद्धति है और जिस समय महाभारत का युद्ध हो रहा था उस समय जो योद्धा युद्ध में जख्मी हो जाते थे उनके जख्मों पर आयुर्वेदिक दवा ही लगाई जाती थी और वह दवा ऐसी होती थी कि रात्रि को लगाने पर प्रातः वही योद्धा फिर युद्ध में जाकर लड़ते थे। श्री सभापति जी ने सरकार से यह भी मांग की कि राजधानी में एक आयुर्वेदिक विश्वविद्यालय भी सरकार को खोलना चाहिए जिस में अच्छे-अच्छे विद्वान व्यक्ति हों, जहां पर विद्यार्थी उच्च शिक्षा ग्रहण कर सकें यह काम सरकार ही कर सकती है। जैसे कि सरकार ने मैडिकल कालेज खोल रखे हैं, उसी प्रकार आयुर्वेद विश्वविद्यालय भी सरकार को खोलना चाहिये और सरकार को आयुर्वेदिक चिकित्सा को राष्ट्रीय चिकित्सा स्वीकार करना चाहिए।

इसके पश्चात् श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की ओर से भगवान धन्वन्तरि जी का प्रसाद वितरण किया गया और आगन्तुकों का धन्यवाद करते हुए सभा विसर्जित की गई।

बिहार के विभिन्न स्थानों में समारोह

बेगूसराय में समारोह

बेगूसराय में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव उत्साहपूर्ण ढंग से मनाया गया, जिसमें इस क्षेत्र के सभी वैद्य-हकीमों एवं स्थानीय नागरिकों ने विशाल संख्या में भाग लिया।

सर्व प्रथम श्री धन्वन्तरि भगवान श्री विधिवत् पूजा की गयी। पश्चात् आचार्य ब्रह्मदत्त शर्मा के सभापतित्व में सभा की कार्यवाही शुरू हुई। पं० बिहारीलाल शास्त्री ने स्वागत भाषण पढ़ा। कई वक्ताओं के सामयिक भाषणोपरान्त चार प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। सभापति जी ने भगवान धन्वन्तरि जी के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए आयुर्वेद में शल्य शास्त्र के विषय में विवेचन किया। उन्होंने सरकार से अनुरोध किया कि

आयुर्वेद के विद्वानों को उचित सहायता दी जाय एवं आयुर्वेद की संस्थाओं की उपेक्षा नहीं की जाय। पश्चात् बिक्री-केन्द्र के व्यवस्थापक पं० बिहारी लाल शास्त्री ने समागत वैद्यों एवं हकीमों तथा नागरिकों के प्रति आभार प्रकट करते हुए धन्यवाद दिया और सभा की कार्यवाही समाप्त की गयी।

जयनगर में सभा

श्री हरिहर आयुर्वेदिक स्टोर जयनगर (दरभंगा) में श्री धन्वन्तरि जयन्ती सोल्लास मनायी गयी। प्रथम ४॥ बजे सांय भगवान धन्वन्तरि का पूजन किया गया। तत्पश्चात ५॥ बजे शाम से सार्वजनिक सभा हुई। सर्वसम्मति से यहाँ के प्रमुख साहित्यकार श्री अयोध्या नाथ जी सभापति चुने गये। स्वागत भाषण पं० हरिप्रसाद शर्मा द्वारा सुनाये जाने के पश्चात् श्री किशोर शर्मा, पं० बिहितलाल जी झा एवं डॉ० शिवनाथ सिंह के भाषण हुए। वक्ताओं ने श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करते हुए आयुर्वेद की समृद्धि की आशा की। अन्त में सभापति जी ने अपने भाषण में बताया कि आयुर्वेद में अनुसन्धान की विशेष आवश्यकता है। इसके बिना इसकी प्रगति में बाधा होगी। उन्होंने श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के प्रयत्नों की वैद्यों के संगठन के निमित्त प्रशंसा की। अन्त में आभार प्रदर्शन एवं प्रसाद वितरण के बाद सभा विसर्जित हुई।

पूर्णिया में सफल आयोजन

पूर्णियाँ में बड़े धूम-धाम के साथ श्री धन्वन्तरि जयन्ती मनाई गई। संध्या को ५ बजे श्री धन्वन्तरि भगवान की विधिवत पूजा की गई। तदुपरान्त ६ बजे से सभा की कार्रवाई आरम्भ हुई। सर्वप्रथम श्री दरोगा प्रसाद चौधरी अध्यक्ष जिला कांग्रेस कमेटी पूर्णियाँ सर्व-सम्मति से सभा के अध्यक्ष चुने गये। इसके बाद सचित्र आयुर्वेद, पंचांग इत्यादि का वितरण किया गया। बाद में श्री रामरिछपाल जोशी जी ने स्वागत भाषण पढ़ा और प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किया गया। अनेक वैद्यों के भाषणोपरान्त सभापति जी का भाषण हुआ और प्रसाद वितरण तथा धन्यबाद ज्ञापन कर सभा की कार्यवाही समाप्त की गयी।

समस्तीपुर में सभा

समस्तीपुर स्थित जोशी फार्मेसी में भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती पं० रामकरण जी मिश्र वैद्य की अध्यक्षता में समारोह पूर्वक मनाई गई। पं० मुक्तीनाथ झा वैद्य और कविराज सतीशचन्द्र त्रिपाठी ने आयुर्वेद की महत्ता और भगवान धन्वन्तरि के जीवन और कार्यों पर प्रकाश डाला। अध्यक्ष पद से बोलते हुए मिश्र जी ने सरकार से मांग की कि आयुर्वेद-विज्ञान को सरकार हर तरह की मदद करे जिससे कि भारत की जनता की वह अधिक से अधिक सेवा कर सके। पांच प्रस्ताव भी स्वीकृत हुए। उपस्थित लोगों में प्रसाद वितरण कर आयोजन समाप्त किया गया।

छपरा में अनुष्ठान

छपरा स्थित स्वदेशी दवाखाना में श्री भगवान धन्वन्तरि का पूजन छपरा के सुप्रसिद्ध विद्वान ज्योतिषाचार्य पं० रामचन्द्र ओझा के आचार्यत्व में सविधि सम्पन्न हुआ। सन्ध्या ६॥ बजे से श्री भगवान धन्वन्तरि को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये श्री ब्रजेन्द्र बहादुर एम० एल० सी० अध्यक्ष, छपरा नगरपालिका के सभापतित्व में नगर के प्रमुख नागरिकों तथा जिले के वैद्यों की एक सभा हुई। सर्वप्रथम स्वदेशी दवाखाना के अध्यक्ष श्री हरदेव प्रसाद सिंह ने स्वागत भाषण पढ़ा। तत्पश्चात् श्री मान पं० कमलाकांत मिश्र, श्री पं० धुरेक्षण शास्त्री, श्री रामादर्श सिंह आयुर्वेदाचार्य, श्री पं० पशुपति नाथ त्रिपाठी ए० एम० एस० श्री रामाप्रसाद यादव प्रधान मंत्री सारणजिला वैद्य सभा श्री पं० गोपाल दत्त जी आयुर्वेद शास्त्री प्रधान मंत्री छपरा नगर वैद्य सभा तथा पं० गोविन्दमणि त्रिपाठी प्रभृति तथा सभापति जी के सारगर्भित भाषण हुए। प्रायः सभी वक्ताओं ने श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड की ओर से आयुर्वेद-उत्थान के लिए होने वाले कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सभापति जी ने अपनी ओर से श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड तथा उसके संचालक श्री पं० रामनारायण शर्मा के प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हुए एक धन्यबाद का प्रस्ताव पेश किया जो सर्वसमिति से स्वीकृत हुआ। श्री हरदेव प्रसाद सिंह ने पाँच प्रस्ताव पेश किए जो सर्व सम्मति से स्वीकृत किये गये। अंत में सभापति तथा आगत सज्जनों को धन्यवाद देने के बाद सभा

विसर्जित हुई। सभी लोगों को जलपान कराया गया तथा उपहार वितरण किया गया।

सीवान में समारोह

सीवान में श्री धन्वन्तरि जयन्ती धूमधाम से मनायी गयी। पूजन समाप्ति के बाद प्रसाद वितरण किया गया। फिर सभा की कार्यवाही पं० भूमित्र शर्मा वैद्य के सभापतित्व में शुरु हुई। मंगलाचरण के पश्चात् चाय पार्टी बिक्रीकेन्द्र की ओर से दी गयी। चाय पार्टी में वैद्य और आगत सज्जन सम्मिलित हुए। इसके बाद स्वागत भाषण पढ़ा गया। प्रधान वक्ता में डा० सरयू प्रसाद गुप्त, श्री शिवनाथ प्रसाद शर्मा, शुकदेव पति वैद्य रहे। वक्ताओं ने वैद्य-हकीमों से निवेदन किया कि धन्वन्तरि जयन्ती की इस पुण्य तिथि में अपने को संगठित करने का व्रत लें। संगठन और आपसी मेल-मिलाप से ही आयुर्वेद को आम जनता में प्रचलित कर सकते हैं। पाँचो प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास किये गये। अन्त में धन्यवाद ज्ञापन कर कार्यवाही समाप्त हुई।

बैरगनिया (मुजफ्फरपुर) में समारोह

बैरगनिया में श्री देवकरण प्रसाद अग्रवाल के सभापतित्व में श्री धन्वन्तरि जयन्ती बड़े समारोह के साथ मनायी गयी। इस अवसर पर स्थानीय तथा देहात के सम्मान्य वैद्य-डा० तथा अधिकारी वर्ग ने सम्मिलित होकर श्रद्धांजलि अर्पित की। भगवान धन्वन्तरि की पूजा के बाद श्री जनार्दन शर्मा (व्यवस्थापक) बिक्रीकेन्द्र ने स्वागत भाषण पढ़ा।

तत् पश्चात् सभापति श्री वासुदेव शास्त्री ने अपने भाषण में कहा कि श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा निर्मित सभी दवाइयां आशुगुणकारी और प्रभावोत्पादक होती है। आपने यह भी कहा कि मुझे आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति में केवल श्रद्धा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास भी है। आपने श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की शुभ कामना करते हुए कहा कि आयुर्वेद की उन्नति के लिए इस युग में ऐसी ही संस्थाएँ आवश्यक है क्योंकि वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन विज्ञान को दृष्टि में रखते हुए दवाओं का निर्माण करता है। अन्त में प्रसाद वितरण किया गया।

मोतिहारी में सभा

मोतिहारी में धन्वन्तरि जयन्ती बड़े धूमधाम से मनायी गयी। नगर के अनेक गण्यमान्य चिकित्सक एवं सम्भ्रान्त नागरिक इस अवसर पर उपस्थित थे। कई वक्ताओं ने अपने भाषण में वैद्यनाथ औषधियों की गुणवत्ता की प्रशंसा करते हुए भगवान धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। अन्त में प्रसाद वितरण और धन्यवाद ज्ञापन कर सभा की कार्यवाही समाप्त हुई।

बेतिया में आयोजन

बेतिया में धन्वन्तरि जयन्ती बड़े धूमधाम से मनायी गयी। भगवान धन्वन्तरि के पूजन के पश्चात् स्थानीय वैद्यों-हकीमों एवं नागरिकों की एक सभा हुई, जिसमें पं० वैद्यनाथ मिश्र वैद्य ने सभापति का आसन ग्रहण किया। अनेक वक्ताओं ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आयुर्वेदोन्नति के लिए श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के महत्त्वपूर्ण प्रयत्नों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सभापति जी ने अपने भाषण में वैद्यनाथ औषधियों की गुणवत्ता की सराहना करते हुए वैद्यों से संगठित होकर कार्य करने की अपील की। शुरू में बिक्रीकेन्द्र व्यवस्थापक ने स्वागत भाषण पढ़ा। पांचो प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। अन्त में प्रसाद वितरण और धन्यवाद ज्ञापन कर सभा समाप्त हुई।

सरैयां (शाहाबाद) में समारोह

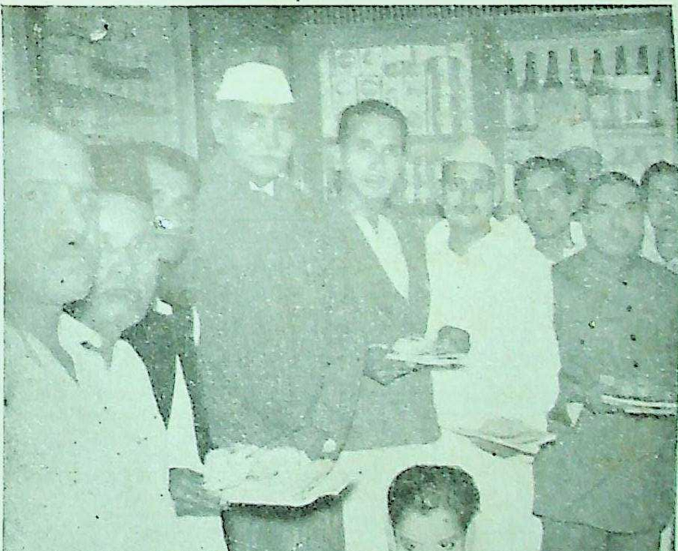
सरैयां (शाहाबाद) में धन्वन्तरि जयन्ती बड़े धूमधाम से मनायी गयी। भगवान धन्वन्तरि के पूजन के पश्चात स्थानीय वैद्यों-हकीमों एवं नागरिकों की एक सभा हुई। अनेक वक्ताओं ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आयुर्वेदोन्नति के लिए श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के महत्त्वपूर्ण प्रयत्नों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सभापतिजी ने अपने भाषण में वैद्यनाथ औषधियों की गुणवत्ता की सराहना करते हुए वैद्यों से संगठित होकर कार्य करने की अपील की। शुरू में श्री कृष्णचन्द्र जमुना प्रसाद ने स्वागत भाषण पढ़ा। पांचो प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। अन्त में प्रसाद वितरण और धन्यवाद-ज्ञापन कर सभा समाप्त हुई।

मेराल (पलामू) में आयोजन

मेराल (पलामू) स्थित नरसिंह आयुर्वेदिक औषधालय में धन्वन्तरि जयन्ती बड़े धूमधाम से मनायी गयी। भगवान धन्वन्तरि के पूजन के पश्चात् स्थानीय वैद्यों-हकीमों एवं नागरिकों की एक सभा हुई, जिसमें पं० रमापति तिवारी



सहारनपुर में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा का दृश्य



फर्रुखाबाद में धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह



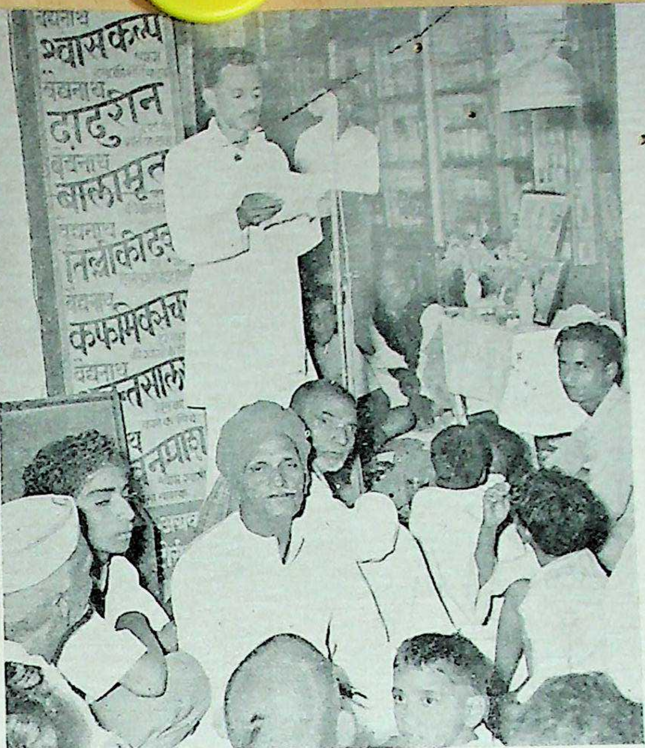
कोंचमें अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा



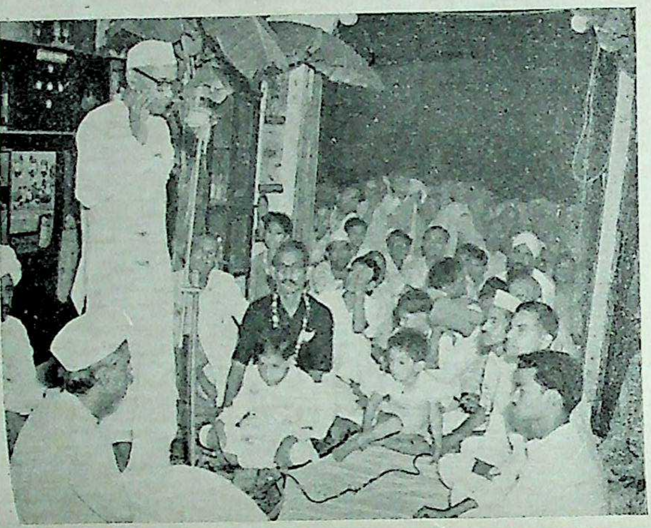
मटियाबुर्ज, (कलकत्ता) में धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा का दृश्य



पुरी में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा का एक दृश्य



अलवर में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह का दृश्य





जी ने सभापति का आसन ग्रहण किया। अनेक वक्ताओं ने अपने भाषण में आयुर्वेदोन्नति के लिए श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के महत्वपूर्ण प्रयत्नों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सभापति जी ने अपने भाषण में वैद्यनाथ औषधियों की गुणवत्ता की सराहना करते हुए वैद्यों से संगठित होकर कार्य करने की अपील की। शुरू में बिक्रीकेन्द्र-संचालक ने स्वागत भाषण पढ़ा। पांचो प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। अन्त में प्रसाद वितरण और धन्यवाद ज्ञापन कर सभा समाप्त हुई।

रांची में समारोह

रांची में 'जयश्री' की ओर से पं० श्री देवनारायण मिश्र जी के सभापतित्व में रांची के नागरिकों एवं वैद्यों की उपस्थिति में भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती मनायी गयी और भवन से आये हुए पांच प्रस्तावों को उपस्थित वैद्यों एवं नागरिकों को पढ़ कर सुनाया गया, तथा सरकार का आयुर्वेद के प्रति वर्त्तमान विचार का भी स्पष्टीकरण किया गया। सरकार से जो आयुर्वेद के लिये अनुदान मिला है, वह नगण्य है। अतः सरकार अविलम्ब आयुर्वेद को प्रश्रय देकर अधिक उन्नति के पथ पर अग्रसर करे एवं सुयोग्य वैद्य विद्वानों का सम्मान डाक्टरों के अनुरूप किया जाये। अपने गणतन्त्र राज्य में सभी को समानाधिकार प्राप्त है। इसमें आयुर्वेद को भी उतना ही अधिकार प्राप्त हो जितना अन्य पैथियों को प्राप्त हो रहा है। कई विद्वानों के भाषण हुए और आयुर्वेद के गम्भीर विषयों पर समुचित प्रकाश डाला गया। पश्चात सामुहिक रूप से भगवान धन्वन्तरि को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए सभा विसर्जित की गयी।

रक्सौल (चम्पारण) में सफल आयोजन

पं० शिवप्रसाद सोमदत्त शर्मा, रक्सौल (चम्पारण) द्वारा धन्वन्तरि जयन्ती बड़े धूमधाम से मनायी गयी। सर्वप्रथम पं० शिवप्रसाद शर्मा ने भगवान धन्वन्तरि की सविधि पूजा की। तत्पश्चात् राजवैद्य पं० रामचन्द्र जी मिश्र के सभापतित्व में वैद्य सभा हुई, जिसमें नगर के अनेक प्रमुख अधिकारी एवं सम्भ्रान्त नागरिक शामिल हुए। सर्वप्रथम स्वागत भाषण पढ़ा गया। इसके बाद अनेक वक्ताओं के भाषण हुए। उन्होंने बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की भूरि-भूरि प्रशंसा की। पं० रामवचन मिश्र, पं० भुवनेश्वर पाण्डेय एवं पं० विजयमास्टर ने भी सामयिक भाषण किए। अन्त में सभापति जी ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के महत्वपूर्ण कार्यों की आन्तरिक सराहना की। प्रसाद-वितरण और धन्यवाद-ज्ञापन कर सभा समाप्त हुई।

गोपालगज (सारन) में सभा

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की एजेन्सी प्रताप फैन्सी स्टोर, गोपालगंज में श्री धन्वन्तरि भगवान की पुण्य जयन्ती ससमारोह श्री पं० सरयू प्रसाद शास्त्री आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में मनायी गई। इस अवसर पर स्थानीय "वैद्य संघ" और हकीमवर्ग का सहयोग सराहनीय था। आचार्य विन्ध्याचल पाण्डेय ने अपने उद्घाटन भाषण में आयुर्वेद तथा भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती पर प्रकाश डालते हुए अष्टाङ्ग आयुर्वेद की उपादेयता की ओर उपस्थित सज्जनों का ध्यान आकर्षित किया। तत्पश्चात् श्री ब्रह्मानन्द मिश्र साहित्याचार्य ने कविता पढ़ी। तत्पश्चात् वैद्यों ने अपने भाषण में अनेक प्रकार से आयुर्वेद की उपादेयता तथा महत्ता बताते हुए भगवान् धन्वन्तरि के प्रति अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। धन्यवाद-ज्ञापन तथा प्रसाद वितरण कर कार्यवाही समाप्त की गयी।

भागलपुर में स्वास्थ्य-दिवस

स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष में सूजागंज, भागलपुर में अनुष्ठित जनसभा की कार्यवाही कविराज पं० श्रीनारायण जी शर्मा, आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में सोत्साह और सोल्लास सम्पन्न हुई। सभा में वैद्य, आयुर्वेदीय विद्वान और विशिष्ट नागरिक पर्याप्त संख्या में सम्मिलित हुए थे। सर्व प्रथम श्री विभूति भूषण भट्टाचार्य ने आयुर्वेद की महत्ता बतायी और उपस्थित वैद्यों से अपील की कि वे लोग आयुर्वेद की प्राचीन गरिमा से ही सन्तुष्ट होकर बैठे नहीं रहें बल्कि प्राचीन गौरव के अनुकूल उसका वर्तमान भी बनावें।

अध्यक्ष पद से कविराज श्रीनारायण शर्मा ने बताया कि मनुष्य को आयुर्वेद रूपी अमृत का पानकर सदाचार पालन द्वारा तथा ऋतुचर्या, दिनचर्या एवं रसायन के सेवन से दीर्घ जीवन प्राप्त करना चाहिए। शारीरिक एवं मानसिक दोषों से उत्पन्न विष को मन एवं शारीरिक शुद्धि द्वारा दूरकर, नियम का पालन करते रहने से ही दीर्घ- जीवन की प्राप्ति संभव है।

श्री धन्वन्तरि द्वारा शल्य-क्रिया (चीरफाड़) का प्रचार एवं व्यवहार किया गया था। इसलिए, वैद्यों को भी शल्य-क्रिया में दक्षता प्राप्त करनी चाहिए। क्योंकि, शल्य-क्रिया में पिछड़े रहने से वैद्य वर्ग सम्पूर्ण चिकित्सा का अधिकारी नहीं हो सकता। आपसी तनाव अथवा मतभेदों को भुलाकर सहयोग एवं अध्ययन के बल पर आयुर्वेद की अभिवृद्धि करने की मार्मिक अपील आपने वैद्य-बन्धुओं से की।

अध्यक्ष द्वारा कतिपय प्रस्ताव पेश किये गये जो सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए। प्रस्तावों में सरकार से इस आशय की माँग की गयी कि वह जन-स्वास्थ्य-संरक्षण में आयुर्वेद को पूर्ण प्रोत्साहन दे और द्वितीय पंचवर्षीय योजना में जन-स्वास्थ्य के लिए आयुर्वेद का अधिकाधिक उपयोग करे। साथ ही इस देश के प्राचीनतम विज्ञान आयुर्वेद को पुनः संस्थापित करने के लिए प्रत्येक राज्य में अतिशीघ्र अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करे। आसव-अरिष्टों पर लगे प्रतिबन्ध हटाने एवं एक केन्द्रीय आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना किए जाने की माँग भी की गयी। अन्त में सभा सधन्यवाद विसर्जित हुई।

टाटानगर में स्वास्थ्य दिवस

धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में आयोजित सार्वजनिक स्वास्थ्य दिवस टाटानगर में समारोह पूर्वक प्रोफेसर भगवान सिंह की अध्यक्षता में मनाया गया। तोरण, बन्दनवार तथा बत्तियों से सभा-स्थल को अच्छी तरह सजाया गया था। मंगलाचरण के साथ कार्यवाही का श्रीगणेश हुआ। कतिपय वक्ताओं के भाषण हुए। अध्यक्ष पद से प्रोफेसर भगवान सिंह ने स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य के अन्योन्याश्रय सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आयुर्वेदिक औषधियों का प्रचार सामान्य जनता में बहुत अधिक है। आयुर्वेदिक औषधियों की गुणकारिता का उल्लेख करते हुए आपने बताया कि आयुर्वेदिक औषधियां एलोपैथी की औषधियों से अपेक्षाकृत बहुत सस्ते भाव में मिलती हैं और गुणकारी भी होती हैं। जिन अन्य व्यक्तियों ने अपने विचार व्यक्त किए उनमें सर्व श्री अयोध्या प्रसाद जी वैद्य, केदारनाथ शास्त्री, तुलसीराम जी वैद्य, ब्रह्मचारी धर्मानन्द जी शास्त्री एवं हकीम मुहम्मद यासीन प्रमुख है। तत्पश्चात् प्रस्ताव एक-एक करके सर्व सम्मति से पारित हुए। उन प्रस्तावों में जन-स्वास्थ्य-संरक्षण के लिए आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के रूप में मान्यता देने, द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अधिकाधिक आयुर्वेद के उपयोग किए जाने, आसव-अरिष्टों पर से तत्काल प्रतिबन्ध हटाने एवं शीघ्रातिशीघ्र एक केन्द्रीय आयुर्वेद महाविद्यालय या आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना करने की माँग की गयी। धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

इमामगंज (छपरा) में स्वास्थ्य दिवस

श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष में आयोजित स्वास्थ्य दिवस श्री ब्रजेन्द्र बहादुर एम० एस-सी०, अध्यक्ष छपरा नगरपालिका की अध्यक्षता में समारोह-पूर्वक मनाया गया। सभा में वैद्यों, हकीमों और स्थानीय जनता की उपस्थिति संतोषजनक थी। मंगलाचरण के साथ कार्यवाही का श्रीगणेश हुआ। कतिपय विद्वान वैद्यों के भाषण हुए, जिनमें सर्व श्री कमलाकान्त मिश्र, धुरेक्षण शास्त्री, रामादर्श सिंह आयुर्वेदाचार्य, पशुपति नाथ त्रिपाठी ए० एम० एस० एवं गोपालदत्त जी आयुर्वेद शास्त्री, प्रमुख थे। सभी वक्ताओं ने श्री बैद्यनाथ आयर्वेद भवन प्राइवेट लि० की ओर से आयुर्वेदोत्थान के प्रयत्नों के लिए किये जाने वाले कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। अध्यक्ष महोदय ने बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के संचालक वैद्य रामनारायण शर्मा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए सामयिक भाषण दिया। तदनन्तर ४ प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुए। धन्यवाद-ज्ञापन के बाद कार्यवाही समाप्त हुई।

गया में स्वास्थ्य दिवस

गत २१ अक्तुबर को गया माहुरी ट्रेडिंग कम्पनी के तत्वावधान में अनुष्ठित धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष में स्वास्थ्य दिवस श्री ब्रजेश्वर प्रसाद जी एम० पी० की अध्यक्षता में बड़े उत्साहपूर्ण वातावरण में मनाया गया। इस दिवस को मनाने के लिए नगर के प्रायः सभी प्रमुख वैद्य, कविराज एवं आयुर्वेदप्रेमी जनता जुट कर आयी थी। सभापति के गवेषणापूर्ण आयुर्वेद विषयक भाषण के के अतिरिक्त कतिपय वैद्यों और विद्वानों के समयोपयोगी भाषण हुए। तदनन्तर आयुर्वेदोत्थान विषयक पाँच प्रस्ताव विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तावित, समर्थित और अनुमोदित होकर सर्व सम्मति से पारित हुए। अन्त में धन्यवाद ज्ञापन के पश्चात् कार्यवाही समाप्त हुई।

फारबिसगंज में स्वास्थ्य दिवस

श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष में सार्वजनिक स्वास्थ्य दिवस मनाने के लिए श्री बिहारी मिश्र, प्रिंसिपल संस्कृत महाविद्यालय फारबिसगंज की अध्यक्षता में एक जन सभा का आयोजन किया गया। इस समारोह में वैद्य समुदाय के साथ-साथ स्थानीय प्रमुख नागरिकों ने भी पूर्ण सहयोग प्रदान किया। धन्वन्तरि और आयुर्वेद विषयक कविता-पाठ तथा भाषण होने के उपरान्त ४ प्रस्ताव सभा के समक्ष पेश किये गये जो सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए। प्रस्तावों में इस आशय की मांग की गयी कि जन-स्वास्थ्य संरक्षण में आयुर्वेद को पूर्ण प्रोत्साहन मिले, द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अधिकाधिक आयुर्वेद का उपयोग हो, आसव-अरिष्टों पर से तत्काल प्रतिबंध हटे एवं शीघ्रातिशीघ्र एक केन्द्रीय आयुर्वेद महाविद्यालय या आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना की जाय। अध्यक्षीय भाषण तथा धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा की कार्यवाही समाप्त की गयी।

आरा में भव्य समारोह

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के आरा स्थित बिक्री-केन्द्र में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर प्रसिद्ध विद्वान पं० गोपालदत्त जी शास्त्री के सभापतित्व में स्वास्थ्य दिवस मनाया गया। सभा में नगर के सभी प्रतिष्ठित वैद्य विद्वान एवं पत्रकार आदि उपस्थित थे। सर्वप्रथम केन्द्राध्यक्ष पं० कमलकान्त शर्मा ने आगत सज्जनों का स्वागत किया एवं मुद्रित स्वागत भाषण पढ़ा। स्वागत भाषण में धन्वन्तरि जयन्ती को व्यापक और सार्वजनिक रूप से मनाने का अनुरोध किया गया और साथ-साथ सरकार से भी अनुरोध किया गया प्रत्येक प्रान्तीय सरकार आयुर्वेद को पूर्ण प्रोत्साहन दें।

इसके बाद डा० रघुवर दयाल जी, पं० बनमाली जी त्रिपाठी वैद्य आदि अनेक विद्वानों में भगवान धन्वन्तरि को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की तथा आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए बताया कि जहाँ आयुर्वेद से ८० प्रतिशत जनता की सेवा होती है वहाँ आयुर्वेद पर दस प्रतिशत भी खर्च नहीं किया जाता।

अन्त में सभापति महोदय ने श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के संचालकों के इस महान् कार्य की प्रशंसा की कि केवल इनका अर्थोपार्जन एवं व्यापारिक दृष्टिकोण नहीं है अपितु आयुर्वेद के उत्थान और जनता के स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में तन-मन-धन से सारे भारतवर्ष में जुटे हुए हैं। इनके द्वारा निर्मित औषधियाँ आज एलोपैथी ओषधियों का पूरा मुकाबला कर रही है।

अन्त में प्रसाद वितरण किया गया तथा पाँचों प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए।

सासाराम में स्वास्थ्य-दिवस

श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष में सार्वजनिक स्वास्थ्य दिवस श्री चन्द्रशेखर मिश्र की अध्यक्षता में ससमारोह मनाया गया। इस आयोजन में वैद्यों, हकीमों और विशिष्ट नागरिकों ने पर्याप्त संख्या में भाग लिया। मंगलाचरण के बाद कार्यवाही प्रारम्भ हुई। इसके बाद कतिपय आयुर्वेदज्ञों तथा आयुर्वेदप्रेमियों के भाषण हुए। वक्ताओं ने मुक्त कण्ठ से आयुर्वेद की उपयोगिता और गुणकारिता की प्रशंसा की और आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति को अन्य पद्धतियों से उत्तम ठहराया। अध्यक्ष के सारगर्भित भाषण के बाद ४ प्रस्ताव एक-एक कर पेश किये गये और सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए।

प्रस्तावों में जन-स्वास्थ्य संरक्षण के लिए आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में मान्यता प्रदान करने, धन्वन्तरि जयन्ती को राष्ट्रीय स्वास्थ्य दिवस के रूप में मनाने तथा उस दिन सार्वजनिक अवकाश रखने, आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबन्ध हटाने और एक केन्द्रीय आयुर्वेदिक महाविद्यालय की स्थापना करने की मांग की गयी। अन्त में धन्यवाद ज्ञापन के बाद कार्यवाही समाप्त हुई।

कटिहार में स्वास्थ्य-दिवस

श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में आयोजित सार्वजनिक स्वास्थ्य दिवस श्री स्नेहीलाल जी की अध्यक्षता में ससमारोह स्थानीय मंगलबाजार में मनाया गया। मंगलाचरण के साथ कार्यवाही प्रारंभ हुई। तदुपरान्त वक्ताओं के भाषण हुए। श्री सूर्यमणि तिवारी का भाषण अत्यन्त प्रशंसित हुआ। आपने आयुर्वेदीय औषधियों की विशेषता का उल्लेख करते हुए कहा कि देश अब स्वतन्त्र हो चुका है—इसलिए देववासी आयुर्वेदिक औषधियों का ही सेवन कर इस प्राचीन विद्या को प्रोत्साहित करें। वैद्यनाथ निर्मित औषधियों की गुणवत्ता का उल्लेख करते

हुए आपने बैद्यनाथ औषधियों को अपनाने की अपील की। बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा प्रेषित ४ प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। श्री रघुबर दयाल द्वारा धन्यवाद-ज्ञापन के पश्चात् कार्यवाही समाप्त हुई।

गिरिडीह में स्वास्थ्य-दिवस

गत कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी को श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष में स्वास्थ्य दिवस का आयोजन गिरिडीह में श्री बलदेवदत्त जी शास्त्री की अध्यक्षता में किया गया। अध्यक्ष के अतिरिक्त सर्व श्री अनन्तलाल पाठक, कविराज बैद्यनाथ झा, चन्द्रशेखर मिश्र आयुर्वेदाचार्य, कविराज नकुल कृष्ण गुप्ता एवं मौलवी आलम ने आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति की अच्छाइयों पर प्रकाश डाला और एक स्वर से यह माँग की कि आयुर्वेद को इस देश की राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित किया जाय। तदुपरान्त ४ प्रस्ताव पढ़कर सुनाये गए, जो सर्व-सम्मति से पारित हुए। प्रस्तावों में जन-स्वास्थ्य संरक्षण लिए आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में मान्यता देने, आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबंध हटाने, धन्वन्तरि जयन्ती को स्वास्थ्य-दिवस के रूप में मनाने एवं उस सार्वजनिक छुट्टी रखने तथा एक केन्द्रीय आयुर्वेदिक महाविद्यालय की स्थापना करने की माँग की गयी। अन्त में स्वल्पाहार के बाद सभा विसर्जित हुई।

बेतिया में स्वास्थ्य सप्ताह

श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में आयोजित सार्वजनिक स्वास्थ्य सप्ताह बेतिया में श्री बैद्यनाथ मिश्र आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में ससमारोह मनाया गया। सभा में वैद्यों, हकीमों के अतिरिक्त नगर के विशिष्ट जन भी उपस्थित थे। आगत सज्जनों और अध्यक्ष के भाषणों के बाद सर्वसम्मति से चार प्रस्ताव स्वीकृत हुए। प्रस्तावों में जन-स्वास्थ्य-संरक्षण के लिए आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में मान्यता देने, आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबंध हटाने तथा एक केन्द्रीय आयुर्वेदिक महाविद्यालय की स्थापना करने की माँग की गयी। अन्त में स्वल्पाहार और धन्यवाद-ज्ञापन के उपरान्त कार्यवाही समाप्त की गयी।

लालगंज (मुजफ्फरपुर) में स्वास्थ्य-दिवस

गत कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी को स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष में पण्डित सुदामा मिश्र शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, की अध्यक्षता में लालगंज (मुजफ्फरपुर) में एक सार्वजनिक सभा आयोजित हुई। अनेक आयुर्वेदीय विद्वानों के भाषण हुए। वक्ताओं ने आयुर्वेद की उपादेयता और गुणवत्ता का उल्लेख करते हुए इस बात पर बड़ा बल दिया कि आयुर्वेद को यथाशीघ्र राष्ट्रीय चिकित्सा के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए। अध्यक्ष ने अपने भाषण में बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की आयुर्वेद सेवाओं का उल्लेख करते हुए आयुर्वेद को अपनाने की अपील उपस्थित जनसमुदाय से की। बैद्यनाथ भवन द्वारा प्रेषित प्रस्ताव भी सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए और धन्यवाद ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

देवघर में जन सभा

धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में आयोजित सार्वजनिक स्वास्थ्य दिवस बैद्यनाथधाम (देवघर) में नगर के वयोवृद्ध डाक्टर श्री हरिपद राय एम० बी० बी० एस० की अध्यक्षता में सोत्साह मनाया गया। आयोजन में प्रायः नगर के सभी प्रमुख वैद्य उपस्थित थे। सर्व प्रथम एक बालिका ने मंगलाचरण किया। तदनन्तर श्री नागरदत्त शर्मा ने भारतीय और वैदेशिक चिकित्सा-पद्धति का तुलनात्मक विवेचन करते हुए जनता से आयुर्वेद को अधिक-से-अधिक अपनाने की अपील की। वैद्य सदानन्द पाठक ने आयुर्वेद में वर्णित स्वास्थ्य सूत्रों का विवेचन कर जनता को समझाया कि आयुर्वेद जिस भित्ति पर स्थित है, वह अत्यन्त सुदृढ़ है—इसीसे जनता का कल्याण हो सकता है। कविराज बृन्दावनशरण मिश्र ने कहा कि हमारे ही द्रव्यों को दूसरे नाम रख कर विदेशियों ने अपनी चीज बनाकर हमारे सामने रखा और हम भूल गए कि वह वस्तु हमारी ही है—केवल रूप नाम परिवर्तित कर दिया गया है। जैसे हमारे यहाँ जो पारा है, उसको पाश्चात्य लोग मर्करी कहते हैं तथा हमारे यहाँ की सर्पगन्धा को वे लोग सर्पेन्टाइना कहकर बेचते हैं। इन बातों से सिद्ध है कि आयुर्वेद ही मूलस्रोत है। तत्पश्चात् कविराज पार्वती नारायण शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य ने कहा कि सरकार को आयुर्वेद का एक मापदण्ड निर्धारित करना चाहिए। सभी जगह एक डिग्री तथा प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए तभी आयुर्वेद का उत्थान होगा। प्रोफेसर पंचानन मिश्र अध्यापक हिन्दी विद्यापीठ देवघर का इस अवसर पर अत्यन्त सारगर्भित भाषण हुआ। आपने कहा कि वैद्य भारतीय शास्त्र के संरक्षक और प्रतिनिधि हैं। अतः वैद्य वर्ग से राष्ट्र की स्वास्थ्योन्नति की आशा की

जाती है। उपर्युक्त महानुभावों के अतिरिक्त सर्वश्री कलबल झा, डोमन साहू (समीर), शम्भूनाथ बलियासे 'मुकुल', विश्वम्भर दयाल मिश्र, लखनलाल शास्त्री आदि प्रमुख वक्ता थे। अध्यक्षीय भाषण के बाद चार प्रस्ताव एक-एक कर सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए।

प्रस्तावों में जन-स्वास्थ्य संरक्षण के लिए आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में मान्यता देने, द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अधिकाधिक आयुर्वेद का उपयोग किये जाने, आसव-अरिष्टों पर से तत्काल प्रतिबन्ध हटाने एवं शीघ्रताशीघ्र एक केन्द्रीय आयुर्वेद महाविद्यालय या आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना की माँग की गयी। धन्यवाद-ज्ञापन के बाद कार्यवाही समाप्त हुई।

बक्सर में स्वास्थ्य-दिवस

श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष में आयोजित सार्वजनिक स्वास्थ्य दिवस गत कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी को श्री विष्णुदत्त पाण्डेय की अध्यक्षता में समारोहपूर्वक मनाया गया। सभा में वैद्यों-हकीमों के साथ-साथ बक्सर के गण्यमान्य व्यक्ति भी सम्मिलित हुए थे। मंगलाचरण के पश्चात् कतिपय आयुर्वेदीय विद्वानों के भाषण भी हुए। अपने भाषणों में विद्वान वैद्यों ने आयुर्वेद की प्राचीनता तथा उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए इस बात पर बड़ा जोर डाला कि आयुर्वेद का राष्ट्रीय आधार पर एक ही पाठ्यक्रमानुसार शिक्षण-प्रशिक्षण हो। भाषणोपरान्त अध्यक्ष द्वारा चार प्रस्ताव पेश किए गए जो सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए।

प्रस्तावों में जन-स्वास्थ्य संरक्षण के लिए आयुर्वेद को पूर्ण प्रोत्साहन देने, पंचवर्षीय योजना में अधिकाधिक रूप से आयुर्वेद का उपयोग करने, आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबन्ध हटाने तथा एक केन्द्रीय आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना करने की माँग की गयी। अन्त में सधन्यवाद सभा भंग हुई।

झरिया में स्वास्थ्य-दिवस

श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में सार्वजनिक स्वास्थ्य दिवस का आयोजन कविराज योगेन्द्रनाथ काव्य-व्याकरण-सांख्यतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में किया गया। सभा में वैद्यों, हकीमों और आयुर्वेदप्रेमी जनता की उपस्थिति संतोषजनक थी। विद्वान वैद्यों ने इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए इस बात की आवश्यकता बतायी कि आयुर्वेद का पठन-पाठन एक ही पाठ्यक्रमानुसार होना चाहिए, क्योंकि इससे एकरूपता आ सकेगी। तदुपरान्त श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा प्रेषित ४ प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए। प्रस्तावों में जन-स्वास्थ्य संरक्षण के लिए आयुर्वेद को पूर्ण प्रोत्साहन देने, पंचवर्षीय योजना में अधिकाधिक आयुर्वेद का उपयोग करने, आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबन्ध हटाने तथा एक केन्द्रीय महाविद्यालय की स्थापना करने की माँग की गयी। अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

डालटेनगंज में स्वास्थ्य-दिवस

गत कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी को धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में आयोजित स्वास्थ्य दिवस श्री गोपी प्रसाद गोयल की अध्यक्षता में मनाया गया। इस आयोजन में शहर के अनेक प्रतिष्ठित वैद्य और नागरिक सम्मिलित हुए। सभा की कार्यवाही मंगलाचरण के साथ प्रारम्भ हुई। तदनन्तर पण्डित चिरंजीलाल शास्त्री और पं० जयदेव शर्मा ने आयुर्वेद की महत्ता तथा वैद्य-संगठन पर अत्यन्त मार्मिक भाषण दिया। तदुपरांत श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा प्रेषित चार प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। प्रस्तावों में जन-स्वास्थ्य संरक्षण के लिए आयुर्वेद को पूर्ण प्रोत्साहन देने, पंचवर्षीय योजना में अधिकाधिक आयुर्वेद का उपयोग करने, आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबन्ध हटाने तथा एक केन्द्रीय महाविद्यालय की स्थापना करने की माँग की गयी। अन्त में धन्यवाद ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

लहेरियासराय में स्वास्थ्य-दिवस

श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में आयोजित स्वास्थ्य दिवस लहेरियासराय में उत्साहपूर्वक सुप्रसिद्ध विद्वान और लेखक प्रो० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र एम० एल० सी० की अध्यक्षता में मनाया गया। सभा में वैद्यों, हकीमों, डाक्टरों के अतिरिक्त सर्व साधारण जनता की उपस्थिति सन्तोजनक थी। सर्व प्रथम केन्द्र-व्यवस्थापक कविराज रामकुमार शर्मा, आयुर्वेदाचार्य ने समागत महानुभावों का स्वागत करते हुए स्वास्थ्य दिवस का महत्त्व बताया। तदनन्तर कतिपय विद्वानों के भाषण हुए। वक्ताओं ने अपने भाषणों में वैद्य-हकीम एकता, आयुर्वेद की उपयोगिता

और महत्ता तथा श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के आयुर्वेदोत्थान सम्बन्धी कार्यों का उल्लेख करते हुए आयुर्वेद के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार की अपील की।

अध्यक्ष ने अपने सारगर्भित भाषण में कहा कि स्वतन्त्र भारत में इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि शिक्षित जन अपने देश की प्राचीन संस्कृति और पूर्वजों की ज्ञान-विज्ञान-साधना की सही-सही जानकारी प्राप्त करें और उसके लिए गौरव-बोध करें। अपने देश की गौरवपूर्ण परम्परा की उपेक्षा करके यदि हम भविष्य का निर्माण करेंगे तो उसका आधार कदापि सुदृढ़ न होगा और हमारा जातीय जीवन दुर्बल और क्षीण हो जायगा।

आपने आगे कहा कि प्राचीन काल में भारतीयों ने ज्ञान-विज्ञान एवं शिल्प-कला के विभिन्न क्षेत्रों में जैसी उन्नति की थी, वैसी किसी अन्य जाति ने नहीं की। इसका एक बड़ा-बड़ा प्रमाण हमारा आयुर्वेदिक चिकित्सा-विज्ञान है। आपने जोर देते हुए कहा कि भारतीय चिकित्सा-पद्धति पूर्णतया वैज्ञानिक है। यह एक तथ्य है और इस तथ्य को अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। भारतीय चिकित्सा-प्रणाली की वैज्ञानिकता में अणुमात्र भी सन्देह नहीं किया जा सकता। आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली की प्राचीनता बताते हुए आपने कहा कि ईसा के जन्म के बहुत पूर्व से ही हमारे देश में चिकित्सा-विज्ञान प्रचलित था और क्रमशः विकासोन्मुख हो रहा था। संसार के प्राचीनतम ग्रंथ वेदों में स्पष्ट रूप से चिकित्सा-विज्ञान का उल्लेख किया गया है। आयुर्वेद को अथर्ववेद का एक उपवेद माना जाना उसके महत्त्व का द्योतक है।

आयुर्वेद की ऐतिहासिकता बताते हुए आपने कहा कि बौद्ध युग में आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली अपनी चरम उन्नति पर थी। उस समय जीवक नामक एक बौद्ध वैद्य शल्य-चिकित्सा का बड़ा विद्वान था जिसका विस्तृत वर्णन विनय पिटक में मिलता है। आपने कहा कि डा० प्रफुल्ल चन्द्र राय ने अपने विख्यात ग्रंथ "प्राचीन हिन्दू रसायन विज्ञान" में भारत के कितने ही रासायनिकों का उल्लेख किया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि रसौषध का प्रयोग सबसे पहले भारत में ही हुआ था।

आपने खेद प्रकट करते हुए कहा कि अंग्रेजों के शासन-काल में भारतीय चिकित्सा-प्रणाली की पूर्ण उपेक्षा की गयी। फिर भी यह जीवित रही और आज भी अधिकांश लोग इस चिकित्सा-पद्धति से लाभान्वित हो रहे हैं। आपने कहा कि अपने देश की गणतांत्रिक सरकार से हमारी यह माँग होनी चाहिए कि विदेशी चिकित्सा-प्रणाली को जो सुविधाएँ प्राप्त हुईं, वे सुविधाएँ देशी चिकित्सा-प्रणाली को भी मिलें। आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली अपने विकास के लिए समान सुयोग चाहती है। आपने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के संचालकों की सराहना करते हुए कहा कि उनके द्वारा निसंदेह भारतीय चिकित्सा प्रणाली का अपार हित-साधन हो रहा है। सर्व सम्मति से चार प्रस्ताव स्वीकृत हुए। अन्त में स्वल्पाहार तथा धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

बिहारशरीफ में स्वास्थ्य-दिवस

श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष में सार्वजनिक स्वास्थ्य-दिवस श्री हरिहर प्रसाद तिवारी की अध्यक्षता में स्थानीय शर्मा आयुर्वेदिक स्टोर में बड़े उत्साह और उल्लासपूर्ण वातावरण में मनाया गया। इस आयोजन में वैद्यों, हकीमों के अतिरिक्त नगर के विशिष्ट जन भी सम्मिलित हुए थे। मंगलाचरण के साथ कार्यारंभ हुआ। तदनन्तर कतिपय आयुर्वेदिक विद्वानों के भाषण हुए। भाषणकर्त्ताओं में कविराज ओमप्रकाश उपाध्याय, पण्डित हरिताभ उपाध्याय, पं० चन्द्रशेखर द्विवेदी वैद्य प्रभृति प्रमुख थे। वक्ताओं ने एक स्वर से आयुर्वेद की महानता प्रदर्शित की। अध्यक्ष के समयोपयोगी भाषण के उपरान्त श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा प्रेषित चार प्रस्ताव एक-एक कर पेश किए गए और सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए। प्रस्तावों में जन-स्वास्थ्य संरक्षण के लिए आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के रूप में मान्यता प्रदान करने, धन्वन्तरि जयन्ती को राष्ट्रीय स्वास्थ्य-दिवस के रूप में मनाने तथा उस दिन सार्वजनिक अवकाश रखने, आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबंध हटाने और एक केन्द्रीय आयुर्वेदिक महाविद्यालय की स्थापना करने की माँग की गयी। धन्यवाद के बाद सभा विसर्जित हुई।

खगड़िया

वैद्यराज श्री शिवनन्दन जी आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में समारोह सम्पन्न हुआ जिसमें स्थानीय सभी वैद्य एवं नगर के प्रतिष्ठित सज्जन बड़ी संख्या में उपस्थित थे। श्री अवधनारायण, श्री भौंरेलाल शर्मा, श्री मोतीलालजी के भाषण हुए और सर्व सम्मति से पांच प्रस्ताव स्वीकार हुए।

मध्य प्रदेश में सर्वत्र सभाएं

उज्जैन में भव्य आयोजन

उज्जैन में श्री धन्वन्तरि जयन्ती पर इस वर्ष विशेष उत्साह और समारोहपूर्वक सभा इत्यादि का आयोजन किया गया। आरम्भ में विद्वान पण्डितों ने वेदमन्त्रों से भगवान धन्वन्तरि का पूजन-स्तवन किया। नगर के सुप्रसिद्ध समाजसेवी एवं चिकित्सक, मध्यभारत देशी औषध परिषद के माननीय सदस्य श्रीयुत् पंडित अनन्तराज जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, न्यायतीर्थ, सांख्यशास्त्री की अध्यक्षता में सभा की कार्यवाही सम्पन्न हुई। डाक्टर श्री कृष्णचन्द्र जी पिण्डावाला ए० एम० एस० द्वारा श्री धन्वन्तरि स्तुति एवं वंदना की गयी। वैद्य श्री गुलाबचन्द जी शर्मा ने स्वागत भाषण पढ़कर सुनाया। इस अवसर पर श्री अवन्तिका देशी चिकित्सक मण्डल उज्जैन के अध्यक्ष डा० श्री रामदत्त जी तिवारी ए० एम० एस०, डाक्टर कमल सिंह जी, विद्वद्वर श्री पं० सत्येन्द्रकुमार जी सेठी इत्यादि विद्वानों के भगवान धन्वन्तरि, आयुर्वेद विज्ञान, स्वास्थ्य और अन्य सामयिक विषयों पर प्रभावोत्पादक भाषण हुए। वक्ताओं ने वैद्य जगत् से अनुरोध किया कि वह सर्वसाधारण जनता के अधिक से अधिक सम्पर्क में आवें। केवल शासन से ही आयुर्वेदोत्थान की अपेक्षा करने के स्थान पर वैद्य समाज को स्वयं संगठित होकर रचनात्मक रूप से कार्य करना चाहिए। सभा में चार प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये। प्रथम प्रस्ताव श्री दीक्षित जी द्वारा प्रस्तावित एवं डाक्टर कमल सिंह जी द्वारा समर्थित हुआ। द्वितीय प्रस्ताव श्रीयुत् पं० रामदत्त जी तिवारी वैद्य ए० एम० एस० द्वारा प्रस्तावित किया गया। तृतीय प्रस्ताव डाक्टर श्री कमल सिंह जी ने प्रस्तुत किया और और श्री आर० डी० तिवारी ने समर्थन किया। चौथे प्रस्ताव को वैद्यराज श्री आनन्दीलाल जी व्यास ने प्रस्तुत किया। चारों प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार किये गए। प्रस्तावक और समर्थकों ने अपने विषय पर बड़े तर्कपूर्ण भाषण दिये।

अन्त में सभापति महोदय श्री अनन्तराज जी वैद्य का विद्वत्तापूर्ण एवं ओजस्वी भाषण हुआ जिसमें आपने आयुर्वेद विज्ञान की महत्ता पर प्रकाश डाला। आपने आयुर्वेद की उन्नति के मार्ग में आने वाले अवरोधों तथा उनके निराकरण के उपायों पर बिवेचनात्मक रूप से विचार प्रकट करते हुए आयुर्वेद के राष्ट्रीय चिकित्सा के रूप पर तर्कसंगत विचार प्रस्तुत किये। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा किये जा रहे आयुर्वेद-हितकारी कार्यों की चर्चा करते हुए अपने उसके संचालक पण्डित रामनारायण वैद्य द्वारा निरन्तर किये जा रहे देशव्यापी संगठनात्मक दौरों की प्रशंसा की। पं० रामनारायण वैद्य द्वारा अत्यन्त लगन, उत्साह एवं गंभीर चिन्तन के साथ किये जा रहे कार्यों के प्रति अपना सहयोग देने का आश्वासन देते हुए सभापति जी ने कहा कि सम्पूर्ण वैद्य समाज को आयुर्वेद हित के लिए पं० रामनारायण वैद्य के कार्यों में सच्चा सहयोग करना चाहिए।

सभा में बड़ी संख्या में वैद्यों के अतिरिक्त प्रतिष्ठित नागरिक भी बहु संख्या में उपस्थित थे।

रायपुर में सभा

मालवीय रोड स्थित शर्मा औषधालय में रायपुर नगरपालिका के अध्यक्ष श्रीयुत् बुलाकी रामजी पुजारी एडवोकेट की अध्यक्षता में स्वास्थ्य दिवस समारोह पूर्वक मनाया गया। विधिपूर्वक श्रीधन्वन्तरि भगवान के पूजन के अनन्तर वैद्य श्री भूरेलाल शर्मा शास्त्री ने उपस्थित जन समुदाय के स्वागत में भाषण पढ़ा। इसके अनन्तर वैद्य पं० लक्ष्मीकान्त जी शर्मा, डाक्टर श्री दिनकर भाष्कर राजिमवाले, श्री वैद्य छक्कीलाल जी आयुर्वेदाचार्य, वैद्य श्री नन्दकिशोर जी शास्त्री, पं० शारदा प्रसाद जी द्विवेदी और बाबूराम जी शर्मा आदि विद्वानों के महत्वपूर्ण भाषण हुए। वक्ताओं ने अपने तर्कसंगत भाषणों में आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति स्वीकार करने एवं वैद्यसमाज के संगठन के सुधार पर बहुत बल दिया। इसके उपरान्त सभा में पांच प्रस्ताव प्रस्तुत किये गए जो सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। एक विशेष प्रस्ताव पण्डित श्री बाबूराम जी शर्मा द्वारा प्रस्तुत किया गया जिसमें श्री शिवशर्मा द्वारा चलाये गये मानहानि के मामले में सचित्र आयुर्वेद के सम्पादकों की ऐतिहासिक विजय पर पं० रामनारायण शर्मा वैद्य को हार्दिक बधाई दी गयी। प्रस्ताव में कहा गया कि यह सत्य की विजय हुई है और यह विजय आयुर्वेद जगत की विजय है। यह प्रस्ताव भी सर्व सम्मति से हर्षध्वनि के बीच स्वीकृत हुआ। सभापति महोदय ने अपने

भाषण में श्री वैद्यनाथ भवन के आयुर्वेद हितकारक कार्यों पर बधाई दी ।

हरपालपुर (म० प्र०)

श्री धन्वन्तरि स्वास्थ्य महोत्सव का समारोह आयुर्वेदाचार्य डाक्टर देवेन्द्रचन्द्र जोशी ए० एम० एस० की अध्यक्षता में सानन्द सम्पन्न हुआ। सभा में चार प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। प्रस्तावों के सम्बन्ध में सभापति महोदय के अतिरिक्त श्री राजाराम जी आयुर्वेदाचार्य, पं० मदनमोहन दीक्षित आयुर्वेदाचार्य, पं० कुंजबिहारी शर्मा अयुर्वेदाचार्य, पं० मथुरा प्रसाद शर्मा वैद्य के विवेचनात्मक भाषण हुए। सभा में स्थानीय वैद्यों के अतिरिक्त अधिकारीवर्ग एवं प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित थे।

उज्जैन विद्यालय में सभा

स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष में अवन्तिका आयुर्वेद विद्यालय उज्जैन में कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी तदनुसार २१ अक्तूबर को श्री कन्हैयालाल जी वैद्य की अध्यक्षता में एक जन-सभा का आयोजन किया गया। इस अवसर पर उज्जयिनी के प्रायः सभी विशिष्ट वैद्य, चिकित्सक तथा आयुर्वेदज्ञ उपस्थित थे। सर्वप्रथम आचार्य वासुदेव जी शास्त्री ने आयुर्वेद का महत्त्व समझाते हुए भाषण किया। तदनन्तर प्रज्ञाचक्षु श्री दयाशंकर जी बाजपेयी साहित्याचार्य का आयुर्वेद की महत्ता पर संस्कृत में महत्त्वपूर्ण व्याख्यान हुआ। अध्यक्षीय भाषण में अध्यक्ष ने आयुर्वेद की वैज्ञानिकता पर विचार प्रकट करते हुए आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार पर जोर डाला। बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा प्रेषित प्रस्ताव सभा में पढ़कर सुनाये गये, जो सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए। प्रस्तावों में सरकार से जन-स्वास्थ्य के के सम्बन्ध में दृढ़ नीति अपनाने, धन्वन्तरि जयन्ती को राष्ट्रीय स्वास्थ्य दिवस के रूप में मनाए जाने, उस दिन सार्वजनिक छुट्टी घोषित करने एवं आसव-अरिष्टों पर से अविलम्ब प्रतिबंध हटाने की एक स्वर से माँग की गयी।

श्री महाबीर आयुर्वेदिक फार्मेसी व चिकित्सालय उज्जैन के वैद्य अनन्तराज ने इस अवसर पर प्रेषित अपने एक संदेश में कहा कि आयुर्वेद महान् है, कारण कि इस विज्ञान के सिद्धान्त शाश्वत है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत ने विश्व को ज्ञान दिया और चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से इस देश ने आयुर्वेद सदश महान् विज्ञान को जन्म दिया और विश्व ने इसे ग्रहण किया। वह ज्ञान ही अनेक रूपों में आज दृष्टिगोचर हो रहा है।

राज्य की प्रतिकूलता से इन शताब्दियों में यह विज्ञान अपनी उन्नति नहीं कर सका और इसका पूर्वार्जित ज्ञान-भण्डार तिरोहित भी हुआ। किन्तु अब स्वतन्त्रता के बाद देश की समृद्धि के साथ ही आयुर्वेद की समृद्धि भी होगी यह निश्चित है।

मैं इस अवसर पर वैद्य महानुभावों से यह प्रार्थना करता हूँ कि आगे निराशा का कोई कारण नहीं है। हमें पूर्ण श्रम व शक्ति से सेवा भावनाओं का अवलम्बन करके आगे बढ़ना है और देश के करोड़ों पये की निधि जो विदेश औषधियों के मूल्य के रूप में बाहर जाती है उसे रोककर देश की सुख-समृद्धि व आरोग्य को वृद्धिंगत करना है। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन ने निश्चित रूप से इस दिशा में सक्रिय व प्रभाव शाली कार्य करके हमें मार्ग प्रदर्शन किया है। मैं आयुर्वेद भवन व उसके संस्थापक श्रीमान् माननीय श्रद्धेय वैद्यराज श्री रामनारायण जी शास्त्री का अभिनन्दन करता हूँ। वास्तव में इस संस्था द्वारा जो आयुर्वेद की सेवाएँ की जा रही है वह स्तुत्य हैं।

अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

दतिया (म० प्र०)

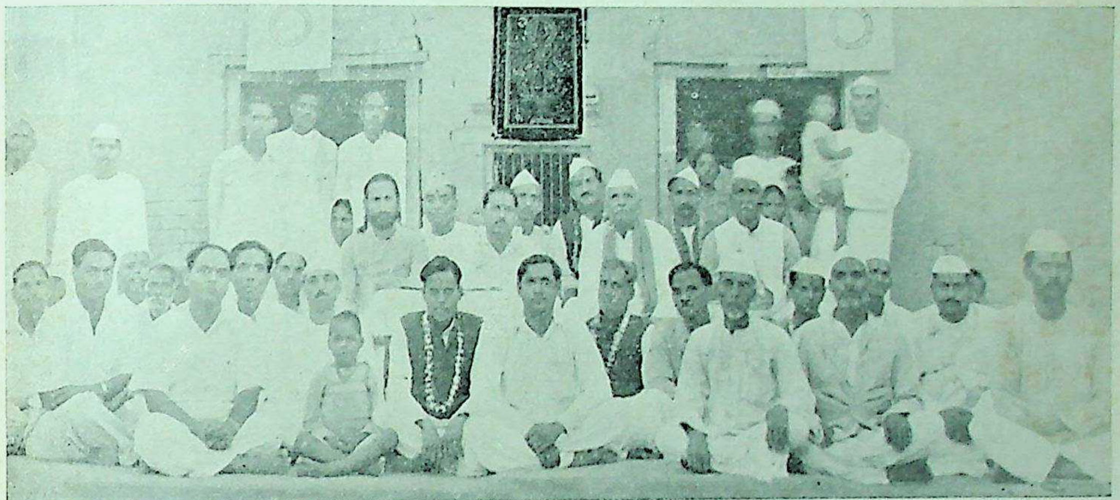
दतिया में श्री धन्वन्तरि स्वास्थ्य दिवस का आयोजन किया गया। सभा का कार्यक्रम दतिया के प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित नागरिक श्रीयुत् पं० राधेलाल जी पाण्डेय के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। सभा में दतिया नगरपालिका के चेयरमैन श्री रामरत्न जी तिवारी, श्री श्यामसुन्दर दास जी 'श्याम' एम० एल० ए०, आयुर्वेदाचार्य पं० रामकृष्ण जी वैद्य, श्रीयुत् पंचमलाल जी पाण्डे, डाक्टर श्री शिवचन्द्र जी जैन इत्यादि प्रमुख जनों के उद्बोधक भाषण हुए। आयुर्वेदाचार्य श्री रामकृष्ण जी वैद्य द्वारा प्रस्तुत तीन प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार किये गये। भगवान धन्वन्तरि स्तवन एवं प्रसाद वितरण हुआ।

डबरा में सभा

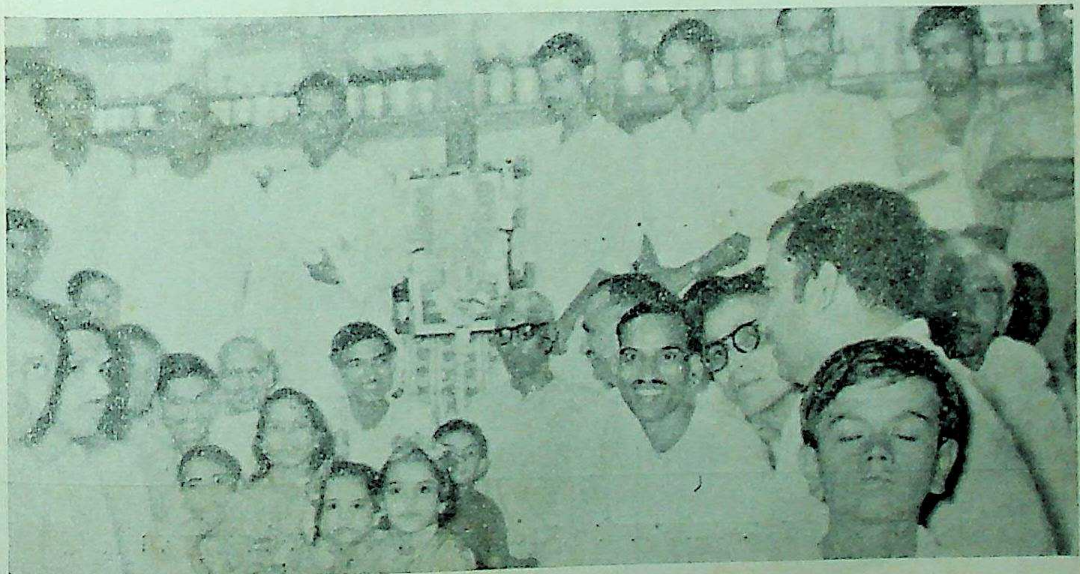
श्री धन्वन्तरि महोत्सव के अवसर पर अनुष्ठित स्वास्थ्य दिवस को मनाने के लिए वैद्यों, हकीमों तथा विशिष्ट व्यक्तियों की एक सभा डबरा में आयुर्वेदिक औषधालय



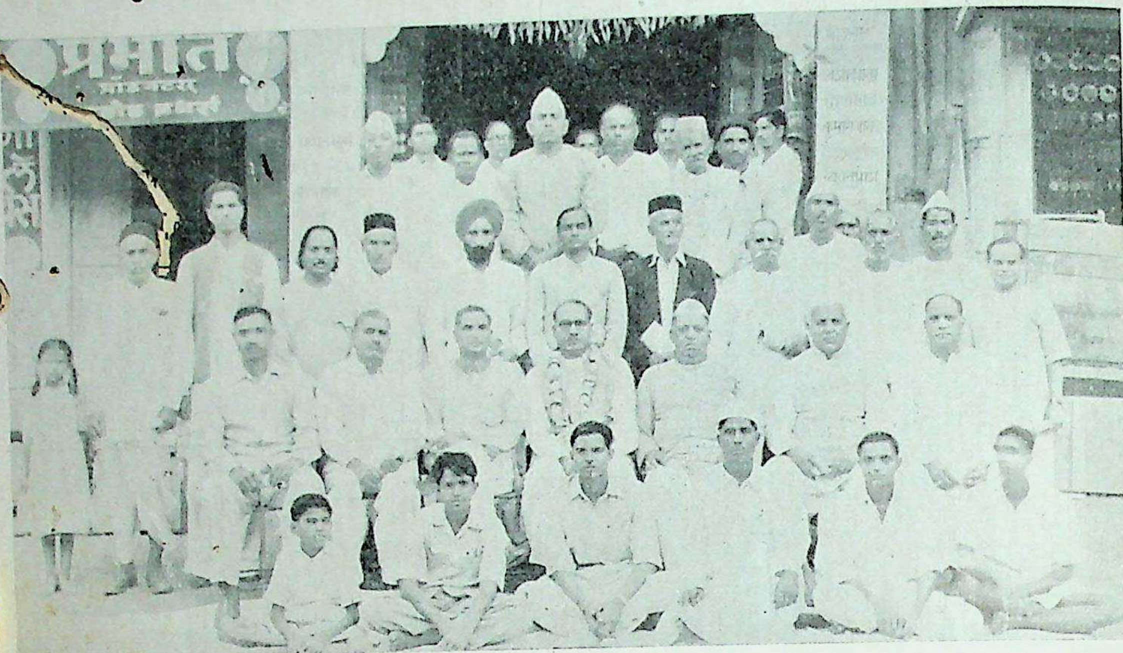
कुलटी में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा में उपस्थित समुदाय



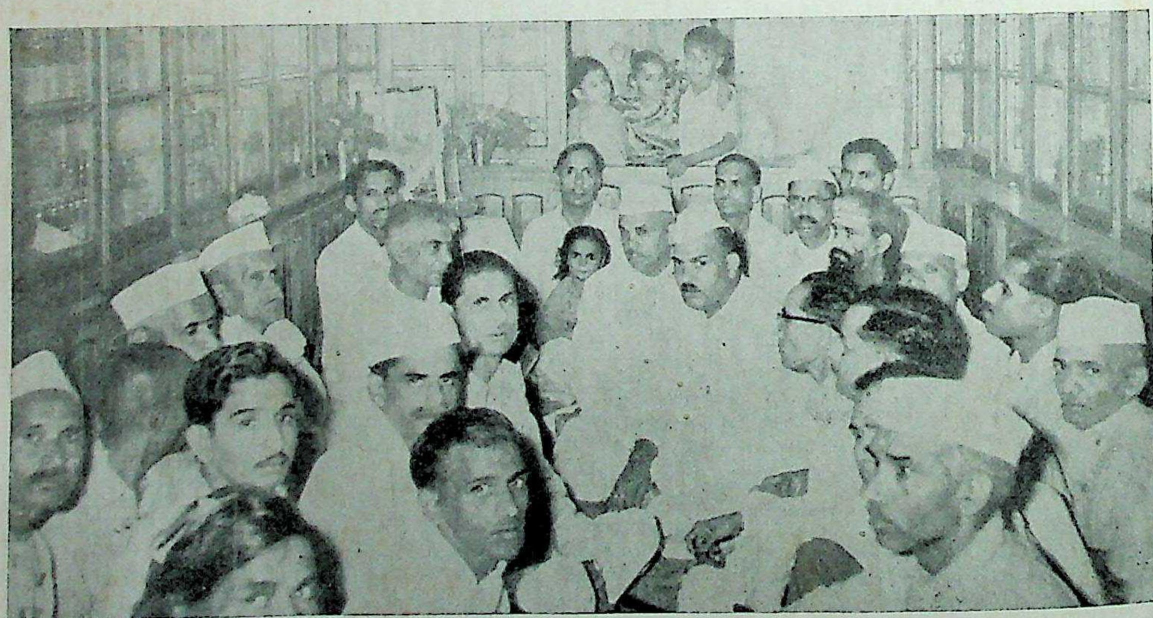
मैनपुरी में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा का भव्य चित्र



वैद्यनाथधाम में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा का एक [illegible]



रायपुर में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा काएक भव्य दृश्य



सागर में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा में समवेत वैद्य समुदाय।

में वैद्य बिहारीलाल जी शास्त्री की अध्यक्षता में हुई। सभा की कार्यवाही मंगलाचरण के साथ प्रारंभ हुई। कतिपय विद्वानों के समयोपयोगी भाषण हुए। तदुपरान्त अध्यक्ष का भाषण हुआ। अध्यक्ष ने वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा की गयी आयुर्वेदिक सेवाओं का उल्लेख करते हुए कहा कि वैद्यनाथ प्रतिष्ठान ने आयुर्वेदीय औषधियों के निर्माण में एक प्रतिमान स्थापित कर वैद्य-समाज का बड़ा हित किया है। अन्त में डा० मिश्र ने ४ प्रस्ताव सभा के समक्ष उपस्थित किये जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। प्रस्ताव में जन-स्वास्थ्य संरक्षण के लिए आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के रूप में मान्यता देने, द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अधिकाधिक आयुर्वेद के उपयोग किये जाने, आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबंध हटाने एवं शीघ्रातिशीघ्र एक केन्द्रीय आयुर्वेद महाविद्यालय या आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना करने की माँग की गयी। धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विर्सजित हुई।

रायगढ़ में सभा

रायगढ़ में स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष में एक सार्वजनिक सभा वैद्य हरविलास राय जी शर्मा की अध्यक्षता में ससमारोह हुई। समारोह के मनोनीत अध्यक्ष के अतिरिक्त प्रगतिशील आयुर्वेद सम्मेलन के सदस्यगण भी उपस्थित थे।

सभा में ४ प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत किये गए। प्रस्ताव नं० १ और २ की प्रतिलिपियाँ राष्ट्रपति, केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री तथा प्रादेशिक स्वास्थ्य मंत्री को और प्रस्ताव नं० नं० ३ की प्रतिलिपि केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री तथा केन्द्रीय राजस्व मंत्री को भेजी गयी। प्रस्ताव नं० ४ की प्रतिलिपि अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, दिल्ली को भेजी गयी। स्वीकृत प्रस्तावों में सरकार से जन-स्वास्थ्य के सम्बन्ध में दृढ़ नीति अपनाने, आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित करने, धन्वन्तरि जयन्ती को राष्ट्रीय स्वास्थ्य-दिवस के रूप में मनाए जाने, उस दिन सार्वजनिक छुट्टी घोषित करने एवं आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबन्ध हटाने की जोरदार शब्दों में सरकार से माँग की गयी। तदुपरांत अध्यक्षीय भाषण एवं धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा समाप्त हुई।

मंडला फोर्ट में सभा

राष्ट्रीय स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष में वयोवृद्ध वैद्य श्री गया प्रसाद जी पाठक की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। समारोह में इस क्षेत्र क्षेत्र के प्रायः सभी प्रमुख वैद्य, हकीम और प्रतिष्ठित व्यक्ति सम्मिलित हुए। सभा-स्थल तोरण-बन्दनवार से भलीभाँति सजाया गया था। चार प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत किये गये। प्रस्तावों में सरकार से जन-स्वास्थ्य की दृढ़ नीति अपनाने, आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित करते, धन्वन्तरि जयन्ती को राष्ट्रीय स्वास्थ्य दिवस के रूप में मनाए जाने, उस दिन देशव्यापी सार्वजनिक छुट्टी घोषित करने, साथ ही आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबन्ध हटाने संबंधी चार प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत किए गए।

प्रस्तावों के स्वीकृत किए जाने के बाद आयुर्वेद की प्राचीनता, जन-स्वास्थ्य, आयुर्वेद के प्रति शासन की उपेक्षापूर्ण नीति, वैद्य समाज में संगठन का अभाव, धन्वन्तरि पूजन का महत्व, समाज को आयुर्वेद की देन, आयुर्वेद एवं वैद्य समाज का उत्थान आदि विषयों पर आगत विद्वानों के समयोपयोगी भाषण हुए। अध्यक्षीय भाषण के उपरान्त धन्यवाद ज्ञापन के साथ समारोह समाप्त हुआ।

डोंगरगढ़ में स्वास्थ्य दिवस

डोंगरगढ़ (म० प्र०) में श्री शंकरलाल झा वकील की अध्यक्षता में राष्ट्रीय स्वास्थ्य दिवस का भव्य आयोजन एक जन-सभा के रूप में किया गया। आगत सज्जनों के भाषण हुए, जिनमें श्री काली लाल जैन वैद्य, श्री गणेशमल भंडारी तथा श्री लक्ष्मण भाई माणजी चावड़ा प्रमुख थे। वक्ताओं ने एक स्वर से आयुर्वेदीय औषधियों की उपयोगिता बतायी और जड़ी-बूटियों के चमत्कारिक गुणों पर शास्त्रीय विधि से प्रकाश डाला। तदनन्तर वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा प्रेषित चार प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित हुए। प्रस्ताव में आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबंध हटाने और आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित करने की मांग सरकार से की गयी। साथ ही निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद सम्मेलन की निष्क्रियता दूर करने तथा धन्वन्तरि जयन्ती के दिन सार्वजनिक छुट्टी करने सम्बन्धी प्रस्ताव भी पारित हुए। अन्त में स्वल्पाहार के बाद समारोह सम्पन्न हुआ।

राजनादगांव (मध्यप्रदेश) में सभा

राजनादगाँव (म० प्र०) में कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी को धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के शुभ अवसर पर डाक्टर अजीज अहमद साहब एम० बी० बी० एस० के सभापतित्व

में स्वास्थ्य दिवस समारोहपूर्वक मनाया गया। सर्वप्रथम वैद्य मुरली मनोहर ने आयुर्वेद की महत्ता पर भाषण दिया। आपके अलावा सर्वश्री शिवकुमार शास्त्री, राधेश्याम जी द्विवेदी, नन्दूलाल जी चोटिया प्रभृति के भी आयुर्वेद के सम्बन्ध में सामयिक भाषण हुए। सभी वक्ताओं ने एक स्वर से आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के रूप में अपनाने की आवश्यकता पर बल देते हुए सरकार से माँग की कि वह आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में मान्यता दे। इसके बाद डा० पचार्या द्वारा चार प्रस्ताव पेश किये गये, जो सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। प्रस्तावों में सरकार से यह अपील की गयी कि वह जन-स्वास्थ्य के बारे में दृढ़ और ठोस नीति अपनावे। साथ ही आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित करने, धन्वन्तरि जयन्ती को राष्ट्रीय स्वास्थ्य दिवस के रूप में मनाए जाने, उस दिन सार्वजनिक छुट्टी रखने तथा आसव-अरिष्टों पर से अविलम्ब प्रतिबन्ध हटाने के सम्बन्ध में सरकार से माँग की गयी। अध्यक्ष ने अपने अध्यक्षीय भाषण में आयुर्वेद की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आयुर्वेद का सर्वांगीन विकास कर उसे विश्व की सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा पद्धति बनाने का दायित्व निश्चय ही आयुर्वेदज्ञों पर है—यदि आयुर्वेदज्ञों को यह कर्त्तव्य-बोध हुआ तो निश्चय ही आयुर्वेद को अपना लुप्त गौरव पुनः प्राप्त हो सकेगा। धन्यवाद ज्ञापन के बाद राष्ट्रीय स्वास्थ्य दिवस समारोह समाप्त हुआ।

सागर में सभा

सागर में इस वर्ष बड़े पैमाने पर श्री धन्वन्तरि जयन्ती के समारोह का आयोजन स्वास्थ्य दिवस के रूप में किया गया। इस अवसर पर विधिवत् भगवान धन्वन्तरि के भव्य पूजन के अनन्तर सभा की गई जिसकी प्रधानता सागर जनपद सभा के प्रेसीडेण्ट श्री डा० बी० व्ही० राय, एम० एल० ए० ने ग्रहण की। पण्डित जगदीश प्रसाद शर्मा ने स्वागत भाषण पढ़ा। इसके अनन्तर पं० देवीसहाय दीक्षित आयुर्वेदाचार्य, श्री समगौरिया जी वैद्य, श्री शिवकाली त्रिपाठी, श्री भगवानदास जी वैद्य ने पृथक् पृथक् चार प्रस्ताव प्रस्तुत किये जो विस्तृत समर्थनोपरान्त पास हुए। श्री देवी सहाय जी दीक्षित, श्री सीताराम जी वैद्य एवं श्री ब्रह्मचारी जी आदि के आयुर्वेद, भगवान धन्वन्तरि के सन्देश, वैद्य समाज का संगठन इत्यादि विषयों पर गंभीर एवं प्रभाव पूर्ण भाषण हुए। अन्त में सभापति महोदय ने सामयिक विषयों पर अत्यन्त प्रभावोत्पादक और तर्कपूर्ण शब्दों में भाषण दिया, जिससे उपस्थित समुदाय पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

कटनी में सभा

कटनी के वैद्य-समुदाय के सहयोग से इस वर्ष श्रीधन्वन्तरि जयन्ती का समारोह स्वास्थ्य दिवस के रूप में धूमधाम से मनाया गया। जयन्ती के दिन संध्या को ७ बजे एक सभा हुई, जिसका सभापतित्व मध्यप्रदेश के विख्यात एवं माननीय वैद्य प्राणाचार्य पं० सुन्दरलाल जी शुक्ल जबलपुर निवासी ने किया। पूजनोपरान्त श्री धन्वन्तरि लहरी का मधुर गायन किया गया। तदनन्तर चार प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये जो सर्व सम्मति से स्वीकार किये गये। प्रस्तावों एवं सामयिक विषयों पर वैद्य श्री केशरीमल जी आयुर्वेदाचार्य, श्री वैद्य हरजीरामजी शर्मा, श्री वैद्य रामप्रसाद जी, श्री वैद्य खेमचन्द्र जी, श्री वैद्य रामदत्त जी पयासी, श्री वैद्य व्रजभूषण प्रसाद जी, श्री पं० जगमोहनलाल जी शास्त्री, श्री वैद्य ठाकुर प्रसाद जी बी० आइ० एम० एस० आयुर्वेदाचार्य इत्यादि विद्वानों के महत्वपूर्ण एवं व्याख्यात्मक भाषण हुए। प्रसाद वितरण किया गया और समागत सज्जनों को धन्यवाद देकर सभा समाप्त हुई।

रतलाम (म० प्र०)

रतलाम में वैद्यराज श्री मक्खनलाल जी दीक्षित आयुर्वेदाचार्य के धानमण्डी स्थित केन्द्र पर संध्या समय चार बजे श्री धन्वन्तरि जयन्ती मनाई गयी। रतलाम के सुख्यात वैद्यराज आयुर्वेदाचार्य पंडित रामप्रसाद जी प्रजावैद्य, की अध्यक्षता में विस्तृत सभा हुई जिसमें इस क्षेत्र के सभी वैद्यगणों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। सभा में स्थानीय प्रमुख नागरिक भी उपस्थित थे। भगवान धन्वन्तरि पूजन-स्तवन के अनन्तर सभापति जी ने आसन ग्रहण किया। विद्वानों के सामयिक विषयों पर प्रभावपूर्ण भाषण हुए। सभा में चार प्रस्ताव प्रस्तुत किये गए जो सर्व सम्मति से स्वीकार हुए। वैद्यराज श्री मोतीलाल जी जोशी, वैद्यराज श्री कृष्णानन्द जी इन्स्पेक्टर आयुर्वेद विभाग रतलाम, श्री माधव प्रसाद जी आचार्य, डाक्टर श्री गुप्ता जी, श्री लल्लु सिंह जी आदि के भाषणों का जनता पर प्रभाव पड़ा। सभापति महोदय ने अपने भाषण में जनता से आयुर्वेद को अपनाने की अपील की।

शिवपुरी (म० प्र०)

मध्यप्रदेश की सुन्दर प्राकृतिक नगरी शिवपुरी में वैद्य सभा मण्डल शिवपुरी के सहयोग से श्री धन्वन्तरि जयन्ती का भव्य आयोजन किया गया। इस वर्ष समारोह सार्वजनिक रूप से मनाया गया जिसमें बड़ी संख्या में जनता एवं प्रमुख जन एकत्र हुए। सभा का सभापतित्व मण्डल के प्रसिद्ध वैद्य श्री पं० रामप्रसाद जी व्याकरणाचार्य आयुर्वेद विशारद ने किया। सभा में विद्वानों के भाषणों के अतिरिक्त चारों प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत किये गए। उपस्थित जनता पर श्री प्रह्लाद दास जी वैद्य, मध्यभारत देशी औषध के सदस्य वैद्य शास्त्री कविराज श्री जानकी प्रसाद जी मिश्र, श्री प्रभुदयालु जी वैद्य एवं ज्योतिषाचार्य पं० नारायण राव जी के भाषणों में व्यक्त सामयिक स्वास्थ्य विषयक विचारों का बहुत प्रभाव पड़ा। अन्त में श्री धन्वन्तरि कीर्तन सामूहिक रूप से किया गया और प्रसाद वितरणोपरान्त समारोह सम्पूर्ण हुआ।

खण्डवा में विशाल सभा

खण्डवा में इस वर्ष श्री धवन्तरि जयन्ती का समारोह बहुत ही उत्साह के साथ और बड़े पैमाने पर मनाया गया। आयुर्वेदीय भैषज्य भण्डार के संयोजकत्व में बम्बई बाजार में एक विशाल सार्वजनिक सभा विशेषरूप से बनाये गये पण्डाल में सम्पन्न हुई। सर्व प्रथम स्वामी बालचन्द्रजी महाराज के नेतृत्व में श्री मदनलाल जी भामा द्वारा भगवान धन्वन्तरि का वेदोक्त पूजन-अर्चन किया गया। तदनन्तर आयुर्वेदालंकार पं० काशीनाथ शर्मा शास्त्री के प्रस्ताव तथा वैद्यराज श्री बाबूलाल जी शर्मा के समर्थन पर एवं सर्वसम्मति के आग्रह पर खण्डवा के सिविल सर्जन श्री वी० पु० सन्त ने सभापतित्व किया। श्री संत साहब ने श्री धन्वन्तरि को पुष्पमाला अर्पित की। वैद्य बाबूलाल जी ने मुद्रित भाषण पढ़ कर सुनाया जो उपस्थित जन समुदाय में वितरित किया गया। तदनन्तर आयुर्वेदालंकार पं० काशीनाथ जी शर्मा ने आयुर्वेद के वैज्ञानिक पक्ष पर विद्वत्ता-पूर्ण भाषण दिया। सभा में चार प्रस्ताव पेश हुए जो सर्व-सम्मति से स्वीकृत किये गए। सभापति पद से बोलते हुए श्री सन्त महोदय ने आयुर्वेद के हित में किये जा रहे प्रयत्नों की सराहना की और कहा कि आयुर्वेद की उन्नति के लिए भारतीय राष्ट्र का नागरिक होने के नाते डाक्टरों को भी हृदय से समर्थन करना चाहिए, क्योंकि आयुर्वेद के द्वारा देश की समृद्धि की रक्षा की जा सकती है। आपने सभा में प्रस्तुत प्रस्तावों का दृढ़ शब्दों में प्रबल समर्थन किया। सभा में उपस्थित वैद्यों एवं प्रमुख व प्रतिष्ठित नागरिकों में निम्न की उपस्थिति बहुत उल्लेखनीय है—श्री गणपति नारायण राव वैद्य, श्री वैद्य दयानन्द जी, श्री वैद्य केशवराव सावदेकर, प्रधानाचार्य श्री नारायण प्रसाद दुबे, श्री ब्रजमोहन मिश्र, श्री लालजी प्रसाद मालवीय, श्री पं० बालचंद स्वामी श्री बी० डी० जौहरी, श्री श्रीकृष्ण जी, श्रीयुत् पं० काशीनाथ जी शास्त्री, श्री बाबूलाल जी स्वामीवैद्य, श्री राधावल्लभ शाह, श्री सुदर्शनाचार्य, श्री वि० पु० सन्त, कविराज श्री दुर्गाप्रसाद वैद्य बुरहानपुर, श्री आर० के० गुप्ता, श्री सदाशिव जी वेदपाठक, श्री शिवाजी वासुदेव पांसे, श्री जयनारायण सोनी, श्री भीकमचन्द्र वर्मा, श्री इन्द्रमणिमिश्र, श्री दामोदर जी वैद्य, श्री हकीम कुरबान हुसैन साहब, श्री रामचन्द्र राव वैद्य, श्री० के० बी० वैद्य, श्री काशीनाथ शर्मा शास्त्री।

खण्डवा में इस प्रकार का विशद आयोजन पहली ही बार हुआ था, जिसकी प्रेरणा देने के हेतु श्री वैद्य रामनारायण जी को लोगों ने धन्यवाद दिया। समारोह के समाचार इस प्रदेश लगभग २० समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए। समारोह में पारित सभी प्रस्ताव सम्बन्धित सज्जनों को भेजे गए।

सतना (रीवां)

प्राचीन विन्ध्यप्रदेश के महत्वपूर्ण केन्द्र सतना में श्री भोलाप्रसाद जी अग्रवाल के संयोजन में विस्तृत रूप से श्री धन्वन्तरि जयन्ती मनाई गई। धन्वन्तरि भगवान के भव्य पूजन में बड़ी संख्या में जनता के लोग सम्मिलित हुए। स्थानीय और आस-पास के वैद्यजन पर्याप्त उपस्थित थे ही। सभा का सभापतित्व राजवैद्य श्री प्रयागदत्त जी प्राणाचार्य ने किया। उपस्थित वैद्यों में अनेक ने विद्वत्तापूर्ण भाषण दिए। चार प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार किये गए।

छतरपुर (म० प्र०)

बुन्देलखण्ड की प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरी छतरपुर में श्री धन्वन्तरि जयन्ती पर स्वास्थ्य समारोह की सभा का आयोजन उत्साहपूर्वक किया गया। वैद्यजनों ने आयुर्वेद एवं जन-स्वास्थ्य तथा संगठन विषय पर गंभीर भाषण दिये। श्री

कुंज विहारी शर्मा, पं० मथुराप्रसाद शर्मा, पं० मदनमोहन जी दीक्षित तथा श्री वैद्य गुलजारीलाल जीने चार प्रस्ताव प्रस्तुत किये और उनका समर्थन क्रमशः पं० मथुरा प्रसादजी, पं० मदनमोहनजी, वैद्यराज श्री राजाराम जी आयुर्वेदाचार्य, और कुंजीलालजी ने किया। चारो प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार किये गए। कीर्तन और प्रसाद वितरण के उपरान्त सभा समाप्त हुई।

टीकमगढ़ (म० प्र०)

पूर्व ओरछा राज्य की राजधानी टीकमगढ़ में श्री धन्वन्तरि जयन्ती का समारोह मनाया गया। सभा की अध्यक्षता श्रीयुत् विष्णुदेव जी अधिकारी ने की। श्री वैद्य बाबूलाल जी जैन द्वारा प्रस्तुत चार प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किए गये।

जबलपुर

जबलपुर में इस वर्ष भगवान धन्वन्तरि जयन्ती उत्सव नगर के वैद्यों एवं प्रतिष्ठित सज्जनों की उपस्थिति में समारोह पूर्वक मनाया गया। समारोह का सभापतित्व सेठ बाबू जगमोहन दास जी उपमंत्री मध्यप्रदेश शासन ने किया। स्वागत भाषण के पश्चात् सर्वश्री बी० भी० डिग्वेकर आयुर्वेदाचार्य, श्री महेशदत्त जी शास्त्री, श्री महादेव प्रसाद मनीषी एवं दामड़े जी के भाषण हुए। वैद्यराज श्री बी० भी० डिग्वेकरजी ने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण में कहा कि श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा आयुर्वेद की महान सेवाएँ की गई हैं। शास्त्रचर्चा परिषदें इसके उदाहरण स्वरूप उपस्थित की जा सकती हैं। आयुर्वेद के समुचित विकाश के लिये उचित शिक्षण की आवश्यकता है। इस ओर हमें प्रयत्न करना है व शासन को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए। सेठ जगमोहन दास जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में भगवान धन्वन्तरि व आयुर्वेद के विषय में विवेचन करने के उपरान्त कहा कि आयुर्वेद महाविद्यालय तथा आयुर्वेद का अनुसन्धान विषयक कार्य केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत आता है। फिर भी राज्य शासन से इसके सम्बन्ध में पर्याप्त प्रयास द्वारा किया जा रहा है। मध्य प्रदेश शासन के भूतपूर्व मुख्य मंत्री स्व० पं० रविशंकर जी शुक्लका आयुर्वेद के प्रति महान अनुराग था और उसी के प्रतीक स्वरूप आज रायपुर में आयुर्वेद महाविद्यालय वर्तमान है। इस विषय पर जैसे-जैसे आवश्यकताएँ बढ़ती जायंगी, पर्याप्त विस्तार किया जा सकेगा। यहाँ के वैद्यों को वहाँ जाकर वहाँ की संचालन-पद्धति व लेबोट्री आदि देखना चाहिये व इस सम्बन्ध में शासन को निर्देश करना चाहिए।

इसके उपरान्त श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में आयोजित सार्वजनिक स्वास्थ्य दिवस के अवसर पर स्वीकृत प्रस्तावों पर हस्ताक्षर कराये गये तथा प्रसाद वितरण के साथ सभा की कार्यवाही समाप्त हुई।

गुना में समारोह

गुना में पं० मूलचन्द मोहरीलाल शर्मा द्वारा श्री दामोदर दास जी एडवोकेट के सभापतित्व में श्री धन्वन्तरि जी महाराज का उत्सव समारोहपूर्वक किया गया। सर्व प्रथम श्री धन्वन्तरि जी महाराज का पूजन किया गया। तत्पश्चात् जगदीश चन्द शर्मा ने स्वागत भाषण पढ़ा। तदुपरान्त श्री नारायण प्रसाद जी वैद्य ने बतलाया कि श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के चार कारखानों में आयुर्वेद की ओषधियाँ बड़े-बड़े आयुर्वेद के विद्वानों की देख-रेख में बनती हैं व श्री पं० रामनारायण जी शर्मा वैद्य-शास्त्री अपनी देख-रेख में आयुर्वेदिक ओषधियाँ जड़ी-बूटियों द्वारा तैयार करवाकर आयुर्वेद की सेवा कर रहे हैं। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के मैनेजिंग डाइरेक्टर आयुर्वेद के अच्छे ज्ञाता हैं। भगवान से यह कामना है कि ये लोग आयुर्वेदिक ओषधियाँ भविष्य में भी निर्माण करते हुए आयुर्वेद के मस्तक को ऊंचा करने में पूर्ण प्रयत्नशील होंगे। इसके उपरान्त श्री दामोदर दास जी एडवोकेट ने आयुर्वेद की ओषधियों को अपनाने के लिए जोर डाला तथा यह बताया कि श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा आयुर्वेदिक औषधियाँ अच्छे ढंग पर तैयार की जाती है। इसके उपरान्त श्री रामलाल जी वैद्य व श्री हकीम बफा साहिब ने भी आयुर्वेदिक ओषधियों पर प्रकाश डाला। अन्त में श्री धन्वन्तरि महाराज का प्रसाद वितरण कर सभा विसर्जित हुई।

इन्दौर में समारोह

इन्दौर में वैद्यराज पं० दामोदर शास्त्री की अध्यक्षता में भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती बड़े धूमधाम व उत्साह के साथ मनाई गई। सर्वप्रथम वैद्य पं० लक्ष्मीदत्त शास्त्री ने वैदिक रीति से भगवान धन्वन्तरि जी का पूजन-अर्चन करवाया। फिर वैद्य पं० श्रीनिवास शास्त्री का अभिभाषण

हुआ। इसके पश्चात् वैद्य पं० सूर्यनारायणजी जोशी ने वैद्यों से संगठित होकर चलने के लिये अनुरोध किया और वैद्यों की उन्नति हेतु किये गये श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के प्रयत्नों पर प्रकाश डाला। इसके बाद चारों प्रस्ताव उपस्थित किये गये जिनका समर्थन वैद्य प० शिवनारायण जी तिवारी ने किया। तत्पश्चात् श्री शास्त्रीजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा किये जा रहे अनुसंधान कार्यों की प्रशंसा की तथा ५ लाख की अभी की गई घोषणा पर हर्ष व्यक्त किया। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा आयुर्वेद का जो सर्वतोमुखी विकास हो रहा है उनकी आपने बारम्बार प्रशंसा की। वैद्य हरिकृष्ण जी जोशी ने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की ओर से आगन्तुक महोदय का आभार माना। विक्री-केन्द्र संचालक वैद्य जयनारायण शर्मा ने उपस्थित महानुभावों को प्रसाद वितरण किया तथा कार्यक्रम समाप्त हुआ।

कोंच (जालौन)

कोंच (जालौन) में धन्वन्तरि भगवान का पूजन हुआ। पत्पश्चात् सभा की कार्यवाही डॉ० अवधबिहारी गुप्ता आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में शुरू हुई। श्री राधेश्याम दातरे ने स्वागत भाषण पढ़ा। इसके बाद आयुर्वेदाचार्य श्री बलराम बुधौलिया ने आयुर्वेद की महत्ता एवं धन्वन्तरि जयन्ती के तात्पर्य पर वृहत् भाषण दिया। इसके बाद बृन्दाबन अग्रवाल ने चार प्रस्तावों को पढ़कर सुनाया और वे चारों प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किये गये। तदुपरान्त अध्यक्ष महोदय ने सबको धन्यवाद दिया तथा बैद्यनाथ दवाओं की प्रशंसा की। इसके बाद प्रसाद वितरण कर सभा विसर्जित हुई।

भिलसा

भिलसा स्थित श्री काशीनाथ आयुर्वेद भवन में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह धूमधाम से मनाया गया। सर्वप्रथम बिक्री-केन्द्राध्यक्ष वैद्य काशीनाथ ने नगर के वैद्य समुदाय सहित भगवान धन्वन्तरि जी का सामूहिक पूजन किया तथा वैद्य बन्धुओं को प्रसाद वितरण कर आभार प्रदर्शित किया। इसके उपरान्त रात्रि को विराट् सभा श्री रामकृष्ण जी सिलाकारी की अध्यक्षता में हुई जिसमें नगर के अनेक धनी-मानी भी सम्मिलित हुए। सर्वप्रथम श्री बालकृष्ण जी वैद्य गुप्ताने भगवान धन्वन्तरि की वंदना की। श्री अभयचंद जी आयुर्वेदाचार्य ने वर्तमान आयुर्वेद-शिक्षा को विशुद्ध आयुर्वेदीय स्तर पर चलाने की सरकार से अपील की तथा आयुर्वेद की बैद्यनाथ द्वारा सेवाओं की प्रशंसा की और संस्थान की उन्नति के लिये शुभकामना प्रगट की। इनसे पूर्व श्री विश्वबन्धु जी शास्त्री ने स्वागत भाषण पढ़ा।

श्री बलराम जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य और डाक्टर जमुना प्रसाद जी मुखरैया आयुर्वेदाचार्य के भाषणोपरान्त सभापति जी ने आयुर्वेद की महत्ता बताते हुए अनेक ऐसे प्रयोग जनसाधारण के हितार्थ प्रगट किये जो बिना मूल्य ही उनके प्रयोग से असाध्य रोग भी नष्ट होते हैं। इसके उपरान्त सभी प्रस्ताव स्वीकार किये गये। इसके बाद केन्द्राध्यक्ष ने सबको धन्यवाद देते हुए आभार प्रकट करके सभा विसर्जित की।

रीवां में समारोह

फोर्ट रोड, रीवां में धूमधाम के साथ धन्वन्तरि जयन्ती मनायी गयी। भगवान धन्वन्तरि के सविधि पूजनोपरान्त श्री पं० नन्दनन्दन प्रसाद जी की अध्यक्षता में सभा हुई, जिसमें वैद्य-हकीम एवं विशिष्ट नागरिक सम्मिलित हुए। सर्वप्रथम श्री वैद्य चन्द्रकुमार जी ने स्वागत भाषण पढ़ा। तत्पश्चात् अनेक वक्ताओं ने अपने भाषण में बैद्यनाथ औषधियों की विशिष्ट गुणकारिता पर प्रकाश डाला। सभापति जी ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए आयुर्वेदोन्नति के लिए प्रयत्नशील श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संचालकों की भूरि-भुरि प्रशंसा की। सर्वसम्मति से पांचों प्रस्ताव स्वीकृत हुए एवं धन्यवाद-ज्ञापन तथा प्रसाद वितरण कर सभा समाप्त हुई।

पावटा

पावटा में श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव सोत्साह मनाया गया। सर्वप्रथम भगवान धन्वन्तरि का पूजन पं० रामेश्वर शास्त्री द्वारा सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वैद्य श्रीनिवास जी शर्मा के सभापतित्व में सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। स्वागत भाषण वैद्य पीताम्बर जी ने पढ़कर सुनाया। वैद्य रामेश्वरप्रसाद शास्त्री ने बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की आयुर्वेद सेवा एवं त्याग की सराहना करते हुए वैद्य समुदाय से प्रार्थना की कि उनके आयुर्वेदोत्थान के कार्यों में अपना सहयोग प्रदान करें।

अन्त में सभापति महोदय ने श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के सुकृत्यों पर प्रकाश डालते हुए यह आशा प्रगट की कि इसी प्रकार यदि जनता एवं केन्द्रीय सरकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा तो आयुर्वेद पुनः अपना पुराना गौरवमय स्थान प्राप्त कर सकता है। अन्त में धन्यवाद देकर एवं प्रसाद वितरण कर सभा की कार्यवाही समाप्त की गयी।

लश्कर (ग्वालियर) में सभा

लश्कर-ग्वालियर में श्री कैलाश फार्मेसी में धन्वन्तरि समारोह की सभा प्रान्त के सुप्रसिद्ध आयुर्वेद विद्वान एवं राष्ट्रपति के मान्य चिकित्सक श्रीयुत् पण्डित रामेश्वर जी शास्त्री के सभापतित्व में सम्पन्न हुई। सभा में प्रमुख वैद्यों के अतिरिक्त नगर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्रीयुत रामनिवास जी बांगड़ तथा मन्त्री श्रीयुत बालाप्रसाद जी दुबे, श्री डोंगर सिंह जी, श्री शिवराज बहादुर जी, इत्यादि के सारगर्भित भाषण हुए जिनसे उपस्थित जनता एवं वैद्यों ने प्रेरणा ग्रहण की। चार प्रस्ताव पेश किये गये जो सर्व सम्मति से स्वीकार हुए। प्रस्तावक तथा समर्थकों ने बड़े तर्कपूर्ण शब्दों में विषय की विवेचना की। उपस्थित समुदाय को धन्यवाद के उपरान्त सभा विसर्जित हुई।

पेन्ड्रा रोड (बिलासपुर)

पेण्ड्रा रोड में श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में विशेष समारोह पूर्वक स्वास्थ्य दिवस मनाया गया। समारोह का उद्घाटन मध्यप्रदेश के उप स्वास्थ्य मंत्री माननीय पंडित मथुराप्रसाद जी दुबे के करकमलों से सम्पन्न हुआ। श्रीयुत दुबे जी ने स्वयं श्री धन्वन्तरि पूजन करके अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि आयुर्वेद स्वयं ही अजर-अमर विज्ञान है और उसको उन्नत होने से कोई रोक नहीं सकता। इतना अवश्य है कि यदि कोई ठोस प्रयास न किया गया तो वह उन्नत न होगा और जहाँ है वहाँ बना रहेगा। कोई कुछ करे न करे, परन्तु आयुर्वेद से जीविका पाने वाले वैद्य जनों को तो गंभीर प्रयास करना ही चाहिए। यह तभी संभव है जब कि वैद्य समाज का संगठन दृढ़ और क्रियाशील हो। संगठन तेजस्वी होगा तो फिर कौन आयुर्वेद को विकसित होने से रोक सकता है? आपने वैद्यों का पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति की ओर गलत झुकाव होने का उल्लेख करते हुए कहा कि वैद्यों के लिए इन्जेक्शन का आश्रय लेना या अन्य प्रकारों से डाक्टरों की नक़ल करना शोभाजनक नहीं है। उन्हें आयुर्वेद की पद्धति और उसकी ही औषधियों में चमत्कार लाना चाहिए तथा अपनी प्राचीन चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा करनी चाहिए।

समारोह की अध्यक्षता इस क्षेत्र के विख्यात जनप्रिय कार्यकर्त्ता और जनपद सभा के सदस्य वयोवृद्ध श्री पं० बैजनाथ प्रसाद जी गौटिया तिवारी ने की। श्री वृजमोहन लाल अग्रवाल ने स्वागत भाषण पढ़ा। जनपद सभा विलासपुर की जनस्वास्थ्य समिति के चेयरमैन श्रीयुत लक्ष्मीचन्द्र जी जैन ने अपनी विस्तृत प्रस्तावना के साथ सभा में प्रस्ताव प्रस्तुत किये। प्रस्तावों के समर्थन में जनपद सभा विलासपुर की शिक्षा-समिति के चेयरमैन श्रीयुत पं० मोहनलाल जी शुक्ल ने एक ओजस्वी भाषण दिया और प्रस्तावों में वर्णित विषयों की विशद् व्याख्या करते हुए उनकी सामयिक आवश्यकता का विश्लेषण किया। चारों प्रस्ताव सभा में सर्व सम्मति से स्वीकार किये गए। तत्पश्चात सभा में उपस्थित अनेक विद्वान वैद्यों के आयुर्वेद विषय पर सारगर्भित भाषण हुए। उपस्थित जनों को स्वास्थ्य रक्षा के भारतीय नियमों की व्यावहारिकता को सरलतापूर्वक समझाया गया और निश्चय हुआ कि आगे श्री धन्वन्तरि जयन्ती पर स्वास्थ्य समारोह का अधिक व्यापक आयोजन किया जाय। वक्ताओं ने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की वास्तविक आयुर्वेद सेवा के कार्यों की प्रशंसा की और जनता तथा वैद्यों से अपील की कि वे सामूहिक प्रयासों के द्वारा अपने प्राचीन राष्ट्रीय विज्ञान के विकास के लिए सम्मिलित प्रयास करें और सरकार से सहायता एवं राष्ट्रीय चिकित्सा स्वीकार करने के लिए सामूहिक मांग की जाय। प्रसाद वितरण उपरांत सभा समाप्त हुई।

गोंदिया में सभा

गोंदिया में श्री धन्वन्तरि जयन्ती पर एक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय समस्त वैद्यों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। वेद मन्त्रों के साथ भगवान धन्वन्तरि का पूजन किया गया और समस्त उपस्थित वैद्य समुदाय ने भगवान धन्वन्तरि को पुष्पार्पण किया। सभा में नगर के अन्य प्रमुख जन भी पर्याप्त संख्या में उपस्थित हुए। विद्वान वैद्यों के आयुर्वेद, भगवान धन्वन्तरि के सन्देश, स्वास्थ्य रक्षा, संगठन, महासम्मेलन आदि विषयों

पर विवेचनात्मक और सारगर्भित भाषण हुए। सभा का सभापतित्व गोंदिया क्षेत्र के विख्यात आयुर्वेदीय चिकित्सक एवं माननीय वैद्य श्री पंडित रामगोपाल जी मिश्र राजवैद्य, आयुर्वेदाचार्य द्वारा किया गया। सभा में चार प्रस्ताव उपस्थित किये गये जो वाद विवाद के उपरान्त सर्व सम्मति से स्वीकार किये गये। अन्त में सभापति जी ने अपने उद्बोधक भाषण में वैद्य समाज की वर्तमान दशा का मार्मिक चित्र खींचा एवं उपस्थित वैद्यों से नम्र अनुरोध किया कि वे लगन के साथ अपने क्षेत्र में संगठन कार्य में लग जावें और सामूहिक रूप से अपनी अखिल भारतीय संस्था पर प्रभाव डालें कि वह आयुर्वेद के विकास एवं वैद्य समाज की उन्नति के लिए वास्तविक कार्य करे। आपने वैद्य समाज में दलबंदी की तीव्र निन्दा की और कहा इस गंभीर समय में आयुर्वेद जगत के प्रमुख नेतावर्ग को पारस्परिक मतभेदों पर महत्त्व नहीं देना चाहिए प्रत्युत सामाजिक कार्यों में मिलकर कार्य करना चाहिए। प्रसाद वितरणोपरान्त सभा समाप्त हुई।

बिलासपुर में भव्य सभा

बिलासपुर में स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष में श्री धन्वन्तरि जयन्ती के लिए वैद्यराज श्री रा० कृ० मिश्र की अध्यक्षता में सभा हुई जिसमें सभी प्रमुख वैद्य वर्ग ने भाग लिया। सभा में प्रथम प्रस्ताव वैद्यराज श्री बा० जै० देवरस जी ने उपस्थित किया जिसका समर्थन वैद्यवर श्री उपाध्याय जी ने जोरदार शब्दों में किया। दूसरा प्रस्ताव श्रीयुत राजेन्द्रकुमार जी द्वारा प्रस्तुत किया गया जिसका समर्थन श्रीयुत दत्तनारायण जी त्रिपाठी ने किया। तीसरा प्रस्ताव श्रीयुत रामाधार जी पाण्डेय द्वारा प्रस्तुत किया गया और श्रीयुत दीनबन्धु जी द्वारा समर्थित हुआ। चौथा प्रस्ताव श्रीयुत गरीब राय जी द्वारा प्रस्तावित एवं श्री देवरस जी द्वारा समर्थित हुआ। प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। प्रस्तावक और समर्थक वक्ताओं ने विषयों पर विवेचनापूर्ण प्रकाश डाला। अन्य वैद्यों के आयुर्वेद पर भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद द्वारा स्वास्थ्य साधन की व्यावहारिकता पर गम्भीर प्रकाश डाला गया।

बम्बई प्रदेश के प्रमुख नगरों में सभाएँ

जलगाँव

यहाँ भूतपूर्व महाराष्ट्र प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के अध्यक्ष स्वनामधन्य श्री दत्तात्रेय शास्त्रीय जलूकर की अध्यक्षता में श्री धन्वन्तरि समारोह का आयोजन किया गया। सभा में जनता तथा जिले के प्रायः सभी प्रमुख वैद्य एवं हकीम बंधु पधारे। देशी-विदेशी औषधि बिक्रेता, प्रतिष्ठित व्यापारी, जननेता एवं नागरिकगण पर्याप्त संख्या में उपस्थित थे। वेद मन्त्रोच्चार द्वारा श्री भगवान धन्वन्तरि के पूजनोपरान्त श्री राजेन्द्र स्टोर्स जलगाँव के व्यवस्थापक श्रीयुत राठी जी ने स्वागत भाषण पढ़कर सुनाया। उपस्थित वैद्यों में अनेक विद्वानों के सामयिक विषयों पर विवेचनात्मक भाषण हुए। वक्ताओं ने आयुर्वेद के विकास के लिए आयुर्वेद के शैक्षणिक पहलू पर विशेष बल दिया। तदनन्तर चार प्रस्ताव विचारार्थ प्रस्तुत किये गए, जिनपर प्रस्तावक एवं समर्थकों के व्याख्यात्मक भाषणों के अतिरिक्त अन्य उपस्थित सज्जनों ने अपने ओजस्वी विचार व्यक्त किये। प्रस्ताव संख्या ४ का पूर्वार्द्ध हटाकर उत्तरार्द्ध स्वीकार किया गया। शेष तीनों प्रस्ताव सर्व सम्मति से निर्विरोध स्वीकार कर लिये गये।

नागपुर (भण्डारा रोड)

नागपुर में भण्डारा रोड स्थित नागपुर आयुर्वेद औषधालय में भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती का समारोह धूमधाम के साथ मनाया गया। इस अवसर पर सभा का आयोजन भी किया गया जिसकी प्रधानता राजस्थान सेवा संघ के अध्यक्ष विख्यात वैद्य श्री रामेश्वर प्रसाद जी आयुर्वेदाचार्य ने ग्रहण की। वेद मंत्रों द्वारा भगवान धन्वन्तरि के भव्य पूजन के अनन्तर वैद्य श्री भोलाराम जी एवं वैद्य श्री पन्नालाल जी ने विधिवत श्री धन्वन्तरि स्तवन किया। वैद्य श्री देवी प्रसाद जी ने मंगलाचरणोपरांत समागत सज्जनों के स्वागत में भावपूर्ण भाषण पढ़ा जिसमें आयुर्वेद और जनस्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति पर विवेचनापूर्ण प्रकाश डाला गया था। अन्य प्रमुख वक्ताओं के भाषणों के अनन्तर सभापति महोदय ने विद्वत्तापूर्ण भाषण देकर आयुर्वेद की वैज्ञानिकता पर प्रकाश डाला। संगठन की आवश्यकता पर बल देते हुए आपने कहा कि भारत में एक मात्र बैद्यनाथ प्रतिष्ठान ही ऐसा है जो प्रतिवर्ष अपनी शाखा-प्रशाखाओं द्वारा सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित रूप से भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती का समारोह मनाने की व्य-

वस्था करता है, जिससे वैद्यों में परस्पर संगठन के प्रति रुचि जाग्रत होती है। अन्त में श्री वैद्य देवीप्रसाद ने समागत सज्जनों के प्रति आभार प्रदर्शन किया।

यवतमाल में सभा

यवतमाल में स्वास्थ्य दिवस पर विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया। संध्या समय वैद्य बजरंगलाल शर्मा के प्रयत्न से साहूकारपेठ में सभा का आयोजन हुआ। सर्व सम्मति के आग्रह से सभा का सभापतित्व वैद्यराज श्री सत्यप्रिय शंकर लचके आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि ने स्वीकार किया। सभा में पर्याप्त संख्या में नगर और आस-पास के वैद्य बन्धु उपस्थित हुए। विभिन्न वक्ताओं ने अपने तर्क पूर्ण भाषणों द्वारा आयुर्वेद की वैज्ञानिकता एवं देशी चिकित्सा पद्धति की सफलता पर प्रकाश डाला एवं विनम्र शब्दों में सरकार से देशी चिकित्सा के विकास के हेतु वास्तविक प्रयासों को प्रोत्साहन देने की अपील की। वक्ताओं ने इस बात पर बल दिया कि विज्ञान के क्षेत्र में राजनीतिक दलबन्दी का प्रवेश नहीं होना चाहिए और वास्तविक कार्य करने वाले प्रतिनिधि विद्वानों को ही समाज की बागडोर सम्हालनी चाहिए। सभा में चार प्रस्ताव प्रस्तुत किये गए जो सर्व सम्मति से स्वीकार हुए। प्रसाद वितरण एवं धन्यवादोपरान्त सभा समाप्त हुई।

नागपुर (न्यू इतवारी)

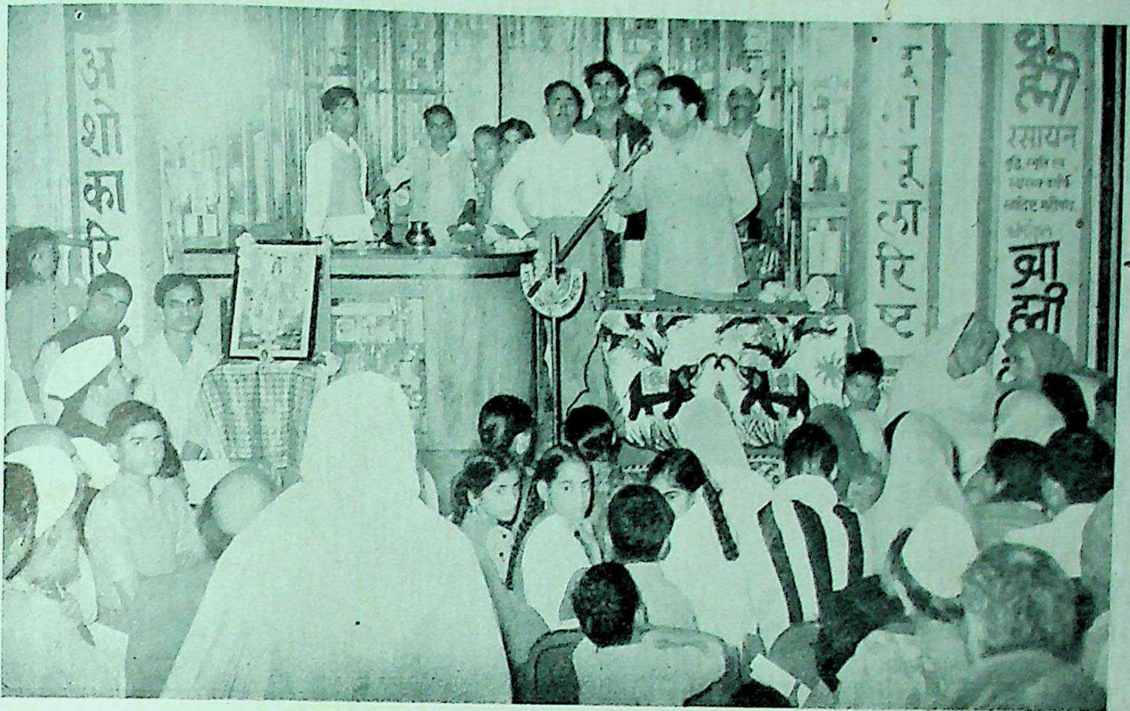
२१ अक्टूबर को प्रातः ९ बजे श्री धन्वन्तरि जयंती के उपलक्ष में भव्य सभा का आयोजन किया गया। पूर्व से ही स्वास्थ्य दिवस का व्यापक प्रचार किया गया था, इसलिये सभा में पर्याप्त संख्या में वैद्यगण एवं प्रमुख नागरिक उपस्थित हुए। सभापति का आसन सुख्यात वैद्यवर प्राणाचार्य डाक्टर इन्दुभूषण जी भिंगारे एल० ए० एम० एस० भिषग्रत्न ने ग्रहण किया। आयुर्वेद के प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि के पूजनोपरान्त पण्डित जगन्नाथ प्रसाद जी शर्मा ने सभापति को पुष्पार्पण किया एवं वैद्य श्री मेलाराम शर्मा शास्त्री आयुर्वेदाचार्य ने स्वागत भाषण पढ़कर सुनाया जिसकी मुद्रित प्रतियाँ उपस्थित जनों में वितरित की गयीं। आयुर्वेदाचार्य वैद्य देवीप्रसाद जी के मंगलाचरण के उपरान्त स्थानीय गीता मन्दिर के अध्यक्ष श्री स्वामी जी, वैद्य श्री ज्वालाप्रसाद जी भिषगाचार्य तथा वैद्यवर श्री पंडित दीनदयालु जी तिवारी के सारगर्भित भाषण हुए। श्री तिवारी जी ने कहा कि श्री धन्वन्तरि जयन्ती को स्वास्थ्य दिवस के रूप में मनाने का सुझाव बहुत ही उत्तम है, परन्तु इसको केवल सभा और भाषण का रूप नहीं देना चाहिए, बल्कि जैसी वैद्य श्री रामनारायण जी शर्मा ने अपील की है तदनुसार इसको क्रियात्मक रूप देकर स्थान स्थान पर सफाई इत्यादि का कार्यक्रम रखकर स्वास्थ्य सप्ताह के रूप में ही मनाना चाहिए। इस अवसर आयुर्वेद के स्वास्थ्य सिद्धांतों का घर-घर प्रचार किया जाना चाहिए। अन्त में सभापति महोदय ने अपने विशद् और ओजस्वी भाषण में धन्वन्तरि जयन्ती के परम्परागत महत्त्व पर प्रकाश डाला और इसको स्वास्थ्य सप्ताह के रूप में क्रियात्मक ढंग से आयोजित करने का आग्रह किया। आपने सरकार से आयुर्वेद के प्रति राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करने की अपील की।

खामगांव (बम्बई)

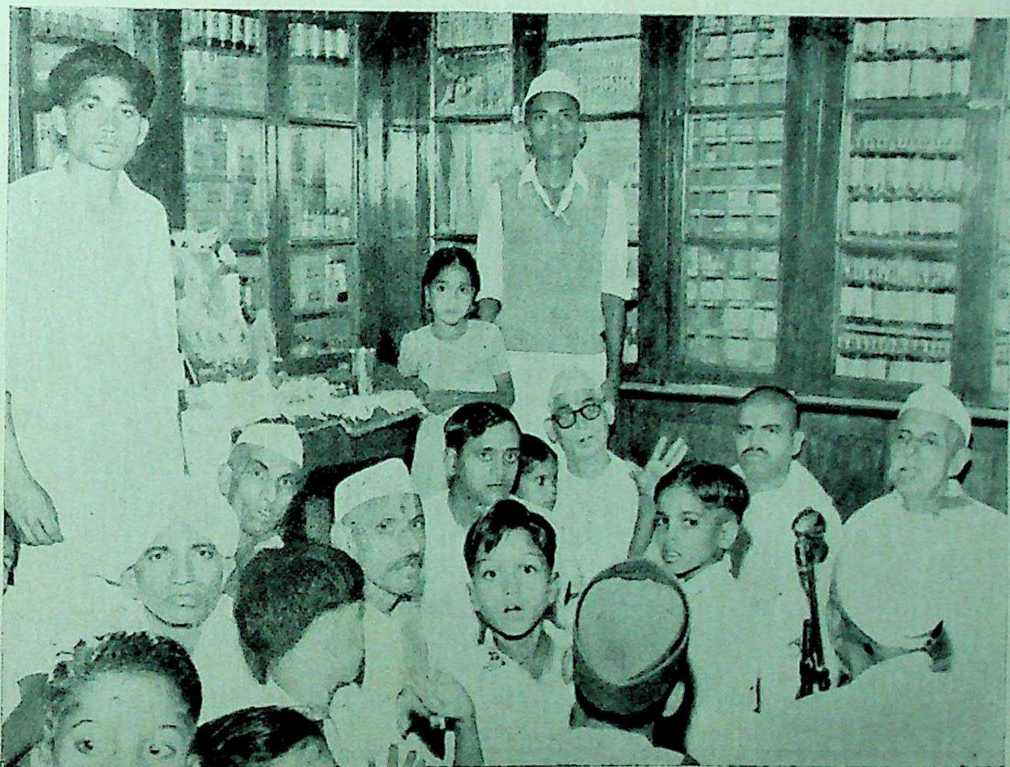
बम्बई प्रदेश के खामगांव में डाक्टर श्री रा० भा० सरदेशाई एल० सी० पी० एस० के संयोजन से श्रीधन्वन्तरि जयन्ती पर स्वास्थ्य दिवस का आदर्श समारोह मनाया गया, जिसमें वैद्यवर्ग के अतिरिक्त सार्वजनिक जनता ने भी रुचिपूर्वक भाग लिया। आयुर्वेद विशारद पं० भूदेव जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य की प्रधानता में एक सुन्दर सभा हुई, जिसमें विद्वान् वैद्यों ने ओजस्वी भाषण दिये। सभा चार प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार किये गये। श्रीधन्वन्तरि पूजन सामूहिक रूप से किया गया।

अकोला में विराट सभा

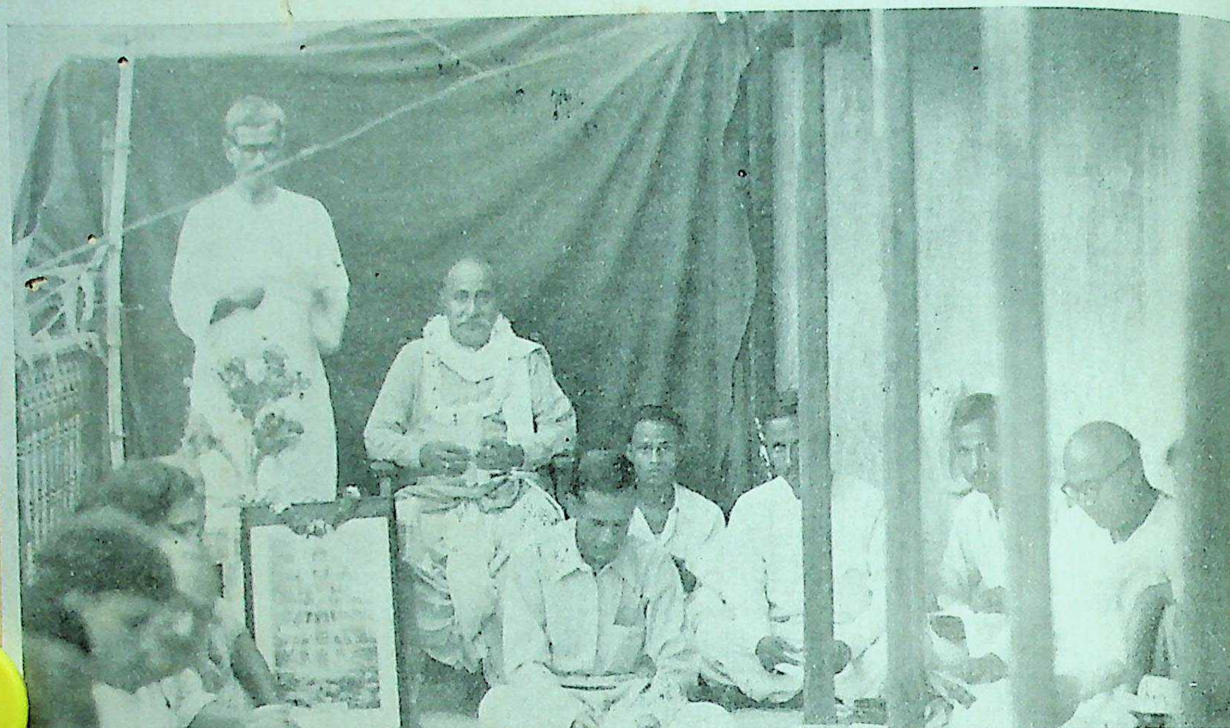
दिनाङ्क २१ अक्टूबर को संध्या समय ७ बजे श्री धन्वन्तरि स्वास्थ्य महोत्सव के उपलक्ष में गान्धी रोड अकोला में समारोह का आयोजन किया गया। समारोह में स्थानीय समस्त वैद्य-हकीम, अधिकारी वर्ग एवं प्रमुख सार्वजनिक व्यक्तियों ने उत्साह से भाग लिया। आयुर्वेद प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि का पूजन-अर्चन सामूहिक रूप से वेदध्वनि के साथ किया गया। तदनन्तर स्वास्थ्य दिवसोपलक्ष में आयोजित सभा के निमित्त उपस्थित समुदाय के आग्रह पर स्थानीय वयोवृद्ध वैद्य चिकित्सक चूड़ामणि, वैद्य शिरोमणि, पं० शिवगुलाम जी पाण्डेय ने सभापति का आसन ग्रहण किया। व्यवस्थापक श्री वैद्य गंगाधर शास्त्री ने स्वागत भाषण पढ़ा। इसके अनन्तर वैद्य पं० हनुमान प्रसाद जी



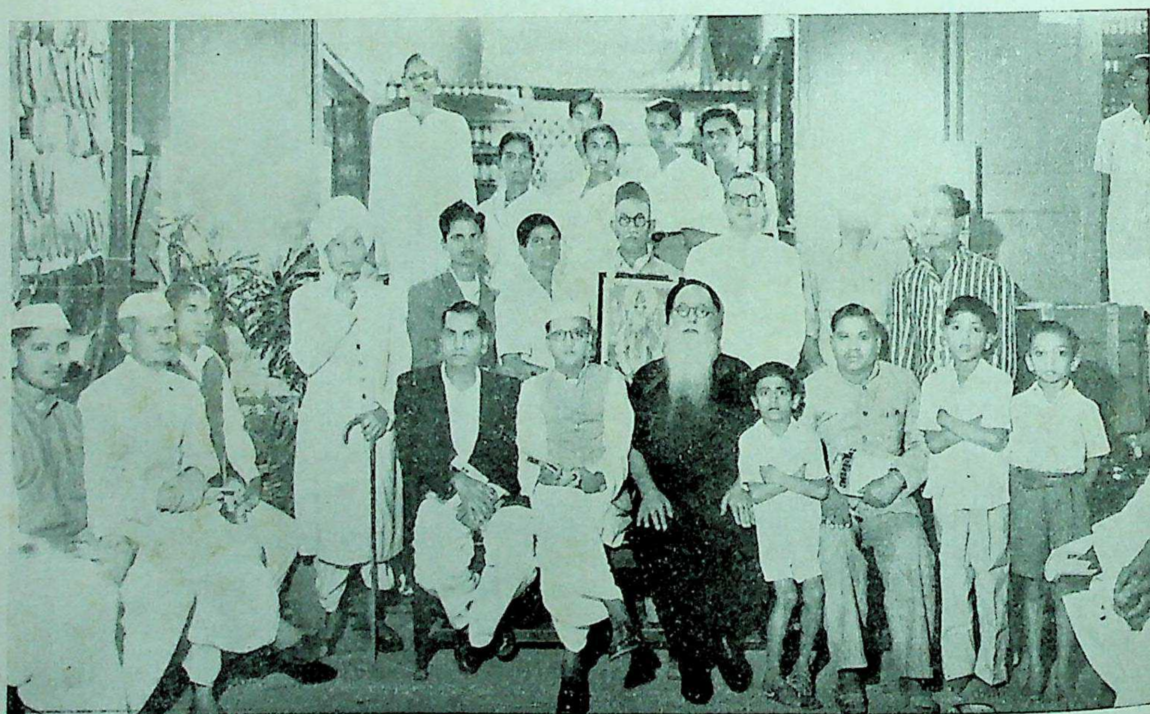
हरिद्वार में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा का एक दृश्य



गोंदिया में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा का सुन्दर दृश्य



सीवान में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा का भव्य दृश्य



सुलतान बाजार (हैदराबाद) में अनुष्ठित धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की सभा का एक दृश्य

शास्त्री, श्री पं० बनवाली शास्त्री, डा० एल० टी० शाह, डाक्टर तिवारी जी, वैद्य नारायण प्रसाद शर्मा, वैद्य श्री कृष्णराव जी कुरकुरे, वैद्य भगवानदत्त जी शर्मा, वैद्य गान्धी जी आदि विद्वानोंके आयुर्वेद विज्ञान, संगठन, इत्यादि विषयों पर गंभीर और प्रभावोत्पादक भाषण हुए। श्री धन्वन्तरि जयन्ती को स्वास्थ्य सप्ताह के रूप में मनाने, सरकार से अवकाश स्वीकार करने आदि विषयों के प्रस्ताव स्वीकार हुए। सभापति महोदय ने अपने विद्वत्तापूर्ण एवं उद्बोधक भाषण में वैद्य समाज को संगठित हो कर यह दिखा देने को कहा कि आज भी आयुर्वेद बिना राज्याश्रय के भी अग्रसर है। प्रसाद वितरण कर सभा को विसर्जित किया गया।

नागपुर (महल)

महल, नागपुर स्थित श्री महल आयुर्वेदिक स्टोर्स में आयुर्वेदाचार्य पं० शिवकरण जी छांगाणी शास्त्री भी अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती मनाई गई। सर्वप्रथम दूकान के व्यवस्थापक वैद्य कस्तूरचंद शास्त्री ने संस्कृत में स्वागत भाषण दिया। तदनन्तर अध्यक्ष पं० शिवकरण जी छांगाणी ने कहा कि भगवान् धन्वन्तरि जी का यह उत्सव हम वैद्य बन्धुओं तक ही सीमित नहीं रहना चाहिये, अपितु जन साधारण तक इसका व्यापक प्रचार होना चाहिये, क्योंकि भगवान् धन्वन्तरि जी ने इस मृत्युलोक में अमृतरूपी आयुर्वेद शास्त्र प्रदान कर सभी को उपकृत किया है। इस दिशा में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० सम्पूर्ण भारत में बहुत समय से प्रयत्न कर रहा है और दिनोंदिन इस विषय में अधिक से अधिक आर्थिक तथा शारीरिक योगदान कर एक आदर्श प्रकट कर दिया है। हमें प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि धन्वन्तरि जी के सदुपदेशों का पालन करें और उसके द्वारा प्रदत्त निधि की उत्तरोत्तर वृद्धि करें। इसके अनन्तर वैद्य कस्तूरचंद शास्त्री ने आभार प्रदर्शन और भगवान धन्वन्तरि जी का प्रसाद वितरण कर कार्यवाही समाप्त की।

आंध्र प्रदेश में सभाएँ

औरङ्गाबाद (दक्षिण)

औरंगाबाद (हैदराबाद) में सुपारी हनुमान रोड स्थित दक्कन स्टोर में श्री धन्वन्तरि जयन्ती का भव्य आयोजन किया गया। इस अवसर पर वैद्य वर्ग और जनता की सम्मिलित सभा का भी आयोजन हुआ जिसमें आयुर्वेद के स्वास्थ्यरक्षा विषयक सिद्धान्तों को जनता को समझाया गया और जनता से अपील की गयी कि जनता इन्हीं सिद्धान्तों पर चल कर अपने को निरोग रखने का उपक्रम करे। पाश्चात्य तरीकों से स्वास्थ्य की स्थायी रक्षा नहीं होती। सभा में चार प्रस्ताव पेश किये गये जो सर्व सम्मति से स्वीकार हुए और सम्बन्धित सज्जनों को डाक द्वारा भेजने का निश्चय हुआ। सभा का सभापतित्व प्रसिद्ध देशी चिकित्सक श्री वाजीराव जी वैद्यराज ने किया। श्री धन्वन्तरि भगवान का पूजन स्तवन किया गया एवं संयोजक की ओर से प्रसाद वितरण हुआ।

हैदराबाद में सभा

हैदराबाद के सुल्तान बाजार में श्री धन्वन्तरि समारोह उत्साह एवं धूमधाम के साथ मनाया गया। श्रीधन्वन्तरि पूजन के अनन्तर महन्त श्री बाबा पूरणदास जी के सभापतित्व में सभा हुई जिसमें हैदराबाद नगर के प्रायः ७५ प्रसिद्ध वैद्यों ने भाग लिया। इसके अतिरिक्त नगर के अन्य प्रतिष्ठित नागरिक भी पर्याप्त संख्या में उपस्थित हुए। पंडित श्री भूदेव जी शास्त्री ने स्वागत भाषण पढ़ा। तदनन्तर श्री ओमप्रकाश जी आयुर्वेदालंकार, श्री विद्याधर जी विद्यालंकार, श्री सी० के० दिवाकरण जी, आदि उच्च विद्वान वैद्यों के आयुर्वेद के विषय में प्रभावशाली भाषण हुए स्थान की कमी के कारण जनता के बहुत लोगों ने खड़े-खड़े ही भाषण सुने। सभा में तीन प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकार हुए। सभापति ने आयुर्वेद चिकित्सा का महत्व समझाया। प्रसाद वितरणोपरान्त सभा समाप्त की गई।

काकीनद (आंध्र प्रदेश)

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के काकीनद (आंध्र) स्थित बिक्री-केन्द्र में बड़े धूमधाम के साथ धन्वन्तरि जयन्ती मनायी गयी। भगवान धन्वन्तरि के पूजन के पश्चात् स्थानीय वैद्य-हकीमों एवं नागरिकों की एक महती सभा का आयोजन किया गया। अनेक वक्ताओं ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की महत्त्वपूर्ण आयुर्वेद-सेवाओं तथा आयुर्वेदोन्नति के हेतु 'भवन' द्वारा किए जाने वाले श्रेष्ठ प्रयत्नों की सराहना की। सभापति जी ने अपने भाषण में वैद्यनाथ औषधियों की गुणकारिता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए वैद्यों से संगठित होकर आयुर्वेद के उत्थान के निमित्त वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा किए जाने वाले कार्यों में सहयोग प्रदान करने की अपील की। आरम्भ में मंगलाचरण के अनन्तर श्री एम० एस० पी० मूर्ति ने स्वागत भाषण पढ़ा। पांचों प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। अन्त में प्रसाद वितरण और धन्यवाद ज्ञापन कर सभा समाप्त हुई।

राजस्थान के नगरों में समारोह

कोटा

कोटा में श्री धन्वन्तरि जयन्ती समारोह जननायक श्री शंभूदयाल जी सक्सेना एम० ए० भूतपूर्व चेयरमैन म्यु० बोर्ड की अध्यक्षता में सानन्द मनाया गया। सर्व प्रथम भगवान् धन्वन्तरि का पूजन उपस्थित वैद्य बन्धुओं व प्रतिष्ठित महानुभावों की उपस्थिति में किया गया। तत्पश्चात् सभा का कार्यक्रम प्रारंभ किया गया। सर्वप्रथम बिक्रीकेन्द्र के व्यवस्थापक जी ने स्वागत भाषण पढ़ा। उपस्थित वैद्यों के भाषणोपरान्त अध्यक्ष महोदय ने बड़े रोचक शब्दों में आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति भारतीय जनता के लिए सबसे अधिक उपयोगी है ऐसा सिद्ध करते हुए वैद्यनाथ औषधियों के विषय में अपने भाव व्यक्त किये। पुनः प्रस्ताव पास किये गये। समस्त आगत सज्जनों का पुष्प-माला, पान, सुपारी से स्वागत करके प्रसाद वितरण किया गया।

रेवाड़ी में आयोजन

रेवाड़ी में धन्वन्तरि जयन्ती वैद्य रामचन्द्र दडोली वाले की अध्यक्षता में बड़े धूमधाम से मनाई गई। उपस्थित वैद्यों ने आयुर्वेद के विषय में अपने विचार व्यक्त किये तथा अध्यक्ष महोदय ने अन्त में आयुर्वेदिक दवाओं के विषय में भाषण देते हुए उनकी उत्तमत्ता पर जोर दिया। आयुर्वेद मण्डल के सभी वैद्य जो बाहर से आये हुए थे काफी उत्साह-पूर्वक सम्मिलित हुए। सभा में जो प्रस्ताव पास हुए वे उच्च अधिकारियों के पास भेजे गये। पश्चात् आगन्तुक वैद्यों तथा प्रतिष्ठित नागरिकों को प्रसाद वितरण किया गया।

धौलपुर में समारोह

धौलपुर में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव श्री पं० भोलाराम जी वैद्य शास्त्री के सभापतित्व में धूमधाम से मनाया गया। उत्सव में नगर के वैद्य- हकीम एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। सर्वप्रथम भगवान धन्वन्तरि जी का पूजन किया गया। अनन्तर श्री वासुदेव आयुर्वेदालंकार ने स्वागत भाषण पढ़ा। पश्चात् श्री चौतरीलाल इन्दु का आयुर्वेद की महान् शिक्षा पर भाषण हुआ जिसमें बताया गया कि अन्य चिकित्सा औषधियाँ रोगी को निरोग बनाने का प्रयत्न करती हैं पर आयुर्वेद उन तरीकों को बताता है जिसको प्रयोग में लाने से मानव रोगी न हो। अन्त में सभापति जी का सारगभित भाषण हुआ। सभापति जी के भाषण के पश्चात् समागत सज्जनों में मिष्ठान्न, पंचांग तथा प्रचारात्मक साहित्य एवं सचित्र आयुर्वेद की प्रतियाँ वितरित की गयी। इस प्रकार यह समारोह सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

नीमकाथाना

नीमकाथाना (राजस्थान) में धूमधाम के साथ धन्वन्तरि जयन्ती मनायी गयी। भगवान धन्वन्तरि के सविधि पूजनोपरान्त श्री वैद्यराज गजानन जी शास्त्री की अध्यक्षता में सभा हुई, जिसमें वैद्य-हकीम एवं विशिष्ट नागरिक सम्मिलित हुए। सर्वप्रथम विक्री-केन्द्र व्यवस्थापक ने स्वागत भाषण पढ़ा। तत्पश्चात् अनेक वक्ताओं ने अपने भाषण में बैद्यनाथ औषधियों की विशिष्ट गुणकारिता पर प्रकाश डाला। सभापति जी ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए आयुर्वेदोन्नति के लिए प्रयत्नशील श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संचालकों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सर्व सम्मति से पांचों प्रस्ताव स्वीकृत हुए एवं धन्यवाद-ज्ञापन तथा प्रसाद वितरण कर सभा समाप्त हुई।

जयपुर में सभा

श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर जयपुर स्थित कांसली आयुर्वेदिक स्टोर पर वैद्यों एवं आयुर्वेद प्रेमियोंकीएक सभा हुई, जिसमें आयुर्वेद के विकास से सम्बन्धित महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकार किए गये। अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए श्री वैद्य जयरामदास स्वामी ने कहा कि आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति से सभी प्रकार के रोगों का समाधान सम्भव है। आपने भारतीय विज्ञान व विद्याओं के विकास की आवश्यकता पर बल दिया। आपने बताया कि भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आयुर्वेद का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। यह हमारे लिए दुर्भाग्य की बात है कि सरकार द्वारा बराबर आश्वासन दिये जाने के बावजूद भारतीय चिकित्सा-पद्धति के विकास की ओर उचित ध्यान नहीं दिया जा रहा है। आपने सरकार से अपील की कि वह इस प्राचीन चिकित्सा-प्रणाली को विकास का पूरा

अवसर प्रदान करें। इस अवसर पर स्वागत भाषण में आयुर्वेद की उपेक्षा पर दुःख प्रकट किया गया और कहा गया कि स्वास्थ्यके मामले में सरकार व जनता में स्पष्ट असहयोग है। भाषण में आगे कहा गया कि आयुर्वेदीय स्वास्थ्य-सिद्धान्तों के अनुसरण से स्वास्थ्य समस्या का समाधान हो सकता है। सभा में उपस्थित चार महत्वपूर्ण प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकार किये गए। एक प्रस्ताव में जन स्वास्थ्य के विषय में भारतीय सिद्धान्तों के आधार पर राष्ट्रीय नीति निर्धारित किए जाने की माँग की गई। दूसरे प्रस्ताव में आयुर्वेद व यूनानी का समन्वय करके पाश्चात्य के आवश्यक अंशों को लेकर भारतीय चिकित्सा पद्धति को स्वीकार करने पर जोर दिया गया। एक अन्य प्रस्ताव में आसव-अरिष्टों पर लगे मद्य-प्रतिबन्धों को अविलम्ब वापस लेने की माँग की गई। अन्तिम प्रस्ताव में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन को सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित किये जाने को आवश्यक बताया गया। श्री हजारीलाल शर्मा ने अपने भाषण में समारोह में भाग लेने वाले वैद्यों एवं आयुर्वेद प्रेमियों को श्री बैद्यनाथ भवन प्रा० लि० की ओर से धन्यवाद दिया।

अलवर में सभा

अलवर में श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव धूमधाम से मनाया गया। शहर के सभी प्रतिष्ठित वैद्य एवं व्यापारी उपस्थित थे। सबसे पहले भगवान धन्वन्तरि जी का पूजन किया गया। श्री चन्द्रशेखर जी इन्सपेक्टर गवर्नमेंट आयुर्वेदिक औषधालय सर्वसम्मति से सभापति चुने गये। इसके बाद स्वागत भाषण श्री सनतकुमार जी वैद्य द्वारा पढ़कर सुनाया गया। इसके बाद श्रीमन्नारायण जी शास्त्री प्रोफेसर संस्कृत कालेज अलवर ने आयुर्वेद पर महत्त्वपूर्ण भाषण दिया। इसके बाद वैद्यरत्न श्री इन्द्रलाल जी गर्ग, वैद्यराज श्री राधेदत्त जी, वैद्यराज पातंजलि जी भट्ट, वैद्यराज श्री बद्रीनारायण जी के भी ओजस्वी भाषण हुए। बाद में सभापतिजी का भाषण हुआ। आपने कहा कि भारत वर्ष में आयुर्वेद की तरक्की के लिये कम-से कम हर जिले में एक आयुर्वेद विद्यालय अवश्य ही होना चाहिये और प्रतिष्ठित वैद्यों की डाक्टरों के समान ही इज्जत भी होनी चाहिये। श्री राजनारायण गुप्त द्वारा उपस्थित चारों प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए और धन्यवाद ज्ञापन तथा प्रसाद वितरण कर कार्यवाही समाप्त की गयी।

पंजाब में भव्य आयोजन

जालन्धर

जालन्धर में भगवान धन्वन्तरि के सविधि पूजनोपरान्त आचार्य श्री दीनानाथ जी शास्त्री की अध्यक्षता में सभा हुई, जिसमें वैद्य-हकीम एवं विशिष्ट नागरिक सम्मिलित हुए। सर्वप्रथम बिक्री-केन्द्र-व्यवस्थापक ने स्वागत भाषण पढ़ा। तत्पश्चात् अनेक वक्ताओं ने अपने भाषण में बैद्यनाथ औषधियों की विशिष्ट गुणकारिता पर प्रकाश डाला। सभापति जी ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए आयुर्वेदोन्नति के लिए प्रयत्नशील श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संचालकों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सर्वसम्मति से पांचों प्रस्ताव स्वीकृत हुए एवं धन्यवाद ज्ञापन तथा प्रसाद वितरण कर सभा समाप्त हुई।

अमृतसर में स्वास्थ्य दिवस

श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष में अमृतसर में स्वास्थ्य दिवस बड़े उल्लासपूर्ण वातावरण में सेठ राधाकृष्ण स्थानीय म्युनिसपल कमिश्नर की अध्यक्षता में मनाया गया। इस अवसर पर वैद्यों, हकीमों के अतिरिक्त सर्व-साधारण जनता भी पर्याप्त संख्या में आयोजन में सम्मिलित हुई थी। कतिपय आयुर्वेदीय विद्वानों के आयुर्वेद विषयक गवेषणापूर्ण भाषण हुए। तदुपरान्त चार प्रस्ताव पारित हुए। प्रस्ताव नं० १ में राष्ट्रीयस्तर पर राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति निर्धारण की माँग केन्द्रीय सरकार से की गयी। प्रस्ताव में कहा गया कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली को ही राष्ट्रीय चिकित्सा प्रणाली के रूप में मान्यता दी जाए। साथ ही धन्वन्तरि जयन्ती के दिन सार्वजनिक अवकाश की घोषणा की जाय। प्रस्ताव नं० २ में देशी चिकित्सा के विकास के लिए यथाशीघ्र ठोस पाठ्यक्रम-निर्धारण और कम-से-कम प्रत्येक जिले में एक आयुर्वेद विद्यालय तथा साधन सम्पन्न आयुर्वेदिक चिकित्सालय की स्थापना करने की माँग की गयी। प्रस्ताव नं० ३ द्वारा आसव-अरिष्टों

को मद्य की श्रेणी में रखे जाने का घोर विरोध किया गया और सरकार से यह अपील की गयी कि वह इस पर पुनः विचार करे और आसव-अरिष्टों पर लगे प्रतिबन्ध को अविलम्ब वापस ले ले।

चौथे प्रस्ताव में आयुर्वेद महासम्मेलन की वर्त्तमान शिथिल और निष्क्रिय अवस्था पर खेद प्रकट करते हुए आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना किसी केन्द्रीय स्थान में करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया।

उपर्युक्त सभी प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। भाषण और धन्यवाद ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

पश्चिम बंगाल के नगरों में समारोह

खिदिरपुर (कलकत्ता) में समारोह

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के खिदिरपुर (कलकत्ता) बिक्री-केन्द्र में धूमधाम से धन्वन्तरि जयन्ती मनायी गयी। भगवान धन्वन्तरि की पूजा के बाद सभा का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम श्री विहारी सिंह जी केन्द्र-व्यवस्थापक ने स्वागत भाषण पढ़ा। तत्पश्चात् अनेक वैद्यों के सामयिक भाषण हुए। सभी वक्ताओं ने बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की महान आयुर्वेद-सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की और वैद्यों से संगठित होकर आयुर्वेदोत्थान के कार्यों में सहयोग देने पर जोर दिया। इसके साथ ही आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आयुर्वेदोन्नति के लिए सतत प्रयत्नशील बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान के संचालकों की सराहना की गयी। अन्त में धन्यवाद ज्ञापन और प्रसाद वितरण कर सभा की कार्यवाही समाप्त की गयी।

मटियाबुर्ज (कलकत्ता) में स्वास्थ्य दिवस

श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में आयोजित सार्वजनिक स्वास्थ्य दिवस मटियाबुर्ज में श्री भरतलाल त्रिपाठी, आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में मनाया गया। इस अवसर पर आयुर्वेदज्ञों के अतिरिक्त स्थानीय गण्यमान्य व्यक्ति भी पधारे थे। आयुर्वेद विषयक महत्त्वपूर्ण भाषण कतिपय विद्वान वैद्यों द्वारा दिये गये। अध्यक्ष ने बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की सराहना करते हुए आयुर्वेद अनुसंधान की आवश्यकता पर जोर दिया। तदुपरांत चार प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए। प्रस्तावों में जन-स्वास्थ्य संरक्षण में आयुर्वेद को पूर्ण प्रोत्साहन देने, द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अधिकाधिक आयुर्वेद का उपयोग करने, आयुर्वेद में अनुसंधान कराने तथा शीघ्रातिशीघ्र एक केन्द्रीय आयुर्वेद महाविद्यालय या आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना करने की मांग की गयी। अध्यक्षीय भाषण तथा धन्यवाद ज्ञापन के बाद कार्यवाही समाप्त की गयी।

आलमबाजार (कलकत्ता) में सभा

गत कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी को स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष में डाक्टर मणिलाल जी चक्रवर्ती की अध्यक्षता में एक जनसभा का आयोजन किया गया। सभा में पर्याप्त संख्या में आयुर्वेद प्रेमी सम्मिलित हुए थे। वैद्य भोलानाथ जी तथा वैद्य विजयरतन सेन ने आयुर्वेद की महत्ता और उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए सरकार से यह माँग की कि वह आयुर्वेद को अधिकाधिक प्रोत्साहन दे, जिससे कि भारत की यह प्राचीनतम विद्या पुनः इस देश में ही नहीं प्रत्युत देश के बाहर भी प्रतिष्ठित हो सके। तदुपरांत श्रीनाथ शर्मा ने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा प्रेषित चार प्रस्तावों का मूलरूप उपस्थित जनता के समक्ष पढ़कर सुनाया और लोगों की सम्मति माँगी। सभी प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत किये गये। इसके बाद 'जय आयुर्वेद' 'आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबन्ध हटे' आदि नारे लगे। सभा सधन्यवाद विसर्जित हुई।

हबड़ा (मैदान) में जनसभा

स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष में वैद्यों, हकीमों, डाक्टरों तथा विशिष्ट नागरिकों की एक सभा हबड़ा 'मैदान' में गत कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को पण्डित श्री दुर्गा नाथ झा आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में आयोजित हुई। वैद्य छाजूराम जी तथा डाक्टर अमला नायडू ने इस अवसर पर भाषण करते हुए कहा कि आयुर्वेद की जितनी उपेक्षा अबतक हुई, उतनी भविष्य में न हो सकेगी। भारत का जाग्रत जनमत अब इस उपेक्षा को नहीं सहन कर सकेगा। इस अवसर पर श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की आयुर्वेदीय सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी और प्रेषित प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत किये गये। प्रस्तावों में आयुर्वेद को स्वास्थ्य-संरक्षण के लिए प्रोत्साहन देने, अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करने और आसव-अरिष्टों पर से यथाशीघ्र प्रतिबंध

हटाने की माँग सरकार से की गयी। अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

बाँधाघाट (हवड़ा) में सभा

स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष में वैद्यों, हकीमों, डाक्टरों तथा नागरिकों की एक वृहत् सभा कविराज श्री सुशील कुमार गुप्ता एल० ए० एम० एस० की अध्यक्षता में बाँधाघाट में हुई। आयुर्वेद की महत्ता पर कतिपय विद्वानों के भाषण हुए जिनमें सर्व श्री समर मुखर्जी एम० एल० ए०, हरेन्द्रनाथ काव्यतीर्थ, आयुर्वेद शास्त्री तथा डा० एस० के० दत्त प्रमुख थे। वक्ताओं ने एक स्वर से आयुर्वेद की गुणवत्ता और उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए यह माँग की कि आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में मान्य किया जाय। आयुर्वेद की महत्ता का सुन्दर विवेचन करते हुए स्थानीय कविराज श्री दुर्गानाथ झा, आयुर्वेदाचार्य का भी इस अवसर पर सुन्दर भाषण हुआ।

बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा प्रेपित चार प्रस्ताव भी सर्व सम्मति से स्वीकृत किये गए। प्रस्ताव में आयुर्वेद को स्वास्थ्य संरक्षण के लिए प्रोत्साहन देने, अनुसंधान-कार्य प्रारम्भ करने, आसव-अरिष्टों पर से यथाशीघ्र प्रतिबन्ध हटाने की माँग सरकार से की गयी। अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

चाँपदानी (हुगली) में स्वास्थ्य दिवस)

गत कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष में चाँपदानी में एक वृहत् सभा का आयोजन पण्डित विशुद्धानन्द जी मिश्र के सभापतित्व में किया गया। आस-पास के प्रायः सभी आयुर्वेदज्ञ तथा गण्यमान्य व्यक्ति समारोह में सम्मिलित हुए थे। आगत सज्जनों ने अपने भाषणों में आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति को भारत के लिए सर्वथा अनुकूल बताते हुए इसके अधिकाधिक प्रचार पर जोर दिया।

अध्यक्ष ने अपने भाषण में कहा कि आयुर्वेद को पुनः उसके गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० जैसी संस्थाओं को अधिक-से-अधिक सहयोग प्रदान करना चाहिए।

अन्त में अध्यक्ष जी की ओर से चार प्रस्ताव पेश किये गये जो सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए। प्रस्ताव में सरकार से इस आशय की माँग की गयी कि वह जन स्वास्थ्य संरक्षण में आयुर्वेद को पूर्ण प्रोत्साहन दे—इस देश के प्राचीनतम विज्ञान आयुर्वेद को पुनस्संस्थापित करने के लिए प्रत्येक राज्य में अति शीघ्र अनुसंधान कार्य प्रारम्भ करे—आसव-अरिष्टों पर से यथाशीघ्र प्रतिबन्ध हटा दे और एक केन्द्रीय आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना करे। अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

टीटागढ़ (२४ परगना) में सभा

धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के अवसर पर अनुष्ठित स्वास्थ्य दिवस मनाने के लिए भारतीय औषधालय टीटागढ़ के उद्योग से एक जन-सभा का आयोजन श्री कृष्णकुमार शुक्ल एम० एल० ए० की अध्यक्षता में किया गया। सभा को सर्वांग सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया गया था। विभिन्न वक्ताओं के भाषण हुए। वक्ताओं ने आयुर्वेद को जन-जीवन में पुनः प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता पर जोर देते हुए वैद्य समाज की एकता और संगठन की अपील की। तदुपरान्त बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा प्रेपित चार प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुए। उन प्रस्तावों में सरकार से इस आशय की मांग की गयी कि जन-स्वास्थ्य संरक्षण को दृष्टिगत करते हुए राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति का निर्धारित करे। साथ ही प्रतिवर्ष सरकार और जनता के सहयोग से धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर अखिल भारतीय स्वास्थ्य सप्ताह का आयोजन किया जाय और केन्द्रीय सरकार स्वाधीनता दिवस और राष्ट्रीय गणतंत्र दिवस की भाँति ही जयन्ती को स्वास्थ्य दिवस का अवकाश स्वीकृत करे। दूसरे प्रस्ताव द्वारा देशी चिकित्सा पद्धति के शिक्षण के लिए प्रत्येक जिले में एक आयुर्वेद विद्यालय तथा साधन सम्पन्न एक आयुर्वेदिक अस्पताल स्थापित करने की मांग की गयी। तीसरे प्रस्ताव द्वारा आसव-अरिष्टों को मद्य की श्रेणी में रखे जाने का तीव्र विरोध किया गया और सरकार से यह मांग की गयी कि वह अविलम्ब इस प्रतिबंध को हटा दे। चौथे प्रस्ताव द्वारा अखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ की गतिविधि पर असंतोष प्रकट करते हुए एक सर्व सम्पन्न आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना का आयोजन वैद्यों द्वारा किए जाने की माँग की गयी। अन्त में सभा सधन्यवाद समाप्त हुई।

बर्दवान में स्वास्थ्य दिवस

गत कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी तदनुसार २१ अक्तूबर को बर्दवान में धन्वन्तरि जयन्ती के शुभ अवसर पर आयोजित

स्वास्थ्य दिवस को मनाने के लिए स्थानीय वैद्यों, कविराजों, हकीमों तथा विशिष्ट नागरिकों की सभा पं० श्रीकान्त शास्त्री की अध्यक्षता में हुई। आयुर्वेदोत्थान सम्बन्धी भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद को राष्ट्रव्यापी चिकित्सा-पद्धति बनाए जाने की अपील की गयी। तदुपरान्त बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा प्रेषित प्रस्ताव सभा में उपस्थित किये गए जो सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए।

प्रस्ताव में आयुर्वेद को जन स्वास्थ्य संरक्षण के लिए इस देश की राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में मान्यता देने, द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अधिकाधिक आयुर्वेद के उपयोग किये जाने, आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबन्ध हटाने एवं शीघ्रातिशीघ्र एक केन्द्रीय आयुर्वेद महाविद्यालय या आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना करने की माँग की गयी। अन्त में सभा की कार्यवाही सधन्यवद समाप्त हुई।

आसनसोल में सभा

राष्ट्रीय स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष में स्थानीय मुंशी बाजार आसनसोल में एक सभा का आयोजन उत्साहपूर्ण वातावरण में किया गया। सर्वप्रथम वैद्य जी काशीनाथ पाण्डेय, आयुर्वेदाचार्य ने आयुर्वेद की उत्तरोत्तर उन्नति एवं प्रसार पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आयुर्वेद की उन्नति के लिए वैद्य हकीमों में परस्पर सहयोग और सद्भावना का होना आवश्यक है। तदुपरान्त बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा प्रेषित चार प्रस्ताव—जिनमें आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित करने, धन्वन्तरि जयन्ती को राष्ट्रीय स्वास्थ्य दिवस के रूप में मनाए जाने, उस दिन देशव्यापी सार्वजनिक छुट्टी घोषित करने एवं आसव-अरिष्टों पर से अविलम्ब प्रतिबंध हटाने की मांग सरकार से की गयी थी—सर्व सम्मति से स्वीकृत किये गये। सभीने जोरदार शब्दों में आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित करने तथा आसव-अरिष्टों पर लगे प्रतिबंध को हटाने की मांग की।

स्थानीय कवियों की उपस्थिति ने उत्सव में चार चाँद लगा दिए और इस अवसर पर एक कविसम्मेलन भी हुआ, जिसमें 'हम-सफर' 'राही' आदि कवियों ने भाग लिया। अध्यक्षीय भाषण और धन्यवाद-ज्ञापन के बाद उत्सव समाप्त हुआ।

रानीगंज में सभा

गत दिनांक २१ अक्तूबर को धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर अनुष्ठित स्वास्थ्य दिवस, रानीगंज में श्री युत् आर० डी० राय बी० एस० सी० के सभापतित्व में ससमारोह मनाया गया। सर्व प्रथम श्रीयुत् विष्णुदत्त शर्मा द्वारा स्वस्तिवाचन और कुमारी विजयलक्ष्मी द्वारा वन्देमातरम् का गायन हुआ। उत्सव के प्रधान अतिथि श्रीयुत् सीताराम साहा, सर्किल आफिसर रानीगंज ने आयुर्वेद की महत्ता पर सुन्दर प्रकाश डाला। आपके अतिरिक्त सर्व श्री शान्ति स्वरूप वर्मा, रामानन्द जी तथा विष्णुदत्त जी शर्मा के सारगर्भित भाषण हुए। अध्यक्षीय भाषण में इस बात पर जोर दिया गया कि आयुर्वेद इस देश की प्राचीन विद्या है। इस नाते आयुर्वेद को ही राष्ट्रीय चिकित्सा के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए। आपने कहा कि मनुष्य अपने शरीर की रक्षा आयुर्वेद द्वारा बताए गए मार्ग पर चलकर ही कर सकता है।

बैद्यनाथ भवन द्वारा प्रेषित चार प्रस्ताव सभा में उपस्थित किये गए जो सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। उन प्रस्तावों में जन-स्वास्थ्य संरक्षण के लिए आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के रूप में मान्यता देने, द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अधिकाधिक आयुर्वेद के उपयोग किए जाने, आसव-अरिष्टों पर से तत्काल प्रतिबंध हटाने एवं शीघ्रातिशीघ्र एक केन्द्रीय आयुर्वेद महाविद्यालय या आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना की माँग की गयी। धन्यवाद-ज्ञापन के पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

पुरुलिया में स्वास्थ्य-दिवस

श्री धन्वन्तरि महोत्सव के उपलक्ष्य में सार्वजनिक स्वास्थ्य दिवस का आयोजन बड़े उत्साह पूर्ण वातावरण में किया गया। वैद्य, हकीम और नगर की आयुर्वेद प्रेमी जनता भारी संख्या में उपस्थित थी। मंगलाचरण के साथ दिवस की कार्यवाही प्रारंभ हुई। विद्वान वैद्यों के आयुर्वेद तथा जनोपयोगी भाषण हुए। वक्ताओं ने एक स्वर से आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में मान्यता देने की माँग सरकार से की। तदुपरान्त बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा प्रेषित ४ प्रस्ताव पेश हुए और सर्वसम्मति से स्वीकृत किये गये।

प्रस्तावों में जन-स्वास्थ्य संरक्षण के लिए आयुर्वेद को पूर्ण प्रोत्साहन देने, पंचवर्षीय योजना में अधिकाधिक आयुर्वेद का उपयोग करने, आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबंध हटाने तथा एक केन्द्रीय महाविद्यालय की स्थापना करने की माँग की गयी। अन्त में धन्यवाद ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

उड़ीसा में स्वास्थ्य-दिवस-समारोह

कटक में स्वास्थ्य दिवस

धन्वन्तरि स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष में बक्सी बाजार, कटक में एक जन सभा का ससमारोह आयोजन किया गया। इस दिवस के आयोजन में भाग लेने के लिए पास-पड़ोस के लोग जुटकर आए थे। सर्वप्रथम उत्कल वैद्य सम्मेलन के प्रधान मंत्री कविराज श्री बनमालीदास जी ने उस अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के १० वर्ष बाद भी केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों न आयुर्वेद के लिए उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। आयुर्वेद में गवेषणा की चर्चा करते हुए कविराज दास ने कहा कि आयुर्वेद की सर्वथा अलग भित्ति है और इसीके आधार पर आयुर्वेद में गवेषणा होनी चाहिए। तदुपरांत श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा प्रेषित आयुर्वेद-हितार्थ चार प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित हुए। प्रस्तावों में शासन से इस आशय की अपील की गयी कि देश के राजनीतिक और सामाजिक संगठनों के प्रतिनिधियों की एक परिषद बुलाकर वह जन स्वास्थ्य के सम्बन्ध में अपनी राष्ट्रीय नीति निर्धारित करे—साथ ही व्याधियों के निराकण और चिकित्सा मे आयुर्वेद के व्यापक और प्रभावकारी सिद्धान्तों के अनुसरण करने की व्यवस्था करे। एक प्रस्ताव में सरकार से यह अपील की गयी कि राष्ट्रीय स्वास्थ्य दिवस के रूप में धन्वन्तरि जयन्ती मनाने के लिए उस दिन सार्वजनिक छुट्टी की घोषणा की जाय। आसव अरिष्टों पर से प्रतिबंध हटाने, आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित करने एवं अखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन की निष्क्रियता दूर करने के सम्बन्ध में भी प्रस्ताव पारित हुए। इस अवसर पर समागत वैद्यों तथा आयुर्वेदीय विद्वानों में सर्व श्री कविराज अनन्त त्रिपाठी, कविराज विश्वनाथ दास, कविराज चक्रधर भट्ट शास्त्री, कविराज लक्ष्मणकुमार पट्टनायक और श्रीमती सरस्वती देवी प्रभृति प्रमुख थे। स्वल्पाहार के पश्चात् आयोजन समाप्त हुआ।

पुरी में स्वास्थ्य दिवस

स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष में गत कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को आयुर्वेद प्रेमियों, विद्वानों एवं चिकित्सकों की एक विराट्-सभा का आयोजन कविराज पं० दामोदर शास्त्री की अध्यक्षता में दोलामण्डप साही, पुरी में किया गया। सभा में आयुर्वेदज्ञों चिकित्सकों के अतिरिक्त सर्व साधारण जनता भी बड़ी संख्या में जुट कर आयी थी। सर्व प्रथम कविराज श्री आनन्द महापात्र, कविराज रामचन्द्र मिश्र आदि वक्ताओं ने आयुर्वेद की महत्ता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि शल्य चिकित्सा अष्टाङ्ग आयुर्वेद का एक प्रमुख अंग है और प्राचीन काल में यह चिकित्सा अपने उत्कर्ष पर थी—हाँ, मध्यकाल में आकर यह चिकित्सा आयुर्वेदज्ञों के हाथ से जाती रही। इस वैज्ञानिक युग में हम यदि अन्य चिकित्सा पद्धतियों के साथ कदम मिलाकर बढ़ना चाहते हैं तो यह परम जरूरी है कि शल्य-चिकित्सा में भी आयुर्वेदज्ञों को पूर्ण निष्णात होना चाहिए।

अध्यक्ष महोदय ने अपने भाषण में कहा कि आयुर्वेद को केवल चिकित्सा शास्त्र कहना उसका अपमान करना है—चिकित्सा केवल रोग-निवृत्ति मात्र में सीमित है। आयुर्वेद जीवन को पूर्ण स्वस्थ बनाने पर जोर देता है—इसलिए उसको जीवन का विज्ञान बताया गया है। आपने कहा कि आयुर्वेद का दार्शनिक आधार बड़ा ही सबल है—और दर्शनहीन विज्ञान विज्ञान नहीं हो सकता। आपने वैद्यों और चिकित्सकों को सम्बोधित करते हुए कहा कि जन-स्वास्थ्य सम्बन्धी आयुर्वेद का महामंत्र नगर, जनपद और ग्रामीण अंचलों तक पहुँचा कर जन-जीवन को स्वास्थ्य और सौन्दर्य पूरित बनाने का शुभ संकल्प हमें लेना चाहिए।

भारत सरकार की आयुर्वेद विषयक उपेक्षा नीति की चर्चा करते हुए आपने कहा कि सरकार विदेशी औषधियों के क्रय में ५५ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष व्यय करती है, जबकि आयुर्वेद को पूर्ण प्रोत्साहन और प्रश्रय देकर सरकार इन रुपयों की बचत कर सकती है।

अध्यक्षीय भाषण के उपरान्त श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा प्रेषित चार प्रस्ताव पेश किये गये, जो सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। स्वीकृत प्रस्तावों में सरकार से जन-स्वास्थ्य के सम्बन्ध में दृढ़ नीति अपनाने, आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित करने, धन्वन्तरि जयन्ती को राष्ट्रीय स्वास्थ्य दिवस के रूप में मनाए जाने और सार्वजनिक छुट्टी घोषित करने एवं आसव-अरिष्टों पर से प्रतिबंध हटाने की जोरदार शब्दों में माँग की गयी। धन्यवाद ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

सम्बलपुर में स्वास्थ्य दिवस

राष्ट्रीय स्वास्थ्य दिवस के उपलक्ष में सम्बलपुर में इस वर्ष श्री पूर्णचन्द्र शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में एक जनसभा का समारोह पूर्वक आयोजन किया गया। सर्वप्रथम स्थानीय प्रमुख किकित्सक श्री नरेन्द्रनाथ सेन गुप्त वैद्य शास्त्री ने भाषण दिया। अपने भाषण में आपने वैद्य वर्ग के कर्त्तव्यों पर जोर देते हुए कहा कि यदि वैद्य वर्ग स्वार्थ रहित होकर सेवा की भावना से अनुप्राणित चिकित्सा-पद्धति को अपनावें तो आयुर्वेद का सिक्का आयुर्वेद से विरक्त लोगों पर जमते देर नहीं लगे। तदुपरान्त कविराज श्री गोविन्द चन्द्र रथ ने आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना करने सम्बन्धी एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसका समर्थन स्थानीय बिक्री-केन्द्र के व्यवस्थापक वैद्य वैद्यनाथ त्रिवेदी ने किया। तदनन्तर वैद्य जी श्री शिव प्रसाद जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य का धन्वन्तरि के कालनिर्णय सम्बन्धी प्रश्न पर एक गवेषणापूर्ण भाषण हुआ, जिसकी श्रोताओं ने मुक्त कण्ठ प्रशंसा की। अन्त में मनोनीत अध्यक्ष का सारगर्भित भाषण हुआ। आपने आयुर्वेद के दार्शनिक आधार की विवेचना करते हुए अपने इस विश्वास की घोषणा जोरदार शब्दों में की कि आधुनिक व्याधियों के उपचार में त्रिदोषात्मक पद्धति जितनी सफल सिद्ध हो सकती है, उतनी अन्य चिकित्सा पद्धतियां सफल न होंगी।

वैद्यनाथ औषधियों की गुणवत्ता पर प्रकाश डालते हुए आपने कहा कि वैद्यनाथ प्रतिष्ठान की औषधियों का व्यवहार मैंने स्वयं कई बार किया है और मुझे आशातीत लाभ हुआ है। दृष्टान्त के तौर पर पाण्डु रोग से पीड़ित एक रोगी की चिकित्सा करते समय मैंने वैद्यनाथ की औषध का प्रयोग करके देखा कि पाण्डु रोग से हताश रोगी को इसके सेवन से स्वस्थ होते देर नहीं लगी। आपने वैद्यनाथ प्रतिष्ठान की उन्नति की कामना करते हुए भाषण समाप्त किया।

आगत महानुभावों के प्रति धन्यवाद ज्ञापन और प्रसाद वितरण के बाद सभा समाप्त हुई। प्रस्ताव की प्रतियाँ अधिकारियों और समाचार पत्रों को भेज दी गयी।

भारत के विभिन्न स्थानों पर धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह

रामघाट-काशी

श्री वल्लभराम शालिग्राम साङ्गवेद विद्यालय एवं चिकित्सालय रामघाट-काशी में वैद्यराज पं० रामशङ्कर जी शास्त्री की अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती मनाई गई। श्री गोपालराम जी जानी ने धन्वन्तरि भगवान का षोड़शोपचार पूजन किया। श्री रघुवीर पाठक वैद्य, कैलाशनाथ जेतली वैद्य, ताराशंकर वैद्य, पुरुषोत्तम पाध्याय, वाबूराम शास्त्री, गोमती मिश्र, श्री हरिराम शुक्ल, विश्वनाथ शास्त्री-दातार एवं आंगिरस शर्मा प्रभृत्ति विद्वानों के भाषण हुए। अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री ताराशङ्कर वैद्य ने कहा कि वाराणसी में साङ्गवेद विद्यालय ने ही भारतीय साहित्य और संस्कृति की सर्वाधिक रक्षा की है। यहाँ पर आयुर्वेदिक औषधालय देखकर प्रसन्नता होती है। लेकिन उसके लघुरूप के सामने पाश्चात्य विज्ञान एलोपैथी के विकसित रूप को देखकर चिन्ता होती है कि यहाँ के मालिकों में आयुर्वेद के प्रति अनुराग होते हुए भी ऐसा क्यों हो रहा है यह समझ में नहीं आता। लेकिन यह बात उनकी कीर्ति में चिन्तनीय है। जबतक यहाँ पर आयुर्वेद का सुव्यवस्थित और सुविकसित वृहत् आतुरालय नहीं हो जाता, तब तक प्रगति की दिशा में कदम बढ़ाना सम्भव नहीं। यहाँ के मालिकों से अनुरोध है कि अविलम्ब आयुर्वेदिक आतुरालय और अनुसन्धान शाला की स्थापना करके अपनी वेद-शास्त्र-संरक्षकता को निवाहें।

तत्पश्चात् रसायन विशारद पं० दुर्गादत्त जी शास्त्री ने कहा कि हम आयुर्वेदानुरागियों एवं वैद्यों तथा संस्थाओं से जोरदार अपील करते हैं कि अति शीघ्र इसी काशी नगरी में भगवान धन्वन्तरि मन्दिर का निर्माण हो जहाँ पर स्वयं उनका अवतार हुआ है। गीता में "काशी राजश्च वीर्यवान्" ऐसा उनके लिये संकेत किया है। धन्वन्तरि कूप के नाम से यहाँ पर एक कूप अद्यावधि विद्यमान है जहाँ पर स्नान मात्र से चर्म रोग निर्मूल होता है।

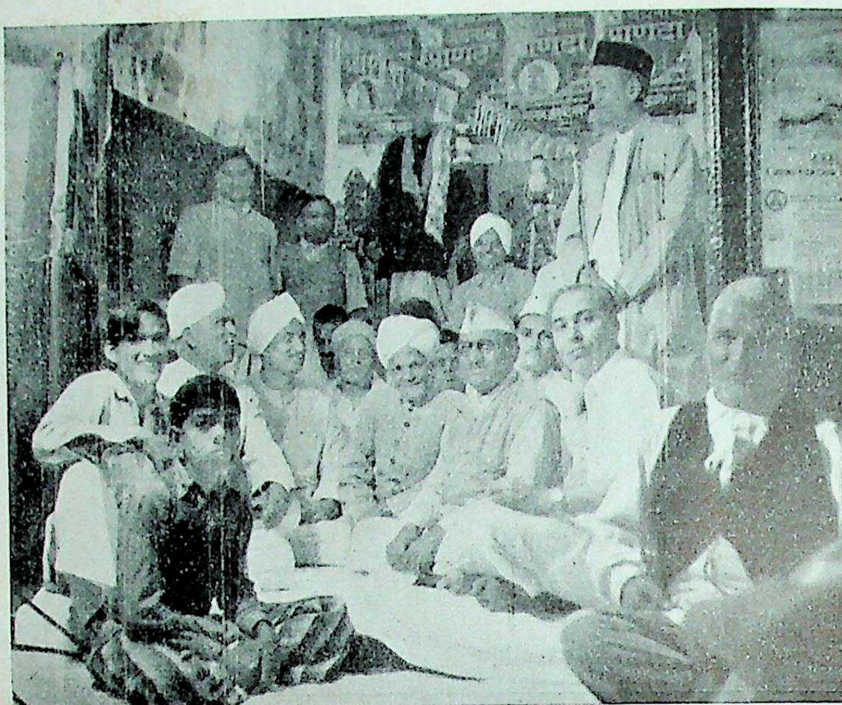
अन्त में सभापति महोदय का भाषण हुआ। आपने धन्वन्तरि त्रयोदशी की तिथि की प्रामाणिकता बतलाते हुए कहा कि "धन्वन्तरि पटल" नामक ग्रन्थ में



धन्वन्तरि जयन्ती पर आसनसोल में अनुष्ठित स्वास्थ्य-समारोह की सभा का दृश्य।



धन्वन्तरि जयन्ती पर यवतमाल में अनुष्ठित स्वास्थ्य-समारोह की सभा का भव्य दृश्य



धन्वन्तरि जयन्ती पर अमृतसर में अनुष्ठित स्वास्थ्य समारोह की सभा का दृश्य



धन्वन्तरि जयन्ती पर उज्जैन में अनुष्ठित स्वास्थ्य-समारोह की सभा का दृश्य

इसका पूर्ण वर्णन है। उसीके आधार पर तथा परम्परा प्राप्त प्रमाण पर यह आधारित है। किन्तु इस समय धन्वन्तरि सम्प्रदाय का प्रायः लोप हो गया है। इसके लिये शल्य-शालाक्य जिज्ञासु चिकित्सकों का परम कर्त्तव्य है कि वे सच्चरित्र तद्विज्ञों द्वारा इसका कर्माभ्यास करें और समन्वय करके उसे वृद्धिगत करें तथा आपस में एकता का भाव बढ़ायें एवं शास्त्रीय ज्ञान-प्राप्ति के लिये कठिन के कठिन तपस्या करें, गुरु सेवा करें। केवल स्वार्थ बुद्धि से कार्य करने से आयुर्वेद की उन्नति नहीं होगी। इसके लिये बलिदान की आवश्यकता है। अपने अतीत गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए सतत चेष्टा करनी होगी। तत्पश्चात् स्थानीय चिकित्सक विश्वनाथ पाण्डेय ने सबको हार्दिक धन्यवाद दिया। माल्यप्रदान एवं प्रसाद वितरण के साथ सभा की कार्यवाही समाप्त हुई।

नेवरना, जिला उन्नाव

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय नेवरना जिला उन्नाव में आयुर्वेद के आदि प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि का जयन्ती समारोह बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। प्रातः काल चिकित्सालय तथा मोहल्ले की सार्वजनिक सफाई करने के उपरान्त मण्डल के प्रमुख वैद्यों ने एक साथ बैठकर बहुसंख्यक रोगियों की रोग-परीक्षा करके उन्हें उचित चिकित्सा विषयक परामर्श दिया। सायंकाल भगवान धन्वन्तरि के षोडषोपचार पूजन तथा हवन के पश्चात् नेवरना के वयोवृद्ध आचार्य श्री शिवदुलारे पाण्डेय की अध्यक्षता में सार्वजनिक सभा हुई जिसमें मण्डल के वैद्यों तथा बहुसंख्यक जनता ने भाग लिया। वैद्यों तथा जनता द्वारा भगवान धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के पश्चात् राजकीय चिकित्सालय के चिकित्सक श्री निवास शुक्ल ने देश में होने वाली बहुसंख्यक बाल-मृत्यु के कारणों पर प्रकाश डालते हुए आयुर्वेद विज्ञान द्वारा उसके प्रतिकार का सुविस्तृत वर्णन किया। सभापति महोदय द्वारा भगवान धन्वन्तरि के अवतार की कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन करने के बाद प्रसाद वितरण के साथ सभा की कार्यवाही पूर्ण हुई।

खरौझा (चकिया) वाराणसी

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय खरौझा (वाराणसी) म आयुर्वेद प्रवर्त्तक भगवान् धन्वन्तरि का जन्मोत्सव पर्व बड़े धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर ग्रामीण जनता तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने समारोह को सफलता पूर्वक सम्पन्न कराने में सहयोग प्रदान किया। सर्व प्रथम मंगल गान और मंत्रोच्चार द्वारा कार्यक्रम शुरू हुआ। तदनन्तर औषधालय के वितरक पं० नामवर शर्मा ने बाहुजनन्दन भगवान धन्वन्तरि तथा उनके कृत्यों पर प्रकाश डालते हुए नागरिकों से अपील की कि वे खरौझा चिकित्सालय से पूर्ण तथा लाभ उठाकर हमें सेवा करने का अवसर दें। प्रसाद वितरण के पश्चात् कार्यक्रम समाप्त हुआ।

चितबड़ागाँव (बलिया)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय चित्तबड़ागाँव में पण्डित जगन्नाथ तिवारी बी० ए० एल० एल० बी० की अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती मनायी गई। प्रथम धन्वन्तरि पूजन के बाद कुमारी मनोरमा सिंह द्वारा धन्वन्तरि-वन्दना हुई। तत्पश्चात् श्री रामजन्म सिंह ने आयुर्वेद पर सारगभित भाषण किया। चिकित्सालय के इन्चार्ज श्री शिवपूजन सिंह ने आयुर्वेद की रचना, उपादेयता एवं स्वस्थ-वृत्त पर प्रकाश डाला।

अध्यक्ष महोदय ने जड़ी-बूटियों द्वारा सुन्दर चिकित्सा पर प्रकाश डाला और विभिन्न तर्कों द्वारा आयुर्वेदिक पद्धति को सर्वोत्तम चिकित्सा प्रणाली सिद्ध किया। अन्त में प्रसाद वितरण के पश्चात् जयन्ती-समारोह की समाप्ति हुई।

गोसाईंगंज (लखनऊ)

धन्वन्तरि जयन्ती का उत्सव राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय गोसाईंगंज जि० लखनऊ में बड़ी धूमधाम से मनाया गया। सर्व प्रथम निमंत्रित जनसमूह के समक्ष प्रातः काल ७ बजे चिकित्सालय भवन में पूजन व हवन हुआ और समस्त ग्राम में प्रभातफेरी के साथ स्वच्छता का कार्यक्रम संपन्न हुआ। शाम को एक आयुर्वेद "कवि गोष्ठी" व "आयुर्वेद विकास प्रदर्शिनी" का उद्घाटन श्री ख्याली राम जी एम० एल० ए० द्वारा संपन्न हुआ। तत्पश्चात् श्री ख्यालीराम जी के सभापतित्व में आयुर्वेद कवि-गोष्ठी हुई जिसमें क्षेत्र के कवियों ने अपनी कविताओं द्वारा आयुर्वेद का बखान किया। "कवि गोष्ठी" में श्रेष्ठतम कवियों को १५) की पुस्तकें पुरस्कार स्वरूप भेंट की गई। तत्पश्चात् स्वास्थ्य प्रवचन हुए जिसमें वक्ताओं ने आयुर्वेद के महत्त्व पर बल दिया।

सरायममरेज (इलाहाबाद)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय सरायममरेज (इलाहाबाद) में श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव बड़े समारोह एवं भव्य रूप से मनाया गया। इस अवसर पर चिकित्सालयाध्यक्ष वैद्य शिव सहाय शास्त्री ने एक विशाल आयुर्वेदिक प्रदर्शिनी का भी आयोजन किया था, जिसमें शिक्षाप्रद चार्ट और माडल्स द्वारा जनता को स्वास्थ्य विषयक आदर्शों से अवगत कराया गया। प्रदर्शिनी का उद्घाटन एवं सभापतित्व क्षेत्रीय विकास अधिकारी श्री राम सनेही कटियार ने किया। श्री मनोजकुमार द्वारा संस्कृत पद्यमय धन्वन्तरि वन्दना के पश्चात् स्थानीय ग्राम सभापति ने झण्डोतोलन किया। श्री पं० राजनारायण शास्त्री एवं ठा० राजेश्वरी प्रताप सिंह ने धन्वन्तरि के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए चिकित्सालय की लोकप्रियता की सराहना की। श्री वन्देहसन कविराज एवं श्री सत्यनारायण जी का वाद्यसहित जय धन्वन्तरि कविता-पाठ अतीव मनोरम रहा। अध्यक्ष पदेन भाषण करते हुए श्री कटियार साहब ने आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति को वैज्ञानिक बताते हुए इस पद्धति पर श्रद्धा एवं विश्वास रखने की जनता को सलाह दी। चिकित्साधिकारी वैद्य शिवसहाय शास्त्री ने आगत जन समूह को धन्यवाद देते हुए धन्वन्तरि जयन्ती की महत्ता एवं वैद्यों को सुसंगठित होकर आयुर्वेद को समुन्नत करने का प्रयास जारी रखने का अनुरोध किया। अन्त में समागत सभी जनों को जलपान कराकर धन्वन्तरि जय-घोष के साथ सभा की कार्यवाही समाप्त की गई।

सूपा (हमीरपुर)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय सूपा जिला हमीरपुर में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। नगर के समस्त प्रतिष्ठित नागरिकों एवं वैद्यों ने भगवान धन्वन्तरि को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। विधिवत हवन पूजन कीर्तन एवं प्रसाद वितरण के पश्चात कई विद्वतापूर्ण सारगर्भित भाषण हुए। स्वास्थ्य सप्ताह मनाकर नगर की सफाई कराई गई एवं ग्रामीणों को स्वस्थ रहने के नियम बतलाये गये। जड़ी बूटी की एक प्रदर्शनी की गई। ग्राम सभा की ओर से स्वस्थ बच्चों को पारितोषिक बाँटा गया।

राजामऊ

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, राजामऊ जिला रायबरेली में धन्वन्तरि जयन्ती उत्सव अत्यन्त उत्साहपूर्वक मनाया गया। कीर्तन, हवन, पूजन हुआ तथा भू० पू० रियासत राजामऊ के कोषाध्यक्ष तथा ब्रांच पोस्टमास्टर राजामऊ श्री शीतलासहाय जी की अध्यक्षता में सभा हुई, जिसमें पं० चन्द्रकिशोर शुक्ल, पं० भवरेश्वर प्रसाद मिश्र अध्यापक तथा पं० शिवशंकर शुक्ल कम्पाउन्डर आदि के भाषण हुए। अध्यक्ष महोदय ने अगले वर्ष अधिक विशाल रूप में समारोह मनाने में सहयोग देने का वचन दिया।

अन्त में श्री बलराम किशोर श्रीवास्तव ने धन्यवाद और प्रसाद वितरण करके कार्यक्रम समाप्त किया।

महाराजगंज (आजमगढ़)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय महाराजगंज, आजमगढ़ में बड़े समारोह के साथ धन्वन्तरि जयन्ती का उत्सव मनाया गया। प्रातः काल प्रभातफेरी के पश्चात पार्श्ववर्ती ग्राम मिसिरपुर के ग्रामवासियों तथा प्रांतीय रक्षा दल के कर्मचारियों के सहयोग से सफाई का कार्य किया गया। तत्पश्चात् वितरक पं० राजेश्वर वाजपेयी के पौरोहित्य में धन्वन्तरि भगवान का विधिपूर्वक पूजन एवं हवनादि कार्यों के साथ प्रसाद वितरण अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। सायंकाल आयुर्वेद प्रेमी सज्जनों के साथ एक भव्य सभा का आयोजन हुआ।

नन्दप्रयाग (गढ़वाल)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय नन्दप्रयाग (गढ़वाल) में श्री गोविन्द प्रसाद नौटियाल की अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती मनाई गई। चिकित्सालय के कर्मचारियों ने चिकित्सालय को खूब सजाया था। सर्वप्रथम भगवान धन्वन्तरि की पूजा वेद की ऋचाओं द्वारा की गई। श्री वालादत्त ज्योतिषी ने मंगलाचरण गान किया। श्री पं० राधाकृष्ण वैष्णव, श्री पं० रामप्रसाद बहुगुना, श्री पं० सुरेन्द्रदत्त पैनोली आयुर्वेदाचार्य ने आयुर्वेद शास्त्र की गुण-गरिमा की सामयिक व्याख्या की। अन्त में सभापति महोदय ने आयुर्वेद पर सुन्दर भाषण दिया। उपरान्त भगवान का प्रसाद वितरण किया गया।

मिरजापुर (मुजफ्फरनगर)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय मिरजापुर, जि० मुजफ्फरनगर में धन्वन्तरि-समारोह बड़े उत्साहपूर्वक मनाया गया। स्वास्थ्योपदेश के साथ-साथ चिकित्सालय के अध्यक्ष श्री राजपाल सिंह ने यहाँ जङ्गल में मिलने वाली

कई बूटियों के गुणों से ग्रामीण जनता को परिचित कराया। महाशय हरफूल सिंह का सुन्दर भजनोपदेश हुआ और मिष्ठान वितरण के साथ सभा समाप्त हुई।

हृषीकेश, (देहरादून)

वैद्य सभा हृषीकेश का वार्षिकोत्सव धन्वन्तरि त्रयोदशी के दिन श्री स्वामी दयानिधि जी आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में भगवान धन्वन्तरि के पूजन के साथ बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। वैद्य मुक्तेश्वर जी तथा वैद्य हरिदत्त जी पन्त की कविताएँ तथा अनेक महानुभावों के भाषण धन्वन्तरि भगवान के प्रादुर्भाव एवं आयुर्वेद की महत्ता के विषय में हुए। छात्रगण एवं साधु समाज तथा अनेक गण्यमान व्यक्तियों ने उत्सव में सम्मिलित होकर लाभ उठाया।

पचेवरा (मिर्जापुर)

पचेवरा राजकीय चिकित्सालय (मिर्जापुर) के तत्वावधान में धनत्रयोदशी के शुभ अवसर पर श्री पं० उमाशंकर उपाध्याय जी के सभापतित्व में श्री धन्वन्तरि जयन्ती समारोह सम्पन्न हुआ। इस शुभ अवसर पर निकट क्षेत्र के प्रायः सभी प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे। प्रमुख वक्ताओं ने आयुर्वेदिक चिकित्सा की प्रधानता को स्पष्ट करते हुए सर्वशक्ति सम्पन्न श्री धन्वन्तरि जी के महत्व पर प्रकाश डाला। जनता के मनोरंजनार्थ श्री भास्करानन्द जी व्यास ने अपने मानस प्रवचन द्वारा उपस्थित सज्जनों के मानस में औदार्य-भावना के प्रतिष्ठापन पर जोर दिया। तदनन्तर सहयोगी सज्जनों को चिकित्साधिकारी (पचेवरा) ने हार्दिक धन्यवाद प्रदान करते हुए प्रसाद वितरण का कार्य सम्पन्न किया।

पोखरीखेत (गढ़वाल)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय पोखरीखेत में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव ग्राम सभा के प्रधान श्री गुमान सिंह जी के सभापतित्व में बड़े धूमधाम के साथ मनाया गया। सर्वप्रथम बेसिक प्रायमरी पाठशाला के छात्रों द्वारा धन्वन्तरि गायन आरम्भ हुआ। इसके बाद खेल कूद, ग्राम की सफाई एवं आयुर्वेद का प्रचार कार्य हुआ। धन्वन्तरि जयन्ती के विषय में चिकित्सक महोदय ने भाषण दिया तथा राजकीय कर्मचारियों ने इस में अपना पूर्ण सहयोग दिया।

योगेन्द्रनगर (हिमाचल प्रदेश)

राजकीय औषधि निर्माण शाला, योगेन्द्रनगर (हिमाचल प्रदेश) में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह व्यवस्थापक निर्माणशाला की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। धन्वन्तरि भगवान के पूजन से कार्यवाही आरम्भ हुई। आयुर्वेदाचार्य डा० रामकृष्ण मिश्र ने धन्वन्तरि भगवान के प्रादुर्भाव व काल-निर्णय पर प्रकाश डाला। तदनन्तर आयुर्वेदाचार्य श्री उमाकान्त रैना ने आयुर्वेद शास्त्र की महत्ता तथा धन्वन्तरि भगवान के विषय में उपस्थित जनों को ज्ञान कराया। तदनन्तर मिष्ठान्न वितरण हुआ। व्यवस्थापक निर्माणशाला श्री पं० धनदेव वैद्य वाचस्पति जी ने आयुर्वेद शास्त्र की महत्ता पर व्याख्यान दिया तथा इस अभूतपूर्व समारोह पर प्रसन्नता प्रकट की।

हरचन्दपुर (रायबरेली)

हरचन्दपुर (रायबरेली) के राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय के तत्वावधान में धन्वन्तरि जयन्ती स्वास्थ्य सप्ताह के रूप में विभिन्न रचनात्मक कार्यों के उल्लासमय वातावरण में विशेष धूमधाम और आकर्षक ढंग से मनाई गई। इस सप्ताह में स्वच्छता आन्दोलन, शिशु प्रदर्शनी, स्वास्थ्य प्रदर्शनी, सार्वजनिक सभा एवं कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया। विभिन्न कार्यक्रमों में हजारों ग्रामीण बन्धुओं, प्रतिष्ठित नागरिकों, जिले के प्रमुख नेताओं एवं अधिकारियों ने भाग लिया। सार्वजनिक सभा की कार्यवाही श्री श्रीधर जी शुक्ल के मंगलाचरण एवं श्री कालिका प्रसाद जी मैठाणी की मंडली के सुमधुर गान से प्रारम्भ हुई। सर्व प्रथम वैद्य इन्चार्ज परमेश्वर घिल्डियाल ने अभ्यागत अतिथियों का स्वागत करते हुए कहा कि सच्चे अर्थों में धन्वन्तरि भगवान की पूजा हम सेवा भाव से जनता-जनार्दन की सेवा कर ही कर सकते हैं। अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान तथा विभागीय उपसंचालक श्री द० अ० कुलकर्णी जी ने कहा कि आयुर्वेद जीवन का विज्ञान है न कि रोग का। स्वदेशी शासन में राष्ट्रभाषा एवं स्वदेशी वेशभूषा की तरह स्वदेशी चिकित्सा विज्ञान भी शीघ्र ही अपना स्थान लेकर रहेगा। आगत वैद्यों एवं हकीमों को सम्बोधित करते हुए उपसंचालक महोदय ने कहा कि आप लोगों पर राष्ट्रीय स्वास्थ्य का गुरुतर भार है। आप लोगों को इसी प्रकार के आयोजनों एवं निःस्वार्थ वृत्ति से जनता की चिकित्सा कर आयुर्वेद के प्रचार एवं प्रसार में योगदान

देना चाहिए। जनता को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि संयमित आहार-विहार के कारण ही हमारे पूर्वज दीर्घजीवी होते थे। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम भी शास्त्र विहित दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या का भलीभाँति पालन कर दीर्घजीवी बनें।

राष्ट्रीय विकास क्षेत्रस्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालयों की स्थिति का सरकार की ओर से स्पष्टीकरण करते हुए उप-संचालक महोदय ने कहा कि इनकी लोकप्रियता को देखते हुए राज्य सरकार ने अब इन चिकित्सालय को स्थानान्तरित न करने का निश्चय किया है। इस सभा में जिन वक्ताओं के भाषण हुए उनमें सर्व श्री राजवैद्य मधुसूदन जी दीक्षित सीतापुर, वैद्यप्रवर प्रतापनारायण जी मिश्र लखनऊ, वैद्य जगन्नाथ प्रसाद जी लखनऊ के अतिरिक्त, जिला बोर्ड के अध्यक्ष श्री रामशंकर जी त्रिपाठी एवं विधान सभा के सदस्य श्री रामेश्वर प्रसाद जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अन्त में केन्द्रस्थ आयुर्वेदाधिकारी श्री नर्मदेश्वर जी पाण्डेय का धन्यवादात्मक भाषण हुआ और सभा की कार्यवाही समाप्त हुई। तदनन्तर अभ्यागत अतिथियों को जलपान कराया गया।

इस अवसर पर आयोजित स्वास्थ्य प्रदर्शनी का जिलाधीश श्री कमीरुद्दीन साहब ने उद्घाटन किया। आगत अतिथियों को वैद्य इन्चार्ज परमेश्वर घिल्डियाल ने प्रदर्शित चार्ट्स एवं मृतिकामयी भव्य मूर्तियों के भावों से अवगत कराया। इस आयोजन तथा चिकित्सालय की सेवाओं पर जिलाधीश महोदय ने संतोष व्यक्त किया। सूचना विभाग रायबरेली की ओर से तीन दिन रात्रि में मनोरंजनात्मक फिल्में दिखाई गई। शिशु प्रदर्शनी एवं मातृपथ प्रदर्शन के कार्यक्रम में एक बड़ी संख्या में मातायें अपने बच्चों को लेकर सम्मिलित हुई। ग्राम सेविकाओं के द्वारा एक सामाजिक अभिनय हुआ। अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए आयुर्वेदाचार्य श्रीमती शान्तादेवी वैद्या (लखनऊ) ने माताओं तथा बहिनों से कहा कि आप आयुर्वेदिक स्वास्थ्य सम्बन्धी दृष्टिकोण अपना कर ही भीम और अर्जुन जैसे महारथियों, बुद्ध एवं महात्मा गाँधी जैसे महामानवों को जन्म देने में समर्थ हो सकती हैं और हमारे बच्चे भी स्वस्थ हो राष्ट्र के होनहार नागरिक हो सकते हैं।

बरूकी (बिजनौर)

राजकीय चिकित्सालय बरूकी (बिजनौर) में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव श्री देवी सहाय शुक्ला की अध्यक्षता में धूमधाम से मनाया गया। जन सहयोग द्वारा जन स्वास्थ्य के लाभार्थ धन्वन्तरि जयन्ती सप्ताह में विविध कार्यक्रम यथा सामूहिक सफाई, मार्ग सफाई, गृह सफाई, व्यायाम, खेल आदि सम्पन्न हुए। हवन, धन्वन्तरि पूजन, जड़ी बूटी प्रदर्शन के पश्चात् सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। प्रारंभ में अध्यक्ष ने संक्षिप्त सारगर्भित भाषण में आज के दिवस की महत्ता बतलाई। श्री सागर दत्त शर्मा बी० आई० एम० एस० ने ब्रह्मचर्य महिमा पर आयुर्वेद के उद्धरण देकर सुन्दर भाषण दिया। श्री बालकृष्ण शर्मा वैद्य ने स्वास्थ्य वृत्त के नियम बताए। कम्पाउण्डर मुन्ना सिंह जी ने तुलसी के विविध गुण बतला कर उसके विविध रूप प्रदर्शित किए। श्री रामेश्वर दयालु शर्मा ने भगवान धन्वन्तरि के अवतरण एवं आहार बिहार के नियमों को अपने आचरण में लाकर जयन्ती के उद्देश्य को सफल बनाने पर बल दिया। अन्त में प्रसाद वितरण कर सभा समाप्त हुई।

जरूपुरा (बाँदा)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय जरूपुरा जिला बांदा में चिकित्सक पं० श्री सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी के नेतृत्व में भगवान धन्वन्तरि जयन्ती सप्ताह बड़े सजधज के साथ मनाया गया। सर्वप्रथम भगवान धन्वन्तरि का पूजन बड़े समारोह के साथ हुआ। श्री पं० रामपाल अवस्थी वैद्य जी की अध्यक्षता में यह कार्य सम्पादन हुआ। अन्य ग्राम वासी व स्थानीय जनता ने इस उत्सव के कार्य में पूर्ण सहयोग दिया एवं प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री रामलखन जी ने अपनी सुमधुर रागिनी द्वारा जनता को आह्लादित कर दिया। इस समारोह में स्थानीय वैद्यों ने भी सम्मिलित होकर आयुर्वेद के प्रचार व प्रसार के लिये महत्त्व पूर्ण भाषण दिये। इसके उपरान्त जनता द्वारा गायन कीर्तन बड़ी सुमधुर ध्वनि से हुआ। उपस्थित जनता ने आयुर्वेदिक चिकित्सा को अपने स्वास्थ्य लाभ का श्रेयस्कर मार्ग समझ कर आयुर्वेदिक चिकित्सा से आजीवन लाभ ग्रहण करने की शपथ की। जनता ने इस समारोह में आकर जैसा परिचय दिया इससे विदित होता है कि आयुर्वेद के सच्चे भक्त हैं। इस तरह सभा की कार्यवाही रात्रि को प्रसाद वितरणोपरान्त समाप्त की गई।

कालिकानगर (वाराणसी)

राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय कोइरौना (कालिकानगर) जिला वाराणसी, उत्तर प्रदेश में वैद्य श्री ब्रजनन्दन

प्रसाद की प्रेरणा से श्री धन्वन्तरि जयन्ती उत्सव कालिका-नगर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री मुरलीधर पाण्डेय की अध्यक्षता में बड़ी धूमधाम से मनाया गया। आसपास के ग्रामों की जनता, क्षेत्र के सामाजिक कार्यकर्त्ता, पंचायत विभाग के कर्मचारी तथा प्रतिष्ठित नागरिक बड़ी संख्या में उपस्थित थे। कार्यक्रम कीर्त्तन से प्रारम्भ हुआ। वैदिक मंत्रों से विधिवत पूजन, हवन के पश्चात् सर्वप्रथम वैद्य जी ने समारोह की महत्ता पर प्रकाश डाला। अन्त में अध्यक्ष जी ने भगवान धन्वन्तरि जी की देन पर विस्तृत प्रकाश डाला। उपस्थित जन समूह ने भगवान धन्वन्तरि एवं आयुर्वेद के जयनिनाद के साथ आयुर्वेद निर्दिष्ट स्वस्थ वृत एवं सद्वृत के पालन करने की प्रतिज्ञा की। अन्त में प्रसाद वितरण के पश्चात् वैद्य जी ने सभी को धन्यवाद दिया और आयुर्वेद के प्रति अधिक निष्ठा रखने की अपील की।

देवरिया

धुरन्धर फार्मेसी के कार्यालय में श्री भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती अतीव प्रोत्साहित ढंग से मनायी गयी। श्री सत्यनारायण शास्त्री एम० ए० की अध्यक्षता में पूजन हवन एवं श्रद्धाञ्जलि समर्पण वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। धन्वन्तरि जयन्ती को राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाया जाना चाहिए और एतदर्थ राष्ट्र व्यापी चेतना जाग्रत करने के लिए फार्मेसी के अध्यक्ष विद्याधर शुक्ल बी० ए० ने समागत जनता को सम्बोधित किया। प्रसाद वितरण के पश्चात् आयोजन समाप्त किया गया।

मडावरा

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय मडावरा में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव बड़े ही धूमधाम के साथ मनाया गया। वैद्य श्री भोजाराम मिश्र के द्वारा भगवान धन्वन्तरि के जन्म एवं आयुर्वेद के सम्बन्ध में नेताओं के संदेश सुनाये गये। श्री लक्ष्मण प्रसाद जी ने आयुर्वेद के बारे में व्याख्यान दिया। श्री भगवान दास जी ने सदाचार के बारे में व्याख्यान दिया। अन्त में भगवान का कीर्तन किया गया। पूजा करने के बाद प्रसाद वितरण कर महोत्सव को समाप्त किया गया।

खरेला (हमीरपुर)

श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में ग्राम खरेला में एक सप्ताह पहिले से स्वास्थ्य सप्ताह मनाया गया। राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय खरेला (हमीरपुर) में भगवान धन्वन्तरि का विधिवत् पूजन अर्चन हुआ। फिर ग्राम के सम्मानित व्यक्तियों एवं वैद्यों की एक विशाल सभा हुई, जिसका सभापतित्व वैद्य श्री सुदर्शन सिंह जी से किया। इस सभा में उपस्थित विद्वानों ने ग्रामीण स्वास्थ्य, विश्व-मानव कल्याण, स्वास्थ्य सप्ताह एवं वैद्यों के संगठन जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर सारगर्भित भाषण दिए। श्री ठा० रणवीर सिंह जी द्वारा भगवान धन्वन्तरि के जीवन पर एक सुन्दर कविता पढ़ी गई। उन्होंने धन्वन्तरि जी को महान मानव बतलाते हुए मानवता के संरक्षण पर जोर दिया। स्थानीय हाई स्कूल के प्रिंसिपल महोदय ने वैद्यों में प्रविष्ट दुर्गुणों पर प्रकाश डाला। चिकित्सालय के वैद्य जी ने वर्बरता की ओर उन्मुख मानव भावनाओं को सेवा और कल्याण की ओर मोड़ सकने में चिकित्सा विज्ञान को उपयोगी बतलाया और वैद्यों एवं चिकित्सक समाज के पारस्परिक सम्बन्धों को दृढ़तर बनाने के लिए आयुर्वेद में पंचशील के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। अन्य भी कई विद्वानों द्वारा उपयोगी एवं सारगर्भित भाषण हुए जिनका प्रभाव उपस्थित जन समुदाय पर अवश्य ही गहरा पड़ा। वैद्य जी द्वारा आभार प्रदर्शन एवं प्रसाद वितरण के पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

मधुवन (आजमगढ़)

श्री शंकर आरोग्य निकेतन, पाँती, मधुवन, आजमगढ़ में धन्वन्तरि जयन्ती श्री पं० धरणीधरजी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। कवि सम्मेलन में श्री पं० हरिशंकर उपाध्याय भट्ट, श्री श्याम जी देवरिया, श्री रामप्रसाद जी बलिया, श्री शतानन्द जी 'विरही' मऊ, श्री श्रीकान्त पाण्डेय प्रधानाचार्य प्रभृति कवियों ने अपनी अपनी कविताएँ सुनायीं। आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। अन्त में आगत सज्जनों को प्रीतिभोज दिया गया। श्री धन्वन्तरि जी की झाँकी अत्यन्त सुन्दर ढंग से सजाई गई थी। सभा में श्री धन्वन्तरि जी के महत्त्व एवं आयुर्वेद की महत्ता पर भी विद्वानों के सारगर्भित प्रवचन हुए।

वाराणसी

श्री अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय वाराणसी में धन्वन्तरि जयन्ती उत्सव राष्ट्रपति चिकित्सक श्री श्रीधर शर्मा वैद्य की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। श्री अमरनाथ जी जेतली कर्मकाण्डी एवं श्री शम्भूनाथ बुचके द्वारा पूजन मंगलाचरण

के पश्चात् प्रधानाचार्य श्री ताराशंकर वैद्य ने स्वागत भाषण किया। श्री कैलाशनाथ जेतली, श्री दामोदर प्रसाद पाण्डेय, श्री विश्वनाथ पाण्डेय, श्री त्रिवेणी प्रसाद बरनवाल, श्री शिवविनायक मिश्र एवं श्री ब्रजमोहन दीक्षित ने श्री धन्वन्तरि जयन्ती के रहस्य, भगवान धन्वन्तरि के आदर्शों एवं उनके साहित्य पर भरपूर प्रकाश डाला। सभापति पद से बोलते हुए श्री श्रीधर शर्मा ने कहा कि धन्वन्तरि जयन्ती मनाने का उद्देश्य तबतक पूर्ण नहीं होगा जबतक कि वैद्यवृन्द भगवान धन्वन्तरि द्वारा प्रवर्तित शल्य-प्रणाली (सर्जरी) को पूर्णतया अपनाकर उसके द्वारा जनता की सेवा नहीं करता। यह प्रणाली सर्जरी के उन्नतिशील युग में आज भी सर्वश्रेष्ठ आसन पर विराजमान है। इसे बड़े-बड़े विदेशी सर्जन भी मुक्तकण्ठ हो स्वीकार कर रहे हैं। प्लास्टिक सर्जरी, मोतियाबिंद का आपरेशन, पथरी का का आपरेशन आदि इसी प्रणाली की देन हैं। अन्त में श्री ब्रजजीवन दास ने सबको धन्यवाद दिया।

दिल्ली एम० पी० क्लब

बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा संचालित एम० पी० क्लब आयुर्वेदीय औषधालय, नार्थ एवेन्यू, न्यू दिल्ली के विशाल हाल में केन्द्रीय सरकार के उपरक्षा मन्त्री श्री के० रघुरामय्या की अध्यक्षता में धन्वन्तरि-जयन्ती उत्सव मनाया गया। इस में संसद सदस्य क्षेत्र के एम० पी० सज्जनों के अतिरिक्त राष्ट्रपति भवन स्टेट के कर्मचारी भी अधिक संख्या में उपस्थित थे। उपरक्षा मन्त्रीजी का स्वागत श्री बी० के० मुखर्जी एम० पी० तथा उक्त औषधालय के प्रधान वैद्य श्री राजवैद्य सुधन्वा ने किया। श्री बी० के० मुखर्जी ने अध्यक्ष का परिचय कराते हुए कहा कि श्री के० रघुरामय्या आयुर्वेद तथा भारतीय संस्कृति भक्त हैं। आप संसद के पुराने सदस्य भी रहे हैं और सदा आयुर्वेद विज्ञान की हितकामना चाहते हैं।

सरदार गुरुबचन सिंहजी की संगीत पार्टी के मधुर संगीत से उत्सव का श्रीगणेश हुआ। राजवैद्य सुधन्वाजी ने उपस्थित जनता को धन्वन्तरि-जयन्ती के महत्व से अवगत कराते हुए बताया कि भगवान धन्वन्तरि वैद्यक-विज्ञान के आदि प्रवर्त्तक थे। इन्होंने इन्द्रदेव से संसार के रोग-पीड़ित चराचर जीवित प्राणियों के कल्याण-हेतु आयुर्वेद-शास्त्र को सर्वप्रथम सीखा और भारद्वाज, आत्रेय, भेल, पराशर, क्षतुकर्ण, चरक, सुश्रुत आदि ऋषियों को इस विज्ञान का शिक्षण कराया। कालान्तर में भारतीय ऋषियों द्वारा आयुर्वेद विज्ञान के शल्य, शालाक्य, प्रसूति-तन्त्र, कौमार भृत्य, कायचिकित्सा, विषतन्त्र, भूत विद्या, रसायन एवं बाजीकरण आदि भिन्न-भिन्न अंगों पर प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे गए। सुदूरभूत में भारत देश में आयुर्वेद विज्ञान की सर्वांगीन उन्नति थी। इस देश से अरब, बरमा, लंका तथा चीन आदि देशों ने चिकित्सा विज्ञान सीखा। भारतीय वैद्य अरब के खलीफों तथा सुलतानों के दरबारों के शाही हकीम (राजवैद्य) हुआ करते थे। अरब देश से यूनान और वहाँ से पश्चिम के देशों ने चिकित्सा शास्त्र को सीखा। यह विज्ञान कालान्तर में पुनः एलोपैथिक विज्ञान के नाम से भारत में लौटा। पुराणों में एक आलंकारिक वर्णन द्वारा भगवान धन्वन्तरि का समुद्र-मंथन से अमृत-कलश, शंख, हरड़ और वैद्यक-शास्त्र हाथ में ले कर अवतरित होने का प्रसंग आया है। शंख और हरड़ संसार में अनेक रोगों को दूर करते हैं। शंख जहाँ केलशियम का प्रतीक है वहाँ हरड़ औषधिवर्ग का प्रतिनिधि है। यह दोनों जीवनोपयोगी द्रव्य हैं। भारतीय घरों में शंख और कौड़ियों का व्यवहार त्योहारों और गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करनेवाले वर-वधू के लिए जीवनोपयोगी मांगलिक पदार्थ के रूप में किया जाता है। पीली कौड़ी की भस्म का गेहूँ के आटे में मिला कर दैनिक सेवन करने से स्वास्थ्यलाभ होता है। जच्चा और बच्चा के लिए यह प्रयोग अस्थियों को बल और पुष्टि देता है। शरीर में आयोडीन और कैलशियम को संतुलित रखता है। वैद्यजी ने इस उत्सव की अन्य उपयोगिताओं का दिग्दर्शन कराते हुए उपस्थित जनता का स्वागत किया। आपके भाषण के बाद प्रोफेसर श्री जमुनादास महेन्द्रा तथा तिब्बिया कालेज दिल्ली के यशस्वी उपाध्याय श्री वैद्य महावीर प्रसाद पाण्डे जी के सारगर्भित लिखित व्याख्यान आयुर्वेद की उपयोगिता दर्शक हुए। जनता ने इन्हें बहुत पसंद किया।

इसके बाद श्री के० रघुरामय्या उपरक्षा मन्त्री ने अपने भाषण में इस उत्सव के आयोजकों को धन्यवाद देते हुए बताया कि धन्वन्तरिजी आयुर्वेद शास्त्र के आदि प्रवर्त्तक थे—आज के दिन भूलोक पर इनका अवतार हुआ। भारत में भिन्न-भिन्न प्रान्तों में प्रचलित चिकित्सा-पद्धतियाँ आयुर्वेद-शास्त्र के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। देश के सभी

वैद्य श्री धन्वन्तरि को आदिगुरु मानते और पूजते हैं। आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति, जो मालाबार प्रान्त में कल्प-चिकित्सा के रूप में प्रचलित है, अतीव उपयोगी एवं स्थिर लाभप्रद है। वक्ता ने अपने वैयक्तिक अनुभव से बताया कि उन्हें इसके द्वारा विशेष लाभ मिला है। आयुर्वेद-विज्ञान एक राष्ट्रीय चिकित्सा-विज्ञान है। इसके द्वारा देश की गरीब जनता को चिरकाल से स्थाई, स्थिर और सफल लाभ मिला है। यह एक वैज्ञानिक चिकित्सा-पद्धति रही है। रोगों की प्रकृति, देश-काल जनित प्रभाव, स्थानीय वातावरण और आहार-विहार जनित प्रत्यक्ष लक्षणों को जान कर इनका समन्वय करते हुए औषधि दे कर रोग दूर करने की आयुर्वेद-शास्त्र की क्षमता अपनी एक विशेषता रखती है। यह क्षमता संसार की दूसरी पद्धतियों में सुलभ नहीं है। हमारे गरीब देश की प्रजा के लिए महंगा एवं इन्जेक्शन प्रधान एलोपैथिक इलाज कभी भी स्वीकार्य नहीं हो सकता। देश के लिए देशी इलाज ही अनुकूल एवं ग्राह्य है। आपने आगे घोषित किया कि उन्हें इस बात का पूर्ण अभिमान तथा गौरव है कि आयुर्वेद-इलाज देश के लिए राज्यमान्यता का पूर्ण अधिकारी है। आसन तथा प्राणायाम का प्रतिदिन का अभ्यास भी आयुर्वेद-शास्त्र प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए बताता है। यह भी उपयोगी मार्ग है। इससे अभ्यासी को शक्ति, बल एवं दीर्घायु सुलभ होती है। देश की दिव्य औषधियाँ अनेक विदेशों में जा रही है। सर्पगन्धा (रोलफिया सरपेनटाईना) हमारे देश की दिव्य वनस्पति है जो चिरकाल से वैद्यों द्वारा व्यवहार में सफलतापूर्वक बरती जाती रही है। आज अमेरिका और यूरोप के चिकित्सक रक्तचाप को दूर करके इस औषधि से पूरा-पूरा लाभ उठा रहे हैं। अन्तरराष्ट्रीय फारमेकोपिया में इस औषधि का समावेश है। भारत सरकार को देशहिताय और बहुजन-सुखाय आयुर्वेद-विज्ञान को पूरी-पूरी राजमान्यता दे कर आगे प्रगतिशील बनाना चाहिए। वक्ता ने श्री वैद्यनाथ भवन के प्रबन्धकों को स्वास्थ्य-रक्षा केन्द्र तथा आयुर्वेदीय औषधालय खोलने तथा उसे संचालित रखने के लिए अतीव धन्यवाद देते हुए अपने भाषण को समाप्त किया

श्री चौधरी कन्हैयालाल बालमीकि एम० पी० द्वारा रचित श्री धन्वन्तरि-जयन्ती सम्बन्धी हिन्दी कविता सुनाई गई। तदनन्तर प्रसिद्ध योगी श्री स्वामी देवमूर्त्ति द्वारा स्वास्थ्य रक्षा के यौगिक आसनों, नेति, धौति एवं न्योलि क्रियाओं का प्रदर्शन किया गया। श्री वैद्यनाथ भवन द्वारा प्रस्तुत साहित्य का वितरण एवं प्रसाद के साथ यह कार्यक्रम समाप्त किया गया। इस अवसर पर एक मनोरंजक स्वास्थ्य-फिल्म का प्रदर्शन भी किया रखा गया। सभा की समाप्ति के बाद श्री कविराज प्रताप सिंहजी द्वारा क्लब में चालित वाचनालय के लिए आयुर्वेदीय ग्रन्थों का दान घोषित किया गया जो एम० पी० क्लब की ओर से श्री बी० के० मुखर्जी एम० पी० ने धन्यवादपूर्वक ग्रहण किया और कविराज जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

दिल्ली—सब्जीमण्डी

देहली म्युनिसिपल आयुर्वेदिक तथा यूनानी औषधालयों के अध्यक्षों के एकमात्र संगठन देहली म्युनिसिपल हकीम-वैद्य समिति के तत्वावधान में श्री धन्वन्तरि-जयन्ती महोत्सव ता० २१ अक्टूबर को अपराह्न २॥ बजे से समाज सुधार केन्द्र क्वीन्स रोड में बड़े समारोह-पूर्वक मनाया गया। महोत्सव की अध्यक्षता देहली नगरपालिका के प्रधान श्री रामनिवासजी अग्रवाल ने की। सर्वप्रथम धन्वन्तरि-जयन्ती के महत्व को प्रकाश में लाते हुए समिति के कार्यक्रम पर संक्षिप्त भाषण हुआ। तदनन्तर अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए श्री रामनिवासजी अग्रवाल ने उपस्थित वैद्य तथा हकीमों से आग्रह किया कि भविष्य में इस महोत्सव को संक्षिप्त रूप में न मना कर धन्वन्तरि सप्ताह के रूप में मनावें। सारे देहली नगर के वैद्यों तथा हकीमों को आमंत्रित करके इस पुनीत अवसर पर विभिन्न रोगों पर निबन्ध पढ़े जावें। अध्यक्ष महोदय ने आश्वासन दिया कि देहली नगरपालिका ऐसे उत्सवों का संरक्षण करने के लिए प्रस्तुत है और वह ऐसे सार्वजनिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण कार्यों को संरक्षण दे भी रही है।

जोधपुर

श्री मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा द्वारा इस वर्ष जोधपुर नगर में धन्वन्तरि महोत्सव का आयोजन बड़े पैमाने पर मनाया गया। जिलाधीश श्रीमान् आर० डी० माथुर साहब की अध्यक्षता में महोत्सव मनाया गया। सर्वप्रथम आयुर्वेदध्वज फहराया गया। इसके पश्चात् माननीय [illegible]चन्द्रजी भट्टारकोपाध्याय चाणोद गुरांसा के हाथों धन्वन्तरि अर्चना की गई। इसके पश्चात्

जोधपुर के प्रसिद्ध गायक इमामुद्दीन ने तथा प्रज्ञाचक्षु मोहनलालजी ने सामयिक वन्दना गीत गाये। सर्वप्रथम कविराज माधवप्रसादजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य सभापति राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन ने अपने भाषण में इस उत्सव का विशेष महत्व बताया। आपने बताया कि इस दिन का लेखा-जोखा सभी वैद्यों को करना चाहिए। इसके पश्चात् कविराज माधवप्रसादजी ने अपने ओजस्वी भाषण में आयुर्वेद की विकट परिस्थिति को बताते हुए इसके लिए रचनात्मक प्रवृत्तियों की ओर अधिक बल देने का आग्रह किया। जिला वैद्य सभा बाड़मेर के सभापति श्री ऋषिदेवजी सोलंकी भिषगाचार्य ने धन्वन्तरि-जयन्ती पर सभी वैद्यों को शल्य विद्या में पारंगतता प्राप्त करने को प्रतिज्ञाबद्ध हो जाने का आग्रह किया। आपने संचालक आयुर्वेद विभाग द्वारा केन्द्रीय आयुर्वेद चिकित्सालय जोधपुर के प्रगतिशील कार्यों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला। अन्त में प्रचारिणी सभा के सभापति श्री परमानन्द शर्मा साहित्या-युर्वेदाचार्य साहित्यरत्न, भिषग्वर ने बताया कि आज जिन महापुरुष की जयन्ती मना रहे हैं उसके विषय में ऐतिहासिक चर्चा आज अत्यन्त आवश्यक रहेगी। आपने भारद्वाज के समकालीन धन्वन्तरि को ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध कर बताया कि यह सर्जरी विद्या के महान् आचार्य थे तथा इन्हीं की सिद्धहस्तता से सभी शल्य चिकित्सक धन्वन्तरि कहलाते थे।

जिलाधीश महोदय ने रूसी चांद की ओर इंगित करते हुए वैद्यों से आग्रह किया कि अनुसन्धान की दौड़ में पीछे रहना उचित नहीं। चिकित्सा विज्ञान में प्रेक्टिकल कार्य का महत्व अधिक है। अतः द्वितीय पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत रिसर्च योजना को आयुर्वेदवालों को पूरा करना उचित है। आपने बताया कि प्रदेश वैद्य सम्मेलन ने एक पत्र द्वारा माँग की है कि विकास खण्डों में आयुर्वेद के भी नुमायन्दे हों। मैं भी इस बात से सहमत हूं तथा शीघ्र ही अपने अन्तर्गत विकास खण्डों में इस कमी की पूर्ति करूँगा।

अन्त में वयोवृद्ध गुरांसा ने जिलाधीश का हार्दिक स्वागत करते हुए नवयुवक वैद्यों के लिये मंगल-कामना व्यक्त की। प्रधान मन्त्री राजवैद्य सत्यदेव ने समागत सभी सज्जनों को धन्यवाद देने के पश्चात् सभा की कार्यवाही समाप्त की।

इसके पश्चात् स्थानीय केन्द्रीय चिकित्सालय में श्रीमान् ऋषिदेवजी सोलंकी भिषगाचार्य निरीक्षक आयुर्वेद विभाग द्वारा तथा वैद्यनाथ शाखा सराफा बाजार में एवं ऊंझा फार्मेसी के सोल एजेण्ट विनोद मेडिकल स्टोर में विशेष रूप से अत्यन्त सुन्दर आयोजन हुए, जिसमें विद्वान् वैद्यों के भाषण, कलात्मक नृत्य, रचनात्मक कार्यक्रमों के प्रस्तावादि पास हुए।

बीकानेर

आयुर्वेद प्रवर्तक श्री धन्वन्तरि भगवान को श्रद्धांजलि समर्पण करने के लिये श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में श्री सनातन धर्म आयुर्वेद महाविद्यालय, बीकानेर के श्री धन्वन्तरि मन्दिर में स्थानीय वैद्यों एवं प्रमुख नागरिकों की एक सभा राजवैद्य जीवनरामजी व्यास के सभापतित्व में सम्पन्न हुई।

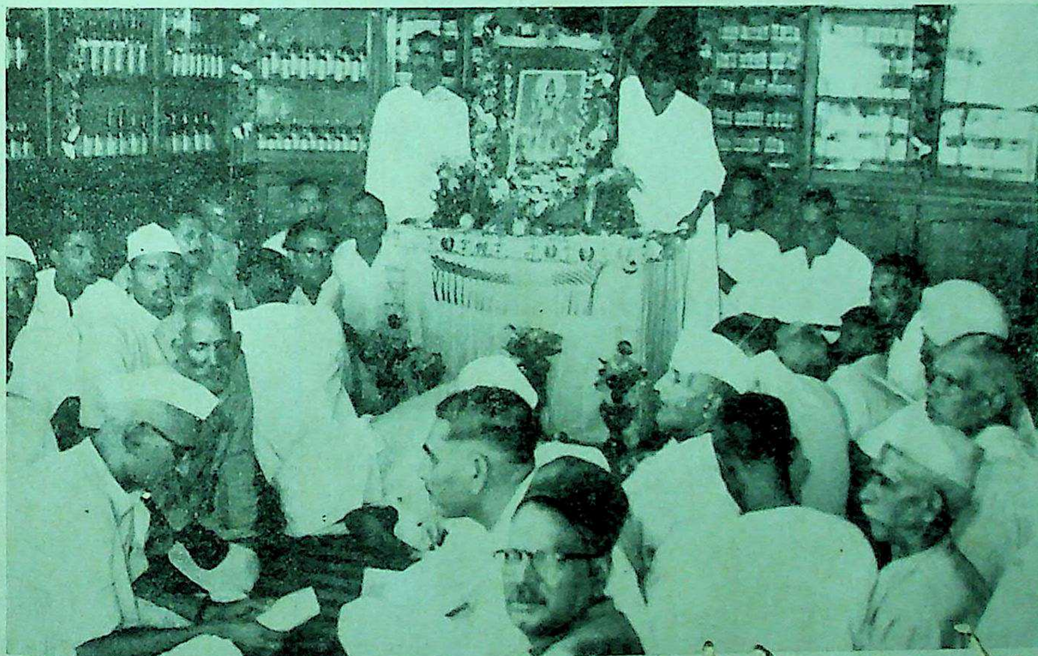
विद्यालय के प्रिन्सिपल वैद्य विद्याधर शर्मा ने समागत महानुभावों का स्वागत करते हुए कहा कि आयुर्वेद में रचनात्मक कार्यों से ही वैशिष्ट्य उत्पन्न होगा। रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हुए आपने कहा कि विद्यालय ने २५ शय्याओं की एक आरोग्यशाला स्थापित की है। इस अवसर पर संस्था के संस्थापक और संचालक वैद्य पं० दीनानाथजी व्यास के कार्यों की समीक्षा करते हुए आपने वैद्य महानुभावों से विशेष प्रार्थना की कि आप इस विद्यालय एवं नूतन आरोग्यशाला को सक्रिय सहयोग प्रदान करते हुए उनके हाथों को सुदृढ़ बनाने की कृपा करें।

आयुर्वेद विभाग के निरीक्षक वैद्य श्री गयाप्रसादजी शर्मा ने अपने भाषण में कहा कि विगत पीलिया तथा इन्फ्लुएंजा रोगों ने आयुर्वेद के महत्व को बढ़ाया है। हमें आयुर्वेद चिकित्सा व्यवस्था में परिवर्तन करना चाहिये। आधुनिक चिकित्सा की तरह हमें भी आयुर्वेद में विशेषज्ञ उत्पन्न करने होंगे। वैद्यों को अपनी चिकित्सा में सेवा भावना को यथापूर्व बनाये रखने पर आपने बल दिया। आयुर्वेद में नवीन विषयों का समावेश किया जाना भी अत्यन्त आवश्यक है।

बीकानेर के प्रमुख वकील आचार्य श्री रामनारायणजी ने कहा कि भगवान धन्वन्तरि को शल्य शास्त्र के आचार्य के रूप में नहीं अपितु आयुर्वेद प्रवर्तक के रूप में मानना चाहिये। आधुनिक चिकित्सा-पद्धति चाहे कितनी ही

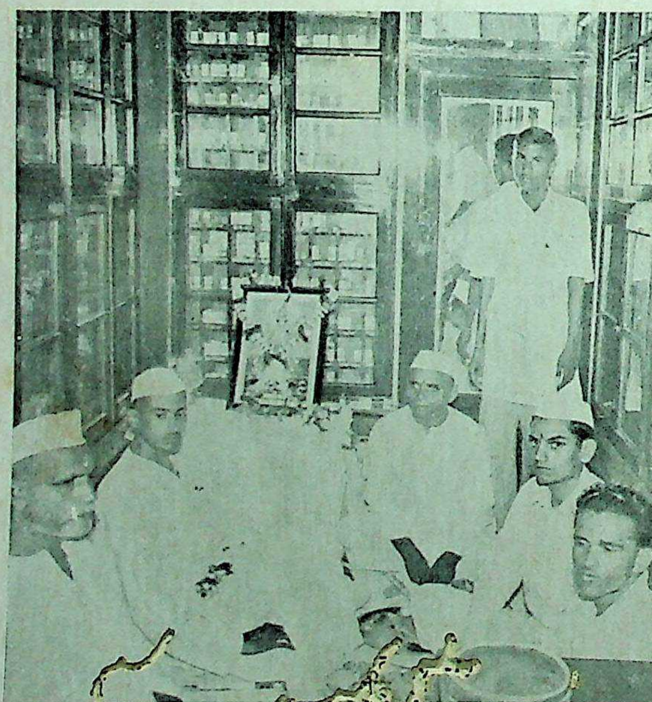


श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर रायगढ़ में अनुष्ठित स्वास्थ्यदिवस की सभा का दृश्य ।



श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर खड़गपुर में अनुष्ठित स्वास्थ्यदि[illegible] सभा का भव्य दृश्य ।

श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर मेरठ में अनुष्ठित स्वास्थ्यदिवस की सभा का भव्य दृश्य।



श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर [illegible] आयुर्वेदिक स्टोर्स, [illegible]



श्री धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर बेगूसराय में अनुष्ठित स्वास्थ्यदिवस की सभा का दृश्य।

आकर्षक क्यों न हो वह आध्यात्मिक ज्ञान पर आश्रित आयुर्वेद का कभी मुकाबला नहीं कर सकती।

सभापतिजी ने जयन्तियों की व्याख्या करते हुए कहा कि मानव अपनी महत्वाकांक्षाओं को जयन्ती के रूप में प्रकट करता है। हमें आयुर्वेद के अन्य आचार्यों की जयन्तियाँ भी मनानी चाहिये। बातों की अपेक्षा काम की तरफ विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। आपने विद्यालय की नूतन आरोग्य शाला को हर प्रकार का सक्रिय सहयोग दिये जाने पर बल दिया।

अन्त में सभापतिजी एवं समागत महानुभावों को धन्यवाद दिया और सबने सामूहिक पूजन में भाग ले कर भगवान के प्रसाद स्वरूप आयोजित अल्पाहार में योगदान दिया।

पिलानी

पिलानी स्थित बिरला आयुर्वेद विभाग की ओर से श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव बड़े उत्साह से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर 'आयुर्वेद प्रदर्शनी' का भी आयोजन किया गया था। प्रदर्शनी के सामने ही एक ओर धन्वन्तरि-द्वार बनाया गया था तथा दूसरी ओर भगवान धन्वन्तरि की झाँकी और नाटक के लिये रंगमंच बनाया गया था। कुल प्रदर्शनी कई भागों में बँटी हुई थी। बिरला आयुर्वेद ऋषिअर्चन द्वारा प्रस्तुत 'कंद मूल खंड' में लोगों ने बड़ी दिलचस्पी ली। इसमें हिमालय पर्वत-माला के अनेक ताजा कन्द-मूल थे। प्रो० के० एम० टण्डन के नेतृत्व में एक दल लोहार्गल पर्वत से जड़ी-बूटियाँ लाया था। इनमें एक कन्द वह भी था जो कि श्री टण्डन ने एक साधु से पहचानना सीखा था। हरिद्वार, ऋषिकेश और देहरादून वनस्पति-यात्रा करनेवाले दूसरे दल ने अनेक जहरीले और पौष्टिक ताजा कन्द-मूल प्रदर्शनी में रखे थे। भगवान धन्वन्तरि को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए आचार्य श्री नित्यानन्द ने कहा कि आयुर्वेद हजारों वर्षों से मानव जाति की अमूल्य सेवा करता आ रहा है। स्वास्थ्य के इस आदिदेव ने जिन विचारों का प्रतिपादन किया था, वे आज भी अपने सुदृढ़ आधार के कारण नवीन हैं। भारतीय वैद्यकशास्त्र अपने गुणों के कारण अमर रहेगा। आयुर्वेद में रोग-निवारण ही नहीं है, किन्तु स्वस्थ आदमी को अधिक स्वस्थ बनाये रखने के तरीकों का भी वर्णन है। इनका आधुनिक ढंग से प्रचार वांछनीय है। आज तो दवाओं की बाढ़-सी आ गई है और टॉनिक आदि के द्वारा कृत्रिम रोग से बच कर दूसरे अनेक रोगों के शिकार बनते जा रहे हैं। स्वस्थों की स्वास्थ्य रक्षा पर किसी का ध्यान नहीं है। इसी नीति के कारण राष्ट्र का स्वास्थ्य जर्जर होता जा रहा है। प्रदर्शनी का उद्घाटन श्री बनारसीलालजी रूंगटा ने किया तथा मनोरंजक कार्यक्रम की अध्यक्षता वैद्यराज श्री विरंचीलालजी शर्मा आयुर्वेदावाचस्पति ने की।

चुरू

श्री धन्वन्तरि-जयन्ती के अवसर पर चुरू जिला वैद्य-सभा द्वारा आयोजित स्वास्थ्य सप्ताह अत्यन्त समारोह के साथ मनाया गया। जिले के प्रसिद्ध नगरों सरदारशहर, सुजानगढ़, रतनगढ़, चुरू आदि में यह आयोजन शानदार रहा। इस समारोह में वैद्यों की सेवा व त्याग की भावना सर्वतोभावेन दृष्टिगोचर हो रही थी। चिकित्सा के अभावग्रस्त क्षेत्रों देहातों में वैद्य लोग विभिन्न टोलियों के रूप में निःस्वार्थ भाव से गरीब व असहाय रोगियों की निदान व चिकित्सा की व्यवस्था निःशुल्क बड़े प्रेम से कर रहे थे और उन्हें उनकी भाषा में स्वस्थ रहने के नियम बतला रहे थे। इसी प्रकार जिले के प्रमुख नगरों में भी सार्वजनिक सभाओं का आयोजन कर आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त एवं सद्वृत्त का सुन्दर प्रचार किया जा रहा था। सामूहिक रूप से एकत्रित हो कर जटिल एवं दुःसाध्य रोगियों की निःशुल्क निदान व चिकित्सा की व्यवस्था की जा रही थी। विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में जा कर नौनिहाल बच्चों के स्वास्थ्य का परीक्षण कर उनके अभिभावकों तथा अध्यापकों को पूरी रिपोर्ट दी जा रही थी। शिक्षण संस्थाओं में विक्रय होने वाली चाय-बरफ आदि की बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाने की सम्मति दी जा रही थी। श्री धन्वन्तरि त्रयोदशी का दिन सप्ताह का अन्तिम दिवस था। इस दिन सभी वैद्य एकत्रित हो कर भगवान धन्वन्तरि का पूजन व वन्दन कर प्रसाद पा रहे थे। परस्पर प्रेम-प्रदर्शन हो रहा था। सौभाग्य से इसी सप्ताह में राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन के अध्यक्ष कविराज माधवप्रसादजी तथा प्रधान मन्त्री परमानन्दजी चुरू जिला का दौरा करने पधारे थे। आपका स्थान-स्थान पर सुन्दर स्वागत किया गया। पुष्पमालाएँ पहनाई गईं। वैद्यों की ओर से विचार-गोष्ठियाँ तथा पार्टियाँ हुईं। [illegible] वैद्य सभा की ओर से १०१) रु० की थैली भेंट की गई। आपके सम्मान में सर्वत्र सार्व-

जनिक सभाओं का आयोजन हुआ, जिनमें आयुर्वेदीय स्वास्थ्यवृत्त पर प्रकाश डाला गया। आप दोनों के शुभागमन से न केवल वैद्यों में ही उत्साह और आनन्द हुआ अपितु, जनसाधारण में भी आयुर्वेद के प्रति अधिक अनुराग उत्पन्न हुआ।

जयपुर

श्री धन्वन्तरि-जयन्ती मनाने के लिए सद्वैद्य सभा, जयपुर की ओर से परतानियों के मन्दिर में एक सभा का आयोजन किया गया। सभा की अध्यक्षता गृहमन्त्री श्री रामकिशोर व्यास ने की। श्री व्यास ने अपने भाषण में आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति के महत्व पर प्रकाश डाला। आपने बताया कि आयुर्वेद ऊँचे सिद्धान्तों पर आधारित एक विज्ञान है। परन्तु आज उसके समक्ष संघर्ष का समय आया हुआ है। आपने वैद्यों से अपील की कि वे इसकी प्रगति के लिए त्याग व तपस्या करें। सभा में सर्वश्री वैद्य जयरामदास स्वामी, वैद्य मङ्गलदास स्वामी, वैद्य कल्याण प्रसाद और वैद्य रामप्रकाशजी ने भी भाषण दिये। सभी वक्ताओं ने भारत में आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति को स्वास्थ्य रक्षा का सर्वोत्तम माध्यम बताया तथा सरकार से उसकी प्रगति में सहयोग देने की अपील की।

सीकर

सीकर नगर में तहसील वैद्य सभा व प० रा० आयुर्वेद कालेज के तत्वावधान में धन्वन्तरि-जयन्ती का त्रिदिवसीय आयोजन किया गया, जो कि सार्वजनिक रूप से सुभाष चौक, श्री राजस्थान आरोग्य सदन, व श्री पं० रा० आयुर्वेद कालेज के प्रांगण में तीन दिनों तक सानन्द सम्पन्न हुआ। प्रथम दिन की अध्यक्षता माननीय जिला स्वास्थ्य अधिकारी डा० श्री आनन्द विहारी लालजी शर्मा ने की। उद्घाटन भाषण समारम्भ करते हुए धर्मोपदेशक वेदान्त शिरोमणि श्री अनिरुद्धाचार्यजी ने अपने धर्मोपदेश में आयुर्वेद के विविध तत्वों पर प्रकाश डाला। गण्यमान्य वैद्य महानुभावों के अभिभाषणों के अनन्तर अध्यक्ष महोदय के आयुर्वेद व एलोपैथी का समन्वयात्मक भाषण अति प्रभावोत्पादक रहा। द्वितीय दिन राजस्थान आरोग्य सदन व तृतीय दिन श्री पं० रा० आयुर्वेद कालेज में नगर के गण्यमान्य व प्रतिष्ठित विद्वानों के स्वास्थ्य विषयक अति ओजस्वी भाषण हुए। जिनमें माननाय वैद्य आनन्दीलालजी, प्रह्लादरायजी, वैद्य हनुमत्सहाय शर्मा तथा प्रिंसिपल श्री प० रा० आयुर्वेद कालेज, डाक्टर श्री के० डी० शर्मा, वैद्य श्री पूर्णमलजी मिश्र के नाम उल्लेखनीय हैं।

हैदराबाद

श्री धन्वन्तरि त्रयोदशी के दिन श्री माहेश्वरी भवन बेगम बाजार हैदराबाद (दक्षिण) में श्री धन्वन्तरि भगवान का पूजन महोत्सव वैद्य पं० श्री राधेश्यामजी व्यास आयुर्वेदाचार्य, साहित्य-शास्त्री, साहित्यरत्न प्रधान चिकित्सक श्री माहेश्वरी औषधालय की प्रेरणा से रात्रि के ७॥ (साढ़े सात) बजे स्थानीय वैद्यवर्य श्री ईश्वरीप्रसादजी शास्त्री, श्री गोवर्धनजी शर्मा तथा श्री वेदप्रकाशजी शास्त्री आदि प्रमुख वैद्यों एवं स्थानीय श्री सनातन धर्म सभा के संस्थापक एवं व्यवस्थापक परम श्रद्धेय श्री लक्ष्मीनारायणजी शर्मा एवं माहेश्वरी समाज के आयुर्वेदानुरागी उत्साही श्रेष्ठियों की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। पूजन के बाद भाषण परम्परा में आयुर्वेदोन्नति एवं आयुर्वेद में वैज्ञानिक खोज-हेतु प्रभावशाली एवं गतिमान भाषण हुए।

सिरसा (पंजाब)

श्री धन्वन्तरि-जयन्ती महोत्सव का जलसा श्री रामदयालुजी वैद्य सदस्य विधान सभा पंजाब की अध्यक्षता में आयुर्वेद मण्डल सिरसा (हिसार) ने बड़े धूमधाम के साथ मनाया। निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए। आयुर्वेद मण्डल की यह साधारण सभा पंजाब सरकार की सेवा में निवेदन करती है कि शास्त्रोक्त विधि से बनाये हुए आसवारिष्ट केवल औषध के रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। मद्य व्यसन के लिए कभी प्रयोग में नहीं लाये जाते। अतः यह सभा सरकार से माँग करती है कि आसवारिष्टों के बनाने पर किसी प्रकार का भी प्रतिबन्ध न लगाया जाये। क्योंकि प्रतिबन्ध लगाने से वैद्यों के व्यवसाय पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। यह सभा सरकार से अनुरोध करती है कि बोर्ड आफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी सिस्टमज आफ मैडीसन के सब सदस्य निर्वाचन द्वारा ही लिये जायें।

यह सभा सरकार से अनुरोध करती है कि वह औषधोपयोगी अहिफेन का लाइसेन्स वैद्यों को भी देवे, क्योंकि वे केवल इस को अपने योगों में ही प्रयोग करते हैं।

सरकारी आयुर्वेदिक तथा यूनानी डिस्पैंसरियों में काम करने वाले वैद्यों, हकीमों तथा कम्पौंडरों का वेतन भी एलोपैथिक सरकारी डिस्पैंसरियों के गजिटेड इन्जार्जो तथा कम्पौंडरों के समान करें।

यह सभा सानुरोध प्रार्थना करती है कि देहातों में देशी (आयुर्वेदीय) औषधालय अधिक-से-अधिक संख्या में खुलवायें।

परासी (गया)

आयुर्वेदिक औषधालय, परासी, पो० सकरी थाना अरवल (गया) में कविराज श्री प्रयागदत्त पाण्डेयजी ए० एम० एस० ने धन्वन्तरि-जयन्ती मनाई। 'आयुर्वेद की कैसे प्रगति होगी', 'आयुर्वेदिक चिकित्सा सम्बन्धी वर्तमान समस्या', 'शुद्ध औषध और रासायनिक द्रव्य की प्राप्ति के लिए प्रतिष्ठान की आवश्यकता', 'आयुर्वेद के निघंटुगत अनेकार्थक शब्दों के एक ही द्रव्य में रूढ़ करने की आवश्यकता' 'बिहार में शीघ्र डायरेक्टरेट की स्थापना की माँग', 'स्नातकों को एक वर्ष के लिए हाउस सर्जन बनाने की आवश्यकता', 'पटना आयुर्वेद महाविद्यालय में सुश्रुतोक्त रीति (काउचिंग मेथड) से आँख बनाने की शिक्षा स्वीकृत हो' आदि विषयों पर श्री प्रयागदत्त पाण्डेय, पं० श्री श्रीमोहन शरण मिश्र आदि विद्वान् चिकित्सकों के सारगर्भित ओजस्वी भाषण हुए। धन्यवाद ज्ञापन के अनन्तर प्रसाद विवरण के बाद सभा विसर्जित हुई।

सिमडेगा (रांची)

सिमडेगा (रांची) में भगवान् धन्वन्तरि का पञ्चोपचार से पूजन किया गया। सायंकाल स्थानीय धर्मशाला में, भूदान कार्यकर्त्ता डा० मोहम्मद अली खाँ के सभापतित्व में सभा हुई। सर्वप्रथम श्री रघुनाथ मन्दिर के पुजारी पं० सुधाकर त्रिवेदीजी ने भगवान् धन्वन्तरि की पूजा की।

आपने अपने भाषण में कहा कि भगवान् धन्वन्तरि की पूजा केवल वैद्यवर्ग को ही नहीं करनी चाहिए, प्रत्युत सर्वविध व्यवसायी तथा कलाकारों को भी करनी चाहिए। यदि आप लोग अस्वस्थ हो जायँगे तो आपका करोड़ों रुपये का व्यापार ठप्प हो जायगा। आप लोग स्वस्थ रह कर ही धर्म, अर्थ, कर्म, ज्ञान और भक्ति की प्राप्ति कर सकते हैं। अतः सभी आरोग्याकांक्षी को धन्वन्तरिजी की जयन्ती मनानी चाहिए। अन्त में सभापतिजी ने अपने सारगर्भित भाषण में तुलसी के उपयोग पर पूर्ण प्रकाश डाला। सभापतिजी एवं आगत सज्जनों को धन्यवाद दे कर सभा विसर्जित की गई।

भीलवाड़ा

जिला वैद्य सभा भीलवाड़ा की ओर से श्री धन्वन्तरि त्रयोदशी का उत्सव उपाध्यक्ष श्री लाभशंकर जी वैद्य सांगानेर के निवासस्थान पर महोदय श्री वैद्य रामचन्द्र जी ब्रह्मचारी की अध्यक्षता में मनाया गया। सभी महानुभावों ने एक साथ श्री धन्वन्तरि भगवान का सर्वप्रथम पूजन किया, तत्पश्चात् हवन किया और पुष्पाञ्जलि समर्पित की गई।

इसके बाद आदिदेव श्री धन्वन्तरि भगवान की जयन्ती के विषय पर कुछ प्रवचन हुआ तथा अध्यक्ष महोदय ने उपस्थित सब वैद्य बन्धुओं से यह अपील की कि हम सब को एक सूत्र में बंधकर स्नेह पूर्वक अपनी विद्या की अभिवृद्धि एवम् विकास के हेतु सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए और कहा कि हमलोगों के पिछड़ने में हमारी फूट ही मुख्य कारण है। अतः इसको मिटाकर कन्धे से कन्धा भिड़ा कर आयुर्वेद की सेवा के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

पश्चात् अगन्तुक वैद्य महानुभावों ने वहीं पर सामूहिक भोजन किया।

शाहपुरा

क्षेत्रीय वैद्य सभा शाहपुरा में श्री धन्वन्तरि जयन्ती समारोह मनाया गया। नगर के प्रतिष्ठित महानुभाव तथा दरबार सा० के पितृत्व श्री मदन सिंह जी साहब व अनेक वैद्य वन्धु उपस्थित हुए। सर्वप्रथम श्री धन्वन्तरि भगवान का पूजन हुआ और स्वास्थ्य रक्षार्थ आयुर्वेद पद्धति ही अपनाने पर बल दिया गया। रात्रि को सार्वजनिक वाचनालय में श्री धन्वन्तरि भगवान की प्रार्थना, भजन तथा व्याख्यान हुए।

कोजटू (चिड़ावा)

गत कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी को आयुर्वेद सेवा मंडल कार्यालय में वैद्य विरंची लाल जी की अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती समारोह मनाया गया। श्री धन्वन्तरि पूजन-अर्चन के बाद कतिपय विद्वानों के भाषण हुए। वक्ताओं ने जयन्ती महोत्सव के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए चिकित्सा सम्बन्धी अपने कई अनुभव बताए, जो बड़े उपयोगी थे।

अध्यक्षजी ने अपने भाषण में वैद्य-समाज के संगठन पर जोर दिया और जनता से आयुर्वेद को अधिकाधिक अपनाने की अपील की। धन्यवाद-ज्ञापन के पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

बामन्दी

श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष में इस ग्राम में प्रथम बार यह आयोजन किया गया। महोत्सव सफल रहा। लगभग दो ढाई सौ व्यक्तियों ने सम्मिलित होकर पहले भजन-कीर्त्तन आदि किया, बाद में श्री जगन्नाथ जी खड़ायते 'आयुर्वेदाचार्य' ने धन्वन्तरि जयन्ती सम्बन्धी आयोजन का उद्देश्य तथा महत्त्व बतलाया। अन्त में आभार प्रदर्शन तथा प्रसाद वितरण किया गया और समारोह सधन्यवाद समाप्त हुआ।

रतनगढ़

कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को धन्वन्तरि मन्दिर के प्राङ्गण में श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार के सभापतित्व में भगवान धन्वन्तरि का जयन्ती-समारोह मनाया गया। मंगलाचरण के बाद अध्यक्ष महोदय ने पदासीन होने से पूर्व धन्वन्तरि जी का तथा स्तवन विशाल जन समूह के साथ बड़ी श्रद्धा से किया। श्री नारायण शर्मा ने स्तुतिरूप में एक सुन्दर गीत गया। वैद्य धनाधीश गोस्वामी आयुर्वेदाचार्य ने अपने भाषण में बताया कि पंचमहाभूत समस्त संसार एवं प्राणि मात्र की मूलभित्ति है। इनके ही संक्षिप्तरूप तैजस, सोम और वायु तत्त्व हैं। ये ही तत्त्व जीव मात्र के शरीर में वात, पित्त और कफ रूप से अवस्थित हैं। इनकी समानावस्था ही प्रकृति तथा विकृतावस्था का नाम ही रोग है। बाबू श्यामसुन्दर लाल जी एडवोकेट तथा पं० सूर्यप्रकाश जी शास्त्री द्वारा आयुर्वेद में निरंतर खोज करने तथा त्याग की भावना से जनता की सेवा करने पर बल दिया गया। अध्यक्षीय भाषण में पोद्दार जी ने पाश्चात्य मान्यताओं, विचारों को छोड़कर देशी चिकित्सा पद्धति के अपनाने पर अधिक जोर दिया। वैद्यराज पं० मणिराम जी महाराज ने भारतीयों के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सा को ही हितकर बताया और कहा कि यही एक ऐसी पद्धति है जो गरीब तथा अमीर सबके लिए सुलभ तथा पूर्णतया आरोग्यप्रद है। ऐसा विचार कर ही धन्वन्तरि मन्दिर की स्थापना की गई है। इसके निर्माण तथा लक्ष्य-सिद्धि के मार्ग में जनता को तन, मन, धन से सहयोग देना चाहिए। धन्यवाद देकर सभा विसर्जित की गई।

जालौन

गत कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को धन्वन्तरि-समारोह पं० हरिहर दीक्षित वैद्यशास्त्री की अध्यक्षतामें मनाया गया। आगत सज्जनों द्वारा आयुर्वेदविषयक भाषण दिए जाने के उपरान्त कार्यालय की ओर से जो प्रस्ताव आये हुये थे, उन पर विचार हुआ और उन प्रस्तावों को उपस्थित वैद्यों ने सर्व-सम्मति से स्वीकार किया। इसके उपरान्त सभापति का भाषण हुआ। उन्होंने कहा कि जालौन में एक आयुर्वेदिक अस्पताल का होना निहायत जरूरी है क्योंकि सरकारी अस्पताल में औषधियों की कमी बनी रहती है। सभापति के भाषण के बाद प्रसाद-वितरण तथा धन्यबाद प्रदान के साथ सभा विर्सजित की गई।

मलवासा

गत कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को महर्षि कार्तिकेय महाविद्यालय मलवासा में श्रीमती कलावतीबाई नागर, उपसंचालिका इन्दौर की अध्यक्षता में धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह बड़े उल्लासपूर्ण वातावरण में मनाया गया। उत्सवमें भाग लेने के लिए आस-पास के विशिष्ट व्यक्ति तथा आयुर्वेदज्ञ पर्याप्त संख्या में आये थे। धन्वन्तरि पूजन-अर्चन के पश्चात् सभा की कार्यवाही प्रारंभ हुई। तदुपरान्त आगत विद्वानों के भाषण हुए। वक्ताओं ने एक स्वर से आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के रूप में मान्य करने की मांग सरकार से की। समारोह की मनोनीत अध्यक्षाने आयुर्वेद की एक पूर्ण चिकित्सा विज्ञान के रूप में प्रशंसा करते हुए कहा कि चिकित्सा क्षेत्र में महिलाओं को अधिक संख्या में आना चाहिए। आपने कहा कि महिलाओं में पुरुषों की अपेक्षा अधिक सेवा-भावना होती है। पुरस्कार-वितरण तथा धन्यवाद-ज्ञापन के बाद समारोह समाप्त हुआ।

बासाटाँड

कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी तदनुसार २१-१०-५७ को ग्राम बासाटाँड़ (गया) में कमलेश-कुटीर के श्री नागार्जुन औषधालय में श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव मनाया गया। हवन पूजन के उपरांत बासाटाँड़, केयाल, देवकुँड, बांधवां आदि ग्रामों की जनता की सभा हुई। सभा में कतिपय विद्वानों के भाषण हुए। धन्वन्तरि जयन्ती को सरकारी तौर

पर स्वास्थ्य सप्ताह के रूप में मनाये जाने की आवश्यकता, आयुर्वेद के इतिहास, अंग्रेजी राज्य में आयुर्वेद के ह्रास, हिन्दुओं के शल्य कृत्य के सम्बन्ध में अंग्रेजों के उत्कृष्ट वर्णन, आयुर्वेद सम्बन्धी वर्तमान कठिन समस्या, वैद्यों की आलस्यवश एलोपैथी की ओर प्रवृत्ति, आयुर्वेदिक पशुचिकित्सा, ज्योतिष और पुराणों में वृक्षायुर्वेद, आसव-अरिष्टों पर मद्यकर लगाने की निंदा आदि पर संयत, भावपूर्ण और प्रभावशाली भाषण हुए। धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

सकरीखुर्द

धन्वन्तरि त्रयोदशी को श्री कमलेश औषधालय सकरीखुर्द में श्री धन्वन्तरि जयन्ती मनाई गई। स्थानीय ग्राम-पंचायत द्वारा इस अवसर पर सफाई का सुन्दर कार्यक्रम संपादित हुआ। पूजन अर्चन के पश्चात् श्री श्रीमोहन शरण मिश्र साहित्यव्याकरणायुर्वेदाचार्य, श्री प्रयागदत्त पांडेय जी, ए० एम० एस० आदि वैद्यों ने धनतेरस के महत्त्व और उपयोगिता, ऋतुओं के आहार-विहार, आयुर्वेद से भारतीय सभ्यता संस्कृति और धर्म की रक्षा के सम्बन्ध में भाषण दिए। आसव-अरिष्टों को मद्य की श्रेणी में लाने वाले कानून की निंदा और आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के रूप में मान्य करने के सम्बन्धी प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित की गयी।

महासमुंद (रायपुर)

धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में गत कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी को स्थानीय आयुर्वेदिक कालेज के आचार्य श्री शुकदेव प्रसाद शर्मा की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया। पूजन-अर्चन के बाद आयुर्वेद की महत्ता तथा उपयोगिता के बारे में विविध विद्वानों के भाषण हुए, जिनमें श्री बाबूराम शर्मा, शुकदेव शर्मा, शुकदेव प्रसाद आदि प्रमुख हैं। भाषणोपरांत सर्व सम्मति से कई प्रस्ताव स्वीकृत किए गए, जिनमें आयुर्वेदिक पद्धति को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के रूप में मान्यता प्रदान करने की माँग सरकार से की गयी। अध्यक्षीय भाषण एवं धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा की कार्यवाही समाप्त हुई।

बिलासपुर

धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में गत कार्त्तिक कृष्ण १३ रविवार को सायं ४ बजे श्री छितानी प्रसाद मितानी दुबे दातव्य औषधालय की ओर से औषधालय के संचालक पं० द्वारिका प्रसाद जी दुबे तथा नगर की आयुर्वेद प्रेमी जनता की उपस्थिति में श्री धन्वन्तरि भगवान् का पूजन हुआ। इस अवसर पर नगर के प्रतिष्ठित वैद्य भी आयोजन में सम्मलित हुए थे। श्री धन्वन्तरि के जन्म महोत्सव, आयुर्वेदिक की उन्नति तथा वैद्य समुदाय के संगठन पर वक्ताओं के भाषण हुए। धन्यवाद ज्ञापन के बाद समारोह समाप्त हुआ।

जुरहरा (भरतपुर)

जुरहरा (भरतपुर) के श्री रामकृष्ण राजपूताना औषधालय में हर साल की भाँति इस साल भी अपूर्व उत्साह के साथ श्री धन्वन्तरि-जयन्ती वयोवृद्ध विद्वान वैद्य राधेलाल जी की अध्यक्षता में मनायी गयी। पूजन, मंत्रोच्चारण के साथ सभा का कार्यारंभ हुआ। इस अवसर पर विद्वान वैद्यों के भाषण के पश्चात् औषधालय के संचालक श्री वैद्य आनन्दीलाल का ओजस्वी भाषण हुआ, जिसमें कई सौ वर्षों के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए आपने आज के वैद्य एवं सरकार दोनों से ही आयुर्वेद के उत्थान में परस्पर सहयोग स्थापित करने का सुझाव रखा।

अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन तथा प्रसाद-वितरण के बाद कार्यवाही समाप्त हुई।

मनोहरपुर

राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय मनोहरपुर में आयुर्वेद के आदि प्रवर्तक भगवान श्री धन्वन्तरि जी की जयन्ती उत्साह पूर्वक मनाई गई।

प्रातःकाल भगवान श्री धन्वन्तरि जी का पूजन किया गया तथा सायंकाल औषधालय के प्रांगण में कस्बे के वयोवृद्ध वैद्य श्री सेडूरामजी मिश्र के सभापतित्व में सभा की गई। सभा में जनता की उपस्थिति सराहनीय थी। उपस्थित महानुभावों में वैद्य श्री हरिनारायण शर्मा आयुर्वेदाचार्य, इन्चार्ज राजकीय औषधालय मनोहरपुर ने अपने सारगर्भित एवं विद्वत्तापूर्ण भाषण में भगवान धन्वन्तरि के विषय में प्रकाश डाला तथा उपस्थित वैद्य महानुभावों से निवेदन किया कि सच्चे अर्थ में हम धन्वन्तरि जयन्ती मनाने के हकदार तभी हो सकते हैं जब कि हम धन्वन्तरि की शल्य-शालाक्य चिकित्सा को ग्रहण कर उसमें निपुण हो सकेंगे। सभापति के भाषण के बाद प्रसाद-वितरण किया

गया और धन्वन्तरि के जयघोष के बाद सभा विसर्जित की गई।

सुजानगढ़

धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में स्थानीय गाँधी चौक में वैद्यराज सुखदेव जी पारीक की अध्यक्षता में सभा की गई। मंगलाचरण के बाद पं० भालचन्द्र जी, गणेशदास जी स्वामी, हरिश्चन्द्र पारीक, सत्यनारायण जी जोशी और छगनलाल मिश्र आदि वैद्यों ने आयुर्वेद की महता पर ओजस्वी भाषण दिये।

कविराज माधव प्रसाद जी शास्त्री (सभापति राज० प्रा० वैद्य सम्मेलन) ने कहा कि "भगवान धन्वन्तरि" आयुर्वेद चिकित्सा के जन्मदाता हैं और आयुर्वेद एक प्रकार से स्वास्थ्य विज्ञान भी है। आज तक आयुर्वेद की घोर उपेक्षा होने के बाद भी आयुर्वेद रोगों के आमूल निवारण में विशेष क्षमता रखता है। आपने कहा कि आयुर्वेद जीवन प्रदान करने वाली चिकित्सा है। तदनन्तर प्रधान मन्त्री श्री परमानन्द जी शर्मा (रा० प्रा० वैद्य सम्मेलन) ने कहा कि अगर राज्य सरकारें ऐलोपैथी के समान आयुर्वेद को मेडीकल अस्पताल में स्थान दें तो आयुर्वेद हर चिकित्सा में आगे ही रहेगा। जहाँ एलोपैथी के साथ आयुर्वेद पद्धति से चिकित्सा होती है वहाँ पर रोग-निवारण में आयुर्वेद अधिक सफल रहा है।

जावरा (म० भा०)

जावरा नगर आयुर्वेद परिषद की ओर से धन्वन्तरि जयन्ती का आयोजन किया गया जिसमें नगर के गण्यमान्य विद्वान् एवं कार्यकर्ता भी उपस्थित थे। इस अवसर पर धन्वन्तरि पूजन के बाद आयुर्वेद के सम्बन्ध में विद्वान् वक्ताओं ने सारगर्भित भाषण हुए। तदनन्तर परिषद के मंत्री की ओर से दो प्रस्ताव भी उपस्थित किये गये जो उपस्थित जन समुदाय द्वारा सर्व सम्मति से स्वीकृत किये गए। अध्यक्षीय भाषण तथा धन्यवाद ज्ञापन के बाद आयोजन समाप्त हुआ।

हिंगणघाट

धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में एक सार्वजनिक सभा बुलायी गयी। धन्वन्तरि पूजन स्थानीय मोहोना औषधालय में बड़े उत्साह से किया गया। भगवान धन्वन्तरि पूजन के अनन्तर स्वामी रामेश्वर नन्द जी तथा अध्यक्ष शोभालाल जी ने सारगर्भित भाषण आयुर्वेद की विशिष्टता पर दिए। प्रसाद तथा धन्यवाद वितरणानन्तर कार्य समाप्त हुआ।

सतना

धन्वतरि जयन्ती के उपलक्ष में कार्तिक कृष्ण १३ रविबार को सायंकाल ६ बजे श्री धन्वन्तरि भगवान का पूजन, वयोवृद्ध प्राणाचार्य प्रयागदत्त जी राजवैद्य के औषधालय में पं० रामसंजीवन जी पोष्टाचार्य की अध्यक्षता में हुआ। सभा में विद्वदजनों के सारगर्भित भाषण हुए। वक्ताओं ने अपने भाषण में एक स्वर से आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा बनाने की अपील सरकार से की। राजवैद्य प्रयागदत्त जी का इन्फ्लुएंजा पर रोचक एवं विस्तारपूर्वक भाषण हुआ। डाक्टर शुभवन्त किशोर जी का आयुर्वेदिक औषधियों के प्रयोग पर गौरवपूर्ण भाषण हुआ। अंत में सभापति महोदय के व्याख्यान के बाद प्रसाद वितरण कर कार्य समाप्त किया गया।

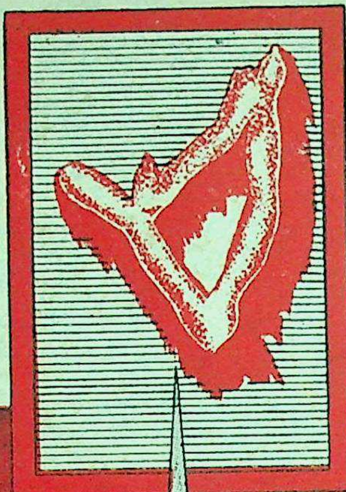
देवगढ़ (उदयपुर)

गत २१ अक्टूबर १९५७ को भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती स्थानीय वैद्य-हकीम बन्धुओं और प्रतिष्ठित नागरिकों द्वारा मनाई गई। यह आयोजन उप जिला वैद्य परिषद के मंत्री श्री उदयलाल महात्मा द्वारा श्री महावीर आयुर्वेदिक चिकित्सालय में किया गया था। धन्वन्तरि पूजन-बन्दन के बाद धन्वन्तरि जयन्ती मनाने का महत्व समझाया गया। विविध विद्वानों के भाषण हुए। धन्यवाद ज्ञापन और स्वल्पाहार के बाद कार्यवाही समाप्त की गई।

वजीरगंज

अन्य वर्षों की भाँति इस वर्ष भी श्री धन्वन्तरि भगवान की जयन्ती बड़े धूमधाम के साथ श्री सूर्य आयुर्वेदिक औषधालय में दिनाङ्क २० अक्टूबर '५७ के दोपहर (१२ बजे दिन) में स्थानीय खण्ड विकास पदाधिकारी की अध्यक्षता में मनायी गयी।

ओज·बलदायक



आयुर्वेदीय
औषधियाँ

बैद्यनाथ
अभ्रक भस्म सहस्रपुटी

बैद्यनाथ
लौह भस्म सहस्रपुटी

बैद्यनाथ
मुक्ता (मोती) भस्म

बैद्यनाथ
स्वर्ण भस्म

बैद्यनाथ
वैक्रान्त भस्म

बैद्यनाथ
प्रवाल भस्म

REGISTERED TRADE MARK



आयुर्वेदीय एवं पेटेन्ट औषधियों के सबसे बड़े निर्माता

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि॰

कलकत्ता
पटना · झाँसी
नागपुर

... के लिए जनवाणी प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्राइवेट लि॰ कलकत्ता में

आयुर्वेद

वर्ष ११] कलकत्ता, सितम्बर, १९५८ [अंक ३

वैद्यों द्वारा निरंतर अन्वेषण आवश्यक

'आयुर्वेद पूर्णतया वैज्ञानिक है, किन्तु यह गतिहीन विज्ञान नहीं है। एक समय था, जब वैद्य काष्ठौषधियों पर ही बहुत कुछ निर्भर करते थे। बाद में नागार्जुन ने रसौषधियों को चलाया। इनके प्रयोग को यदि रसायनशास्त्र का आयुर्वेद से एकीकरण कहें तो ठीक न होगा। केवल यही कह सकते हैं कि वैद्य ने रासायनिक क्रिया का उपयोग किया। इसलिए मेरी धारणा यह है कि आयुर्वेद में सैकड़ों ऐसी औषधियों का प्रयोग होने पर भी पूर्वकाल में जिससे वैद्य अनभिज्ञ थे, आयुर्वेद अपना स्वत्व नहीं खो सकता। आयुर्वेद के प्रतिपादकों ने भी तो यही कहा है कि वैद्य को निरन्तर नयी औषधियों का अन्वेषण करना चाहिए। किसी औषधि को आयुर्वेदीय औषधि तभी कहा जा सकता है और वैद्य उन्हें बिना संकोच के तभी प्रयोग कर सकता है, जब वे औषधियां त्रिदोष सिद्धान्त की कसौटी पर खरी सिद्ध हो जायें।'

— डा० सम्पूर्णानन्द
मुख्य मंत्री, उत्तर प्रदेश





प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि

१, गुप्ता लेन, कलकत्ता-६

मरा आदमी
जिन्दा
नहीं
हो सकता ;
किन्तुः-

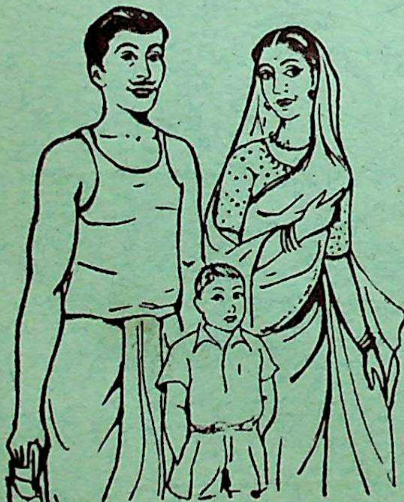


दुर्बल-अस्वस्थ
शरीर
सबल-स्वस्थ
हो सकता है।

आयुर्वेद-शास्त्र में ऐसी अनेक विधियाँ और औषधियाँ हैं, जिनसे रोग दूर होते हैं और शरीर के स्नायुमंडल को परिपुष्टि एवं शक्ति मिलती है। आयुर्वेद की ऐसी चमत्कारपूर्ण औषधियों से वैद्य, जनता और यहां तक कि डाक्टर भी परिचित हैं। स्नायुमंडल को तत्काल ताकत पहुँचानेवाली ऐसी ही औषधियों में अति प्रमुख औषधि है—

बैद्यनाथ
मकरध्वज

जो केवल अनुपान के अदल-बदल से कठिन से कठिन रोगों को निर्मूल करता है और कमजोर से कमजोर शरीर को सबल-सुदृढ़ बनाता है। आज भी इस देश के अनेक बुद्धिमान स्त्री-पुरुष इस रसायन का सेवन कर अपनी जरा-जीर्णता को दूर करने में सफल होते हैं। आप भी इसका सेवन करें और अपने क्षीण-हीन शरीर को परिपुष्ट बनायें।



देशी दवाओं का सब से बड़ा



और विश्वासी कारखाना

श्री **बैद्यनाथ**
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि॰
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

'सचित्र आयुर्वेद' के पाठकों से

आयुर्वेद के पुनरुत्थान और प्रतिसंस्कार के साथ-साथ राष्ट्रीय चिकित्सा के गौरवपूर्ण आसन पर आयुर्वेद को पुनः आसीन कराने के लिए अपने जन्मकाल से प्रयत्नशील 'सचित्र आयुर्वेद' अपने जीवन के १० वर्ष व्यतीत कर ११ वाँ वर्ष में प्रविष्ट हुआ है। नये वर्ष के प्रथम एवं द्वितीय अंकों का संयुक्त विशेषांक 'आयुर्वेद यूनानी समन्वयांक' हम अपने ग्राहकों के पास भेज ही चुके हैं, यह तृतीय अंक भी अब आपके हाथों में है।

अपना ग्राहक नम्बर नोट कर लें

"सचित्र आयुर्वेद" का नवीन वर्ष जुलाई से प्रारंभ होकर जून में पूरा हो जाता है और ग्राहकों के पुराने नम्बर भी नए नम्बरों में परिवर्तित हो जाते हैं। अतएव, ग्राहकों से निवेदन है कि "सचित्र आयुर्वेद" के रैपर पर जो ग्राहक नम्बर लिखा गया है--उसे अवश्य नोट कर लें और भविष्य में पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर लिखना कदापि न भूलें।

आयुर्वेद यूनानी-समन्वयांक

यों तो 'सचित्र आयुर्वेद' का प्रत्येक अंक काफी जांच-पड़ताल कर लेने के बाद ही कार्यालय से ग्राहकों के पास भेजा जाता है। किन्तु इस बार "आयुर्वेद-यूनानी समन्वयाङ्क" को भेजते समय और भी सतर्कता रखी गयी है ताकि पाठकों को सुरक्षित अवस्था में विशेषाङ्क मिल जाय। इतनी सतर्कता के वावजूद कुछ ग्राहकों के इस आशय के पत्र आ रहे हैं कि उन्हें विशेषाङ्क नहीं मिले हैं। ऐसे ग्राहकों से निवेदन है कि वे सर्वप्रथम अपने डाकघर में इस सम्बन्ध में छानबीन कर लें। यदि विशेषाङ्क न मिले तो अपने यहाँ के पोस्ट मास्टर से विशेषाङ्क प्राप्त न होने का प्रमाण पत्र लेकर कार्यालय को भेजें, जिससे कि उसके आधार पर उचित कार्रवाई की जा सके।

इनदिनों कागज की महार्घता एवं दुष्प्राप्यता के फलस्वरूप मुद्रण-व्यवसाय के सामने जो घोर संकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी है, और जिसके चलते, 'सचित्र आयुर्वेद' के संचालकों का व्ययभार पूर्वापेक्षा दूना हो गया है—उसकी ओर भी मैं अपने सहृदय पाठकों का ध्यान आकृष्ट कराना चाहता हूँ। साथ ही उनसे प्रार्थना है कि प्रत्येक ग्राहक मात्र २-२ नवीन ग्राहक बना कर यदि हमें साहाय्य प्रदान करें तो निश्चय ही 'सचित्र-आयुर्वेद' के संचालकों का व्यय-भार सहज ही में हलका हो सकता है।

अखिल भारतीय आयुर्वेद शास्त्र-चर्चा परिषद्

"सचित्र आयुर्वेद" के वाचकों को ज्ञान ही है कि "अखिल भारतीय आयुर्वेद-शास्त्र चर्चा परिषद्" की विषय निर्धारिणी समिति की दस दिवसीय बैठक गत जून मास में—आयुर्वेद-यूनानी तिब्बिया कालेज, देहली के पुस्तकालय में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के संयोजकत्व में हुई थी। इस परिषद में एक हजार आयुर्वेदीय शारीर शब्दों का विनिश्चय भारतके विभिन्न प्रान्तों से आए हुए ख्याति प्राप्त आयुर्वेदीय विद्वानों ने किया था। विषय निर्धारिणी समिति की रिपोर्ट "सचित्र आयुर्वेद" के गताङ्क में प्रकाशित हो चुकी है। समिति में विनिश्चित एक हजार आयुर्वेदीय शारीर शब्दों की सूची आगामी अंक में प्रकाशित की जायगी—कृपया विद्वज्जन नोट कर लें।

– व्यवस्थापक
सचित्र आयुर्वेद

'सचित्र आयुर्वेद' के आयुर्वेद-यूनानी समन्वयांक पर कतिपय शुभ-सम्मतियाँ

लोकसभा के अध्यक्ष माननीय श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने 'सचित्र आयुर्वेद' के आयुर्वेद-यूनानी समन्वयांक पर निम्नलिखित सम्मति प्रेषित की है—

'सचित्र आयुर्वेद' का विशेषांक मिला। सभी लेखों को पूरी तरह पढ़ने के लिए यद्यपि मैं अब तक समय नहीं निकाल पाया हूं, फिर भी जो लेख मैंने पढ़े हैं, उनको काफी दिलचस्प और उत्तम कोटि का पाया है। यह विशेषांक एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति करता है—अन्य चिकित्सा-पद्धतियों के ज्ञान और उनके निदान एवं चिकित्सा-पद्धतियों में अब तक जो विकास हुए हैं, उनको आयुर्वेद में समन्वित करने का इसमें प्रयास किया गया है। मेरी कामना है कि 'सचित्र आयुर्वेद' की उपयोगिता और लोकप्रियता बढ़ती रहेगी।

—एम० अनन्तशयनम् आयंगर

बम्बई के राज्यपाल माननीय श्री श्रीप्रकाशजी लिखते हैं—

'सचित्र आयुर्वेद' पत्रिका मिली। इसे आपने मेरे पास भेजा, यह आपकी विशेष कृपा है। मैं इस भेंट के लिए अनुगृहीत हूँ।

—श्रीप्रकाश

भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय में देशी चिकित्सा विषयक परामर्शदाता कविराज प्रताप सिंह लिखते हैं—

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के अधिकारीवर्ग आयुर्वेद-शास्त्र को उन्नत बनाने में सर्वदा सतर्क और सचेष्ट रहे हैं।

अनेक ग्रन्थरत्नों का प्रकाशन किया है और कर रहे हैं। आयुर्वेद विद्यापीठ का विद्यालय बनाने में भी संलग्न हैं......कहाँ तक लिखें सर्वप्रकार से तन-मन-धन लगा कर आयुर्वेद की वे सेवा कर रहे हैं। आयुर्वेद और यूनानी का समन्वयाङ्क प्रकाशित कर यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि आयुर्वेद और यूनानी का मूलस्रोत एक ही है और पृथकत्व की भावना भूल से भरी है।

वैद्य और हकीम मिलकर प्रयत्न करें तो देशी चिकित्सा-पद्धति शीघ्र ही सहज में उन्नत हो सकती है। लेख सुपाठ्य और मनन करने योग्य हैं। इसके लिये प्रकाशकों को अनेक-अनेक धन्यवाद है।

—कविराज प्रताप सिंह

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के उपाध्याय-शारीर, अध्यक्ष-एक्सरे विभाग, डा० अनन्तानन्द आयुर्वेदालंकार लिखते हैं—

'सचित्र आयुर्वेद' का आयुर्वेद-यूनानी समन्वयांक प्राप्त हुआ। सभी लेख अति उत्तम हैं—विशेषकर श्री दलजीत सिंह द्वारा लिखित "समन्वय के विषय-आधारभूत सिद्धान्त" बहुत पसन्द आया। ऐसे सुन्दर अङ्क के लिए आप बधाई के पात्र हैं।

—अनन्तानन्द

श्री ओच्छवलाल नाझर आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रिन्सिपल आचार्य श्री बापालाल जी वैद्य लिखते हैं—

आयुर्वेद की प्रमुख मासिक पत्रिका 'सचित्र आयुर्वेद' के 'आयुर्वेद-यूनानी समन्वयांक' में वस्तुतः अत्यन्त उच्चकोटि की पाठ्य-सामग्री है। यूनानी वस्तुतः आयुर्वेद का ही एक अंग है और ग्रीक-अरबी-पद्धति से जो कुछ यूनानी में लिया गया है, उसको आयुर्वेद में जरूर मिला लेना चाहिए। ऐसी अनेक आयुर्वेदीय औषधियाँ हैं, जिनको आज वैद्यगण जानते तक नहीं किन्तु हकीम उनका खूब उपयोग करते हैं। अतएव, वैद्यों को यूनानी के बारे में अधिक से अधिक ज्ञान-लाभ करना चाहिए। स्वर्गीय आचार्य यादवजी अनेक यूनानी औषधियों को प्रयोग में लाते थे। यह सही रास्ता है। आयुर्वेदज्ञों को चाहिए कि वे जहाँ भी कोई अच्छी चीज मिले, अपनी पद्धति में मिला लें। यूनानी को भी चाहिए कि वह आयुर्वेद में समन्वित हो जाय। इससे दोनों का लाभ होगा। इतना सुन्दर विशेषांक निकालने के लिए सचित्र आयुर्वेद प्रशंसनीय है।

—बापालालजी वैद्य

सूरत आयुर्वेद महाविद्यालय के उपाचार्य श्री रणजित राय देशाई आयुर्वेदलंकार लिखते हैं—

'सचित्र आयुर्वेद' का समन्वयांक प्राप्त हुआ। अंक देखने से पूर्व तक यही धारणा थी कि यह विषय कैसा चुना है? इसपर एकाध लेख भी क्या लिखा जा सकता है? यह धारणा यह धारणा निर्मूल हुई। निर्मूल न हुई होती तो उन विद्वच्छिरोमणियों के प्रति मानस-पाप का भागी होता जिनके नाना दृष्टि से लिखे लेखों से यह समन्वयांक परिमण्डित हुआ है। मुद्रण तथा भूषा भी वैसी ही चित्ताकर्षक है। विशेष सम्पादक हकीम दलजीत सिंहजी भाग्यवान हैं कि उन्हें ऐसा उत्तम अंक प्रकाशित करने का यश और सिद्धि प्राप्त हुई।

— वैद्य रणजितराय

अ० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के अध्यक्ष तथा दिल्ली आयुर्वेद-यूनानी तिब्बिया कालेज के उपाचार्य कविराज उपेन्द्रनाथ दास लिखते हैं—

'सचित्र आयुर्वेद' का आयुर्वेद-यूनानी समन्वयांक देखा। मुझे अत्यन्त हर्ष के साथ कहना पड़ता है कि आपका यह विशेषांक वास्तव में सचित्र आयुर्वेद की प्रतिष्ठा के अनुरूप ही हुआ है। आयुर्वेद और यूनानी के सिद्धान्त में विशेष अन्तर नहीं है। आयुर्वेद से यूनानीवालों ने बहुत-कुछ लिया है। आयुर्वेद के लेखकों को भी चाहिये कि यूनानी से आवश्यक विषयों का ग्रहण करें। परस्पर विचार-विमर्श से क्रमशः दोनों विज्ञानों का भेद बहुत कम हो सकता है।

— कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास

सुविख्यात वैद्यराज पं० घनानन्द पंत लिखते हैं—

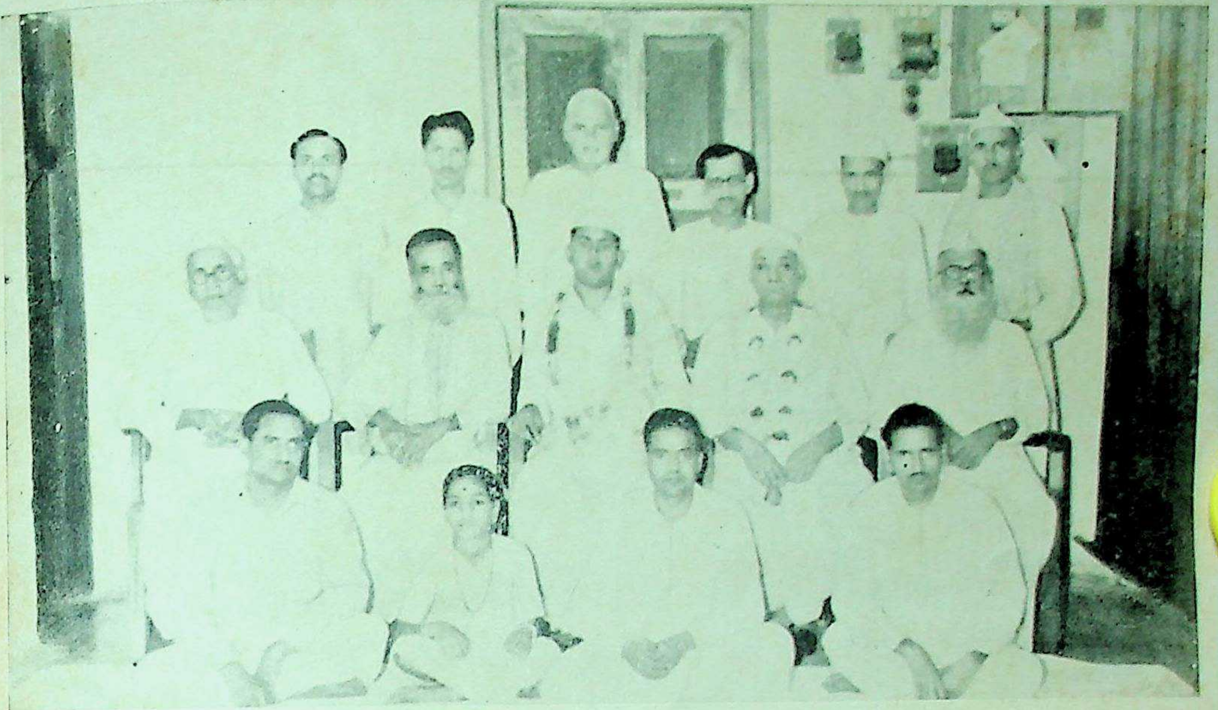
आयुर्वेद-यूनानी समन्वयाङ्क समयोपयोगी है। मैं इसके लेखों को बराबर अवलोकन करता करता रहता हूँ। भविष्य में समय ऐसा आ रहा है कि जो-जो उपयोगी चिकित्सा हैं उनका समन्वय समय करेगा। इस दृष्टि से यह समन्वयाङ्क विशेष उपयोगी है। लेख भी उत्तम तथा अध्ययन योग्य हैं। वनौषधियों के चित्र विशेष उपयोगी हैं।

—वैद्य घनानन्द पंत

सम्पादक—कामेश्वर शर्मा 'कमल'

विषय-सूची

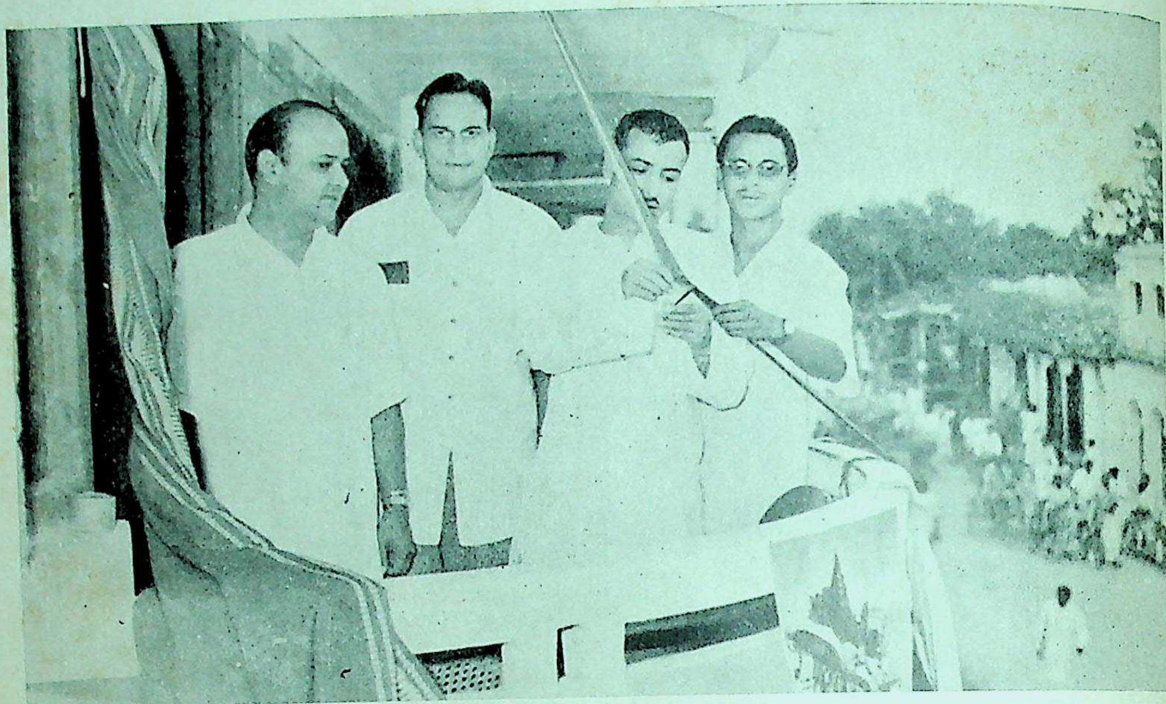
वार्षिक मूल्य ५)   विशेषांक २) रुपये   एक प्रति ५० नये पैसे



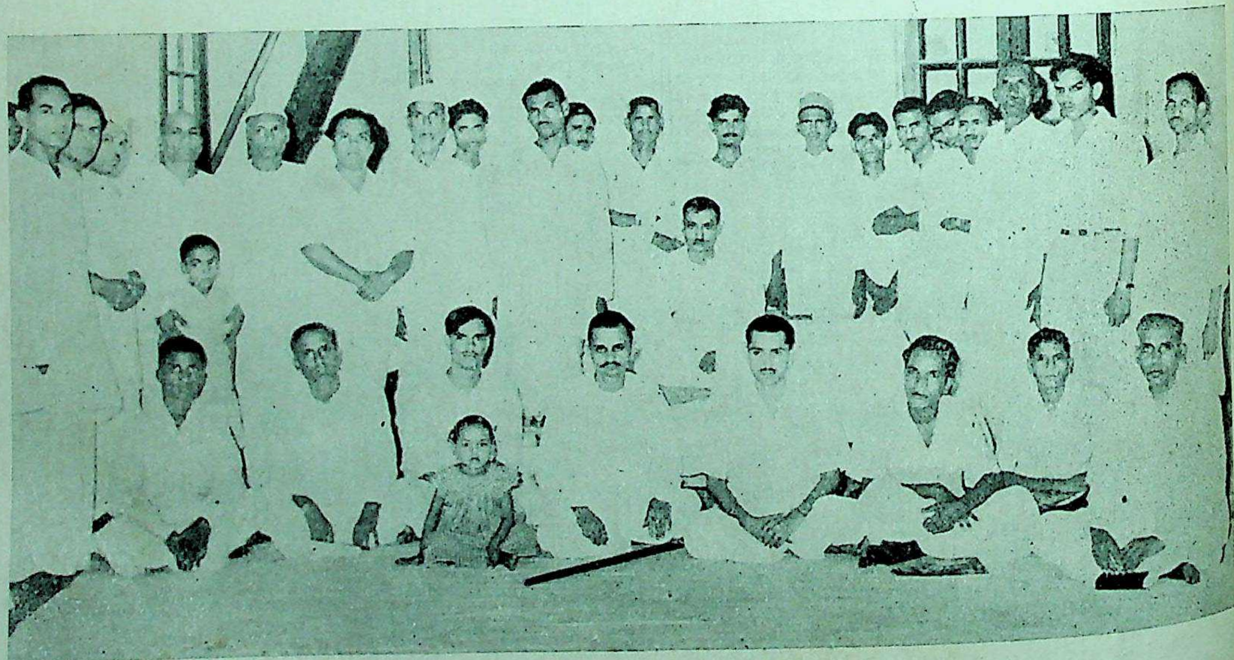
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के झाँसी निर्माण-केन्द्र में वैद्य मोहनलाल शर्मा आयुर्वेदाचार्य के अभिनन्दन-समारोह का एक भव्य दृश्य।



वैद्य मोहनलाल शर्मा के अभिनन्दन-समारोह में समवेत श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० झाँसी के विशिष्ट कर्मचारियों का एक समूह चित्र।



श्री बैद्यनाथ श्रायुर्वेद भवन प्रा० लि० के डायरेक्टर तथा राष्ट्रीय रेलवे उपभोक्ता परामर्शदातृ समिति के सदस्य वैद्य पं० दुर्गाप्रसाद शर्मा श्रायुर्वेदाचार्य गोरखपुर में टूरिष्ट ट्राफिक सेमिनर का उद्घाटन करते दिखायी दे रहे हैं।



गोरखपुर जनपद के वैद्यों की श्रोर से श्रायोजित पं० दुर्गाप्रसाद शर्मा के स्वागत-समारोह का एक दृश्य

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होनेवाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख-मासिक पत्र



सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ११ | कलकत्ता, सितम्बर १९५८ | अंक ३

सम्पादकीय

जामनगर का अनुसंधान केन्द्र

केन्द्रीय सरकार के प्रबन्ध में गत कई वर्षों से जामनगर की केन्द्रीय अनुसन्धानशाला में आयुर्वेदानुसन्धान-कार्य चल रहा है। सरकार तो उससे उल्लेखनीय फल की आकांक्षा रखती ही है, वैद्य-जगत् और आयुर्वेद-हितैषी-समाज भी यह उत्कट अपेक्षा रखता है कि जामनगर की केन्द्रीय अनुसन्धानशाला से कुछ ऐसा फल निकले, जिससे शताधिक वर्षों से पिछड़े हुए आयुर्वेद का यथार्थ चमत्कार प्रकट हो सके ; और वह अपना गौरवपूर्ण पद पुनः प्राप्त करके न केवल अपने देश के, प्रत्युत् संसार के मानवों के लिए कल्याणकारक सिद्ध हो सके।

एक बार, नवम्बर सन् '५५ में, प्रधान मन्त्री पण्डित नेहरू जब जामनगर गये थे, तब वहाँ की केन्द्रीय अनुसन्धान-शाला का कार्य देखकर उन्होंने बड़ा हर्ष व्यक्त किया था और वे आयुर्वेदहित में बहुत प्रभावित हुए थे। वहाँ के कार्य के विषय में उन्होंने कहा था : "आयुर्वेद के सम्बन्ध में यहाँ जो सुन्दर अनुसन्धान हो रहा है, वह अत्यन्त दिलचस्प है और इसका परिणाम अत्यन्त सुफलदायक हो सकता है। आयुर्वेद और आधुनिक चिकित्सा प्रणालियों के बीच जो तथाकथित विवाद है, उसका अध्ययन कर निपटारा करना होगा।" जामनगर का कार्य देखने के बाद उसी मास नई दिल्ली में मेडिकल एसोशियेशन के एक सम्मेलन में पण्डित नेहरू ने कहा था : 'आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति को घृणा की दृष्टि से देखना और उसको अवैज्ञानिक कहना मूर्खता की बात है।'

जामनगर में आयुर्वेदानुसन्धान का जो प्रयास हमारे प्रधान मन्त्री को प्रभावित कर सकता है, वह निश्चय ही बहुत महत्वपूर्ण है और उसकी सर्वतोभद्र सफलता के लिए सब ओर से सक्रिय प्रयास किया जाना चाहिए। विशेषकर वैद्य-जगत् को आयुर्वेदानुसन्धान के इस कार्य में जो उत्कट सुरुचि प्रदर्शित करना चाहिए, उसका अभाव प्रतीत होता है। यह चिन्तनीय है।

जहाँ तक सरकार के करने का प्रश्न है, वह जामनगर के अनुसन्धान केन्द्र पर लाखों रुपया व्यय कर चुकी है, कर रही है, और एक सीमा तक आगे भी करती रहेगी, परन्तु

लाखों रुपया व्यय करके भी उससे जिस फल की अपेक्षा की जा रही है, उसके लक्षण अब तक प्रतीत नहीं हो रहे—यह अत्यन्त ही चिन्तनीय बात है। यदि यही स्थिति रहती है तो एक बड़ी आशंका है कि एक सीमा तक पर्याप्त समय और धन व्यय करने के अनन्तर सरकार यह कह दे कि आयुर्वेद के अनुसन्धान पर, इतना रुपया व्यय किया गया और अमुक-अमुक प्रयत्न किये गए, परन्तु उसमें कोई तत्व नहीं निकला। सरकार के लिए हम नहीं कहना चाहते, परन्तु एक वर्ग ऐसा अवश्य है जो चाहता है कि सरकार को अन्ततः उपर्युक्त आशंकावाली बात कहने का अवसर हाथ लग जाय। उस वर्ग का सरकार पर गहरा प्रभाव है, यह सभी जानते हैं। ऐसी दशा में यदि केन्द्रीय अनुसन्धानशाला से कोई मूल्यवान फल आयुर्वेदहित में न निकले तो सरकार को सहज ही आयुर्वेदानुसन्धान कार्य को निष्प्रयोजन कहने का अवसर मिल सकता है, जो आयुर्वेद के वर्तमान और भविष्य दोनों को भारी धक्का पहुँचायेगा। आयुर्वेदसेवी समाज को इस तथ्य की ओर गम्भीरता के साथ ध्यान देना चाहिए। आयुर्वेदानुसन्धान की बड़ी-बड़ी योजनाएँ सरकार द्वारा परिचालित की जा रही हैं; केवल यह सुनकर और सोचकर सुख-स्वप्न देखना वैद्यों के लिए बहुत भ्रान्तिपूर्ण सिद्ध होगा।

वैद्यगण सहयोग दें

यह अत्यन्त वाञ्छनीय है कि आयुर्वेद के अनुसन्धान के सम्बन्ध में जहाँ भी कुछ प्रयास हो, उनमें वैद्य-जगत् भरपूर सुरुचि तथा उत्कण्ठापूर्वक सहयोग करे। तभी अनुसन्धान के प्रयास सर्वथा सफल हो सकेंगे। वैद्यगण अपने अनुभव और सुझाव प्रेषित करके तो सहयोग कर ही सकते हैं, सरकार जो कुछ कर रही है, उसमें वैद्य-जगत् का सहयोग यदि मिल जायगा तो कार्य की शक्ति और क्षेत्र स्वतः ही बढ़ जायगा। जहाँ तक हमें पता चला है सद्वैद्यों ने अपने सुझाव और अनुभूत प्रयोग परीक्षण एवं अनुसन्धान के निमित्त उचित मात्रा में जामनगर नहीं भेजे हैं, जिनके अभाव में वहाँ अनुसन्धान कार्य कुछ शास्त्रीय योगों तक ही सीमित है। इतने ही से लक्ष्य की पूर्ति संभव नहीं हो सकती। वैद्यगण अपने अनुभव में आये योग यदि वहाँ भेजें और उन पर विधिवत् प्रयोग-परीक्षण एवं अनुसन्धान किया जाय तो कुछ वास्तविक कार्य सामने आ सके।

हम नित्य ही समाचार-पत्रों में देखते हैं कि विज्ञापनों अथवा विवरणों में आयुर्वेद की 'रामबाण', 'आशुफलप्रद', 'चमत्कारिक', 'शतानुभूत' आदि विशेषणयुक्त प्रभावपूर्ण औषधों की चर्चा होती है। अनेक औषध-निर्माता अपनी औषधों के विषय में भाँति-भाँति की बातें प्रकाशित करते हैं। यदि यह प्रकाशन केवल प्रचार–विज्ञापन के लिए नहीं है, और उसमें तीन चौथाई भी तथ्य है तो ऐसी औषधों का पूरा विवरण अनुसन्धान केन्द्र पर पहुँचाना चाहिए और उनका परीक्षण होना चाहिए।

बहुत से व्यक्तिगत चिकित्सक यथार्थ ही कुछ सद्यः फलकारी योग जानते हैं; परन्तु वे योग यदि कुछ व्यक्तियों के मन में अथवा डायरियों में पड़े रहेंगे, तो उनसे जन-कल्याण नहीं होगा और वे जहाँ के तहाँ समाप्त हो जायेंगे। आयुर्वेद का इतिहास इस बात का साक्षी है, कि अपने योग पुत्र तक को न बताने और अति गुप्त रखने की परम्परा ने हमारा कितना अधिक ह्रास किया है। आज भी बहुत से आयुर्वेद चिकित्सक रोग विशेष की अचूक चिकित्सा का दावा करते हैं। कई ऐसे रोगों की चिकित्सा की गारण्टी देते हैं जिन पर संसार के वैज्ञानिक अब तक विचार कर रहे हैं। हमारे यहाँ कोई कैंसर के विशेषज्ञ कहे जाते हैं तो कोई यक्ष्मा के। कोई श्वास-दमा को निश्चित रूप से दूर करनेवाले बताये जाते हैं तो कोई कुष्ठ की अमोघ औषधि जानने में प्रसिद्ध हैं। ऐसे कुछ सद्वैद्यों को पर्याप्त ख्याति भी मिली है। समय की माँग है कि वे विद्वान् सद्वैद्य अपने योगों को अनुसन्धान के लिए प्रदान कर दें। इससे उनकी और भी अधिक ख्याति होगी और आयुर्वेदोद्धार एवं जन-कल्याण का पुण्य उनको मिलेगा।

अनुसन्धान के निमित्त योग केवल आयुर्वेदीय या यूनानी ही भेजे जावें, जो सर्वथा मौलिक हों या शास्त्रीय हों। जिन योगों अथवा औषध विशेषों पर अब तक विचार एवं परीक्षण हो चुका है, अथवा जिनको पहले से ही किसी रोग विशेष पर अधिकारी मान लिया गया है—उन औषधों अथवा उनके योगों को भेजना निरर्थक पुनरावृत्ति ही होगी। ऐसी वनस्पति या योग, जो अब तक प्रकाश में न आये हों और किसी रोग पर अधिकाधिक प्रभावकर हों, उन्हें उनके जानकार वैद्य कृपया जामनगर की केन्द्रीय अनुसन्धानशाला के संचालक महोदय को पूरे विवरण के साथ लिख भेजें। इस प्रसंग में शतप्रतिशत लाभकारी औषध-योग भेजना तो

उचित है ही, ऐसे योग भी जिनको सत्तर प्रतिशत रोगियों पर लाभकर अनुभव किया गया हो, अनुसन्धान के निमित्त भेजना हितकर होगा।

यहाँ अपनी ओर से एक बात स्पष्ट कह देना हम आवश्यक समझते हैं कि अनुसन्धान के लिए योग भेजने में लोग अत्युत्साह से काम न लें। यों तो पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः ही अनुभूत प्रयोग छपा करते हैं। हमारी समझ में अनुभूत योगों की यह सस्ती परम्परा अच्छी नहीं है। 'सचित्र आयुर्वेद' ने सस्ती कीर्ति पाने के लिए कभी इस परम्पराको नहीं अपनाया और प्रयोग या प्रश्नोत्तर प्रकाशन नहीं किया। प्रायः देखा जाता है कि लोग दस-बीस रोगियों पर कोई योग चलाकर ही उसे शतानुभूत समझ बैठते हैं और वाहवाही लूटने का प्रयास करने लगते हैं। ऐसे कीर्तिलिप्सावालों की कमी नहीं जो केवल नाम कमाने के लिए ही मनमाने योग भेजना आरम्भ कर दें। ऐसे सज्जनों से हमारी प्रार्थना है कि वे कृपाकर अनुसन्धान-हेतु अल्पज्ञता-भरे योग न भेजें। ऐसा करने से आयुर्वेद वृथा ही बदनाम होगा। हमारा आग्रह उन ही सद्वैद्यों से है जिनकी जानकारी और अनुभव में यथार्थ लाभकारी प्रयोग हैं। जैसे सीकर के पं० प्रह्लादराय वैद्य हजारों रोगियों पर एक श्वासनाशक औषध का प्रयोग कर चुके हैं। और भी बहुत वैद्य ऐसे हैं—वे कृपया अपने योग जामनगर अवश्य भेजें।

सद्वैद्यों की ओर से सविवरण योग भेजने मात्र का सहयोग अनुसन्धान के इस विशाल प्रयास को बहुत अंशों में सफल बनाने में समर्थ हो सकेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। क्योंकि केवल शास्त्रीय योगों पर परीक्षण चलते रहने की अपेक्षा अनुभव में आये हुए नवीन प्रयोगों पर किया गया अनुसन्धान समय कम लेगा और कार्य अधिक दिखायेगा। इन पंक्तियों के द्वारा हम वैद्य-समाज से आग्रहपूर्ण निवेदन करते हैं कि आयुर्वेद अनुसन्धान के इस राजकीय प्रयास के प्रति वैद्यगण भरपूर सुरुचि से काम लेवें और अपना यथा-सम्भव सहयोग इस कार्य में प्रदान करें।

आयुर्वेदानुसन्धान के कार्यों के प्रति स्वयं वैद्य-जगत् की ज़रा भी उपेक्षा अथवा पूर्ण सुरुचि का अभाव—इस कार्य की सफलता में बाधक हो जायगा और उससे आयुर्वेद के भविष्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। वैद्यों को इस चेतावनी की ओर ध्यान देना चाहिए।

राज्याधिकारियों का कर्त्तव्य

इस प्रसंग में यहाँ राज्याधिकारियों से भी कुछ निवेदन करना हमें वांछनीय प्रतीत होता है। विशेषकर जो लोग राज्य की ओर से इस कार्य में लगे हैं और जो इसके अधिकारी हैं, उन्हें चाहिए कि वे प्रयत्नपूर्वक वैद्य-समाज से अपना संपर्क बढ़ावें। इतने वर्षों से जामनगर में अनुसन्धान का विस्तृत कार्य हो रहा है, परन्तु उसके विषय में विशिष्ट जानकारी का विवरण कदाचित् कभी भी, कम-से-कम, वैद्य-जगत् को नहीं दिया गया। वैद्यों को जब तक इस योजना के विषय में भरपूर जानकारी नहीं होगी, तब तक उनका आकर्षण इस ओर होना स्वभावतः ही सहज नहीं है। हम देखते हैं कि पाश्चात्य विज्ञान के क्षेत्र में जब कभी कोई अनुसन्धान-कार्य होता है, चाहे वह व्यक्तिगत हो, चाहे राजकीय—उसका पद-पद का विवरण जनता और उससे सम्बन्धित लोगों की जानकारी के लिए निरन्तर प्रकाशित किया जाता है। विज्ञान से सम्बन्धित अखबारों में उस कार्य की चर्चाएं होती रहती हैं, जिससे सम्बन्धित जनों में उत्कण्ठा जाग्रत होती रहती है। परन्तु हमारे जामनगर के अनुसन्धानकेन्द्र ने इस नीति को क्यों नहीं अपनाया, यह बात हमारी समझ में नहीं आती। न तो राज्य की ओर से स्वयं का ऐसा कोई प्रबन्ध है कि जामनगर की अनुसन्धानशाला में हो रहे कार्य का विवरण वैद्यों के लिए प्रकाशित किया जाय और न ही आयुर्वेदीय समाचार-पत्रों को वहाँ के कार्य का विवरण प्रकाशनार्थ दिया जाता है। देश में आयुर्वेदीय-पत्रों की संख्या कम नहीं है। प्रायः प्रत्येक प्रादेशिक भाषा में आयुर्वेद विषयक मासिक-पत्र प्रकाशित होते हैं। यदि इन पत्रों में ही जामनगर के कार्यों का विवरण प्रकाशित कराया जाता रहे तो देशभर में फैले हुए वैद्यों को कार्य की जानकारी मिलती रहे और उनका उत्साह बढ़ता रहे। हमारी केन्द्रीय सरकार अपने विभिन्न विकास कार्यों के प्रचार के लिए लाखों रुपया व्यय करती है, भाँति-भाँति की प्रदर्शनियाँ लगती हैं, प्रचार-साहित्य प्रचुर मात्रा में जनता में वितरित किया जाता है, सिनेमा में फिल्में दिखाई जाती हैं—ऐसे ही अन्य अनेक प्रकारों से सरकार यह प्रयत्न करती है कि देश में हो रहे विभिन्न निर्माण एवं विकास कार्यों का अधिकाधिक विवरण जन-साधारण तक पहुँचता रहे। परन्तु आयुर्वेद के विकास के लिए हो रहे राजकीय प्रयत्नों का विवरण वैद्य-जगत् को

भी न देना कहाँ तक उचित है, यह हमारी समझ में नहीं आता। हमारा सरकार से आग्रह है कि वह कम-से-कम जामनगर की अनुसन्धानशाला के कार्यों के विषय में अधिक-से-अधिक जानकारी आयुर्वेद-जगत् के समक्ष प्रस्तुत करने का शीघ्र प्रबन्ध करे। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि अनुसन्धान-शाला के संचालक के कार्यालय से मासिक विवरण आयुर्वेद-पत्रों को प्रकाशनार्थ भेजा जाता रहे। ऐसा करने से वैद्यगण सरकार के साथ सहयोग करने के लिए स्वयं ही उत्कण्ठापूर्वक प्रवृत्त होंगे और उनमें यह विश्वास जाग्रत होगा कि हमारी सरकार उनके भविष्य के लिए और उनके विज्ञान के लिए कुछ यथार्थ एवं रचनात्मक प्रयत्न कर रही है।

भ्रमपूर्ण वातावरण

कहना न होगा कि राजकीय प्रयत्नों की जानकारी के अभाव में और विशेषकर जामनगर की अनुसन्धानशाला के कार्यों के विषय में किंचित् भी विवरण न मिलने के कारण ही आयुर्वेद-जगत् का जनसामान्य सरकार के आयुर्वेद-कार्यों के प्रति पूर्ण विश्वस्त नहीं हो पा रहा है। आयुर्वेद के लिए किये जानेवाले राजकीय कार्यों के सम्बन्ध में वैद्य-जगत् में एक भ्रमपूर्ण वातावरण है, जिससे वैद्यों में इन महत्वपूर्ण कार्यों के प्रति भी कोई रुचि नहीं है और उनका सक्रिय सहयोग सरकार को मिल नहीं रहा है। वैद्यों का सहयोग लेने के लिए सरकार को यह तो बताना ही चाहिए कि वह आयुर्वेद के लिए अमुक कार्य अमुक पद्धति और पैमाने पर कर रही है।

जहाँ तक आयुर्वेद के अनुसन्धान विषयक राजकीय प्रयासों का प्रश्न है, हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि वैद्य-जगत् में यह धारणा है कि राज्य की ओर से आयुर्वेदा-नुसन्धान के कार्य सही दिशा और दृष्टिकोण से नहीं किये जा रहे। ऐसी धारणा के कुछ प्रवल कारण भी हैं और उनमें सबसे मुख्य तो यही है कि वैद्यों को अनुसन्धान कार्यों का कुछ भी विवरण नहीं दिया गया। सत्य विवरण के अभाव में भ्रान्त धारणा का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही नहीं अनिवार्य भी है। इसके अतिरिक्त यदा-कदा ऐसी चर्चाएं सुनने में आती हैं जिनसे उक्त भ्रान्त धारणा और भी बलवती हो जाती है। हमें स्मरण है कि गत १५, १६ अप्रैल सन् १९५५ को लखनऊ में राज्य चिकित्सा-परिषद् के द्वितीय अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल माननीय श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने कहा था—"केन्द्रीय सरकार की ओर से आयुर्वेद में अनुसन्धान को प्रोत्साहन देने का जो दावा किया जाता है, वह सिर्फ आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों का इस दृष्टि से परीक्षण है कि उन्हें अन्ततः एलोपैथी की दवा बना लिया जाय। यह वस्तुतः आयुर्वेदिक अनुसन्धान नहीं, एलोपैथिक अनुसन्धान है। देश में आयुर्वेदिक अनुसन्धान के लिए आयुर्वेद के विशिष्ट विद्वानों की एक केन्द्रीय परिषद् स्थापित की जानी चाहिए।"—यह बात एक ऐसे महत्वपूर्ण सम्मेलन के अवसर पर कही गयी थी, जिसके प्रथम अधिवेशन का उद्घाटन भारत के राष्ट्रपति ने किया था। कहनेवाले व्यक्ति, अवसर और समागम—तीनों ही विशिष्ट हैं—फिर उस बात पर ध्यान क्यों न जावे? और यदि वैद्य-जगत् इस तथ्य को सही माने तो कैसे उसकी भावना सरकार के अनुसन्धान कार्यों में सहयोग देने की हो सकती है?

गत वर्ष भी एक बार ऐसी चर्चा सुनने में आई थी कि केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री से जब कुछ व्यक्ति मिलने गए तो चर्चा के प्रसंग में उन्होंने कहा कि, 'अनुसन्धान करने पर जो देशी औषधें बहुत गुणकारी प्रतीत होंगी, उन्हें एलोपैथी में मिला लिया जायगा।'

ऐसे प्रचार से स्वाभाविक ही वैद्य-जगत् में सरकार के कार्यों पर अविश्वास उत्पन्न होता है। सम्बन्धित अधिकारियों को चाहिए कि वे इन बातों का स्पष्टीकरण कर दें और जामनगर में हुए कार्य का स्पष्ट एवं विस्तृत विवरण वैद्य-समाज के समक्ष रखकर यह बता दें कि उनकी ओर से जो अनुसन्धान हो रहा है, वह वास्तव में आयुर्वेद का अनुसन्धान है, और आयुर्वेद पद्धति पर आयुर्वेद के लिए ही किया जा रहा है। पूरा और यथातथ्य विवरण पाकर वैद्यगण सरकार को वह सहयोग स्वतः ही देंगे, जिसके बिना सरकार के अनुसन्धान-प्रयत्न निष्फल नहीं तो अधूरे अवश्य रह जायेंगे।

जहाँ तक हमारी जानकारी है जामनगर की अनुसन्धान-शाला में ख्याति प्राप्त विद्वान् वैद्यराजों का एक दल विधिवत् कार्य कर रहा है और वैद्यों की सम्मति के आधार पर ही वहाँ आयुर्वेदीय औषधों का आयुर्वेद सिद्धान्तानुसार रोगियों पर प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा अनुसन्धान किया जा रहा है। इसी आधार पर हम वैद्य-जगत् को इस कार्य में सहयोग करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

टिप्पणियाँ

उत्तर प्रदेश के आयुर्वेद छात्र

विगत प्रायः आठ महीनों से उत्तर प्रदेश में आयुर्वेद की स्थिति गम्भीर चर्चा का विषय रही बनी है। बात यहाँ तक बढ़ी कि प्रदेशव्यापी जोश उमड़ आया और प्रदेश के मुख्य राजनीतिज्ञों का ध्यान उसने आकर्षित किया। आयुर्वेदिक छात्रों ने हड़ताल और आमरण अनशन किए। छात्रों के प्रदर्शनों पर लाठी-गोली वर्षा के प्रसंग में एक निरपराध का बलिदान हुआ और ३० से ऊपर व्यक्ति घायल हो गए। राज्य विधान सभा के विरोधी नेताओं के प्रयत्न से कुछ समझौता कराया गया, तब कहीं वातावरण में ठंडक आई। कदाचित् यह पहला ही अवसर है जब कि देश के किसी भाग में आयुर्वेद का नाम लेकर इतना गुल-गपाड़ा हुआ हो।

समझौता या आन्दोलन-समाप्ति के नाम पर जो प्रयास किया गया है, उसको प्राथमिक सहायता की साधारण मरहम-पट्टी ही कहा जा सकता है, क्योंकि उससे न तो समस्या का हल हुआ है और न यह विश्वास किया जा सकता है कि आगे फिर कोई वितण्डावाद खड़ा नहीं होगा। हड़ताली छात्रों ने इस आश्वासन पर आन्दोलन स्थगित किया है कि उनको मेडिकल कालिज में ले लिया जायगा। उधर सरकार ने अपने आश्वासन के साथ शर्त रखी है कि यदि सब छात्र एकमत होंगे तो वह उनके नाम मेडिकल कालिज में भर्ती के लिए भिजवा देगी। केवल नाम भिजवा देगी, कोई सिफारिश अपनी ओर से नहीं करेगी।

पहली बात तो यह कि मेडिकल कालिज में भर्ती होने की शर्त पर सब छात्र एकमत नहीं हैं। दूसरी बात सरकार ने केवल नाम भेजने का आश्वासन दिया है, न कि मेडिकल कालिज में भर्ती करा देने का। विश्वविद्यालय यदि चाहेगा तो इन छात्रों को मेडिकल कालिज में ले लेगा, न चाहेगा तो नहीं लेगा। इनमें सभी छात्र इन्टर साइंस नहीं हैं जो कि मेडिकल कालिज की अनिवार्य प्रवेश योग्यता है। उधर मेडिकल कालिज के छात्रों ने आयुर्वेदीय छात्रों को उनके यहाँ भर्ती किये जाने के प्रश्न पर उसी दिन हड़ताल कर दी। लखनऊ के एलोपैथ डाक्टरों, मेडिकल कालिज के प्रोफेसरों, मेडिकल एसोशियेशन के सदस्यों तथा लखनऊ विश्वविद्यालय की मेडिकल फैकल्टी के डीन ने इन आयुर्वेदीय छात्रों को मेडिकल कालिज में भर्ती किये जाने की चर्चा का विरोध किया है। यह विरोध केवल चर्चा पर हुआ है, वास्तव में भर्ती करने का अवसर जब आयेगा तो विरोध का तीव्रतर हो जाना क्या असम्भव है? इस प्रकार फरवरी '५८ से चलनेवाले आयुर्वेद छात्रों के इस ऐतिहासिक विद्रोह का अन्त कुछ ऐसा हुआ है कि एक आन्दोलन को दबाकर दूसरे आन्दोलन के बीज बो दिए गए हैं। दूसरी ओर यों समझिए कि आठ महीने तक हड़ताल और जोश-खरोश के प्रपंच में पड़े हुए आयुर्वेदीय छात्र, कुएं में से निकल कर खाईं में जा पड़े हैं। लखनऊ के आयुर्वेद-आन्दोलन के अन्त का इतना ही सारांश हमारी समझ में आता है।

गोलीकाण्ड के बाद, विरोधी नेताओं ने बीच-बचाव करके, और सरकार ने अनिश्चित आश्वासन देकर, स्थिति का तात्कालिक समाधान कर लिया तथा दुःखद सम्भावनाओं का निवारण कर लिया, यहाँ तक सन्तोष की बात है। परन्तु जो कुछ हुआ है, उसको प्रस्तुत समस्या का हल समझना भूल ही होगी। इस सम्पूर्ण प्रसंग में छात्रों का हठ और सरकार की अनुदारता—दोनों ही खेदजनक हैं। विगत जून मास के अग्रलेख में हमने छात्रों से आग्रह किया था कि वे हड़ताल वापस ले लें और अपनी यथार्थ उचित माँगों के लिए अन्य प्रकार से संघर्ष करें। साथ ही सरकार को हमने सुझाव दिया था कि अध्ययन-सुविधा एवं अधिकार विषयक छात्रों की उचित माँगों को अविलम्ब स्वीकार किया जाय। हमें खेद है कि दोनों पक्षों ने विवेक से काम नहीं लिया।

और, जो हल निकाला गया है वह मूल समस्या से अधिक उलझनपूर्ण है। पहले भी एक बार इसी आयुर्वेदिक कालिज के लगभग १६८ छात्रों को एम० बी० बी० एस० कक्षाओं में प्रविष्ट कराया गया था जिनमें से केवल एक उत्तीर्ण हो सका और उसको भी मेडिकल काउन्सिल की मान्यता प्राप्त नहीं हो सकी। फिर इन हड़ताली आयुर्वेद छात्रों को मेडिकल कालिज में भर्ती कराने का हल कहाँ तक बुद्धिमत्तापूर्ण कहा जा सकता है? दूसरी ओर स्थिति स्पष्ट है कि इन छात्रों का मेडिकल कालिज में लिया जाना ही सुनिश्चित नहीं और लेना निश्चित भी हो जाय तो एलोपैथी छात्रों का नया आन्दोलन फिर एक समस्या खड़ी कर देगा। ऐसी दशा में उत्तर प्रदेश के आयुर्वेद छात्र-आन्दोलन का जो समाधान खोजा गया है, वह समस्या का वास्तविक हल नहीं है। ऐसा होना न आयुर्वेद छात्रों के लिए हितकर है और न ही सरकार के लिए।

हम समझते हैं, अब ऐसा वातावरण प्रस्तुत है जब कि दोनों ही पक्ष शान्तिपूर्वक एवं गम्भीरता के साथ विचार करके इस समस्या का ऐसा समाधान खोज लें जो सरकार के लिए सर-दर्द न हो और जिससे आयुर्वेद छात्रों का बिगड़ता हुआ भविष्य नष्ट होने से बच जावे। ऐसा हितकारी हल खोज लेना और उसका अनुसरण करना असम्भव नहीं है, बशर्ते कि दोनों ही पक्ष पूर्वाग्रह को त्याग दें। राज-हठ, और बालहठ—दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित करने की नीयत से सोचा जाय और धुरन्धर लोग राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति की लालसा को थोड़ा तिलांजलि दे दें तो समुचित हल निकल सकता है।

निश्चय ही छात्रों की स्थिति दयनीय एवं त्रिशंकुवत् हो गई है। आखिर वे कहाँ जायँ और कहाँ खपें! डाक्टर वर्ग उनको लेना नहीं चाहता। वैद्य वर्ग उन्हें अशुद्ध समझता है! और कोई राजमान्य पद्धति ऐसी है नहीं जिसमें वे अपने को मिला लें! राज्य सरकार को छात्रों की इस विषम स्थिति पर सहानुभूति पूर्वक विचार करना चाहिए। इन छात्रों ने उस पाठ्य-क्रम के आधार पर शिक्षा पाई है, जिसे स्वयं राज्य सरकार ने प्रचलित किया था। वह पाठ्य-क्रम यदि दूषित था, तो इसमें बेचारे छात्रों का क्या अपराध है? आज उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री उस पाठ्य-क्रम के आधार पर शिक्षित स्नातकों को 'अभागा' 'नीम हकीम' 'क्वैक्स' इत्यादि विदूषणों से स्मरण करते हैं—वे स्वयं ही यह घोषणा करते हैं कि उस प्रकार के पाठ्य-क्रम से शिक्षित स्नातक को चिकित्सा का कोई ज्ञान नहीं होता—फिर विचार करने की बात है कि मुख्य मन्त्री द्वारा निन्दित पाठ्य-क्रम से पढ़े छात्रों की समाज में क्या स्थिति होगी? पाँच-पाँच वर्ष राज्य के महाविद्यालय में गँवाकर—उदर पोषण के लिए वे क्या करें? इस प्रश्न का उत्तर देने की जिम्मेवारी सरकार पर है! क्योंकि पाठ्य-क्रम विद्यार्थियों ने नहीं बनाया था—सरकार ने निर्धारित किया था। जो मुख्य मन्त्री पाँच वर्ष तक उनकी ही सरकार के पाठ्य-क्रम के आधार पर पढ़े स्नातकों को 'आभागा' और 'नीम हकीम' कहना उचित समझते हैं, उन्हें यह जिम्मेवारी उठानी चाहिए कि वे इन अपने ही बनाये 'अभागों' को ठिकाने लगाने का मार्ग निकालें। जिन छात्रों का भविष्य सरकार की भूल से बिगड़ा है, उसको सुधारना भी सरकार का नैतिक उत्तरदायित्व है। मेडिकल कालिज में भर्ती करने के लिए नाम भेजने मात्र से उस नैतिक उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं हो जाता।

विशेषकर उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री एवं स्वास्थ्य मन्त्री और साधारणतः सरकार से हम यह अपेक्षा रखते हैं कि वह इन छात्रों के प्रश्न पर जिम्मेवारी के साथ विचार करे और इनकी ऐसी माँगों को स्वीकार करे, जो यथार्थ ही स्वीकार करने योग्य हैं। जहाँ तक हमें पता है, छात्रों की माँगों में विकल्प था। हमारी समझ में नहीं आता कि सरकार ने यही विकल्प क्यों स्वीकार किया कि छात्रों को मेडिकल कालिज में भर्ती करने की नामावली देकर उन्हें उनके भाग्य पर छोड़ दिया जाय? हमारा सरकार से आग्रह है कि इन छात्रों को आयुर्वेद छात्र ही रखा जाय और अध्ययन-सुविधा तथा पदाधिकार के सम्बन्ध में इनकी जो उचित माँगें हैं, सरकार उनको स्वीकार करे।

आयुर्वेद छात्र आन्दोलन का जो हल प्रस्तुत किया गया है, उसको हम छात्रों के लिए नितान्त अहितकर समझते हैं और आयुर्वेद के लिए अपमानजनक! इसलिए उस निश्चय का हम विरोध करते हैं। छात्रों का एक वर्ग यदि मेडिकल कालिज में भर्ती होने के प्रस्ताव का समर्थक है तो भी यह प्रस्ताव हमारी समझ में अव्यवहार्य और त्याज्य है।

आयुर्वेद छात्रों को हम पहले भी यह परामर्श दे चुके हैं कि उन्हें अपनी स्थिति पर, क्षणिक आवेशवश नहीं प्रत्युत शान्तिपूर्वक विचार करना चाहिए। डाक्टर कहलाने का मोह उनके भविष्य को निश्चित रूप से अन्धकारमय बनायेगा। छात्रों को चाहिए कि वे अपने को आयुर्वेद का ही छात्र एवं वैद्य ही समझें और अपने अन्दर आयुर्वेद के प्रति सद्भावना, प्रेम एवं निष्ठा के भाव जाग्रत करके वैद्य समुदाय की सहानुभूति प्राप्त करें। उनकी ऐसी माँगों का, जिनमें आयुर्वेद के प्रति निष्ठा का भाव होगा और जिनसे वैद्य का सम्मान बढ़ेगा—सदा और सर्वथा समर्थन किया जायगा। परन्तु वे अपने को जबरन डाक्टर बनाना चाहें और आयुर्वेद पाठ्य-क्रम अथवा आयुर्वेद विद्यालय को समाप्त करने की इच्छा रखें—तो न तो किसी ओर से उन्हें समर्थन मिल सकता है और न ही उनकी स्थिति में कोई सुधार हो सकता है। हमारा आग्रह है कि छात्र सद्बुद्धि से काम लें।

वाराणसी की हड़ताल

लखनऊ के राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय की ही भाँति वाराणसी हिन्दू-विश्वविद्यालय के आयुर्वेद छात्रों ने हड़ताल और अनशन जारी कर रखा है। वाराणसी का यह आन्दोलन विगत ४ अगस्त से तीव्रता के साथ चल रहा है। यों तो काशी विश्वविद्यालय के लिए मुदालियर आयोग की सिफारिशों के आधार पर राष्ट्रपति द्वारा जारी किये गए अध्यादेश—(जो कि इन पंक्तियों के लिखते समय तक लोकसभा में विधेयक रूप में विचारार्थ प्रस्तुत है) को ले कर विश्वविद्यालय के छात्रों में असन्तोष है और वे विविध प्रकार से अपने रोष को प्रकट कर रहे हैं। उपकुलपति के घर पर धरना, विधेयक के विरोध में छात्रों का हस्ताक्षर आन्दोलन, कुछ छात्रों का आमरण अनशन, रजिस्ट्रार और अन्य प्रमुख अधिकारियों के निवास-स्थान पर पिकेटिंग आदि—इस आन्दोलन ने कई रूप अपनाये हैं।

विश्वविद्यालय स्थित आयुर्वेद कालिज के छात्रों ने कुछ अन्य माँगों के साथ एक स्थायी प्रिंसिपल की नियुक्ति की माँग को ले कर हड़ताल की है। प्रायः इन्हीं माँगों को ले कर वहाँ ऐसा ही आन्दोलन पिछले अनेक वर्षों से चल रहा है। २० अप्रैल सन् '५७ से तो आयुर्वेद छात्रों की हड़ताल का ताँता-सा लगा चला आ रहा है। पिछली बार अगस्त '५७ के प्रथम सप्ताह में रजिस्ट्रार द्वारा माँगें पूरी करने के लिखित आश्वासन पर हड़ताल समाप्त हुई थी। परन्तु स्थायी प्रिंसिपल की नियुक्ति न होने से १४ दिसम्बर '५७ को छात्रों ने फिर हड़ताल आरम्भ कर दी जो १४ फरवरी '५८ को समाप्त हुई थी। फिर भी छात्रों की माँगों की पूर्ति के विषय में कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया—इसके परिणाम में पुनः हड़ताल हो गई जो अब तक चल रही है।

आयुर्वेद के शिक्षण क्षेत्र में यह कैसी विचित्र और दुःखद स्थिति है, जिसका मनन करने से हृदय परितप्त हो जाता है। वाराणसी के आयुर्वेद छात्रों की अन्य माँगों को एक ओर छोड़ दिया जाय—परन्तु स्थायी प्रिंसिपल की नियुक्ति की माँग को तो प्रत्येक समझदार सर्वथा उचित ही कहेगा। यह खेदजनक बात है कि पिछले प्रायः बारह वर्षों से विश्वविद्यालय के आयुर्वेद विद्यालय में किसी स्थायी प्रिंसिपल की नियुक्ति नहीं की गई। इस प्रश्न पर छात्रों में यदि असन्तोष होता है तो वह कदापि अनुचित नहीं है।

कहा जाता है कि स्थायी प्रिंसिपल की नियुक्ति इस कारण नहीं की जा सकी कि उस पद के भार को सम्भालने योग्य कोई अनुभवी एवं सुयोग्य व्यक्ति विश्वविद्यालय को नहीं मिला। यह तर्क बड़ा हास्यास्पद प्रतीत होता है। कारण जो कुछ भी रहा हो, हमारी दृष्टि में छात्रों की माँगें उचित हैं। उनकी यथासम्भव पूर्ति के साथ स्थायी प्रिंसिपल की नियुक्ति तो अविलम्ब ही की जानी चाहिए।

कुछ काल पूर्व स्थायी प्रिंसिपल के पद पर श्रीयुत डाक्टर उडुप्पाजी की सेवाएं प्राप्त करने की चर्चा चली थी। हम इस प्रस्ताव का स्वागत करते हैं। डाक्टर उडुप्पाजी प्रभावशाली व्यक्तित्ववाले, बहुत कार्यकुशल, परिश्रमी, सुयोग्य और अनुभवी विद्वान् हैं। यह उल्लेखनीय है कि श्री उडुप्पाजी इसी कालिज के ए० एम० एस० हैं। आयुर्वेद और आधुनिक विज्ञान पर उनका समानाधिकार है। विदेश जा कर उन्होंने शल्य का उच्च अध्ययन किया है। उनकी योग्यता का सबसे ताजा प्रमाण यह है कि हाल ही में भारत सरकार ने उनके ही नेतृत्व में एक समिति नियुक्त की है जो देशभर में हो रहे आयुर्वेदोत्थान कार्यों का अध्ययन करेगी और अपने सुझाव प्रस्तुत करेगी। हम चाहते हैं कि केन्द्रीय सरकार डाक्टर उडुप्पाजी की सेवाएं विश्वविद्यालय के आयुर्वेद कालिज को प्रदान करे ताकि वहाँ के छात्रों के असन्तोष का स्थायी रूप से समाधान हो सके। विशेषकर हम उदार राष्ट्रपति महोदय (जो कि काशी विश्वविद्यालय के विज़िटर भी हैं,) से प्रार्थना करेंगे कि वे इस विषय में हस्तक्षेप करके विश्वविद्यालय के आयुर्वेद छात्रों की बारह वर्ष पुरानी माँग की पूर्ति कराने की कृपा करें, ताकि आयुर्वेद शिक्षण क्षेत्र की अशान्ति का एक अध्याय समाप्त हो और काशी विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा सुरक्षित रह सके।

किलास या श्वित्र :: एक विवेचन

वैद्य रणजितराय

आजकल जो रोग उत्तरोत्तर बढ़ते हुए मानव-समाज के लिए विभीषिका उत्पन्न कर रहे हैं उनमें श्वित्र भी एक है। यह सत्य है कि इसमें कोई शारीर कष्टप्रद लक्षण नहीं होता तथा इस से मृत्यु भी नहीं होती, परिणामतया राजयक्ष्मा, कैन्सर, महाकुष्ठ, मधुमेह, हृद्रोग आदि के समान इस रोग ने सरकारों तथा राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य-संस्थाओं का ध्यान आकृष्ट नहीं किया है। परन्तु इसका जितना प्रसार होता जा रहा है उसे देखते निःसंशय अल्पकाल में ही इसपर भी जनस्वास्थ्य के जवाबदारों को ध्यान देना ही पड़ेगा।

संभावित कारण

संभव है, श्वित्र के वर्तमान प्रसार का कारण तिक्त रस का अयोग किंवा हीन योग और इस विरोधी रस का योग न होने से एवं साक्षात् भी चाय आदि के रूप में अतियोग के कारण हुआ मधुर रस का अतियोग हो। कैन्सर, मधुमेह, हृदय एवं धमनियों के रोग, अंशतः राजयक्ष्मा—ये सब आयुर्वेदमत से तिक्तरस के अयोग और/अथवा मधुर रस के अतियोग के ही कारण होनेवाले रोग हैं। तथापि, इसका प्रसार ठेठ वैदिक काल में भी अन्यून ही रहा होगा। कारण, अथर्ववेद में इस रोग में उपयुक्त वनौषधियों का उपयोग दर्शानेवाले दो सूक्त (२३-२४) हैं। इन सूक्तों में श्वित्र के लिए किलास शब्द का प्रयोग हुआ है। आयुर्वेदीय संहिताओं में भी यह संज्ञा इतनी ही प्रसिद्ध है। किलास की चिकित्सा ही पलित की भी चिकित्सा है, यह बात भी इन मन्त्रों में सूचित है। अन्वेषकों के लिए इन सूक्तों का विचार अति उपयोगी होने से इन्हें अर्थ-सहित उद्धृत करता हूँ।

वेदकाल में भी प्रसार

इन सूक्तों में किलास और पलित को चिकित्सा की दृष्टि से एक ही कोटि में रखा है। इसका अर्थ यह है कि वैदिक ऋषि के मत से दोनों रोगों की संप्राप्ति भी समान ही होगी। वेदमन्त्र में तो संप्राप्ति दी नहीं है। आयुर्वेदमत से पलित की संप्राप्ति आरम्भ में देता हूँ। आगे किलास की संप्राप्ति दी जाएगी। दोनों की तुलना रसप्रद हो सकती है।

पलित की संप्राप्ति सुश्रुत ने यह दी है :

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः।
पित्तं च केशान् पचति, पलितं तेन जायते ॥

सु. नि. १३।३७

तात्पर्य-**पलित** (बाल श्वेत होना) **दो प्रकार का है**—१. क्रोध, शोक या श्रम के कारण शरीरोष्मा की वृद्धि होती है। यह शिर में जाकर केशों के पका देती है। २. पुरुष पित्तप्रकृति हो तो उसके केश इतर प्रकृति के पुरुष की अपेक्षया शीघ्र पकते और श्वेत होते हैं। प्रथम पलित वैकृत तथा द्वितीय वैकृत कहा जाता है। पित्तप्रकृति पुरुष के लक्षणों में पलित एक लक्षण है। शार्ङ्गधर ने इसका जो एक पद्यात्मक लक्षण दिया है उसमें प्रथम ही लक्षण **'अकाले पलितैः व्याप्तः'** है।

पलित की चिकित्सा में सुश्रुत ने दो तैल दिए हैं। (देखिए : सु. चि. २५।२८-३७) इन में प्रथम **नीली तैल** का उपयोग अभ्यङ्गार्थ होता है। दूसरे **सैरेयकादि तैल** का उपयोग नस्य और अभ्यङ्ग दो रूपों में विहित है।

नीली तैल—नीलके पत्ते, भृङ्गराज, अर्जुनत्वक्, पिण्डीतक (मदनफल सदृश एक वृक्ष), बीजक तथा सहचर के पुष्प, (या श्यामा ?—पुष्प), हरीतकी, बिभीतक, आमलक, कमलिनी का कीचड़ (यह सर्व सम ग्राह्य है) ये द्रव्य तथा निर्माण के लिए लोहपात्र ले भृङ्गराज तथा त्रिफला के रस या क्वाथ में तैल विधान से तैल बनाएँ। सिद्ध तैल को एक मास लोहपात्र में रखें।

सैरेयकादि तैल—सहचर, जम्बू, अर्जुन तथा काश्मीरी (गम्भारी) के पुष्प, तिल, भृङ्गराज के बीज, आम्रास्थि (आम की गुठली), दोनों पुनर्नवा, कमलिनी का कीचड़, कण्टकारी, कासीस, पिण्डीतक, विजयसार, त्रिफला, लोहचूर्ण, अञ्जन, यष्टी, नीलोत्पल इन में प्रत्येक का एक-एक तोला चूर्ण ले मोदयन्ती (मल्लिका—डह्लन ; मेंहदी ?)

तथा विजयसार के रस या क्वाथ में कल्क बनाएँ। सात प्रस्थ विजयसार के क्वाथ एवं एक आढ़क बिभीतक के तैल में लोहपात्र में तैलसाधन करें। रखें भी लोहपात्र में ही।

अधिक विस्तार मूलग्रन्थ में ही देखें। यहाँ द्रव्यों का निर्देश इसलिए किया है कि कदाचित् आथर्वणी श्रुति में जिन द्रव्यों का उल्लेख हुआ है, उनमें कोई इन पाठों में निर्दिष्ट हो।

इन तैलों में प्रथम तैल तो निश्चित ही आजकल व्यवहार में आनेवाले केशरञ्जक कल्पों के समान है। इससे केश मूल से काले उगते हों यह प्रतीत नहीं होता। कारण, इसका निर्माण सम्यक् हुआ या नहीं इसकी परीक्षा तन्त्रकार ने यह लिखी है:

आसन्नपाके च परोक्षणार्थं
पत्रं बलाकाभवमाक्षिपेच्च।
भवेद्यदा तद् भ्रमराङ्गनीलं
तदा विपक्वं विनिधाय पात्रे।

(पत्र का अर्थ टीकाकार ने पक्ष–पंख दिया है)। तात्पर्य—तैल का पाक पूर्ण होने को आया हो तो उसकी परीक्षा के लिए इसमें बगुले का पंख डाले। वह यदि भ्रमर के शरीर के समान नीलवर्ण हो जाए तो इसे सम्यक् पक्व जान कर लोहपात्र में रखे।

अथर्ववेदीय सूक्त

पलित-संबन्धी इस विवेचन के प्रकाश में अथर्ववेदोक्त कुष्ठ-पलित चिकित्सा संबन्धी सूक्त देखें। चार-चार मन्त्रों के दो सूक्तों में प्रथम का विषय बताया गया है—**श्वेतलक्ष्म विनाशाय ओषधिस्तुतिः**—किलास या पलित के रूप में शरीर पर हुए श्वेत मण्डलों के विनाश के लिए उपयुक्त औषधों की स्तुति (यथार्थ स्वरूप वर्णन)।

नक्तं जातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत्॥

हे **नक्त** नामक ओषधे, हे **रामा, कृष्णा, असिक्नी** और **रजनी** नामक ओषधियो! किलास तथा पलित का तुम रञ्जन कर दो—इन के मण्डलों के स्थान पर प्राकृत वर्ण ला दो।

किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत्।
आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय॥

हे ओषधे, तू किलास, पलित और पृषत् रोगों को इस शरीर से पृथक् कर दे। हे रोगी, तेरा अपना प्राकृत वर्ण तुझे पुनः प्राप्त हो, शुक्ल वर्ण के कुष्ठ, पलित तथा पृषत् को दूर कर दे।

पृषत् शब्द लौकिक संस्कृत में बिन्दुओं के लिए प्रसिद्ध है। सो, श्वेत वर्ण के बिन्दुओं को यहाँ पृषत् कहा है। शेष एक प्रदेश पर मण्डल रूप में स्थित या सर्वाङ्ग स्थित श्वित्र को किलास कहा है। चिकित्सा में केवल रंग बदलने की बात नहीं है, रोगी का प्राकृत वर्ण इस चिकित्सा से लौट आता है, इतनी प्रभावी चिकित्सा यह है।

असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव।
असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत्॥

हे ओषधि, तेरा शरीर में लीन होना (प्रलयन) श्वेत वर्ण का नाशक है। तेरा शरीर पर रहना (आस्थान) श्वेत वर्ण का नाशक है। हे ओषधि, तू असिक्नी नामवाली है। पृषत् रोग को इस शरीर से दूर कर दे।

आभ्यन्तर उपयोग द्वारा शरीर के रस-रक्त में लीन हो कर रोग का निर्मूल करना **प्रलयन** शब्द से सूचित है। **आस्थान** शब्द तो स्पष्ट ही बाह्य उपयोग का वाचक है। इस प्रकार यह वनौषधि जो भी हो उसका **बाह्य और आभ्यन्तर उभयथा उपयोग** पृषत्, किलास तथा पलित को हरने वाला है।

अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत् त्वचि।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्य श्वेतमनीनशम्॥

वैद्य कहता है: किलास **अस्थिधातुगत** हो, तनु स्थित हो या त्वचा पर हो, दूषी (विष) द्वारा उत्पादित श्वेत चिह्न (मण्डल) को **ब्रह्म** नामक बनौषधि द्वारा मैं नष्ट करता हूँ।

चतुर्वेद भाष्यकार **जयदेव विद्यालंकार** जी ने 'तनूज' का अर्थ किया है त्वचा और अस्थि के मध्य मांस में उत्पन्न। आयुर्वेद की दृष्टि से यह ठीक ही है। अन्त में त्वचा या रस (रस-रक्त) गत किलास का उल्लेख है, सब से पूर्व अस्थि का तो मध्य में मांसधातु का ग्रहण संगत ही है। किंवा तनूज का अक्लिष्ट अर्थ सर्वाङ्ग की त्वचा पर व्याप्त यह भी ले सकते हैं।

अब चौवीसवाँ सूक्त देखिए। इस सूक्त की देवता (प्रतिपाद्य विषय) आसुरी नामक वनस्पति है।

सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ।
तदासुरी यधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन्॥

सुपर्ण प्रथम (श्रेष्ठ) औषध है। हे साधित औषध-कल्प, तू उसका (सुपर्ण का) पित्त है। वह (सुपर्ण का पित्त) और **आसुरी** नामक ओषधि कूटकर सेवनोपयुक्त बनाई जाती है। (उसके साथ अन्य वनस्पतियों का मिश्रण किया जाता है)। इस प्रकार यह आसुरी उन वनस्पतियों को भी औषधोपयुक्त रूप दे देती है।

सुपर्ण गरुड पक्षी का नाम है। उसके पित्त का उपयोग कदाचित् यहाँ विहित है। गत सूक्त में जो नक्त ओषधि दी है, उसके अर्थों में एक अर्थ जयदेव शर्माजी ने निघण्टु के आधार पर उलूक या प्रसह वर्ग के पक्षी दिया है। प्रसह वर्ग में गृध्र, उलूक, काक, श्येन आदि पक्षी पठित हैं। गरुड संहिताओं में तो निर्दिष्ट नहीं, परन्तु उसे भी इस वर्ग में लिया जा सकता है। गरुड किस पक्षी को कहा जाए यह निर्णय करना चाहिए। सुपर्ण शब्द यदि किसी वनौषधि का वाचक लिया जाए तो पित्त शब्द से उसके पित्त सदृश स्राव या रस का ग्रहण करना चाहिए। यह भी एक कल्पना की जा सकती है कि अंग्रेजी 'पिथ' शब्द वृक्ष या वनस्पति की त्वचा के अन्दर के भाग के लिए व्यवहृत होता है। मन्त्रगत पित्त शब्द कदाचित् उसका मूल हो। तात्पर्य—पित्त शब्द से सुपर्ण-नामक वनौषधि का अन्तर्गत काष्ठ कदाचित ग्राह्य हो। सुपर्ण शब्द सूर्य का भी वाचक है। औषध लगाकर रुग्ण को सूर्यताप में बैठाने का प्रचार है। कृत्रिम किरणों का भी उपयोग सोलेरियम में किया जाता है। किं बहुना, अब अगला मन्त्र देखें।

आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं किलास-नाशनम्।
अनीनशत् किलासं सरूपामकरत् त्वचम् ।।

ऊपर कहा है कि आसुरी-नामक वनौषधि प्रधानतया ले कर अन्य वनस्पतियों को उससे संयुक्त किया जाता है। प्रस्तुत मन्त्र में यह बात अधिक विशद रूप में कही है।—**आसुरी** किलास के लिए प्रथम (एक ही) औषध है। उससे यह किलासभेषज या किलासनाशन कल्प तय्यार किया जाता है। इसके उपयोग से किलास नष्ट होता है तथा रुग्ण त्वचा स्वस्थ त्वचा के समान रूप (वर्ण) वाली—सरूपा—होती है।

किलासभेषज तथा **किलासनाशन** ये दो पृथक् शब्द कदाचित् बाह्य और आभ्यन्तर भेद से द्विविध औषध प्रयोग के निर्देशार्थ प्रयुक्त हुए हैं।

सरूपा नाम ते माता सरूपा नाम ते पिता।
सरूपकृत् त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि ।।

त्वचा को सरूप करनेवाली होने से जिस का नाम ही सरूपा है उस अन्य वनौषधि को किंवा उल्लिखित आसुरी आदि में से किसी को सरूपा विशेषण देकर ऋषि उसकी स्तुति करते हैं—हे ओषधे, तेरी माता सरूपा है, तेरा पिता सरूपा है। तू रुग्ण अवयव को सरूप करने वाली है। इस मण्डल को सरूप कर।

पिता शब्द मूल का वाचक है। वैदिक तथा लौकिक संस्कृत के रहस्यों को समझनेवाले इस अर्थ को अच्छे प्रकार से समझ सकेंगे। पान अर्थ की 'पा' धातु है। उसके पिबति आदि रूप हैं। वृक्ष वाचक 'पादप' शब्द में यह धातु है। पाद या मूल से भूमिगत जल का पान या ग्रहण वृक्ष करता है, अतः उसे पादप कहा जाता है। रक्षण अर्थ की पा धातु भी है, जिससे पिता शब्द बनता है। पानार्थक पा धातु से वैदिक वाङमय में पिता शब्द व्युत्पन्न देखा जाता है, जिसका अर्थ—पिबति अनेन इति पिता—इस व्युत्पत्ति से मूल (जड़) किया जाता है। अथर्ववेद में ही दो सूक्त 'शर' के मूत्रल गुण की महत्ता दर्शानेवाले विद्यमान हैं। उनमें 'शर का पिता' यह मूल शब्द है। उसका अर्थ शरमूल लेना ही यथार्थ है। वहीं इसका विशेषण 'पर्जन्य' आया है। पर्जन्य मेघ का नाम है; मेघ शब्द 'मिह' धातु से बना है, जिससे मेढ्र, मेहन, प्रमेह, आदि शब्द बनते हैं। इस शब्दसाम्य से मूत्र प्रवर्तन करानेवाला यह अर्थ मेघ का लिया जाना संगत है। आगे 'शतवृष्ण्य' विशेषण दिया है, जिसका अर्थ प्रभूत मूत्र विसर्जन करानेवाला, यही लेना संगत होता है। किं बहुना, 'सरूपा वनस्पति का पिता' इन शब्दों का अर्थ होगा कि उसका एक उपयोगी अंग मूल है।

पिता शब्द के इस अर्थ के आधार पर ही **माता का अर्थ** भी लेना होगा। मान (मापना) अर्थ की मा धातु से यह बनता है। निर्माण अर्थ भी इसका है, पर वह 'निर्' उपसर्ग के योग से व्यक्ततर होता है। जननी-वाचक माता शब्द के मूल में यही अर्थ है। प्रस्तुत मन्त्र में मापन अर्थ में मा धातु का ग्रहण हुआ है। वृक्ष-वनस्पति की शाखाएँ अवकाश को जानो मापती हुई फैलती हैं, अतः उन्हें 'माता' कहा जाता है। किं बहुना, सरूपा वनस्पति के उपयुक्त अङ्ग मूल तथा शाखा दोनों हैं। अब अन्तिम मन्त्र देखें।

श्यामा सरूपंकरणी पृथिव्या अध्युद्भृता ।
इदमूषु प्रसाधय पुना रूपाणि कल्पय ।।

रूप शब्द संस्कृत में श्वेत, कृष्ण आदि वर्णों के लिए प्रसिद्ध है[1]। **श्यामा** ओषधी सरूप करनेवाली है। पृथिवी से ऊपर यह ऊँचाई में फैलनेवाली होती है। हे श्यामा ओषधि, तू पृषत्, किलास या पलित से पीडित इस रुग्ण के शरीर की चिकित्सा कर। इसके प्राकृत रूप को पुनः उत्पन्न कर।

इन दोनों सूक्तों में पृथक्-पृथक् अनेक वनौषधियाँ निर्दिष्ट हुई हैं, यही प्रतीत होता है। **जयदेव शर्माजी** ने निघण्टुओं के आधार पर यहाँ कहे एक-एक नाम से आयुर्वेद की कौन-कौन-सी औषधि ग्राह्य है, उसका उल्लेख किया है। इनमें कोई भी वनस्पति श्वित्र आदि पर प्रसिद्ध नहीं है। हाँ, आसुरी का अर्थ उन्होंने **राई या लाल सरसों** दिया है। वह कथंचित् चिन्तनीय हो सकता है। कारण, बाह्य उपयोगार्थ जितने भी कल्प अर्वाचीन शास्त्र में निर्दिष्ट हैं वे सभी अंग्रेजी में जिन्हें 'काउंटर इरिटेंट'[2] कहते हैं, उस वर्ग के हैं। त्वचा पर रक्तिमा उत्पन्न करने से आरम्भ कर स्फोट (छाले) उत्पन्न करने तक की विभिन्न अवस्थाएँ इनके लेप से होती हैं। राई या लाल सरसों की भी यही क्रिया होती है।

शर्माजी-निर्दिष्ट वनौषधियों में **बाकुची** नहीं है। चरकादि **काकोदुम्बरिका** का बाह्याभ्यन्तर उपयोग अति प्रशस्त बताया है। इस विषय का निर्देश हम आगे करेंगे। पर इस द्रव्य का भी नाम शर्माजी की सूची में नहीं है। सत्य यह है कि, निघण्टुओं में उन्हें ये द्रव्य मिले नहीं।

'असिक्नी' शब्द के विषय में चतुर्वेद भाष्यकार जी ने लिखा है कि इस नाम की कोई औषध प्रसिद्ध नहीं है। तथापि यह असि-कनी असिशिम्बी (?) प्रतीत होती है, जो व्रण-दोष नाशक है।

इस विषय में थोड़ा विचार किया जा सकता है। सूक्त में रात्रिवाचक नक्त तथा रजनी शब्द आए हैं। आयुर्वेद में रात्रिवाचक सभी नाम हरिद्रा, दारुहरिद्रा के वाचक हैं। वैदिक निघण्टु में 'असिक्नी' शब्द भी रात्रि का पर्याय है। सो संभव है नक्त, रजनी, असिक्नी किसी एक ही वनस्पति के नाम हों।

संस्कृत वाङमय की रसप्रद शैली

ऊपर 'पिता' शब्द के अर्थ की स्पष्टता करते संस्कृत भाषा की जो शैली दर्शाई है वह रजनी शब्द में भी स्पष्ट देखी जा सकती है। मन का अनेक प्रकार से रञ्जन करने वाली होने से रात्रि को रजनी कहा जाता है। परन्तु 'रञ्ज' धातु या उससे बने एवं धातु पाठ में इस धातु का अर्थ द्योतित करने के लिए प्रयुक्त 'राग' शब्द का अर्थ रंगना भी होता है। हरिद्रा रंग के कार्य में प्रयुक्त होती होने से उसे भी रजनी कहा जाता है। रात्रि वाचक अन्य शब्दों के अर्थों में हरिद्रा के साथ ऐसा साम्य न होने पर भी उन सब का समान रूप से हरिद्रा के लिए उपयोग होता है। श्वेत होने के कारण मध्यम पाण्डव और अर्जुन वृक्ष दोनों को अर्जुन (अर्थ श्वेत) कहा जाता है। परन्तु मध्यम पाण्डव के पार्थ आदि पर्याय भी इसी प्रकार अर्जुन वृक्ष के वाचक हैं।

रञ्जक पित्त और रक्ताग्नि

'रञ्जन' शब्द के प्रसंग से आयुर्वेद का एक सत्य समझ लें। रञ्जन का अर्थ प्रसन्न करना—प्रसादन—है। प्रसादन शब्द का अन्य भी प्रसिद्ध अर्थ है—निर्मल करना ('प्रसीदति' आदि शब्दों में इसका यह अर्थ प्रसिद्ध है)। प्रसादन का यह द्वितीय अर्थ होने से रञ्जन का भी यह दूसरा अर्थ सिद्ध है। इस प्रकार इस रञ्जन शब्द का अर्थ निर्मलीकरण भी होता है। शरीरगत पाँच पित्तों में एक रञ्जक पित्त में रञ्जन का प्रसादन अर्थ ही है। यह रञ्जक पित्त यकृत्प्लीहा में रहता है। **रस-रक्त में वायु के कोप से जो श्यावारुण वर्ण, पित्त के कोप से हरित-हारिद्र आदि वर्ण तथा कफ के कोप से शुक्लत्व आदि वर्ण आ जाते हैं वे रञ्जक पित्त की क्रिया से दूर होते हैं।** उसका कारण यह है कि यह पित्त रस-रक्तगत कुपित

१—आयुर्वेदीय क्रियाशारीर के चिन्तकों के लिए यह वस्तु बहुत उपयोगी हो सकती है। वर्तमान विज्ञान में कहा जाता है कि हम आँखों से पदार्थ को देखते हैं। परन्तु वास्तव में तो नव्यमत से भी उस पर पड़कर प्रतिक्षिप्त होती नील, पीत, श्वेत आदि किरणें (संस्कृत में रूप) ही हम देखते हैं। नवीन विज्ञान के शब्दों में विरोधाभास है। प्राचीन वाङ्मय में सत्यार्थ सूचक रूप शब्द का व्यवहार ही हुआ है। बाह्य और आभ्यन्तर प्रकाश मिलकर रूप प्रतीति कराते हैं, यह भी आयुर्वेदशास्त्रसिद्ध है।

२—इसका विशद अर्थ जानने के लिए देखिए। **आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान** (वैद्यनाथ प्रकाशन)।

हुए वातवर्गीय, पित्तवर्गीय तथा कफवर्गीय द्रव्यों का पचन (विघटन) कर उन्हें मल रूप में बाहर निकाल देता है। इस प्रसादन के कारण रस-रक्त में उनका प्राकृत वर्ण पुनः अभिव्यक्त होता है। इस क्रिया को **रञ्जन** (रंगना—रस-रक्त को प्राकृत वर्ण में लाना) कहते हैं। इस प्रकार रञ्जन शब्द के निर्मलीकरण तथा प्राकृत वर्णा-पादन ये दोनों अर्थ होते हैं। इनका करनेवाला होने से रञ्जक पित्त रञ्जक पित्त कहाता है। इसका कार्य रक्त की उत्पत्ति नहीं, शुद्धि है। यकृत्प्लीहा में स्थित रक्ताग्नि का कर्म रक्त का उत्पादन है। आयुर्वेदीय क्रिया शारीर के मत से रञ्जक पित्त तथा रक्ताग्नि के ये पृथक् कर्म स्पष्ट समझ लेने चाहिए। रञ्जक का कुछ साम्य नवीनों के निर्विषीकरण (डीटॉक्सिकेशन) से देखा जा सकता है।

आधुनिकों ने रक्त की शुद्धि फुफ्फुसों में होती बताई है। आयुर्वेद-मत से रक्त की शुद्धि यकृत्प्लीहा में होती है। कल्पना की जा सकती है कि यकृत्प्लीहा रक्त में ऐसा परि-वर्तन कर देते हैं कि श्यावता की जनक कार्बन डाइऑक्साइड वायु फुफ्फुस में आकर सरलता से विच्युत हो जाती है।

शर्मा जी द्वारा निघण्टु के आधार पर दिए श्यामा शब्द के अनेक अर्थों में एक नीलिनी (नील) है। हम ऊपर देख आए हैं कि सुश्रुत ने इसका पलित में उपयोग लिखा है। शर्माजी ने एक रसप्रद बात लिखी है : सायण ने कौशिक सूत्र के अनुसार भृङ्गराज, हरिद्रा, इन्द्रवारुणी और नीलिका इन को पीस कर श्वेत कुष्ठ पर लगाने का संकेत किया है।

श्वित्र का निदान

सुश्रुत ने श्वित्र या किलास को कुष्ठ का प्रकार ही कहा है—**किलासमपि कुष्ठविकल्प एव**—सु. नि. ५।१७। हृदयकार ने भी **कुष्ठैक संभवं श्वित्रम्**—अ. हृ. नि. १४।३७[1] उसका समर्थन किया है। सुश्रुत के वचन में आए 'अपि' शब्द से डल्हन ने कई टीकाकारों का यह मन्तव्य दर्शाया है कि सभी श्वित्र कुष्ठ के भेद विशेष नहीं भी होते। कोई कुष्ठ-भिन्न भी होने संभव हैं।

हृदयकार का पद्य **माधव** ने भी उद्धृत किया है। उस की मधुकोष टीका में **कुष्ठैक संभवं** शब्द से चिकित्सा के साम्य का भी ग्रहण किया है। कारण, **कुर्याच्चास्मै कुष्ठोक्तं विधानम्** यह आचार्य वचन है।

कुष्ठ का प्रकार होते हुए भी इसके पञ्च निदान और चिकित्सा में कुष्ठ से कुछ भिन्नता है। अतएव चरक ने कुष्ठ का निदान देने के अनन्तर श्वित्र का पृथक् निदान (हेतु) दिया है। वह कहता है—

> वचांस्यतथ्यानि कृतघ्नभावो
> निन्दा सुराणां गुरुधर्षणं च।
> पापक्रिया पूर्वकृतं च कर्म
> हेतुः किलासस्य विरोधि चान्नम्॥
>
> च. चि. ७।१७७

इसी अध्याय में कुष्ठ के जो निदान कहे हैं उनमें पापकर्म की गणना तो है, पर पूर्वजन्मकृत पापकर्म की गणना नहीं है। विरुद्ध अन्नपान का यहाँ विशेषतया उल्लेख हुआ है। 'विरुद्ध' शब्द का विस्तृत अर्थ तथा उसके सभी प्रकार यहाँ ग्राह्य हैं। ये अध्ययन-अध्यापन में बहुत प्रख्यात नहीं हैं। व्यवसाय में तो उन पर ध्यान दिया ही नहीं जाता। इस प्रसंग में चः सू. २६।८०-१०६ में आए इस विरुद्धाशन के प्रकरण का अनुशीलन किए बिना श्वित्र का विचार पूर्ण नहीं होता, यह समझ लेना चाहिए। प्रसंगान्तर के भय से उस लम्बे प्रकरण को यहाँ उद्धृत नहीं करता।

पूर्वजन्मकृत कर्म की कारणता

पूर्वजन्मकृत पापकर्म के विषय में कुछ वक्तव्य अपेक्षित है। रोगों के वर्गीकरण में दोषज, कर्मज तथा उभयज यह वर्ग भी निर्दिष्ट है। रोगारम्भक कारण अल्प हो और उसकी तुलना में रोग के लक्षण तथा पीडा अधिक हो तो इसमें पूर्वकृत कर्म को कारण माना जाता है। जीवित शरीर को ही आयुर्वेद में रोग और चिकित्सा का अधिष्ठान मानते हुए भी **आत्मा का पृथक् स्वीकार** विशेषतः इसी बात को समझाने के लिए किया गया है कि कर्मज रोग सूक्ष्म शरीरयुक्त आत्मा के साथ ही पूर्व शरीर से इस शरीर में संक्रान्त होते हैं।

पूर्व कर्म कैसे इस शरीर में रोगोत्पत्ति करते हैं इसकी कुछ स्पष्टता आवश्यक है। श्वित्र का ही उदाहरण स्पष्टता के लिए उपयोगी हो सकता है। इस रोग से पीडित व्यक्ति प्रायः जनता में प्रत्यक्ष या परोक्ष तिरस्कार का पात्र होता है। कदाचित् उससे विवाह करने को कोई

१—कुष्ठानामेकः समानः संभवो यस्य तत्—अरुणदत्त। इस पद्य की टीका में **तोडर** ने श्वित्र का **श्वेतकुष्ठ** पर्याय दिया है। पूर्व ग्रन्थों में यह नाम नहीं आया है।

तय्यार नहीं होता। एवं, वह स्वयं लज्जित होकर घर से बाहर निकलता नहीं। इससे अमुक मानसक्लेश रुग्ण को होता है। संभव है, रोगी ने गत जन्म में किसी व्यक्ति को रतिसुख करने से रोका हो, अथवा किसी रूप में तिरस्कार आदि वहीं कष्ट दिए हों जिन्हें वह श्वित्र के कारण इस जन्म में भोग रहा है। औरों को दिए इन कष्टों के फल रूप में सृष्टि-कर्ता ने उसे यह रोग दिया, जिसके कारण वह स्वयं इन कष्टों को भोगने के लिए बाध्य हुआ।

हृदयकार ने श्वित्र की चिकित्सा त्वरित करने का उपदेश करते हुए इसकी बीभत्सता को प्रथम स्थान दिया है। देखिए :

कुष्ठादपि बीभत्सं यच्छीघ्रतरं च यात्यसाध्यत्वम्।
श्वित्रमतस्तच्छान्त्यै यतेत दीप्ते यथा भवने ॥
अ. हृ. चि. २०।१

–श्वित्र कुष्ठ की अपेक्षया भी अधिक बीभत्स होता है, एवं उसकी तुलना में बहुत शीघ्र असाध्य कोटि में पहुँच जाता है, अतः उसकी शान्ति के लिए उसी प्रकार तत्क्षण प्रयास करना चाहिए जैसे जलते हुए गृह के लिए किया जाता है।

श्वित्र की असाध्यता उसके उत्तर धातुओं में अनुप्रवेश के कारण होती है। उसके कारण उसके स्वरूप में भी कुछ विशिष्टता आ जाती है। उपचार आरम्भ करते हुए यह देखने का प्रचार कदाचित् नहीं है कि श्वित्र का प्रवेश किस धातु तक हुआ है। संप्रति, आयुर्वेद का गम्भीर स्वाध्याय तथा प्रवचन आरम्भ हुआ है, और उसके सिद्धान्तों को क्रिया में लाने की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है, ऐसे समय श्वित्र का विचार करते हुए भी उसके भेदों का विचार करना चाहिए।

किलास, दारुण, अरुण और श्वित्र ये श्वित्र के पर्याय हैं। निर्णय-सागरी चरक में दिए पाठान्तर में दारण और अरण नाम आए हैं। मधुकोष में उद्धृत भालुकि-वचन में वारुण संज्ञा आई है। तथापि इसके प्रसिद्ध नाम श्वित्र और किलास ही हैं। तोडर के समय से अथवा उससे कुछ पूर्व से अद्यावधि प्रचलित नाम **श्वेतकुष्ठ** है।

किलास और श्वित्र रोग की दो अवस्थाएँ

कुष्ठ और किलास का अन्तर बताते हुए सुश्रुत जी ने कहा है : **कुष्ठकिलासयोरन्तरं—त्वग्गतमेव किलासमपरिस्रावि च.** —सु. नि. ५।१७। अर्थात् यह त्वग्गत (रसगत) ही होता है। एवं इसमें किसी प्रकार का स्राव नहीं होता। कुष्ठ उत्तरोत्तर धातुओं में अनुप्रविष्ट होता जाता है। उस में अनन्तर काल में स्राव भी होता है। डल्हन और गयदास की टीका में भोज का निम्न वचन उद्धृत किया गया है, जो इस वस्तु को विशद करता है।—

त्वग्गतं तु यदस्रावि किलासं तत्प्रकीर्तितम्।
यदि त्वचमतिक्रम्य दद्धातूनवगाहते ॥
हित्वा किलाससंज्ञां तु कुष्ठ संज्ञां लभेत तत् ॥

अर्थात् श्वित्रारम्भक दोष यदि त्वचा या रसधातु को छोड़ इतर धातुओं में प्रविष्ट हो जाएँ तो रोग को श्वित्र या किलास न कह कर कुष्ठ ही कहा जाता है। डल्हन ने एकीयमत दर्शाया है कि, दोष केवल त्वग्गत हो तो इसे किलास कहते हैं, अन्य धातुगत होने पर इसे श्वित्र कहा जाता है। गयदास ने भी चरक के आगे कहे जानेवाले वचन को उद्धृत कर उसका यही अर्थ बताया है कि चरक भी रसगत या त्वग्गत दुष्टि को किलास कहते हैं, तथा दुष्टि उत्तर धातुओं में प्रविष्ट होने पर उसके धातुभेद से अन्य नाम होते हैं। इसी आशय का समर्थक भालुकि-वचन भी उसने उद्धृत किया है। अन्त में गयदास ने कहा है : **चिकित्साभेदोऽपि श्वित्रकिलासयोर्भेदम् कथयत्येव। श्वित्रस्य महती लध्वी किलासस्य**—अर्थात् श्वित्र की अधिक चिकित्सा करनी पड़ती है, किलास की अल्प। इस चिकित्सा-भेद को देखते हुए भी दोनों दुष्टियों का पार्थक्य सिद्ध ही है। इस विवेचन को स्वीकार करें तो 'रस से उत्तर धातुओं में प्रविष्ट होने पर विकार का नाम कुष्ठ हो जाता है' इस भोज-वचन का अर्थ यह किया जा सकता है कि उसे श्वेत कुष्ठ या श्वित्र नाम दिया जाता है।

मधुकोषकार तथा चक्रपाणि ने चरक-सुश्रुत के वचनों का समन्वय यों किया है कि, यह रोग यों तो त्वग्गत (रसगत) ही होता है; कारण, सुश्रुत ने ऐसा कण्ठरव से विधान किया है। तथापि चरक ने जो रक्तादि धातुओं में दोष का आश्रय होने पर तत्-तत् स्वरूप-भेद होता है यह कहा है उसका तात्पर्य यह है कि, रोग इन धातुओं तक नहीं पहुँचता, केवल इस रोग में दुष्टि रक्तादि की भी हो जाती है, जिससे त्वचा के वर्ण में भेद आ जाता है। मेरी नम्र संमति में यह क्लिष्ट कल्पना है। पूर्वोक्त विवेचन के अनुसार रसगत रोग का नाम किलास तथा उत्तर धातुओं में प्रविष्ट विकार का नाम श्वित्र आदि होता है, यही मत स्वीकरणीय

प्रतीत होता है। इस मत की पुष्टि इस लेख के आरम्भ में दी आथर्वणी श्रुति से होती है, जिसमें किलास को अस्थि धातु तक स्थित कहा है। उपलब्ध आयुर्वेदीय संहिताओं में तो इसे केवल मेद तक पहुँचाया है।

इस विवेचन के प्रकाश में अब श्वित्र या किलास के दोष-भेद तथा धातुभेद से भेद देखें। यह रोग प्रायः तीनों दोषों से होता है। (देखिए : च. चि. ७।१७३); अ. हृ. नि. १४।३७)। चरक के वचनों में आए 'प्रायः' शब्द का अर्थ चक्रदत्त ने यह दिया है कि, यह क्वचित् एक-दोषज, द्विदोषज भी होता है।

किलास या श्वित्र के भेद

किलास या श्वित्र त्रिदोषज होता है, इसके दो अर्थ संभव हैं : प्रत्येक रोगी में देखे जानेवाले रोग में तीनों दोषों का कोप होता है, किंवा किसी रोगी को वातप्रधान किलास होता है, किसी को श्लेष्मप्रधान और किसी को पित्तप्रधान। इस विषय की स्पष्टता तन्त्रकारों ने की नहीं है कि किलास त्रिदोषज है इस का दो अर्थों में कौन अर्थ लिया जाय? संहिताओं ने प्रत्येक दोषज किलास के जो लक्षण दिए हैं उनका उल्लेख किया जाता है[1]।

वातप्रधान किलास के मण्डल तनु (पतली त्वचा वाले) परुष (खर) तथा रूक्ष, वर्ण में अरुण या रक्त या कृष्णारुण या ताम्र एवं स्वभाव से परिध्वंसी होते हैं—घिसने से उनसे रज जैसा पड़ता है। **पित्तप्रधान किलास** के मण्डल रक्त कमल वर्ण के सदृश रक्तवर्ण या ताम्रवर्ण, दाहयुक्त तथा रोमविध्वंसि (जिसके अन्तर्गत रोम झड़ जाएँ ऐसे) होते हैं। दाहयुक्त का अर्थ यह है कि दाह की प्रतीति घर्षण के पश्चात् होती है।—**संस्पर्शादेव दाहवत्** (भालुकि)। **कफप्रधान किलास** के मण्डल स्निग्ध, बहल (घन, स्थूल त्वचावाले) कण्डूयुक्त, गुरु (भारीपन की जिसमें रोगी को प्रतीत हो ऐसे) एवं पाण्डुता लिए श्वेतवर्ण होते हैं। यहाँ जो अरुण, रक्त या ताम्रवर्ण बताए हैं उनका अर्थ यह है कि, श्वेतता में इन वर्णों की झलक होती है। शेष कफज श्वित्र पूर्णतया श्वेत होता है।

क्रमाद् रक्त मांसमेदःसु चादिशेत (अ. हृ. नि. १४। ३९)। ऊपर दोषभेद से जो लक्षण बताए हैं उनके विषय में इतनी विशेषता और जाननी चाहिए कि वातप्रधान श्वित्र रक्ताश्रित होता है, पित्तप्रधान मांसाश्रित तथा कफ-प्रधान मेद-आश्रित। **गुरु तच्चोत्तरोत्तरम** (च. चि. ७।१७४)—इन तीनों भेदों में उत्तरोत्तर श्वित्र या किलास गुरु होता है। चक्रपाणि ने गुरु का अर्थ अनुपक्रम (प्रत्याख्येय) दिया है।

जैसा कि ऊपर कह आए हैं, रक्तादि धातुओं में दुष्टि का जो यहाँ निर्देश किया है उसके संबन्ध में आचार्यों में मतभेद है। एक मत यह है कि किलास त्वचा या रस धातु में ही होता है। तथापि यहाँ जो इतर धातुओं का नाम ग्रहण किया है उसका तात्पर्य इतना ही है कि इस रोग में अन्य धातुओं की भी दुष्टि होती है, पर रोग वहाँ तक नहीं गया होता। द्वितीय और अधिक माननीय मत यह है कि दोष और रोग दोनों अन्य धातुओं तक पहुँचते हैं और तब इन के लिए कुष्ठ (श्वेत कुष्ठ, श्वित्र) यह अभिधान प्रयुक्त होता है।

सुश्रुत की गयदास की टीका तथा माधव निदान की मधुकोष टीका में भालुकि का जो मत उद्धृत किया है, उसमें धातुभेद से नामान्तर होने का स्पष्ट उल्लेख इन शब्दों में किया है : **वारुणं तत्तु विज्ञेयं माँसधातु समाश्रयम्। मेदः श्रितं भवेच्छ्वित्रं दारुणं रक्तसंश्रयम्॥**—नाम, रोग रक्तगत होता है तो इसे दारुण कहते हैं, मांसगत होता है तो वारुण तथा मेदोगत होता है तो श्वित्र। पारिशेष्यात् रोग रसगत (त्वग्गत) होता है तो इसे किलास कहा जाता है। चरक-वचन को भी मधुकोषकार ने इसी अर्थ में घटाया है। किं बहुना, किं बहुना, यह विचार यहीं छोड़कर अब रोग के अन्य भेदों पर दृष्टिपात करते हैं।

प्रकारान्तर से श्वित्र के भेद

गयदास तथा मधुकोषकार ने भोज का वचन उद्धृत कर श्वित्र के अन्य भेद भी नीचे दिए बताए हैं।

श्वित्रं तु द्विविधं प्रोक्तं दोषजं व्रणजं तथा।
तत्र मिथ्योपचाराद्धि व्रणस्य व्रणजं स्मृतम्॥

श्वित्र के दो भेद हैं : **व्रणज** तथा **दोषज**। व्रण का मिथ्या उपचार करने से जो श्वित्र होता है उसे व्रणज कहते हैं। शारीर दोषों के कोप से होनेवाले को दोषज कहा जाता है।

१—**स्थल** : च. चि. ७।१७३-१७४; अ. हृ. नि. १४।३७३९ (अरुणदत्त टीका सहित); सु. नि. ५।१७ (इस पर गयदास की टीका में धृत भोजवचन सहित); मधुकोष।

दोषजं च द्विधा प्रोक्तमात्मजं परजं तथा ।
परगात्रासनस्पर्शाद्यत् तत् परजमुच्यते ।।
तदात्मजं विजानीयाद् यद्देहेष्वनिलादिजम् ।।

दोषज श्वित्र या किलास के दो भेद हैं—**परज** तथा **आत्मज**। वातादि शारीर दोषों के वैषम्य से जो श्वित्र होता है उसे आत्मज कहते हैं तथा रुग्ण पुरुष के शरीर, स्थान, आसन आदि के स्पर्श से जो श्वित्र होता है उसे परज कहते हैं। आधुनिक विज्ञान श्वित्र को स्पर्शगम्य नहीं मानता। आयुर्वेद की मूल संहिताओं में भी इसे ऐसा नहीं माना है। तथापि भोज भी कम आप्त नहीं है। इस विषय का विचार होना चाहिए। हृदयकार ने श्वित्र के इस प्रकार संचार का कण्ठरव से निर्देश नहीं किया है। तथापि, कुष्ठ के निदान के अनन्तर श्वित्र की विचारणा करके ही उसने संचारी रोगों का निर्देश करता पद्य दिया है—

स्पर्शैकाहारशय्यादि सेवनात् प्रायशो गदाः ।
सर्वे संचारिणो नेत्रत्वग्विकारा विशेषतः ।।

इससे अनुमान होता है कि, श्वित्र को भी हृदयकार संचारी (संक्रामक) मानते हैं। माधव ने भी संक्रामक रोग विषयक सुश्रुत के दो पद्य श्वित्र के प्रकरण के अनन्तर ही दिए हैं। विज्ञ वाचक विचार करें।

श्वित्र की साध्यासाध्यता

श्वित्र के मण्डलों में रोम अभी श्वेत या रक्त न हुए हों, मण्डल अभी पाण्डुवर्ण (श्वेतपीत) हों वे बहल (घन, मोटी त्वचावाले) न हों—तनु (पतले) हों, अनेक मण्डल मिलकर एक मण्डल के रूप में परिणत न हो गए हों—वे छिन्न हों, रोग नया हो (उसे उत्पन्न हुए बहुत समय न हुआ हो) मण्डल अग्नि-दग्ध के कारण हुए व्रण से उत्पन्न न हुए हों एवं मण्डलों के मध्य में शोथ हो तो वे **साध्य** होते हैं।

यहाँ तथा पहले आए बहल शब्द का अर्थ प्रथम दृष्टि में 'व्यापक' प्रतीत होता है, पर डल्हन ने स्थूल अर्थ दिया है, हृदय की अरुण टीका में अबहल का अर्थ अघन दिया है, तोडर ने उसका तनु पर्याय भी दिया है, उससे बहल का अर्थ मोटी त्वचावाला लिया है। बहलता श्लेष्मप्रधान किलास का लक्षण है। दुष्टि मेदोधातुगत होने से बहलता होती है। और मेदोधातु तक रोग का प्रवेश उसके असाध्य होने का सूचक है। मण्डल पतला हो तो साध्य होता है। रोग नया साध्य बताया है, उसका अर्थ अरुण वचनानुसार एक वर्ष के अन्दर का लेना चाहिए (**नवम् अवर्षातिक्रान्तम्**)। नया और पुराना विशेषणों का प्रायः ऐसा ही अर्थ लिया जाता है, जैसे धान्यों के प्रकरण में।

ऊपर दिए लक्षणों से विपरीत लक्षणों वाला श्वित्र **असाध्य** होता है। तथाहि, अनेक मण्डल मिलकर एक-एक मण्डल बना हो ऐसे मण्डल, अन्त पर (शरीर के किनारों पर) अर्थात् पाणितल, पादतल और गुह्यभाग पर (लिङ्ग-पर) हुए मण्डल, बहु नाम संख्या या विस्तार में अथवा दोनों जो अधिक हों ऐसे मण्डल, जिन में स्थित रोम रक्तवर्ण के किंवा लम्बे (दीर्घ) हो गए हों ऐसे मण्डल एवं जिन्हें उत्पन्न हुए अनेक वर्ष हो गए हों ऐसे मण्डल, मण्डल मध्य में रक्त-कमलसदृश वर्ण के और किनारी पर रक्त वर्ण हों, एवं जो अग्नि दग्धज हों वे **असाध्य** (प्रत्याख्येय) होते हैं। गुह्यप्रदेश, हस्ततल तथा पाणितल पर हुआ श्वित्र नया हो तो भी असाध्य होता है। माधव ने असाध्य श्वित्र के लक्षण में केवल यही लक्षण देकर अपनी ओर से यह पंक्ति जोड़ दी है कि—**वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता**—वैद्य यदि सफलता और अर्थ, यश आदि की सिद्धि चाहता हो तो उसे इन स्थानों पर हुए किलास का विशेषतया प्रत्याख्यान करना चाहिए।

—(सावशेष)

उपाचार्य, ओ० ना० आयुर्वेद कालेज,
सूरत।

ओज—एक आयुर्वेदीय चर्चा

वैद्य नागरदास मोहनलाल पाठक, आयुर्वेदाचार्य

सचित्र आयुर्वेद के गत दिसम्बर १९५७ के अंक में इस विषय पर एक चर्चात्मक सप्रमाण लेख मैंने लिखा था और कुछ सिद्धांतों पर विद्वज्जनों से विवेचन करने के लिये विनति भी की थी। तदनुसार कुछ विद्वानों ने स्वाभिप्राय लिखने के लिए कष्ट उठाया, उन सब का मैं आभारी हूँ।

वैद्य वासुदेव लाटा, स्वामी हरिशरणानन्द, वैद्य डाह्याभाई के० पाठक, वैद्य पुष्करदत्त शर्मा एवं वैद्य भगवतीप्रसाद ने 'सचित्र आयुर्वेद' के गत फरवरी, अप्रैल और मई '५८ के अंकों में इस विषय पर विवेचन किया था। मैंने चर्चास्पद जो लेख लिखा था उसमें मेरा पूर्वपक्ष का क्या मंतव्य है यह बात प्रथम मैं बतला दूँ। फिर इन मंतव्यों पर उपर्युक्त विद्वानों ने क्या परामर्श दिया, वह लिखकर उन पर प्रमाणपूर्वक समालोचना करूँगा। फिर संक्षेप में समारोप होगा। इस त्रिभंगी रचना से लेख की समाप्ति होगी। विद्वज्जन इस पर कृपा कटाक्ष करें, यह विनति है।

मेरी विचारधाराएँ

(१) ओज एक ही चीज है। इसका **पर और अपर** भेद काल्पनिक और अवास्तविक है।

(२) एक ही प्रकार का ओज मानने से, निदान-ज्ञान में और चिकित्सा-ज्ञान में जो लाभ मिलता है, इससे अधिक लाभ ओज के दो भेद मानने से नहीं मिलता। अतः भेदद्वय की कल्पना अयथार्थक है।

(३) **पर और अपर** नामक भेद्वद्वय को समझना-समझाना बड़ा जटिल प्रश्न बन जाता है।

(४) परापर-भेद की कल्पना श्री चक्रपाणिदत्तजी ने चलाई और पश्चाद्भव विद्वानों ने उनका अनुसरण मात्र ही किया।

(५) चरक और सुश्रुत के मूल वचनों में **"पर और अपर** नाम से ओज के दो भेद हैं" ऐसा प्रमाण दृष्टिगोचर नहीं होता। हाँ, ओज के विशेषणों में **पर, उत्तम, प्रधान** ऐसे शब्द आर्ष-ग्रंथों में हैं। ये विशेषण व्यावर्तक नहीं, किन्तु साद्‌गुण्य-प्रदर्शक हैं।

(६) मेरे नम्र अभिप्राय से **ओज का अर्थ पोषकरस है**, जिसमें समस्त रस-रक्तादि धातुओं का पोषण करने वाला पुरोगामी द्रव्य (ओज) मौजूद है। वही शुद्ध रुधिर में मिला हुआ द्रव्य सारे शरीर में व्याप्त होकर समस्त धातुओं का पोषण करता है।

(७) मैंने जिस ओज के लिये चर्चा का आरंभ किया है, उस ओज का वर्णन शास्त्रों में निम्न प्रकार लिखा है—

गुरुशीतंमृदुश्लक्ष्णंबहलंमधुरंस्थिरम्
प्रसन्नंपिच्छिलंस्निग्धमोजोदशगुणंस्मृतम् ।।
—च० चि० २४-३१

ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम् ।
विविक्तं मृदु मृत्स्नं च प्राणायतनमुत्तमम् ।।
देहः सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम् ।
तदभावाच्च शीर्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम् ।।
—सु० सू० १५-२२

येनौजसा वर्त्तयन्ति प्रीणिताः सर्वदेहिनः ।
यदृते सर्वभूतानां जीवितं नावतिष्ठते ।।
यत्सारमादौ गर्भस्य यत्तत् गर्भरसाद्रसः ।
संवर्तमानं हृदयं समाविशति यत्पुरा ।।
—च० सू० ३०-१०

हृदि तिष्ठति यत् शुद्धं रक्तमीषत्सपीतकम् ।
ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्नाविनश्यति ।।
प्रथमं जायते ह्योजः शरीरेऽस्मिन् शरीरिणाम् ।
सर्पिर्वर्णं मधुरसं लाजगन्धि प्रजायते ।।
—च० सू० १७-७५

उपर्युक्त श्लोकों में वर्णित ओज की ही हम चर्चा कर रहे हैं। इसलिये विवेचकों को यह बात याद रखनी चाहिए कि जिस चीज को वे ओज संज्ञा देते हैं उस चीज का स्वभाव और गुणकर्मादि उपर्युक्त श्लोकों के साथ मिलता है या नहीं? इस बात पर पूरा विचार कर प्रमाण और युक्ति के साथ नवीन विचार-सरणी वे लिखेंगे तब इस चर्चा से जो लाभ हम उठाना चाहते हैं वह मिलना संभव है। अन्यथा वाग्विनोद मात्र चर्चा होगी।

"प्राणाश्रयस्यौजसोऽष्टौ विन्दवः हृदयाश्रयाः"—यह जो तंत्रान्तरीय प्रमाण है, उसमें लेखन-दोष से **तिन्दवः** की जगह **विन्दवः** लिखा गया है। अतः यह पाठ अशुद्ध है। **बिन्दवः**-की जगह **तिन्दवः** कर लेना चाहिए, जिससे ओज का "पर" और "अपर" नामक दो भेद करने का झगड़ा समाप्त हो जाय, क्योंकि इसी वाक्य ने यह सब झंझट पैदा किया है। लेखन-प्रमाद से त की अग्र लकीर को जरा खींच दें तो व बन जाता है। "बवयोरैक्यम्" इस न्याय से दूसरा लेखक शुद्ध वकार बना ले यह संभाव्य है। मेरे ख्याल से इस प्रकार की लेखन-भूल से "विन्दवः" आया है, पर शुद्ध पाठ "तिन्दवः" है। इसका विशेष विवेचन मेरे मूल लेख में वाचक देख सकेंगे।

अब मैं विज्ञ वाचकों के समक्ष प्रत्येक विवेचक ने क्या विवेचन किया और उस विवेचना पर मेरी (पूर्वपक्ष की) क्या राय है, यह सप्रमाण लिखने की कोशिश करूँगा।

वैद्य श्री वासुदेव लाटा

यह विद्वान् विवेचक लिखते हैं कि "ओज दो प्रकार का है, यह कल्पना आचार्य चक्रपाणि की है। 'रक्तमीषत्सपीतकम्' इसमें ईषत् पद का ओज से संयोग ही इस कल्पना का जन्मदाता या प्राण है।

श्वेत, स्निग्ध, तरल, पिच्छिल एवं घृत के समान तत्त्व ही शरीर में ओज संज्ञा को प्राप्त होता है, जो धमनी वाह्य है और प्रत्येक धातु में मिश्रित होकर आता है। ओज कफवर्ग की वस्तु है।"

श्री वासुदेव जी के इस विचार से पूर्वपक्ष को समर्थन मिलता है। किन्तु पूर्वपक्ष में ओज का अर्थ पोषक रस कहा गया है। उससे वे मतभेद बताते हैं।

आप कहते हैं—"रसादि सप्त धातुओं से ओज पृथक् तत्त्व है, अतः ओज शब्द का अर्थ रस नहीं किया जा सकता।" विद्वान् विवेचक के अभिप्राय से सभी धातु परमाणुओं में रहने वाला श्वेत-स्निग्धादि गुणयुक्त एक विशिष्ट द्रव्य ओज है। उसकी उपस्थिति से ही फुफ्फुसद्वय प्राणवायु (Oxygen) का ग्रहण कर सकते हैं। हृत्पिंड की पेशियों में भी ओज रहता है और उसके अष्टबिन्दु परिमित होने की संभावना है। तंत्रांतर वचन इस ओज का निर्देशक है। और अन्नपान से रसादि धातुओं का जैसे पोषण होता है वैसे ही ओज का भी पोषण होता है। इस रीति से रस से सर्वथा स्वतंत्र तत्त्व ओज है।"

विद्वान् विवेचक की विचारधारा आदरणीय है। किन्तु एक प्रश्न उठता है कि हृदयपोषिका (Coronary) धमनी से हृत्पेशीनिष्ठ ओज का पोषण होता है, ऐसा यदि उनका विधान मान लिया जाय तो पोष्य ओज और पोषक ओज इस प्रकार जो द्वैविध्य बन जाता है, जिसका निर्देश शास्त्र में नहीं मिलता है और "आयुरारोग्य वीर्यौजो" ...(वा० शा० ३-५१) की टीका में "ओजः आहारस्य परं प्रसादजं सर्वधात्वाप्यायकं यद् वस्तुजातं तदुच्यते"—इसमें आहार के परम प्रसाद से उत्पन्न होने वाला और सर्व धातुओं का आप्यायन—पोषण करनेवाला जो द्रव्य है वह ओज है ऐसा जो लिखा है उसकी संगति नहीं होती। श्री वासुदेव जी के मतानुसार अन्न में से उत्पन्न हुआ ओज धातुगत ओज का ही पोषण करता है, धातुओं का नहीं, अतः "सर्वधात्वाप्यायकं" पद निष्प्रयोजन हो जाता है जो योग्य नहीं। पोषकरस को ओज कहने से यह आपत्ति नहीं आती और "रसश्चौजः संख्यातः" "कल्पते किंचिदोजसे" इत्यादि स्थलों पर टीकाकारों का प्रज्ञापराध बताने की कोशिश करने की जरूरत भी नहीं रहेगी। ओज के विवेचन में अष्टमधातुत्वापत्ति का निरसन करने के लिये प्राचीन टीकाकारों ने जो प्रयत्न किया है उनके सामने यदि "पोष्य ओज" माना जाय तो अष्टमधातुत्वापत्ति नये ढंग से खड़ी होगी और वह दुर्निवार होगी।

यदि मान लिया जाय कि प्रत्येक परमाणु में "पोष्य ओज" स्थायी रूप से रहते हैं और परमाणु का पोषण अन्न-प्रसादरूप रस से होता है (वैसे ओज का पोषण भी रस से ही होता है), तो फिर आज के विद्यार्थीगण को समझाने के लिए प्राचीन या अर्वाचीन-पद्धति से ओज का नामकरण करना चाहिए, जो विद्वान् विवेचक ने किया नहीं है।

मैंने जो ओज का अर्थ पोषकरस किया है उसमें वैद्य श्री वासुदेव जी ने संज्ञासांकर्य दोष बतलाए हैं। इसके प्रत्युत्तर में वैद्य जी से मेरा नम्र निवेदन है कि मैंने रस धातु को पोष्यरस कहा है, ओज नहीं कहा। मैं पोषक-रस को ओज कहता हूँ। पोष्यरस और पोषकरस दोनों पृथक् वस्तु है, इसलिये आपने जो कुछ लिखा है वह योग्य नहीं। पोषकरस विष्णुपदामृतयुक्त अन्नरस है, वह धातु नहीं है। शास्त्र में भी गौण रूप से इसको धातु कहा जाता है, मुख्य रूप से नहीं। "धातवो हि धात्वाहाराः"—च० सू० २७।३ में आया हुआ यह वाक्य इस

वस्तुस्थिति का परिचायक है। रस धातु को ओज संज्ञा दी जाय तो संज्ञासांकर्य दोष आता है यह उनका कथन उचित है। किन्तु, मैं रस धातु को ओज संज्ञा नहीं देता हूँ। पोषक रस का अंतर्भाव रस शब्द में मानें या कफ वर्ग में मानें, मुझे मान्य है। ओक्सीजनेटेड ब्लड को आश्रयाश्रयि भाव से मैं ओज संज्ञा देता हूँ और स्निग्धश्वेतमधुरादि गुणों की अपेक्षा रस में अंतर्भाव बताता हूँ—मुख्य रूप से नहीं। यह बात मेरा मूल लेख पढ़ने से आपको स्पष्ट हो जायगी।

वैद्य श्री वासुदेव जी के मतानुसार ओज मान लिया जाय तो चरक सू० १७-७३ में श्री चक्रपाणिदत्त लिखते हैं कि "एतच्चौजः सर्वधातु समुदायरूपम्" क्या हृत्पेशी-निष्ठ ओज सर्वधातु समुदाय रूप है? नहीं, पोषक रस अवश्य है। अरुणदत्त का "सर्वधात्वाप्यायकं" विशेषण भी आपके ओज में सुसंगत नहीं। पोषक रस में अवश्य सुसंगति है, और—

"हृदि श्लेष्मानुपसृष्टं आश्यावं रक्तपीतकं
तदोजः......।"—काश्यप संहिता सू० २७-१६
"तैरावृतगतिर्वायुरोज आदाय गच्छति ॥"
—च० सू० १७-८०
"ओजोवहा विधम्यन्ते ॥"—च० सू० ३०-७

—इत्यादि अनेक आर्षवचनों का आपके ओज में सरलता से संगति नहीं होती। पोषक रस को ओज मानने से ही यह संगति होती है।

माननीय विवेचक कहते हैं कि "प्राणाश्रयस्यौजसोऽष्टौ विन्दवः हृदयाश्रयाः।" तंत्रांतर का यह वचन हृत्पेशी-निष्ठ ओज का प्रमाण बताता है—ऐसा मेरा मत है। यदि ऐसा मान लिया जाय तो यह भी मानना होगा कि हृत्पेशी-निष्ठ ओज के बिन्दु मात्र क्षय से भी मृत्यु होगी। क्या इसमें कोई प्रमाण वा युक्ति है? नहीं है, अतः ऐसी कल्पना करना सुसंगत नहीं और विद्यार्थी भी प्रश्न करेंगे कि केवल हृत्पेशी-निष्ठ ओज का प्रमाण बताया—और किसी का नहीं बताया। क्योंकि पेशियाँ तो शरीर में बहुत हैं तो हृत्पेशीनिष्ठ ओज का ही केवल प्रमाण बताने में आचार्य की क्या विवक्षा है? मेरे ख्याल से यह प्रश्न भी निरुत्तर ही रहेगा। इसलिये विद्वान् विवेचक का समाधान बुद्धि-ग्राह्य नहीं हो सकता। "ताः सर्वं सर्वतो वपुः रसात्मकं वहंत्योजः" ऐसा स्पष्ट वचन देखकर भी पोषक रस को ओज नहीं मानना मेरी अल्पमति से प्रज्ञापराध है। शब्दस्तोमकोश में भी "ओजस्—वैद्योक्ते धातुरसे पोषके।" ऐसा स्पष्ट लिखा है। इससे ओजस् शब्द का अर्थ पोषकरस करने में ही औचित्य है।

श्री स्वामी हरिशरणानन्द

स्वामीजी यौनग्रंथियों के अंतःस्राव (Hormons) को ओज कहते हैं। अनेक विवेचकों ने भी पृथक्-पृथक् ग्रंथियों के अंतःस्राव को ओज कहने की कोशिश की है। किन्तु ओज का जो वर्णन संहिता-ग्रंथों में दिया है उसके साथ किसी का समन्वय हो नहीं सकता। जिस वस्तु में हृदयस्थता—प्रवहणशीलता—सर्वदेहव्यापकता—जीवना-धारता और स्निग्धश्वेतादिगुणवत्ता न हो वह वस्तु आयुर्वेद-मतानुसार ओज नहीं है, इसलिये स्वामीजी का अभिप्राय मान्य नहीं हो सकता।

"संवर्तमानं हृदयं" और "धारि यद् हृदयाश्रितम्" इसका अर्थ आप लिखते हैं कि "गर्भोत्पादन से पूर्व वह (ओज) हृदय में वर्तमान रहता है और वह स्थिर रहकर जीवन को धारण करता है अर्थात् उसकी उत्पत्ति किसी धातु से नहीं मानते।"

स्वामीजी लिखते हैं कि "कुछ व्यक्तियों का विचार है कि 'बिन्दु' के स्थान पर 'तिन्दु' शब्द है जिसका अर्थ है एक तोला अर्थात् हृदय में ७ तोला ओज उसके साथ रहता है। क्या हृदय में कोई ऐसी जगह है जहाँ ७ तोला ओज रह सकता है? फिर जिस व्यक्ति का डील-डौल अच्छा हो, हृदय का आकार बड़ा हो, उसी के हृदयकोष्ठ में ७-८ तोला रक्त की समाई हो सकती है। स्वामीजी ने यहाँ विरुद्धोपन्यास किया है। आश्रयाश्रयिभाव से विशुद्ध रक्त को भी ओज संज्ञा दी जाय तो कुछ औचित्य भंग नहीं होता, ऐसा मैंने आदि लेख में बतलाया है और विशुद्ध रक्त ७-८ तोला हृदय में समाता है ऐसा भी मैंने हेलीबर्टन फीजीयोलोजी का प्रमाण देकर प्रतिपादन किया है। मैं जो बात कह रहा हूँ वह डीलडौलवाले स्वस्थ शरीर के लिए न कि कृश-दुर्बल-व्याधि-ग्रस्त शरीर के लिये है। "ओजोवहा विधम्यन्ते" चरक के इस वचन से विशुद्ध रक्त और अन्नरस मिलकर जो पदार्थ बनते हैं उनकी ओज संज्ञा सिद्ध होती है।

श्री डाह्याभाई के० पाठक

आप लिखते हैं कि "लेकिन यदि रस को ओज मानते हैं तो फिर तीनों आचार्यों ने 'ओज' शब्द क्यों लिखा?"

इस वाक्य से रस और ओज पृथक् द्रव्य है ऐसी पाठकजी की विवक्षा है। मैं कहाँ कहता हूँ कि "रस" और "ओज" पृथक् द्रव्य नहीं है। हम रसधातु को "पोष्यरस" कहते हैं और ओज को "पोषकरस"—अन्नरस का परम प्रसाद रस—कहते हैं। पोष्यरस और पोषकरस सर्वथा भिन्न वस्तु है। पोषण करने की शक्ति होने से पोषकरस में रस संज्ञा और धातु संज्ञा गौण रूप से शास्त्र में व्यवहृत है यथा—"व्यानेन रसधातुर्हि विक्षेपोचितकर्मणा ।।" (वा० शा० ३-६८)। जीवशोणित की ओज संज्ञा इसी न्याय से प्रचलित है। यथा—"ओजोवहा विधम्यन्ते" (च० सू० ३०-८)।

आपने "यत्सारमादौ गर्भस्य" इत्यादि वाक्य का प्रमाण तो दिया है, किन्तु इस श्लोक में आये हुए **गर्भरसात्, रसः, संवर्तमानं** और **हृदयन्** इन चार पदों का विवेचन आपने नहीं किया। यह श्लोक मूल-वचन है या क्षेपक, इस बात का परामर्श भी आपने नहीं दिया। यदि आपकी ओर से इस श्लोक की पदच्छेदपूर्वक की गई व्याख्या आवेगी तब मैं कुछ लिखूंगा।

"तिन्दवः बिन्दवः सिर्फ टीका की बात है" इन शब्दों की क्या विवक्षा है? तिन्दु बिन्दु शब्दों पर मेरे किए हुए विचार का क्या यह उत्तर है?

आप Pericardial liquid को पर ओज कहते हैं और Pericardial liquid को ओज कहकर ओज की व्याप्ति और बढ़ाते हैं तथा अंडकोष में रहनेवाले Liquid को भी आप ओज कहते हैं और इस मंतव्य की पुष्टि में "यत्सारमादौ गर्भस्य" पद का प्रमाण देते हैं। क्या आपके इस प्रमाण से आपके मंतव्य की पुष्टि होती है? हृदयस्थता, सर्वधात्वाप्यायनता, प्रवहणशीलता और श्वेतस्निग्धईषत्पीता-दिगुणवत्ता जिस वस्तु में हो उसी को ओज मानने पर विवेचन में सुविधा होगी।

यदि आपके मतानुसार Pericardial liquid को "पर ओज" माना जाय तो Pericardial liquid के किंचित्क्षय से भी मृत्यु होनी चाहिये। "पर ओज" के किंचित्क्षय से भी मृत्यु होती है ऐसा विधान पर ओजवादियों ने किया है। Pericardial liquid के समान शरीर में बहुत स्थलों पर liquid है। सब की रचना प्रायः एक-सी ही है और सब में कारणवशात् क्षयवृद्धि होती है। Paricardial liquid में कोई खास विशिष्टता नहीं है जिससे उनमें क्षयवृद्धि होना असंभव हो। Pericardial liquid के किंचित्क्षय से भी मृत्यु होती है, ऐसा कोई प्रमाण मॉडर्न फिजियोलोजी में मिलना कठिन है। इसलिये Pericardial liquid को "पर ओज" कहना युक्तियुक्त नहीं है और Pericardial liquid का समन्वय ओज का वर्णन करनेवाला शास्त्र वचनों के साथ होना अतीव दुरूह है। अतः शास्त्र और युक्ति से आपका मंतव्य खंडित हो जाता है।

आप लिखते हैं कि "सिद्धान्त पक्ष का पर और अपर स्थापित करने के लिये सैकडों-हजारों प्रमाणों की कोई जरूरत नहीं, सिर्फ शास्त्रों की रचना काफी है।" 'शास्त्रों की रचना' शब्दों से आपकी क्या विवक्षा है? आप कहते हैं—"अन्न का रस और रक्त ओज है यह बात बिल्कुल गलत है।"

धातूनां तेजसि रसे तथा जीवितशोणिते।
श्लेष्मणि प्राकृते वैद्यैरोजः शब्दः समीरितः।।
—वा० सू० ११-३८ **हेमाद्रि टीकायाम्**

क्या हेमाद्रि का यह वचन भी गलत है? उपचार से इसमें और रक्त में ओज संज्ञा देने का व्यवहार शास्त्रों में भी है। शब्दस्तोमकोश में भी ओजस् का अर्थ पोषक रस किया है। विशुद्ध रक्त में आश्रयाश्रयी भाव से ओज संज्ञा का व्यवहार शास्त्रकारों ने किया है। तदनुसार ही मैं भी करता हूँ। क्या ये सभी प्रमाण गलत हो जायेंगे?

वैद्य श्री डाह्याभाई ने एक ही प्रकार का ओज मानने की पहले कोशिश की। फिर जब ओज के वर्णन में स्थिर और **सर** शब्द देखा तो वह चक्रपाणि के (भेदवादियों के) मत में चले गये, ऐसा वे लिखते हैं। क्या स्थिर-सर शब्द देख कर ही आप विपक्ष में चले गये?

ओज वहनशील द्रव्य है, इसलिये ओज के गुण-वर्णन में आया हुआ "सरम्" पद युक्तियुक्त है। फिर रहा "स्थिरम्" जिसका अर्थ है स्थिरत्वापादक। शारीरधातुओं में ओज का संबंध पाकर स्थैर्य आता है इसलिये ओज के गुण में "स्थिरम्" पद आया है। इसमें सन्देह करने की कोई गुंजाइश नहीं दिखाई पड़ती है।

आप अपर ओज को Serum albumin कहते हैं और उसका प्रमाण "नवांजलयः" लिखते हैं। चरक शा० ७-१५ में "नवांजलयः पूर्वस्याहारपरिणामधातोः यं रस इत्याचक्षते"—यहाँ अन्नरस का प्रमाण नवांजलि लिखा है। अतः आपके और चरक के मत में विभिन्नता है।

वैद्य श्री पुष्करदत्त शर्मा

सांकुरेण हि बीजेन यथोत्पन्नो वनस्पतिः। आपका यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि बीज सांकुर नहीं होता परंतु अंकुरोत्पादक शक्तियुक्त होता है—जिसकी अंकुरोत्पादन-शक्ति नष्ट हो गयी है ऐसे बीज से अंकुरोत्पत्ति नहीं होती। इस शक्ति के स्थान में ओज की स्थापना करने की विवेचक की विवक्षा है। रसरक्तादि धातु ओज से भरी हुई है और अग्र-अग्र धातु का निर्माण करती है। ओजयुक्त रस से रक्त-ओजयुक्त रक्त से मांस—"एवमोजः प्रवर्तकम्" ऐसी मान्यता विवेचक की है। सभी शारीरिक प्रक्रिया का प्रवर्तक ओज है। प्रत्येक धातु में ओज का एक बिन्दु रहता है। इस प्रकार रसादि सप्तधातुओं में जोड़कर ७ बिन्दु और १ बिन्दु हृदय में सब मिलकर ८ बिन्दु ओज का है। बिन्दु परिमित ओज धातु-केन्द्रों में और अर्धांजलि परिमित ओज हृदय में है ऐसा भी आपका एक मंतव्य है।

श्री शर्माजी का वक्तव्य का सार ऊपर दिया है। आपने शास्त्र प्रमाण से अपना मंतव्य स्थापित नहीं किया और न कोई युक्ति ही दी है। परापर भेद के लिये कुछ न लिखा है। इससे मेरे किसी प्रश्न का समाधान नहीं होता। अतः शर्माजी के उत्तर का प्रत्युत्तर लिखने की आवश्यकता भी नहीं हैं।

वैद्य श्री भगवतीप्रसाद

विद्वान् विवेचक का वांचन विशाल, विषय-निरूपण-शैली प्रशस्त और प्रमाणसंचय भरपूर है। यदि समासतः कहा जाय तो वैद्यजी के मत में ओज का अर्थ Cerebro-spinal fluid है। उनका स्राव Choroid plexus से होता है। वैद्यजी कहते हैं कि प्राचीन आचार्यों ने सुषुम्नाशीर्ष (Medula oblongata) प्राणगुहा (fourth ventricle) और सुषुम्नाकांड (medula spinalis) इन तीनों को मिलाकर हृदय संज्ञा दी है। उपनिषद् के अर्थ समझाने में विवेचक ने सिरा और धमनी शब्द का अर्थ संज्ञावह नाड़ियाँ Nerves बतलाया है। हृदय शब्द का अर्थ Medula oblongata करने के लिये जो प्रमाण दिया है उसमें एक वाक्य तैत्तरीय उपनिषद् का है यथा "य एषोन्त हृदय आकाशः" इत्यादि। इसमें आया हुआ हृदय और आकाश शब्द का विवरण जो शांकरभाष्य में है, मेरे अभिप्राय से वह वक्षोगुहागत हृदय का परिचायक है। विज्ञ वैद्यराज और वाचकवर्ग उन पर विचार करें यह अभ्यर्थना है। शांकर-भाष्य में लिखा है कि—"पुंडरीकाकारो मांसपिंडः प्राणायतनोऽनेकनाड़ीसुषिर उर्ध्वनालोऽधोमुखो विशस्यमाने पशौ प्रसिद्धः उपलभ्यते।। तस्यान्तर्य एष आकाशः प्रसिद्ध एव करकाकाशवत्।।" करक शब्द का अर्थ है कमंडलु। कमंडलु के भीतर जैसा आकाश—अवकाश है वैसा ही आकाश हृत्पिंड के भीतर है ऐसा अर्थ है। मेरे अभिप्राय से शिरोगुहागत हृदय (Medula oblongata) अंतःसुषिर और कमलाकार नहीं है जैसा वक्षोगुहागत हृदय है। इसलिये इस ऋचा में आया हुआ हृदय शब्द से वक्षोगुहागत हृदय लेना उचित है।

"साधो जगति भूतानां हृदयं द्विविधं स्मृतम्।"

—योगवासिष्ठ के इस वचनानुसार दो प्रकार का हृदय मैं भी मानता हूँ। किन्तु चरक के अर्थेदशमहामूलीय अध्याय में जो हृदय शब्द आता है, वह वक्षोगुहागत हृदय के लिये है, शिरोगुहागत हृदय के लिये नहीं, ऐसा मेरा नम्र अभिप्राय है।

अपने मंतव्य को सिद्ध करने के लिये हृदय शब्द की व्याप्ति आप Spinal cord तक ले जाते हैं वह वास्तव में मान्य होना असंभव है।

आपने Cerebro-spinal fluid का शास्त्रीय नाम "ब्रह्मवारि" दिया है। यह आयुर्वेदीय शब्द नहीं, किसी अन्य तंत्र का शब्द ज्ञात होता है। कृपया उस तंत्र का नाम बतावें जिसमें उक्त "ब्रह्मवारि" शब्द आया है। Cerebro spinal fluid को ओज मानने से निम्नलिखित वचनों की संगति यथावत् नहीं होती।

१. मलीभवति तत्प्रायः कल्पते किंचिदोजसे।।
२. वायुरोज आदाय गच्छति (मधुमेहे)।।
३. देहः सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम्।।
४. रसात्मकं बहंत्योजः।।
५. प्रथमं जायते ह्योजः शरीरे.....।।
६. ओजः संक्षीयते ह्येभ्यो धातुग्रहण निसृतम्।।

टीकाकार ने छठवें पदोक्त "धातुग्रहण" शब्द का अर्थ हृदय भी लिखा है—प्रकृति प्रत्यय के बल से वक्षोगुहागत हृदय ही लेना चाहिए। चरक सू० ३० में आया हुआ हृदय शब्द का अर्थ वक्षोगुहागत हृदय ही सर्ववादिसम्मत है। अतएव, इस अर्थ को लेकर ओज की उपपत्ति लगाना उचित है।

समारोप

आयुर्वेदीय शारीर संज्ञाओं में ओजस् शब्द आया है। ओजस् शब्द से कौन-सा शारीर द्रव्य लेना चाहिए, इस बात का निर्णय करने के लिये यह चर्चा आरंभ हुई है। **मैं ओज का अर्थ पोषक रस मानता हूँ।** मेरा अर्थ अकाट्य सिद्धान्त रूप है—ऐसा मेरा भाव नहीं है। मैं इतना अवश्य कहता हूँ कि ओजस शब्द का अर्थ **पोषक रस** मान लेना अत्यधिक सुबोध है। इस अर्थ से शास्त्र में जहाँ-तहाँ आये हुए वचनों के साथ इस अर्थ का बहुशः समन्वय भी हो जाता है। मॉडर्न एनाटॅमी, फिजियालोजी जगत् के समक्ष है। आज हमारा कर्तव्य है कि आयुर्वेदीय शब्दों का वाच्यार्थ हम निर्णीत कर लें। जैसे—रस-रक्त-मांस-मेद का वाच्यार्थ सरलता से हम समझ लेते हैं, वैसे ही ओजस् का अर्थ नहीं समझते। इसीलिये ओज के अर्थ-निर्णय का यह प्रस्ताव चर्चा-स्वरूप में मैंने विद्वानों के सामने रखा है। चर्चा आरम्भ करने से पूर्व मेरी धारणा थी कि पोषक रस को मेरे द्वारा ओज के पर्यायवाची मानने पर विद्वानों को आपत्ति होगी, क्योंकि "यत्सारमादौ गर्भस्य ।। प्रथमं जायते ह्योजः ।। आजोशनोऽन्तकः ।। शुक्रमोजोजनकत्वात् धात्वंतर्गतम् ओजो धातूनां क्रमशो मलाः।।" इत्यादि वाक्यों की अर्थ संगति आप किस रीति से करेंगे। परंतु किसी विवेचक ने ऐसा प्रश्न नहीं उठाया। ओज का भेदद्वय मानने या न मानने से क्या हानि-लाभ होगा यह परामर्श भी किसी ने नहीं दिया। सब बन्धुओं ने स्वतंत्रतया अपने विचार बतलाए। मेरी विचारधाराएँ कहाँ किस रीति से युक्त या अयुक्त हैं सो बतलाने की कृपा करें। यह चर्चा **सचित्र आयुर्वेद** में प्रेमभाव से चलती रहे, ऐसी मेरी प्रार्थना है। जिन वैद्यराजों के अब तक **सचित्र आयुर्वेद** में लेख प्रकाशित हुए हैं, उनमें श्री वासुदेव लाटा के मत मेरे मंतव्य के साथ बहुत अंश में मिलते-जुलते हैं। चरक सू० २८ का विविधमशित परिच्छेद में आया हुआ "धातुपाक—अनवस्थित शब्दों का विचार और चरक शा० ६-१६ 'परिणामतस्त्वाहारस्य गुणाः' इस वचन की सूक्ष्म समालोचना करने की मैं श्री वासुदेवजी से विज्ञप्ति करता हूँ और आशा रखता हूँ कि 'किं नामौजः ?" इस विषय में हमारे बीच में जो वैमत्य है उनका समाधान वैद्यजी को हो जायगा।

सीनियर रिसर्च वैद्य,
मेडिकल कालेज, बड़ौदा

आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम

वैद्य भा० वि० गोखले, आयुर्वेदविद्यापारंगत

आयुर्वेद का पाठ्यक्रम कैसा हो, इस विषय में बहुत चर्चा हो चुकी है, परन्तु यह विवाद का विषय मुख्यतः पाठ्यक्रम शुद्ध हो अथवा मिश्र हो इसी पर केन्द्रित रहता है। अतः इसके आगे इस विषय में कोई उन्नति नहीं हो सकी है। शुद्ध पाठ्यक्रम के आयुर्वेदीय विषय तथा उनके अध्यापन की पद्धति में मिश्र प्रणाली से वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है। मिश्र प्रणाली में अन्तर्भूत सभी आयुर्वेदीय विषयों के अध्ययन की पृथक व्यवस्था रखकर इसे ही "शुद्धायुर्वेद" की संज्ञा दी गई है। मिश्र प्रणाली के बारे में जब कोई विचार किया जाता है तो अर्वाचीन वैद्यक तथा आयुर्वेद में पाठन के हेतु दोनों वैद्यक के लिये अलग-अलग विषयों के व्याख्यान और प्रश्नपत्रों की संख्या कितनी हो, इसी विषय पर अधिकतः निरर्थक वाद-विवाद होता चला आ रहा है। शुद्ध हो अथवा मिश्र, दोनों प्रकार के विद्यालयों से निकलने वाले स्नातकों का आयुर्वेदीय ज्ञान प्रायः समान ही होता है। मिश्र प्रणाली के स्नातक को अर्वाचीन वैद्यक का भी ज्ञान होता है, अतएव वह इस वैद्यक का उपयोग समझदारी से करता है। यही दोनों में अन्तर है।

वैद्यों को किन-किन औषधियों का प्रयोग करना चाहिये इस विषय में—शुद्धायुर्वेदीयों को केवल आयुर्वेदीय औषधियों का ही उपयोग करना चाहिये और अन्य औषधियों के प्रयोग की उनके लिये आवश्यकता नहीं है, ऐसा ठोस प्रतिपादन कोई नहीं करता है। किं बहुना, यह अव्यवहार्य मालूम होगा, औषधियाँ आयुर्वेदीय कौन-सी तथा अनायुर्वेदीय कौन-सी, इसका निश्चय करना अत्यंत कठिन है। "नास्ति मूलमनौषधम्।" "जगत्येवमनौषधम्।" "तदेवयुक्तं-भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते" इत्यादि सूत्रों का आधार लेकर इस विषय के उत्तरदायित्व को टाला जाता है। यह किसी व्यक्ति विशेष अथवा दल विशेष का दोष न होकर काल-महिमा का ही परिणाम है, ऐसी मेरी मान्यता है। आयुर्वेद को जो दशा प्राप्त हो गई है तथा वर्तमान में वह जिस परिस्थिति में है उसमें से अगर युक्तिपूर्वक मार्ग निकाला जाय तो इस दुर्बलता का अवश्य नाश हो सकेगा। परन्तु इसके लिये आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम के विषय में अत्यंत सूक्ष्मता से, व्यावहारिक दृष्टि से तथा अनुभव के आधार पर अत्यंत गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है, ऐसा मैं सोचता हूँ। शुद्ध या मिश्र दोनों प्रकार की संस्था के लिये आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम का प्रश्न एक समान ही है। आयुर्वेद पर श्रद्धा रखने वाला स्नातक ही आयुर्वेदीय व्यवसाय करेगा। और आयुर्वेदीय शास्त्र तथा व्यवहार को जाननेवाला स्नातक कैसा निर्माण किया जाय, इस विषय की चिन्ता प्रायः सभी को है। इस दृष्टिकोण से मैंने खूब मनन किया है, अतः स्वानुभव के आधार पर कुछ सुझाव उपस्थित कर रहा हूँ। स्वानुभव का उल्लेख मैंने यहाँ पर इसलिये किया है कि अपने वैयक्तिक जीवन में एक बड़ी संस्था में किये गये तीन प्रयोगों को मैंने नजदीक से देखा है। चौथा प्रयोग अभी चल रहा है। वर्तमान में जो कुछ वहाँ हो रहा है उस पर भी मैं गौर से देख रहा हूँ। बम्बई राज्य तथा इतर अन्य राज्यों में इस विषय की जो प्रतिक्रिया हो रही है उनको दृष्टिगत रखकर ही मैं लिख रहा हूँ। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व पूना के आयुर्वेद महाविद्यालय में "आर्युविद्याविशारद"—डी० ए० एस० एफ०" का पाठ्यक्रम था। तदनन्तर "जी० एफ० ए० एम०" और अब "बी० ए० एम० एस०" के पाठ्यक्रम के अध्यापन तथा संचालन के अनुभव का सुयोग मुझे अनायास मिला। उसमें से जो कुछ भी फल निष्पन्न हुआ है वह मेरी दृष्टि के सम्मुख है। एक निजी विद्यापीठ से सरकार-मान्य फेकल्टी में और तदनन्तर सरकारमान्य विश्व-विद्यालय में इस संस्था के प्रवेश को देखने का सुअवसर मुझे मिला है। प्रारम्भिक अवस्था से अब एक कार्यक्षम तथा नित्य उन्नतिशील संस्था के रूप में हो रहे उसके उत्कर्ष को मैं देख रहा हूँ। जिसके ६ शय्या वाले आयुर्वेदीय रुग्णालय से प्रारम्भ होकर आज आयुर्वेदीय चिकित्सालय के काय विभाग में ५२, शल्य विभाग में ८, तथा स्त्री विभाग में २६ शय्या आयुर्वेदीय उपचारार्थ तथा बाह्यो-पचार विभाग व प्रसूति विभाग में पूर्णतया आयुर्वेदीय उपचार,

साथ ही वाह्योपचार भी प्रायः आयुर्वेदीय—इस तरह के विस्तृत वृक्ष का दृश्य में आज देख रहा हूँ। परन्तु इस विषय में अभी तक कहाँ पर त्रुटि हो रही है इसका अहर्निश विचार कार्यकर्ता लोग वहाँ पर करते देखे जाते हैं। मैं भी इस विषय में सचिन्त हूँ तथा देश के प्रत्येक शास्त्रीय-विचार प्रणाली का अनुसरण करने वाले वैद्य महानुभावों का भी सचिन्त होना आवश्यक है। यह समय की पुकार है। अपने सतत मनन के फलस्वरूप कर्तव्यबुद्धि से प्रेरित होकर में कुछ विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ।

वैद्यक शास्त्र प्रत्यक्ष पर आधारित शास्त्र है और आयुर्वेद तो स्वभावतः ही अधिक प्रत्यक्ष प्रधान है। सृष्टि में विघ्नोत्पन्न करनेवाली व्याधियों का प्रादुर्भाव हुआ और उनके अध्ययन से ही आयुर्वेद का जन्म हुआ है। वैद्यक-शास्त्र का निर्माण जिस तरह हुआ है उसी दृष्टिकोण से अगर उसका अध्ययन और अनुशीलन करने का प्रयत्न किया जाय तभी उसका ज्ञान सुलभ होगा। आयुर्वेद का शास्त्रशुद्ध अध्ययन करनेवाले विद्वानों का यही मत होगा कि आयुर्वेद की सफलता उसके अनुभव पर ही है। मुझे स्नातक उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् अपनी निष्ठा तथा आत्म-विश्वास का स्मरण जब होता है तब आधुनिक आयुर्वेदीय स्नातकों की अपेक्षा इन सब विषयों में मेरी अधिक पात्रता थी, ऐसा दावा मैं नहीं कर सकता। "गतानुगतिकोलोकः न लोकः पारमार्थिकः" इस उक्ति के अनुसार विशेष अवसर नहीं मिलता तो मैं भी अन्य व्यवसायिकों के समान निश्चय ही प्रवाहपतित हुआ होता। लेकिन आयुर्वेद के क्षेत्र में कार्य करने का अवसर स्नातक को किस तरह प्राप्त हो सकता है? इसलिये ४।।–५ वर्ष के पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत ही मूलतः ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि तदनुसार उपर्युक्त अनुभव तथा निष्ठा प्राप्त हो सके।

इस तरह की व्यवस्था करने के लिये प्रवेश के बाद प्रथम वर्ष से लेकर अन्तिम वर्ष तक आयुर्वेद के विषयों का अध्ययन प्रत्यक्ष पर होना चाहिये। इस प्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति के लिये शिक्षण-संस्था के पास पर्याप्त साधन होना आवश्यक है। ये साधन कौन से हों, यह प्रश्न अत्यन्त महत्व का है। अर्वाचीन वैद्यक में प्रत्येक विषय के लिये प्रात्यक्षिक, तथा उनके लिये साधन होते हैं। उदाहरणार्थ एनाटोमी के लिये शवच्छेद-गृह, फिजिओलोजी के लिये लेबोरेटरी, मटेरियामेडिका के लिये फार्मेसी, सर्जरी के लिये शस्त्र-कर्म आदि विषय के लिये विस्तृत रूप से प्रात्यक्षिक और तद्विषयक साधन-सामग्री उपलब्ध है और विषय के शास्त्रीय निरूपण की अपेक्षा प्रात्यक्षिक क्षेत्र में विद्यार्थी का अधिक समय व्यतीत होता है। क्ष-किरण, पेथोलोजीकल लेबोरेटरी, आपरेशन थिएटर, बायोकेमेस्ट्री-फिजिओलोजीकल लेबोरेटरी, डिसेक्शन हाल इत्यादि की व्यवस्था के अभाव में अर्वाचीन वैद्यक का अध्ययन असम्भव समझा जाता है। परन्तु आयुर्वेद के पदार्थ-विज्ञान, दोष-धातु-मल-विज्ञान, द्रव्यगुण-सिद्धान्त इत्यादि विषयों के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये किस तरह की व्यवस्था और विधि हो, इस प्रश्न का हल सदैव टाला जाता है। इस विषय का ज्ञान विद्यार्थी को खूब कराया जाता है, परन्तु प्रत्यक्ष ज्ञान के अभाव में यह केवल पुस्तकीय ज्ञान है और केवल परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिये होना आवश्यक है और बाद में उसका व्यवहार में कोई उपयोग नहीं है, ऐसी विद्यार्थी की धारणा हो जाती है। निदान तथा चिकित्सा विषयक ज्ञान भी विधिवत् नहीं कराया जाता है। अर्वाचीन वैद्यक के 'मेडीसिन' विषय का अध्यापन कराते समय प्रत्येक रोगी के मल-मूत्र-रक्त आदि की परीक्षा तथा रोगी-परीक्षा-पत्रक आदि को यथाविधि भर लिया जाता है। परन्तु आयुर्वेद के अध्यापक को आयुर्वेदानुसार रोगी-परीक्षा-पत्रक बनवाकर उसे विद्यार्थी द्वारा पूरा करा लेना चाहिये और मल-मूत्रादि परीक्षा भी आयुर्वेदीय हो सकती है—ऐसी कल्पना भी उसे नहीं होती। अतः पाश्चात्य निदान-पद्धति का हिन्दी अथवा संस्कृत में अनुवाद करना मात्र ही आयुर्वेद है—ऐसी अधिकांश विद्यार्थियों की धारणा हो जाती है। पाश्चात्य रक्त-परीक्षा-विधि से 'एनीमिया' निश्चित हुआ तो उसको पाण्डु तथा एसायटिस को उदर रोग, हृदयोदर, वृक्कोदर आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जीवाणु विज्ञान से डरकर शल्य- शास्त्र सम्बन्धी आयुर्वेदीय प्रभावी उपचारों की प्रगति अवरुद्ध हो चुकी है। यही स्थिति प्रसूति-तन्त्र की भी है। तद्विषयक आत्मविश्वास तथा अधिकार के अभाव में प्रायः सर्जरी एवं मिडवाइफरी को तो अंग्रेजी वैद्यक की ही बपौती समझा जाता है।

अतः इस विषम स्थिति से हमें कुछ मार्ग निकालना होगा। आयुर्वेद में प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये कौन-कौन से साधन तथा पद्धति होनी चाहिये इसका विचार प्रथम होगा।

उपर्युक्त 'विघ्नभूता यदा रोगाः प्रादुर्भूता—शरीरिणाम्' इस परिस्थिति में आयुर्वेद का जन्म हुआ होने से सर्वप्रथम आयुर्वेद के ज्ञानार्थ चिकित्सालय का होना परमावश्यक है। इसका उपयोग किस तरह होगा—यह देखेंगे।

विविध प्रकार के रोगियों के लिये चिकित्सालय होता है। अनेक प्रकार की व्याधियों का अध्ययन करते हुए ही आयुर्वेद के सिद्धान्तों का जन्म हुआ है, इस विषय पर ध्यान देना आवश्यक होगा। रक्त का निर्माण यकृत में, अन्न का शोषण ग्रहणी द्वारा तथा फुफ्फुसों से प्राणवायु का ग्रहण इत्यादि विषयों का ज्ञान प्राचीनों को कैसे हुआ, इस विषय में आश्चर्य व्यक्त किया जाता है। प्राचीन आचार्य अतीन्द्रिय दृष्टि थे—ऐसा निष्कर्ष निकाल कर आज वैद्य लोग चुप बैठते हैं। इन सब प्रश्नों का हल उपर्युक्त विचारों में निहित है—ऐसा स्पष्ट मालूम होगा। विकृति का ज्ञान होने पर प्रकृति का आकलन होता ही है। अतएव इस विषय पर सर्वप्रथम ध्यान देना चाहिये।

आयुर्वेदीय पञ्चमहाभूत सिद्धान्त, रस-वीर्य-विपाक सिद्धान्त तथा दोष-धातु-मल सिद्धान्त ये तीनों सिद्धान्त सजीव शरीर पर सापेक्ष होने के विषय में कोई विवाद नहीं है। प्रयोगशाला की कांच की नलिका में इनका दर्शन होना असम्भव है। अतः आयुर्वेद के अध्ययन के तीन चौथाई भाग का साक्षात् सम्बन्ध चिकित्सालय से ही होता है। शारीर सम्बन्धी प्रत्यक्ष ज्ञान भी सजीव शरीर की अपेक्षा रखता है। "शोधयित्वा मृतं सम्यक् ज्ञातव्योऽग विनिश्चयः" इस सूत्र में शव विच्छेदन की मर्यादा केवल अङ्ग विनिश्चय तक ही सीमित है। मर्म, सिरावर्ण विभक्ति तथा सिराव्यध विधि, गर्भ व्याकरणादि के अध्ययन के लिये सर्वप्रथम चिकित्सालय की आवश्यकता तो सर्वसम्मत मालूम होती है। परन्तु इस विषय में कोई क्रियात्मक कदम नहीं उठाया जाता है।

जब आयुर्वेदीय अध्यापक को त्रिदोष, रसवीर्यविपाक, मर्मादि के सामान्य-विशेष छात्रों को स्पष्ट कराने का प्रसङ्ग आता है तो वह बेचारा भ्रान्ति में पड़ जाता है। वह इधर-उधर देखता है तथा सदृश विषयों के बारे में अर्वाचीन वैद्यक में क्या व्यवस्था है, इसको ढूंढ़ता है। आयुर्वेदीय अध्यापक के लिये यह स्पष्ट होना चाहिए कि प्रत्यक्ष ज्ञान का क्षेत्र उसके लिये कांच की परीक्षा-नलिका न होकर जीवित शरीर मात्र है, तथा विकृति के अध्ययन से ही प्रकृति का ज्ञान शीघ्र होता है। अतः प्रत्यक्ष ज्ञान का क्षेत्र चिकित्सालय ही होगा।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होगा कि केवल रोग-निदान, चिकित्सा तथा शल्य, प्रसूति के अतिरिक्त अन्य आयुर्वेदीय विषयों के लिये भी चिकित्सालय का होना आवश्यक है। इस दृष्टिकोण को स्वीकार करना चाहिए। अतः शारीर, दोषधातुमलविज्ञान तथा द्रव्यगुण आदि के अध्यापक का प्रारम्भ से ही चिकित्सालय से सम्बन्ध होना चाहिए। अध्यापन के अवसर पर कक्षा में वातप्रकृति, पित्तप्रकृति सम्बन्धी विवेचन तो होता है परन्तु प्रत्यक्ष ज्ञान रुग्णों पर नहीं कराया जाता है। वनस्पति के विषय में उसके एकांकी वनस्पति का रसभरा वर्णन तो किया जाता है, परन्तु रुग्णों पर उसका प्रत्यक्ष कराकर नहीं दिखाया जाता। इन त्रुटियों के कारण आयुर्वेदीय विज्ञान के बारे में विद्यार्थी के मन में दृढ़ विश्वास उत्पन्न नहीं हो पाता।

तदनुसार आयुर्वेदीय शिक्षण के लिये एक विशाल साधनसम्पन्न चिकित्सालय का होना नितान्त आवश्यक है, जिसमें कम से कम ७५-१०० आयुर्वेदीय रुग्णशय्याओं की व्यवस्था हो। अन्यथा आयुर्वेद विद्यालयों को मान्यता नहीं मिलनी चाहिए, ऐसी मेरी धारणा है। साधारणतया जिस विद्यालय में ६० विद्यार्थी प्रतिवर्ष प्रवेश पाते हों उसमें कम से कम शारीर के लिये ६-१०; दोष-धातु-मल विज्ञान के लिए ६-१०; द्रव्यगुण विज्ञान के लिये ६-१०; शल्यशालाक्य के लिये ८-१०; सौतिक, स्त्री तथा बाल-रोगों के लिये १६-२४ तथा कायचिकित्सा के लिए ४०-५० रुग्णशय्याओं की व्यवस्था हो। चिकित्सालय का एक वाह्य विभाग होना चाहिए, जिसमें कम से कम २०० तक रुग्णों की उपस्थिति प्रतिदिन हो। वाह्य शल्यकर्म विभाग में भी पूर्वकर्म तथा पश्चातकर्म के लिये पूर्णतः आयुर्वेदीय उपचार की व्यवस्था तथा काय विभाग भी पूर्णतः आयुर्वेदीय होना आवश्यक है।

आयुर्वेदीय तथा अर्वाचीन शय्या एकत्र अथवा पृथक-पृथक् विभागों में हो—इस विषय में मैं अभी निश्चित मत नहीं बना पाया हूँ। परन्तु नूतन रूप से प्रारम्भ की जाने वाली संस्था में आयुर्वेदीय काय-शल्य-सौतिकादि विभाग एक साथ होने पर व्यवस्था, शिक्षण, परस्पर विचार-विनिमय आदि अनेक दृष्टि से लाभ होना सम्भव है।

आयुर्वेदीय विभागों में काम करने वाले वैद्यों को अपने-अपने विभागों के लिए निदान चिकित्सा विषयक समान नीति का अवलम्बन करना चाहिए।

प्रत्येक विभाग के लिये अध्यापन के अनुसार साधन-सामग्री तथा विशेष पत्रकों की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए।

इन सभी की सुविधा के लिए पञ्चकर्म का एक विभाग रखा जावे। चिकित्सालय तथा तदन्तर्गत सम्पन्न एवं सुसज्जित आयुर्वेदीय विभाग—यही एकमात्र आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम का आधार होगा। इन विभागों की कार्य-क्षमता पर ही आयुर्वेद की सफलता निर्भर है। इन विभागों का उपयोग किस तरह कर लेना चाहिए, इसके लिये भी एक तंत्र का निर्माण किया जाय। प्रत्येक विभाग में छात्रों को काम करने के लिये अवसर दिया जाय। अध्यापक को भी स्वतः रुग्णपरीक्षापत्रक को भरना होगा तथा छात्रों द्वारा भरे हुए पत्रकों के निरीक्षण आदि की तपश्चर्या करनी होगी।

आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम पञ्चवार्षिक रहना आवश्यक है तथा उपर्युक्त मतानुसार प्रथम वर्ष से ही अन्तिम वर्ष तक छात्रों का सम्बन्ध चिकित्सालय से होना चाहिए। परन्तु पाठ्यक्रम की व्यवस्था इस कुशलता की हो कि उपर्युक्त व्यवस्था के परिपाकस्वरूप छात्र जब स्नातक बनकर विद्यालय से बाहर निकलें तो वे आयुर्वेद का व्यवहार करने वाले बनें। विद्यालय से बाहर निकलने वाले स्नातक को आयुर्वेद का ही अनुसरण करना चाहिए इसका अर्थ क्या? आयुर्वेदीय औषधियों का ही प्रयोग जो करता है वह आयुर्वेद को लेकर बाहर पड़ा है ऐसा माना जाता है जो एक दृष्टि से ठीक भी है। आयुर्वेदीय तथा अनायुर्वेदीय औषधियाँ कौन-सी है, यह एक प्रश्न है। इस प्रश्न का एक उत्तर मेरे पास है कि रसवीर्यविपाकतः परीक्षित और मूलद्रव्यों से युक्त तथा आयुर्वेदीय भैषज्यकल्पनाओं के अनुसार बनी हुई कोई भी औषधि आयुर्वेदीय हगी। इस विचारधारा के अनुसार अगर मैं क्वीनीन को अनायुर्वेदीय कहूँ तो मेरे मित्र मुझे क्षमा करेंगे। क्वीनीन आयुर्वेदीय औषधि नहीं है क्योंकि यह आयुर्वेदीय भैषज्यकल्पना के अनुसार तैयार नहीं की जाती। यह औषधि है परन्तु आयुर्वेदीय औषधि नहीं है। इसी दृष्टिकोण से पेनीसिलीन तथा स्ट्रेप्टोमाइसीन इत्यादि औषधियाँ भी आयुर्वेदीय नहीं हो सकती। भिन्न-भिन्न वनस्पतियों के टिन्क्चर्स तथा एक्सट्रेक्ट्स का भी आयुर्वेदीय औषधियों में समावेश नहीं किया जा सकता है। सल्फाड्रग्ज़ तथा इन्जेक्शन्स के विषय में भी यही विचार रहेगा। आयुर्वेद और एलोपेथी इन दो पद्धतियों में अन्तर न माननेवाले तथा इन दोनों के मधुर सम्मिलन की कल्पना करने वालों की दृष्टि में इस प्रकार की औषधियों में कोई भेद प्रतीत नहीं होता है। परन्तु मेरे विचार में इन दोनों प्रणालियों का आधार मूलतः भिन्न है तथा दोनों का अध्ययन भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से हुआ है। कला के क्षेत्र में दोनों में बहुत साम्य मिलेगा परन्तु तत्वतः दोनों में मौलिक भेद है। अतएव जब महाविद्यालयों से आयुर्वेदीय स्नातक बनकर बाहर निकलें तब उन्हें इस भिन्न दृष्टिकोण का सम्यक् ज्ञान होना आवश्यक है। इस प्रकार की निष्ठा का निर्माण तो केवल अनुभव प्राप्त करने पर ही होगा, जिसका उल्लेख मैंने ऊपर किया है। अतएव प्रचलित पाठ्यक्रम में प्रथमतः शास्त्र तथा तदनन्तर प्रत्यक्ष ज्ञान की व्यवस्था, इस क्रम को बदलकर एकदम विपरीत मार्ग का अनुसरण किया जाय तो अच्छा है। प्रथम निदान-पञ्चक के सिद्धान्त, तदनन्तर रोगनिदान व अन्तिम वर्ष में औषधि आदि योजना अब जारी है। मैंने प्रथम ही प्रतिपादन किया है कि आयुर्वेद की उत्पत्ति तो मुख्यतः प्रत्यक्ष से ही हुई है। अतएव प्रथम उपचार और तदनन्तर निदान विषयक सिद्धान्त, ऐसा क्रांतिकारी परिवर्तन पाठ्यक्रम में होना मैं आवश्यक मानता हूँ।

पाठकों को सम्भवतः यह विचार आश्चर्यकारक लगेगा, परन्तु थोड़ा विचार करने पर विदित होगा कि ऐसे क्रांतिकारी परिवर्तन के सिवाय अन्य कोई मार्ग नहीं है। इस योजना को क्रियान्वित करने पर स्नातक के लिये शीघ्र औषधोपचार लिखना सरल होगा तथा औषधियों के गुणों का सम्यक् ज्ञान होने से उसकी सफलता होगी, और वह सदैव आयुर्वेद का ही अवलम्बन करेगा। यह योजना अत्यन्त सरल तथा परिणामकारी सिद्ध होगी। पाठ्यक्रम के प्रथम डेढ़ से दो वर्षों में दोष-धातु-मलों की विकृति का परिचय, प्रकृति विनिश्चय का ज्ञान होने के पश्चात् निदान-चिकित्सा आदि अन्य विषयों में प्रवेश सरलता से होगा—कारण कि वह उस अवस्था में बिल्कुल अपरिचित नहीं रहेगा। विकृति परीक्षण की उसे कल्पना होगी। ऐसे छात्रों के लिए नित्यप्राप्त आशुकारी व्याधियों के रुग्णों की व्यवस्था

रुग्णालय में सदैव हो जहाँ पर रोग की सामान्य चिकित्सा अर्थात् व्याधि-प्रत्यनीक चिकित्सा एक फार्मेकोपिया के रूप में तैयार रहना आवश्यक है। सर्वप्रथम एक-डेढ़ वर्ष में निदान तथा सामान्य चिकित्सा तथा उसके अध्ययन की सीमा हो। उसके लिये एक छोटा-सा रुग्णपरीक्षापत्रक होना चाहिए। द्रव्यगुणविज्ञान के विभाग में वह द्रव्यों के गुणों का परिचय प्राप्त करेगा। इस एक-डेढ़ वर्ष के अध्ययनकाल में उसे नित्य की व्याधियों में प्रयुक्त औषध-योजना, सामान्य निदान तथा रसवीर्यविपाक आदि का प्रत्यक्ष ज्ञान होगा। पश्चात् के एक वर्ष में उसे विशेषतः विशेष चिकित्सा तथा अंशांश कल्पना प्रदर्शित करनेवाले पत्रकों के द्वारा जीर्णव्याधि के उपचार में लगाना चाहिए तथा अन्तिम वर्ष में तो उसे गृहवैद्य का कार्यभार सौंपा जाय तथा बारी-बारी से उसे शल्य शालाक्य तथा सौतिकादि अन्य आयुर्वेदीय विभागों में कार्य करने का अवसर दिया जाय। निदान-चिकित्सा, शल्य-शालाक्य अथवा सौतिकादि कोई भी विषय हो, आयुर्वेद का ज्ञान सर्वत्र समान रहता है।

रुग्णालयीन पाठ्यक्रम के विषय में यह मेरी योजना है। किस पद्धति-से कौन-से विषय का अध्ययन तथा किन-किन रुग्णों अथवा व्याधियों के लिए किस-किस औषधि का ज्ञान कराया जाय इस विषय में मैं एक विस्तृत योजना बना रहा हूँ। पाश्चात्य वैद्यक का स्नातक पूर्ण-रूपेण तज्ज्ञ होता है ऐसा ग्रह होने की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु यह निर्विवाद्य है कि वह कर्मकुशल अवश्य होता है जिसमें कोई शंका नहीं। यही नीति हमें अपनानी होगी। अपनी इस योजना में आयुर्वेदीय चिकित्सालय को मैं आयुर्वेद का एक महान् वैभव मानता हूँ।

आयुर्वेद का दूसरा वैवव है औषधि निर्माणशाला। आयुर्वेदीय स्नातक से जो अपेक्षा की जाती है (जिसका ऊपर निर्देश है) इसकी पूर्ति के लिये इस दूसरे विभाग की आयुर्वेदीय संस्था के लिये अनिवार्यता है। इस निर्माणशाला का स्वरूप भी विशाल तथा साधन-सम्पन्न होना चाहिए। निर्माणकारी भी महान कुशल, प्रत्यक्षकर्मी तथा अनुभवी हो तथा निर्माणशाला में वानस्पतिक तथा अन्य खनिज द्रव्यों के विविध कल्पों का निर्माण होना आवश्यक है। पारद के अष्टविध-संस्कार, सत्वपातन, द्रुति, कूपीपक्वरसायन, जारण आदि का वर्णन ग्रन्थों में ही पड़ा न रखकर उनको प्रत्यक्ष में लाना होगा। उत्कृष्ट औषधियों का निर्माण भी चिकित्सा के लिए अत्यन्त अनिवार्य है। प्राचीनों ने वनस्पतियों की अनेक प्रक्रियाएं निर्माण कर दीं। तदनन्तर सिद्धौषधियों का व्यवहार प्रारम्भ होकर चिकित्सा में एक महान क्रांति हुई और चिकित्सा में प्रयुक्त औषधियों में स्थैर्य, शीघ्र गुणकारित्व तथा उनकी अल्पमात्रा आदि का व्यवहार रूढ़ हुआ। आज के युग में तो औषधियों के इन गुणों की आवश्यकता अधिक ही प्रतीत होती है। अध्यापक चिकित्सालय में औषधियों के शीघ्र तथा निश्चित गुणों का परिचय नहीं करा सके तो उसके द्वारा आयुर्वेद का उपासक होने पर भी उसका प्रचार नहीं हो सकता। अतएव औषधि निर्माण-शाला प्रभावी औषधियों के निर्माण में सदैव व्यस्त हो। स्थगित हुए प्रयोगों को पुनरुज्जीवित किया जाय। शास्त्र के आधार पर नूतन प्रक्रियाओं का भी निर्माण किया जाय। विद्यमान परिस्थिति में यदि प्रतिस्पर्धा में सफल होना हो तो इन्जेक्शन्स से उत्पन्न होनेवाले तात्कालिक तथा शीघ्रकारी गुणों के समकक्ष आयुर्वेदीय औषधियों का निर्माण करने की महत्वाकांक्षा का सम्मुख होना आवश्यक है। इस विषय को दृष्टि से दूर नहीं किया जा सकता है। अतएव आयुर्वेदीय-निर्माणशाला अथवा फार्मेसी आयुर्वेद का द्वितीय वैभव है ऐसा मैं मानता हूँ। विविध प्रकार की प्रक्रिया सम्बन्धी विभाग, उसमें अध्ययन की योग्य व्यवस्था तथा साधन-सामग्री से सम्पन्न यह विभाग होना चाहिए। आयुर्वेद को प्रत्यक्ष पर सिद्ध करने के लिये उपर्युक्त विशाल समुचित चिकित्सालय तथा विशाल फार्मेसी से युक्त शिक्षा संस्था होने पर ही इस प्रकार का पाठ्यक्रम सफल होगा। फार्मेसी से सम्बद्ध एक वनस्पति उद्यान होना चाहिए। वनस्पति उद्यान स्वतन्त्र न हो तो भी चल सकेगा। लेकिन एक विशाल वस्तु संग्रहालय होना चाहिए जिसमें वनस्पति तथा खनिज द्रव्यों के नमूने, एवं वर्गीकरण दर्शक चित्रादि का समावेश हो।

आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम को सफल बनाने के लिए अन्तिम तथा अत्यन्त महत्व के वैभव का अब मैं विवेचन करूँगा। यह वैभव सब से प्रथम होता है। गृह निर्माण की योजना तो बनाई परन्तु इन्जीनियर न हो, 'घट' का निर्माण करना हो किन्तु कुम्भकार न हो तद्वत् आयुर्वेदीय महाविद्यालय में रुग्णालय, फार्मेसी, उद्यान तथा इतर अन्य आवश्यक साधन

सामग्री होने पर भी उनमें चैतन्य को देनेवाला आत्मा, दृष्टकर्मा, शास्त्रनिपुण, अध्यापक न हो तो सब व्यर्थ सिद्ध होता है। जिस प्रकार आयुर्वेद के यशापयश के लिए उपर्युक्त साधान सामग्री की आवश्यकता होती है उसी तरह योग्य अध्यापक वर्ग पर भी यह निर्भर करता है। इस उत्तरदायित्व को अध्यापक टाल नहीं सकता। पाश्चात्य विज्ञान के समान अन्य कितने भी विज्ञान प्रतिस्पर्धा में हों परन्तु अध्यापक को अपने शास्त्र सम्बन्धी दृढ़ आत्म-विश्वास होना चाहिए। प्रायः आयुर्वेदीय अध्यापक में इस प्रकार के आत्मविश्वास का अभाव होता है। उसे पाश्चात्य वैद्यक ही आदर्श एवं प्रमाण प्रतीत होता है। आयुर्वेद की उस विज्ञान के साथ तुलना की जाती है। अध्यापक स्वतः दुर्बल तथा परावलम्बी होता है। उसकी स्वशास्त्र में निष्ठा तथा विश्वास न होने से वह स्वयं अपने व्यवसाय में तथा प्रसंग आने पर अपने घर में भी पाश्चात्य औषधि आदि का प्रयोग करता है। अतः आयुर्वेद के अध्यापक के गुणों पर ही स्नातकों का निर्माण निर्भर करता है। अतएव अध्यापक को पूर्णतः आयुर्वेदीय बनाना होगा। इसके लिए स्नातकोत्तर शिक्षणक्रम की व्यवस्था होनी चाहिए। वर्तमान में पूना के तिलक विद्यापीठ द्वारा तथा जामनगर में केन्द्रीय शासन के द्वारा इस तरह की व्यवस्था है। यह व्यवस्था अभी अपूर्ण है ऐसा नहीं लगता—किन्तु इस विषय में आवश्यक प्रवृत्ति अध्यापकों में अभीतक उपलब्ध नहीं होती। आयुर्वेदीय शिक्षा के लिये स्नातकोत्तर पाठचक्रम की व्यवस्था होने पर ही आयुर्वेदीय संस्थाओं का गौरव होगा। स्नातकोत्तर पाठचक्रम में एलोपेथी का समावेश करने से 'मूले कुठारः' वाला हाल होगा-ऐसा मेरा स्पष्ट मत है।

अध्यापक की आयु, योग्यता तथा अनुभव के विषय में विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध संस्थाओं में तो कुछ ऐक्य है, परन्तु देश के विभिन्न राज्यों में आयुर्वेदीय शिक्षाक्रम के लिए विभिन्न प्रवेश-योग्यता होने से यह एक जटिल समस्या हो गई है। पूना, त्रिवेन्द्रम तथा गुजरात विद्यापीठ वालों ने B. A. M. S. की उपाधि रखी है। बनारस, लखनऊ तथा सागर विश्वविद्यालयों की उपाधियाँ भिन्न हैं, परन्तु प्रवेश योग्यता सर्वत्र एक समान है—यह एक समाधान का विषय है। विक्रम विश्वविद्यालय तथा मराठवाड़ा विश्वविद्यालय में आयुर्वेद के शिक्षा की विद्याशाखा (Faculty) के निर्माण होने की सम्भावना है। स्नातकोत्तर शिक्षित अध्यापक ही सर्वत्र हों, ऐसा नियम विश्वविद्यालयों होना उचित होगा।

आयुर्वेदीय संस्था में कार्य करनेवाला अध्यापक उसकी आत्मा होता है और संस्था के यशापयश का उत्तरदायित्व बहुधा उसी के कौशल्य पर निर्भर है। यह मेरा मत सर्वमान्य होने से उसकी उपादेयता समझी जा सकती है।

आयुर्वेदीय शिक्षाक्रम के लिए प्रस्तुत सुझाव का सारांश इस प्रकार है।

(१) ७५-१०० आयुर्वेदीय रुग्णशय्यावाले चिकित्सालय के अभाव में आयुर्वेदीय संस्था का प्रारम्भ न किया जाय।

(२) प्रथम वर्ष से लेकर अंतिम वर्ष तक छात्रों का सम्बन्ध चिकित्सालय से होना चाहिए।

(३) शारीर दोष-धातु-मल विज्ञान तथा द्रव्यगुण विज्ञान के अध्यापकों का प्रत्यक्ष सम्बन्धी कार्यक्षेत्र चिकित्सालय ही होना चाहिए।

(४) प्रत्यक्ष क्षेत्र में अधिक समय व्यतीत करने के बिना छात्र आयुर्वेद का व्यवहार नहीं कर सकेगा।

(५) निदान-चिकित्सा सम्बन्धी प्रत्यक्ष ज्ञान एक विशिष्ट पद्धति से सम्पूर्णतः आयुर्वेदीय विभागों से ही कराया जाय तथा उसमें व्यावहारिकता पर भी भार दिया जाय।

(६) सर्व प्रक्रियाओं के लिये अलग-अलग विभागों में विभक्त तथा शिक्षा देने की व्यवस्था से युक्त निर्माणशाला (फार्मेसी) का आयुर्वेदीय शिक्षा संस्था से सम्बन्ध होना चाहिए। संस्था के पास इसी फार्मेसी से सम्बन्धित वनस्पति उद्यान, वस्तु-संग्रहालय आदि भी हों।

(७) आयुर्वेदीय अध्यापक सुयोग्य तथा विशिष्ट आचार एवं नियमों का अनुसरण करने वाला हो।

दीर्घ मनन के पश्चात् मैंने उपर्युक्त विचार प्रस्तुत किये हैं, जिसके व्यवहार्य होने के विषय में मुझे पूर्ण विश्वास है। अध्यापक तथा संस्था दोनों को इसमें अथक परिश्रम करना होगा, लेकिन अब दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

प्राचार्य, आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर
प्रशिक्षण केन्द्र ; जामनगर।

'रक्त' दोष नहीं—सुश्रुत का अभिमत

वैद्य देवदत्त शास्त्री, विद्यावारिधि

आयुर्वेद आयु का विज्ञान है, यह इसके शब्दार्थ से ही स्पष्ट है। 'आयु' क्या है, आयुर्वेद में इसकी वैज्ञानिक व्याख्या सुलभ है। "शरीर जीवयोर्योगः जीवनम्" या "शरीरेन्द्रिय सत्वात्माजीव धारितम्" अर्थात् शरीर और जीव के योग या शरीर-इन्द्रिय-सत्व-आत्मा के संयोग का नाम "जीवन" है। इन सब का संयोग जब तक रहता है, जीवन का अस्तित्व भी तभी तक बना रहता है। इसी शरीर और जीव के योग अथवा शरीर-इन्द्रिय-सत्व-आत्मा के संयोग को अथवा इस संयोग–जीवन के साथ अनवच्छिन्न अर्थात् जुड़े हुए "काल" को आयुर्वेद में 'आयु' कहा गया है। एवं प्रत्येक जीवधारी के साथ 'आयु' की अनवच्छिन्नता सन्निहित है, यह सुस्पष्ट है।

अतः शरीर क्या है, इन्द्रिय क्या है, मन क्या और आत्मा क्या है, इन सबका संयोग और उसके साथ अनवच्छिन्न 'आयु' क्या है, उसका यथार्थ क्या है, आयुर्वेद इन सभी प्रश्नों का हल एक साथ प्रस्तुत करता है। जीवन को तथा जीवन के प्रत्येक संघटक को स्वस्थ, सुन्दर तथा सुदृढ़ बनाए रखने के उपायों के साथ-साथ आयुर्वेद आयु-वृद्धि के उपाय भी प्रस्तुत करता है। इतना ही नहीं, मानव जीवन के अन्तिम उद्देश्य धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का पथ भी वह प्रशस्त करता है। इस प्रकार आयुर्वेद का यह व्यापक शास्त्र संपूर्ण रूप से मानव जीवन का यथार्थ शास्त्र है।

आयुर्वेद न केवल चिकित्सा शास्त्र है, प्रत्युत वह पूर्ण आरोग्य शास्त्र भी है। चरक आदि संहिताओं के चिकित्स्य (चिकित्सा) स्थानों में बाजीकरण तथा रसायन अध्यायों की प्राथमिकता इसके पोषक प्रमाण हैं। किन्तु स्वस्थ तथा अस्वस्थ की दोनों दशाओं में आयुर्वेद-भित्ति की अधः-शिला त्रिधातु—वात-पित्त-श्लेष्मा का अस्तित्व अक्षुण्ण बना रहता है।

हाँ, अपनी स्वाभाविकता के कारण जहाँ स्वस्थ देह स्थिति को वे संभव बनाते हैं, वहाँ अपनी अस्वाभाविकता के कारण वे उसके असंभव-हीन भी बना डालते हैं। त्रिधातु की इन्हीं स्वाभाविक तथा अस्वाभाविक दशाओं को आयुर्वेद में 'सम' और 'विषम' कहा गया है। किन्तु दोनों ही दशाओं में त्रिधातु—वात-पित्त-कफ का अस्तित्व कायम रहता है। यही आयुर्वेद की मान्यता है। इसमें विमति संभव नहीं। वैदिक तथा आयुर्वेदिक संहिताओं में आयुर्वेद के इन्हीं मौलिक सिद्धान्तों का सूक्ष्म किन्तु सूत्र रूप में विवेचन किया गया है।

संहिताओं में त्रिधातु (त्रिदोष) के महत्व पर प्रकाश प्रदर्शन के साथ ही उसमें भौतिक तत्वों—पृथिवी-अप्-तेज-वायु-आकाश के सम्यक् सामंजस्य का सुन्दर दर्शन भी प्रस्तुत किया गया है। किन्तु इसके बाद भी त्रिधातु के महत्व को तथा उसके साथ अन्य किसी प्राणवान् तत्व को सप्रसंग न समझना, न जानना केवल अपनी ही भूल है, संहिताओं तथा संहिताकारों का भला इसमें क्या दोष? किन्तु अपनी अनभिज्ञता और संहिताओं या संहिताकारों पर उसका उलटे ही दोषारोपण! यह तो ठीक वैसा ही है, जैसा किसी भूखे भाई का रोटी को गाली देना। वह रोटी को गाली तो देता है, किन्तु उसको पाने का प्रयत्न नहीं करता।

आयुर्वेद के मूल स्तम्भ वात-पित्त-कफ के प्रसंग में प्रस्तुत कुछ वैद्य विद्वानों का कथन है कि सुश्रुतजी भी 'रक्त' को दोष मानते हैं। जहाँ उन्होंने वात-पित्त-कफ को देहधारक बताया है, वहाँ 'रक्त' को भी साथ गिना है।" इतना ही नहीं सुश्रुत के शब्दों में ये लोग कुछ प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं। प्रवाह में ये 'रक्त' को दोष मानना भ्रान्त-बुद्धि का परिचायक भी कहते हैं, तो क्या इस भ्रान्त-बुद्धि का दोषारोपण सुश्रुत पर है? क्या वस्तुतः सुश्रुत ने 'रक्त' को दोष माना है, अथवा विवेचक स्वयं ही भ्रान्ति के शिकार बन गये हैं?

प्रश्न महत्वपूर्ण है, अतः विचारणीय है। सुश्रुत तो हमारे समक्ष नहीं हैं। हाँ उनकी कृति उनका प्रतिनिधित्व अवश्य करती है; अतः उसके द्वारा वे भी प्रत्यक्ष हैं। किन्तु उनकी कृति के माध्यम से हमें निर्णय करना है कि उन्होंने 'रक्त' को दोष माना है या अदोष। जहाँ तक

वात-पित्त-कफ के साथ 'रक्त' की धारकता की बात है, वह तो स्पष्ट एवं स्वयंसिद्ध है ही, संहिताकार ने इसी तथ्य को स्पष्ट किया है। किन्तु वातादि के साथ वह भी उनकी ही कोटि का बन गया है, अर्थात् क्या वह दोष बन गया है, यहाँ यही बात विचारणीय है।

विद्वान वैद्य विवेचकों ने आयुर्वेद के त्रिदोष का स्वयं भी समर्थन किया है। अपने इस समर्थन में थोड़ी-बहुत युक्तियों का प्रदर्शन भी उन्होंने किया है। किन्तु उसके लिए वे स्वयं श्रेय के अधिकारी नहीं। क्योंकि साधारण आयुर्वेद-विद् भी यह भली-भाँति जानता है कि त्रिदोष आयुर्वेद के मौलिक आधार हैं और इनका निदर्शन आयुर्वेदिक संहिताओं तथा आयुर्वेद से सम्बन्धित अन्य वैदिक संहिताओं में भी स्पष्ट रूप से है। अतः त्रिदोष को प्रमाणित करने का प्रयास आयुर्वेद-जगत् के लिए इन विचारकों की कोई नई देन नहीं है। विचारकों की जो उनकी अपनी बात है, वह सुश्रुत पर 'रक्त' के दोषत्व निरूपण का आरोप है। इसलिये उनका यहाँ यही अंश विचारणीय है।

डॉ० वाइज, डॉ० रायल, डॉ० डेविड सी. मुथ, सर जान मार्शल, मि० वैबर, एम० डी० क्लार्क, डॉ० कास्टरलानी, डॉ० शर्मेश आदि आयुर्वेद के प्रशंसक विश्व-विश्रुत प्रतीच्य विद्वान् विचारक एवं वैज्ञानिक आयुर्वेद के वात-पित्त-कफ के सम्बन्ध में निर्दिष्ट संहिताओं के यथार्थ प्रसंग को यदि सम्यक् न समझ सकें तो यह बात समझ में आ सकती है। किन्तु आयुर्वेद के वरद पुत्र वैद्य विद्वान् भी संहिताओं की वाणी सप्रसंग न समझ सकें; प्रत्युत् स्वयं यथाप्रसंग न समझ सकने के कारण संहिताकारों पर दोषारोपण करने लगें तो यह उनका दुर्बोध ही समझना चाहिये।

"वायु पित्तं कफश्चेति"—"वात-पित्त-कफास्त्वयं"॥ चरक। "वात-पित्तश्लेष्माणः"—"त्रय एव दोषा"॥ सु० "वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः"॥अ० हृ०। "वात पित्त कफाःज्ञेयाः"॥ शार्ङ्ग०॥ इस प्रकार अभिहित वात-पित्त-कफ, ये ही आयुर्वेद के त्रिदोष हैं। आयुर्वेद में इनको "दूषणा दोषाः" कहा गया है, किन्तु "धारणाद्धातवः" तथा "मलिनी करणान्मलाः" भी इनको कहा गया है। देहधारक होने के कारण इनकी उपमा मंडप को धारण करनेवाले त्रिस्थूण से दी गई है।

"शरीरामिदं धार्यतेऽगारमिव—स्थूणाभिस्तिसृभिः"।

सूर्य-सोम-अनिल से भी इनकी तुलना की गई है:—

विसर्गादानविक्षेपैः सूर्य सोमानिलाः यथा।
धारयन्ति जगद्देहं वातपित्त कफास्तथा॥

ऊपर शारीरिक दोषों की त्रिस्थूण से तुलना की गई है। यद्यपि सुश्रुत से भी पूर्व ये दोष स्थूणवत् माने जा चुके हैं; तथापि सुश्रुत ने इसका कोई प्रतिवाद नहीं किया है। अतः त्रिदोष के स्थूणवत् प्रतिपादन में सुश्रुत का भी अभिमत स्पष्ट है। प्रत्युत् सुश्रुत ने अपने शब्दों में त्रिदोष को स्थूणवत् ही स्वीकार किया है।

अब सुश्रुत के 'शरीरमिदम्' इत्यादि का विश्लेषण कीजिये और देखिए कहाँ तक उनके मत में रक्त का दोषत्व सम्भव है। इस प्रसंग में त्रिदोष स्थूणवत् माने गए हैं। यहाँ दोषों की स्थूण से उपमा दी गई है और वह भी त्रिस्थूण से। सुश्रुत ने जब 'रक्त' को भी दोष माना है तो दोष चार हुए न कि तीन? तब इन चार उपमितों की 'त्रिस्थूण' से दी गई उपमा में क्या अलंकार है? जहाँ उपमेय चार हों और उपमान केवल तीन वहाँ उनकी परस्पर तुलना कैसी? निःसन्देह उपमेय तथा उपमान की संख्यात्मक श्रेणी जब समान होगी तभी उनकी परस्पर तुलना भी सम्भव है। उपमेय-उपमान के गुण-धर्म की असमानता तो कहीं तक सम्भव है। किन्तु जहाँ उपमा में संख्यात्मक धर्म का महत्व विशेष हो, वहाँ उपमेय-उपमान की संख्यात्मक असमानता किसी प्रकार भी सम्भव नहीं। क्योंकि संख्यात्मक तुलना "दो और दो" अथवा "तीन और तीन" की ही सम्भव है।

यहाँ कहा जा सकता है कि गुण-धर्म की दृष्टि से उपमेय और उपमान यहाँ दोनों ही समान है। किन्तु उपमेय यहाँ दोष—त्रिदोष हैं। यदि 'रक्त' भी दोष है, तो इन उपमितों में उसका भी नाम होना चाहिए। किन्तु वह नहीं है। अतः इससे स्पष्ट है कि सुश्रुत ने त्रिदोष से अतिरिक्त 'रक्त' को दोष नहीं माना। अन्यथा "स्थूणाभिस्तिसृभिः" का निर्देश वे नहीं करते। बल्कि देह के आधारभूत वात-पित्त-कफ तथा 'रक्त' की तुलना "स्थूणाभिश्चतसृभिः" कह कर की गई होती। किन्तु यहाँ "स्थूणाभिस्तिसृभिः" का ही निर्देश है अर्थात् आगम के आधार केवल तीन हैं; तब उपमान की संख्या चार किस प्रकार सम्भव है? अतः यहाँ उपमान की संख्या से स्पष्ट है कि उपमेय की संख्या भी उतनी ही है। यहाँ त्रिस्थूण उपमान है और त्रिदोष उपमेय।

सुश्रुत ने त्रिदोष के अतिरिक्त 'रक्त' को दोष नहीं माना है, यह यहाँ उपमेय उपमान की यथार्थता से स्पष्ट है। इसी प्रकार सूर्य-सोम-अनिल-उपमेय वात-पित्त-कफ के उपमान हैं। यदि सुश्रुत ने वस्तुतः 'रक्त' को दोष माना होता तो अवश्य ही यहाँ भी उपमेय वात-पित्त-कफ के साथ 'रक्त' को भी जोड़कर उपमान सूर्य-सोम-अनिल के साथ कुछ और जोड़ने का प्रयत्न भी किया होता जो कि निश्चित् रूप से अनुमानित उपमेय 'रक्त' का उपमान बन सकता। किन्तु उपमान की त्रिकता यह प्रमाणित करती है कि उपमेय भी केवल त्रिक् ही है। अन्यथा दोषों के महत्व बोध के लिए एवं उनकी संख्या के अनुसार सूर्य-सोम-अनिल का ही केवल निर्देश क्यों किया गया होता? इसलिए सुश्रुत की इस उपमा से भी यही स्पष्ट होता है कि यहाँ भी उपमान उपमेय के ही समान है। सोम-सूर्य-अनिल यहाँ उपमान हैं। अतः उपमेय केवल वात-पित्त-कफ ही हैं। इस तुलना से भी यही स्पष्ट है कि वात-पित्त-कफ से अतिरिक्त 'रक्त' सुश्रुत के अनुसार दोष नहीं, ।

दोषों के प्रसार वर्णन के प्रसंग में सुश्रुत का निम्न निर्देश है :—"दोषाः कदाचिदेकशोद्विशः समस्ताः शोणित सहिता वानेकधाः प्रसरन्ति"। अर्थात् दोष संचित होने पर कभी एक-एक, कभी दो-दो और कभी सभी के सभी एक साथ होकर तथा इसी क्रम से 'शोणित' से मिलकर भी शरीर में फैलते हैं।

अनुमानित दोष 'रक्त' के प्रसंग में यहाँ सुश्रुत की शब्द-योजनाओं पर ध्यान देना आवश्यक है। दोषों के प्रसार वर्णन में यहाँ उनका नाम निर्देश नहीं किया गया है। किन्तु आगे "एकशो द्विशः समस्ताः" कहा गया है। इस प्रकार सुश्रुत के इस त्रिक्-शब्द समूह से केवल त्रिदोष की ही अभिव्यक्ति होती है। दोष एक-एक, दो-दो या सब-के-सब अर्थात् तीनों ही एक साथ मिलकर भी शरीर में फैलते हैं। सुश्रुत की इस शब्द योजनानुसार त्रिदोष से अतिरिक्त अन्य कोई दोष प्रमाणित नहीं होता।

कदाचित् यहाँ यह प्रश्न हो कि गणना में एक तथा दो से अधिक संख्या के वाचक शब्द से सदा बहुत्व का ही ग्रहण होता है। इसलिए एकशो द्विशः के बाद समस्तः से न केवल तीन-तीन का ही बल्कि उससे भी अधिक संख्या का ग्रहण सम्भव है, इस प्रकार समस्ताः से न केवल त्रिदोष ही बल्कि, 'रक्त' का भी ग्रहण हो जाता है। अन्यथा संहिताकार 'समस्ताः का प्रयोग ही क्यों करते? एकशः द्विशः के बाद केवल तीन-तीन के लिए कोई अन्य प्रयोग आचार्य के लिये क्या सुलभ न था?

प्रश्न स्वाभाविक है। इसका प्रस्तुत हल भी कदाचित् अयथार्थ न हो। निःसन्देह 'समस्ताः' शब्द से एक और दो ही क्यों, अनेकानेक संख्याओं का भी ग्रहण सम्भव है। किन्तु एक-एक, दो-दो के बोधक एकशो द्विशः के अग्रिम क्रम तीन-तीन के बोध के लिये प्रथम आवश्यकता है और आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धान्त के अनुसार 'समस्ताः' निश्चित् रूप से इसी आवश्यकता की पूर्ति करना है। तीन-तीन के बाद जब और कुछ है ही नहीं तो 'दो के बाद समस्ताः 'तीन' के अतिरिक्त और किस का ग्राहक हो सकता है।

जहाँ तक इस शब्द से 'रक्त' के भी सुगृहीत होने की बात है, सुश्रुत ने 'दोषाः से शोणित संहिता' का पृथक् प्रदर्शन करके इसके दोषत्व प्रतिपादन को शून्य बना दिया है। 'शोणित' अर्थात् 'रक्त' से मिलकर भी दोष शरीर में फैलते हैं। ये दोष कभी एक-एक करके, कभी दो-दो करके और कभी तीनों के तो तीनों ही एक साथ होकर तथा रक्त से भी मिलकर शरीर में फैलते हैं। संहिताकार की इस शब्द-योजना से क्या यह ज्ञात होता है कि 'रक्त' का भी दोष होना किसी प्रकार सम्भव है? यहाँ दोषों का 'रक्त' से पृथक्त्व स्पष्ट है।

इस प्रकार समस्ताः से 'रक्त' का ग्रहण सम्भव नहीं। "एकशो द्विशः समस्ताः" से एक-एक, दो-दो और तीन-तीन करके त्रिदोष ही केवल सुगृहीत हैं। इससे स्पष्ट है कि आयुर्वेद विश्रुत दोष त्रिदोष ही है। सुश्रुत ने 'रक्त' को भी दोष माना है, यह कथन केवल प्रलाप है।

तब 'तीन-तीन' के लिए एकशः द्विशः जैसा ही कोई स्पष्ट प्रयोग आचार्य ने क्यों नहीं किया? इसलिये कि 'एकशस्, द्विशस्' जैसा 'त्रिशस्' आचार्य को सुलभ नहीं था और होता भी तो उसके स्थान पर 'समस्ताः' का प्रयोग ही समुचित होता। क्योंकि 'तीन-तीन' की पूरी सीमा को वह समुचित रूप से समाप्त करता है। अतः संहिताकार को समस्ताः का प्रयोग करना पड़ा। किन्तु शब्द योजनानुसार इससे तीन-तीन का बोध स्पष्ट है ही। "सर्वे समायन्तु श्रीमन्तः" क्या यहाँ 'सर्वे' से केवल 'तीन' का बोध सम्भव नहीं? हाँ, तीन के बाद इससे 'सौ' और उससे भी

अधिक संख्या का बोध भी सम्भव है। किन्तु जहाँ तीन से अधिक कुछ हो ही नहीं, वहाँ इनसे अधिक इससे भला किस प्रकार सम्भव है? फिर एक-दो के बाद 'सर्वे' तीन का ही तो बोधक होगा? बिना समझे ही 'शोणित' को दोष समझकर 'समस्ताः' में उसका सन्निपात करना निःसंदेह आचार्य के साथ अन्याय करना है।

संहिताकार ने यहाँ स्पष्ट रूप से दोषों से 'शोणित' का पृथक्त्व प्रदर्शित किया है:—"दोषाः शोणित सहिता वा प्रसरन्ति"। संहिताकार के मत में 'रक्त' यदि दोष होता तो 'दोषाः' से वह स्वयं ही गृहीत हो जाता। 'दोषाः' से पृथक् उसके निर्देशन की आवश्यकता होती ही क्यों? किन्तु पृथक् से भी उसका प्रदर्शन सिर्फ इसलिये आवश्यक था कि उसके द्वारा ही दोष शरीर में प्रसरण करते हैं।

आचार्य ने 'समस्ताः' शब्द का प्रयोग बहुत सोच-समझ कर किया है। अन्यथा प्रवाह में एकशः द्विशः के बाद 'समस्ताः' के स्थान पर 'बहुशः' का प्रयोग यदि कर बैठते तो आयुर्वेद का त्रिदोष सिद्धान्त निःसन्देह संदिग्ध हो जाता। अतः 'समस्ताः' का प्रयोग वहाँ हर दृष्टि से समुचित है। और संहिताकार की शब्द-योजनानुसार उससे त्रिदोष वात-पित्त-कफ ही गृहीत हैं।

सुश्रुत ने केवल 'रक्त' को दोष ही नहीं माना, बल्कि, त्रिदोष का प्रतिपादन भी किया है। दोषों की निरुक्ति करते हुए संहिताकार ने—"एतेधो क्षयवृद्धिहितैः प्रत्ययैर्वातः पित्तं श्लेष्मेति च रूपाणि भवन्ति" कहा है। यदि संहिताकार ने 'रक्त' को भी दोष माना होता तो यहाँ वात-पित्त-कफ के साथ वे 'रक्त' की भी निरुक्ति अवश्य करते। यहाँ 'रक्त' की निरुक्ति भी उतनी ही अपेक्षित होती। फिर आचार्य ने उसकी उपेक्षा क्यों की? इसलिये कि आचार्य के मत में 'रक्त' दोष है ही नहीं। यदि वह दोष होता तो अवश्य ही 'दोषाणां' से वह भी गृहीत हो जाता।

दोषों के सामान्य स्थानों के वर्णन से पूर्व संहिताकार ने "दोष स्थानान्यतः ऊर्ध्वंवक्ष्यामः" कहा है और दोषों के स्थान वर्णन करते हुए उन्होंने वात-पित्त-कफ के स्थानों का ही वर्णन केवल किया है। यदि संहिताकार ने 'रक्त' को भी दोष माना है तो यहाँ 'रक्त' के स्थानों का भी वर्णन उन्होंने क्यों नहीं किया है। "दोष स्थानान्यतः..... वक्ष्यामि" में 'दोष' से भला 'रक्त' क्यों नहीं सुलभ हो सका, यदि वह दोष है। जब दोष स्थानों के कहने की बात आचार्य कहते हैं तो 'दोष' से 'रक्त' गृहीत क्यों नहीं हुआ, यदि वह दोष है? इससे भी यही स्पष्ट है कि सुश्रुत ने 'रक्त' को दोष नहीं माना।

आगे प्रकृतिस्थ दोषों के विभिन्न स्थानों के वर्णन के बाद संहिताकार ने—"एतानि खलु दोषाणां स्थानान्य व्यापन्नानाम्" कहा है और यहाँ भी वात-पित्त-कफ के स्थानों का ही केवल वर्णन किया है, **यहाँ 'रक्त' का नाम तक भी नहीं लिया है।** यदि आचार्य के मत में 'रक्त' दोष है तो 'दोषाणां' में उसका भी समावेश क्यों नहीं किया गया? अतः इससे भी यही स्पष्ट है कि सुश्रुत के मत में 'रक्त' दोष नहीं।

यहाँ इस प्रसंग में 'पित्त' और श्लेष्मा के साथ संहिताकार ने 'वात' के विभिन्न स्थानों का वर्णन नहीं किया है और "तत्र वातस्य वातव्याधौ वक्ष्यामः" कहकर उसको आगे के लिये छोड़ दिया है। किन्तु 'पित्त' और 'श्लेष्मा' के विभिन्न स्थानों और उनके विभिन्न स्थानीय गुणों के विशद वर्णन के बाद संहिताकार ने पुनः "एतानि खलु दोषस्थानानि" कहा है। संहिताकार के इसी संकेत को लेकर 'रक्त' को दोष मान लेने का दोषारोपण कर के वैद्य विद्वानों ने अपने व्यंग बाणों से संहिताकार की अच्छी सेवा की है। लेकिन कौन कह सकता है कि संहिताकार के प्रति विवेचकों के ये व्यंग-बाण स्वयं उनको ही उपहासास्पद नहीं बना डालेंगे? इससे ज्ञात होता है कि तथ्य से परे छिद्रान्वेषण में विवेचक किस तरह तन्मय हैं। किन्तु छिद्र को भी प्रमाणित करने की सामर्थ्य उनमें नहीं है, ऐसा जान पड़ता है।

"एतानि खलु दोषस्थानि" से पूर्व भी संहिताकार ने 'एतानि खलु दोषाणां स्थानानि" कहकर दोषों के सम्बन्ध में अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है। यहाँ दोषों के विभिन्न स्थानों तथा उनके विभिन्न स्थानीय गुणों के विशेष वर्णन के बाद "एतानि खलु दोष स्थानानि" का पुनः पाठ संहिताकार का उपसंहारात्मक पाठ है। पूर्वापर सम्बन्ध तथा वर्णन विशेष को देखते हुए इस उपसंहारात्मक वाक्य का पुनर्निर्देशन अस्वाभाविक नहीं। विषय-वर्णन के उत्तरोत्तर स्तर के अनुसार किसी वाक्य विशेष की पुनरावृत्ति तो स्वाभाविक है ही। अतः यह कहना कि संहिताकार के इस वाक्य से 'रक्त' का दोष होना प्रमाणित है, मिथ्या है। अन्यथा "एतानि खलु दोषाणां स्थानान्य व्यापन्नानाम्" में "दोषाणाम्"

से 'रक्त' को भी दोष स्वीकार करके उसके स्थानों का भी वर्णन अवश्य किया गया होता।

दोषों के विभिन्न स्थानों तथा स्थानानुसार उनके निर्दिष्ट गुण-प्रकथन के एकदम बाद 'रक्त' के स्थानों का संकेत केवल (वर्णन नहीं) करते हुए संहिताकार ने "एतानि खलु दोष स्थानानि" कहा है। अतः विवेचकों ने इससे यह तथ्य निकाला है कि सुश्रुत ने 'रक्त' को दोष मान लिया है। यहाँ विवेचकों का कहना है कि यदि आचार्य ने 'रक्त' को दोष न माना होता तो इस उपसंहारात्मक वाक्य से पूर्व तथा दोषों के विभिन्न स्थानों के विशेष वर्णन के बाद बीच में उसके स्थानों का संकेत उन्होंने क्यों किया होता?

इस प्रकार के प्रश्न और उनसे इस तरह के तथ्य निकालना स्वाभाविक है। किन्तु एक विवेचक की सुलझी वाणी के लिए यह बिल्कुल ही स्वाभाविक नहीं। ऐसा जान पड़ता है कि आक्षेपक केवल आक्षेप की ही अपेक्षा रखते हैं, यथातथ्य को समझना और जानना वे आवश्यक नहीं समझते।

तथ्य यह है कि संहिताकार ने अपनी शैली के अनुसार प्रसंगवश "शोणितस्य स्थानं यकृतप्लीहादौ" कहकर आगे "तच्च प्रागभिहितम्" कहते हैं। अर्थात् यकृत और प्लीहा "रक्त" के स्थान हैं और वे पहले ही कहे जा चुके हैं। आचार्य के इस कथन से यह साफ है कि "एतानि खलु दोष स्थानानि" के उपसंहार संकेत से 'रक्त' के स्थानों का यहाँ रंचमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। अन्यथा संहिताकार ने "तच्च प्रागभिहितम्" और आगे जो कुछ उन्होंने कहा है वह न कहते। कदाचित् यह अनुमान भी तभी संभव हो पाता कि इस उपसंहार वाक्य से संहिताकार ने 'रक्त' को भी दोष स्वीकार किया है। किन्तु आचार्य ने "तच्च प्रागभिहितम्" कहा है। अर्थात् 'रक्त' के स्थानों का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। अतः इससे स्पष्ट है कि "एतानि खलु दोष स्थानानि" में दोष से केवल वात-पित्त-कफ के स्थानों का ही सम्बन्ध है न कि रक्त के स्थानों का? अतएव दोषों के स्थान-प्रकथन के बाद संहिताकार के इस उपसंहारात्मक संकेत से उन पर 'रक्त' को भी दोष मान लेने का जो आरोप किया गया है, भ्रामक है। विवेचकों ने यदि "तच्च प्रागभिहितम्" पर स्वयं भी ध्यान दिया होता तो "एतानि खलु दोष स्थानानि" से 'रक्त' के स्थानों का वर्णन भी सुगृहीत है, इसलिए 'रक्त' का भी दोष होना आचार्य की सम्मति में स्पष्ट है ही, यह कहने की चेष्टा वे कभी नहीं करते।

'रक्त' के स्थान संकेत से तुरन्त बाद "तच्च प्रागभिहितम्" कहकर संहिताकार ने स्पष्ट कर दिया है कि "एतानि खलु दोष स्थानानि" से वातादि त्रिदोषों के स्थान कथन का ही केवल उपसंहार किया गया है। 'रक्त' के स्थान तो पहले ही कहे जा चुके हैं। यहाँ इस उपसंहार से उनका सम्बन्ध जोड़ना व्यर्थ है। अतः इस वाक्-संघर्ष से भी यही सिद्ध हुआ कि 'रक्त' सुश्रुत के अनुसार दोष नहीं।

त्रिदोष अपनी साम्यावस्था के कारण शरीर के धारक बताए गए हैं। जिस प्रकार ये अपनी विषम स्थिति के कारण शरीर-हानि के हेतु बन जाते हैं, उसी प्रकार 'धातु' और 'मल' अपनी विषम स्थिति के कारण शरीर-हानि के हेतु बन जाते हैं। इसलिए स्वस्थ देह के लिए, 'सम दोषः' के साथ-साथ 'समधातु मल क्रियः' भी कहा गया है। स्वस्थ और अस्वस्थ देह की इन दोनों स्थितियों के लिए दोष-धातु और मल ही जिम्मेदार है। जहाँ ये अपनी समस्थिति से शरीर को धारण करते हैं, वहाँ अपनी विषमस्थिति से शरीर का विनाश भी कर डालते हैं। इस प्रकार शरीर की दोनों अवस्थाओं के लिए दोष-धातु-मलों का महत्त्व समान है। यही कारण है कि प्रसंग विशेष में जहाँ इनके साथ-साथ संकेत की आवश्यकता पड़ती है, इनका निर्देशन वहाँ आवश्यक हो जाता है। किन्तु इसका निष्कर्ष यह नहीं कि दोषों के साथ-साथ 'रक्त' का या इनमें से किसी का भी प्रसंग विशेष में महत्त्व प्रदर्शन यदि कर दिया जाए या ऐसा करना आवश्यक हो जाए तो ये भी दोष अर्थात् वात-पित्त-कफ की श्रेणी के बन जाएँगे।

विविध तत्वों के विविध प्रसंग सम्भव हैं। किसी एक प्रसंग में विविध तत्वों के गुणपरक समानता भी सम्भव है। किन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं कि किसी एक प्रसंग में समान महत्त्व रखनेवाले अनेक तत्व एक कोटि के समझ लिए जाएँ? सम्भव है किसी कान्ता का मुख सौन्दर्य में चन्द्र के समान हो। किन्तु ऐसा तो नहीं कि वह चन्द्र ही हो—वह चन्द्रमा ही कहलाने लगे? तब किसी प्रसंग में दोषों की समानता के कारण धातु 'रक्त' दोष कैसे बन जायेगा; जब कि 'दूषणाद्दोषाः' कहे गये हैं और यह धारणाद्धातु है, विवेचक को यह जानने का प्रयत्न करना चाहिये कि आचार्य ने किस प्रसंग में 'रक्त' को दोषों के

साथ प्रस्तुत किया है। इस लेख में उसका यथास्थान संकेत तो किया जायेगा ही।

निःसन्देह दोष, धातु और मल प्रसंग विशेष में गुणों की समानता रखते हुए भी अपने वर्गीकृत नाम के निश्चित् स्थान पर ही रहेंगे। इनमें गुण-परक समानता सम्भव होने पर भी ये एक दूसरे का स्थान-नाम ग्रहण नहीं कर सकते।

यदि ऐसा है तो दोषों को 'धारणाद्धातवः' और 'मलिनी करणान्मलाः' भी कहा गया है ऐसा क्यों? प्रत्यक्ष में यह प्रश्न बहुत सुन्दर एवं स्वाभाविक है। फिर भी इस प्रश्न को यथातथ्य (यथार्थ) नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः 'धातु' और 'मल' ये दोषों के नाम नहीं हैं; बल्कि ये उनके गुण-धर्म के परिचायक हैं। 'धातु' और 'मल' की भाँति 'दोष' भी वातादि के गुण-धर्म का ही परिचायक है। फिर भी वातादि आयुर्वेद में दोष नाम से विश्रुत हो चुके हैं। वातादि को दोष कहना कहाँ तक उचित है, इसका थोड़ा-सा विश्लेषण आगे किया जायगा।

'धातु' और 'मल' जिनका संकेत अभी किया गया है, वातादि के गुण-धर्म हैं, नाम नहीं। आकाश व्यापक है, इसलिये वह 'विष्णु' है। पशु, पक्षी, जीव, जंतु सब गतिशील हैं, इसलिये य सब 'गौ' हैं। क्योंकि 'वेवेष्टीति विष्णु' और 'गच्छतीति गौः'। अर्थात् जो व्यापक हो 'वह 'विष्णु' और जो गतिशील हो वह 'गौ'। इसलिए अपनी व्यापकता के कारण आकाश विष्णु है। इसी प्रकार गतिशील होने के कारण पशु-पक्षी भी 'गौ' हैं। यदि यह सब कुछ यथार्थ है तो निःसंदेह दोष भी 'धारणाद् धातवः' और 'मलिनी करणान्मलाः' नाम्ना अवश्य कहे जायेंगे। किन्तु व्यापक होने के कारण आकाश को 'विष्णु' और गतिशील होने के कारण कीड़े-मकोड़ों को भी 'गौ' कहा जाए यह संभव नहीं। यद्यपि 'विष्णु' की निरुक्ति में आकाश की व्यापकता विद्यमान है। इसी प्रकार 'गौ' की निरुक्ति में भी मनुष्यादि की गतिशीलता सन्निहित है। फिर भी आकाश 'विष्णु' और गतिशील मनुष्यादि 'गौ' नहीं कहे जायेंगे।

वस्तुतः व्यापकता और गतिशीलता ये गुणधर्म के द्योतक हैं और असीमित हैं, तथापि गुण-धर्म होने के कारण ये अपने गुणी और धर्मी में रूढ़ अर्थ में सुनिश्चित हैं। जो तथ्य रूढ़ अर्थ में सुनिश्चित हो, वह उसका परित्याग नहीं कर सकता। हाँ उसके रूढ़िगत अर्थ में अतिरिक्त अर्थ का समावेश संभव है। किंतु जहाँ तक शब्द-शास्त्र का संबन्ध है, अर्थानुकूल शब्द और उसकी निरुक्ति का मूल प्रायः एक होना चाहिए। वैसे अपवाद संभव है, किंतु अपवाद की अर्थविहीनता संभव नहीं।

'गौ' शब्द 'गम्लृ' धातु से बनता है। इसलिए इसकी निरुक्ति इसी धातु के रूप से होगी। इसी प्रकार 'विष्णु' 'विष्लृ' धातु से बनता है। इसलिए इसकी निरुक्ति भी इसी धातु के रूप से संभव है। इस प्रकार 'वेवेष्टि' और 'गच्छति' से 'विष्णु' और 'गौ' की ही निरुक्ति संभव है। इन निरुक्तियों से व्यापकता और गतिशीलता केवल 'विष्णु' और 'गौ' में ही सन्निहित है। 'वेवेष्टीति आकाशः' और 'गच्छतीति मनुष्यादि' जिस प्रकार संभव नहीं; उसी प्रकार 'धारणाद् धातवः' से दोष और 'मलिनी करणान्मलाः' से भी दोष—त्रिदोष किसी प्रकार भी संभव नहीं। वातादि दोषों के गुणधर्म 'धातु' और 'मल' में भी जा सकते हैं; यद्यपि दोष नाम कारण में उनके ये गुण-धर्म समाप्त हो जाते हैं। किंतु अपने गुण-धर्म की व्यापकता के कारण वातादि दोष रूढ़ अर्थ में नियत 'धातु' और 'मल' नहीं बन सकते; जब कि उनका नाम ही दोष रख दिया गया है। फिर इनके लिए 'धातु' और 'मल' की निरुक्तियों का आदान किस प्रकार संभव है? 'धारणात्' से रसादि धातु, 'मलिनी करणात्' से पुरीषादि मल तथा इसी प्रकार 'दूषणात् से' वातादि दोष ही सुगृहीत है। शरीर-शास्त्र में इन निरुक्तियों से वातादि त्रिदोष, रसादि सप्त धातु, और पुरीषादि मल रूढ़ अर्थ में सुनिश्चित् हैं, तथापि अपने गुण धर्म के अनुसार इनकी व्यापकता परस्पर एक दूसरे में सन्निहित है। किंतु रूढ़ अर्थ में ये सब अपने स्थान पर दृढ़ हैं।

लेकिन 'धारणात्' धातु भी दोष,' मलिनीकरणात् मल' भी दोष और 'दूषणात्' दोष तो हैं ही, यह सब कुछ असंगत-सा जान पड़ता है। यह तो वैसा ही हुआ, जैसे आकाश भी 'वेवेष्टीति विष्णु' और मनुष्यादि भी 'गच्छतीति गौः' निरुक्ति की यह सूझ निःसंदेह अनूठी है। संभव है यह कोई शैली विशेष हो। किन्तु इसकी आवश्यकता यहाँ अनावश्यक एवं भ्रामक जान पड़ती है।

त्रिदोष की दोनों अवस्थाओं में ये सभी प्रक्रियाएं स्वयं सन्निहित है। अपनी साम्यावस्था में दोष 'देह संभवहेतवः' अर्थात् देह धारण के हेतु हैं। किन्तु असाम्यावस्था में वे 'दूषणाद् दोषाः' अपने रूढ़ अर्थ से अतिरिक्त 'मल' के ही

वाचक हैं। फिर 'धारणाद्धातवः' और 'मलिनीकरणान्मलाः' से वातादि त्रिदोष ग्रहण करने का प्रयास भ्रामक नहीं तो क्या है, जब कि 'धातु' और 'मल' शरीर शास्त्र में विशिष्ट एवं रूढ़ अर्थ में वैसे ही सुनिश्चित हैं?

यहाँ 'दोष' और 'मल' के संबन्ध में कुछ उलझनें तो थीं अवश्य, लेकिन उनकी भ्रामक निरुक्तियों के साथ उनको सुलझाने का प्रयत्न नहीं किया गया, ऐसा जान पड़ता है। शब्द शास्त्र के अनुसार 'दोष' और 'मल' की निरुक्तियाँ यद्यपि संगत और सुस्पष्ट हैं, किंतु शरीर शास्त्र में इनसे जो तथ्य लिए जाते हैं, उनकी ये द्योतक नहीं, ऐसा जान पड़ता है। आयुर्वेद में 'मलिनी करणान्मलाः' का अभिप्राय पुरीषादि से है। किंतु वह इस निरुक्ति से गृहीत नहीं होता। क्योंकि पुरीष आदि धारक भी हैं और यह उनके एक पक्ष को अर्थात् उनकी असाम्यावस्था को ही प्रस्तुत करती है और यदि पुरीष से 'मल' का ग्रहण संभव हो भी तो इससे वातादि दोषों का ग्रहण संभव नहीं, क्योंकि वातादि दोषों की व्यापकता 'मल' तक ही तब संभव होगी। कारण 'मल' का वातादि दोषों के गुण धर्म का समावेश हो जाता है। किंतु वातादि त्रिदोषों का ग्रहण पुरीषादि से इसलिए संभव नहीं कि वह मल से रूढ़ अर्थ में गृहीत है और वातादि दोषों के गणधर्म की व्यापकता वहाँ तक पहुँच नहीं पाती।

इस प्रकार निरुक्ति के अनुसार 'मल' से पुरीष गृहीत नहीं होता। क्योंकि वह धारक भी है और उसकी निरुक्ति केवल उसके संहारक पक्ष का ही निर्देश करती है। यदि 'मल' से पुरीष संभव भी हो जाता है तो उससे धारक वातादि दोषों का ग्रहण संभव नहीं; क्योंकि वह 'मल' से रूढ़ अर्थ में गृहीत है। भला 'पुरीष' वातादि दोष कैसे बन सकता है? इसी प्रकार 'दूषणाद्दोषाः' से यदि वातादि त्रिदोष गृहीत हैं तो दोष की यह निरुक्ति संभव होने पर भी उससे वातादि दोष गृहीत होते। क्योंकि ये 'देह संभव हेतवः' भी कहे गए हैं और यह निरुक्ति उनके संहारक पक्ष का अर्थात् उनकी असाम्यावस्था का ही निर्देश करती है। निर्दिष्ट निरुक्तियों से वस्तुतः वातादि दोष और 'मल' के धारक पक्ष ओझल पड़ जाते हैं।

संभव है, इन विवादों का कोई हल हो। अन्यथा अपनी दोनों अवस्थाओं के साथ दोष' से वातादि और 'मल' से पुरीषादि को रूढ अर्थ में मानकर ही संतोष कर लेना पड़ेगा। क्योंकि इनकी निरुक्तियों के कारण सर्वांगपूर्ण तथ्य से इनका स्पर्श अस्पष्ट है। किन्तु इस स्थिति में विज्ञान के साथ इनका सामंजस्य कहाँ तक संभव हो सकेगा, यह आयुर्वेद के महारथी विचारकों पर निर्भर है।

(क्रमशः)

बुंदेलखण्ड आयुर्वेदिक कालेज, झाँसी }

कुष्ठव्याधि में नेत्र को क्षति

डा० राय एवेन्जर

(जून १९५८ अंक से आगे)

अन्तरालीय कनिकाशोथ (Interstitial keratitis) आँख की पुतली की बाहरी झिल्ली के शोथ के रूप में बढ़ता है। संधान-मंडल-धमनी (Ciliary artery) की शाखाएँ निम्नतम स्तरों में विकसित हो जाती हैं तथा स्वच्छ-मंडल (Cornea) के रक्त-स्रोतों में रोग कीटाणुओं को लाते हुए परान्धता (opacity) को वाहिनीकृत (Vascularize) करती हैं। अक्षितारा के तन्तुओं में रोग-कीटाणु—वातनाड़ीशोथ (Neural) तथा कुष्ठार्बुदीय दोनों ही प्रकारों में पाए गए हैं। शोथ होने का यह दूसरा कारण है। वाहिनीकरण (Vascularization) का जहाँ तक प्रश्न है, यह धरातल से निम्नतम स्तरों तक हो जा सकता है।

कुछ दशाओं में एकपक्षीय अथवा द्विपक्षीय बेल का पक्षाघात (Bell's Palsy) होता है। कुष्ठार्बुदीय तन्तु कनिकाशोथ के क्षेत्र में वर्द्धिष्णु रहते हैं और कुष्ठार्बुद कनीनिका का निर्माण करते हैं।

कनीनिका सम्बन्धी व्रण (Corneal ulcer)—व्रणात्मक कनिकाशोथ (Ulcerative keratitis) मुख्यतया अश्रु सम्बन्धी मार्ग (Lachrymal passage) के संक्रमण से अथवा व्रण तथा अन्य प्रकार के संक्रमण द्वारा होता है। चेतनाशून्यता (Anaesthesia) के साथ तथा चेतनाशून्यता के बिना भी यह हो सकता है। व्रणों द्वारा क्षतिग्रस्त स्थान की प्रवृत्ति वाहिनीकृत होने (to get vascularized) की रहती है और अंततः इस स्थान में कुष्ठार्बुदीय तन्तु (Lepromatous tissue) भी संक्रमित हो सकते हैं। कभी-कभी अधिमंथ (Leucoma, आँख का एक रोग) के साथ अंतिम परिणाम के बतौर छिद्र (Perforation) भी हो जाता है।

कनीनिका के कुष्ठार्बुद—कुष्ठार्बुदीय तन्तु का आक्रमण कनीनिका के धुंधलेपन (Opacity) पर हो सकता है जो व्रणात्मक कनिकाशोथ के परिणामस्वरूप होता है—अथवा सीमा से विस्तृत रूप में कनीनिका से सम्बन्धित झिल्ली की सूजन होती है। पहले तो एक वृत्त के चतुर्थ भाग जितना ही आक्रान्त होता है, किन्तु बाद में पूरी कनीनिका इससे आक्रान्त होती है। कुष्ठार्बुद अत्यन्त मोटे हो सकते हैं—यहाँ तक कि उनकी मोटाई १ से १.२५ सेंटीमीटर तक हो सकती है। निःष्यन्दन (Infiltration) के प्रारंभ में ही कुष्ठार्बुद आसानी से चाकू द्वारा पृथक् किया जा सकता है; किन्तु बाद में, जब कि संक्रमण बड़ी गहराई तक हो चुकता है, इसको पृथक् करना कठिन है। जब कुष्ठार्बुदीय तन्तु कनीनिका (Cornea) के परिणाह को आवृत्त कर लेते हैं और क्रमशः बढ़ने लगते हैं, तब लघु कनीनिका के कारण कनीनिका अत्यन्त छोटी होने लग जाती है। अक्षितारा (Iritis) और वलिकाय का शोथ (Cyclitis) इस अवस्था में बढ़ जाता है और नेत्र की ज्योति में ह्रास होते-होते अंधापन तक हो जाता है।

चूर्णमय पदार्थ (Calcareous deposits)—अन्तरालीय कनिकाशोथ (Interstitial Keratitis) के साथ-साथ कनीनिका का क्षय (Atrophy of the Cornea) भी बाद में जाकर प्रारंभ हो जाता है। नेत्र की अवस्था अस्तव्यस्त-सी हो जाती है; धरातलीय एवं गहरे तौर पर Vascularization हो जाता है। ऐसे नेत्र में कैल्शियम कार्बोनेट (Calcium carbonate) इकट्ठा हो जाता है। यह छोटा, पीत-श्वेत अथवा भूरा रंग लिए हुए दिखायी देता है और स्पर्श करने पर किरकिरा (Gritty) ज्ञात होता है।

सारभत तत्वों तथा अणुओं के बने ठोस पदार्थ (Concretion) को सूची द्वारा सरलतापूर्वक हटाया जा सकता है, किन्तु उस स्थान पर व्रण होने की आशंका बनी रहती है। सभी दशाओं में १७.८६ प्रतिशत रोग सुगठित अन्तरालीय कनिकाशोथ के साथ और ३.१७ प्रतिशत रोगों में इसके वगैर भी सारभूत तत्वों तथा अणुओं के बने ठोस पदार्थ (Concretion) की वृद्धि होने लगती है, जिससे यह प्रकट है कि धुंधलापन (Opacity) के बढ़ने की भारी संभावना बनी रहती है। कनिकाशोथ (Keratitis) के प्रथम ही आक्रमण के बाद चूर्णमय पदार्थ (Calcareous

deposits) को प्रकट होने में ३ वर्ष से लेकर ४ वर्ष और ५ माह तक का समय लगता है।

अक्षितारकशोथ (Iritis) मुख्यतया रक्त-स्रोतों का एक संक्रमण है। अक्षितारा (Sclera) और तारक-बिन्दु तथा आँख के पीछे के हिस्से की सतह (Retina) के मध्यवर्ती स्थान एवं संधान मंडल (Ciliary body) में शोथ का विस्तार होता है। कुष्ठरोगियों में ११.३ प्रतिशत रोगियों को अक्षितारक शोथ (Iritis) हो जाता है। उग्र अक्षितारक शोथ (Acute iritis) के दो प्रकार हैं—एक में अत्यल्प निःष्यन्दन होता है, जो अक्षितारा तथा कनीनिका की विकृत-संधि के साथ समाप्त हो जा सकता है तथा इसकी प्रवृत्ति घटने अथवा कम होने की रहती है, दूसरे प्रकार का अक्षितारक शोथ व्याधि की जीर्णावस्था में प्रकट होता है, जिसमें प्रचुर निःष्यन्दन होता है।

बहुधा, नेत्र के रोगाक्रांत होने की पहली पहचान उग्र अक्षितारक शोथ (Acute iritis) का हठात् आक्रमण ही है। कुष्ठ व्याधि के काफी प्राचीन हो जाने की स्थिति में इसका आक्रमण और भी होता है। कुष्ठ व्याधि के विकास-क्रम में कतिपय रोगियों पर इस व्याधि की विभिन्न प्रतिक्रियाएँ होती हैं। कुछ लोगों को ज्वर के साथ शरीर पर नए घाव, लाल धब्बे, त्वचा में गुल्म (ग्रंथियाँ), अण्डकोष की वृद्धि (Orchitis), तथा वात-नाड़ीशोथ (Neuritis) आदि हो जाते हैं। इनमें से कुछ लोगों को अक्षितारक शोथ (Iritis) प्रतिक्रिया के तौर पर हो जाता है। इसके पश्चात् आक्रमणों का लगातार दौर चलता है। कुष्ठ के कीटाणुओं की अत्यधिक अनुभूति-जन्य प्रतिक्रिया होती है और रक्त-स्रोत (Blood-stream) में और भी अधिक कुष्ठ के कीटाणु प्रसार पाते हैं। साधारणतया बलिकाय और अक्षितारा अधिक सरलता-पूर्वक आक्रांत होते हैं; एक अथवा दोनों ही नेत्र इससे प्रभावित हो सकते हैं।

Hydnocarpus (एक पेड़, जिसके बीज का तेल चालमुग्रा के तेल की तरह होता है और कुष्ठ-व्याधियों में प्रयुक्त होता है) श्रेणी की औषधियों तथा प्रलवण (Ester) के साथ-साथ प्रायोगिक औषधियाँ (Experimental drugs) जैसे एम० बी० ६९३, Reinsterna Serum, Sheep Serum, Diphtheria toxoid, Antidiphtheritic Serum तथा गन्धक से तैयार की गयी औषधियाँ, जैसे Suldox Copper तथा म्योक्रिसिन (Myocrisin)—ये सारी औषधियां अक्षितारक शोथ (Iritis) रहने अथवा नहीं रहने पर कुष्ठव्याधि में प्रभावकर होती हैं। पोटेशियम आयोडायड (Potassium iodide) भारी मात्रा में, चिकित्सा की प्राचीन पद्धति के अनुसार, देने से यह प्रतिक्रिया होती है कि रक्त-स्रोतों में भारी संख्या में रोगाणुओं के आने के कारण अक्षितारक शोथ हो जाता है। रोग के अतिरिक्त दाँत, टॉन्सिल, नासूर (Sinus) तथा संक्रमण के अन्य स्थानों में कीटाणु एकत्र हो जाते हैं।

नेत्र आक्षेप (Blepharo-Spasm) और अश्रु आने के साथ-साथ पीड़ा भी अत्यन्त तीव्र हो सकती है। सर-दर्द भी भीषण रूप में होता है और प्रायः नेत्र की पीड़ा असह्य होती है तथा अत्यन्त तीव्र दर्दनाशक औषधियों की जरूरत पड़ती है। कुछ दिनों के पश्चात् आक्रमण समाप्त हो जाता है, किन्तु पुनः कुछ समय के अनन्तर इसका आक्रमण प्रारंभ होता है; हालाँकि आक्रमण मन्द या तीव्र रूप में हो सकता है। लगातार आक्रमण होने के फलस्वरूप अक्षितारा (Iris) पर Atrophy (पौष्टिक आहार के अभाव में शरीर का क्षय होना) प्रकट होती दिखायी देती है। आमतौर पर कनिकाशोथ (Iritis) पहले एक नेत्र में होता है और इसके पश्चात् दूसरे नेत्र में भी इसका प्रसार हो जाता है। कनिकाशोथ के लगभग ८३.७१ प्रतिशत रोगियों में यह देखा गया है कि प्रथमतः एक ही नेत्र में इसका आक्रमण होता है और शेष रोगियों में यह पाया गया कि उनके दोनों ही नेत्र आक्रांत होते हैं। कुष्ठ व्याधि की पहली प्रतिक्रिया के रूप में कनिका-शोथ का उग्र आक्रमण हो सकता है। त्वचा पर नए-नए घाव निकलते हैं और कुष्ठ व्याधि के कीटाणुओं के लिए दाग प्रत्यक्ष से हो जाते हैं। व्याधियों की क्रियाशीलता की यह एक पहचान है।

छोटे-बड़े Keratic precipitates दिखायी देते हैं। सगीन मामलों में उत्स्वेदन (Exudates) के साथ अस्पष्ट रूप से नेत्र में जल आते रहते हैं। ज्ञातव्य है कि उत्स्वेद अक्षितारा (Iris) में ही संगृहीत रहता है। कनिकाशोथ के १३.६६ प्रतिशत रोगियों में स्पष्ट तौर पर उत्स्वेदन (Exudation) दिखायी देता है। वृत्तखण्ड की तरह नेत्र के अग्रवेश्य (Anterior chamber) में

एकत्रित मवाद का उत्स्वेदन नेत्र द्वारा होता रहता है, और कनीनिका के साथ अक्षितारा (Iris) तथा कनिका की विकृत संधि होती है। उग्र एवं कठिन कनिकाशोथ के विपरीत, कनिकाशोथ अथवा आँख की पुतली के सफेद भाग की झिल्ली की सूजन (Scleritis) के साथ अक्षितारक शोथ (Iritis) सापेक्षतया कम उद्गमनात्मक प्रति-क्रिया (Exudative reaction) और मन्द रोग-लक्षणों के साथ बढ़ता है। बर्फ अथवा रुई के टुकड़े की तरह श्वेत उद्गमन (Exudates) उग्र किस्म के अक्षितारक शोथ में कम किन्तु साधारण किस्म के अक्षितारक शोथ में अत्यधिक दिखायी पड़ते हैं। जब रोग-लक्षण कम रहते हैं और सूजन की गति धीमी किन्तु दैनन्दिन प्रगति की ओर रहती है, तब नेत्र की ज्योति कम होने लगती है—नेत्र को स्थिर (Quiescent) होने में काफी लम्बा अर्सा लग जाता है। काफी लम्बी अवधि, यहाँ तक कि ९ वर्षों तक अक्षितारकशोथ (Iritis) का आक्रमण थोड़े-थोड़े समय के बाद होता रहता है और प्रत्येक आक्रमण की तीव्रता या उग्रता भी विभिन्न प्रकार की होती है।

अनुतीक्ष्ण अक्षितारक शोथ (Sub-acute iritis)—आमतौर पर इसका आक्रमण बड़ा उग्र होता है। इसके दर्द के साथ मामूली सूजन हो सकती है और प्रकाश की असहनीयता भी कम होती है। इस प्रकार की सूजन की विशेषता यह है कि अक्षितारा (Iris) पर श्वेत धब्बे अथवा कुष्ठीय गुल्म (Leprotic nodules) होते हैं। प्रायः ही ये गुल्म दिखायी देते हैं, किन्तु प्रत्येक दशा में इनका होना कोई आवश्यक नहीं है। ये धब्बे, जो छोटे-छोटे कुष्ठार्बुद ही हैं, देखने में पीत-श्वेत अथवा पीलापन और भूरापन लिए (Pale-brownish) होते हैं। कुष्ठ व्याधि में अनुतीक्ष्ण और जीर्ण कनिकाशोथ (Sub-acute and chronic iritis) की १९.९ दशाओं में रोगियों को श्वेत धब्बे और गुल्मादि अक्षितारा (Iris) पर होते हैं। इनमें से ४५ प्रतिशत तो सुदृढ़ आकार-प्रकार की कुष्ठार्बुदीय ग्रंथियाँ होती हैं। अक्षितारा पर जो श्वेत धब्बे होते हैं, उनमें ७१.४ प्रतिशत तो कोटरों (Crypts) में होते हैं तथा शेष धब्बे संकोचक पेशियों के पार्श्ववर्ती भागों में होते हैं। हनसेन रोग-कीटाणुओं (Hansen's bacilli) के फलस्वरूप श्वेत धब्बे सूजनवाले स्थान पर ही होते हैं। इनका निदान (Pathology) कुष्ठार्बुद की तरह ही होता है। ये धब्बे उत्स्वेदन (Exudates) की तरह नहीं होते, और न उन्हें एकत्रित चूना (Deposits of Calcium) ही कहा जा सकता है। छोटे, श्वेत और संकुचित धब्बे, जिनमें कुछ तो श्वेत रंग के चमकदार और पिन की नोक के आकार के होते हैं—अकेले अथवा जोड़ों में एक साथ बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। अक्षितारा की भूरी पीठिका पर ये धब्बे रहते हैं। श्वेत धब्बे एक साथ मिल कर अस्तव्यस्त रूप से गुल्मों का निर्माण करते हैं। धब्बे एक अनियमित लड़ी के रूप में दिखायी दे सकते हैं अथवा पुतलियों के चारों ओर बाहर संकोचक पेशी के पास होते हैं और फूलों की माला के दाने की तरह प्रतीत होते हैं। गुल्म या ग्रंथियाँ तथा धब्बे अक्षितारा के Stroma में बलिकाय सीमान्त (Ciliary margin) के समीप दिखायी दे सकते हैं। इसके पश्चात् अक्षितारा के क्षयिष्णु क्षेत्र दिखायी देते हैं।

श्वेत धब्बों की अपेक्षा ग्रंथियाँ बड़ी होती हैं। ग्रंथियों के इर्द-गिर्द के स्थान कोशाओं से आच्छादित हो जाते हैं। एक लाक्षणिक ग्रंथि में कुष्ठ कोशा, वृहत् कुष्ठ कोशा, फेनिल वृहत् कोशा, आवर्त्त कोशा, जीवाणु कोशा और हनसेन रोग-कीटाणु रहते हैं। गुल्म बहुत बाद में, यहाँ तक कि अक्षितारक शोथ (Iritis) के सातवें आक्रमण के बाद भी हो सकते हैं। प्रारंभ में इन गुल्मों की विद्यमानता के बावजूद दृष्टि में बाँकपन रहता है। इसके बाद ग्रंथियां (Nodules) संकुचित हो जाती हैं और घाव के भर जाने का चिह्न अक्षितारा ((Iris) पर दिखायी देने लगता है। उत्तरकालीन अक्षितारा तथा कनीनिका की वृहत संधि (Posterior Synechiac) और अपुष्टिता (Atro-phy) के क्षेत्र दिखायी देते हैं। इस प्रकार की अक्षितारा (Iris) शल्यक्रिया करने के बाद टुकड़ों में चूर्ण की तरह परिणत हो जा सकती है। कनिकाशोथ के चिह्न अथवा लक्षण के बिना भी बाजरे के दाने के समान अक्षितारा पर ग्रंथियाँ दिखायी पड़ सकती हैं। अक्षितारक शोथ इसके बाद हो सकता है। अनुतीक्ष्ण अक्षितारक शोथ (Sub-acute iritis) से पीड़ित रुग्णों की चिकित्सा करने के उपरान्त ३२ प्रतिशत रुग्णों केसों के श्वेत धब्बे और ग्रंथियाँ शनैः-शनैः २ से ७ माह तक की चिकित्सा के दौरान में मिट जाती हैं। चिकित्सा से अंशों के पृथकीकरण में शीघ्रता होती है। कभी-कभी बिना किसी उपचार के

भी—लगभग उनके प्रकट होने के ७ माह बाद—ग्रंथियाँ स्वतः मिट जाती हैं। ५६ प्रतिशत तो उपचार होते रहने पर भी रह जाती हैं। ग्रंथियों के प्रकट होने की औसत अवधि अक्षितारक शोथ (Iritis) के प्रथम आक्रमण से लेकर १ वर्ष ६ माह तक रहती है। अल्पतम अवधि ५ सप्ताह और दीर्घतम अवधि ४ वर्ष ३ माह तक की रहती है। इस प्रकार अनुतीक्ष्ण एवं जीर्ण अक्षितारक शोथ में ही ग्रंथियों के उभरने की प्रवृत्ति रहती है।

जीर्ण अक्षितारक शोथ (Chronic Iritis)—नेत्र की पुतली उत्तरकालीन अक्षितारा तथा कनीनिका की विकृति संधि के साथ सम्बद्ध है। तारातट (Pupillary margin) के उत्स्वेदन के फलस्वरूप पुतली सम्बन्धी झिल्ली का निर्माण हो सकता है। अक्षितारक शोथ की लगभग ४६·१५ प्रतिशत दशाओं में पर्याप्त उत्स्वेदन (fair amount of exudates) होता है; और दशाओं में कुछ भी उत्स्वेदन नहीं होता। कभी-कभी पुतलियों से सम्बन्धित झिल्ली रक्तशिराओं के साथ प्रकट होती है।

अग्रवेश्य (Anterior Chamber) में विभिन्न ढंग से उत्स्वेदन होता है। लघु और सीमांत धवलता लिए हुए उत्स्वेदन दृष्टिगोचर होते हैं। ये मुलायम तथा जल-सदृश तरल (Serous) होते हैं और शीघ्र ही सूखने योग्य होते हैं। किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि ये रेशेदार तन्तुओं से युक्त अशोष्य अवशेष कई महीनों अथवा वर्षों के बाद छोड़ जाते हैं।

पुतलियों से सम्बन्धित झिल्ली (Pupillary membrane) पतली और चमकदार अथवा डोरी से चिह्नित की गयी जैसी होती है। इसका रंग कुछ मटमैलापन लिए पीत-श्वेत होता है। देखने में यह हलके भूरे रंग की होती है। दृष्टि की स्पष्टता (Visual acuity) काफी क्षीण हो जाती है; और व्याधि की शान्तावस्था में पुतलियों को खोलने के लिए शल्य-क्रिया की सहायता भी आवश्यक हो सकती है। यह केन्द्र स्थान में मोटी किन्तु परिणाह (Periphery) में क्षीण अथवा पतली हो सकती है। अक्षितारक शोथ की प्रारंभिक अवस्था में उत्तरकालीन अक्षितारा तथा कनीनिका की विकृत-संधि को तोड़ना बहुत सरल है और आँखों की पलकों की विकृतावस्था अर्थात् पलकों का अधिक टिमटिमाना (Mydriatics) के साथ झिल्ली का निर्माण भी रोका जा सकता है। ऐसी झिल्ली के निर्माण की प्रवृत्ति प्लास्टिक के ढंग के अक्षितारक शोथ (Plastic type of Iritis) में अधिक होती है। पुतलियों को फैली हुई अवस्था में (विस्तृत) रखने में बड़ी कठिनाइयाँ होती हैं; क्योंकि शोथ के आक्रमण तथा घाव के भर जाने पर रह जानेवाले चिह्न (Cicatrices) के फलस्वरूप इसका स्वरूप (ढाँचा) विकृत हो जाता है। संधान-मंडल (Ciliary body) क्रमशः उपयुक्त आहार न मिलने के कारण क्षयिष्णु होने लगता है।

जहाँ तक अक्षितारा शोथ (Iris) का सम्बन्ध है, यह पोषणाभाव में क्षयिष्णु (Atrophic) और नाशवान (friable) हो जाता है। रक्त-शिराओं के पोषण की कमी के फलस्वरूप स्वतः बारम्बार रक्तस्राव (Haemorrhage) हो सकता है, क्योंकि शिराएँ टूट जाती हैं। रक्त की प्रवृत्ति शोषित जाने की (absorbed) होती है।

अधिमन्थ (Glaucoma)—कुष्ठीय कनीनिका शोथ में Occlusio and Seclusio pupilla के बावजूद कोई जटिलता (Complication) नहीं होती। केवल कनीनिका शोथ के पुराना होने पर ५·६५ प्रतिशत रोगियों में, कनीनिका शोथ तथा अधिमंथ बारम्बार आक्रमण होने के बाद Cyclitic Glaucoma होता है। आँखों की पलक की विकृतावस्था के उपचार के साथ क्षणस्थायी तौर पर तनाव में कुछ वृद्धि हो जाती है। कुछ रोगियों में शोथ होते ही संधान-मंडल (Ciliary body) बहुत जल्द प्रभावित हो जाता है और इसके फलस्वरूप वह क्षयिष्णु होने लग जाता है। अक्षितारा और वलिकाय शोथ से सम्बन्धित रोगों में नेत्र-जल का निर्माण अत्यल्प होता है और नेत्र-गोलक (Eye ball) का तनाव भी कम हो जाता है।

वलिकाय-शोथ (Cyclitis)—अक्षितारा में शोथ हो जाने के बाद प्रधानतः संधान-मंडल (Ciliary body) प्रभावित होता है। बड़ी तीव्र वेदना होती है, रात्रि में तो वेदना और भी असह्य हो जाती है। संधान-मंडल (Ciliary body) के ऊपर स्थित बाह्य स्तर (Sclera) में मृदुलता रहती है। अक्षितारा और अग्रवेश्य (Anterior chamber) पर उत्स्वेदन (Exudates) के साथ बड़े-छोटे आकार के श्वेत-पीत Keratics शीघ्रता से फैलते अथवा बढ़ते हैं। नेत्र की ज्योति घट जाती है और तनाव में भी क्रमशः कमी हो जाती है—इसका परिणाम यह होता है कि

Irido cyclitis के ३६.७१ प्रतिशत रोगियों में Atrophic bulbi होता है।

मोतियाबिन्द (Cataract)—Irido cyclitis के पुराने रोगियों में १९.४९ प्रतिशत रोगियों को मोतियाबिन्द हो जाता है। लेन्स की परिपक्वता व्याधि की क्रियाशीलता के साथ पूर्ण सामंजस्य रखती हुई-सी प्रतीत होती है। प्रारंभिक अवधि में ४ माह और ३ सप्ताह और बाद में २ वर्ष तक की अवधि में मोतियाबिन्द का निर्माण होता है—किन्तु इसका निर्माण अक्षितारक शोथ के प्रथम आक्रमण के साथ ही होता है। पुराने कुष्ठार्बुदीय रोगियों में नेत्र-मणि (Lens) पर अक्षितारक शोथ से उत्स्वेदन (Exudates) प्रारंभिक अवस्था में अधिक होता है।

कुष्ठ के कीटाणु, वातनाड़ी बंध (Nerve bundles) में छोटी धमनियों (arterioles) द्वारा प्रविष्ट होते हैं, जिससे नेत्र-गोलक सम्बन्धी नाड़ी निःसृत होती है—उत्तेजन और सूजन (Irritation and inflammation) भी इन्हीं के कारण होती है। बड़ी नाड़ियों में नेत्र-गोलक सम्बन्धी नाड़ी को छोड़ कर, खासकर अन्तःबाहु अस्थि सम्बन्धी (Ulnar nerve) नाड़ियों में (क्षय से मिलती-जुलती व्याधि में) तथा वातनाड़ी सम्बन्धी कुष्ठार्बुद की व्याधि से ग्रस्त लोगों को नाड़ी व्रण (Nerve abscess) होते हैं। नेत्र-गोलक सम्बन्धी नाड़ी-तन्तु (Nerve fibres) विनष्ट हो जाते हैं और उनका स्थान तन्तुओं एवं रेशों से निर्मित तन्तु (Tissue) ले लेते हैं और ये ही पुनः Optic atrophy उत्पन्न करते हैं।

पुतली सम्बन्धी वातनाड़ी शोथ (Optic neuritis)—यह रोग Toxic manifestation की तरह कुछ थोड़े मामलों में Diamino diphenyl Sulphone के साथ, जब कि रक्त का स्तर लगभग २ mg. हो जाता है, और २ से मह माह तक दवा-सेवन किये जाने के बाद होता है।

पेंदे या तले में परिवर्तन (Fundus changes)—कनीका शोथ (Keratitis) के बाद अक्षितारा परिष्कृत नहीं रहता है तथा उत्स्वेदनात्मक अक्षितारा शोथ (Exudative Iritis) अथवा बलिकाय शोथ (Cyclitis) जनित परान्धता (Opacity) के फलस्वरूप कांच धुंधला रहता है—ऐसी स्थिति में पेंदे की परीक्षा करने पर पूरा विवरण प्राप्त नहीं हो पाता।

नेत्र-वितान (Retina)—नेत्र-पटल की ही तरह अक्षितारा (Iris) पर कुष्ठार्बुद के काफी पुराने हो जाने पर एक श्वेत-रंग का गुल्म दिखायी दे सकता है।

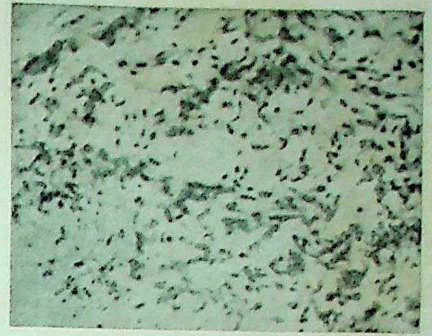
कर्बुरवृत्ति (Choroid) के साथ रंजकीय उपद्रवों सहित फुंसी की तरह आँख की पुतली के अन्दर की झिल्ली में सूजन हो आती है, जिसका कारण कोई संक्रमण नहीं होता। आँख की पुतली के अन्दर की झिल्ली में जो सूजन (Choroiditis) होती है उसका एक और विस्तृत प्रकार होता है, जो पुराने कुष्ठ-व्याधिग्रस्त मनुष्यों को होता है। इसमें Choroiditis (अर्थात् आँख की पुतली के अन्दर की झिल्ली में सूजन होना) यत्र-तत्र हो जाती है। आँख की पुतली के अन्दर की झिल्ली के सूजनवाले क्षेत्रों में जो क्षतियाँ होती हैं, उनका अन्य कई कारणों से कोई वैशिष्ट्य नहीं है।

किरणवक्रता सम्बन्धी भूल (Refractive error)—अक्षितारा के आक्रांत हो जाने पर दृष्टि-वक्रता के फलस्वरूप दृश्य वस्तुओं को दृष्टिगत करने में कठिनाई होती है और दृष्टि पूर्णतया केन्द्रित नहीं हो पाती। इसलिए चश्मा वगैरह लगाने सम्बन्धी निदान तब तक नहीं करना चाहिए जब तक कि सूजन (Inflammation) मिट न जाय, क्योंकि कुष्ठ व्याधि जन्य क्रियाओं के साथ-साथ astigmatism (अर्थात् आँख, चश्मा, दर्पण या लेंस के दोष के कारण दृष्टि केन्द्रित नहीं होना) की प्रवृत्ति भी परिवर्तित होते रहने की होती है। मोतियाबिन्द और अन्य प्रकार के Intra-occular operation के उपरान्त चश्मा लगाने सम्बन्धी निदान करने में शीघ्रता नहीं होनी चाहिए, क्योंकि ऑपरेशन के बाद सूजन प्रारंभ हो जाती है और दृष्टि बड़ी शीघ्रता के साथ क्षीण होने लग जाती है। जब नेत्र पूर्णतया स्थिर हो जाय, उसके कम-से-कम ३ माह बाद चश्मा लगाने का निदान करना उत्तम है।

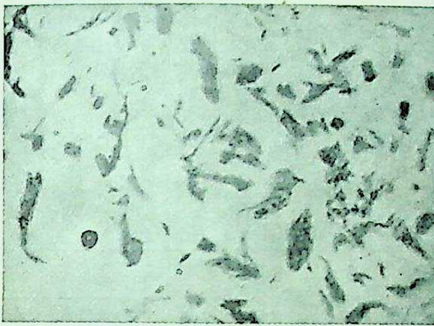
मिथ्या वेदना—कुष्ठ व्याधि का सामान्य कारण नासूर सम्बन्धी सूजन (Sinus inflammation) है। ऊपर के जबड़े की हड्डी और ललाट (Frontal) मुख्यतः रोगाक्रांत होता है। परिधि के चारों ओर वातनाड़ी शोथ (Neuritis), गण्डशंख नाड़ी (Zygomatics) आदि के कारण वेदना होती है। नेत्र-तारा के बृहत् ककुदीय प्रविकार (Tuberculoid lesions) में वातनाड़ी शोथ के फलस्वरूप नाड़ियों में उत्तेजना होती है।



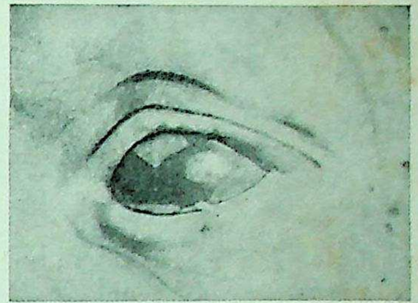
बाएँ नेत्र के स्वच्छ-मण्डल में कुष्ठार्बुद प्रसार पर है और दाहिने नेत्र के अक्षितारा तथा सन्धान-मण्डल में शोथ उत्पन्न हो गयी है। भौं तथा पलकों के बाल झड़ गए हैं।



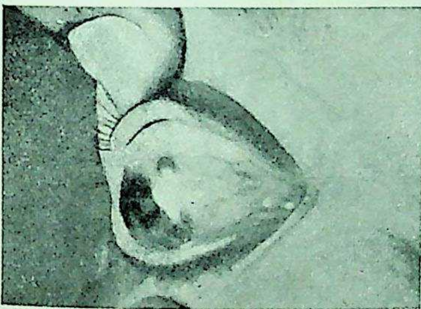
कुष्ठ कोशा, फेनिल वृहत् कोशा तथा लसीका कोशाओं के साथ-साथ अक्षितारा के कुष्ठार्बुदों का चित्र।



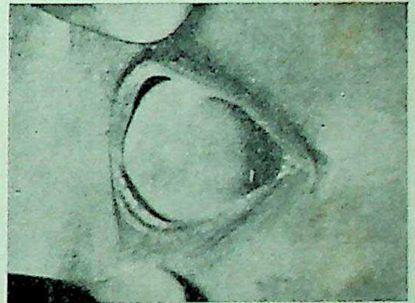
अक्षितारा के कुष्ठार्बुदों का चित्र, जिसमें हनसेन रोगकीटाणु बेशुमार दिखायी दे रहे हैं।



उग्र कनीनिका शोथ में अक्षितारा की अवस्था।



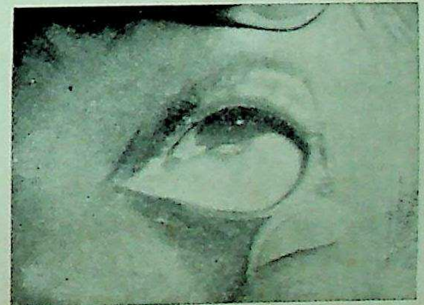
विस्तृत रूप से फैला हुआ शुक्लाकोप।



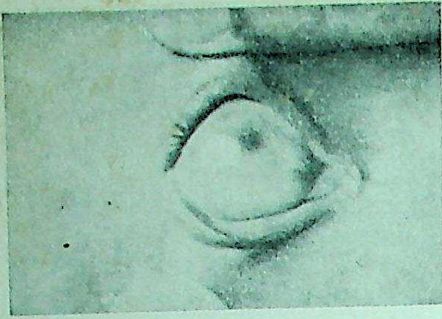
कनीनिकाशोथ में शुक्लाकोप का प्रभाव।



शुक्लाकोप तथा अन्तरालीय कनीनिकाशोथ।



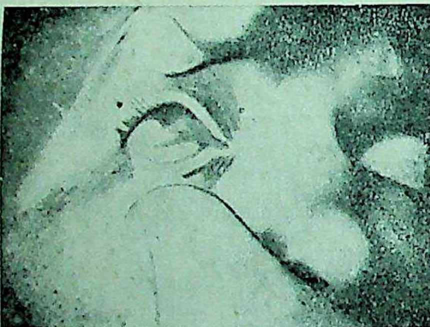
नेत्र-पटल के किनारों पर कुष्ठार्बुद का प्रभाव।



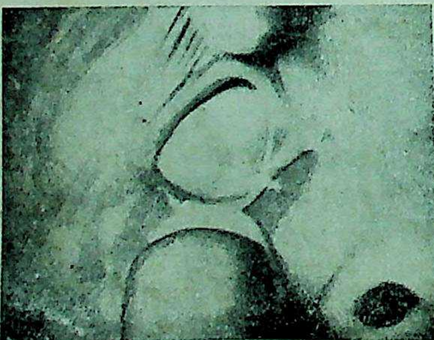
कुष्ठार्बुद की उग्रावस्था, अक्षितारा पर कुष्ठार्बुद का प्रसार ।



तारा-क्षेत्र में पसीने से निकले हुए पदार्थ के साथ अक्षितारक शोथ ।



नेत्र के भीतरी हिस्से में एकत्रित मवाद के साथ नेत्र-तटों पर फैले हुए कुष्ठार्बुद ।



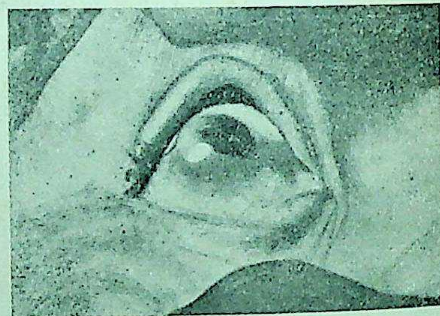
पुरानी शोथ में कुष्ठार्बुद सन्धान-मण्डल की स्थिति, जब कि अक्षितारा में संकुचन आ जाती है ।



नेत्रों की पुतली के ऊपर की कठोर झिल्ली में शोथ का फैलाव ।



अक्षितारक शोथ, जिसमें नेत्र के आभ्यन्तरिक भाग में मवाद एकत्रित है ।



उचित आहार के अभाव में शरीर-क्षय की प्रतिक्रिया कुब्बे के रूप में ।



अपोषक-क्षय की प्रतिक्रिया ।

पौष्टिकता के अभाव में क्षयिष्णुता—कठिन सूजन के साथ नेत्रों में दृष्टिहीनता और तनाव (Tension) आ जाता है तथा क्षीणावस्था प्रारंभ हो जाती है। प्लास्टिक अथवा उत्स्वेदनात्मक अक्षितारा शोथ (Exudative iritis) का क्रमशः अपोषकक्षय (Atrophy) होता है और Vitreous में धुँधलापन (Opacitics) दिखायी देता है। Cyclitic Glaucoma के रोग में भी—तनाव में वृद्धि होने के कुछ काल बाद वैसी ही घटनाएँ घटती हैं। ऐसी दशा में नेत्र की पुतली (Cornea) अपुष्टिता (Atrophy) की ओर प्रवृत्त होती है और इसकी भीतरी परतें पतली होती जाती हैं और इनका पर्यवसान Staphyloma के रूप में होता है।

कुष्ठार्बुद (Lepromas) सीमावर्ती स्थानों यथा कोण और तन्तु-समूह-संधान मंडल (Ciliary body) पर आक्रमण करता है और तदुपरान्त उत्तरभागीय खण्ड में कुष्ठार्बुद तनाव नष्ट होने के साथ प्रसार करता है। प्लास्टिक अक्षितारक शोथ (Plastic iritis) के रोग में खासकर वैसे रोग में जो अक्षितारक व्रण (Corneal ulceration) होने के पश्चात् बढ़ते हैं, नेत्र के अन्तर्निहित तत्व शोथ के फलस्वरूप शनैः-शनैः रेशेदार तन्तुओं से युक्त (Fibrosed) हो जाते हैं। शुक्लाकोप (Scleritis) होने के बहुत दिनों बाद की स्थिति में तनाव भी मिट जाता है। इन सभी दशाओं में Complicated मोतियाबिन्द हो जाते हैं। १ वर्ष ४ माह से लेकर ३ वर्ष १० माह तक—जब से कुष्ठ सम्बन्धी शिकायतें आरंभ हुईं—के दौरान में अपोषकक्षयता (Atrophy) बढ़ती है। यथाशीघ्र सक्रिय रूप से यदि उपचार न किया जाय तो कोई कारण नहीं कि अंधता रोकी न जा सके। कुछ मामलों में तो आमूल सुधार हो सकता है। ज्यों-ज्यों कुष्ठ-व्याधि में सुधार होता है, त्यों-त्यों नेत्रों की स्थिति में भी अनिवार्यतया परिवर्तन होते हैं। नेत्र में व्याधि होते रहने पर भी कुष्ठ व्याधि का उपचार बन्द नहीं होना चाहिए; पहले औषध की थोड़ी मात्रा दी जा सकती है, जो क्रमशः बाद में बढ़ायी जा सकती है। नेत्र की स्थिति में आधुनिक सल्फोन चिकित्सा द्वारा पर्याप्त सुधार हो सकता है।

खाद्योजों की कमी (Vitamin dificiency)—लगभग ६० प्रतिशत बच्चों में विटामिन 'ए' की कमी विभिन्न अवस्थाओं में मृदु स्वच्छा (Keratomalacia) पायी जाती है। रोगाणुनाशक उपचार (Antibiotic treatment) के अतिरिक्त भी, दूध अथवा दूध से बनी अन्यान्य वस्तुओं के सेवन के साथ सामान्य प्रोटीन चिकित्सा भी लाभप्रद होती है।

अश्रुधानकोप (Dacryocystitis) मुख्यतया पुराने कुष्ठार्बुदीय कुष्ठ में पाया जाता है। इसका कारण नासिका का कुष्ठार्बुदों से आक्रांत होना तथा नासिका-व्रणों का विस्तृत रूप से फैलना ही है। नासिका उपचार Sac infection के साथ ही होना चाहिए। व्रणों के कारण (Ulceration) कुछ रोगियों के लिए Dacryocysto rhinostomy अनुपयुक्त होती है।

शुक्लाकोप (Scleritis)—चिकित्सा की अन्यान्य विधियों के साथ कम-से-कम लगातार पाँच दिनों तक प्रत्येक चौथे घंटे के बाद २.५ प्रतिशत Cortisone drop देने से शोथ नियंत्रित हो जाता है। रात्रि में १.५ प्रतिशत हायड्रो कोर्टीसन नामक मलहम का भी प्रयोग किया जा सकता है। शॉर्क लीवर ऑयल पीने, Avimin की सुइयाँ लेने तथा पर्याप्त पौष्टिक आहार का सेवन करने से यह कमी दूर हो सकती है। कुछ रोगियों के मुख के कोणस्थ स्थानों पर व्रणादि द्वारा क्षत (Ariboflavinosis) हो जाया करते हैं। Riboflavin की ६ सुइयाँ लगाने तथा भोजन में पर्याप्त खाद्योजों के सेवन से स्थिति में काफी सुधार हो सकता है।

मुख सम्बन्धी पक्षाघात (Facial palsy)—दक्षुल प्रलवण (Ethyl esters) की सुइयाँ सप्ताह में एक बार ½ सी० सी० से लेकर ५ सी० सी० तक की मात्रा में लगाना और समय-समय पर विद्युत द्वारा मालिश (Electric massage) कराना लाभप्रद होता है। अवखुले नेत्र की स्थिति में रोगाणुनाशी उपचार (Antibiotic treatment) और दोनों नेत्रच्छदों (वर्त्म) की शल्यक्रिया द्वारा (Tarsorraphy) चिकित्सा होने से नेत्र की पुतली (Cornea) को क्षत होने से बचाया जा सकता है। सामान्य तौर पर प्रचलित चिकित्सा के तरीके अक्षिकला से सम्बन्धित व्रणों को अच्छा करने में कारगर सिद्ध होते हैं।

छाल से निकाली हुई ग्लीसरीन (Tannic Glycerine) ड्राप १.५ प्रतिशत का धीरे-धीरे अनुप्रवेशन (Instillation) तथा उप अक्षिकला सम्बन्धी इंजेक्शनों का प्रयोग सप्ताह में एक या दो बार चेतनाशून्यता के

पश्चात् होने से अक्षिकला सम्बन्धी विस्तृत कुष्ठार्बुद को क्षयिष्णु बनाया जा सकता है। ऊपर जिस चिकित्सा का उल्लेख किया गया है, उसके साथ Irgapyrin द्रव का दैनिक व्यवहार करने से—खासकर अक्षितारक शोथ (Irittis) अथवा अक्षितारा और तन्तु समूह-संधान मण्डल में शोथ (Iridocyclitis) रहने पर लाभ होता है। संकुचित कुष्ठार्बुद (Circumscribed leproma) चेतनाशून्यता (Anaesthesia) समेत मांस-दाह (Cautery) द्वारा समूल नष्ट हो जा सकता है।

कनिकाशोथ (Keratitis)—नेत्रों की पलक की विकृतावस्था (Mydriatics) की प्रारंभिक स्थितियों में आवश्यकतानुसार वाह्यका चिकित्सा (Cortisone treatment) की जानी चाहिए। इसके साथ-साथ १ प्रतिशत दुग्ध रस (Plasma) के साथ १ प्रतिशत द्वयायी (Dionine) अथवा मरहम, शोथ की उग्रता कुछ कम हो जाने की स्थिति में देने से शोथ और पारान्धता (Opacity) बहुत अंशों में नष्ट हो जाती है। एक ड्राम के ६० वें भाग से प्रारंभ करके क्रमशः बढ़ाते-बढ़ाते ८ मिनिम (१ मिनिम=एक ड्राम का ६० वाँ भाग) तक की साधारण सैलाइन इंजेक्शन सप्ताह में एक बार अथवा २ प्रतिशत शक्तियुत क्वीनाइन-बाय-सल्फेट मरहम ((Quinine-bi-sulphate ointment) कनिकाशोथ में बड़ी संख्या में अक्षितारा सम्बन्धी आंशिक अंधता (Nebulæ) एवं अनेक धब्बों (Maculæ) को मिटाने में बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है। चूर्णमय पदार्थ (Calcareous deposits) बड़ी आसानी के साथ हटायी जा सकती है। और ह्रासान्वित अक्षिकला की परतों की सुरक्षा भी शार्क लीवर आयल (Shark liver oil) तथा रोगाणुनाशक औषधियों (antibiotics) द्वारा की जा सकती है।

अक्षितारक शोथ (Iritis)—अक्षितारक शोथ की मर्मान्तक पीड़ा को दूर करने के लिए दर्दनाशक औषधियाँ (Analgesics) जैसे Codopyrin तथा Luminal अत्यावश्यक हैं। Atropine Sulphate १ प्रतिशत ड्राम और Scopolamine ½ प्रतिशत ड्राम अथवा मरहम का प्रयोग करने से अक्षितारिका फैली हुई-सी रहती है। Mydricaine के बस्तिकर्म द्वारा चार मिनिम से प्रारंभ करके अधिक-से-अधिक ८ मिनिम तक की आवश्यकता बन्द अक्षितारा को खोलने के लिए पड़ जा सकती है। बस्तिकर्म प्रतिदिन किया जाता है—दो से चार बार बस्तिकर्म आवश्यक हो सकता है। Salicylates और असामान्य प्रोटीन उपचार (Non-specific protein-therapy) चिकित्सा में बड़े सहायक सिद्ध होते हैं। उत्स्वेदनामक अक्षितारक शोथ बहुत शीघ्र मिट जाता है।

सल्फोन चिकित्सा (Sulphone therapy)—अक्षिकला और कनीनिका (Cornea) के व्रणों में सल्फेट्रोन १ प्रतिशत, आप्थैलमिक आइन्टमेन्ट अथवा १ प्रतिशत ड्राप्स (Drops) २ से ३ बार दैनिक व्यवहार करने पर बड़ा लाभ होता है। इसी तरह, सल्फेट्रोन की सुइयाँ लगाने से धीरे-धीरे कुष्ठार्बुद मिट जाते हैं। बाद में औषधि की मात्रा और सुइयों (Injections) की संख्या भी बढ़ाई जा सकती हैं। औषधि की मात्रा ०·२ सी.सी. और सुइयाँ चार दिनों के पश्चात् ३ से ४ तक बढ़ायी जा सकती हैं। अधिकांश कुष्ठ व्याधि से पीड़ित रोगियों को व्यवस्थित रूप से सल्फोन-चिकित्सा मनोनुकूल पड़ती है। नासिका एवं त्वचा के व्रण तथा कुष्ठार्बुद संक्रमण (Leprotic infiltration) मिटने लग जाते हैं; नेत्र का शोथ भी ह्रासोन्मुखी हो मिटने लग जाता है; सल्फोन वर्गीय औषधियों में डी० डी० एस० सर्वोत्तम औषधि है।

रोगाणुनाशक (Antibiotics)—सल्फेसेटेमाइड (Sulphacetamide) द्रव का ३० प्रतिशत, औरियोमायसिन (Aureomycin), टेरामायसिन (Terramycin) और क्लोरोमाइसेटिन (Chloromycetin) की १ प्रतिशत शक्ति से युक्त, एवं २५०० यूनिट की पेनिसिलिन का कुष्ठ के रोगाणु पर कोई प्रभाव नहीं होता। हाँ, अक्षिकला और कनीनिका (Conjunctiva and Cornea) के संक्रमण को रोकने में इनका उपयोग अवश्य है। कनीनिका के पुराने व्रणों (Chronic ulcerations) में स्ट्रेप्टोमायसिन आफ्थैल्मिक आइन्टमेंट (Streptomycin ophthalmic ointment) बड़ा फायदेमन्द होता है।

ए० सी० टी० एच० और वाह्यका (Cortisone)—नेत्र के कुष्ठार्बुदीय शोथ की वाह्यका (Cortisone) के साथ अच्छी प्रतिक्रिया होती है। शोथ की कठिन जटिलता के कारण जो दृष्टि को अत्यन्त क्षीण बना देती है, उत्स्वेदनों के प्रशोषण के कारण अवरोधित हो जाया करता है—किन्तु निश्चित् कुछ काल तक इसका प्रयोग होना चाहिए। कुष्ठ पर इसके विपरीत प्रभाव होने के कारण ए० सी० टी० एच०

की उपेक्षा कर देना उचित ही है। वाह्यका २·५ प्रतिशत शक्तिवाला चार-चार घंटे के उपरान्त दिया जा सकता है। इसी प्रकार अन्तर्वात नाड़ियों में ग्लुकोज सैलाइन, बूंद-बूंद टपका कर ४० ड्राप (बूंद) प्रति मिनट ५ से ७ दिनों तक देना चाहिए।

ऑपरेशन—कुष्ठ व्याधिजन्य नेत्र-व्रणों की चिकित्सा का जहाँ का सम्बन्ध है, इसमें शल्यक्रिया (ऑपरेशन) भी महत्त्व रखता है। ऑपरेशन करने के बाद जहाँ तक इसके परिणामों का प्रश्न है, वह तो नेत्र की सक्रियता अथवा निष्क्रियता के अनुसार बदलते हैं। सक्रिय नेत्रों (Active eyes) का ऑपरेशन उचित नहीं, क्योंकि इससे अस्थायी तौर पर दृष्टि (Vision) में कुछ सुधार भले ही हो जाय किन्तु व्रण (Trauma) के कारण कुष्ठव्याधि प्रसार करती ही रहती है और प्लास्टिक उत्स्वेदन बनते हैं। अक्षि-बहिः पटलाह (Scleritis), कनिकाशोथ (Keratitis) अथवा अक्षितारक शोथ (Iritis) में भी सक्रियता आ सकती है, जो दृष्टि के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकती है।

मोतियाबिन्द (Cataract)—रोगी की कनीनिका (Cornea) में चेतनाशून्यता (Anæsthesia) होने पर शल्यक्रिया के बाद (Post-operative period) कनीनिका में व्रण (Corneal ulceration) हो जाते हैं। कुष्ठार्बुदीय रोगियों में, (Lepromatous cases) जैसा कि दरी-दीप-परीक्षण (Slit-lamp examination) द्वारा सिद्ध हो चुका है, नेत्र को शोथ के स्थान पर शांत होने या स्थिर होने में कम-से-कम ६ माह लग जा सकते हैं। तब कहीं जाकर ऑपरेशन के लिए अनुकूलता पड़ सकती है। ऐसी दशा में ८७·५० प्रतिशत रोगियों को उत्तरभागीय अक्षितारा तथा कनीनिका की विकृत संधि (Posterior synechiae) होती है। इस बात का पता ऑपरेशन करने के पूर्व अथवा ऑपरेशन करते समय लगता है। चूंकि अपोषक क्षय (Atrophy) के कारण अधिकांश रोगियों में अक्षितारा आसानी से चूर्णीकृत (Friable) हो सकती है, अतएव ऑपरेशन करते समय अक्षितारा (Iris) टुकड़ों म निःसृत हो सकती है। जब नेत्र स्थिर हो, कोई क्रिया-शीलता न हो और यदि Bacilli index निम्न स्तर पर हो तो मोतियाबिन्द का ऑपरेशन अच्छी सफलता के साथ हो सकता है। ऑपरेशन के समय अक्षितारा (Iris) से रक्तस्राव (Hæmorrhage) का होना सामान्य घटना है। ऑपरेशन के पश्चात् रक्त और उत्स्वेदनों (Exudates) को जज्ब करने में सामान्य प्रोटीन चिकित्सा (Non-Specific protein therapy) लाभदायक होती है।

कृष्णोच्छेदन (Iridectomy)—ऐसी प्रत्येक शल्य-क्रिया Occulsio or seclusio pupilla के लिए की जाती है। ऐसे रोगियों के ६६ प्रतिशत अक्षितारकों में अपुष्टिता (Atrophied) पायी जाती है। वातनाड़ी सम्बन्धी (Neural) अथवा स्थिर कुष्ठार्बुदीय रोगियों में कृष्णोच्छेदन (Iridectomy) से अच्छा परिणाम दिखायी देता है।

नेत्रों के ऊपरी तथा निम्न पलकों की शल्यक्रिया (Tarsorraphy)—मुख सम्बन्धी पक्षाघात रहने पर, जहाँ तक Tarsorraphy का प्रश्न है, यह एक आँख में या तो बगल में अथवा नासिकावर्ती स्थान (Nasal Sector) पर किया जा सकता है। टाँके खूब मजबूती से लगाने चाहिएँ; क्योंकि त्वचा में अपोषकक्षयता (Atrophy) के कारण टाँकों के टूटने की आशंका बनी रहती है। अतएव, हल्की पट्टी लगानी चाहिए।

कुष्ठ व्याधिजन्य शनैः-शनैः बढ़नेवाली नेत्रान्धता के विरुद्ध—इस महामानवतावादी अभियान में—नेत्रों की अंधेपन से रक्षा करने तथा प्रत्येक व्यक्ति को सुख-शांति पहुँचाने के लिए यथाशीघ्र चिकित्सा करने की दिशा में हमें सप्रयत्न प्रवृत्त होना चाहिए।

—(एण्टीसेप्टिक के सौजन्य से)

समन्वय की समस्या

आयुर्वेदपंचानन पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, आयुर्वेदवृहस्पति

भारतवर्ष में इस समय आयुर्वेद, एलोपैथी, होमियोपैथी, नेचरोपैथी, क्रोमोपैथी आदि कितनी ही चिकित्सा पद्धतियों का प्रचार है। सभी के चाहने और जाननेवाले यह चाहते हैं कि हमारी पद्धति देशव्यापी हो, जनता में इसका सम्मान बढ़े और राज्य में इसके लिये स्वीकृति प्रदान हो। यही नहीं सहायता द्वारा इसे पुष्ट किया जाय और विद्यालय आदि खोलकर इसके शिक्षण द्वारा इसके प्रचार को स्थायित्व प्रदान हो। सभी के हिमातियों का यह प्रयत्न रहता है कि असेम्बलियों, प्रान्तीय कौंसिलों, केन्द्रीय संसद और राजकीय परिषदों में हमारी प्रणाली की चर्चा होती रहे और सरकार के सामने हमारी पद्धति की ताजगी बनी रहे। हरएक के प्रयत्नकर्त्ताओं को ऐसे सदस्य मिल ही जाते हैं जो सरकारी संस्थाओं में प्रभाव रखते हैं। ऐसे लोग समय-समय पर प्रस्तावों के द्वारा उनकी चर्चा करते रहते हैं। प्रश्नों के द्वारा सरकारी संचालन विभागों को झकझोरा करते हैं और उनके उत्तरों से तथ्यों की जानकारी, सरकारी रवैया का पता, सरकारी तन्त्र में उसके प्रभाव का अन्दाजा और सरकारी रुख के परिवर्तन का ध्यानाकर्षण प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते हैं।

वजट के समय खर्च में कटौती का प्रस्ताव रखकर सरकारी तन्त्र की आलोचना करते रहते हैं और इस प्रयत्न से सरकारी अधिकारियों के मस्तिष्क को चक्करों में डालकर अपने सभी अभीष्ट विषय की भलाई के लिये, सहायता के लिये, प्रचार और प्रतिष्ठा के लिये कुछ न कुछ रकम बढ़वा लेते हैं, भलाई के वादे करा लेते हैं। राजकीय तन्त्र में इस शैली के कारण कभी एक रूपता, सिद्धान्त की स्थिरता और अपनत्व की भावना की पोषकता नहीं आने पाती। सभी के प्रयत्न औरों को दवाकर अपने अभीष्ट विषय को आगे बढ़ा रहने का होता है, इसलिये स्वाभावतः ऐसा विषय राज्य-संचालन के अधिकारियों के लिये सिर-दर्द बना रहता है। वे कुछ निश्चय नहीं कर पाते। अपने राष्ट्रीय चिकित्सा-विज्ञान पर उनकी भक्ति दृढ़ नहीं हो पाती, इसलिये उनकी शक्ति भी बिखरी रहती है।

चिकित्सा विषय में वे राष्ट्रीय और स्वदेशी भावना से भागना चाहते हैं और यह कह कर जी छुड़ाना चाहते हैं कि रोग भी तो स्वदेशी है, फिर उनकी रक्षा क्यों न की जाय। भले ही सत्य से प्रभावित उनका हृदय उन्हें कचोटता होगा कि यह तो बंचना है, स्वदेशी के साथ मखौल है। स्वदेशी, स्वदेशी ही है और उसके साथ प्रवंचना करना अपराध है, पाप है। यह कहकर बाजी मार लेना और बात है कि जो चिकित्सक शरीर का ज्ञान नहीं रखता, उसे सरकार नहीं मान सकती। खासकर आयुर्वेद के सम्बन्ध में तो यह आक्षेप किसी तरह लागू हो ही नहीं सकता। आयुर्वेद अपने में पूर्ण है और विश्व के स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के तत्त्वों को, अपने में समेट लेने की उसमें शक्ति है। क्योंकि उसके सिद्धान्त और आधारभूत तत्त्व इतने पूर्ण और व्यापक हैं कि विश्व की अन्य चिकित्सा-पद्धतियाँ उसकी शाखा-बहन-बेटियों के रूप में मानी जा सकती हैं। ऐसी दशा में इस बहुरूपता के जंजाल को समेट कर एक रूपता लाने का विचार कुछ मनस्वियों के हृदय में उठना स्वाभाविक है। आयुर्वेद विश्वव्यापी व्यापक चिकित्सा-विज्ञान है। किन्तु इसी देश में आविष्कृत होने के कारण यह अपना है, स्वदेशी है और इस देश में व्यापक राष्ट्रीय चिकित्सा-विज्ञान होकर रहना चाहिए।

समन्वय की आवश्यकता—इस एकरूपता की विचार-परम्परा ने समन्वय की समस्या को उपस्थित किया है और अंशतः इस विवाद के हल को प्राप्त करने में सहायक समझा है। मध्यप्रदेश के भूतपूर्व स्वास्थ्य मन्त्री जी ने आयुर्वेद, यूनानी और एलोपैथी के औषधालय और अस्पताल एक साथ चलाकर सक्रिय रूप से आयुर्वेद की शक्तिशालीनता को सामने रखना चाहा था। विषय महत्त्वपूर्ण और अनुकरणीय था। किन्तु वर्तमान शासनक्रम में स्थिरता और दृढ़ता न होने के कारण उनके मन्त्री न रहने पर प्रयत्न ढीला पड़ गया। उत्तर प्रदेश के मेडिसिन बोर्ड ने, चेयरमैन

धुलेकरजी, कविराज प्रताप सिंहजी और स्वयं मेरे द्वारा ऐसा पाठचक्रम तैयार कराया जो आयुर्वेद और यूनानी के विषयों की समानता रखनेवाला और आयुर्वेद एवं यूनानी-शिक्षण को प्राधनता देते हुए सभी नयी बातों को उसमें सम्मिलित करनेवाला था। परन्तु मन्त्रियों के आग्रह से, चेयरमैन और सदस्यों के परिवर्तन से अब वह पाठचक्रम आयुर्वेद को गौण बनाकर पृथक्-पृथक् आयुर्वेद और एलोपैथी के विषयों का प्रवर्तक पाठचक्रम हो गया है। अन्य प्रान्तों में भी ऐसी ही छीछालेदर चल रही है और समन्वय की समस्या को जटिल बना रही है। अतएव इस विषय पर नए क्रमसे विचार करने की आवश्यकता प्रतीत हो रही है। सभी चिकित्साओं से समन्वय करने की बात यदि उद्देश्य में हो तो भी उद्देश्य के ऊँचे शिखर पर पहुँचने के लिये एकदम छलांग मारकर पहुँचना सम्भव नहीं होता। मार्ग तय करने के लिये मंजिल-मंजिल तय करना होता है और ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़ना पड़ता है। एलोपैथी के साथ समन्वय अभीष्ट हो तो भी इसकी इच्छा दोनों ओर से होनी चाहिये। एलोपैथी वाले तो आयुर्वेद से समन्वय इसी अंश में चाहते हैं कि आयुर्वेद में जो चिकित्सा फलीभूत और सफल हो उसे एलोपैथी में अपना लिया जाय और इस बात का प्रयत्न हो कि देश में आयुर्वेद खतम कर दिया जाय। उन्हें आयुर्वेद के समस्त विज्ञान का मन्थन अभीष्ट नहीं है। इसके सिवाय आयुर्वेद के आधारभूत विज्ञान और सिद्धान्तों से एलोपैथी का पूरा मेल नहीं बैठता। आयुर्वेद में सृष्टिक्रम के साथ दार्शनिक सम्बन्ध लेते हुए जिस प्रकार तत्त्वनिरूपण और जीवोत्पत्ति का विषय है उतनी बारीकी से एलोपैथी में वर्णन नहीं है। आयुर्वेद में चिकित्सा के जो छः सिद्धान्त हैं उनमें से एलोपैथी केवल विपरीत-चिकित्सा पर जोर देती है। हेतुविपरीत के अतिरिक्त उसे व्याधि विपरीत, हेतुव्याधि विपरीत, हेतुविपर्यस्तार्थकारी, व्याधि विपर्यस्तार्थकारी और हेतु व्याधि विपर्यस्तार्थ कारी विभागों की उसे परवाह नहीं है। इसके सिवाय एलोपैथी में दोष परम्परा का तत्त्व स्वीकार नहीं है। वह रोगों को कीटाणु-सम्भव मानती है। किन्तु कीटाणुओं की उत्पत्ति क्यों होती है? **"रोगस्तु दोषवैषम्यम्, दोषसाम्यमरोग्यता"** सिद्धान्त की उसे परवाह नहीं है। इसके आहार-विहार के सिद्धान्त को वह अब लाचारी से समझने का प्रयत्न कर रही है, किन्तु उसके विज्ञान को पकड़ने का अभी भी उसे ध्यान नहीं है। और सौ बात की बात तो यह है कि उसे इसकी परवाह क्यों हो? पहले अंग्रेजी राज्य में वह सरकार द्वारा पोषित थी, अब स्वराज्य के जमाने में भी उसका उसी प्रकार बोलवाला है। हमारी सरकार अभी भी एलोपैथी का पल्ला सर्वथा छोड़ने और आयुर्वेद को वैज्ञानिक रूप से बढ़ाने और पढ़ाने को तैयार नहीं दिखती। ऐसी दशा में आयुर्वेद से समन्वय करने की उसे आवश्यकता क्यों प्रतीत हो। नैचरोपैथी और क्रोमोपैथी पूर्ण चिकित्सा-विज्ञान नहीं है। वे चिकित्सा के एक अंशमात्र हैं। उनसे समन्वय की अभी जल्दी नहीं है। जिस समय आयुर्वेद का स्वास्थ्य-विज्ञान और उसका पंच-कर्म-विज्ञान अच्छी प्रकार उन्नत हो जायगा, उस समय नेचरोपैथी उसके स्वास्थ्य सिद्धान्तों के अन्तर्गत होने के कारण आप ही उसमें समा जायगी और जिस समय वैदिक जल चिकित्सकों को वैज्ञानिक रूप से विस्तार मिलेगा, उस समय वह भी आयुर्वेद से भिन्न कोई वस्तु न रह जायगी। अतएव उसका भी समम्वय हो जायगा। रही होमिओपैथी की बात, सो वह भी अभी समय सापेक्ष है। अभी हमें उससे भिड़ने या मिलने-मिलाने की जल्दी नहीं करनी चाहिये। अभी उसका विज्ञान पूर्ण विकास को प्राप्त नहीं हुआ है। वह विपर्यस्तार्थकारी चिकित्सा है। अभी अष्टांग या षोड़शांग होने का उसका दावा सिद्ध नहीं है। जिस समय आयुर्वेद अपने पूर्णस्वरूप में विकसित हो जायगा, उस समय वह आयुर्वेद के विराट्स्वरूप में सामाता हुआ प्रतीत होगा। किन्तु यूनानी की समस्या इन सबों से भिन्न है। वह आयुर्वेद से निकली है; किन्तु यूनान में फली-फूली और अरब में पली है। यूनानी और अरबी नामकरण और लिबास में वह भिन्न मालूम पड़ती है, अतएव अभी विदेशी है। हमें उसका रूप निखारकर आयुर्वेदकरण करने की आवश्यकता है। वह यहाँ से निकली और आजकल यहीं फिर आकर बसी हुई है तो भी अपने को देशान्तरित और धर्मान्तरित रूप में समझती हुई पृथकता का अनुभव कर रही है। वह भी आयुर्वेद के समान देश में विस्तार और प्रचार चाहते हुए भी पराधीनता का अनुभव कर रही है। उसके आधारभूत सिद्धांत आयुर्वेद से निकले हुए हैं, अतएव समानता सूचक है। हमारा और उसे माननेवाले हकीमों का कर्त्तव्य है कि नाम और स्वरूप को स्पष्ट कर जगत् के सामने स्पष्ट कर दें कि वह आयुर्वेद से भिन्न नहीं है। राष्ट्रीय चिकित्सा

की समस्या हल करने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि आयुर्वेद और यूनानी के बीच जो खाई पड़ी हुई है वह पाट दी जाय। जो विभिन्नता का भ्रम फैला हुआ है उसे दूर कर दिया जाय। आयुर्वेद का आधार होते हुए भी सदियों तक यूनान और अरब का उस पर जो प्रभाव पड़ा है, उससे उसके स्वरूप में कुछ अन्तर अवश्य आ गया है। आयुर्वेद के वैज्ञानिक अंश की उसमें कुछ कमी रह गयी है और भिन्न दृष्टिकोण से विचार और विस्तार होने के कारण उसमें कुछ ऐसी बातें भी आ गयी हैं जो हमारे यहाँ विस्तार और विचार की दृष्टि से विशेषता रखती है। हमें वैज्ञानिक और समन्वय के दृष्टिकोण से उनकी कमी उनके सामने रख देना है और उनकी विशेषताओं को समझकर अपने यहाँ मिला लेना है। इस आदान-प्रदान में किसीके सन्मान में ठेस लगने की आवश्यकता नहीं है। सभी प्रान्तों में आयुर्वेद और यूनानी के बोर्ड संयुक्त हैं और संयुक्त बोर्ड में ही उनके शिक्षण और प्रचार की व्यवस्था है। ऐसी दशा में एक ऐसे पाठ्यक्रम की आवश्यकता है जिसे वैद्यों और हकीमों में प्रचलित किया जाय। आयुर्वेद वालों को यूनानी के आधारभूत सिद्धान्त और चिकित्सा के सिद्धान्त सिखा दिये जायँ और यूनानी वालों को आयुर्वेद के वैज्ञानिक सिद्धान्त और चिकित्सा के सिद्धान्त पढ़ा दिये जायँ। इससे वैद्यों और हकीमों के अन्तर दूर होंगे और एकत्र का मार्ग प्रशस्त होगा। यही नहीं दोनों वर्ग अपने में पूर्णता का अनुभव करने लगेंगे। हमारे कुछ वैद्य इस योजना के नाम पर बहुत घबड़ाते हैं और सम्भव है कुछ हकीम भी इससे भड़कें। किन्तु यह भ्रम पूर्ण धारणा है। देश के स्वास्थ्य और चिकित्सा विभाग के संचालन की क्षमता दोनों के सम्मिलित स्वरूप में आ जावे यह एक राष्ट्रीय लाभ होगा। इस पाठ्यक्रम का श्री गणेश दोनों के कालेजों में आरम्भ हो सकता है और स्नानकोत्तर शिक्षण के द्वारा एक या दो वर्ष में इसकी पूर्णता की जा सकती है। ऐसे पाठ्यक्रम का एक दिग्दर्शन हम दिखाने का प्रयत्न करते हैं।

पाठ्यक्रम का सुझाव--आयुर्वेद और यूनानी का समन्वय करने में उसका एक स्वरूप निर्धारण करना पड़ेगा। यह स्वरूप निर्धारण उसके पाठ्यक्रम के रूप में हो सकता है। यहाँ पर हम एक सुझाव मात्र दे रहे हैं। उसका विस्तृत पाठ्यक्रम आयुर्वेद और यूनानी के विद्वान् एकत्र सम्मिलित होकर तैयार करेंगे। हमारा यह सुझाव उनके लिये मार्ग-दर्शक रूप में ही हो सकता है। ऐसे पाठ्यक्रम के लिये कुछ विषयक्रम निर्धारित करना उचित होगा।

आधारभूत सिद्धान्त--आयुर्वेद में आधारभूत सिद्धान्तों का दिग्दर्शन संहिता ग्रन्थों में सूत्र रूप में हो जाता है। फिर उसका विस्तार अपने-अपने विभाग में होता है। यूनानी में आधारभूत सिद्धान्त को 'उमूरकुल्लिया' या 'कुल्लियात' कहते हैं। सिद्धान्त की परिभाषा, उसके स्वरूप, सिद्धान्त के भेद, सामान्य सिद्धान्त या अहकाम कवानीन कुल्लिया और प्रायोगिक अर्थात् अमली का भेद एवं भेदस्वरूप शास्त्रीय अर्थात् इल्मेइल्मी और कार्यपद्धति का कैफियत अमल की परिभाषा और स्वरूप तथा भेदों का वर्णन, आयुर्वेद या तिब्ब की परिभाषा, प्रयोजन या प्रतिपाद्य (मौजूअ तिब्ब) विषय का विवरण, स्वास्थ्य (मौजूअ सेहत) और अस्वास्थ्य (मर्ज) का स्वरूप, स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य अवस्था का कर्त्तव्य, मानव शरीर की उत्पत्ति, कार्य और कारण (असबाव) का विवरण, इनके भेदों की समीक्षा मानव शरीर की उत्पत्ति का दार्शनिक (हिकमत या फिलसफा) विवरण, भौतिक शास्त्र (इल्म तबई या फिजिक्स) और रसायन शास्त्र (कीमिया) ज्ञान की आवश्यकता का प्रतिपादन, चिकित्सा के पाद चिकित्सक, रोगी, चिकित्सा द्रव्य और सुश्रूषक का संक्षिप्त वर्णन और उनका महत्त्व एवं कर्त्तव्य दर्शन, सारांश आयु की रक्षा और शारीरिक स्वास्थ्य संरक्षण का सिद्धान्त।

शरीरोत्पत्ति और महाभूत--यूनानी वाले भी महाभूत परम्परा को मानते हैं। महाभूतों को वे अरकान या अनासिर कहते हैं। इसका अर्थ मौलिक द्रव्य है। रूक, उन्सुर, उस्तुकुस और बसीत चार मौलिक द्रव्य हैं। उन्हीं के सम्मिलित बहुवचन में अनासिर, अरकान आदि का व्यवहार होता है। यूनानी वालों ने पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु चार ही महाभूतों को तत्त्व रूप में ग्रहण किया है। यनानी विद्वानों नें भी आकाश को महाभूतों में ग्रहण नहीं किया था। हमारा प्रयत्न होगा कि इस सम्बन्ध में हम समन्वय की दृष्टि से यूनानी चिकित्सकों को आकाश का स्वरूप भी समझावें। मानव सृष्टि जीवात्मा के शरीर... होने से संचालित होती है। यह जीवात्मा का अंश... चैतन्य है। परमात्मा स्वयं निर्विकार है और प्रकृति स्व... जड़ है। प्रकृति में आत्मतत्त्व का सहयोग होने से ही प्रकृति सृष्टि रचना में तत्पर होती है। अतएव महाभू...

की बात समझाने के लिये पहले परमात्मा, प्रकृति, महान, अहंकार, बुद्धि, चित्तशक्ति, मन, पंचतन्मात्र का ग्रहण पाठ्यक्रम में करना होगा। फिर तन्मात्राएँ किस प्रकार स्वरूप ग्रहण कर आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी के रूप में परिणत होकर शारीरिक घ्राणेन्द्रिय (पृथिवी–पार्थिव), रसग्राही रसना द्वारा (जल-जलीय) चक्षुग्राह्य (अग्नि-तैजस), त्वचा-त्वगेन्द्रिय ग्राह्य (वायु-वायवीय) और श्रोत्रेन्द्रिय ग्राह्य, (आकाश-आकाशीय) इन्द्रियों की रचना और गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द का ग्रहण-कार्य साधन होता है। किस प्रकार इन्द्रियाँ अपने अर्थों को ग्रहण कर मन और बुद्धि द्वारा कार्य साधन करती है यह बताना होगा। इन्हीं महाभूतों से वात-पित्त कफ, धातु और दोषरूप में किस प्रकार शरीर का संचालन और विकार साधन करते हैं, इसे बताने के लिये उनका निर्माण, स्वरूप, भेद, वृद्धि-स्वरूप, क्षयस्वरूप, गुण-कार्य आदि का ज्ञान प्राप्त कराना पड़ेगा। त्रिदोषों के सम्बन्धों में मुख्य बात यह है कि यूनानी वाले रक्त को भी दोष के रूप में ग्रहण करते हैं। हमारे यहाँ सुश्रुत ने भी प्रसंग विशेष में ऐसा किया है। किन्तु वह सर्जरी में रक्त की प्रधानता और आवश्यकता का ध्यान रखकर किया गया है। दोष रूप में सुश्रुत को भी तीन दोष ही स्वीकार हैं। वात-पित्त कफ जैसे स्वयं भी दूषित होते हैं और दूसरे दोषों और धातुओं को भी दूषितकरते हैं किन्तु रक्त स्वयं दूषित नहीं हो सकता, दोषों द्वारा ही दूषित होता है, जो उसे स्वतन्त्र दोष होने से रोकता है। यह हमें यूनानियों के साथ समन्वय परामर्श से तय करना पड़ेगा। शरीर सिद्धि में रस-रक्त-मांस मेद-अस्थि-मज्जा और शुक्र की बनावट, कार्य, भेद, वृद्धि स्वरूप, क्षयस्वरूप, विकृत स्वरूप आदि के विषय पाठ्यक्रम में रखने होंगे। पुरीष, मूत्र, स्वेद तथा उपमल आदि के विषय में भी सामञ्जस्य स्थापित करना होगा। विशेष कर ओज के सम्बन्ध में विशद विवेचन अपेक्षित होगा। शरीर विषय को लेकर पेशी, धमनी, नाड़ी, स्रोत, कण्डरा, आदि में भी सामज्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न अपेक्षित होगा।

हमारे कुछ राष्ट्र नायक समझते हैं कि वैद्यों और हकीमों को शारीर-ज्ञान नहीं होता। परन्तु आयुर्वेद के समान यूनानी में भी स्वास्थ्य-रक्षण के लिये और रोगज्ञान के लिये शरीररचना-विज्ञान और शरीरक्रिया-विज्ञान के साथ ही शरीर विकृति-विज्ञान का ज्ञान अपेक्षित माना गया है। इस अंश को समन्वित रूप से सम्पादित कर प्रकट करना और स्वायत्तीकरण करना परमावश्यक है। शरीर पर कारणों—असबाव का विविध रूप में असर होता है। उस असर पर स्वास्थ्य या अस्वास्थ्य की स्थिति होती है। इन कारणों के भेद समझने आवश्यक हैं। शारीरिक स्थिति समझने के लिये अरकान-महाभूत और अखलात-दोष के अतिरिक्त प्रकृति (मिजाजात), अमिश्रावयव (आज़ाए वसीता या मुफ़रेदा), सम्मिश्रावयव (आज़ाए मुरक्कबा), अरवाह (प्राण और ओज) विविधबल (कुवाएतबैया, कुवाए हैवानिया, कुवाए नफ्सनिया आदि) शरीर क्रिया कर्म (अफ़आल), स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य मध्यवर्ती अवस्था (हालात सालेस), चेष्टा-निश्चेष्टा (हरकात व सकूनात) आदि का समझना भी आवश्यक है। शास्त्रीय सिद्धान्त (मबादी मुसल्लमात) और उपशास्त्रीय सिद्धान्त (उलूय जुज़इय्या) में तर्क आवश्यक नहीं। शारीरज्ञान-प्राप्ति के लिये एलोपैथी ही नहीं आयुर्वेद और यूनानी में भी शवच्छेदन (तशरीह्—लाश चीर ने को) आवश्यक माना है और उसे गुण-कर्म के ज्ञान साधान का हेतु कहा गया है।

शरीर के संघटनकर्त्ता तत्त्वों (उमूर मुकव्वमा) को समझना स्वास्थ्य (सेह्‌हत) समझने के लिये आवश्यक है। इसीको फिजियालॉजी (फिजियास—तबीयत या प्रकृति—लॉजी—शास्त्र या विज्ञान) कहते हैं। इसके लिये महाभूत (अरकान या अनासिर), मिज़ाज इनसान (मानव-प्रकृति), मिज़ाज आजा (अंग प्रत्यंग की प्रकृति) अखलात (मानव शरीर के प्रवाही उपादान चतुर्दोष), आजा (अंग-प्रत्यंग के कठिन एवं सान्द्र उपादान), अरवाह, (शरीर के सूक्ष्म वायवीय और वाष्पीय उपादान एवं प्राण और ओज), कुवा (शक्ति) एवं अफ़आल (कर्म), आदि को समझना ही शरीरक्रिया-विज्ञान (मुनाफ़ेअ आजा) कहलाता है।

दोषों के भेदों का वर्णन यूनानी में आयुर्वेद की अपेक्षा कुछ भिन्नता लिये हुए हैं। अपने यहाँ के पाच-पाँच भेदों से मेल बैठाना विचार पूर्वक आवश्य होगा। यूनानी में रक्त और कफ की अपेक्षा देहधारकत्व में पित्त और सौदा का महत्व उतना अधिक नहीं है। वात-नाड़ियों का सम्बन्ध भी आयुर्वेद में बताते हैं; परन्तु यूनानी की कल्पना कुछ भिन्न है।

धातुओं और मलों का निर्माण यूनानी में आयुर्वेद से कुछ मिलता-जुलता और भिन्न प्रतीत होनेवाला है। उसका समन्वय और संशोधन प्राचीन तथा आधुनिक शारीर-शास्त्र के विवरण से मिलाकर करना आवश्यक है। शिरोभाग को आयुर्वेद में उत्तमांग कहते हैं, यूनानी में उससे मिलता-जुलता नाम आजाए आलिय्या या आजाए रईसा कहा जाता है। पेशी, मांसबन्धनी, नाड़ी, कला, मुख-मण्डल, नेत्र आदि की बनावट और उनके रोग-विवरण सावधानी से अध्ययन करने योग्य हैं। हृदय, मस्तिष्क, यकृत, वृषण, वृक्क आदि के वर्णन भी अध्ययन के आवश्यक विषय हो सकते हैं।

निदान और चिकित्सा——आयुर्वेद में रोग-निदान के लिये कारण, जिसमें नज़दीकी कारण और दूर के कारण का विचार होता, प्राग्रूप, रूप या लक्षण, उपशय, व्याधिसात्म्य तथा अनुपशय और सम्प्राप्ति का सहारा लिया जाता है। रोगी का निदान करने में नाड़ी-परीक्षा, मूत्र-परीक्षा, मल-परीक्षा, जिह्वा-परीक्षा, शब्द-परीक्षा, स्पर्श-परीक्षा, नेत्र-परीक्षा का सहारा लिया जाता है। इनका समावेश दर्शन-स्पर्शन और प्रश्न के अन्तर्गत हो जाता है। रोगभेद, रोग के अधिष्ठान, शारीरिक दोष और मानसिक दोषों के अनुसार रोग का विचार, रोग के देश, भूमि देश और देह देश और उसकी विकृति का विचार, भेषजयोग के क्षणादिकाल, व्याधि की अवस्था के काल, शोधन-चिकित्सा, शमन-चिकित्सा, शोधन-चिकित्सा के साधन, शमन-चिकित्सा के साधन, सुखसाध्य रोग, कष्टसाध्य, रोग याप्यरोग और असाध्य रोग के लक्षण, रोगी का बलाबल, रोग का बलाबल रोग-निदान में मल के प्रकोप का विचार, हिताहित औषधान्न-विहार, रोगावस्था में दोषों के वृद्धि-प्रकोपादिका विचार, धातुओं की दुष्टि का विचार, भोजन-मात्रा और औषध-मात्रा का विचार, दोष-विकृति, दूष्यविकृति (मल और धातु-विकृति), दोष भेद और उनके स्थान तथा विकृति अवस्था के स्वरूप एवं शुद्धावस्था के स्वरूप, संचय, प्रकोप, शमन आदि के स्वरूप, रोग के बलवान स्वरूप के विचार से चिकित्साक्रम, रोग का नाम अज्ञात हो ऐसी दशा में चिकित्सा, दोष के साथ ही दूष्य-देश-बल-काल-अग्नि-विचार, प्रकृति, वय-सत्त्व-सात्म्य-आहार-रोगावस्था के स्वरूप का विचार आदि का निरूपण करते हुए चिकित्सा में प्रवृत्ति होने का विचार आवश्यक होता है। यथा समय शोधन या शमन उपायों को प्रयोग में सावधानी रखनी पड़ती है। दोषों के उपक्रम का विचार आयुर्वेद में अच्छी तरह हुआ है। यह देखना होगा कि यूनानी का क्रम क्या है? आयुर्वेद और यूनानी के क्रम में कहाँ मेल खाता है और कहाँ मिलता है। भिन्नता का विचार होकर परस्पर विचारों का आदान-प्रदान होना आवश्यक है। सन्तर्पण, अपतर्पण, बृंहण, लेखन, हस्नेहपान, स्वेदन, वमन, विरेचन, बस्ति आदि का विवरण दोनों में हैं, किन्तु उसका विचार कर सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक होगा।

चिकित्साका विषय बहुत विस्तृत है। कायचिकित्सा, ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा (जिसके अन्तर्गत कर्णचिकित्सा, नासा-चिकित्सा, नेत्रचिकित्सा और शिरोरोग आते हैं), स्त्री और बालरोग चिकित्सा, ग्रहचिकित्सा (जिस के अन्तर्गत समस्त मानसरोग, कीटाणुशास्त्र, और भूत विद्या के विषय आ जाते हैं।) शल्यशास्त्र, अगदतन्त्र और न्यायवैद्यक, रसायन (स्वास्थ्य कायम रख दीर्घायु प्राप्त करने का विज्ञान) और वृष्यचिकित्सा अर्थात् शरीर को हृष्ट-पुष्ट, शक्तिशाली और सन्तानोत्पादन की शक्ति बनाये रखने की विधि सम्मिलित है। ये चिकित्सा के मुख्य अंग हैं। इसमें इल्मी या नजरी और अमली सिनाअत कर्माभ्यास एवं कार्यपद्धति-कैफियते अमल के दृष्टिकोण से विचार कर दोनों की विशेषताओं को छाँटना और एक दूसरे की विशेषताओं को समझना और ग्रहण करना आवश्यक होगा। जिस प्रकार चिकित्सा के विषय को चरकसंहिता और भावप्रकाश में वैज्ञानिक और कला दोनों दृष्टियों से विस्तार के साथ वर्णन किया है उसी प्रकार यूनानी शास्त्रकारों ने भी अपने दृष्टिकोण से कहीं-कहीं प्रशंसनीय वर्णन किया है। इस विषय को भी विशेषज्ञों द्वारा संकलित कर विशेषबातों को एक दूसरे को परिचित कराना समन्वय के दृष्टिकोण से आवश्यक होगा। विशेषकर शल्यशास्त्र या सर्जरी के जर्राही भाग का यूनानी-वालों ने अच्छा वर्णन किया है और जर्राहों ने उसे अब तक सुरक्षित कर रखा है। हमारे समन्वय का उद्देश्य होगा कि उसे परस्पर समझें और अपने को पूर्णता में लाने का प्रयत्न करें। शल्य और शालाक्य हमारा निजी विषय होने पर भी वैद्य और हकीम दोनों को इस विषय में आधुनिक एलोपैथी से भी बहुत कुछ ग्रहण करना होगा, किन्तु वह हमारा अगला कदम होगा। ग्रहचिकित्सा में आयुर्वेद का वर्णन बहुत विचारणीय है। वह आधुनिक कालमें उपेक्षित और

तिरस्करणीय हो रहा है; किन्तु उसे वैदिक और वैद्यक दृष्टिकोण से मानस शास्त्र और आधुनिक विज्ञान के प्रकाश में उपयोगी स्वरूप में लाने का प्रयत्न करना होगा। यह संशोधित विषय चिकित्सा-जगत् के लिये एक मूल्यवान् देन साबित होगी।

यूनानी में दोषों को विलोम करनेवाली (रादेग्र) और बृंहणकारी (मुकस्सिफ) औषधियों पर आयुर्वेद के समान अच्छा विचार हुआ है। इसमें परस्पर आदान-प्रदान लाभकारी होगा। हकीम बनने के लिये यूनानी में इल्मे इल्मी (शास्त्रज्ञान) और इल्मे अमली (प्रायोगिक ज्ञान) की प्राप्ति को महत्त्वपूर्ण माना है, जो सुश्रुत और चरक के विचारों का प्रतिबिम्ब है। अनुभव और परीक्षण (मुशाहिदा या मुआइन) पर भी आवश्यक जोर दिया गया है। निदान-परीक्षा में कार्य और कारण का सम्बन्ध समझना आवश्यक होता है। आयुर्वेद में तीन कारण हैं--निमित्तकारण (सबवफाथली), समवायिकारण (असबाब माद्दिया) और असमवायी। इसके बदले यूनानी में स्वरूप या आवृत्ति सूचक सबवसूरी है। एक अधिक चौथा प्रयोजन (सबबग्राई) है। समीपी कारण (मौजूअ करीब) और दूरस्थ कारण (मौजूअ बईद) इनके अधिष्ठान अखलात (चतुर्दोष) और अरकान (चतुर्भूत) हैं। यह विभाग गम्भीरता से समझने योग्य है। सामान्य कारण (असबाब कुल्लिया-उमूमी असबाब) को दर्शन ग्रन्थों के अनुसार लिया गया है।

द्रव्यविचार--आधारभूत सिद्धान्तों में द्रव्यविचार की प्रधानता है। द्रव्यों के जंगम, वृक्ष और खनिज भेद दोनों वैद्यक को स्वीकार है। उनकी उत्पत्ति महाभूतों के क्रम से होती है, यह भी दोनों शास्त्र मानते हैं। किन्तु यूनानीवाले द्रव्योत्पत्ति के दार्शनिक स्वरूप को गहराई से सोचने की आवश्यकता नहीं समझते, क्योंकि वैद्यक से उस अंश का घनिष्ट सम्बन्ध नहीं है। आयुर्वेद में द्रव्यनिरूपण विस्तार के साथ हुआ है। यद्यपि द्रव्य किसी एक ही भूत से निर्मित नहीं; किसी-न-किसी अंश में पांचों महाभूतों का सम्मिश्रण रहता है; किन्तु जिस महाभूत की अधिकता होती है, वह द्रव्य उसी-उसी महाभूत का माना जाता है। चिकित्सा और आहार के विवेचन में द्रव्य-गुण का बहुत महत्त्व है। इसलिये चिकित्सक को यह जानना आवश्यक है कि नाभस, वायवीय, तैजस, आप्य और पार्थिव द्रव्य के लक्षण और स्वरूप क्या हैं। उनके गुण-दोष क्या हैं। द्रव्य के गुर्वादिक २० गुणों का विवरण जानना भी आवश्यक है। द्रव्य के विचार से रस-वीर्य-विपाक और प्रभाव का ज्ञान अनिवार्य है। यूनानी में इनका वर्णन कुछ भिन्न-स्वरूप में हुआ है। इसका विचार यूनानी के विद्वानों के साथ करके उपयुक्त पाठ्यक्रम तैयार करना होगा। आयुर्वेदिक द्रव्य वर्गों में कुछ यूनानी के द्रव्यों को उनके गुणविचार के साथ मिलाना आवश्यक होगा। इसी प्रकार यूनानीवालों को भी अपने द्रव्यवर्गों में आयुर्वेदिक द्रव्यों का समावेश करना उचित होगा। यूनानी में द्रव्यगुण का विचार करते हुए गुण के तर-तम दृष्टिकोण का अच्छा विचार हुआ है। उसे आयुर्वेदवालों को समझकर अपने निघण्टु में बढ़ाना होगा।

अरबी रुक् शब्द का अर्थ उपादान-मूलद्रव्य-कारण द्रव्य है जिसका चार होने के कारण बहुवचन रूप अरकान हो जाता है। उन्सुर एकवचन का बहुवचन अनासिर हो जाता है। उस्तुकुस का बहुवचन उस्तुकुस्सान एवं वसीन का बहुवचन वसाइत हो जाता है। ये अनासिर जांगम (जीवधारी-हैवानान), औद्भिद (नतात) और पार्थिव (खनिज-मादनियात) तीन प्रकार के हैं। महाभूतों का विभाजन विभिन्न गुणस्वभाव एवं स्वरूप के उपादानों में नहीं हो सकता। इन मूल उपादानों के संसर्ग से ही कार्य द्रव्यों या यौगिकों (मुरक्कबात) की उत्पत्ति होती है। अखिल सृष्टि के द्रव्य चतुर्भूतों से निर्मित चातुर्भौतिक है। अर्थात् यूनानी हकीम आकाश तत्त्व को ग्रहण नहीं करते। ये भूत जब कारणावस्था परमाणुरूप में रहते हैं उसे ही आयुर्वेद में तन्मात्र स्थिति कहते हैं। कार्यावस्था स्थूल होकर द्रव्य कहलाते हैं। आधुनिक पाश्चात्यों का ईथर आकाश रूप है। आकाश कारणावस्था और कार्यावस्था दोनों में परम महत् परिणाम वाला और सर्वगत होता है। शेष सभी तत्व अन्त में इसी में लीन होते हैं, यहाँ तक कि उनका पृथक्-पृथक् अनुभव नहीं किया जा सकता। यह अव्यक्त और तटस्थ है। किसी व्यक्त पदार्थ की क्रिया में साधक या बाधक नहीं होता। इसके विशद विज्ञान को हमें समझना होगा। यूनानी भौतिकशास्त्री इसे शून्य होने के कारण छोड़ देते हैं, परन्तु शून्य होते हुए भी अपने शब्द अर्थ के द्वारा गुणाश्रयी होने से द्रव्यारम्भक तत्वरूप में ग्राह्य है। आधुनिक विज्ञान भी ईथर में शब्द का होना मानता है और रेडियो के शब्द आकाश द्वारा ग्रहण होने से भी उसका महा-

भूततत्व प्रतिपाद्य है। अग्नि (नार-आतश) की परिणति पित्त में होती है। अतएव अग्नि और पित्त की प्रवृत्ति उष्ण और रूक्ष है। आप या जल की परिणति श्लेष्मा (बलगम) में होती है। इसलिये जल और कफ दोनों का मिजाज शीतल और स्निग्ध है। बाय (हवा-वाद) से रक्त की उत्पत्ति मानी गयी है। इसलिए उसका मिजाज उष्ण और स्निग्ध माना गया है। पृथ्वी (अर्ज-खाक) की परिणति सौदा नामक दोष में होती है। यह आहार रस (कैलूस) के निष्ठा पाक के समय यकृत की तलछट (दुर्द) के रूप में रक्त के नीचे रहता है। इस का मिजाज शीतल और रूक्ष है। इसके प्राकृत (तवई) और वैकृत (गैरतवई) दो भेद हैं। यही नहीं, श्लेष्म विदग्ध के रूप में सौदाए वलगमी, विदग्ध रक्त के रूप में सौदाए दम्बी, विदग्ध सौदा के रूप में सौदाए सौदावी और विदग्ध पित्त के रूप में सौदाए सफरावी कहलाता है। श्लेष्मा की उत्पत्ति मस्तिष्क में मानी गयी हैं। चतुर्भूत के समान यूनानी में दोष भी चार प्रकार के हैं। दम या रक्त, बलगम या श्लेष्मा, सफरा या पित्त और सौदा। यहाँ वायु की स्थिति गड़बड़ा जाती है। सौदा को वायु मानना कठिन है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति पृथिवी तत्व से मानी गयी है। इनके उत्पत्तिक्रम, स्थान और भेदों में भी अन्तर है। अतएव दोष विषय में बहुत सावधानी से समन्वय की आवश्यकता है। आकाश सम्भूत शब्द और स्पर्श गुणशील वायु की स्थिति यूनानी में स्पष्ट करनी पड़ेगी।

मिजाज या प्रकृति—भिन्न विषय होते हुए भी यूनानी में इसका वर्णन ऐसा मिला-जुला किया गया है जिससे शरीर और द्रव्य प्रकरण के साथ भी इसका जिक्र हो सकता है। आयुर्वेद में प्रकृति शब्द का प्रयोग मनुष्य के स्वभाव के पर्याय में आता है और मनुष्य जन्म के पहले माता-पिता के संसर्ग के समय पिता के शुक्र और माता के रज के मेल से जैसी दोषस्थिति होती है उसी के अनुसार मनुष्य की प्रकृति वातज, पित्तज या कफज बनती है। यदि तीनों दोषों की समानता हो तो श्रेष्ठ प्रकृति बनती है। वातज प्रकृति हीन, पित्तज मध्यम और कफज प्रकृति उत्तम मानी जाती है। यों चार प्रकार की प्रकृति हुई। वातज-पित्तज, कफज-पित्तज और वातज-कफज प्रकृति भी मिलकर प्रकृति सात प्रकार की हो सकती है; किन्तु द्वन्द्वज प्रकृति निन्द्य होती है। जो हो, सब मिलाकर सात प्रकार की प्रकृति होती है। यूनानी में प्रकृति शब्द का प्रयोग मानव प्रकृति के अतिरिक्त किसी भी द्रव्य के गुण-स्वभाव के अर्थ में भी ग्रहण होता है। यूनानी में प्रकृति शब्द का पर्याय **मिजाज** है जिस परिमाण के अनुपात से महाभूतों का मेल होकर वस्तु का निर्माण होता है, उसी रासायनिक परिवर्तन के अनुसार समवाय (आमेजिस) के परिणामस्वरूप इम्तियाज कीमियाई या इम्तियाज हकीकी का निर्माण होता है। इस प्रकार महाभूत समवाय के आकर्षण द्वारा उत्पन्न योगशक्ति (उलफत) के द्वारा संसर्ग या समवाय (इम्तियाज वाहमी) से मिज़ाज की सिद्धि होती है। इस प्रकार के समवाय-संयोग को आयुर्वेद में प्रकृति समसमवाय कहते हैं। इसके विपरीत कुछ महाभूतों में परस्पर समवेत होने का गुण होता है। मिलाने का प्रयत्न करने पर भी तेल और पानी के संयोग समान वे अलग हो जाते हैं। इस घृणा और नफरतवाली अवस्था को विकृति विषमसमवाय अर्थात् विग्ज़त या नफरते कीमियाविय्या कहते हैं। जब दो या अधिक भूतों के समवेत होने पर उनके गुण स्वभाव यथावत् बने रहते हैं तब उस प्रकृति समसमवाय (इम्तियाज साज़ज) को सादा संयोग पानी और चीनी के मेल के समान मानते हैं। इसे द्रव्यगुण प्रकरण के नैसर्गिक प्रभाव के रूप में मान सकते हैं। किन्तु जब महाभूत इस प्रकार समवेत हों कि उन के पूर्वस्थित गुणस्वभाव परिवर्तित होकर नवीन रूप ग्रहण करें तब उसे इम्तिजाज हकीकी कहते हैं। आहाररस से रक्त, रक्त से मांसादि का निर्माण इसी स्वरूप का समझें। द्रव्य प्रकरण में विचित्र प्रत्ययारब्धकारी द्रव्यों का प्रभाव भी ऐसा ही होता है। इस विषय के आधारभूत सिद्धान्त में तो कोई अन्तर नहीं है क्योंकि आयुर्वेदिक प्रकृति का निर्माण दोषों के आधार पर माना गया है और यूनानी प्रकृति का निर्माण महाभूतों के संयोग के आधार पर माना गया है। दोषों का निर्माण भी तो महाभूतों से ही होता है। यही नहीं, सुश्रुत ने महाभूतों के अनुसार भी प्रकृति का वर्णन किया है। किन्तु इस विषय में भी समन्वय की आवश्यकता है।

यूनानी में प्रकृति मिज़ाज शब्द का प्रयोग द्रव्य-गुण प्रकरण में भी होने के कारण आयुर्वेदिक प्रकृति से इसमें भिन्नता आ जाती है। द्रव्यगुण के शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष के साथ मिज़ाज शब्द का प्रयोग होता है। आयुर्वेद में द्रव्य के गुण २० माने गये हैं—गुरु, मन्द, शीत,

स्निग्ध, श्लक्ष्ण, सान्द्र, मृदु, स्थिर, सूक्ष्म और विशद ये १० गुण और १० इनके विपरीत लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, खर, द्रव, कठिन, सर, स्थूल और पिच्छिल। यूनानी में मिज़ाज के नौ भेद हैं, एक मोअ्तदिल और आठ गैरमोअ्तदिल। मोअ्तदिल में महाभूतों का सम्मिलन अभीष्ट अनुपात कर्म और स्वभाव के अनुसार यथेष्ट रूप में रहता है। इसे आयुर्वेद के अनुसार स्वाभाविक प्रकृति या श्रेष्ठ प्रकृति कहेंगे। जब संयोगी महाभूतों के नैसर्गिक अनुपात का लोप हो जाता है तब उसे गैरमोअ्तदिल या विकृति या विप्रकृति या विषम प्रकृति या निन्द्य प्रकृति कहेंगे। गैर-मोअ्तदिल मिजाज के आठ भेदों में चार स्वतन्त्र या अमिश्र (मुफरद) हैं और चार संमिश्र या मिश्रगुणप्रकृति (मुरक्कब) है। अमिश्र (मुफरद) के चार भेद में हार्र (उष्ण), वारिद (शीत), याबिस (रूक्ष) और रतब (स्निग्ध) हैं। इसमें आवश्यकता से अधिक उष्णता, शीतलता, रूक्षता और स्निग्धता मानी जाती है। गैरमोअ्तदिल मुरक्कब के चार भेदों में हार्र-याबिस (उष्ण-रूक्ष) हार्र-रतब (उष्ण-स्निग्ध), बारिद-याबिस (शीत-रूक्ष) और बारिद-रतब (शीत-स्निग्ध) हैं। पहले में गर्मी और खुश्की की अधिकता, दूसरे में गर्मी और तरी की अधिकता, तीसरे में सर्दी और खुश्की की अधिकता और चौथे में शीत और तरी की अधिकता अपेक्षित है। इसमें विशेष अन्तर नहीं है। आयुर्वेद के अनुसार पहले को एक गुणाधिक्य और दूसरे भेद को द्वन्द्वज या संसर्गज गुणाधिक्य कहेंगे। किन्तु पाठचक्रम में समन्वय दृष्टि से विषय रखना पड़ेगा। यूनानी में शरीरावयव की अंगुलियों की त्वचा से हथेली तथा हाथ और पांव की त्वचा का भी प्रकृति विचार हुआ है। यही नहीं सारे अंग-प्रत्यङ्गों और अवस्थाभेद से मिजाज का विचार हुआ है। यहाँ तक कहा गया है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का मिज़ाज शीत-स्निग्ध (बारिद-रतब) है। इसे भी आपस में समझने योग्य है।

अरवाह—यूनानी का अरवाह अरबी रूह शब्द का बहुवचन है। रीह अर्थात् प्राणवायु को भी इसी के अन्तर्गत माना जाता है। जीवनाधार शक्ति या तत्व भी इसी का अंश है। आयुर्वेदीय पुरुष की समस्या भी इसी में उलझी समझिये। आत्मनिरूपण भी इसके अन्तर्गत आ जाता है। शक्ति, बल-कुव्वत इसी के अन्तर्गत हैं। हृदय की शक्ति-प्राणशक्ति और ओज की खोज इसी में हो सकेगी। हृदय की प्राणशक्ति (कुव्वत हैवानिया) या रूह हैवानिया या यकृत की कुव्वत तबीइय्या की समस्या अरवाह के सामञ्जस्य से ही सुलझेगी। धार्मिक आत्मा (नफ्स) से हकीमों का अरवाह कुछ भिन्न सूक्ष्म वाष्परूप (लतीफ और बोखारी गैस रूप) द्रव्य धातुओं का उत्कृष्ट सूक्ष्म अंश है, जो हृदय के वामनिलय में पहुँच कर अपने सूक्ष्म अंश से वाष्प के रूप में परिणत हो जाता है। वह वाष्पांश प्राणवायु से मिलकर तेजोपुंज (माद्दए मुश्इला—लौ या शोअला बननेवाला द्रव्य) रूह का स्वरूप प्रकाशित करता है। कोई-कोई इसे रक्त का सूक्ष्म वाष्पांश (बोखा-रुद्मेल्लतीफ) कहते हैं। इस अरवाह की समस्या ओज (अखलाते लतीफा) के साथ ही प्राणवायु, आहारसाररस (कसाफत अखलात), अवयवनिर्मायक (अज्ज़ा मुकव्वना) अंश के विवरण के साथ सुलझानी पड़ेगी। आयुर्वेदिक पुरुष विज्ञान के विशद वर्णन से हकीमों को तसल्ली देनी होगी। शरीर के सारे अवयवों को सजीव और कार्यक्षम रखने में जिस चेतनांश की आवश्यकता होती है उसे रूह से मिलाना होगा। प्राणवायु (हवाए मुस्तनश्क) रूह के लिये समवायी कारण या उपादान कारण माना गया है। रक्त के विशेष घटकों (हमत-रक्तकणों) के आकर्षण से उसके विशेष उपादान शोषित होकर रक्त केशिकाओं में प्रविष्ट होते हैं। रक्तपरिभ्रमण में ये रूह के उपादान (रुहानी अज्जा) साथ रहते हैं। इसके त्याज्यांश को फुजुल दुखानिया और बोखारात दुखानिया अर्थात् उदान-प्रेरित अपानवायु-कार्बन डायोआक्साइड कह सकते हैं। रूह के कार्य, शक्ति, अरवाह के भेद, लक्षण, क्रिया, अधिष्ठान आदि का विषय भी विवेचनीय होगा। इस विवेचन से बहुत से दार्शनिक सिद्धान्त, जीवनीशक्ति, चेतनांश आदि के विवरण को नया प्रकाश मिलेगा।

कुवा-शक्ति या बल—शक्ति या बल का विवेचन शरीरधारण के साथ आ जाना चाहिए। किन्तु यूनानी में उसके आधारभूत तत्वों (उमूर तब्बीइय्या) में इसे छठा तत्व मानकर प्रधानता दी गयी है। आयुर्वेद में रस से लेकर शुक्रपर्यन्त धातुओं के परम तेजरूपी ओज को ही बल कहा गया है। किन्तु आयुर्वेद की अपेक्षा यूनानी में बल का विशेष विवरण दिया गया है। कुवा के तीन भेद हैं—कुवाए तबई, कुव्वते नफसानी और कुव्वते हैवानी।

कुवाए तबई के एक भेद से शरीर का धारण, पोषण और वर्धन होना है और दूसरा भेद जाति रक्षा के लिये आवश्यक है। धारण-पोषण और वर्धन दो उपभेदों के रूप में होता है। **गाजिया** शरीर को आहार पहुँचाकर पुष्ट करती है। **नामिया**—इसके द्वारा शरीर की लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई का वर्धन होता है। कुवाए तबई के दूसरे उपभेद से जाति रक्षा होती है। इसके भी दो अवान्तरभेद है। प्रथम **मुवल्लिदा** है जो शुक्रोत्पादन का काम करती है और धातुओं से उसके सारभाग (जौहरमनी) को अलगाती है। दूसरी **मुसव्विरा** है जो शुक्र को उपादानों से उस जाति की स्वरूपाकृति उत्पन्न करती है। शरीर में जो नित्यप्रति छीजन होती है, उस की क्षतिपूर्ति यह कुव्वतेगाजिया (पोषणकारिणी शक्ति) विविध आहार के द्वारा करती रहती है। इसी तरह कुव्वते नामिया शरीर के आकार-प्रकार को कायम रख बढ़ाती रहती है। इस कार्य के लिए चार सहायक शक्तियाँ इसकी सेविका-खादिमा स्वरूप है। **जाजिया** आहार के सार का शोषण कर अंगों या धातुओं के पास पहुँचानेवाली शक्ति है। **मासिका** आहार रस को तबतक रोके रहती है जब तक धातुओं की स्वरूपाकृति नहीं बन जाती। **हाजिया** अपनी पचनशक्ति के द्वारा आहार के शोषित उपादानों को धातुओं और अंग प्रत्यङ्गों की भौतिक स्थिति (किवाम)) और प्रकृति के अनुकूल बनाने के लिये पाचन करती रहती है। **दाफेआ** आहारांश के शरीर के अनुपयोगी भाग मल—फुजला का उत्सर्जन करती है। इन चारोंका काम गर्मी, सर्दी, तरी और खुश्की गुंणों पर निर्भर है।

कुवा के दूसरे भेद **कुव्वते नफसानी** के भी दो उपभेद है— मुर्हरिका और मुद्रिका अर्थात् चेष्टाबल और संज्ञाबल। पहली के द्वारा अवयवों को चेष्टाओं (हरकतों) को पहुँचाने का आदेश होता है। दूसरी के द्वारा शरीरावयवों में शुभाशुभ संवेदनाओं का अनुभव इन्द्रियों के केन्द्रों तक पहुँचाया जाता है। कुव्वते मुर्हरिका के दो उपभेद हैं **शौकिया** और **फाएला**। शौकिया के दो अवान्तर भेद शहवानिय्या और गजविय्या हैं। शौकिया चेष्टा का कारण है और फाएला के द्वारा चेष्टा सम्पन्न होती है। जिस समय किसी प्रिय या अप्रिय विषय या वस्तु का चित्र हृदय में अंकित होता है, उस समय शहवानिया उसकी प्राप्ति की इच्छा करती है। यदि वह अनिष्टकर हो तो कुव्वत गजविय्या उसके निवारण के लिये कटिबद्ध होती है। कुव्वते फाएला का काम पेशियों का आकुंचन और प्रसारण करना है, जिससे कण्डरा और अवयव सिकुड़ता है अथवा पेशी ढीली होती है जिससे कण्डरा खिचती और पेशी फैलती है। यह कार्य जीवधारी के जाने विना हुआ करती है। कुव्वते मुदरिका के भी दो उपभेद हैं। प्रथम **जाहिरी** (बाह्य) और द्वितीय **बातिनी** (आभ्यन्तरिक)। जो संज्ञाबल मस्तिष्क में रहता है वह बातिनी है और मस्तिष्क के बाहरी संज्ञाबल को जाहिरी कहते हैं। जाहिरी के पाँच अवान्तर भेद उसके जासूस या भेदिया के रूप में हैं। इन्हें वाह्यज्ञानेन्द्रियपञ्चक (हवास खम्सा जाहिरा) भी कहते हैं। इनका कार्य बाहरी संवेदनाओं का अनुभव मस्तिष्क की आभ्यन्तरिक शक्तियों तक पहुँचाना है। इनमें से प्रथम **कुव्वतेबासारा** दृष्टिशक्ति की इन्द्रिय—चक्षु है। द्वितीय **कुव्वत सामआ** श्रवणशक्ति की इन्द्रिय—श्रोत्र है। तृतीय **कुव्वते शाम्मा** घ्राणशक्ति की इन्द्रिय—नासिका है। चतुर्थ **कुव्वते जायका** रसेन्द्रिय—जिह्वा है और पंचम **कुव्वते लामेसा** स्पर्शेन्द्रिय त्वक है।

आभ्यन्तर बातिनी के भी पांच अवान्तर उपभेद हैं। प्रथम **हिस्समुश्तरका** मस्तिष्क के पूर्वकोष्ठ का अगला भाग है। द्वितीय कोष या खजाना **खियाल** है। जिसका स्थान मस्तिष्क के अगले कोष्ठ का पिछला भाग है। तृतीय आभ्यन्तरिक ज्ञानेन्द्रिय **कुव्वतेवहम** या भावना का केन्द्र है। चौथी शक्ति का कोष **हाफिजा** (स्मृति) मस्तिष्क के पश्चात् कोष्ठ में हैं। पंचम अन्तरेन्द्रिय **कुव्वत मुतसर्रिफा** है जो मन की सेवा करती है। बाह्य ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जो ज्ञान या संवेदना प्राप्त होती हैं उन्हें यूनानी परिभाषा में सूर या **सूरतें** कहते हैं। जिन संवेदनाओं का ज्ञान वाह्य ज्ञानेन्द्रियों से नहीं हो सकता उन्हें **मानी** कहते हैं। प्रकाश, गन्ध, शब्द, स्वाद, उष्णता, शीतलता सूरतें हैं, जिन्हें आयुर्वेद में पंचेन्द्रियों का अर्थ कहते हैं। परन्तु प्रेम, घृणा आदिका ज्ञान वहिरेन्द्रियों से नहीं होता इसलिए इन्हें मानी (मानसिक) कहते हैं।

कुवा का तीसरा भेद कुव्वते हैवानी है। यह शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग में पायी जाती है और उन अंगों को मनोबल—कुव्वते नफसानी ग्रहण करने के लिये तत्पर करती है। इसके द्वारा शरीर में जीवन, प्राण या चैतन्य प्राप्त होता है। इसका अधिष्ठान या आधार प्रकृति शरीरोष्मा (हरारते गरीजी) उपकरण रूप में है।

इस कुवा प्रकरण को समन्वय की दृष्टि से आयुर्वेदवालों को समझना और आदान-प्रदान के द्वारा ठीक रूप निर्धारण करना होगा। इसकी कुछ शक्तियाँ तो ओज से सम्बन्ध रखती हैं। कुछ ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं जिन का निर्धारण मन और बुद्धि द्वारा होता है। कुछ आत्मचैतन्य की शक्ति है। अतएव उन-उन विभागों में इसका विवरण होना चाहिए या एक स्थान में भी निर्देश रहना चाहिये। बुद्धि इन्द्रियातीत विषय महान के अन्तर्गत है।

अफआल—यूनानी का आधार सातवाँ तत्व या विषय अफआल है। यह अरबी के फेल (कर्म) शब्द का बहुवचन है। कर्म द्रव्य-विज्ञान का अंग है। बल या कुव्वत से इसकी सिद्धि होती है। शक्तिसम्पन्नता आने पर कार्य-शक्ति का प्रकाशन होता है। पदार्थ-विज्ञान का विषय होने पर भी शरीर में जो शोषण (जज्ब) और उत्सर्जन (दफा) आदि कार्य सम्पन्न होते हैं, उनका वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। शोषण, उत्सर्जन आदि कार्य अमिश्र (मुफरदा) श्रेणी का है। कुछ कार्य ऐसे हैं जो एक से अधिक कुव्वतों अर्थात् शक्तियों या बलों से निष्पन्न होते हैं, जैसे निगलना, चलना, फिरना आदि। ऐसे कर्म को सम्मिश्र अर्थात् मुरक्कबा कहते हैं। इन आठ विषयों को विचार कोटि में लेकर आयुर्वेद और यूनानी का समन्वय अभीष्ट है।

यहां कुछ निर्देशनमात्र किया गया है। इस कार्य की संपन्नता कुछ आयुर्वेदज्ञों और कुछ यूनानी के विद्वानों को मिलकर करना पड़ेगा। कठिनाई यह है कि अधिकांश वैद्य यूनानी से अपरिचित हैं और अधिकांश हकीम आयुर्वेद से अधिक परिचित नहीं हैं। अतएव कुछ मध्यम जनों के द्वारा इस कार्य को बढ़ाना पड़ेगा। इस समस्या का हल इस समय एक राष्ट्रीय आवश्यकता के रूप में उपस्थित है। आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा का पद प्राप्त होने में इस कार्य से सुलभता होगी।

सुधानिधि कार्यालय,
प्रयाग।

आयुर्वेद के अध्ययन का स्वरूप क्या हो ?

डा० सम्पूर्णानन्द

आयुर्वेद के अध्यापन का स्वरूप क्या हो तथा स्वतन्त्र अध्येय विषय के रूप में आयुर्वेद का भविष्य क्या होगा, इन विषयों पर भूतकाल में भारत सरकार तथा प्रादेशिक सरकारों द्वारा नियुक्त समितियों ने अनेक बार विचार कर अपने प्रतिवेदन उपस्थित किए हैं। उत्तर प्रदेश की उच्च-स्तरीय शिक्षा समिति भी इसी महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करने के लिए नियुक्त हुई है। भूतकाल में नियुक्त विभिन्न समितियों ने बहुत परिश्रम के बाद अपने महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए थे, जिनमें से अनेक सुझावों को अब भी व्यावहारिक रूप देना सम्भव नहीं हुआ है। किन्तु मेरे विचार से इन समितियों में दो बड़े दोष थे। या तो उनमें मुझ जैसे अल्पज्ञों का बाहुल्य था या एलोपैथी के डाक्टरों का उनमें प्राधान्य था। इन डाक्टरों की इच्छा चाहे कितनी ही निरपेक्ष तथा निष्पक्ष रहने की रही हो परन्तु उनसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि अपनी प्रणाली से भिन्न किसी अन्य प्रणाली के सम्बन्ध में ऐसा मान सकते कि वह किसी सार्थक अध्ययन का विषय बन सकती है। किन्तु इस सब के पीछे यह धारणा भी रहती है कि आयुर्वेद, हिकमत और होमियोपैथी को, विशेषकर आयुर्वेद और हिकमत को, अन्य कारणों से नहीं राजनैतिक कारणों से ही सही एकदम छोड़ना सम्भव नहीं है, यद्यपि ये इतनी सम्माननीय नहीं है कि विज्ञानविद् उनका अनुशीलन और अध्ययन करें। परिणाम स्वरूप निश्चय ही आयुर्वेद को कुछ समय से सहारा मिला है और कुछ वैद्य सरकारी नौकरी में छोटे-मोटे स्थान पा गये हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त एक बात और हुई है जिसका भविष्य में भयंकर परिणाम हो सकता है। चाहे यह अभीष्ट न रहा हो परन्तु जो शिक्षा आयुर्वेदिक कालेजों और स्कूलों में दी जाने लगी है उसका यह परिणाम अवश्यम्भावी है। सुशिक्षित वैद्य ही चिकित्सा कर सकें इस विषय में सरकार की सतर्कता भारतीय परम्परा के अनुकूल ही है। सुश्रुत के कथनानुसार वद्य को अधिगत तंत्र और उपासित तंत्रार्थ और दृष्टकर्मा होना चाहिए, किन्तु ऐसा व्यक्ति भी राजाज्ञा के बिना चिकित्सा का कार्य नहीं कर सकता। चरक ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि किसी राज्य में नीम हकीमों को अपना व्यवसाय करने की छूट हो तो राज्य की कर्तव्यविमुखता को ही इसका कारण कह सकते हैं। ऐसे लोग समाज के कंटक हैं और इन्हें काँटे के समान ही निकाल कर फेंक देना चाहिये। जैसा मैंने अभी कहा है यह ठीक ही हुआ कि उचित प्रशिक्षण की अनिवार्यता पर इतना जोर दिया गया, किन्तु उस प्रशिक्षण का रूप क्या हो इस ओर उतना ध्यान नहीं गया जितना आवश्यक था।

इन सब बातों का परिणाम बड़ा भयंकर हुआ है। नीम हकीमों की एक नई जाति पैदा हो गई है। पिछले कतिपय वर्षों में आयुर्वेदिक कालेजों से जो वैद्य पढ़कर निकले हैं, उनको नीम हकीम (क्वेक) कहना शायद श्रुतिकटु और अतिशयोक्ति हो किन्तु उन्हें और क्या उपयुक्त नाम दिया जाय यह मेरी समझ में नहीं आता। ये लोग वैद्य नहीं माने जा सकते। उन्हें आयुर्वेद में किसी प्रकार की आस्था नहीं है और वे स्पष्ट रूप से उसकी अवैज्ञानिकता की निन्दा करते हैं। विज्ञान की उनकी जानकारी बहुत ही थोड़ी है इसलिए अहंमन्यता और वैज्ञानिक होने का गर्व जताने में उन्हें संकोच भी नहीं होता। अल्पज्ञान खतरनाक होता है क्योंकि अन्य बुराइयों के अतिरिक्त उससे झूठा अभिमान उत्पन्न होता है। आयुर्वेदाचार्य कहलाने में वे अपना अपमान समझते हैं और उनकी अभिलाषा यह रहती है कि उन्हें ऐसी उपाधियाँ दी जायें जो बोलने में एलोपैथिक कालेजों के स्नातकों की उपाधियों से मिलती-जुलती हों। किन्तु वे एलोपैथ भी नहीं हैं और उनके प्रशिक्षण का स्तर एम० बी० बी० एस० उपाधि प्राप्त स्नातकों के प्रशिक्षण से कहीं नीचा है। वे अपने आप को नैराश्य के गर्त में पाते हैं क्योंकि समाज ने उन्हें एलोपैथी डाक्टरों के समकक्ष समझने की गलती नहीं की। क्योंकि ये उन लोगों की विचारहीनता के शिकार हुएहैं जिनका यह कर्त्तव्य था कि उन प्रशिक्षण के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम बनाते। इन अभागों के साथ हमारी सहानुभूति तो होनी

चाहिये किन्तु यह गलत बात होगी कि हम यह आशा करें कि ये समाज के स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेंगे। मेरी राय में जिस नयी प्रणाली ने इनका सर्वनाश किया है उसे चालू रखना बड़ा भारी अपराध होगा।

जिस परिस्थिति में आज हम अपने को पाते हैं, उसका उत्तरदायित्व उन लोगों पर है जिन्होंने यह निर्णय किया कि आयुर्वेद के विद्यार्थियों को इंटेग्रेटेड (एकीकृत) प्रणाली की शिक्षा दी जाय। चिकित्सा के विषय में मैं स्वयं एकीकरण में विश्वास करता हूँ क्योंकि मानव शरीर और मस्तिष्क इतनी महान वस्तुएँ हैं कि उनको विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों का अखाड़ा नहीं बनाया जा सकता। मेरी दृष्टि में एक ही चिकित्सा-प्रणाली वैज्ञानिक हो सकती है। इस प्रणाली की औषधि-सूची में सैकड़ों प्रणालियों से औषधियाँ ली जा सकती हैं। किसी औषधि-विशेष का प्रयोग किसी रोग-विशेष की चिकित्सा के लिये कुछ हद तक प्रयोगात्मक हो सकता है, किन्तु वैज्ञानिक बनने के लिये किसी भी प्रणाली को निश्चित नियमों से बद्ध होना चाहिये। विज्ञान और प्रयोगसंभूत ज्ञान में यही अंतर है। केवल अनुभव पर आधारित ज्ञान से विज्ञान इसीलिये विशिष्ट है कि उसमें प्राकृतिक नियमों का निर्देश रहता है। जब अनेक में अनुस्यूत प्राकृतिक नियम पहिचान लिया जाता है तो हम को ऐसे विषयों की भी जानकारी हो सकती है जो अभी प्रत्यक्ष अनुभव में नहीं आये हैं। आप चाहें तो इसे भविष्यकथन कह सकते हैं। इस दृष्टि से आयुर्वेद और एलोपैथी का एकीकरण वास्तविक एकीकरण होता। किंतु इस प्रकार का कोई प्रयत्न न तो राज्य की ओर से किसी केन्द्रीय या देशीय सरकारी कमेटी ने किया और न किसी एलोपैथी या आयुर्वेद के कालेज में किया गया। वास्तव में एकीकरण का अर्थ आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली की एक झीनी चादर को आयुर्वेद की एक पतली पर्त्त पर उढ़ाना मात्र ही था। पतली या मोटी, मूल बात तो यह है कि यह मान लिया गया है कि आयुर्वेद स्वयं अवैज्ञानिक और अपूर्ण है और उसमें जान डालने के लिये एलोपैथी का एक तीव्र पुट देना होगा। एलोपैथी ने इस एकीकरण में आयुर्वेद की ओर एक कदम आगे नहीं बढ़ाया बल्कि आयुर्वेद ही का रूपान्तर किया जा रहा है। इसको एकीकरण नहीं कहा जा सकता। यदि यही क्रम रहा तो थोड़े ही समय में आयुर्वेद का नाम-निशान मिट जायगा। केवल कुछ औषधियों का प्रयोग ही बच रहेगा। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि पश्चिम में सर्पगन्धा आदि कुछ आयुर्वेद की औषधियों के प्रयोग का यह अर्थ नहीं है कि एलोपैथी का आयुर्वेद के साथ एकीकरण हो रहा है। यह दुःख की बात है कि कुछ ऊँचे वैद्यों ने भी समय रहते इस भयंकर संभावना को नहीं पहचाना और वे अनजाने इस एकीकरण के समर्थक बन बैठे।

मेरी अपनी राय इस विषय में यह है: आयुर्वेद पूर्णतया वैज्ञानिक है किन्तु यह गतिहीन विज्ञान नहीं है। एक समय था जब वैद्य काष्ठ औषधियों पर ही बहुत कुछ निर्भर रहते थे। बाद में नागार्जुन जैसे लोगों ने रस औषधियों का प्रयोग चलाया। इनके प्रयोग को यदि रसायन शास्त्र का आयुर्वेद से एकीकरण कहें तो ठीक न होगा। केवल यही कह सकते हैं कि वैद्य ने रासायनिक क्रिया का उपयोग किया। इसलिये मेरी धारणा यह है कि आयुर्वेद में सैकड़ों ऐसी औषधियों का प्रयोग होने पर भी पूर्वकाल में जिनसे वैद्य अनभिज्ञ थे, आयुर्वेद अपना स्वत्व नहीं खो सकता। चरक और सुश्रुत जैसे आयुर्वेद के प्रतिपादकों ने भी तो यही कहा है कि वैद्य को निरन्तर नई औषधियोंका अन्वेषण करना चाहिए और इस अन्वेषण के लिये जंगली और असभ्य लोगों के व्यवहार का अध्ययन करना भी वांछनीय हो सकता है, केवल शर्त यह है कि **वैद्य प्रत्येक औषधि को आयुर्वेद की कसौटी पर कसे।** पेनसिलीन या क्लोरोमाइसेटीन का प्रयोग इसलिये ही न किया जाय कि कुछ रोगों में ये उपयुक्त सिद्ध हुई हैं। आयुर्वेदिक औषधि इन्हें तभी कह सकते हैं और वैद्य उन्हें बिना संकोच के तभी प्रयोग कर सकता है जब ये त्रिदोष सिद्धान्त की कसौटी पर खरी सिद्ध हो जायें।

आयुर्वेद में अविश्वास पैदा करने में सबसे अधिक उसके भक्तों अर्थात् वैद्यों का ही हाथ है जो उसकी गलत व्याख्या किया करते हैं। वे जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं उनके वास्तविक अर्थ को समझने का कष्ट उठाना नहीं चाहते। वात, पित्त तथा कफ को यदि कोई वैद्य हवा, पीले रंग का रस जो उदरविकार में कभी-कभी बाहर आ जाता है और बलग़म समझे तो वह अपने को ही नीचे गिराता है। उसी प्रकार यदि कोई यह समझता है कि क्षिति, अप, तेज, वायु और आकाश, मिट्टी, पानी, हवा और आसमान के नाम हैं और फिर लोग उस पर हँसें और आयुर्वेद से घृणा करने

लगें तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है। तीन धातुएं क्या हैं? यह समझने के लिए ही भारतीय दर्शन का थोड़ा-सा ज्ञान आवश्यक है। इसलिये वैद्यों के पाठयक्रम में दर्शन का अध्ययन भी रखा जाता है। जैसा हम सब जानते हैं, परमात्मा की पराशक्ति के तीन रूप हैं--ज्ञान, इच्छा और क्रिया। जैसे-जैसे सृष्टिक्रम आगे बढ़ता है पराशक्ति प्रधान या मूल प्रकृति के रूप में प्रकट होती है जिसके तीन भेद—सत्व, रज और तम व्यक्त होते हैं। ये तीनों गुण सृष्टि के प्रत्येक चेतन-अचेतन पदार्थ में वर्तमान रहते हैं। मनोविज्ञान के क्षेत्र में ये काग्निशन, अफैक्शन और कोनेशन (संवेदन, भावना, और क्रिया प्रवृत्ति) के रूप में प्रकट होते हैं। जड़ात्मक सृष्टि के प्रत्येक छोटे-बड़े पदार्थ में ये तीनों गुण पाये जाते हैं। शरीर में ये तीन शक्तियों के रूप में रहते हैं जिन्हें वात, पित्त और कफ कहते हैं। ये तीन शक्तियाँ शरीर की प्रत्येक क्रिया का प्रवर्त्तन और नियंत्रण करती हैं, चाहे उसका सम्बन्ध मांसपेशियों से हो, चाहे पाचनादि में रासायनिक परिवर्तनों से, चाहे नाड़िजाल से। जिन्हें हम साधारण बोलचाल में वात, पित्त और कफ कहते हैं वे शरीर से सम्बद्ध वह तीन स्थूल पदार्थ हैं जिनमें यह धातु अभिव्यक्त हो रहे हैं। कोई धातु एक पदार्थ में अधिक उद्भूत है, कोई दूसरे में। पंच-महाभूत का सिद्धान्त पूर्णरूपेण वैज्ञानिक है। इसके समर्थन में कई लोगों ने अध्ययन किया है। उदाहरण के लिये बड़ी विनम्रता से मैं आपका ध्यान इस विषय के उस विवेचन की ओर दिलाता हूँ जिसे मैंने अपनी पुस्तक 'चिद्विलास' में किया है। जो वैद्य महाभूतों की उस व्याख्या से चिपटा रहना चाहता है जिसे मध्यकाल के लेखकों ने किया था जब कि राजनीतिक परतन्त्रता थी और अन्वेषण तथा नये प्रयोगों की सुविधायें न थी, वह अपनी विद्या की कुसेवा करता है। दोष प्राचीन ऋषियों के लेखों का नहीं परन्तु आधुनिक टीकाकारों का है। मैं विज्ञान का विनम्र विद्यार्थी हूँ और अपनी पूरी शक्ति से कह सकता हूँ कि त्रिदोष सिद्धान्त की नींव उतनी ही दृढ़ है जितनी कि किसी चिकित्सा सम्बन्धी सिद्धान्त की हो सकती है। यह उन परिस्थितियों को बतलाता है जिनमें स्वास्थ्य की रक्षा हो सकती है और जिनमें स्वास्थ्य को हानि पहुँच सकती है। इसकी सहायता से वैद्य लक्षणों को जानकर यह समझ सकता है कि शरीर के भीतर की अव्यवस्था क्या है जिससे वे लक्षण प्रकट हुये हैं और शरीर को जिस उपचार की आवश्यकता है यह भी पूरी तरह समझ में आ जाता है। निदान के आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों को यदि वैद्य अपनायें तो यह बिलकुल उचित ही है। परन्तु कीटाणु और रासायनिक कमियां उसके दृष्टिकोण से बाहरी लक्षणों के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। वे केवल इस बात की ओर संकेत करते हैं कि शरीर के भीतर धातुओं में विषमावस्था और अव्यवस्था उत्पन्न हो गई है। आयुर्वेद के आधुनिक अध्यापन में यह प्रयत्न होना चाहिये कि वैद्य का आयुर्वेद में खोया हुआ विश्वास लौट आवे और यह दृढ़ विश्वास स्थापित हो जाय कि आयुर्वेद पूर्णरूपेण वैज्ञानिक है। आधुनिक विज्ञान ने जो तथ्य ढूँढ़ निकाले हैं उनको न मानने से वैद्य अपने या अपनी विद्या के गौरव को नहीं बढ़ाता। जो सत्य है वह सत्य रहेगा और जो व्यक्ति उससे मुंह मोड़ता है उसे अपने शुतुर्मुर्गी व्यवहार की भारी कीमत चुकानी होगी।

रसायन, शरीर रचना, जीवशास्त्र, मनोविज्ञान कीटाणु विज्ञान जैसे शास्त्रों का किसी चिकित्सा प्रणाली से विशेष सम्बन्ध नहीं होता। वैद्य उन्हें साधिकार उसी प्रकार प्रयोग करता है जैसे एलोपैथ। किन्तु उसे अपने मूलाश्रय को न भूलना चाहिए और इन शास्त्रों का उसी दृष्टिकोण से प्रयोग करना चाहिए। शल्य चिकित्सा के बारे में भी यही बात सही है। एक समय था जब वैद्य की चिकित्सा में शल्य को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। सुश्रुत के दिये हुये आदेश आज भी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। कुछ कारणों से जिनका मैं यहाँ उल्लेख नहीं करूंगा शल्य चिकित्सा का प्रयोग बन्द हो गया, यद्यपि वैद्य अब भी शल्य चिकित्सा का अध्ययन करते हैं। यह विभाजन अब न रहना चाहिए और शल्य चिकित्सा आयुर्वेदिक प्रशिक्षण का अनिवार्य अंग होना चाहिये। इस विषय में भी मैं एक बात की ओर फिर ध्यान दिलाना चाहता हूँ और वह यह है कि शताब्दियों पूर्व लिखी पुस्तकों में वर्णित शल्य के उपकरणों को आज यदि कोई प्रयोग करने को कहे तो इससे बढ़कर मूर्खता की कोई बात न होगी। यदि आज का एलोपैथ ५० वर्ष पहिले प्रयोग किये जानेवाले उपकरणों और विधियों को छोड़ने में स्वतन्त्र है और ऐसा करने से उसकी विद्या की एकता तथा क्रमिकता में कोई ह्रास नहीं होता तो कोई कारण नहीं कि वैद्य को सहस्रों वर्ष पूर्व निर्मित साधनों और उपकरणों का उपयोग करने के लिये विवश

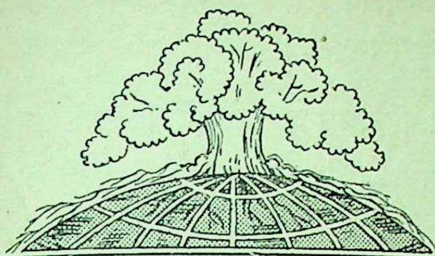
किया जाय। शल्य क्रिया के क्षेत्र में जो आधुनिकतम अन्वेषण हुए हैं उनका उपयोग वैद्य को करना चाहिये। वे आयुर्वेद के अंग ही माने जायेंगे। आयुर्वेद और आधुनिक शल्य चिकित्सा में कोई विरोध नहीं हो सकता क्योंकि अवयवों में कोई विरोध नहीं होता। किन्तु मेरी यह निश्चित धारणा है कि जिसे मैं फिर दुहराता हूँ और वह यह है कि आधुनिक औषधियों के प्रयोग की शिक्षा आयुर्वेदिक प्रशिक्षण का अंग नहीं होना चाहिए, जब तक कि इन औषधियों की उपयोगिता आयुर्वेदिक सिद्धान्तों से परीक्षित न हो और आयुर्वेद में उनका समावेश न हो गया हो, ठीक उसी प्रकार जैसे सुपचित भोजन अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खोकर शरीर के साथ एकरस हो जाता है। जो अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखना चाहे और विदेशीयता को विज्ञापित करता रहे वह पराया तत्व है और आयुर्वेदिक प्रणाली से बहिष्कार करने योग्य है।

ये विचार एक अल्पज्ञ के हैं और उनका उतना ही सम्मान होना चाहिये जो विशेषज्ञों के क्षेत्र में हुए अल्पज्ञ के विचारों का होता है। किन्तु मैं आशा करता हूँ कि आप उन पर पूरी तरह चिन्तन करेंगे। मेरी यह धारणा है कि हमारे इन प्रश्नों को महत्व न देने के कारण ही वर्तमान परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। उनकी महत्ता इसलिए नहीं है कि मैंने उन्हें व्यक्त किया है, किन्तु मेरी जानकारी में ये विचार बहुत-से वैद्यों और आयुर्वेद के प्रेमियों के मन में उठ कर उन्हें चिन्तित कर रहे हैं। थोड़े ही समय में वैद्यों की वर्तमान पीढ़ी, वे वैद्य जिन्होंने आयुर्वेद का ज्ञान ऐसे गुरुओं के चरणों में बैठकर प्राप्त किया है जो शताब्दियों से परम्परा प्राप्त ज्ञान के भण्डार थे, समाप्त हो जायगी और हमारे बीच में वे लोग रह जायेंगे जो नाम के ही वैद्य होंगे क्योंकि आयुर्वेदिक नुसखों की छोटी-मोटी जानकारी मात्र उन्हें होगी। यदि आयुर्वेद की आधारशिला ही टूट जायेगी तो आयुर्वेद का विनाश हो जायगा। मानवीय ज्ञान में योग देने के लिये उसके पास कुछ न बचेगा और वह चिकित्सा-शास्त्र के इतिहास के विद्यार्थियों के सिवाय और किसी के लिये प्रयोजन की वस्तु न रह जावेगा। हम में से बहुतों का यह विश्वास है कि आयुर्वेद मानव त्राण और सुख में इससे अधिक योग दे सकता है। यही कारण है कि मैं उसके पाठ्यक्रम को सुधारने का अनुरोध कर रहा हूँ। जिन शास्त्रों का मैंने ऊपर वर्णन किया है उनमें जो सहायता प्रदान करने वाले उत्तम तत्व हैं उन्हें हम ग्रहण कर लें किन्तु आयुर्वेद अपने सत्व को न छोड़े और अपने मौलिक सिद्धान्तों पर अडिग रहे तभी वह सच्चे अर्थ में आयुर्वेद कहलायगा।

किस पाठ्यक्रम को हमें अपनाना चाहिये और उसमें क्या-क्या हो यह सुझाव देना मेरे अधिकार की बात नहीं है। आप में से जो विशेषज्ञ हैं वे मुझ से कहीं अधिक अच्छी तरह से यह काम कर सकते हैं। जिसे हम आधुनिक चिकित्सा कहते हैं उसके बोझ से हलके होने के पश्चात् भी आयुर्वेद के विद्यार्थी के लिये अध्ययन की पर्याप्त सामग्री रहेगी और कालेज में पांच या अधिक वर्ष जो उसे व्यतीत करने होंगे, वे पूरी तरह से व्यस्त रहेंगे। आपको यह ही निश्चय नहीं करना होगा कि कौन विषय पाठ्यक्रम में रखे जांय प्रत्युत यह भी सोचना होगा कि आधुनिक चिकित्सा के अतिरिक्त कौन से विषय निकाल दिये जांय। उदाहरण के लिये पुरानी पुस्तकों में बतायी हुई शरीर रचना प्रणाली का अध्ययन अनावश्यक है। यदि आधुनिक विज्ञान ने असंदिग्ध साधनों से यह निश्चय कर दिया है कि शरीर के अंग विशेष में १०० नाड़ियाँ हैं तो इसमें कौन-सी बुद्धिमत्ता है कि विद्यार्थी का समय ऐसी पुस्तक या उसके किसी ऐसे भाग के अध्ययन में नष्ट कराया जाय जिसमें यह लिखा है कि नाड़ियों की संख्या ७० है। यह उदाहरण मात्र है। यदि प्राचीन ज्ञान के इस प्रकार के स्मारकों का कोई स्थान है तो वह आयुर्वेद के इतिहास में ही हो सकता है यदि इस विषय का पाठन करना वांछनीय ही हो। आपको यह भी निश्चय करना है कि जो कुछ पढ़ाना है वह किस ढंग से पढ़ाया जाय कि उसे ऐसा विद्यार्थी, जो सतर्क बुद्धि है और जिसे आधुनिक विज्ञान की प्रगति में आस्था है, हृदयंगम कर सके। वैद्यों में से कुछ को आधुनिक विज्ञान को दृष्टि में रखते हुए अपने शास्त्र के सिद्धान्तों की पुनः मीमांसा करनी होगी। मैं वैद्यों से यह नहीं कहता कि वे अपनी बातों को छोड़ दें, केवल इसलिये कि जो समय की दृष्टि से नवीन है उससे उनकी बातों का समर्थन नहीं होता। मेरा तो केवल वैद्यों से इतना ही कहना है कि वे अपनी शास्त्रीय स्थिति की पुनः समीक्षा करें और यह देखें कि क्या यह सम्भव नहीं है कि आप अपने सिद्धान्तों को आधुनिक विज्ञान की भाषा में समझा सकें। ज्ञान गत्यात्मक होता है, वह निरन्तर आगे बढ़ता है। न आयुर्वेद में न अन्य किसी विज्ञान में दुराग्रही होने की आवश्यकता है।

एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न और भी है जिस पर आपको विचार करना है। वह यह है कि आयुर्वेदिक कालेजों में किस प्रकार का विद्यार्थी प्रवेश पावे। इस विषय में बहुत कुछ मतभेद है। विज्ञान और संस्कृत दोनों का ज्ञान साथ-साथ हो तब तो सब से अच्छा हो। किन्तु अभी इस तरह के पाठचक्रम की सुविधा शिक्षा संस्थाओं में उपलब्ध नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि शिक्षा संस्थाएं निकट भविष्य में ऐसा करेंगी। जब तक ऐसा न हो तब तक के लिये यह कहा जाता है कि क्योंकि जिन विद्यार्थियों ने इन्टर-मिडियेट परीक्षा विज्ञान के साथ पास की है, साधारणतः उनको आयुर्वेद के वैज्ञानिक होने में शंका रहती है। इसलिये अच्छा यह हो कि जिन्होंने संस्कृत में मध्यमा परीक्षा पास की हो उन्हें ही लिया जाय। भैषज्य विज्ञान का किसी भाषा विशेष से कोई सरोकार नहीं होता। संसार की किसी भी भाषा के माध्यम से यह विद्या पढ़ायी जा सकती है। किन्तु कई कारणों से आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिये संस्कृत ज्ञान की अभी कुछ दिनों तक अनिवार्यता माननी होगी। यह आवश्यक नहीं है कि वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान हों। हां, थोड़ा ज्ञान कार्य सुगमता के लिये अवश्य होना चाहिये। यदि हम ६ वर्ष का पाठचक्रम रखें जिसमें पहिले वर्ष में प्रारम्भिक अध्ययन हो तो ऐसी व्यवस्था शायद सब तरह से आदर्श व्यवस्था होगी। लेकिन मैं इस बात से सहमत हूँ कि पांच वर्ष से अधिक पाठचक्रम के लिए विद्यार्थी कठिनाई से मिलेंगे विशेषकर जब कि एम० बी० बी० एस० के लिये ५ वर्ष का पाठचक्रम है। इसलिये मेरा सुझाव यह है कि आप उन विद्यार्थियों को ही लें जिनकी वैज्ञानिक योग्यता वही हो जो एलोपैथिक कालेजों में प्रवेश पाने के लिये स्थिर की गई है, अर्थात् विज्ञान के विषय के साथ इन्टरमीडिएट परीक्षा पास विद्यार्थी ही लिये जायं। इसके साथ संस्कृत का एक पाठचक्रम निश्चित कर दें जिसे प्रत्येक विद्यार्थी को अध्ययन करना होगा। इस पाठचक्रम में साधारण संस्कृत, गद्य और पद्य का अर्थ समझना और साधारण संस्कृत में लिखना होना चाहिये। इसमें तर्क शास्त्र का प्राथमिक ज्ञान भी रखा जाय, कुछ-कुछ तर्क संग्रह के समान, किन्तु नवीन, आधुनिक ढंग पर। इसमें संशय नहीं कि प्रतिदिन दो घण्टे के अध्ययन से बुद्धिमान विद्यार्थी संस्कृत के इतने ज्ञान का तीन या चार महीने में अर्जन कर सकता है। विज्ञान के स्नातक भी एलोपैथिक मैडिकल कालेजों की प्रवेश परीक्षा प्रशिक्षण के हेतु तीन-चार मास का समय व्यय करते हैं। आयुर्वेदिक कालेजों में प्रवेश पाने के इच्छुक भी इसी प्रकार के प्रशिक्षण पाने के पश्चात् ही प्रवेश पाने योग्य परीक्षा समझे जाने चाहिए। आप देखें कि मैंने मध्यमा को इसमें कोई स्थान नहीं दिया है। मैं इसका समर्थक नहीं हो सकता, जब तक इन्टरमीडिएट परीक्षा वाली विज्ञान की योग्यता उसके साथ-साथ न हो।

मेरे विचार से आयुर्वेद को पुनः प्रतिष्ठित करना हमारा कर्त्तव्य है। इस दिशा में यदि अविलम्ब प्रयास न किया गया तो यह शास्त्र समाप्त हो जायगा। मैं आयुर्वेद का समर्थक इसलिये नहीं हूँ कि इसमें सस्ती दवाएं प्राप्त हैं। कुछ आयुर्वेदिक औषधियाँ बड़ी महंगी होती हैं। सस्तापन इसकी सिफारिश नहीं हो सकती। मैं आयुर्वेद के पक्ष में इसलिये हूं कि मैं यह मानता हूँ कि यह मानव समाज के लिये उपयोगी है। आप से अधिक और कोई इस स्थिति में नहीं है जो इस तथ्य की जाँच कर सके। यदि आप मुझ से सहमत हों तो आपको चाहिये कि भविष्य में होने वाले वैद्यों के लिये एक उपयुक्त प्रशिक्षण प्रणाली प्रस्तुत कर अपने प्रदेश की सहायता करें। उसके पश्चात् अगला कदम सरकार को उठाना होगा। इसे आपकी सिफारिशें केवल कार्यान्वित ही न करनी होंगी किन्तु यह भी स्मरण रखना होगा कि किसी भी विद्या के तब तक अध्येता न मिलेंगे जब तक कि वह अर्थकारी न हो। यदि हमें अच्छे वैद्य चाहिए तो हमें यह भी देखना होगा कि उन्हें समाज में वह सम्मान प्राप्त हो और वह आर्थिक निश्चिन्तता रहे जो उन लोगों को मिलनी ही चाहिये जिन्होंने रोग और मृत्यु से लड़कर मानवता की सेवा करने का व्रत लिया है। सच्चा वैद्य जिसने अपने शास्त्र के आचार्यों की शिक्षा हृदयंगम की है केवल धन के लिये अपना कार्य नहीं करता। किन्तु समाज को चाहिये कि ऐसे व्यक्तियों के प्रति जो उसका कर्तव्य है उसका पालन करे।



आयुर्वेद-जगत्

बैद्यनाथ कार्यालय में उडूपा समिति

आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली के क्षेत्र में होनेवाले कार्यों का मूल्यांकन करने के लिए भारत सरकार ने एक समिति का गठन किया है। इस समिति के अध्यक्ष हैं हिमाचल प्रदेश के सर्जिकल स्पेशलिस्ट डा० के० एन० उडूपा। गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज त्रिवेन्द्रम के रिसर्च प्रोफेसर वैद्य के० परमेश्वरम् पिल्लई इस इस समिति के सदस्य हैं और भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय के उप-सचिव श्री आर. नरसिंहम् इस समिति के सदस्य एवं सचिव हैं। यह समिति सारे भारत की आयुर्वेदीय शिक्षण संस्थाओं, औषधि निर्माण प्रतिष्ठानों, आतुरालयों आदि का निरीक्षण कर यह पता लगाने की चेष्टा कर रही है कि आयुर्वेदीय शिक्षण संस्थाओं को समुन्नत बनाने के लिये केन्द्रीय और राज्य सरकारों को क्या करना चाहिए, आयुर्वेदीय शिक्षण और प्रतिसंस्कार की वर्तमान अवस्था क्या है, आयुर्वेदीय औषधियां कितने प्रकार की, किस परिमाण में और किस स्तर की तैयार होती हैं और आयुर्वेदीय चिकित्सा की वास्तविक परिस्थिति क्या है। पिछले अगस्त महीने के द्वितीय सप्ताह में यह समिति कलकत्ता आयी थी। यहाँ इसने विभिन्न आयुर्वेदीय शिक्षा संस्थाओं, आतुरालयों तथा औषधि निर्माण प्रतिष्ठानों का निरीक्षण किया। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के कार्यालय में आकर इस समिति ने बैद्यनाथ औषधि-निर्माणशाला का निरीक्षण किया और बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान के डायरेक्टर श्री बनवारीलालजी शर्मा से आयुर्वेदोन्नति विषयक विभिन्न प्रश्नों पर विचार-विमर्श किया। श्री बनवारीलालजी शर्मा ने समिति के समक्ष अनेक महत्वपूर्ण सुझाव उपस्थित किए, जिनको डा० उडूपा ने बड़े आग्रह के साथ दर्ज किया और बैद्यनाथ औषधियों की उत्कृष्टता एवं शुद्धता के लिए पूर्ण सन्तोष व्यक्त किया।

आयुर्वेदिक वनस्पतियों की खेती

राजस्थान सरकार के आयुर्वेद परामर्श बोर्ड ने राज्य सरकार को इस आशय का सुझाव दिया है कि राजकीय वनों तथा उपवनों में सुयोग्य वैद्यों की देखरेख में आयुर्वेदिक वनस्पतियों की खेती करवायी जाय। इस सुझाव की उपादेयता पर प्रकाश डालते हुए आगे बताया गया कि शुद्ध वनस्पतियों एवं जड़ी-बूटियों के उपलब्ध होने पर ही प्रभावशाली औषधियों का निर्माण हो सकता है। बोर्ड ने अपने अन्यान्य सुझावों में कहा है कि आयुर्वेद विभाग के संचालक को स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विभाग के संचालक के समकक्ष समझा जाए तथा अधिकार दिए जाँय। सुझाव में यह भी कहा गया कि सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय स्थापित किए जाँय तथा चलचित्रों, विज्ञप्तियों आदि समस्त साधनों का उपयोग करते हुए आयुर्वेद का प्रचार किया जाय।

कलकत्ता विश्वविद्यालय में आयुर्वेद कालेज

संयुक्त आयुर्वेद उत्थान समिति में प्रधान अतिथि-पद से भाषण करते हुए कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति प्रो० निर्मल कुमार सिद्धान्त ने कहा कि आयुर्वेद की शिक्षा के लिए सन् १९५० में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने जो सिद्धांत ग्रहण किया था उसे शीघ्र ही कार्यान्वित किया जायगा—किन्तु इसके लिए आयुर्वेद-प्रेमियों एवं विद्वानों का सहयोग अपेक्षित है।

प्रोफेसर सिद्धान्त ने कहा कि पश्चिम बंगाल में आयुर्वेद का अति प्राचीन काल से महत्त्व रहा है। दुर्भाग्यवश कलकत्ता विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आयुर्वेद कालेज की स्थापना नहीं हो सकी है—किन्तु अब इस कार्य में विलम्ब न होगा और चोपड़ा कमेटी की सिफारिशों की शीघ्र ही कार्यान्विति होगी। इस अवसर पर बंगाल के कतिपय आयुर्वेदीय विद्वानों के भाषण हुए।

राजस्थान में आयुर्वेद का पृथक् विभाग

राजस्थान के मुख्य मंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया ने मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा में भाषण देते हुए यह रहस्योद्घाटन किया कि राजस्थान विश्वविद्यालय में आयुर्वेद का पृथक विभाग खोलने के प्रश्न पर राज्य सरकार

विचार कर रही है। मुख्य मंत्री ने आगे कहा कि इसके जरिए राजस्थान में आयुर्वेद के प्रसार, प्रचार तथा विस्तार के कार्य किए जायँगे। आयुर्वेद तथा एलोपेथी में तुलना करने सम्बन्धी प्रवृत्ति की तीव्र भर्त्सना करते हुए श्री सुखाड़िया ने कहा कि आयुर्वेद के विकास के लिए यह आवश्यक है कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली में आधुनिक अनुसंधान को अपनाया जाय तथा व्याधियों के निदान एवं चिकित्सा में उनका उपयोग किया जाय।

आयुर्वेदिक और यूनानी औषधियों पर नियंत्रण

औषधि सलाहकार समिति ने सिफारिश की है कि अच्छी आयुर्वेदिक और यूनानी औषधियों को, औषधि अधिनियम के अन्तर्गत नियंन्त्रित किया जाना चाहिए। अखिल भारतीय यूनानी और तिब्बी संघ ने इस बारे में मांग की थी और उस पर विचार करने के बाद भी समिति ने उक्त सुझाव दिया। समिति ने आगे यह भी सुझाव दिया कि पेटेंट औषधियों के निर्माताओं को औषधियाँ थोड़ी मात्रा में पैकिंग करनी चाहिए जिससे कि खरीददार उन्हें उसी रूप में खरीद सकें और धोखे की बिल्कुल गुंजायश न रहे। समिति ने इस बात की भी समीक्षा की कि विभिन्न राज्यों में औषधि तथा चमत्कारी इलाज (आपत्तिजनक विज्ञापन) अधिनियम किस हद तक लाभकारी सिद्ध हुआ और इस बात पर भी विचार-विमर्श किया गया कि इस अधिनियम को कड़ाई से लागू करने के लिए क्या उपाय किये जाने चाहिएँ।

आयुर्वेद से सभी रोगों की चिकित्सा संभव

आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली के एक व्याख्याता श्री अनन्तमहाराज ने एक पत्र-प्रतिनिधि के भेंट करने पर बताया कि आयुर्वेद शास्त्र में इतनी क्षमता है कि वह किसी भी व्याधि को ठीक कर दे सकता है। उक्त व्याख्याता ने आगे बताया कि आयुर्वेदिक प्रणाली एक सिद्धान्त पर आधारित है। उक्त सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति ने प्रत्येक मानव व्याधि के लिए इलाज की व्यवस्था की है। आपने कहा कि वर्तमान अवस्था में खान-पान की वस्तुओं में उन आवश्यक तत्त्वों की कमी है, जो कि मानव-स्वास्थ्य-संरक्षण एवं संवर्द्धन की दृष्टि से परमावश्यक है। श्री अनन्त महाराज ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि केन्द्रीय सरकार आयुर्वेदिक प्रणाली में अनुसन्धान के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन नहीं दे रही है।

आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम में एलोपैथी का समावेश अनुचित

उत्तर प्रदेश सरकार ने राज्य में आयुर्वेद के शिक्षण का अध्ययन करने के लिए जो समिति नियुक्त की थी, उसने यह सुझाव दिया है कि भारतीय और पश्चिमी चिकित्सा प्रणालियों के एकीकरण से पूर्वीय और पश्चिमी चिकित्सा प्रणालियों में समन्वय के विकास की दिशा में असफलता हुई है। समिति ने अपने अन्तरिम प्रतिवेदन में लिखा है कि तथ्य यह है कि समीकृत शिक्षण से पहले ही क्षीण आयुर्वेद के ऊपर पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली का मुलम्मा चढ़ गया है। इसके परिणामस्वरूप आयुर्वेद पुनरुज्जीवित होने के बदले और पीछे पड़ गया है।

समिति ने कहा है कि एकीकृत शिक्षा के बारे में गत एक चौथाई शताब्दी में जो अनुभव प्राप्त हुए हैं, वे बड़े निराशाजनक हैं। प्रतिवेदन में कहा गया है कि विज्ञान लेकर इंटर उत्तीर्ण छात्र आयुर्वेद की अपेक्षा पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली को पढ़ना अधिक पसन्द करते हैं और अपने अज्ञान के कारण वे आयुर्वेद को अवैज्ञानिक और अनुपयोगी समझते हैं। यहाँ तक कि वे अपने आपको वैद्य या हकीम कहलाने में लज्जा का अनुभव करते हैं। इस प्रकार शिक्षा की एकीकृत पद्धति आयुर्वेद के लिए कुठार बन गयी है। यह स्पष्ट है कि यदि घटनाक्रम को परिवर्तित न किया गया तो आयुर्वेद का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायगा।

समिति ने यह भी सुझाव दिया है कि राज्य की विभिन्न आयुर्वेदिक संस्थाओं से पढ़कर निकले छात्रों को आयुर्वेदाचार्य की उपाधि दी जाए और इस उपाधि का पाठ्यक्रम ५ वर्ष का रखा जाय। समिति ने यह भी सिफारिश की है कि आयुर्वेदाचार्य स्नातकों का वेतन एम० बी० बी० एस० डाक्टरों से किसी भी अवस्था में कम न हो।

आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना जरूरी

लोकसभा के अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने तिब्बिया कालेज दिल्ली में निखिल भारतीय शास्त्रचर्चा परिषद् के तत्वावधान में आयोजित शारीर-संज्ञा समिति की बैठक में भाषण देते हुए कहा कि भारत की राजधानी दिल्ली में आयुर्वेद की उच्च शिक्षा के लिए, भारतीय संस्कृति के अनुरूप एक

आयुर्वेदिक विश्वविद्यालय की अतीव आवश्यकता है। आपने कहा कि आयुर्वेदशास्त्र बहुत ही प्राचीन है, लेकिन आज चरक संहिता एवं अन्य ग्रन्थों के हिन्दी में अनुवाद करने की आवश्यकता है। इससे एक लाभ यह होगा कि संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ लोग भी आयुर्वेद को समझ सकेंगे।

वैद्यों की सभा में श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा का भाषण

आर्यसमाज मन्दिर गोरखपुर में गोरखपुर के वैद्य समाज की ओर से श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के डाइरेक्टर पं० दुर्गाप्रसाद जी शर्मा, आयुर्वेदाचार्य का अभिनन्दन श्री सत्यनारायण शर्मा, प्रधान मंत्री, गोरखपुर जिला वैद्य सम्मेलन व्यवस्थापक, श्री महावीर औषधालय, गोरखपुर के तत्त्वावधान में किया गया। श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा ने अपने भाषण में कहा कि गोरखपुर शहर तथा कमिश्नरी में मेरा यह प्रथम आगमन है।

आपने वैद्यों द्वारा गोरखपुर में आयुर्वेद विद्यालय खोलने के निमित्त मांग की गयी धनराशि के उत्तर में कहा कि किसी भी आयुर्वेदिक संस्था में वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन तथा अपनी ओर से मैं पूर्ण सहयोग दूंगा।

आपने कहा कि हिन्दू राजाओं के बाद आयुर्वेदिक चिकित्सा पर आघात होते रहे। समयानुसार यूनानी चिकित्सा तथा एलोपैथिक चिकित्सा को प्रोत्साहन तथा राजकीय प्रश्रय मिलता रहा और एलोपैथी की वही परिपाटी अब भी चली आ रही है। पर आयुर्वेद सदैव अपनी सत्यता और विशेषता के कारण हमेशा खड़ा रहा और अपनी शक्ति के भरोसे आगे बढ़ता गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद नेताओं ने इस ओर ध्यान दिया और आयुर्वेद फैक्टरी का निर्माण भी हुआ। केन्द्रीय सरकार के ध्यान देने के साथ-साथ विदेशियों का भी ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। रूस ने आयुर्वेदिक चिकित्सा के प्रचार के लिए २ करोड़ डालर खर्च करने का निश्चय किया है और इसके लिए १५ रूसी औषधि विशेषज्ञ भी आ गये हैं, जो देश में भ्रमण कर इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

शीत ज्वर के सम्बन्ध में एलोपैथी वालों ने पूर्ण प्रयास किया, पर सफलता नहीं मिली। इसमें विशेष सफलता आयुर्वेद को मिली है। इस समय बिहार में पीलिया रोग व्याप्त है। उसके लिए कैम्प योजना चल रही है। हर एक वैद्य वहाँ का सहयोग करने को तैयार है और बिहार सरकार ने भी इसमें काफी सहयोग दिया है। आपने गोरखपुर शहर तथा कमिश्नरी के वैद्यों से अपील की कि ऐसा समय आने पर वे भी हर सहयोग के लिए तैयार रहें। आपने कहा कि आयुर्वेद द्वारा जितना ही जनता की सेवा की जा सकेगी उतना ही उसका प्रचार हो सकेगा।

आपने कहा कि यदि वैद्य आपस में विचार-विमर्श करते रहें तो आयुर्वेद और जनता का भला हो सकेगा।

वैद्यराज श्री मोहनलालजी का अभिनन्दन

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के झाँसी केन्द्र के निर्माण विभागाध्यक्ष वैद्यराज पण्डित श्री मोहनलाल जी चतुर्वेदी आयुर्वेदाचार्य का स्थानान्तरण झाँसी से नागपुर केन्द्र के लिए हो गया है। उनकी विदाई के अवसर पर झाँसी कार्यालय में भव्य सम्मान-समारोह का आयोजन किया गया। तीन दिन पृथक्-पृथक् आयोजनों में निर्माण विभाग, औषध-संवेष्ठन विभाग और कार्यालय के कार्यकर्त्ताओं की ओर से वैद्य मोहनलालजी को सम्मान-पत्र दिये गए और स्वल्पाहार गोष्ठियाँ हुईं।

प्रथम दिवस निर्माण विभाग की ओर से झाँसी कार्यालय के कार्यकर्त्ता-विश्राम-कक्ष में सम्मान-सभा का आयोजन बुन्देलखण्ड वैद्य हकीम परिषद् के प्रधान आयुर्वेदाचार्य पं० रामगोपाल जी शास्त्री की अध्यक्षता में हुआ। इस अवसर पर झाँसी केन्द्र के प्रबन्धक बाबू रामप्रकाश अग्रवाल, श्री बैजनाथ शर्मा, श्री गुलझारीलाल मुद्गल, आदि ने श्री मोहनलाल जी की व्यवहार कुशलता, कार्य निपुणता और सहयोग साधुता पर प्रकाश डाला। श्री द्वारिकेश मिश्र ने पद्यबद्ध सम्मान पत्र भेंट किया। भवन के प्रबन्ध संचालक वैद्यराज श्री रामनारायण जी शर्मा ने वैद्य श्री मोहनलाल जी की सोलह वर्षों की सेवाओं की प्रशंसा करते हुए कहा कि वे उन दिनों हमारे सम्पर्क में आये जब कि झाँसी का निर्माण-केन्द्र छोटे से रूप में आरम्भ किया गया था। मोहनलाल जी की कार्यदक्षता और लगन का सबसे बड़ा प्रमाण झाँसी निर्माण केन्द्र का आज का विशाल स्वरूप है। आपने कहा कि जिन कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के अध्यवसाय से श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन ने आज इतना विस्तृत रूप पाया है, श्री मोहनलाल जी उनमें से एक हैं और उनके

प्रति मेरे अन्तर्मन में सम्मान का स्थान है। श्री मोहनलालजी की यहाँ से विदाई पर हममें से किसी को वियोग का अनुभव नहीं करना चाहिए क्योंकि वे कहीं बाहर नहीं जा रहे। झाँसी निर्माण केन्द्र को उन्होंने अपनी लगन पूर्ण सेवाओं से जो विकसित रूप दिया है, उसका अनुभव यह अपेक्षा रखता है कि हम उन्हें इससे भी अधिक उत्तरदायित्व और बड़े क्षेत्र का कार्य करने का अवसर दें। नागपुर में हमने अपना जो नया कारखाना बनाया है, वह साधनों, कार्य और क्षेत्र की दृष्टि से झाँसी से बड़ा है। वहाँ के कार्य सम्पादन में हमें मोहनलालजी की योग्यता का लाभ मिलेगा और उनको भी अधिक विस्तृत कार्य में अपनी प्रतिभा के विकास का अवसर मिलेगा। इस प्रकार श्री मोहनलाल जी की बिदाई पर हमें संतोष और शुभकामनाएं ही व्यक्त करना चाहिए। यद्यपि यह निश्चित है कि श्री मोहनलाल जी इतने अधिक कुशल, व्यवहारपटु, मिष्टभाषी और कर्मचारियों के प्रति भ्रातृत्वभाव रखने वाले रहे हैं कि उनको उनको बीच से थोड़ी ही दूर जाते देखकर प्रत्येक सहयोगी के मन को विछोह का कष्ट पीड़ा देता है, परन्तु यह विछोह तो मंगलकारक है।

अन्त में वैद्यराज श्रीमोहनलालजी ने भवन के संचालकों और सहयोगी कार्यकर्त्ताओं के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट की। आगत सज्जनों को स्वल्पाहार दिया गया।

दूसरे दिन झाँसी केन्द्र के पैकिंग कक्ष में भव्य समारोह आयोजित किया गया जिसमें समस्त कार्यकर्त्ताओं के अतिरिक्त स्थानीय प्रमुख वैद्यों एवं नागरिकों ने भी भाग लिया। पण्डित श्री किशोरीलाल जी शास्त्री, वैद्य श्री चन्द्रभानु जी शास्त्री, वैद्य रामकृष्ण जी शर्मा, वैद्य सोमनिधि जी शास्त्री, विनोदाचार्य वैद्य गंगाप्रसाद जी शास्त्री, श्री यासीन खाँ साहब, वैद्य श्री रामगोपाल जी शास्त्री, आदि ने अपने भाषणों में वैद्य मोहनलाल जी के सम्पर्क के अच्छे संस्मरण सुनाये और उनके स्वाभाविक गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। श्री द्वारिकेश मिश्र ने सम्मान पत्र प्रस्तुत किया और श्री नेमिचन्द्र जैन तथा श्री गुलझारीलाल ने सुन्दर कविता पाठ किया। इस अवसर पर बोलते हुए वैद्यराज पण्डित रामनारायण जी शर्मा ने कहा कि झाँसी केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं द्वारा वैद्य मोहनलाल जी के सम्मान में हो रहे यह आयोजन उनकी सर्वप्रियता के परिचायक हैं। यह सर्वप्रियता व्यक्ति को सहज ही नहीं मिल जाया करती। वैद्य मोहनलाल जी ने गत सोलह वर्ष ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान पर कार्य किया है, जिसका सम्बन्ध व्यवस्था और अनुशासन से रहा है। ऐसे पद पर कार्य करते हुए कोई व्यक्ति अपने उच्चस्थ अधिकारी का कृपाभाजन बने और अधीनस्थ सहकारियों का स्नेह पात्र भी बने यह एक महत्त्वपूर्ण बात है जो मोहनलाल जी के उन गुणों की ओर संकेत करती है, जिनका सब सहयोगियों को अनुकरण करना चाहिए। मैं अपने को इस प्रसंग में बड़ा भाग्यशाली मानता हूँ कि बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के समस्त कार्यकर्त्ता, चाहे छोटे हों, चाहे बड़े—एक परिवार की भावना रखकर कार्य कर रहे हैं और अपने इस प्रयास को उन्नत बना रहे हैं। हमलोग जो संचालक कहे जाते हैं—वे तो निमित्त मात्र हैं, वस्तुतः बैद्यनाथ प्रतिष्ठान के विकास का मूल श्रेय उसके कार्यकर्त्ताओं को है। मुझे अच्छे लगनशील और काम के प्रति रुचि रखने वाले कार्यकर्त्ता मिले, और विगत चालीस वर्षों में कभी मुझे नौकर-मालिक की भावना को अनुभव करने का अवसर नहीं आया। जिन लोगों ने भवन की उल्लेखनीय सेवायें की हैं उनके प्रति मेरे मन में सदा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। अच्छे कार्यकर्त्ताओं को तदनुकूल पुरष्कृत और उन्नत करने की अपने भवन की एक परम्परा है, जिसे आप सब देखते रहे हैं। मेरी कामना है कि हमारा प्रत्येक कार्यकर्त्ता अपने को अपने कार्य से, ऐसा सिद्ध करने में समर्थ हो जिसको 'भवन' मुक्त रूप से पुरस्कृत, उन्नत और सम्मानित करने में गौरव का अनुभव कर सके। वैद्य मोहनलाल जी अनेक गुणों के केन्द्र हैं, वे औषध निर्माण क्रिया के अत्यन्त पटु आचार्य हैं, आयुर्वेद शास्त्र के अध्ययनशील विद्वान हैं, लेखक हैं, विचारक हैं और कवि हैं। दूसरी ओर वे बहुत कुशल प्रबन्धक और व्यापारपटु व्यक्ति हैं। इतने गुण एक साथ उनमें न तो आरम्भ से थे और न ही अनायास आ गए हैं। उन्होंने अपने कार्यक्षेत्र की प्रत्येक दिशा से प्रयत्नतः लाभ उठाया है। वस्तुतः इन सब गुणों के एकत्रीकरण के लिए उन्होंने अपने में सुरुचि, लगन, निष्ठा और श्रम के सामञ्जस्य की साधना की है, और उनकी यह साधना ही अभिनन्दनीय है। यह कोई विशेष अवसर नहीं है जब कि मैं श्री मोहनलाल जी के प्रति कुछ विशेष कामनायें प्रकट करूँ। उनके प्रति मेरे मन में सदा एक सी कामना रहती है कि वे उन्नत हों, सुखी हों, यशस्वी हों और यह कामना वैद्यनाथ प्रतिष्ठान

के समस्त कार्यकर्त्ताओं के प्रति मेरे अन्तर में अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है।

वैद्य श्री मोहनलाल जी ने अपने ललित संस्कृत पद्यों द्वारा अभिनन्दन का भावभीना उत्तर दिया और अपनी कृतज्ञता प्रकट की। आपने कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी बहुत अधिक प्रशंसा कर दी गई है। सहयोगियों ने जो कुछ कहा उसका उन्हें अधिकार है। विद्वान वैद्यों ने जो भाव मेरे प्रति व्यक्त किये वह उनकी स्वाभाविक उदारता है और श्रद्धेय वैद्य रामनारायण जी ने मेरे प्रति जो कुछ कहा वह उनका वात्सल्य और स्नेह है, जो सौभाग्यवश मुझे सदा एक सा मिलता रहा। मैंने अपना काम एक सिपाही की भांति किया है। मैं नहीं कह सकता कि मेरा काम किसी भी प्रशंसा का पात्र है। यदि उसमें मुझसे कुछ अच्छा बन गया है, तो यह एक मौलिक तथ्य है कि उसका श्रेय मुझको नहीं है। मेरी ऐसी मान्यता है कि काम की अच्छाई-बुराई, बहुत अंशों में काम करने वाले पर नहीं, प्रत्युत काम कराने वाले के चातुर्य पर निर्भर करती है। मेरी सेवाओं में यदि कोई चमत्कार है तो उसका श्रेय मेरे उपयोगकर्त्ता को है। अन्त में आपने सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट किया। स्वल्पाहार के बाद कार्यक्रम पूर्ण हुआ।

तीसरे दिन वैद्य श्री रामनारायण जी के निवासस्थान पर विद्वान वैद्यों की गोष्ठी में श्री मोहनलाल जी को अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया और आगत सज्जनों को भोज दिया गया।

हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन

हिमांचल आयुर्वेद सम्मेलन के पंचम वार्षिक अधिवेशन का समारोह आर्यसमाज मन्दिर शिमला में दिनांक ५ व ६ जुलाई १९५८ को सम्पन्न हुआ। प्रथम दिन लोक सभा के माननीय अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम आयंगर ने अधिवेशन का उद्घाटन किया। इनके अतिरिक्त सुदूरपूर्व से आये हुए माननीय अतिथियों में श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल इलाहाबाद (अधिवेशन सभापति) श्री एस० एन० बोस आचार्य डी० ए० वी० आयुर्वैदिक कालेज जालन्धर, श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र आचार्य आयुर्वैदिक कालेज मेरठ, श्री ठाकुरदत्त शर्मा अमृतधारा देहरादून, श्री धर्मस्वरूप रतूरी देहरादून, स्वामी श्री सन्तोषानन्द, पंजाब कण्डाघाट वैद्यमंडल के सदस्य तथा हिमांचल के चम्बा, मण्डी, सिरमौर, महासु और शिमला के स्थानीय वैद्यगण अधिवेशन में भारी संख्या में उपस्थित थे।

अधिवेशन का प्रारम्भ राष्ट्रीय गीत से हुआ। तत्पश्चात् सम्मेलन मन्त्री श्री भीमदत्त ने लोकसभा के अध्यक्ष महोदय को अभिनन्दन-पत्र भेंट किया। श्री पद्मदेव स्वागताध्यक्ष एम० पी० ने उपस्थित प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए कहा कि हम यहाँ पर एक महान् उद्देश्य से इकट्ठे हुए हैं। हमारा उद्देश्य संसार में जन-स्वास्थ्य की उन्नति करना है। देश की स्वतन्त्रता के पश्चात भारत की संस्कृति तथा कलाओं का विकास अवश्यम्भावी था। उनमें से प्राचीन आर्ष आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का विकास जनहित के हेतु आवश्यक है, परन्तु जो राजकीय प्रोत्साहन इस पद्धति को मिलना चाहिये था, वह प्राप्त नहीं हो रहा है। पाश्चात्य चिकित्सा की सफलता का कारण यह नहीं है कि उसमें आयुर्वेद से अधिक गूढ़ साहित्य है अपितु राजकीय प्रोत्साहन ही उसकी सफलता का मूल कारण है।

श्री अनन्तशयनम आयंगर अध्यक्ष लोकसभा ने अपने प्रारम्भिक उद्घाटन भाषण में कहा कि रामायण काल में जब श्री हनुमानजी मूर्च्छित लक्ष्मणजी के लिये संजीवनी बूटी लाये थे तो वह बूटी इसी उत्तराखण्ड से गई थी। अब भी यह प्रदेश दिव्य औषधियों का भारी कोष है। उनके अन्वेषण तथा प्रयोग की आवश्यकता है। जो भी औषध हमारे सामने अच्छे-अच्छे पैकटों में आती है वह सब वनस्पतियों एवं खनिज द्रव्यों से ही बनती हैं। उन्होंने अन्वेषण की ओर विशेष बल दिया और कहा कि जामनगर जैसी अन्वेषण शालाओं की स्थापना कई प्रान्तों में होनी चाहिये। इतने बड़े देश के लिये एक ही प्रयोगशाला अपर्याप्त है। उन्होंने चिकित्सा के पाठ्यक्रम की चर्चा की और कहा कि प्रत्येक चिकित्सक को, चाहे वह डाक्टर हो या वैद्य, दोनों पद्धतियों का ज्ञान होना चाहिये। मेरे मत से पाँचवें वर्ष में डाक्टरों का आयुर्वेद और वैद्यों को एलोपैथी सीखना चाहिये। ज्ञान कोई भी सीमित नहीं होना चाहिये, उसका उत्तरोत्तर विकास तथा उन्नति होनी चाहिये। मैं यह मानता हूँ कि आयुर्वेद के विकास के लिये जो सहायता सरकार से मिल रही है वह बहुत कम है तथा यह भी परमावश्यक है कि केन्द्र में एक आयुर्वेद परिषद् बननी चाहिये जिससे कि सरकार को समुचित परामर्श प्राप्त हो। मैं यह भी मानता हूँ कि आयुर्वेद विभाग

स्वतन्त्र आयुर्वेद के विद्वानों की ही अध्यक्षता में संचालित होना चाहिये। उन्होंने कहा चरक जैसे प्राचीन ग्रन्थों में हजारों वर्ष पूर्व की अनुभूत और प्रशस्त औषधियों का पूर्ण उल्लेख मिलता है जिसको आधुनिक नवीन चिकित्सक अब तय कर पाये हैं। अन्त में उन्होंने कहा कि मैं देश में आयुर्वेद की उन्नति व प्रगति देखना चाहता हूँ। इसके लिये जो भी आवश्यक सहयोग मुझसे अपेक्षित है पूर्णतया आप लोगों के सर्वदा साथ है। आप लोग मिलकर गम्भीरता से विचार के पश्चात् प्रस्ताव द्वारा सरकार से माँग करें। मैं इसका यथासम्भव लोकसभा में समर्थन कराऊँगा।

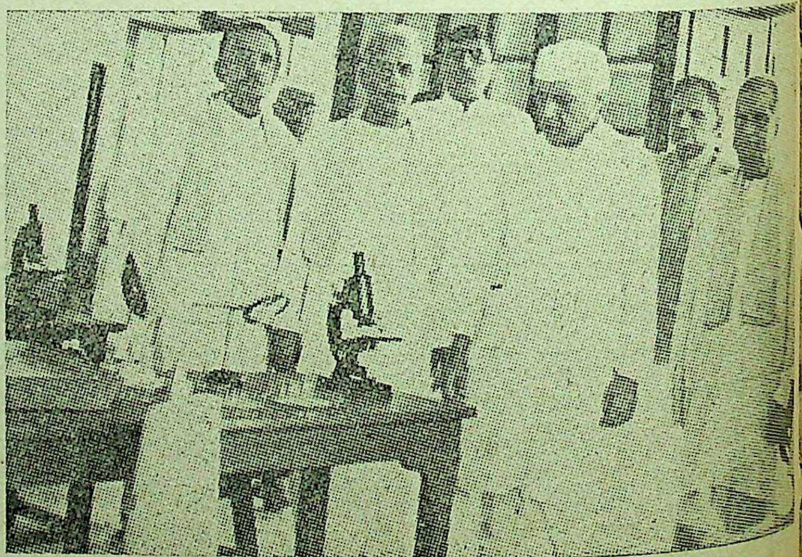
सभापति श्री जगन्नाथ प्रसादजी शुक्ल ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि आयुर्वेद एक बड़ा गूढ़ विज्ञान है। इसके आठ अंग हैं जो सोलह उपांगों में विभक्त है। इसके अन्तर्गत संसार का समस्त चिकित्सा-विज्ञान निहित है। कोई भी जो आधुनिक नवीन चिकित्सा प्रणाली प्रचलित है वह षोडश उपांगों से पृथक् नहीं है। उसको ठीक तरह समझना, क्रियान्वित करना हमारा कर्त्तव्य है। अपने ज्ञान की न्यूनता से हम अपने शास्त्रों को अधूरा समझते हैं।

इस बैठक के पश्चात् श्री लोकसभा के अध्यक्ष महोदय के सम्मान में चाय-पार्टी दी गई, जिस में समस्त प्रतिनिधि उपस्थित थे।

रात्रि को भेषज निर्माण सम्मेलन श्री एस० एन० बोस आचार्य डी० ए० वी० कालेज जालन्धर की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ। आचार्य जी ने अपने भाषण में औषधि के निर्माण का उल्लेख करते हुए कहा कि हमारा चिकित्सा संसार में औषध ही हथियार है। इसलिये उसका विशुद्ध तथा शास्त्रोक्त निर्माण ही चिकित्सा को सफल बना सकता है। उन्होंने वनस्पतियों की चर्चा करते हुए कहा कि वह पूर्ण-रसवीर्य सम्पन्न होनी चाहिये।

आयुर्वेद महाविद्यालय में प्रधान मंत्री श्री नेहरू

गत १ अगस्त को प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने गुरुकुल के आयुर्वेद विभाग का निरीक्षण किया। गुरुकुल कांगड़ी के नवनिर्मित विज्ञान भवन का उद्घाटन करने में निमित्त प्रधान मंत्री दिल्ली से पधारे थे। साढ़े दस बजे से दो बजे तक वे गुरुकुल में छात्रों तथा उपाध्यायों और अधिकारियों के साथ रहे। आयुर्वेद जगत की दृष्टि से प्रधान मंत्री की यह गुरुकुल यात्रा बहुत महत्त्व की है। प्राचीन भारतीय पद्धति से यज्ञ के धूपित सुगन्धित वातावरण में वेद मन्त्रों की पवित्र ध्वनि में श्री नेहरू ने विज्ञान-भवन का उद्घाटन किया। तत्पश्चात् वे आयुर्वेद महाविद्यालय का निरीक्षण करने कार द्वारा गये। आयुर्वेद महाविद्यालय के आचार्य ने उनका प्रवेशद्वार पर स्वागत किया। आयुर्वेद महाविद्यालय की शानदार इमारत के ऊपरी भाग में स्थित संग्रहालय को उन्होंने गौर से देखा। इस संग्रहालय में अनेक प्रकार के चार्ट, मौडल, जीवित रोगियों के शल्यकर्म द्वारा निकले हुए विकृत अंग, भारत में पाये जाने वाले सांप तथा अन्य जीव-जन्तु, आदि देखने के बाद वे जब औद्भिदी संग्रहालय में जाने लगे तो प्रवेश द्वार पर सर्पगन्धा की पुष्पित अभिनव शिखा उन्हें भेंट की गई। संग्रहालय में रखी



गुरुकुल कांगड़ी आयुर्वेद महाविद्यालय की प्रयोगशाला का प्रधान मंत्री श्री नेहरू निरीक्षण कर रहे हैं।

भारतीय जड़ी बूटियों के सम्बन्ध में प्रधान मंत्री ने दिलचस्पी ली। इस संग्रहालय में आयुर्वेद की जड़ी बूटियों के प्रामाणिक फोटो, हर्बेरियम स्पेसिमेन (पादप प्रादर्श, जो मोटे कार्ड बोर्ड पर विधिवत् सुरक्षित किये गये हैं), जड़ें, छाल, बीज, फल आदि भागों के नमूने इत्यादि बहुत बड़ी संख्या में रखे हुए हैं। किसी भी आयुर्वेदिक संस्था के लिये यह संग्रहालय प्रेरणा का स्रोत बन सकता है।

आयुर्वेद महाविद्यालय की आधुनिकतम उपकरणों से सुसज्जित प्रयोगशालाओं का निरीक्षण भी प्रधान मंत्री ने किया। इसके बाद वे कार द्वारा गुरुकुल कांगड़ी की फार्मेसी देखने के लिये गये। आधुनिक यन्त्रों-उपकरणों द्वारा भारत के प्राचीन चिकित्सा शास्त्र में उल्लिखित दवाओं के निर्माण की पद्धति श्री नेहरू को बताई गई।

गुरुकुल कांगड़ी के आयुर्वेद महाविद्यालय के विभिन्न भागों का अवलोकन करके प्रधान मंत्री को सन्तोष हुआ। अपने अत्यन्त व्यस्त जीवन में से कुछ समय निकाल कर प्रधान मन्त्री ने यहाँ जो सभी गतिविधियों का निरीक्षण किया, उसके लिये सभी कुलवासी उनके कृतज्ञ हैं।

श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, पटना

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा संचालित बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय पटना में गत जुलाई '५८ में कुल ८५४ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई। इसमें ४३६ नये और ४१५ पुराने रोगी थे। इसमें पुरुष रोगियों की संख्या २३६, स्त्री रोगियों की संख्या ८४, और शिशु रोगियों की संख्या ११६ थी। इस मास की दैनिक उपस्थिति का औषत २७·५४ रहा। नये रोगियों की संख्या रोगानुसार निम्न लिखे मुताबिक है :—

ज्वर ३३, विषमज्वर २, मन्थरज्वर ६, उत्फुल्लिका १, उदर ८०, आमातिसार ३६, कृमि १०, कास २८, श्वास ८, प्रमेह ७, अर्श १, वातव्याधि २१, आमवात ३, वातरक्त २, रजोदोष ७, व्रण ३२, शिरोरोग ४, नेत्र रोग २१, कर्णरोग २२, नासारोग २२, मुखरोग २३, पार्श्वशूल ३, क्षुद्र कुष्ठ २१, वृद्धिरोग ३, श्लीपद ४, पाण्डु ५, मूत्रकृच्छ्र ४, गुल्म २, हिक्का १, रक्तपित्त २, कालाज्वर (काला आजार) १, विषूचिका १, अम्लपित्त ४, शीतपित्त १, परिणाम शूल १।

बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय पटना में गत जून मास में कुल ६४२ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई। इनमें ३३० नये और ३१२ पुराने रोगी थे। इनमें पुरुष रोगियों की संख्या १६७, स्त्री रोगियों की संख्या ७७, और शिशु रोगियों की संख्या ३३० थी। इस मास की दैनिक उपस्थिति का औसत २·१४ रहा। नये रोगियों की संख्या रोगानुसार निम्न लिखे मुताबिक है :—

ज्वर ४७, विषमज्वर १, मन्थरज्वर १, अंशुघात ६, उदर ४४, आमातिसार १०, कृमि ६, प्रमेह १, अर्श २, वातव्याधि १२, आमवात ३, रजोदोष १२, रक्तश्वेतप्रदर ६, क्षुद्र कुष्ठ १०, व्रण ३०, कास २६, श्वास ८, शिरोरोग ५, नेत्र ४, नासा ८, कर्ण १५, मुख १२, उत्फुल्लिका ५, शोथ ४, पाण्डु ३, श्लीपद ४, रक्तपित्त ४, मूत्रकृच्छ्र ५, प्रसूताज्वर १, व्रणरोग २, वृद्धि ५, गर्भस्राव १, गर्भवतीज्वर १, उरःशूल १, प्लुष्ट १, विसर्प ५, उन्माद १, अश्मरी १, विविध १६।

बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय पटना में गत मई मास में कुल ८८५ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई। इनमें ४६१ नये और ४२४ पुराने रोगी थे। इनमें पुरुष रोगियों की संख्या २६८, स्त्री रोगियों की संख्या ७८, और शिशु रोगियों की संख्या ११५ थी। इस मास की दैनिक उपस्थिति का औषत २८·७ रहा। नये रोगियों की संख्या रोगानुसार निम्न लिखे मुताबिक है :—

ज्वर ३६, विषमज्वर १, मन्थरज्वर ३, उत्फुल्लिका ३, प्रभापात ६, उदररोग ७४, आमातिसार १६, कृमि १२, प्रमेह ५, कास ३३, श्वास ८, अर्श ३, वातव्याधि २८, आमवात ४, श्लीपद ४, रजोदोष ६, कुष्ठ १, क्षुद्रकुष्ठ २६, व्रण २६, शिरोरोग ८, नेत्ररोग ३४, कर्ण २०, मुखरोग २३, प्रतिश्याय २६, चेचक १, शोथ २, पार्श्वशूल ५, वृद्धिरोग २, गण्डमाला २, पाण्डु १, अम्लपित्त ४, विसर्प १, रक्तपित्त १, गर्भवतीज्वर २, गर्भस्राव १, विषूचिका ३, मूत्रकृच्छ्र २, प्लुष्ट २, योनिक्षत्र १, ग्रन्थिरोग १, विविध १५।

बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, झाँसी

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० झाँसी द्वारा संचालित श्री धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र मुहल्ला खत्रियाना में जुलाई १८५८ में १७६८ रोगी की मुफ्त चिकित्सा की गई जिसमें नये आए हुए रोगी ५२४ थे।

नये रोगियों का रोगानुसार विवरण निम्न प्रकार से है।

ज्वर ९८, कास ३८, वात रक्त ३६, संग्रहणी १, वात व्याधि २९, व्रण ४, श्वास ११, ज्वर कास ३३, शोथ ४, उदरशूल २०, प्रतिश्याय ३५, कर्ण रोग ११, ज्वरातिसार १४, अतिसार २६, रक्तार्श ४, यकृतोदर ८, वीर्य विकार १०, वस्तिशूल २, मन्दाग्नि २०, आर्तव दोष ३, आमातिसार १६, अजीर्ण ७, हृदयदौर्बल्य १, कर्णशूल ३, रक्त स्राव १, यक्ष्मा २, मधुमेह १, वक्षःशूल ५, शिरःशूल ५, वमन १, ज्वर ५, प्रतिश्याय २० भ्रम १, विष्टम्भ ९, मूत्रदोष १, श्वेतप्रदर ९, नेत्ररोग ४, कण्डू ११, कृमिरोग २, ग्रन्थिरोग १, यकृत शूल ३, उष्णवात २, रक्तपित्त १, दद्रु २, दौर्बल्य ३, उदर रोग २, शीतपित्त २, चर्मविकार १, अभिघात ज्वर १, दन्तोद्भेद ४, अर्श १, अंडकोषशोथ २, क्षुद्ररोग २०। इनके अतिरिक्त कार्यालय के ३०० कर्मचारियों की मुफ्त चिकित्सा की गई।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० झाँसी द्वारा संचालित धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र मुहल्ला खत्रियाना में जून १९५८ में १७८३ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई, जिसमें नये आये हुए रोगी ४७६ थे जिनका रोगानुसार विवरण निम्न प्रकार से है।

उदर रोग ७, अतिसार २५, ज्वर १०५, ज्वरकास २९, क्षय ४, वातरक्त ३६, उष्णवात ८, कास २८, यकृतोदर २६, २६, श्वेत प्रदर २२, वातरोग १४, ज्वर प्रतिश्याय १०, उदरशूल ९, धातुदौर्बल्य १३, रक्तपित्त ३, कष्टार्तव ३, व्रण ३, प्रतिश्याय १७, अजीर्ण ११, ग्रन्थि वृद्धि ६, अर्श ४, ज्वरातिसार ८, आमातिसार १०, श्वास १४, यकृत ४, शिरःशूल ९, मसूरिका १, मूत्रकृच्छ्र १, संग्रहणी ४, अग्निमांद्य ४, विष्टम्भ २, रक्तस्राव १, वृक्कशूल १, अंडवृद्धि ३, हृद्दौर्बल्य २, कृमिरोग १, गर्भस्राव १, क्षुद्ररोग १९।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० झाँसी द्वारा संचालित श्री धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र मुहल्ला खत्रियाना में गत मई मास में (१९५८) १९९१ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई जिसमें नये ५९८, पुराने १३९७ रोगी आये। नये रोगियों का रोगानुसार विवरण निम्न प्रकार से है।

ज्वर ११२, मन्दाग्नि १४, ज्वरकास ५८, कास ३२, वातरोग २०, धातुदौर्बल्य १५, अतिसार २९, जीर्णज्वर ३, उदररोग ४, कृमिरोग २, श्वास २६, क्षय १, ज्वर प्रतिश्याय ५४, शिरःशूल ९, रक्तार्श १०, प्रदर २०, उदर शूल १३, यकृत १६, ज्वरातिसार २२, वातरक्त २४, कष्टार्तव ७, पार्श्वशूल ५, ग्रन्थिवृद्धि ३, विष्टम्भ ८, रक्तपित्त ५, शोथ १, मसूरिका १, आमातिसार ८, हृदयदौर्बल्य ३, क्षुद्ररोग ४१।

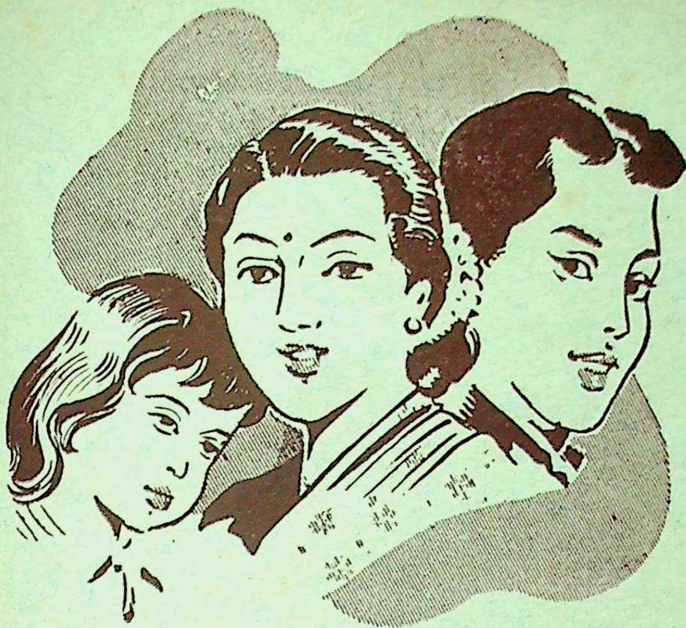
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० झाँसी द्वारा संचालित श्री धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र मुहल्ला खत्रियाना में गत अप्रेल १९५८ में २४६० रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई। नये रोगियों का रोगानुसार विवरण निम्न प्रकार से है।

ज्वर ५८, रक्तपित्त ५, ज्वर प्रतिश्याय ३९, ज्वरातिसार ४७, अतिसार २०, अग्निमांद्य २० प्रदर, ४३, आमातिसार ५, कास २६, ज्वरकास १२१, ज्वरशूल ४, कर्णरोग इत्यादि २३, वातरोग १५, वातरक्त ३३, गर्भाशय शूल २, उपदंश १, पार्श्वशूल १, मंदाग्नि १, कष्टार्तव ६, श्वासकास १५, आघात १, प्रतिश्याय १४, शिरोरोग ८, अजीर्ण ४, यकृतवृद्धि १३, कृमिरोग ४, धातुदौर्बल्य १८, उष्णवात १०, व्रण ३, दुर्बलता ३, संग्रहणी ४, आध्मान ३, विष्टम्भ २, गलगण्ड १, मसूरिका १, अर्श ५, गर्भस्राव १, मूत्रकृच्छ्र ३, अम्लपित्त ४, श्लीपद २, शेष अन्य रोग।

बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, नागपुर

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा संचालित धर्मार्थ औषधालय वॉकर रोड नागपुर में गत मई १९५८ में २९२३ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई, जिनमें ५०६ नये और २४१७ पुरातन रोगी आये। विवरण निम्नलिखित है—

ज्वर ५९, जीर्णज्वर ८, विषमज्वर ११, अतिसार २५, ज्वरातिसार ८, आमातिसार ७, प्रवाहिका ३, संग्रहणी ३, उदररोग १८, अम्लपित्त ६, रक्त ४, आनाह ७, अजीर्ण १०, कास २८, श्वास ५, प्रतिश्याय २०, उष्णता ४, मुखपाक ४, शिरःशूल ११, यकृतविकार ५, कृमिविकार ९, नेत्रविकार ११, दन्तपीड़ा ७, कर्णविकार ८, गुल्म २, गलगंड २, वातविकार २३, आमवात ५, भ्रम ४, हृदयदौर्बल्य ४, आघात ३, पामा (रक्तविकार) ३५, दौर्बल्य ६, अर्श ३, प्रमेह १०, प्रदरविकार १२, रक्तपित्त ५, सर्दी ५, सूतिकाविकार ३, मन्दाग्नि १२, उपदंश २, शोथ ३, आर्तव ४, नष्टार्तव २, रजोवरोध ३, श्लीपद २, चेचक ६, हृदयकास ७, श्लेष्मावृद्धि ४, अंगमर्द ३, पक्षाघात २, हिक्का ३, पाददाह २, सुखंडी ७, पांडु ३, पीनस २, बालरोग ५, व्रण ३, विविध २६।



बैद्यनाथ च्यवनप्राश कफ-खाँसी-नाशक एक औषधि-मात्र नहीं है। यह परम पुष्टिकारक रसायन भी है। इसका सेवन बालक, वृद्ध और युवा—सभी उम्र के लोग—सब समय कर अपने शरीर को स्वस्थ बनाये रखने में सक्षम होते हैं। आप भी इसका सेवन करें और जीवन के आनन्द से सदैव भरे-पूरे रहें।

सब समय, सबके लिये सेवनीय

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अष्टवर्गयुक्त



श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

देशी दवाओं का सब से बड़ा और विश्वासी कारखाना

कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

'सचित्र आयुर्वेद' के पाठकों को सूचना

भारत की निजस्व चिकित्सा-पद्धति––आयुर्वेद के विकास और प्रतिसंस्कार के साथ-साथ राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के गौरवपूर्ण आसन पर आयुर्वेद को पुनः प्रतिष्ठित कराने की दिशा में "सचित्र आयुर्वेद" पिछले १० वर्षों से पूरी सचाई, ईमानदारी तथा लगन के साथ संलग्न है। आयुर्वेद-जगत के इस सर्वाधिक प्रचारित और सर्वजन प्रशंसित वैज्ञानिक पत्रिका ––सचित्र आयुर्वेद की सर्वश्रेष्ठता को सभी लोगों ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है और इसमें प्रकाशित लेखादि की आयुर्वेद-जगत एवं सरकारी क्षेत्रों में समान रूप से कद्र हो रही है।

'सचित्र आयुर्वेद' का एकमात्र लक्ष्य आयुर्वेद-पद्धति को राष्ट्रीय चिकित्सा के रूप में मान्य कराना एवं वैद्य समुदाय के सामाजिक और आर्थिक स्तर को समुन्नत बनाना है। इस लक्ष्य की पूर्ति की दिशा में 'सचित्र आयुर्वेद' शुरू से ही प्रयत्न करता आ रहा है और अपने कर्तव्य-पथ पर अविचलित रहने के लिए कृतसंकल्प है। अब, इस तथ्य को सर्वत्र स्वीकार किया जा चुका है कि आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा-पद्धति में विशेष पार्थक्य नहीं है और यूनानी पद्धति का मूल आयुर्वेद ही है। सरकार ने भी आयुर्वेद-यूनानी को एक ही भारतीय चिकित्सा-पद्धति स्वीकार की है। अतएव, इन दोनों पद्धतियों के सम्बन्ध में विशद विवेचन होना वांछनीय है।

आयुर्वेद-यूनानी पद्धतियों के पारस्परिक महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध को ध्यान में रखकर **'सचित्र आयुर्वेद' का एक विशेषांक आगामी जून '५८ में** प्रकाशित करने का विचार किया जा रहा है, जिसमें उभय चिकित्सा-पद्धतियों के समन्वयात्मक स्वरूप के विषय पर देश के प्रमुख विद्वानों के विवेचनात्मक निबन्ध प्रकाशित किए जायँगे। इस विशेषांक के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना आगामी अंकों में प्रकाशित की जायगी। 'सचित्र आयुर्वेद' के सभी ग्राहकों को यह विशेषांक मुफ्त दिया जायगा। अतएव, जिन ग्राहकों के चन्दे का रुपया अबतक कार्यलय में नहीं आया है, वे अविलम्ब रुपया भेजकर ग्राहक बन जायँ तथा इस महत्त्वपूर्ण विशेषांक की प्राप्ति को सुनिश्चित बना लें।

ग्राहकों को नया कैलेण्डर मुफ्त

'सचित्र आयुर्वेद' के ग्राहकों को नये वर्ष का सुन्दर बहुरंगा कैलेण्डर भी मुफ्त दिया जायगा। ऐसी आशा है कि जनवरी '५८ के अन्त तक ग्राहकों के पास नया कैलेण्डर अवश्य पहुँच जायगा।

– सम्पादक

सम्पादक—कामेश्वर शर्मा 'कमल'

विषय-सूची

वार्षिक मूल्य ५)   एक प्रति ।।) (५० नये पैसे)

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होनेवाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख-मासिक पत्र



सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष १० | कलकत्ता, जनवरी, १९५८ | अंक ७

'सचित्र आयुर्वेद' के विज्ञ पाठकों से

आपको विदित ही है कि आपका 'सचित्र आयुर्वेद' बहुत दिनों से, इस माँग को आयुर्वेद-जगत् में एक आन्दोलन के रूप में उठाता आ रहा है कि राजधानी दिल्ली में केवल वैद्य समाज के प्रयत्न पर आधारित एक सर्वांगपूर्ण आदर्श "आयुर्वेद महाविद्यालय" की स्थापना होनी चाहिए। १९५२ में आयुर्वेद विश्वविद्यालय योजना के आकस्मिक अन्त पर दुःखी होकर 'सचित्र आयुर्वेद' ने तथ्यों पर प्रकाश डालने के लिए एक-दो लेख प्रकाशित किये थे, जिनके कारण उसको एक ऐसे विनाशक मुकदमे में उलझ जाना पड़ा जो उसके लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन गया। वस्तुतः उस समग्र विपत्ति का कारण ही विद्यालय स्थापित न होना था। इस प्रकार ऐसे महाविद्यालय के लिए आन्दोलन करना "सचित्र आयुर्वेद" के लिए स्वाभाविक था। बड़े हर्ष की बात है कि हमारे प्रयास पर आयुर्वेद-जगत् का ध्यान गया और स्थायी समिति एवं विद्यापीठ प्रबन्धक समिति के विगत अधिवेशन में, दिल्ली में शीघ्र ही **अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय स्थापित करने का निश्चय कर लिया गया है।** वैद्य समाज में इस कार्य के लिए उत्साहपूर्ण सहयोग का वातावरण है। सब ओर से महाविद्यालय के निमित्त आर्थिक सहायता प्राप्त होने की स्थिति है। **'सचित्र आयुर्वेद' के संचालकों ने महाविद्यालय के लिए पांच सौ रुपया मासिक देने का संकल्प किया है।**

अपने कृपालु पाठकों के सहारे ही हमने इस प्रश्न को आन्दोलन के रूप में आगे बढ़ाया था। आयुर्वेदोत्थान के इस पुण्य यज्ञ में हम आशा करते हैं कि हमारे कृपालु पाठकगण मुक्तहस्त होकर सहायता प्रदान करेंगे। महाविद्यालय के हेतु द्रव्य-संग्रह के लिए विश्वस्त समिति बन जाने पर हम 'सचित्र आयुर्वेद महाविद्यालय कोष' की स्थापना करेंगे और उसमें दान देने के लिए पाठकों तथा आयुर्वेद-हितैषियों से प्रार्थना करेंगे।

—सम्पादक।

आयुर्वेद महासम्मेलन-सदस्यों की सेवा में

कृतज्ञता-ज्ञापन

सम्मान्य महोदय,

सादर नमस्कार !

आयुर्वेद महासम्मेलन-स्थायी समिति एवं विद्यापीठ केन्द्रीय प्रबन्धक समिति के २७-२८ नवम्बर को नियोजित दिल्ली अधिवेशनों के अवसर पर गत १७-११-५७ को अपना एक नम्र-निवेदन मैंने आपकी सेवा में प्रस्तुत किया था और यह आग्रह किया था कि उक्त अधिवेशनों में अधिकाधिक संख्या में एकत्र होकर आप रचनात्मक कार्यों की यथार्थ योजनाओं को कार्य रूप में परिणत करने में भरपूर बल प्रदान करें।

मुझे बहुत परिताप है कि आप सबसे अधिवेशन में आने का उद्बोधन करके, मैं स्वयं उस महत्त्वपूर्ण अवसर पर दिल्ली न पहुँच सका। एक अति दुःखद घटना ने मुझे अस्तव्यस्त कर दिया। उन्हीं दिनों में मेरे अग्रज पण्डित रामकरण जी जोशी के युवक पौत्र का देहावसान हो जाने के कारण मैं विवश हो गया था।

मेरे उस साधारण से निवेदन पर महासम्मेलन के माननीय सदस्यों ने, निश्चय ही, आशा से अधिक कृपा दिखायी। मेरे निवेदन के उत्तर में सैकड़ों पत्र मुझको मिले हैं, जिनमें सदस्यों की सुरुचि के साथ ही, उत्साह की वह अभिनन्दनीय भावना निहित है; जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि आज आयुर्वेद-क्षेत्र में रचनात्मक कार्य करने के इच्छा-संकल्पों की निष्ठा महासम्मेलन-सदस्यों में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। बड़ी संख्या में सदस्यों ने दिल्ली में भाग लेकर स्थायी समिति के गत अधिवेशन को ऐतिहासिक महत्त्व प्रदान किया। जो माननीय सदस्य स्वयं नहीं पधार सके, उन्होंने मुख्य विषयों पर अपनी बहुमूल्य सम्मतियां भेजीं। बहुत सदस्यों ने अपनी सम्मति की प्रतियाँ कृपा करके मेरे पास भी भेजी हैं। कुछ महानुभावों के ऐसे भी पत्र मेरे पास आये हैं—जिनमें लिखा है कि महासम्मेलन की वर्तमान अवस्था से वे अत्यन्त दुःखी एवं निराश हैं, इस कारण उसमें भाग नहीं लेना चाहते। कुछ ठोस कार्य होने लगे, तो वे अपना सक्रिय सहयोग देंगे, ऐसा उन पत्रों में आश्वासन भी है। जो माननीय सदस्यगण मेरे निवेदन पर कृपा करके दिल्ली पधारे, जिन्होंने अपनी बहुमूल्य सम्मति भेजी और जिन्होंने उत्साहवर्द्धक पत्रोत्तर दिये, उन सबके प्रति, मैं पृथक्-पृथक् उत्तर न देकर, यह ज्ञापन उनकी सेवा में प्रस्तुत करके अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

दिल्ली में अनुष्ठित अधिवेशनों की कार्यवाही का जो विवरण मुझको मिला है, वह अत्यधिक सन्तोषजनक है। स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि वहाँ उपस्थित हुए पच्चानवे प्रतिशत लोगों का दृष्टिकोण वास्तविक, सृजनात्मक और आयुर्वेद के लिए भरपूर हितचिन्तन पूर्ण था। जैसा उत्साह इस अवसर पर लोगों ने दिखाया, उससे यह कहा जा सकता है कि महासम्मेलन में नवजीवन-संचार करने के लिये, उसके सदस्यगण दृढ़प्रतिज्ञ प्रतीत होते हैं। महासम्मेलन के इतिहास में स्थायी समिति का यह, कदाचित् एकमात्र, ऐसा अधिवेशन हुआ है जिसमें प्रायः डेढ़ सौ सदस्यों की उपस्थिति हुई है। जब कि ऐसे उदाहरण भी हैं कि महासम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों में तक २०-२५ सदस्यों ने भाग लिया। इस प्रकार स्थायी समिति के गत अधिवेशन का महत्त्व अद्वितीय है। जैसी कि मेरी कामना थी, दिल्ली में विद्यापीठ की ओर से आयुर्वेद महाविद्यालय स्थापित करने का निश्चय तो हो ही गया, महासम्मेलन का आगामी वार्षिक अधिवेशन भी दिल्ली में करने का निश्चय किया गया। यह दोनों ही बातें, महासम्मेलन और आयुर्वेद के उज्ज्वल भविष्य की दृष्टि से अत्यधिक कल्याणकर हैं। प्रमुखतः दिल्ली के वैद्यों ने इस अवसर पर जो सक्रियता एवं उत्साह का वातावरण प्रस्तुत किया, वह अनुकरणीय और अभिनन्दनीय है। आगामी वार्षिक अधिवेशन का भार उन्होंने अपने सबल कन्धों पर जिस साहस के साथ लिया है, मुझे विश्वास है कि सुदृढ़ एवं व्यवस्थित संगठन तथा यथार्थ कार्यप्रणाली की दृष्टि से, वे महासम्मेलन में युगान्तर उपस्थित करने में सर्वथा समर्थ हो सकेंगे। भारत की राजधानी दिल्ली में आगामी वार्षिक अधिवेशन का आयोजन बहुत

महत्त्वपूर्ण है। मुख्यतः आज की परिस्थितियों में केन्द्र में आयोजित आयुर्वेद सम्बन्धी प्रत्येक रचनात्मक गतिविधि, प्रचार और प्रभाव की दृष्टि से, बहुत ही हितकारी और सुफलप्रद होगी। राजकीय क्षेत्र में जो माननीय नेतागण आयुर्वेद के पक्ष में हार्दिक सहानुभूति रखते हैं, केन्द्र में आयोजित हमारे यथार्थ कार्यों से उन्हें बल और उत्साह मिलेगा, तथा जो राजकीय प्रभावशाली पक्ष हमारा कुछ सक्रिय कार्य देखकर ही आयुर्वेद के लिए कुछ करने की इच्छा रखता है, वह प्रभावित और प्रेरित होगा। इस दृष्टि से वार्षिक अधिवेशन और महाविद्यालय दोनों का आयोजन दिल्ली में करने का निश्चय सब प्रकार से युक्तिपूर्ण है, और उसके निश्चयकर्ताओं को मैं हार्दिक बधाई देता हूँ।

विद्यापीठ की ओर से महाविद्यालय संचालित करने की कामना कोई नयी नहीं है। वैद्य समाज पिछले अनेक वर्षों से लालसापूर्वक इसकी बाट जोह रहा है। बहुत काल से मेरी इच्छा रही है कि यह महत्त्वपूर्ण आयोजन राजधानी दिल्ली में ही किया जाय और वहाँ विद्यापीठ की ओर से एक ऐसे सर्वांगपूर्ण आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना हो, जिसके पाठ्यक्रम, संचालन और रीति-नीति का निर्धारण, सर्वथा वैद्यों द्वारा स्वतन्त्र रूप से किया जाय। अपनी इस इच्छा के सम्बन्ध में मैंने अपने गत जून मास के वक्तव्य में निवेदन किया और उसके उपरान्त स्थान-स्थान पर हुई सभाओं में बार-बार अपने निवेदन को दोहराया। दिल्ली के वैद्य-बन्धुओं से आगे बढ़कर कार्य को हाथ में लेने की प्रार्थना की। मैं कह सकता हूँ कि मैंने सर्वत्र ही ऐसे महाविद्यालय के विषय में वैद्य समाज में अभूतपूर्व और वास्तविक उत्साह पाया है। इसी आधार पर विद्वद्वर कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी से विद्यापीठ में एक योजना प्रस्तुत करने का आग्रह किया। और तदर्थ ही आप सदस्य महानुभावों से उसको दिल्ली में स्वीकृत करने एवं कार्यान्वित करने के निमित्त नम्र निवेदन किया था।

इस योजना के भारी बहुमत से स्वीकार होने पर जहाँ मुझे आप सदस्य महानुभावों की कृपा के संवल के लिए हर्ष और सन्तोष है, वहाँ दिल्ली के विवरण में यह जानकर आत्मिक क्लेश भी हुआ कि कुछ माननीय व्यक्तियों ने अधिवेशन में महाविद्यालय के महत्त्वपूर्ण कार्य को टालने का भी भरसक प्रयत्न किया। महाविद्यालय के हेतु दिल्ली से पृथक अन्य जगहें देखने और विचार करने पर बल दिया तथा वार्षिक अधिवेशन के निमित्त दिल्ली के बजाय जगन्नाथ-पुरी को ही स्वीकार करने का दृढ़तर आग्रह किया। यहीं पर यह सन्देह प्रबल हो जाता है कि महासम्मेलन और विद्यापीठ में जिन लोगों का स्वार्थ निहित है, वे केवल प्रचार के लिए विद्यालय आदि की चर्चा तो करते हैं, परन्तु वास्तव में वे उसको कार्यान्वित करना नहीं चाहते। यह बात कल्पना में नहीं आती कि जो लोग आयुर्वेद के हितेच्छु महारथी होने का दावा करते नहीं अघाते, वे ही यथार्थ कार्य होने में रोड़े अटकाते हैं, दिल्ली अधिवेशनों में यह बात प्रकट रूप में देखने में आयी। दिल्ली में विद्यापीठ के महाविद्यालय स्थापित न करने के पक्ष में कोई सबल तर्क बुद्धि में नहीं आता। प्रत्युत उसका अकाट्य महत्त्व सुविदित है, फिर भी क्यों लोग इस कार्य में रोड़े अटकाते हैं और क्यों दिल्ली में सम्मेलन नहीं होने देना चाहते—यह बात समझ में नहीं आती। बन्धुवर पण्डित शिवशर्मा जी ने सदा की भाँति इस अवसर पर भी अपनी कूटनीति और वाक् चतुरता का भरपूर प्रयोग करने में कसर नहीं रखी। उन्हें भरोसा था कि पटियाला से तदर्थ भरकर लाये गये वैद्यबन्धु उनका अन्ध समर्थन करेंगे, परन्तु पटियाला के बन्धुओं ने अपना स्वाभाविक विवेक नहीं त्यागा और वे तटस्थ रहे। प्रस्तुत परिस्थिति को देखकर सत्य के लिए उन भाइयों ने जिस उदारता का परिचय दिया, वह सम्माननीय है। मान्य श्री केशवप्रसाद जी आत्रेय ने इस अधिवेशन में दिल्ली में ही विद्यालय हो और दिल्ली में ही सम्मेलन—इस पक्ष में अपना प्रकट अभिमत व्यक्त करके एक वर्ग विशेष को भले ही आश्चर्यचकित किया हो, परन्तु कहा जा सकता है कि वह उनकी सदाशयता का ही परिचायक है।

सब मिलाकर यह कहना पर्याप्त होगा कि अब बहुसंख्यक वैद्य समाज यह समझने लगा है कि बिना क्रियात्मक कार्य किये उसका अस्तित्व असंदिग्ध नहीं है। महासम्मेलन का पदासीन दल अपने चातुर्य से अब भी इन योजनाओं को टालने के उपक्रम में सक्रिय हो सकता है, परन्तु जाग्रत वैद्य समाज बहुत ही उत्साहपूर्ण वातावरण में है और समय की यह मांग है कि इन आयोजनाओं को टाला नहीं जाना चाहिए। कुछ बन्धु यद्यपि 'कहना कुछ और करना कुछ' की अपनी पुरानी परिपाटी पर ही चलना चाहते हैं—परन्तु महासम्मेलन के उत्साही और जाग्रत सदस्यगण ऐसा

नहीं होने देंगे, इसका मुझे पूरा भरोसा है। बन्धुवर श्री सीतारामजी मिश्र महाविद्यालय-योजना की सफलता के लिए विद्यापीठ मन्त्री होने के नाते यथेष्ट प्रयत्नशील दिखायी देते हैं। दिखाऊ काम करने वाले कुछ व्यक्ति यदि उनको भी अपने जैसा बनाने के प्रयत्न में सफल न हुए तो श्री मिश्र जी के प्रयत्न यथार्थ सिद्ध होंगे और उनका कार्यकाल एक महत्त्व के श्रेय का भागी होगा।

यह निश्चित है कि दिल्ली-सम्मेलन के अवसर पर महाविद्यालय के हेतु अभूतपूर्व सहयोग मिलेगा। आज वैद्यों में इसके लिए अन्यतम उत्साह है। कुछ लोगों ने मुझे पत्रोत्तरों में मासिक चन्दा देने का आश्वासन दिया है। दिल्ली के वैद्यगण केवल दिल्ली से कम से कम पचास हजार रुपया एकत्र करने की आशा रखते हैं, सब मिलाकर एक लाख रुपया एकत्र हो जाना संभव है। दिल्ली-सम्मेलन पर ही दिल्ली में महाविद्यालय का उद्घाटन और शुभारंभ किया जाय—यह मेरी प्रार्थना है।

अन्त में, सबसे पहले मैं उन भाइयों से अति विनम्र निवेदन करना चाहूँगा, जो, किन्हीं कारणों से ही सही, दिल्ली में विद्यालय और सम्मेलन करने का विरोध करते हैं, कि वे सम्पूर्ण वैद्य समाज पर कृपा करके, कम से कम एक बार, सद्विवेक से काम लेवें। आयुर्वेद के नाम पर मैं उनसे अपील करता हूँ कि पारस्परिक विवादों को, व्यक्तिगत हितों को और अपनी ही बात रखने की प्रवृत्ति को वे इस अवसर पर कृपा करके भुला दें और दुनियाँ को दिखा दें कि हम आपस में लड़ने वाले भी, अपने सामूहिक हित के लिए एक होकर कुछ कर सकते हैं। जो जीवन भर आयुर्वेद-हित-कार्य करने की बातें करते रहे हैं, मेरी उनसे विनय है कि वे एकबार दिल्ली के इन आयोजित यज्ञों में, सारे मतभेदों को भुलाकर, अपना सच्चा और उत्साहपूर्ण सहयोग प्रदान करें। उनकी इस कृपा के लिए भी सारा आयुर्वेद-जगत् सदा कृतज्ञ रहेगा और इस कार्य की सफलता से जो महत् आयोजन होगा, वह उनकी उदारता का स्मारक होगा।

दिल्ली में महाविद्यालय और महासम्मेलन का आयोजन निश्चय ही दिल्ली के वैद्य-बन्धुओं के साहस की, संगठन और कार्यशीलता की कसौटी है; उनसे मेरा निवेदन है कि वे विशेष उत्साह से अभी से सक्रिय हो जावें और इस बात का भरपूर प्रयत्न करें कि समस्त असुविधाओं और विरोधाभासों को सफलता के साथ पार करके वे एक साथ ही महासम्मेलन एवं महाविद्यालय के आयोजनों को ऐसे सुव्यवस्थित रूप में सम्पादित करने में सफल हो सकें, जो सदा के लिए अच्छा उदाहरण बन जाय।

अन्त में महासम्मेलन के समस्त माननीय सदस्यों और सम्पूर्ण आयुर्वेद-जगत् से मेरा पुनः विनम्र निवेदन है कि इस अवसर पर अनुकूल परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस बात के लिए सतर्क रहें कि हमारे अधिकारी वर्ग अविवेकवश पहिले की भाँति इस बार भी दिल्ली अधिवेशनों के निर्णयों को कार्यरूप देने में किसी प्रकार की टाल-टूल या ढील-ढाल करने की नीति न अपना सकें। सदस्यगण यदि ध्यान रखेंगे तो अधिकारी वर्ग आसानी से जनमत की उपेक्षा करने का दुःसाहस नहीं कर सकेंगे।

मुख्यतः महाविद्यालय-योजना में भरपूर सहयोग देने के लिए मैं प्रत्येक वैद्य से निवेदन करता हूँ। आयुर्वेद की कीर्ति-रक्षा के लिए यह योजना महत्त्वपूर्ण है, इसलिए प्रत्येक वैद्य इसमें मुक्त हस्त होकर स्वयं दान दे और दूसरों को प्रोत्साहित करके दिलावें। कण-कण के एकत्रीकरण से एक विशाल स्तम्भ बनेगा, जिसमें प्रत्येक कण का अपना महत्त्व होगा। वैद्यों से प्रार्थना है कि वे कृपाकर अपने सहयोग के विषय में पत्रोत्तर द्वारा सूचित करके उपकृत करें।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन
प्रा० लि० गुसाईपुरा, झाँसी

विनयावनत
रामनारायण वैद्य



जनस्वास्थ्य और दूध

एक दिन हमारे एक मित्र आकर बोले, 'मैंने एक अटूट प्रतिज्ञा कर ली है, आप भी कीजिए ! हम दोनों अपने निश्चय को निभाने में परस्पर सहकारिता की नीति अपनावें और एक-दूसरे की निगरानी भी रखें।'

जिज्ञासा भरी आँखों से हम मित्र का मुंह देखने लगे कि कौन-सा गढ़ तोड़ने की प्रतिज्ञा कर बैठे हमारे भाई ! फिर वे तुरन्त बोले 'हमारे देश के माननीय स्वास्थ्य मंत्री जी ने गवेषणा के तथ्यों के आधार पर कहा है कि धूम्रपान से और तम्बाकू के प्रयोग से फेफड़े का कैंसर होने की आशंका बढ़ जाती है—हमें तम्बाकू छोड़ देनी चाहिए। मैंने तो प्रतिज्ञा कर ली है कि कभी धूम्रपान नहीं करूँगा।'

हमारे मित्र धूम्रपान करते थे और हम तम्बाकू खाते थे। पहिले हमारा मत यह था कि तम्बाकू खाना अच्छा—पीना खराब। और हमारे मित्र का मत यह था कि पीना अच्छा, खाना खराब। दोनों के मत एक दूसरे से टकराते रहते थे, पर ढीला कोई नहीं पड़ता था। स्वास्थ्य मंत्री के एक वाक्य ने हमारे मित्र के मत को तो ढेर ही कर दिया था। हमारा मत मित्र की चपेट में था। निदान हम दोनों के मत पर स्वास्थ्य मंत्री के वाक्य ने विजय पायी। पीना-खाना दोनों बुरे।—यह निष्कर्ष लेकर हम लोगों ने परस्पर निश्चय कर लिए और तब से हम माननीय स्वास्थ्य मंत्री के वाक्य और अपने निश्चय दोनों के घोल को मिलनेवालों पर ढाला करते हैं।

यह घटना इस बात का उदाहरण है कि व्यावहारिक दृष्टि से, हमारे माननीय मन्त्रियों और नेताओं का कितना गहरा प्रभाव पड़ता है। अभी हाल की बात है मान्य श्री नेहरू जी के कहने से प्रभावित होकर सन्तप्रवर विनोवा भावे ने चावल खाना छोड़ दिया। राष्ट्रपति भवन में चावल का उपयोग ही स्थगित कर दिया गया है। नेताओं के वाक्यों से होने वाले प्रभाव के यह तो ऐसे उदाहरण है जो बड़ों की बात होने के कारण अखबारों से हमारे सामने आ गये। सामान्य जनता के कितनों ही ने इन उद्बोधनों का अनुसरण किया होगा—जिनका पता नहीं।

निश्चय ही माननीय व्यक्तियों के सन्देशों का जन-मानस पर गंभीर प्रभाव पड़ता है और जनता का एक अंश अवश्य ही उनका अनुकरण करता है। ऐसी स्थिति में क्या यह वांछनीय नहीं है कि हमारे माननीय जननेतागण अपने इस प्रभाव का उपयोग सदाशयों में ही करने की वृत्ति अपनायें। हाल ही में हमारे राष्ट्रनायक पण्डित नेहरू जी ने दो विचित्र बातें कहीं हैं: एक तो यह कि स्वास्थ्य के लिए दूध आवश्यक नहीं है और दूसरी यह कि यज्ञ हवन इत्यादि बन्द कर दिये जाने चाहिए। पहली बात के प्रमाण में उन्होंने किसी चीनी वैज्ञानिक का उल्लेख किया है और दूसरी बात का आधार खाद्यान्न की रक्षा करना बतलाया है।

राष्ट्रनायक की इन दो छोटी-छोटी बातों पर जब हमने सोचा तो हमें ऐसा लगा कि यह दोनों ही बातें राजनैतिक महत्त्व को ध्यान में रखकर कही गयी है। पहली का निशाना है: गो हत्या निरोध के लिए चलने वाला आन्दोलन और दूसरी का लक्ष्य है: समाज की सांस्कारिक रूढ़ियों पर चोट। हवन और यज्ञ अब होते भी कहाँ कितने हैं? नाममात्र के यदि कहीं होते भी हैं तो उनको रोकने से कितने खाद्यान्न की रक्षा हो सकती है? स्वास्थ्य के लिए दूध को अनावश्यक बताते हुए नेहरूजी ने यहाँ तक कहा कि चीनी जनता में रोग से लड़ने की शक्ति दूध छोड़ने के कारण ही बढ़ी है।

हम यहाँ राष्ट्रनायकों से विनम्र निवेदन करना चाहेंगे कि वे अपने वक्तव्यों में कम से कम इतना ध्यान अवश्य रखा करें कि उनके राजनीतिक दृष्टिकोण को ऐसे वक्तव्यों से जहाँ बल तो मिलेगा थोड़ा सा, वहाँ समाज में नागरिक जीवन पर उसका अहितकर प्रभाव बहुत तो नहीं पड़ेगा?

किसी बात के राजनैतिक दृष्टिकोण से हमें कोई मतलब नहीं, परन्तु जहाँ हम देखते हैं कि राजनीति की चपेट में अनावश्यक ही साधारण जीवन की अन्य अनिवार्यताओं का चूर्ण किया जाने लगा है तो दुःख होता है। आज देश की जनता का स्वास्थ्य वैसे भी गिरावट पर है। सामान्य स्वास्थ्य की इस कमी का कारण हम अपने विचार से यही मानते हैं कि पहिले तो लोगों में स्वास्थ्य के प्रति सुरुचि

नहीं है ; दूसरे सुगठित स्वास्थ्य के लिए जिस पौष्टिक और सन्तुलित भोजन की अनिवार्य आवश्यकता है, उसकी ओर लोगों का ध्यान आकर्षित नहीं किया जाता। कृत्रिम रोग-रोधिनी शक्ति के उत्पादन के उपायों में तो लोगों को उलझाया जाता है, परन्तु भोजन के पौष्टिक तत्वों की मात्रा बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता। परिणामतः साधारण जनता का स्वास्थ्य कमजोर होता जा रहा है। उस पर भी राष्ट्रनायक नेहरूजी का यह उपदेश कि 'स्वास्थ्य के लिए दूध आवश्यक नहीं।'—क्या सामान्य जन की स्वास्थ्य के प्रति उपेक्षा वृत्ति को और भी अधिक गहरी बनाने का कारण नहीं बन जायगा? पौष्टिक पेय के नाम पर केवल दूध ही ऐसा रह गया है जिसका प्रचलन सर्वसाधारण में अभी थोड़ी बहुत मात्रा में अवशेष है। राष्ट्रनायक के उपदेश को मानकर और यह सोचकर कि चीनियों की तरह दूध छोड़ देने से रोग प्रतिरोधनी शक्ति बढ़ेगी, यदि लोग दूध के सेवन के प्रति भी उपेक्षित हो जावें—तो स्वास्थ्य की स्थिति पर इसका कितना अहितकर प्रभाव पड़ेगा, यह उपदेश देने वाले को सोचना चाहिए। और यह भी ध्यान में रहना चाहिए कि यह भारत है—चीन नहीं।

राष्ट्रनायक नेहरूजी के प्रत्येक शब्द का बहुत बड़ा महत्त्व है। विशेष कर भारत की जनता के लिए उनका हर वाक्य यही अर्थ रखता है कि प्रत्येक देशवासी उसको अपने जीवन में उतारने के लिए प्रवृत्त होवे। ऐसी दशा में माननीय नेहरू जी को अपनी बात को कहने के पूर्व उसके प्रभाव पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

यहाँ प्रसंगवश हम यदि यह निवेदन भी कर दें तो अपराध नहीं करेंगे कि हमारे नेतागण जनसाधारण से त्याग करने की बातों में तो विदेशों के उदाहरण दे देते हैं, परन्तु राष्ट्रीय जीवन को स्वस्थ बनाने की दिशा में विदेशी सरकारों का अनुसरण क्यों नहीं करते। स्वास्थ्य के लिए दूध को अनावश्यक बताते हुए पड़ोसी देश चीन का उदाहरण प्रस्तुत करके यहाँ तक कितना निःसंकोच कह दिया गया कि चीनी जनता में रोग से लड़ने की शक्ति दूध छोड़ने के कारण बढ़ी है। फिर यह बताने में क्यों कृपणता की गयी कि चीन में दूध को छोड़कर और किन पौष्टिक तत्त्वों को अपनाया गया है? क्या भारत की सरकार-चीन की भाँति उन अन्य पौष्टिक तत्त्वों को अपनी जनता को देने में समर्थ है? इसके अतिरिक्त केवल दूध छोड़ने में ही चीन की नकल करने का उपदेश देने के साथ ही यह क्यों भुला दिया जाता है कि चीन ने देश के स्वास्थ्य के लिए एक राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति अपनायी है। चीन में देशी औषधियों को ही सरकार ने सर्वाधिक प्रोत्साहन दिया है, जब कि भारत की न तो राष्ट्रीय स्तर पर कोई स्वास्थ्य नीति है और देशी चिकित्सा पद्धति के प्रति सरकार ने जिस अदूरदर्शिता को अख्तियार कर रखा है, वह तो किसी से छिपा नहीं है।

कहने के लिए यह साधारण सी बात थी, परन्तु जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, विशेषकर ऐसी अवस्था में जब कि भारत का साधारणजन, स्वाभाविक रूप से ही स्वास्थ्य रक्षण के प्रति उतना सचेष्ट नहीं है, जितना कि होना चाहिए प्रत्युत दुःखद रूप से उदासीन है, तो ऐसी कोई बात नहीं कही जानी चाहिए जिसके प्रभाव के परिणाम में स्वास्थ्य के विषय में जनता की रही-सही रुचि भी विरक्ति की ओर झुके।

यह बताया जाता है कि आज खाद्यान्न का स्पष्ट अभाव है। इतना गंभीर अभाव है कि उससे चिन्तित होकर हमारे प्रधान मंत्री घी-शकर-जौ-तिल इत्यादि से होने वाले यज्ञ-हवनों को भी समाप्त कर देने की सलाह देते हैं। खाद्यान्न के अभाव की इस गंभीर स्थिति को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया जाय तो फिर स्वास्थ्य को संरक्षित और संवर्द्धित करने के लिये केवल दूध ही पौष्टिक पदार्थ रह जाता है—विशेषकर भारत की धर्मारूढ़ अहिंसक जनता के लिए। यदि हमारे प्रधान मन्त्री उसको भी स्वास्थ्य के लिए अनावश्यक घोषित कर देते हैं तो फिर देश के नवनिर्माण के लिए अत्यधिक श्रम वे जिस जनता से कराना चाहते हैं, उसके स्वास्थ्य के लिए किस सुलभ और अन्य पौष्टिक पदार्थ को उपयोगी कहा जायगा?

यहां हम उन विचारवान सदस्य की हृदय से प्रशंसा करते हैं, जिन्होंने खाद्यान्न-कमी की समस्या के प्रसंग में दूध के उपयोग बढ़ाने का सुझाव दिया है और जिसके उत्तर में माननीय नेहरूजी ने अपनी उपर्युक्त व्यवस्था दी है।

कई कारणों से भारत की जनता भोजन के विषय में विदेशों की नकल नहीं कर सकती। विदेशों में अन्न कम खाया जाता है और शरीर को पौष्टिक तत्त्व देने के लिए अण्डा-मांस आदि का बहुतायत के साथ प्रयोग किया जाता है। हम स्वास्थ्य के संरक्षण और संवर्द्धन के महत्त्वपूर्ण

(शेषांश ६४४ पृष्ठ पर)

स्वास्थ्य-समस्या का समाधान कैसे हो !

वैद्य पं० रामनारायण शर्मा

भारत की विशाल जनसंख्या को सर्वत्र चिकित्सा की समान सुविधाएं प्रदान करने के लिए हमारी केन्द्रीय सरकार विचार रखती है और चिकित्सा सेवा के विस्तार में सबसे बड़ा अवरोध चिकित्सकों की कमी बतायी जाती है। सरकार इस कमी को पूरा करने के लिए प्रयास कर रही है। परन्तु सरकार के प्रयासों में सारा जोर इस बात पर लगाने में सक्रियता दिखायी जाती है कि बहुत बड़ी संख्या में डाक्टर तैयार करने के लिए जगह-जगह भोर कमेटी की योजना के अनुसार मेडिकल कालिज स्थापित किये जायं। इन मेडिकल कालिजों की स्थापना में यदि, यह कार्य विधिवत् किया जाता है तो करोड़ों रुपये का व्यय होना निश्चित है। और वह व्यय भी अधिकांश भारत में नहीं होगा, सामग्री और साधन यहाँ तक की पुस्तकें भी विदेशों की ही अनिवार्यतः होंगी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में जो विशाल धनराशि स्वास्थ्य सेवाओं के निमित्त निर्धारित की गयी है, यदि यही दृष्टिकोण रहता है तो उसका बहुत बड़ा अंश बड़ी संख्या में डाक्टर तैयार करने के लिए बड़े-बड़े मेडिकल कालिजों की स्थापना में ही व्यय हो जायगा और परिणाम में जनस्वास्थ्य समस्या का किंचित भी हल कदाचित् ही हो सकेगा। ऐसी अवस्था में जब कि आर्थिक साधनों की कमी के कारण योजना के निर्धारित लक्ष्यों पर पुर्नविचार करने की स्थिति है, सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित करना उचित होगा कि चिकित्सा सेवा के विस्तार के लिए सरकार इन बहुत खर्चीले और अनावश्यक मेडिकल कालिजों की स्थापना का विचार त्याग दे। इनके स्थान पर कम खर्च में ऐसे कालिजों की स्थापना को सम्पन्न किया जाय जिनमें आयुर्वेद-यूनानी की भारतीय प्रणाली के, नव्य विज्ञान के समन्वय से सुगठित, शिक्षण की व्यवस्था करके अधिकाधिक चिकित्सक तैयार किए जा सकें। जहाँ एक ही मेडिकल कालिज की रचना में प्रायः एक-डेढ़ करोड़ रुपया व्यय हो जाता है, वहाँ उस एक-डेढ़ करोड़ के व्यय में ही कम से कम बीस भारतीय चिकित्सा प्रणाली के श्रेष्ठतम विद्यालयों का आयोजन सुगमता के साथ हो सकता है और यह स्पष्ट निश्चित है कि एक मेडिकल कालिज जितने चिकित्सक तैयार करेगा, आयुर्वेद-यूनानी के विद्यालय उससे बीस गुने चिकित्सक तो प्रस्तुत करेंगे ही। इस प्रकार एक ओर तो योजना का व्यय-भार कम होगा, दूसरी ओर भारतीय प्रणालियों के चिकित्सकों की संख्या-वृद्धि से, स्वाभाविक ही उन करोड़ों रुपयों की धनराशि में उल्लेखनीय बचत होगी जो प्रतिवर्ष ही औषधियों के लिए विदेशों को जाती हैं। यह भी अनुभव सिद्ध है कि मेडिकल कालिजों से तैयार हुए डाक्टर अधिकांश शहरी जीवन का भार ही बनेंगे और देश के अति विस्तृत ग्रामीण क्षेत्र की स्वास्थ्य-समस्या ज्यों की त्यों बनी रहेगी। इसके विपरीत भारतीय प्रणाली से बने चिकित्सक स्वाभाविक रूप से ही देश की गरीब और ग्रामीण जनता के काम आवेंगे। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य चिकित्सा कार्यों का प्रबन्ध नितान्त आवश्यक है। उसके बिना बड़े से बड़े विकास कार्य और निर्माण योजनाओं की सफलता की आशा करना दुरुह कल्पना के समान है। ग्राम्यजीवन को स्वस्थ बनाने का कार्य आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा प्रणालियों के द्वारा और उनके ज्ञाता भारतीय चिकित्सकों के माध्यम से ही अधिकाधिक सफलता के साथ सम्पन्न किया जा सकता है। सरकार को इस वस्तु-स्थिति पर गंभीरता के साथ विचार करना चाहिए।

हाल ही में हमारे माननीय राष्ट्रपति जी ने अपने एक वक्तव्य में इस सर्वथा विचारपूर्ण बात की ओर देश का ध्यान आकृष्ट किया था कि जनता की स्वास्थ्य समस्याएं बड़ी संख्या में डाक्टर उत्पन्न करने से कदापि हल नहीं हो सकतीं। निश्चय ही जनता के स्वास्थ्य-संरक्षण में चिकित्सा विकास पर ही ध्यान केन्द्रित करना कदापि उपयोगी नहीं है और उसके लिए अधिक डाक्टर उत्पन्न करने का विचार भी तर्कसंगत नहीं है। जनता में बीमार हो जाने पर ही विवशता की दशा में दवा लेने और चिकित्सक की शरण जाने की वृत्ति का प्रभाव बढ़ गया है और स्वाभाविक रूप से स्वस्थ रहने की चेष्टा का स्पष्ट अभाव दिखाई देता है। डाक्टरों की भीड़ बढ़ाने से जनता की यह वृत्ति ही अधिक बढ़ेगी।

स्वाभाविक स्वास्थ्य के प्रति उदासीनता की दुःखद उपेक्षा-भावना का उन्मूलन जब तक नहीं किया जाता तब तक देश स्वस्थ बन सकेगा, यह कल्पना गलत है। देश में मृत्यु संख्या कम हो रही है, यह कहकर ऐसा मान लेना कि जनता का स्वास्थ्य ठीक हो रहा है, एक हास्यास्पद बात है। स्वास्थ्य रक्षा के पाश्चात्य तरीकों को अपनाने से कोई लाभ नहीं हुआ, यह इधर सौ वर्षों का अनुभव बता रहा है, जब कि भारतीय स्वास्थ्य सिद्धान्तों को जीवन में उतारकर देश का जन-मन पूर्ण स्वस्थ रह सका है, यह हमारा हजारों वर्ष का इतिहास सिद्ध करता है। आज की परस्थितियों में भी देश की जनता को स्वस्थ रखने के लिए भारतीय स्वास्थ्य सिद्धान्तों का अनुसरण उपयोगी, सरल और फलप्रद होगा। भारतीय स्वास्थ्य सिद्धान्त आयुर्वेद में सुरक्षित है। भारतीय प्रणालियों में दीक्षित चिकित्सक ही उन सिद्धान्तों के प्रतिपादन में सचेष्ट हो सकते हैं और जनता में उनका व्यापक प्रचार कर सकते हैं। इस दृष्टि से भी आयुर्वेद-यूनानी की शिक्षण पद्धति वाले विद्यालय खोलकर अल्प व्यय से ही अधिक मात्रा में भारतीय चिकित्सकों का उत्पादन ज्यादा श्रेयस्कर होगा, बजाय इसके कि करोड़ों रुपया व्यय करके मेडिकल कालिजों की योजना द्वारा कुछ डाक्टर बनाये जावें। इस तर्कसंगत सुझाव की ओर सरकार का ध्यान जाना चाहिए और जनता तथा जननेताओं को भी स्थिति की गंभीरता को अनुभव करके सरकार को इस दिशा में आकृष्ट करना चाहिए।

शेषांश] **सम्पादकीय** [६४२ पृष्ठ का

प्रश्न को ध्यान में रखते हुए अण्डा-मांस इत्यादि खाने का विरोध नहीं करते। निश्चय ही यदि इन पौष्टिक चीजों को बहुतायत से अपनाने की परम्परा भारत में नेहरूजी चला सकें तो खाद्यान्न का अभाव प्रतीत ही न हो। मूल बात तो यही है कि भारत में पौष्टिक तत्त्वों को अधिक मात्रा में लेने की वृत्ति लोगों में है नहीं और लोग शरीर को चलाने के लिए अन्न ही अधिक खाते हैं। देश में अन्न की अधिक खपत का यह एक कारण है। इस कारण को हटाने का सर्वमान्य हल यही हो सकता है कि जनता को अन्न कम खाने और उसके स्थान पर दूसरे ग्राह्य पौष्टिक तत्त्वों को उपयोग में लाने के लिए प्रभावपूर्ण ढंग से प्रेरित किया जाय। जो अण्डा-मांस खा सकते हैं—खावें। परन्तु जो किसी सांस्कारिक या धर्म-भावनावश यह चीजें नहीं खा सकते, उनके लिए भारत में दूध को छोड़कर कौन-सा पौष्टिक पदार्थ है? स्वास्थ्य विशारदों के विचार में भी विशेषतः भारतीय अहिंसा सिद्धान्त माननेवालों के लिए तो दूध ही सर्वस्व है। दैनिक कम से कम आधा सेर दूध अथवा एक छटांक शुद्ध घी (वेजिटेबिल नहीं!) तो स्वास्थ्य के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना जीवन के लिए वायु! चाय के अन्धाधुंध प्रचार से वैसे भी दुग्धपान का प्रचलन कम हो गया है, उस पर राष्ट्रनायक के इस विचार के प्रसार से तो दूध का उपयोग निःशेष ही हो जायगा। करोड़ों लोगों का, जो मांस-अण्डा आदि से सख्त परहेज करते हैं—पौष्टिक पदार्थ के अभाव में स्वास्थ्य कैसे टिकेगा? जननेताओं को इस महत्त्वपूर्ण बात पर ध्यान देना चाहिए।

और वैद्य जगत पर जनता को स्वास्थ्य-रक्षण में सचेष्ट रखने की जिम्मेवारी है, इसलिए उसको दूध छोड़ने जैसी अहितकर व्यवस्थाओं का प्रतिवाद करके जनता-जनार्दन की स्वास्थ्य-रक्षा के प्रति जागरूक होने का परिचय देना चाहिए।

आयुर्वेद-हित की स्वस्थ प्रतियोगिता के लिए—

आइये, अखाड़ा तैयार है !

श्री द्वारिकेश मिश्र

राजसत्ताओं के उत्थान-पतन और उथल-पुथल का औपन्यासिक इतिहास लिखते हुए एक बड़े लेखक ने अपनी पुस्तक के परिचय का आरम्भ इस प्रकार किया——

'कुछ लोगों का कहना है कि राजनीतिज्ञ वह जन्तु है, जो, बैठा तो रहता है पेड़ की ऊँचाई पर ; परन्तु कान लगाये रहता है नीचे की भूमि पर रेंगने और चलने-फिरनेवाले जीवों पर। जर्मनी का संगठन करनेवाले विख्यात विस्मार्क ने राजनीतिज्ञ और राजदर्शी में यह अन्तर बतलाया था कि राजनितिक आनेवाले चुनाव की चिन्ता में ग्रस्त रहता है ; परन्तु राजदर्शी आनेवाली पीढ़ी के कल्याण की बात सोचता रहता है। डेढ़ सौ वर्ष से ऊपर हो गए जब एक ने झुंझला कर कहा था कि यदि पदों का बंटवारा राजनीतिज्ञों के स्वयंसिद्ध अधिकार की बात है तो पद रिक्त हों कैसे ? पद रिक्त होता है या तो किसी अधिकारी की मृत्यु से——जो कभी-कभी ही होती है——या फिर पदत्याग से, परन्तु पदत्याग तो कोई करता नहीं। ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि राजदर्शी वह जो भेड़ के बाल काटे, और राजनीतिज्ञ वह जो भेड़ की खाल खींचने पर जुट पड़े !'

राजनीतिज्ञ और राजदर्शी की उक्त परिभाषाएं कांटे की तोल सच्ची तो हैं ही ; मनोरंजक भी हैं। सूक्ष्म दृष्टि से यदि देखा जाय तो आयुर्वेद जगत् में वैसे ही राजनीतिज्ञ भी हैं और राजदर्शी भी ! और इन दोनों प्रकारों के बीच में ऋषि-प्रणीत वेदोक्त आयुर्वेद का भविष्य झूल रहा है। वैद्य समाज के हित इधर-उधर टकरा रहे हैं ! राजनीतिज्ञ प्रकार के लोगों ने आयुर्वेद की गर्दन पकड़ रखी है और ऐसा लगता है, जैसे वे वास्तव में खाल खींचने पर जुट पड़े हों। छोड़ने का वे नाम भी लेने को तैयार नहीं ; चाहे फ़ज़ीहत कितनी भी हो जाय ! राजनीतिज्ञ जो ठहरे !

परन्तु इस प्रकार की खींचतान में आयुर्वेद का उसके घर में ही जो पतन हो रहा है और वैद्य-समाज के हितों के साथ जो अनहोनी हो रही है, वह दुःखद है। आयुर्वेद-जगत् का नेतृवर्ग यदि और कुछ दिनों अपने इसी स्वभाव-सुलभ खेल का अभ्यास करता रहा तो कहा नहीं जा सकता कि भविष्य क्या होगा।

जिन्हें कुछ कार्य करना चाहिए वे दिखावा मात्र करके कर्त्तव्य की इतिश्री कर देते हैं, और दूसरों को करने देते नहीं ; फिर काम कैसे चले ? कुछ नहीं मिलता तो आड़ लेने के लिए कोई विवाद ही ले खड़े होते हैं, और व्यक्तियों के निज की महत्वाकांक्षा से टकरानेवाले आपसी विवाद सम्पूर्ण समाज के हितकार्यों में बाधक बना दिये जाते हैं ; यद्यपि ऐसा होना नहीं चाहिए, परन्तु फिर राजनीतिज्ञ का चातुर्य ही क्या ?

हाल ही में दिल्ली में स्थायी समिति एवं विद्यापीठ प्रबन्धक-समिति के अधिवेशनों के अवसर पर कुछ ऐसा वातावरण बनाने का प्रयास किया गया था, जिसमें लोगों का ध्यान यथार्थ और रचनात्मक कार्यों से उचट कर व्यक्तियों के विवादों में उलझ कर रह जाय ; और राजनीतिज्ञ का चातुर्य उसको जहाँ के तहाँ जमे रहने का अवसर सुलभ कर दे ! सम्पूर्ण वैद्य-समाज पर एहसान का गौरव ब्याज में !

परन्तु, ऐसा होने से बच गया। कहीं तो राजनीतिज्ञ चूक गया और कहीं सभा-सदस्य वैद्यों ने सतर्क विवेक से काम ले लिया ; इस प्रकार आयुर्वेद की स्थायी सेवा के यथार्थ कार्य की दिशा में संस्था का एक कदम तो उठ ही गया !

अवसर ऐसा आ गया है जब कि हम राजदर्शी और राजनीतिज्ञ——दोनों प्रकार के आयुर्वेद-सेवियों से कुछ कह डालें। हाल ही में वैद्य रामनारायण जी ने अपने वक्तव्य में एक बड़ा सुन्दर सुझाव दिया था, जिसका भावार्थ यह था कि जो लोग विग्रह की वृत्ति का त्याग नहीं कर सकते और जिन्हें विवाद ही प्रिय है वे रचनात्मक कार्य करने में प्रतिस्पर्द्धा कर लें। यह कसौटी वैद्य-समाज पर किसका कितना प्रभाव है और किसमें कितनी कार्य-शक्ति है——इस बात का निर्णय कर देगी। वैद्य रामनारायणजी ने जो यह सुझाव

दिया, उसको ऐसे अर्थों में प्रचारित करना नासमझी की बात है कि यह एक पूँजीपति का कहना है या धन का मद है! इसमें केवल स्वयं देने का तो प्रश्न ही नहीं--प्रतियोगिता की बात तो अपने प्रभाव का उपयोग करके समाज से, समाज के ही विकास-कार्य के हेतु सहयोग, धन, साधन और शक्ति के संचय के लिए है! धन की प्रतिस्पर्द्धा भी यदि है तो किसी बुरे काम के लिए नहीं है, सदाशय के लिए है! स्पष्टतः अंग्रेजी में जिसको sportsman spirit (खिलाड़ी की उमंग) कहते हैं, यह उसका ही रूप है। ऐसी वृत्ति को संसार में समाज के लिए अत्यन्त हितकारी माना जाता है। आयुर्वेद-जगत् के राजनीतिज्ञों और राजदर्शियों में यदि इस वृत्ति को स्थान मिल जाय तो वास्तव में श्रेयष्कर हो! मैं तो कहता हूँ कि आयुर्वेदीय-क्षेत्र में इस चुनौती को स्वीकार किया जाना चाहिए और यथार्थ कार्य करने की ही होड़ होनी चाहिए। ऐसी होड़ में जो आगे आये, उसको ही सच्चा आयुर्वेद हितू समझा जायगा। लड़ाई या वाद-विवाद जो आज प्रस्तुत है और जिसको ले कर आरोप-प्रत्यारोपों का अम्बार उठा हुआ है--कोई ज़र-ज़मीन पर तो है नहीं। लगभग इसी बात का विवाद है कि आयुर्वेद के लिए अमुक ने क्या किया या कर सकता है और अमुक क्या? तो फिर पिछले विरुद-बखानों को तो दीजिए छोड़--साहस जगाने के लिए कुछ स्मरण करना हो तो करते रहिए!--वैसे मैदान तैयार है; अपनी-अपनी कला-करामातें दिखाइये! दिल्ली में महाविद्यालय-स्थापन की योजना को कार्यान्वित करने का निश्चय किया जा चुका है। कार्य करने और अपनी परीक्षा दे कर खरे उतरने का अवसर प्रस्तुत है। वह निश्चय किसी एक व्यक्ति का नहीं। अच्छी खासी पचास वर्ष पुरानी आयुर्वेद की एकमात्र संस्था का निश्चय है! और इस बात में दो मत नहीं हो सकते कि सर्वांगपूर्ण आयुर्वेद महाविद्यालय--आयुर्वेद के वर्तमान एवं भविष्य दोनों को उज्ज्वलतर बनाने का सर्वश्रेष्ठ साधन है। महाविद्यालय को बड़े-से-बड़े पैमाने और अच्छे-से-अच्छे ढंग पर चलाने के लिए जो जितना अधिक धन-साधन जुटा सके, उसी की बड़ी और यथार्थ सेवा! इसके लिए ही कार्य की होड़ हो। इस होड़ में भाग लेने वाले प्रत्येक प्रकार के राजनीतिज्ञ या राजदर्शी का आयुर्वेद-जगत् युग-युग तक चिरऋणी रहेगा। और यह भी निश्चय है कि यह कार्य वास्तविकता को शीशे की भाँति साफ़ बता देगा कि थोथी बातें करके यश लूटनेवाले कौन हैं, नेतृत्व पर येन-केन अधिकार कर लेने की चेष्टा करनेवाले कौन हैं और वास्तविक आयुर्वेद-हित के कार्य करनेवाले कौन हैं? सभी वर्गों के लोगों को ऐसी होड़ में आगे बढ़ कर उत्साह के साथ भाग लेना चाहिए। प्रमुख व्यक्तियों के लिए तो यह कसौटी है ही!

हमारे सुविख्यात पण्डित शिवशर्माजी अपने को आयुर्वेद-जगत् में सबसे अधिक मर्यादासम्पन्न नेता कहते हैं; उन्होंने १९५५ में त्रिवेन्द्रम महासम्मेलन की मात्र तीन दिन की अध्यक्षता केवल इस कारण ही की थी कि अधिवेशन की प्रधानता को मर्यादा-पूर्वक सम्पन्न करने-वाला, आयुर्वेद-जगत् में, उनको छोड़ कर दूसरा कोई था ही नहीं। निश्चय ही वे अपने विषय में और अपने तौर-तरीकों में अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न हैं। सबसे अधिक मर्यादा-शाली नेता का सर्वाधिक प्रभाव होना ही चाहिए। फिर आयुर्वेद-जगत् के नेतृत्व का अट्ठारह वर्षों का अनुभव उनकी गाँठ में है। अब वह समय आ गया है जब कि पण्डित शिवशर्मा को, यदि वास्तव में उनका प्रभाव वैद्य-समाज पर है; और उनमें वास्तविक कार्य-शक्ति है, अथवा वे आयुर्वेद-हित के लिए निश्चय ही कुछ करने की सच्ची इच्छा रखते हैं, तो उन्हें अपने प्रभाव और कार्य-शक्ति का चमत्कार विद्यापीठ के दिल्ली में अनुष्ठित महाविद्यालय के हेतु अधिकाधिक कार्य करके दिखाना चाहिए। १९५४ में पण्डित शिवशर्माजी ने एक बार लिखा था कि आयुर्वेद विद्यालय के लिए पाँच लाख रुपया तो आनन-फानन दक्षिण के दो-चार प्रदेशों से ही एकत्र करा लेंगे। और प्रायः तीन वर्ष में विश्वविद्यालय के लिए पन्द्रह लाख रुपया का कोष जुटा लेंगे। दक्षिण के भाइयों में आयुर्वेद के लिए बड़ा जीवट है और वे, जैसा कि पण्डित शिवशर्माजी ने कहा है, कर सकते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं। पिछले कई वर्षों से महासम्मेलन ने निरन्तर दक्षिण की ओर ही जा कर वहाँ के वैद्य-समाज में अपूर्व उत्साह का वातावरण निर्माण किया है। ऐसी दशा में उस ओर से पाँच लाख एकत्र होना क्या असम्भव है? पन्द्रह लाख रुपया का कोष--निश्चय ही सच्चे कार्यकर्ता को और ऐसे नेता को जिसका अखिल भारतीय क्षेत्र हो--आयुर्वेद के सर्वाधिक हितवाली विद्यालय-योजना के लिए--एकत्र कर लेना कोई कठिन बात नहीं है!

बशर्ते कहने वाला कोरी बातें न बनाता हो और वास्तव में कार्य करने की इच्छा रखता हो !

महासम्मेलन के पूर्वाध्यक्ष वैद्यराज श्रीयुत् वाई० पार्थनारायण पण्डित महोदय ने तो विगत बंगलोर महासम्मेलन के अवसर पर, अभी कुछ ही महीने हुए, इसी वर्ष यह घोषणा, अपने एक भाषण में की थी कि संस्था के लिए एक लाख रुपया एकत्र करके दूँगा। ऐसी उत्साहवर्द्धक घोषणाओं से किस दुबले आयुर्वेद-प्रेमी का सीना फ़ैल कर छत्तीस इन्च न हो जायगा? जिस समाज में ऐसे पुरुषार्थी हों, जो अकेले एक-एक लाख रुपया जुटा कर संस्था को अमर-जीवन देने का बूता रखते हों, उसकी अवस्था को कमज़ोर कहनेवाले को तो दुनियावाले सरफिरा ही कहेंगे। पर है तभी, जब इन घोषणाओं में सचाई का बू-वास हो ! पण्डित पार्थनारायणजी को अपनी प्रतिज्ञात घोषणा को अमल कर दिखाने का इससे अच्छा अवसर कब आयेगा ?

यह कोई आवश्यक नहीं कि सब लोग कार्य की होड़ महाविद्यालय पर ही करें। महासम्मेलन को समृद्ध बनाना भी आवश्यक है, विशेषकर ऐसी दशा में जब कि उसकी रोकड़ घाटे में जा रही हो ! संगठन-विस्तार करके यह कलंक भी धो डाला जाना चाहिए कि इतने विशाल देश के विस्तृत वैद्य-समाज की एकमात्र राष्ट्रीय संस्था की सदस्य-संख्या केवल डेढ़ हज़ार ! पण्डित वाई० पार्थनारायणजी जब पहली बार सम्मेलनाध्यक्ष बने, तब तो असट्टे में बन गये थे ; परन्तु जब दूसरी बार बाक़ायदा महासम्मेलन के सभापति निर्वाचित हुए तो अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने बड़ी ही करुणा-पूर्वक महासम्मेलन की इस सदस्य-संख्या पर क्लिष्ट क्लेश व्यक्त किया था और उस एक वर्ष में ही महासम्मेलन के एक हज़ार आजीवन और दस हज़ार साधारण सदस्य—वह भी कम-से-कम—बना डालने की इच्छा व्यक्त की थी ! तब की बात जाने दीजिए, अब सही ! और लोग महाविद्यालय के लिए कार्य करें तो पण्डित वाई० पार्थनारायणजी महासम्मेलन की संस्था और संगठन को समृद्ध और दृढ़तर-विस्तृत बनाने के काम को अपने हाथ में ले लें ! इसी प्रकार मिल-बाँट कर यदि कार्य की यह होड़ चल जाय तो, भगवान जाने, आयुर्वेद का झण्डा हिमालय की त्रिकोणाकार चोटी—एवरेस्ट—पर दिखाई देगा !

और हमारे महासम्मेलन के पंचवर्षीय प्रधान मंत्री भाई वामनराव दीनानाथ वैद्य जी कह चुके हैं कि उनका तो जन्म और जीवन ही आयुर्वेद के लिए है। इस जीवन तक अर्पण कर देने वाले त्यागी महापुरुष से आयुर्वेद के लिए और क्या माँगा जाय ? बड़े संकोच की स्थिति है। फिर भी एक चीज मांगी जा सकती है और वह है आयुर्वेद के लए अर्पित जीवन का तदर्थ उपयोग। अभी पिछले अधिवेशन पर उन्होंने अपने गत वर्षों के कार्य का विवरण बताते हुए कहा था कि उनके कार्यकाल में दक्षिण का सम्पूर्ण वैद्य समाज महासम्मेलन के झण्डे के नीचे एकत्र हो गया है और उत्तर के वैद्यों के साथ कन्धा लगाकर आयुर्वेदोत्थान के लिए कार्य करने को तत्पर है। इतना बड़ा काम एक बार शायद अगस्त्य मुनि ने किया था जिनको दक्षिण का मार्ग देने के लिए हिमालय के दादा विन्ध्याचल को अपना उठा हुआ मस्तक झुका लेना पड़ा था—और उनके लौटने की प्रतीक्षा में वह मस्तक आज तक झुका हुआ है। तो वैद्य वामनराव भाई इतना तो कर ही डालें कि उनके झण्डे के नीचे एकत्र हुआ विशाल दक्षिणीय वैद्य समुदाय केवल मुँह न देखता रहे, उस झण्डे में हाथ भी लगा उठे। पं० श्री पार्थनारायण जी के साथ मिलकर वैद्य वामनराव भाई संगठन विस्तार-कार्य की होड़ में अच्छा योग दे सकते हैं। हम चाहते हैं कि वे भी वचनों का निर्वाह करने में अब आगा-पीछा न देखें।

स्वाभाविक है कि जब यह प्रधान लोग यथार्थ कार्य की होड़ में सत्य पर आधारित सक्रियता को लेकर जुट पड़ेंगे तो इनकी आलोचना करने वाले भी इनके साथ दौड़ लगायेंगे और दोनों ओर से आयुर्वेद का हित होगा, वैद्य समाज का भला होगा। प्रकट रूप में इससे बढ़कर दूसरा कोई लक्ष्य न इनका है, न उनका। विवाद, अपवाद, आरोप-प्रत्यारोप का इससे बढ़िया कोई फैसला नहीं।

आलोचक लोग जो कहते हैं कि इसने कुछ नहीं किया, उसने कुछ नहीं किया—वे स्वयं भी अब कुछ करके ही दिखावें तब तो बात है। यह हर्ष की बात है कि आलोचक वर्ग के एकाध व्यक्ति ने आगे बढ़कर क्रियात्मक कदम बढ़ा भी दिया है जो नेतृवर्ग और महासम्मेलन के पदासीन दल के लिए अच्छी खासी चुनौती है।

आयुर्वेद जगत् का यह कर्त्तव्य है कि वह राजनीतिज्ञों और राजदर्शियों की इस क्रियात्मक होड़ के लिए उपयुक्त वातावरण बनावे और दोनों को अपना निस्पृह उन्मुक्त सहयोग देवें। उसके सहयोग का मूल्य आने वाली पीढ़ियाँ आंकेंगी। साथ ही वैद्य जगत् इस बात की परख भी करे कि कार्य की इस होड़ में कौन पीछे हटता है, और कौन ढूंढ़-खोजकर बहाने बनाता है। जो लोग अबतक आकाश-पाताल की बातें करके दिखाऊ कार्य करने का केवल ढोंग करते रहे हैं, उनके लिए यह परीक्षा का अवसर है। यदि वे इस काम के अवसर पर भी, कार्य करने के लिए उपयुक्त योजना और अनुकूल स्थिति के होते हुए भी, कुछ करने पर आमादा नहीं होते, तो उनको धिक्कार का अधिकार सम्पूर्ण वैद्य समाज को होगा।

आयुर्वेद हित के कार्यों के लिए यह स्वस्थ प्रतियोगिता सब प्रकार से कल्याणकर होगी। सभी वर्गों और सभी दलों के वैद्य इसमें व्यक्तिशः या दलशः सोलह भाग लेवें। तो आइए, अखाड़ा तैयार है !

उदावर्त या कब्ज

वैद्य रणजितराय

उदावर्तः एक इन्द्रिय-दोष

सांख्य दर्शन नाम से दर्शन-ग्रन्थ उपलब्ध होने पर भी महामुनि ईश्वरकृष्णरचित बहत्तर कारिकाओं में उपनिबद्ध **सांख्यकारिका** नामक ग्रन्थ सांख्य सिद्धान्त का प्रधान मूल ग्रन्थ माना जाता है। उपलब्ध सांख्य दर्शन कपिलमुनि का नहीं है, यही आप्तों का मत है। इस सांख्यकारिका पर सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र वाचस्पति मिश्र की **सांख्य तत्त्वकौमुदी** नामक टीका स्वाध्याय-प्रवचन में सर्वोपरि विश्रुत है। सांख्यकारिका की उनचासवीं कारिका में **बुद्धि की अठाईस अशक्तियाँ** बताई हैं। इनके प्राथमिक भेद दो हैं—बुद्धि की **स्वतन्त्र अशक्तियाँ** तथा इन्द्रियों की अशक्ति के कारण हुई बुद्धि की **परतन्त्र अशक्तियाँ**। इन्द्रियाँ ग्यारह सुविदित हैं—पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय तथा एक उभयेन्द्रिय मन। बुद्धि की परतन्त्र अशक्ति की कारणभूत इन्द्रियाशक्तियाँ भी इन्द्रियों के ग्यारह होने से समग्र ग्यारह हैं। कारिका के आरम्भ में इनका उल्लेख करते ईश्वरकृष्ण कहते हैं—**एकादशेन्द्रियवधाः** इन्द्रियों का वध या अशक्ति के प्रकार ग्यारह हैं।

ग्यारह इन्द्रियाशक्तियों की गणना तन्त्रान्तर का वचन उद्धृत करते वाचस्पति मिश्र ने इस पद्य में की है—

बाधिर्यं कुष्ठिताऽन्धत्वं जडताजिघ्रता तथा।
मूकता कौण्यपंगुत्वे क्लैब्योदावर्तमन्दताः॥

सांख्यतत्त्वकौमुदी सहित सांख्यकारिका की विद्वत्तोषिणी टीका में **श्री बालराम उदासीन** ने कहा है कि किस-किस इन्द्रिय का दोष होने से उसकी अशक्ति होकर कौन-कौन-सी बुद्धि की अशक्ति होती है। तदनुसार—**बाधिर्यं श्रोत्रदोषः**—प्रथम इन्द्रियाशक्ति वधिरता कर्णदोष से होती है। **कुष्ठिता त्वग्दोषः**—स्पर्शनेन्द्रिय रूप त्वचा की दुष्टि होकर स्पर्शग्रहण की अशक्ति होती है। इसे कुष्ठिता कहते हैं। इस अर्थ में यह संज्ञा आयुर्वेदाभिमत कुष्ठिता (कुष्ठ रोग पीड़ित होना) से कुछ भिन्न है। **अन्धत्वं नेत्रदोषः**—चक्षुरिन्द्रिय की दर्शनाशक्ति या अन्धता नेत्रदोष से होती है। **जड़ता रसनादोषः—जिह्वा—जाड्यरूपो येनाऽऽस्वादविघातादि**—जडता का अर्थ है जिह्वा या रसनेन्द्रिय की दुष्टि या अशक्ति, जिसके कारण मधुरादि रसों और रुचि का नाश इत्यादि विकृतियाँ होती हैं। **अजिघ्रता घ्राणदोषः**—अजिघ्रता घ्राणेन्द्रिय के दोष से होती है, जिसमें घ्राण का नाश आदि विकृतियाँ होती हैं। **मूकता वाग्दोषः**—मूकता वागिन्द्रिय की दुष्टि से होती है। इसमें वाणी का संग (अप्रवृत्ति) साद (अल्प प्रवृत्ति) आदि विकृतियाँ होती हैं। **कौण्यं कुणित्वं कुणिभावो हस्तदोषः**—कौण्य या लूलापन हस्तदोष से—हाथ में विकृति होने से—होता है। **पंगुत्वं पाददोषः**—पंगुता या लङ्गडापन पाद की विकृति से होता है। **क्लैब्यं प्रजननेन्द्रिय दोषः**—क्लीबता नाम मैथुनाशक्ति तथा प्रजोत्पादनाशक्ति (निष्फलत्व) प्रजननेन्द्रिय की दुष्टि से होता है। **उदावर्तः पायु दोषः**—उदावर्त पायु या मलोत्सर्जन की इन्द्रिय के दोष से होता है। **मन्दता मनोदोषः**—बुद्धि की मन्दता अन्तःकरण की दुष्टि से होती है।

यहाँ निर्दिष्ट उदावर्त का अर्थ इतर इन्द्रियों के कर्मों के नाश के सदृश मल की अप्रवृत्ति या अल्प प्रवृत्ति ही ग्राह्य है। उपलब्ध आयुर्वेदीय संहिताओं में भी यह संज्ञा इसी अर्थ में व्यवहृत है। इसका पुनः प्रचार करना चाहिए। प्रश्न केवल पुरानी संज्ञा के प्रचार का नहीं है। जैसा कि शीर्षक से विदित होगा इस संज्ञा का शुद्धार्थ सामने रखा जाए तो इसके प्रसिद्ध पर्याय 'कब्ज' के विषय में आयुर्वेदीय दृष्टि विशद होगी। और ये पंक्तियाँ इसी आशय से लिखी जा रही हैं।

आयुर्वेदीय दृष्टि से अधिक विचार करने के पूर्व इस वस्तु का उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है कि आयुर्वेदीय वाङ्मय के प्रतिसंस्कार के लिए हमें कितनी दूर-दूर तक दृष्टि दौड़ानी होगी। **शास्त्र के स्वरूपावबोध के लिए जैसे आयुर्वेदीय तथा आयुर्वेदतर वाङ्मय का अवगाहन आवश्यक रहेगा, वैसे विशेषतया चिकित्सा के परिज्ञानार्थ आदिवासियों तथा वृद्ध ग्रामवासियों और नगरवासियों का संपर्क साधकर उनसे निदान—चिकित्सा के गूढ़ सिद्धान्त और द्रव्यों की प्राप्ति**

करनी होगी। कारण, यह निश्चित नहीं है कि वर्तमान उपलब्ध संहिताओं में आयुर्वेद संपूर्ण समा गया है। क्योंकि, एक तो उपलब्ध संहिताएँ मूल तथा संपूर्ण होने का कोई प्रमाण नहीं है। दूसरे, ये मूल तथा संपूर्ण हों तो भी यह निश्चित नहीं कि, किसी ग्रन्थ में उस काल जितना विषय प्रचलित रहा हो उसका समग्रतया संदोहन हो ही जाए। किं बहुना, जैसा कि **कुमारिल स्वामी** ने कहा है किसी प्रचलित आचार (प्रथा)-विशेष को देखकर उसकी पोषक कोई स्मृति होगी ही, और स्मृति होगी तो उसकी मूलभूत कोई श्रुति भी होनी ही चाहिए, इस प्रकार तर्क किया जाता है— **आचारात् तु स्मृतिं, ज्ञात्वा श्रुतिर्विज्ञायते ततः।** इसी प्रकार कोई प्रचलित या अप्रचलित निदान, चिकित्सा आदि वृद्धजनों से सुनकर यह संभावना की जा सकती है कि मूल आयुर्वेद में उसके लिए कोई प्रमाण रहा होगा। अथ च, वर्तमान में आयुर्वेद के प्रतिसंस्करण और परिवृंहण के लिए इनका ऊहापोहपूर्वक दोहन और संदोहन हमें करना होगा। गम्भीर अध्ययन से विदित होगा कि इन आचारों में कई वर्तमान उपलब्ध संहिताओं में भी किसी न किसी रूप में प्राप्त हो सकते हैं।

डल्लन कृत अर्थ

उदावर्त-प्रतिषेध अध्याय (सुश्रुत, उत्तर तन्त्र ५५), के आरम्भ में ही टीकाकार डल्लन ने उदावर्त शब्द की व्युत्पत्ति दी है। अर्थविबोध में सहायक होने से लेख का आरम्भ उसी से करना योग्य प्रतीत होता है। वह कहता है—**उत् ऊर्ध्वं वात-विण्मूत्रादीनाम् आवर्तो भ्रमणं यस्मिन् रोगे स उदावर्तः। अन्ये पुरीषं वायुना वर्तुलीकृतमुदावर्तं मन्यन्ते।** अर्थात् उदावर्त शब्द के दो अर्थ हैं। अधिक संमत किंवा डल्लनाभिमत अर्थ यह है।—जिस रोग में अधोवायु, पुरीष, मूत्र, आर्तव आदि का अधोगमन रुक जाता है तथा विलोम गति होकर उनका **उत्**—ऊर्ध्व या विपरीत दिशा में **आवर्त**—भ्रमण होता है उसे उदावर्त कहते हैं। उदावर्त का अन्य आचार्यों को अभिमत अर्थ यह है। –**वर्त** शब्द का अर्थ है वर्तुलीभाव, गोल हो जाना। **आ** का अर्थ है समन्तात्–चारों ओर से। जिस रोग में वातप्रकोपवश पुरीष का इस प्रकार वर्तुलीभाव हो जाए—वह शुष्क होकर गाँठों के रूप में परिणत हो जाए उसे उदावर्त कहा जाता है।

यद्यपि आगे मूल ग्रन्थ में उदावर्त का अन्य भी अर्थ दिया है तथापि उसका **अधिक प्रसिद्ध अर्थ** प्रस्तावना के रूप में डल्लन ने उल्लिखित पदों में दिया है। उससे इसका वास्तविक अर्थ जानने में सुगमता होगी। अधिक लिखने के पूर्व संक्षेप में इस विषय का विचार कर लें। सुश्रुत ने उदावर्त शब्द का व्यवहार दो अर्थों में किया है: (१) तत्तद् वेगों का अवरोध तथा उससे हुई विकृतियाँ; एवं (२) ऊपर डल्लन ने व्युत्पत्ति द्वारा इसका जो अर्थ बताया है वह, जिसे जैसा कि व्युत्पत्ति से स्पष्ट ज्ञात होगा, वर्तमान में 'कब्ज' कहा जाता है।

चरक ने वेगावरोध और उदावर्त दो पृथक् रोग माने हैं तथा उनका पृथक् दूर-दूर उल्लेख किया है। वेगावरोध का सूत्र स्थान के सातवें अध्याय में तथा उदावर्त का चिकित्सास्थान के छब्बीसवें अध्याय में (त्रिमर्मीय अध्याय में)। वैद्यों में भी उदावर्त शब्द वेगावरोध के अर्थ में उतना प्रचलित नहीं, परन्तु उसका उल्लिखित अर्थ में व्यवहार भी इन दिनों रहा नहीं है। वेगावरोध उदावर्त का व्याकरण-सिद्ध अर्थ भी प्रतीत नहीं होता। तथापि उदावर्त शब्द का व्यवहार सुश्रुत जीने वेगावरोध के लिए भी किया है उसका एक ही कारण कहा जा सकता है कि वेगावरोध उदावर्त (कब्ज) के कारणों में प्रमुख है। हेतु और हेतुमान् (कार्य-कारण) में अभेद मानकर उदावर्त का वेगावरोध अर्थ में भी स्वीकार सुश्रुत ने किया है। नवीनों ने, विशेषतया निसर्गोपचारकों ने, कब्ज का कारण वेगावरोध (नेग्लेक्ट) बताया है तथा उसे अधिकांश रोगों का कारण वे बताते हैं। अच्छा हो, नवीन लेखक उदावर्त शब्द का व्यवहार 'कब्ज' के ही अर्थ में मर्यादित करें।

उदावर्त के प्राथमिक भेद

उदावर्त के अर्थ के विषय में अपना स्थिर मत ऊपर दर्शा कर भी सुश्रुत के पदों में उदावर्त के दोनों अर्थ विषय की पूर्ति के प्रयोजन से दिए जाते हैं।

उदावर्त प्रतिषेधाध्याय के आरम्भ में सुश्रुत कहते हैं—पुरीषादि अधोमार्ग से प्रवृत्त मलों एवं उद्गारादि ऊर्ध्व मार्ग से प्रवृत्त मलों के वेगों का धारण, पुरुष अपने जीवन की रक्षा चाहता हो तो उसे, कभी न करना चाहिए।

न वेगान्धारयेत् प्राज्ञो वातादीनां जिजीविषुः।

इतना भीषण परिणाम वेगों के अवरोध का होता है। (राजयक्ष्मा के चार कारणों में एक वेगावरोध है। इस सिद्धान्त को यहाँ स्मरण किया जा सकता है)। आगे आचार्य ने पुरीष, मूत्र, क्षुधा, तृष्णा प्रभृति त्रयोदशविध वेगावरोधज उदावर्तों का नाम निर्देश कर उदावर्त के अन्य भेद की प्रस्तावना करते कहा है—

अपथ्यभोजनाच्चापि वक्ष्यते च तथाऽपरः ।।

तात्पर्य—उदावर्त का एक अन्य भी भेद होता है, जिसका कारण संक्षेप में अपथ्य भोजन होता है। चरक ने इस अपथ्य भोजन जन्य उदावर्त का ही उदावर्त नाम दिया है। सुश्रुत ने वेगावरोध जन्य उदावर्तों के यथाक्रम लक्षण तथा चिकित्सा देकर आगे अपथ्य भोजनजन्य उदावर्त के कारण तथा लक्षण दिए हैं। सुश्रुत के इन वचनों तथा चरक के प्रासंगिक वचनों को दृष्टि में रखकर उदावर्त के कारणों और लक्षणों का विचार अब प्रस्तुत किया जाता है।

अपथ्य भोजन जन्य उदावर्त

पहले दोनों तन्त्रों में कहे अपथ्य भोजन तथा अपथ्य विहार का स्वरूप एवं रोगजनक संप्राप्ति देखें :—

कषायतिक्तोषण रूक्षभोज्यैः संधारणाभोजनमैथुनैश्च ।
पक्वाशये कुप्यति चेदपानः स्रोतांस्यधोगानि बली स रुद्धा ।।
करोति विण्मारुतमूत्रसंग क्रमाद् उदावर्तमतः सुघोरम् ।।

च० चि० २६।५

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कषायकटुतिक्तकैः ।
भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तं करोति हि ।।
वातमूत्रपुरीषासृक्कफमेदोवहानि वै ।
स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्तयेत्[1] ।।

सु० उ० ५५।३७-३८

चरक ने अपथ्य भोजन के साथ अपथ्य विहार वेगावरोध आदि की भी उदावर्त के कारणों में गणना की है और वह प्रत्यक्षाविरुद्ध एवं ग्राह्य ही है। अब इन पद्यों का अर्थ देखिए।—

पुरुष कषाय, कटु और तिक्त रसवाले तथा रूक्ष (स्नेहरहित) भोजनों का उपयोग करे, किंवा अनशन या प्रमिताशन करे, वेगों का धारण करे या अति मैथुन करे तो इससे उसका कोष्ठगत वायु अपान कुपित होता है तथा उदावर्त रोग को उत्पन्न करता है। इसके लक्षणों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं : १—पुरीष का **अतिवर्तन**[1] पुरीष ऊँट, बकरी, आदि प्राणियों के पुरीष के सदृश वर्तुलाकार हो जाना। २—वात, मूत्र, पुरीष, रक्त (आर्तव), कफ और मेद इनके स्रोतों का **उदावर्तन**। इस विकृति का अर्थ यह है कि इन मलों की अपने अपने मार्ग से जो स्वाभाविक शुद्धि होती रहनी चाहिए वह नहीं होती, उसका **संग** हो जाता है। इतना ही नहीं, इनकी गति विलोम हो जाती है। जो स्रोत अपने बाह्य द्रव्यों का अधोवहन करते थे, वे अब वायु की विगुणता के कारण बाह्य द्रव्यों का ऊर्ध्व वहन करने लगते हैं। वात, मूत्र तथा पुरीष के स्रोतों का इस प्रकार ऊर्ध्ववहन होने से संक्षेप में इनके वेगावरोध होने वाले परिणाम होते हैं। विशेष में, प्रायः समग्र रोग इन मलों की विलोमगति से होते हैं। इनका अधिक उत्तम विवरण आचार्यों ने सहज अर्श से होनेवाले रोगों की संप्राप्ति में दिया है। उदावर्त से होने वाले रोगों को सम्यक् समझने के लिए इस प्रकरण का परिशीलन भी आवश्यक है। इसकी अधिक उपयोगिता तो व्यवसाय में चिकित्सा की शुद्धि की दृष्टि से है। कफवह तथा मेदोवह स्रोतों से यहाँ क्या अभिप्रेत है तथा इनका अधोवहन और ऊर्ध्ववहन क्या होता है यह विषय मुझे स्पष्ट अवगत नहीं हुआ है। कोई विद्वान् इस पर प्रकाश डालकर कृतार्थ करें। हाँ, प्रधान स्थान आमाशय तथा उर में स्थित कफ पर अवरोधवशात् कुपित वायु का प्रभाव होकर शरीर में कफ की भी संचिति और तज्जन्य विकृतियाँ होती हैं। यह विषय भी हम सहज अर्शों के उपद्रव एवं उनकी संप्राप्ति के प्रसंग में देखेंगे। शेष आर्तववह स्रोतों के उदावर्तन का अर्थ है उदावर्ता योनि नामक शास्त्रोक्त रोग का आविर्भाव, जिसके लिए कष्टार्तव यह अशास्त्रीय संज्ञा रूढ हो गयी है। इसके लक्षण सुप्रसिद्ध हैं—आर्तव के दिनों में कष्ट, आर्तव की अल्प प्रवृत्ति, प्रवृत्ति के पश्चात् सुखलाभ। परन्तु, उदावर्तन या आर्तव का ऊर्ध्ववहन होने का एक अन्य भी स्मरणीय परिणाम होता है। जैसे पुरीष और अधोवायु का अवरोध होकर ऊर्ध्ववहन होने से स्वयं पुरीष एवं वायु की प्रवृत्ति

१—कोष्ठानुगो वायुरत्र अपानः। समानतन्त्र दर्शनात्। उदावर्तयति उर्ध्वमावतयति; अधोवहानि स्रोतांस्यूर्ध्ववहानि करोतीत्यर्थः। पुरीषं चातिवर्तयेदिति उष्ट्रादि पुरीषवान् कठिनं कुर्यादित्यर्थः। —डल्हन

१—अतिवर्तन का अर्थ अतिप्रवृत्ति भी होता है। अप्रसक्त होने से वह यहाँ ग्राह्य नहीं।

मुख से होती है, किंवा तदन्तर्गत द्रव्य शरीर में प्रसृत हो मुख, श्वास आदि में उनके गन्ध आदि का आविर्भाव होता है, वैसे आर्तव रक्त भी अधोमार्ग से प्रवृत्त न होता हुआ मुख, नासिका आदि विमार्गों से प्रवृत्त होता है। ऐसी स्थिति में इस संप्राप्ति को लक्ष्य में रख सुचिकित्सक मलवात-प्रवर्तन द्वारा अपान का अनुलोमन एवं आर्तव-प्रवर्तक उपचारों द्वारा आर्तव का अधोवहन कर सिद्धिलाभ करते हैं। वायु का ऊर्ध्ववहन होकर ऊर्ध्वमार्ग से उद्गार के रूप में अतिप्रवृत्ति के लिए ऊर्ध्ववात शब्द प्रसिद्ध है। तद्वत् आर्तव के ऊर्ध्ववहन का भी समावेश उदावर्ता योनि में करना प्रत्यक्षादि प्रमाण से सिद्ध है।

थोड़ा ठहर कर आर्तव के उदावर्तन का यह स्वरूप छात्रोपयोगी होने से शास्त्रीय दृष्टि से देख लें।

राजयक्ष्मा में रक्त की प्रवृत्ति के दो प्रकार चरकाचार्य ने बताए हैं।—सकफ रक्तप्रवृत्ति तथा केवल रुधिर प्रवृत्ति। इनमें सकफ रक्त प्रवृत्ति की संप्राप्ति बताते महामुनि कहते हैं—

अभिसन्ने शरीरे तु यक्ष्मिणो विषमाशनात्।
कण्ठात् प्रवर्तते रक्तं श्लेष्मा चोत्क्लिष्ट संचितः।

च. चि. ८।५७

प्रस्तावना में टीकाकार कहते ह—**सरक्तं कफमस्यतीति यदुक्तं तल्लक्षणं विवृणोति—अभिसन्न इत्यादि।** परन्तु पूर्व वाक्यों में 'सरक्तं 'कफमस्यति' यह वचन मेरे देखने में नहीं आया। प्रत्युत—**क्षणनादुरसः कासात् कफं ष्ठीवेत सशोणितम** (च. चि. ८।१८)—यह वाक्य आया है। इसमें विशेष यह कहा है कि कास के कारण छाती का **क्षणन** होता है जिससे कफ के साथ रक्त की भी प्रवृत्ति होती है। **क्षणन या क्षत होना इसका अर्थ है** मांस का क्षत होकर किंवा सिराओं का क्षत होकर उनमें स्थित **रक्तधरा कला का क्षत** होना। रक्तधरा कला मांस के अन्तर्गत रहती है। यह मांसपेशी आदि अवयवों के रूप म रहता है किंवा सिरा (रक्तवह अवकाश—धमनी और सिरा दोनों) को मण्डलाकार वेष्टित करके रहता है। देखिए कलाओं के प्रकरण में सुश्रुताचार्य कहते हैं—

द्वितीया रक्तधरा मांसस्याभ्यन्तरतः। तस्यां शोणितं विशेषतश्च सिरासु यकृत्प्लीह्नोश्च भवति।
वृक्षाद्यथाऽभिप्रहतात् क्षीरिणः क्षीरमावहेत्।
मांसादेवं क्षतात् क्षिप्रं शोणितं संप्रसिच्यते॥[1]

सु० शा० ४।१०-११

अर्थात्—कलाओं में द्वितीय रक्तधरा नामक है। यह मांस के अन्तर्गत (मांस से वेष्टित) होती है। इसमें रक्त रहता है। यह रक्त विशेषतया सिराओं में तथा यकृत्प्लीहा में रहता है। जैसे क्षीरी वृक्ष पर आघात हो तो उसमें से क्षीर का स्राव होता है वैसे रक्तधरा कला को वेष्टित करनेवाला मास क्षत हो जाए—कट जाय—तो उसमें से रक्त की स्रुति होती है।

किं बहुना, रक्षक मांसधातु के कट जाने से रक्तधरा कला भी क्षत हो जाती है। सो **क्षत का शास्त्रशुद्ध मुख्यार्थ रक्तधरा कला की क्षति** ही समझना चाहिए। अतएव संस्कृत वाङ्मय में रुधिर को क्षतज ही कहा है। सो, निदान-चिकित्सा के प्रकरणों में जहाँ भी रक्तदर्शन का उल्लेख हो वहाँ सुश्रुत शारीर के इस उल्लेख के आधार पर निज किंवा आगन्तु कारणों से रक्तधरा कला की क्षति होने का ही ग्रहण करना चाहिए। निज का अर्थ है पित्त और रक्त का प्रकोप तथा आगन्तुक कारण से तात्पर्य है आघातादि का।

सो, रक्त जब उर से आता है तो साहस या कास के वेग के कारण छाती में स्थित रक्तधरा कलाका क्षणन (क्षति) होता है। छाती कफ का स्थान होने से कफ भी कास के वेग के साथ प्रवृत्त होता है। इसे **सकफ शोणित प्रवृत्ति** कहते हैं। कफ की प्रवत्ति का कारण यह होता है कि विषमाशन के कारण रोगी का शरीर **'अभिसन्न'** होता है—सर्व प्रकार से दुर्बल और शिथिल होता है। परिणामतया, स्वस्थावस्था में तो उरःप्रदेश या प्राणवह स्रोतों में कफ जैसे-जैसे बनता जाता है वैसे-वैसे वह ऊर्ध्वमार्ग से प्रवृत्त होता रहता है, परन्तु यक्ष्मी पुरुष का शरीर अति दुर्बल होने से कफ की यह समभाव से प्रवृत्ति उसके शरीर में होती नहीं। वह संचित होता रहता है। संचय के कारण उसका उत्क्लेश होता है और कास के वेग से उसकी बहिः प्रवृत्ति होती है। इसमें रक्त का भी संसर्ग रहता है।

राजयक्ष्मा में कफ की प्रवृत्ति के विषय में भी कुछ ज्ञातव्य विशेष होता है। वह यह कि, रसधातु का अपना

[1] १—संप्रसिच्यते प्रस्रवतीत्यर्थः—डल्हन।

स्थान हृदय कफप्रधान दोषों के कारण मन्दीभूत होता है। उसकी एवं व्यान वायु के विक्षेपणात्मक व्यापारों से रस-रक्त तथा मारुत को सर्व शरीर में संचारित करने वाली सिराओं की गति भी मन्द होती है। इसी को यक्ष्मा में दोषों द्वारा हुआ स्रोतों का अवरोध समझना चाहिए। रसवह स्रोतों के रोध का परिणाम यह होता है कि रस की गति अनुलोम—सर्वाङ्ग में—न होकर विलोम—विरुद्ध दिशा में —प्राणवह स्रोतों की दिशा में—छाती की ओर होती है। वि-वर्धते' पद्य में प्रयुक्त 'वि' उपसर्ग द्वारा अगले पद्य में आचार्य ने इसी स्थिति का निरूपण किया है।' बस, अनुलोम न गया हुआ, विलोम होकर अपने स्थान में विपरीत दिशा में गया हुआ यह रस ही प्राणवह स्रोतों में आकर कफ के रूप में कास के वेग से बाहर प्रवृत्त होता है।

रस कफ के रूप में प्रवृत्त होता है, इस वचन का अर्थ यह है कि यक्ष्मा में इतर अग्नियों के सदृश रसाग्नि भी मन्द होती है। परिणामतया, जो अन्नरस रसधातु के परिपोषण के लिए उसके आशय में आता हैं, उसका पूर्ण पचन होकर रसधातु योग्य प्रमाण में बन नहीं पाता। किंतु, उसके मल कफ की ही निर्मिति और पुष्टि सविशेष होती है। उसी प्रकार जैसे किसी रोगमें जठराग्नि मन्द हो तो प्रसादभूत अन्नरस अपने प्रमाण में नहीं बनता, पुरीषादि अन्नमल ही अधिक मात्रा में बनते हैं। सो, रसवह स्रोतों के रोध से रस विलोम होकर प्राणवह स्रोतों में आता है। रसधात्वग्नि की मन्दता के कारण उससे रसधातु की पुष्टि उतनी न होकर कफ की ही सविशेष पुष्टि होती है, और यह कफ, जैसा कि ऊपर कहा, यक्ष्माक्रान्त पुरुष के शरीर के दुर्बल (अभिसन्न) होने से बाहर नहीं निकल पाता, किन्तु स्रोतों में ही संचित होता है तथा संचय बहुत होने पर उसका उत्क्लेश होता है

संचय के कारण अन्य मलों के समान इस कफ में भी कोथ होकर दौर्गन्ध्य आदि उत्पन्न होते हैं। इसी कारण प्रवृत्त हुआ यह कफ अनेक प्रकार का (बहुरूप) होता है। देखिए :

रसः स्रोतःसु रुद्धेषु स्वस्थानस्थो विवर्धते।
स ऊर्ध्वं कासवेगेन बहुरूपः प्रवर्तते॥

च. चि. ८।४३

यहाँ कफ को 'बहुरूप' कहा है। उसका स्वरूप निर्देश कुछ आगे जाकर स्वयं तन्त्रकार निम्न पदों में करते हैं—

पिच्छिलं बहलं विस्रं हरितं श्वेतपीतकम्।
कासमानो रसं यक्ष्मी निष्ठीवति कफानुगम्॥

च. चि. ८।५१

अर्थात्—यक्ष्मी पुरुष में कास के वेग से निष्ठ्यूत—प्रवृत्त—हुआ कफमिश्रित यह कफ पिच्छिल (तन्तुमान्), संचय के कारण प्रचुर मात्रावाला, विस्र—दुर्गन्धयुक्त, हरित, श्वेत तथा किंचित् पीत होता है।

धातुक्षय होकर फुफ्फुसों के घटक मांस का क्षय होने से फुफ्फुसों में वातप्रकोप का लक्षणभूत सौषिर्य बढ़ता जाए तो कफ के संचय के लिए उपयुक्त अवकाश भी बढ़ता जाता है तथा दौर्बल्य भी रोग स्वभाववश बढ़ जाने से उस का संचय भी अधिक काल रहता है और कफ के प्रमाण में वृद्धि, दौर्गन्ध्य आदि विकृतियाँ अधिकतर होती जाती हैं। सौषिर्य वायु या धातुक्षय के लक्षणों में एक है (देखिए : वात-कलाकलीय अध्याय,च. सू.१२)। फुफ्फुसों में होनेवाली यह सुषिरता 'केविटी' नाम से अंग्रेजी में प्रसिद्ध है और लोक में भी इसी नाम से ख्यात है। यह सुषिरता शरीर-परमाणुओं से लेकर शरीर अवयवों में उत्तरोत्तर बढ़ती हुई अनेक नाम-रूप तथा लक्षणों से अभिव्यक्त होती है। यह विषय विस्तारापेक्ष होने से उसे यहीं छोड़ कर मूल विचार करता हूँ।

राजयक्ष्मा में सकफ रक्त की प्रवृत्ति का विचार हुआ। इस रोग में रक्तप्रवृत्ति का अन्य प्रकार **केवल रुधिरच्छर्दन** (केवल—कफरहित—रक्त का वमन, आमाशय से प्रवृत्ति) है। इसकी संप्राप्ति दर्शाते चरकाचार्य कहते हैं।—

रक्तं विबद्धमार्गत्वान्मांसादीन्नानुपद्यते।
आमाशयस्थमुत्क्लिष्टं बहुत्वात्कण्ठमेति च॥'

च. चि. ८।५९

यक्ष्मा में रक्त के वहन के मार्ग अवरुद्ध होते हैं। (स्रोतों के रोध का अर्थ दोष-भेद से भिन्न-भिन्न होता है। इस विषय की चर्चा कभी-कभी इस पत्रिका में की गयी है।

१—केवलरुधिरच्छर्दनेन युक्तं विवृणोति—रक्तमित्यादि। विबद्धमार्गत्वादिति रक्तस्य मांसाद्यभिगमे यो मार्गस्तन्निरोधान्मांसादभिगच्छद्रक्तं मांसाशये एव कृताधिष्ठानं प्रस्रवण जलमिव विबद्धमार्गत्वाद् बहु भवति। बहुत्वेनोत्क्लिष्टं द्वारान्नरागमनात् कण्ठमेति। एवं रक्तस्य पोषकरसेनासंबन्धात् क्षीयमाणस्यामाशये एव बहुत्वं ज्ञेयम्। तेन रक्तादीनां च संक्षयात् इत्यनेन रक्तक्षयो य उक्तः स उपपन्न एव। —चक्रपाणि।

भविष्य में प्रसंगवश करेंगे)। इस मार्गावरोध के कारण रक्तमांसादि धातुओं में उनके पोषणार्थ जा नहीं पाता। किन्तु रक्ताशयों में ही संचित हो रहता है। यह रक्त अतिमात्र संचित हो जाता है तो आगे तो मार्गावरोध के कारण जा सकता नहीं, तत्-तत् आशय में संचित होता है। यह यदि आमाशय में संचित हो तो इसका प्रमाण अतिशय होने पर जब इसका उत्क्लेश होता है—शुद्धि के निकटवर्ती द्वार-मुख के प्रति गति होती है—तो उस गति के वश कण्ठ में आकर मुख से बहिः प्रवृत्त होता है।

यह स्थिति अंशतः रक्तपित्त में होती है। उसमें भी रक्ताशयों—यकृत् और प्लीहा—में रक्त को ले जानेवाले स्रोतों का मार्ग रुद्ध होता है। उसमें पित्त की दुष्टि आदि अन्य विकृतियाँ भी होती हैं। परन्तु मार्गावरोध तो राजयक्ष्मा में होनेवाले रक्तवमन के सदृश ही होता है। इस प्रकरण का तात्पर्य यह है कि जैसे राजयक्ष्मा का रक्तवमन रक्त के मार्ग का रोध होने से होता है वैसे आर्तव के उदावर्त में भी आर्तववह स्रोतों का मार्ग रुद्ध होने से यह आर्तव रक्त सार्वदेहिक रक्त में मिश्रित हो उसकी वृद्धि कर ऊर्ध्वमार्ग से प्रवृत्त होता है। चरक ने उदावर्त के उपद्रवों में रक्तपित्त की भी गणना की है। उससे यथार्थ रक्तपित्त के समान आर्तव के उदावर्त से हुए रक्तपित्त का भी ग्रहण कर सकते हैं। अंग्रेजी में इसे विकारिअस मेन्स्ट्रएशन कहा जाता है

रूक्षादि द्रव्यों से वायु के प्रकोप का प्रकार

आयुर्वेद के विद्यार्थी जानते हैं कि वायु की उत्पत्ति तृतीय अवस्थापाक में पक्वाशय में होती है। यह वायु शरीर में प्रसृत हो पाँचों वायुओं की पुष्टि करता हुआ उन्हें समावस्था में रखता है तथा उनके द्वारा विविध प्राकृत कर्म कराता है। परन्तु जो रस या गुण वायु के पोषक कहे जाते हैं उनका—कषाय, कटु, तिक्त रस तथा रूक्ष आदि गुणों का—सेवन अतिमात्रा में हो तो वायु की उत्पत्ति उसी हिसाब से अधिक होती है। इसके विपरीत जो मधुराम्ललवण रस तथा स्निग्धादि गुण वायु के शामक कहे जाते हैं उनका जितना ही प्रमाण अन्न-पान में होता है उतने ही अंश में वायु की उत्पत्ति तृतीय अवस्थापाक में न्यून होती है। (देखिए : च. चि. १५। ६-११ पर —चक्रपाणि)

कटु, तिक्त, कषायादि रसों तथा रूक्षादि गुणों के अतियोग से पक्वाशय में जिस वायु की उत्पत्ति होती है वह **निराम** होता है। परन्तु जठराग्नि के बल, अपनी प्रकृति, स्वस्थवृत्तोक्त आहार विषयक चर्या आदि का अतिक्रमण कर अन्नपान सेवन करने से अजीर्ण हो कर अन्नपान का अन्नरस न्यून प्रमाण में बनता है तथा मल ही अधिक बनते हैं। अन्नपान के मलों में वायु भी एक होता है। यह वायु अन्नपान की आमता के कारण **साम वायु** होता है। आहार-विहार के स्वरूप-भेद को दृष्टि में रखकर प्रथम प्रकार से वृद्ध वायु को **अपतर्पणजन्य** वायु भी कह सकते हैं तथा द्वितीय प्रकार से कुपित वायु को **संतर्पणजन्य** भी कहा जा सकता है। **ये दोनों भेद जानने का प्रयोजन** यह है कि ज्वरादि जिन रोगों में वायु कारणभूत दोष हो तो लङ्घन का प्रतिषेध किया गया है वह निराम वायु पर ही घटित होता है। संतर्पणोत्थ साम वायु में निरामता उत्पन्न होने तक लङ्घन विधेय होता है।

संक्षेप में छः रसों के कर्म तथा विपाक दर्शाते हुए भी रसों के गुण-कर्म के उपसंहार के रूप में उनकी वातमूत्रपुरीष पर क्रिया का ही निरूपण किया गया है। उसका मूल भी यही है कि पुरीषादि की सम्यक् प्रवृत्ति दोषों के साम्य तथा तन्मूलक आरोग्य का एवं पुरीषादि की असम्यक् प्रवृत्ति तथा उससे सर्वदोषों का प्रकोप होकर प्रायः रोगों की उत्पत्ति का प्रधान हेतु है। रसों तथा विपाकों का कर्म इस दृष्टि से आलोचनीय है।

मधुरो लवणाम्लौ च स्निग्धभावात् त्रयो रसाः।
वातमूत्रपुरीषाणां प्रायो मोक्षे सुखा मताः॥
च. सू. २६-५६

मधुर, अम्ल और लवण रस स्निग्धस्वभाव होने के कारण प्रायः पुरीष, मूत्र और वायु (तथा शुक्र) की सम्यक् प्रवृत्ति कराते हैं। इसके विपरीत—

कटुतिक्तकषायास्तु रूक्षभावात् त्रयो रसाः॥
दुःखाय मोक्षे दृश्यन्ते वातविण्मूत्ररेतसाम्॥
च. सू. २६।६०

कटु, तिक्त और कषाय ये तीन रस अपनी स्वाभाविक रूक्षता के कारण अधोवायु, पुरीष, मूत्र और शुक्र की प्रवृत्ति होने नहीं देते—उनकी प्रवृत्ति में बल प्रयोग करना पड़ता है।

इस प्रकार रसों के गुणकर्म का संक्षेप में निरूपण पुरीषादि की प्रवृत्ति पर उनकी क्रिया के निर्देश के रूप में कर आगे विपाकों का भी निरूपण इसी परिपाटी से करते तन्त्रकार कहते हैं—

(शेषांश पृष्ठ ६५८ पर)

आतुर परीक्षानुष्ठान विज्ञानीय

आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी, बी० ए०, आयुर्वेदशास्त्राचार्य

चिकित्सक के सामने जब रोगी उपस्थित होता है अथवा रोगी-गृह में जब चिकित्सक का आह्वान किया जाता है, तो सर्वप्रथम रोग के ज्ञान के लिए जो क्रिया की जाती है, उसको 'परीक्षा' या 'व्याधि-परीक्षा कहते हैं।

परीक्षा का प्रयोजन

महर्षि चरक ने रोगी-परीक्षा का प्रयोजन निम्नरूप से व्यक्त किया है—

"परीक्षायास्तु प्रयोजनम् प्रतिपत्तिज्ञानम् प्रतिपत्तिर्नाम् यस्तु विकारो यथा प्रतिपत्तव्यस्तस्य तथानुष्ठान ज्ञानम्।"

अर्थात्—रोगी की परीक्षा का प्रयोजन व्याधि की प्रतिपत्ति का ज्ञान करना है। प्रतिपत्ति का सामान्य अर्थ है—जो विकार जिन अनुष्ठानों द्वारा समझा जा सके, उन सब अनुष्ठानों के प्रयोग का क्रमवद्ध ज्ञान होना। अतः चिकित्सक का प्रथम कर्त्तव्य रोगी की परीक्षा करना और परीक्षानुष्ठानों का क्रमशः प्रयोग कर व्याधि का निर्णय करना है। महर्षि चरक के मत से चिकित्सा-कर्म में प्रवृत्त चिकित्सक के तीन प्रधान अनुष्ठान (कार्य) हैं; यथा:—(१) रोग-परीक्षा (Diagnosis), (२) औषध (निर्णय) परीक्षा (Selection of Medicine) और (३) कर्म समारंभ (Treatment)। चिकित्सक जब तक रोग-परीक्षा और औषध-निर्णय नहीं कर लेता तबतक चिकित्साकर्म का वह समारंभ नहीं कर सकता। इन तीनों विभेदों के ज्ञानार्थ आयुर्वेद में विशाल साहित्य उपलब्ध है। इनका क्रमबद्ध विवरण यहां दिया जा रहा है।

महर्षि आत्रेय ने रोग निर्णयार्थ ४० साधनों के ज्ञान की व्यवस्था की है। इन्द्रिय स्थान का प्रथम अध्याय इनका विवरण देता है। पुनः विमानस्थान में दशविध करणादि परीक्षा का तथा उत्कल्पनीयाध्याय में द्वादशविध परीक्षा का ज्ञान करने का विवरण मिलता है।

सुश्रुत ने भी सूत्रस्थान के आतुरोपक्रमणीय अध्याय ३५ में एकादशविध और वाग्भट ने द्वादशविध परीक्षा का अनुष्ठान करने का निर्देश किया है। अतः यह स्पष्ट है कि कम से कम १२ और अधिक से अधिक ४० अनुष्ठेय परीक्षाविधियों का विवरण उपलब्ध है। यदि इन विधियों का क्रमशः उपयोग किया जाय तो रोग परीक्षा के सम्बन्ध में कुछ भी शेष नहीं रह जाता। इन रोग-परीक्षा, अनुष्ठानों का ज्ञान करने के लिए उनकी संज्ञाएं क्रमशः दी जा रही हैं।

सामान्य अनुष्ठान (द्वादशविध अनुष्ठान)

दूष्यं देशं वलं कालमनलं प्रकृतिवयः।
सत्वं सात्म्यं तथाऽहारमवस्थाश्चपृथग्विधाः।
सूक्ष्म सक्ष्मः समीक्ष्येषां दोषौषध निरूपणे।
यो वर्त्तते चिकित्सायां न स स्खलति जातु चित्।
(अ० हृ० सू० १२)

रोगी की परीक्षा के लिए कम से कम द्वादशविध परीक्षा अनुष्ठानों का ज्ञान होना चिकित्सक मात्र के लिए आवश्यक है। इनका सूक्ष्मरूप से विचार कर चिकित्सा कर्म में प्रवत्त होनेवाला चिकित्सक कदापि विफल नहीं होता। निम्नलिखित सरणी से विविध सामान्य परीक्षाओं का ज्ञान निर्दिष्ट हो जाता है। अतः एक साथ तुलनात्मक रूप में द्वादशविध अनुष्ठानों का नीचे विवरण दिया जा रहा है।

चरक (द्वादश) उत्कल्पनीयाध्याय	चरक (दश) विमान स्थान	सुश्रुत	वाग्भट
दोष	प्रकृति	व्याधि	दोष
भेषज	विकृति	भेषज	औषध
देश	सार	देश	देश
काल	संहनन	ऋतु	काल
वल	प्रमाण	वल	वल
शरीर	सात्म्य	देह	दूष्य
आहार	सत्व	अग्नि	अनल
सात्म्य	आहारशक्ति	सात्म्य	सात्म्य
सत्व	व्यायामशक्ति	सत्व	सत्व
प्रकृति	वय	प्रकृति	प्रकृति
वय	...	आयु	आहारावस्था
स्थानान्तराणि	...	वय	वय

१—रोगमादौपरीक्ष्येत्त ततोनंतरमौषधम्,
ततः कर्म भिषग् पश्चात ज्ञानपूर्वसमाचरेत।

यदि इन द्वादशविध परीक्षानुष्ठानों का ठीक ढंग से क्रमवद्ध प्रयोग किया जाय तो रोग का सामान्य ज्ञान और साध्यासाध्य का भी सम्यक् ज्ञान हो जाता है। इनसे सन्निकृष्ट ज्ञान एवं विप्रकृष्ट ज्ञान ((Immediate & Remote prognosis) हो सकता है। सन्निकृष्ट भेद में देहलक्षण, देहप्रमाणलक्षण, देहस्पर, प्रकृति, सात्म्य व वय आदि प्रधान हैं। विप्रकृष्ट भेद में व्याधि, भेषज, देह, वल आदि का ज्ञान होता है। परीक्षा सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान का जो विवरण चरक ने दिया है, उसकी पूरी जानकारी रोग, भेषज एवं कर्म-निर्णय के लिए अत्यन्त लाभप्रद है। आधुनिक रोग-परीक्षा में यह विवरण बहुत कम है। अतएव आयुर्वेदीय चिकित्सकों को इसका सम्यक् ज्ञान होना अति आवश्यक है।

विशिष्ट परीक्षाएँ (अनुष्ठान)

चरक के इन्द्रिय स्थान अध्याय प्रथम में विशिष्ट परीक्षाओं का विवरण दिया गया है। चरक का कथन है कि प्रत्यक्ष, अनुमानुपमान, देश—इन त्रिविध परीक्षाओं द्वारा निम्नलिखित परीक्ष्य विषयों की परीक्षा करनी चाहिए।

इन्द्रियार्थ परीक्षा--वर्ण परीक्षा, स्वरपरीक्षा, गंध परीक्षा, रसपरीक्षा, स्पर्शपरीक्षा।

ज्ञानेन्द्रिय परीक्षा--चक्षु:परीक्षा, श्रोत्रपरीक्षा, घ्राण-परीक्षा, रसनापरीक्षा, स्पर्शनेन्द्रियपरीक्षा।

अन्य परीक्षाएँ--भक्ति-इच्छा, शौच, शील-सहजवृत्त, आचार, स्मृति, आकृति, वल, ग्लानि, तन्द्रा, आरंभ-रोगारंभ, गौरवम्-भारीपन, लाघवम्-हल्कापन, गुणपरीक्षा, आहार-परीक्षा, आहार-परिणाम, उपाय, अपाय, व्याधिपरीक्षा, व्याधिपूर्वरूप परीक्षा, वेदना, उपद्रवश्च, छाया च, प्रति-च्छाया, स्वप्नदर्शनम्, दूताधिकार, पथि औत्पातिकश्च, आतुरकुले भावावस्था, भेषज सवृत्ति, भेषजविकारयुक्ति, सत्त्वपरीक्षा।

इस प्रकार परीक्ष्य विषयों की परीक्षा प्रत्यक्ष, अनुमान, उपदेश द्वारा करनी चाहिए। यह परीक्षा दो प्रकार की है—(१) पुरुष संश्रयाणि और (२) पुरुषमनाश्रितानि। जो पुरुष या रोगी से सम्बन्धित हैं उनकी प्रकृतितः परीक्षा एवं विकृतितः परीक्षा द्वारा तथा जो पुरुषातिरिक्त हैं, उनकी उपदेश एवं युक्तिपूर्वक परीक्षा करनी चाहिए।

आतुरचयनम् (Case taking)

विशेष परीक्षानुष्ठान में निम्नलिखित बातों की आव-श्यकता होती है—

(१) नाम, आयु-व्यवसाय, स्थान, ग्रहणतिथि, विवाहित या अविवाहित, जाति और देश।

(२) रोगी की वर्त्तमान व्यथा (Complaint) पूर्ववृत्त (Previous illness))

(३) रोग प्रारंभकाल (Duration) या आरम्भ (चरक के शब्दों में)

(४) कुलगत इतिवृत्त (Family History)।

इस विषय में रोगी के माता-पिता, भाई-बहन तथा रोगी की संतानों का रोग-विवरण लेना होता है। उनका स्वास्थ्य, दीर्घायु, अल्पायु, मृत्युकालीन आयु इत्यादि का विवरण भी लिया जाता है।

(५) शारीरिक परीक्षा (ज्ञानेन्द्रियों की स्थिति और उनके विषय की परीक्षा)

(अ) नेत्र (Eye)–वर्ण स्थिति (colour) व रूप

(व) श्रोत्र (Ear)–श्रवण व स्वर (शब्द)

(स) घ्राणेन्द्रिय (Nose)–घ्राण (गंध) (Smell)

(द) रसनेन्द्रिय (Tongue)–रसन-स्वादरस (Taste)

(ह) त्वगिन्द्रिय (Skin)–स्पर्श (Touch)।

इनके ज्ञानार्थ प्रत्येक इन्द्रिय की प्राकृत व विकृत स्थिति की परीक्षा करनी चाहिए।

मानसिक प्रभाव--रोगी के विषय की निम्नलिखित स्थितियों का ज्ञान भी जरूरी है—

सत्वम्—मन की स्थिति-शांति इत्यादि,

भक्ति—देव-द्विजाति-गुरु-पितृमातृ भक्ति,

शौच—शुद्धता सम्बंधी (Cleanliness),

शील—चरितानुकारी (Charactar),

आचार—आचरण (Conduct) कैसा करता है,

स्मृति—स्मरण शक्ति कैसी है (memory),

मेधा—बुद्धि की स्थिति (Intellect),

ग्लानि—उदासी-आकृति-निरीक्षण-म्लानता (Depression)),

हर्ष—प्रसन्नता इत्यादि।

आकृति विज्ञान—आकृति-मुख की आकृति म्लान इत्यादि। संज्ञायुक्त है, विसंज्ञ, मुमुर्षु है या दीर्घायु आदि। शारीर-प्रकृति (Nature), शारीरिक विकृति (Morbi-

dity), बल (Vitality), हर्ष (Exhilaration), रौक्ष्य (Dryness), स्नेह, तन्द्रा-निद्रा (Sleep), आरम्भ (Effort on set), गतिमानस्थिर-गौरव (Heaviness), और लाघव (Light) इस विषय के अन्तर्गत शरीर के कर्मेन्द्रियों की विकृति, ज्ञानेन्द्रियों की विकृति आदि सब का समावेश है।

विशेष परीक्षा

(क) आहार (Diet), विहार (Recreation), परिणाम-पाचन शक्ति परिज्ञान।

(ख) उपाय-रोगारंभ (onset), अपाय-निवृत्ति (Disappearence)।

(ग) छाया (Lusture), प्रतिच्छाया (Reflection), स्वप्नदर्शन (Dreams), दूताधिकार (Behaviour of Doot), शकुन विचार (Omens) और भावान्तर परिज्ञान (Good & bad peculiarities)

विशिष्ट परीक्षा—पंच निदान–व्याधि निदान (Cause of the illness, Etiology), व्याधि पूर्व रूप (Premonitary Symptoms) रूप (Symptoms) उपशय, संप्राप्ति (Pathology), वेदना (Pain) और उपद्रव (Complication)।

भेषज क्रिया—भेषज संवृत्ति, औषध निर्माण प्रकार, भेषज विकार युक्ति, औषधि के गुण-दोष, प्रयोग, ज्ञान, (application of medicine & therapeuties)।

साध्यासाध्यता (Prognosis)।

प्राक कर्मानुष्ठानीय—(क) पूर्वरूप कालीन (ख) रूप कालीन (ग) व्याध्युत्तर उपद्रव (घ) अरिष्ट।

दोष अंशाश कल्पना—ज्ञानेन्द्रिय प्रासंगिक, कर्मेन्द्रिय प्रासंगिक, सार्वदैहिक, स्थानीय, व्याधि असाध्य-लक्षण विविध व्याधि के असाध्य लक्षण।

चिकित्सा—सार्वाङ्गिक, पंचकर्म (वमन, विरेचन, स्नेहन, स्वेदन, वस्ति, नस्य)।

स्थानिक—लेप-वंध-अभ्यंग स्वेद, कवल-गण्डू। अंजन, पिण्डी, विम्लायन आदि।

औषधि साध्य, शस्त्रसाध्य-कर्मकार्य प्रारम्भ—पूर्वकर्म, पश्चात् कर्म।

परीक्ष्य—कारण—भिषक
करण—औषधि
कार्य—धातु साम्य
कार्यफल—सुख
अनुवंध—आयु
देश—भूमि व आतुर
काल—आतुरावस्था-ऋतु
प्रवृत्ति—प्रति कर्म समारंभ
उपाय—चतुष्पाद संपत सौष्ठव
उपाय विजय

विशेष परीक्षाएँ—दर्शन—पंचेन्द्रिय प्रत्यक्ष
स्पर्शन—आंत्रिक स्पर्श
प्रश्न—संधि सम्बन्धी विशेष प्रश्न।

विशिष्ट परीक्षाएँ—त्रिविध परीक्षण में दर्शन व स्पर्शन के बाद कुछ विशिष्ट परीक्षाएँ की जाती है, जिनमें विशेष प्रकार के नाड़ी यंत्र, एक मुख उपचतोमुख तथा संदश-ताल यंत्रादिकों का पृथक या मिश्रित के बने यंत्रों का भी प्रयोग करते हैं—उनमें विशेष परीक्षाएँ निम्न हैं—ये परीक्षाएँ कुछ प्राचीन और कुछ आधुनिक हैं—यथा—

नेत्राणु दर्शक यंत्र (Ophthalmoscope)
नासावीक्षण यंत्र (Nasal speculum)
कर्ण वीक्षण यंत्र (Aceral Speculum)
कण्ठ वीक्षण यंत्र (Pharyngoscope)
स्वान्तः दर्शन यंत्र (Laryngoscope)
अंत प्रणाली दर्शक यंत्र (Oesophagoscope)
आमाशय दर्शक यंत्र (Gastroscope)
गुदावीक्षण (Rectal speculum)
गुदान्तक दर्शक यंत्र
कर्ण श्रवण यंत्र (Stethoscope)
रक्त निपीड़ मापनयंत्र (B. P. Instrument)
नाड़ी दर्शक यंत्र (Sphygmomanometer)
जिह्वा मापक यंत्र (Tongue depressures)

अन्य परीक्षाएँ—मल परीक्षा, मूत्र परीक्षा, रक्त परीक्षा, (रक्तसार परीक्षा), मांस परीक्षा, मेद परीक्षा, मज्जा परीक्षा, शुक्र परीक्षा, नाड़ी परीक्षा, जिह्वा परीक्षा, त्वक परीक्षा, नेत्र परीक्षा, और पित्त परीक्षा।

रोग परीक्षण क्रम विज्ञानीय-दर्शन विज्ञान

रोगी जब चिकित्सक के सामने उपस्थित होता है अथवा जब चिकित्सक को रोगी के घर पर चिकित्सार्थ

बुलाया जाता है तब रोगी की परीक्षा का अवसर आता है। अतः चिकित्सक को रोगी की शरीर-स्थिति और रोगी के रोग की स्थिति की परीक्षा के लिए रोगी का परीक्षण आवश्यक होता है। इसकी तीन विधियाँ हैं—(१) दर्शन (Inspection), (२) स्पर्शन (Palpation), (३) प्रश्न (Interrogation)।

अतः रोगी के पास पहुँचने पर सर्व प्रथम दर्शन विधि का प्रयोग करते हैं। इस दर्शन कर्म के लिए उपदेशतः परीक्षा पहले लेते है। शास्त्रीय उपदेश, गुरु या आचार्य का उपदेश प्रथम प्रयुक्त होता है। उसके अनुसार प्रत्यक्ष अपनी चक्षुरीन्द्रिय द्वारा या यांत्रिक सहयोग से दर्शन की क्रिया को करते हैं। पश्चात् इनके आधार पर अनुभव, अनुमान व सहारा लेते हैं।

दर्शन (निरीक्षण) परीक्षा

काय—शरीर को देखकर ये निम्न बातें ज्ञातव्य होती हैं।

(१) शरीर का आयाम (आयत या लम्बाई),
(२) शरीर का विस्तार—व्यास (चौड़ाई)
(३) परिणाह (घेरा)

इनका सम्बन्ध आयु की विभिन्न दशा में विभिन्न प्रकार का होता है। इनका निरीक्षण करके रोगी दीर्घायु-मध्यमायु-अधम आयु (अल्पायु) है—इसकी परीक्षा करते हैं।

काय की बनावट देखकर स्पष्ट समझ सकते हैं कि यह देवकाय, दैत्यकाय, लघुकाय (वामन) या किस प्रकार के काय का है।

स्वस्थकाय—(१) स्वस्थकाय की लम्बाई-चौड़ाई देश, जाति, वय के आधार पर विभिन्न होती है, इसका ध्यान रखना चाहिए। (२) स्थूलकाय-कृशकाय या मध्यम काय का है अथवा, (३) अतिदीर्घ, अतिह्रस्व, अतिलोम, अलोप, अतिकृष्ण, अतिगौर, अतिस्थूल ((Plethoric Type), अतिकृश, (Pthisical Type) (४) भार—इसका सम्बन्ध भी आयु और ऊँचाई से होता है।

नोट—रोगी की ऊँचाई को वक्ष की परिधि से गुणनकर सत्रह का भाग करने पर शरीर का भार पौण्ड में ज्ञात होता है। यह नयी पद्धति है। कर्ण—कान को देखकर—अपस्मार व मस्तिष्क के रोग में कान छोटे व चिपके, निर्बुद्धिता में कान लम्बे, वातरक्त के कर्णपाली में अम्ल संग्रह, कुष्ठ में कर्णपाली का मोटा हो जाना इत्यादि।

शाखाएँ—(१) पदवाह की दीर्घता, पतलापन व अंगुली के पर्व को बड़ा देखकर तथा वक्ष चपटा, गर्दन ऊँची, लम्बा शरीर—अवसंन्नता कर सूचक है। (२) बाहु व पाद की लघुता, अस्थियों में टेढ़ापन, मेरुदण्ड झुका हुआ और धड़ मोटा होता है, यथा-फक्क रोग में। (३) बाहु और पाद की लम्बी अस्थियों की शिरा पर मोटापन, यथा—आमवात में।

धड़ या अंतराधि—उदर प्रान्त में नीली नसों का दिखाई पड़ना। यथा जलोदर-यकृतोदर-प्लीहोदर। उदर का बढ़ जाना, भीतर को धंस जाना, उदर चर्म कृष्णवर्ण का झुर्रीदार दिखाई पड़ना।

आमाशय प्रदेश पर शोथ, अर्बुद का दर्शन, छूने में पीड़ा। यकृत् वृद्धि—प्लीहा-वृद्धि, ग्रहणी प्रदेश पर पीड़ा, पित्ताशय प्रदेश की कठोरता।

उरःस्थल—शोथ युक्त लाल त्वचा का वक्ष में दिखाई पड़ना (फुफ्फुस प्रदाह में) पर्शुकाओं का उभर आना और मांस का कम होना, हृच्छूल की दशा में वक्ष पर हाथ रख दबाकर बैठना इत्यादि उरःस्थल को देख करके तब विचार कर रोग निर्णय में सहायता मिलती है।

आकृति—(अ) शरीर के विभिन्न अंगों की बनावट के आधार पर पुरुष की शारीरिक, मानसिक स्थितियों का ज्ञान होता है।

(ब) विभिन्न प्रकार के रोगों में अंत्रों की आकृति में विभेद हो जाता है। (१) दीर्घकाय (२) स्थूलकाय (३) क्षीणकाय कृशकाय।

गति—(Gait) रोगी की चाल को देखकर कई संस्थान के रोगों का ज्ञान होता है—विशेषकर वात-संस्थान में नाड़ी-क्रिया हानिज रोगों का। अतः रोगी को धीमी व तीव्रगति से चलाकर गति का अध्ययन करना चाहिए। खंज, कलायखंज, पंगु, छाल, अवसन्नता आदि का ज्ञान शीघ्र हो जाता है। गृध्रसी, त्रिधारा, नाड़ियों के रोगों का भी ज्ञान गति देखकर होता है।

स्थिति—(Posture)—रोगी अपने रोग की स्थिति के अनुसार अपने को अच्छी स्थिति में रखने का प्रयत्न करता है। यथा श्वास और हृद्रोग में बैठने से आराम मिलता

है। फुफ्फुस और उसके आवरण शोथ में विपरीत (रुग्ण) पार्श्व से शोथ, उदरशुल में रुग्ण प्रांत दबाकर सोना इत्यादि। धनुस्तम्भ में, वाह्यायाम अंतरायाम, सन्निपात में शिरोलोठन, गर्दन तोड़ बुखार में गर्दन का टेढ़ा हो जाना इत्यादि। विभाग के अनुसार कई रोगों का ज्ञान करते हैं—उर्ध्वजत्रु प्रदेश।

शिरः प्रदेश—शिर के आकार पर ध्यान देकर कई रोगों का ज्ञान होता है। यथा;-जलशीर्ष-पक्करोग, अस्थिशोथ (osteiles deforms)।

लघुशिर, वृहत्शिर—कुंभवत शिर।

ग्रीवा—ग्रीवा के प्रदेश को देखकर गलगण्ड, गण्डमाला, मन्याशिरा, महामातृमाशिरा (Jugular Vein) का स्पन्दन, श्वास प्रणाली का स्थान, अन्तः प्रणाली की स्थिति।

नेत्र—(१) नेत्र देखकर प्रायः कई रोगों का ज्ञान हो जाता है। तिमिर, काय, नीसिकाकाय (Cataract)।

(२) नेत्र का वहिःश्वसन, गलगण्ड में अन्तःश्वसन, क्षय में अंत प्रविष्ट जिह्वा (टेढ़ी) इत्यादि।

(३) अधोवर्त्म कला में रक्तस्राव—रक्तधर, जीर्ण-वृक्क रोग, कपालास्थिमग्न तीव्र मास में दिखायी पड़ता है।

(४) नील, कृष्ण, कांतिहीन, प्रनष्ट कुमारिका रोग की असाध्यावस्था में।

मुख—मुख तथा मुख के भीतर के अंग, तालु, ओष्ठ, काकल, गलग्रंथि, गलतोरण, दंतमास, तंदंतदेख करके रोगी के रोगों का ज्ञान करना। नीलिका, लक्ष्यादि का ज्ञान।

—क्रमशः

शेषांश] **उदावर्त या कब्ज** [६५३ पृष्ठ का

शुक्रहा बद्धविण्मूत्रो विपाको वातलः कटुः।
मधुरः सृष्ट विण्मूत्रो विपाकः कफशुक्रलः॥
पित्तकृत् सृष्टविण्मूत्रः पाकोऽम्लः शुक्रनाशनः॥

च. सू. २६।६१-६२

कटुविपाक वातप्रकोपक होता है। वह शुक्र को क्षीण करता है। (उसके कारण रति की इच्छा; शक्ति तथा अपत्योत्पादन क्षमता न्यून होती है)। यह कटु विपाक मल तथा मूत्र को बद्ध करता है—उन्हें सान्द्र और शुष्क करता है। जसे द्रवगुण के साथ सरगुण रहता है वैसे शुष्क के साथ स्थिर गुण रहता है। मल शुष्क होने से मलद्वार के प्रति उसकी गति यथावत् नहीं रहती।

मधुर विपाक कफ और शुक्र की पुष्टि करने वाला है। पुरीष और मूत्र की प्रवृत्ति उसके कारण ससुख होती है। अम्ल विपाक भी शुक्र का नाशकर्ता तथा मल, मूत्र को उत्तम प्रकार से लानेवाला है।

तात्पर्य—**रस, गुण, वीर्य, विपाक के कर्म कितने भी हों, आचार्यों ने शरीर पर उनकी क्रिया को संक्षेप में देखने के लिए एक द्रव्य को पसंद कर लिया है—वह है पुरीष।** वात-पित्त-कफ की शरीर में स्थिति के परिज्ञान का भी यह सुलभ उपाय है। यशस्वी व्यवसायी चिकित्सक निदानमें इस पुरीष पर ही प्रधानतया दृष्टिपात करते हैं और चिकित्सा में भी मल की प्रवृत्ति पर मुख्यतया लक्ष्य देते हैं। कारण, जसा कि एक पूर्व लेख में दर्शाया है—दोष कुपित होकर धातुओं को दूषित करते हैं, दोष तथा धातु दोनों मिलकर मलोंको दुष्ट करते हैं और दूषित मलों का प्रभाव मलद्वारों पर होता है। मलों में प्रधान पुरीष है! अतः अन्य मलों की अपेक्षया पुरीष की परीक्षा द्वारा ही दोषों के तारतम्य का ज्ञान उत्तमतया होता है और उसे ही आयुर्वेद में प्रकृष्ट पद दिया गया है।

प्रकरण छोड़ने के पूर्व विपाकों के सम्बन्ध में एक उपयुक्त स्पष्टता लगे हाथ कर दूँ। ऊपर घृत पद्यों के आगे चरक-संहिता में एक पंक्ति है, जिस पर कम ध्यान दिया जाता है : **ते॥ गुरुः स्यान्मधुरः कटुकाम्लावतोऽन्यथा।** (अतोऽन्यथेति लघुः—चक्रपाणि)।—अर्थात् मधुर, अम्ल और कटु ये जो तीन विपाक बताए हैं उनमें मधुर गुरु होता है तथा कटु और अम्ल लघु। इन शब्दों द्वारा तन्त्रकार ने सुश्रुतोक्त विपाकों से अपना अभेद दिखाया है। इसका अर्थ यह है कि चरक और सुश्रुत में कोई भेद नहीं है। केवल वर्णन करने की पद्धति में भेद है। चरक ने विपाकों का परिचय उनके रस के अनुसार दिया है, तथा सुश्रुत ने उनकी गुरुता-लघुता को लक्ष्य में रखकर। यह वस्तुस्थिति न समझ कर आज भी लेखक-अध्यापक विपाकों के वर्णन में कोई तात्त्विक मतभेद है ऐसा ही विवरण उपस्थित करते हैं।

गुरु-लघु संज्ञाओं द्वारा विपाकों की परिभाषा देते हुए सुश्रुतजी ने भी उनकी क्रिया पुरीषादि पर ही निम्न पदों में दर्शायी है—**गुरुपाकः सृष्टविण्मूत्रतया कफोत्क्लेशेन च। लघुर्बद्ध विण्मूत्रतया मारुतकोपेन च**—सु. सू. ४१।११। ऊपर जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, उसकी सुतरां पुष्टि इन वचनों से होती है। **(सावशेष)**

१—देखिए, दिसम्बर के सचित्र आयुर्वेद में—रोग **-परीक्षा-पद्धति का प्रथम सूत्र।**

भारतीय चिकित्साशास्त्र का इतिहास

वैद्यरत्न कविराज प्रताप सिंह रसायनाचार्य

भारतीय चिकित्सा-शास्त्र का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना प्राचीन पीड़ा से मुक्ति पाने की मानवीय नैसर्गिक इच्छा रही है ; और चूंकि पीड़ा के प्रति अनिच्छा अथवा विकर्षण मानवों में स्वाभाविक तौर पर रहा है, अतएव ऐसा कहा जा सकता है कि मानव जीवन के साथ औषधि भी एक दुष्ट सहचर की तरह सदैव मौजूद रही है। इस प्रकार चिकित्साशास्त्र का इतिहास जीवन की उत्पत्ति के साथ प्रारंभ होता है, और इस कारण आयुर्वेद का प्रारंभ कब से हुआ , इस सम्बन्ध में कोई तिथि निश्चित करना सर्वथा धृष्टता होगी। आयुर्वेद अनादि है और इसकी उत्पत्ति किसी मनुष्य द्वारा नहीं हुई है। वेदों की अभिव्यक्ति दिव्य पुरुष के जीवन से हुई है—**अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः** इत्यदि **'यस्य निःश्वसित वेदाः, न कश्चिद् वेद कर्तास्ति वेदस्मर्ताचतुर्मुखः'** आदि। आयुर्वेद को उपवेद कहा गया है, क्योंकि वह वेद का ही एक अंग है और उसका स्वरूप तथा वैशिष्ट्य भी वेदों जैसा ही है। ऋग्वेद में विस्प्रल, च्यवन आदि की चिकित्सा के बारे में अनेक श्लोक हैं, जिनसे पता चलता है कि आयुर्वेद के मूलस्रोतों में ऋग्वेद भी एक है। आयुर्वेद की उत्पत्ति के अन्य सूत्र भी हैं। महर्षि श्री कृष्ण द्वैपायन कहते हैं—**ऋग्वेदस्य आयुर्वेद उपवेदः।**

सुश्रुत के मतानुसार आयुर्वेद, अथर्ववेद की एक शाखा है। वह कहते हैं—**इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपांगमथर्ववेदस्य। अनुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्याय सहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः।**

चरक, वृद्ध वाग्भट तथा अन्यों का भी इसी बात पर जोर है कि आयुर्वेद का उद्भव वेदों से हुआ है। ये शाश्वत सत्य हैं, अतएव दिक् और काल की सीमाओं से सर्वथा परे हैं। हाँ, इन सत्यों का प्रकटीकरण विभिन्न रूपों में विभिन्न अवसरों पर होता रहा है।

चरक, सुश्रुत तथा आयुर्वेद के अन्य प्रामाणिक विद्वानों का काल-निर्णय करना अत्यन्त न्यायसंगत और समीचीन होगा। भारत में प्राचीन ग्रंथकर्त्ताओं (लेखकों) का समय और तारीख निश्चित करना बड़ा टेढ़ा कार्य है। कतिपय योरोपीय विद्वानों के मतानुसार चरक, सीथियन सम्राट कनिष्क के यहाँ राजपण्डित थे, जिसका राजत्वकाल ईसा के पूर्व पहली सदी में था। बौद्ध त्रिपिटकों के चीनी अनुवाद में भी चरक के नाम का उल्लेख कनिष्क के राजपण्डित के रूप में मिलता है, किन्तु कोई ऐसा सटीक प्रमाण नहीं मिलता कि 'चरक संहिता' के महान प्रणेता चरक ही कनिष्क के राजपण्डित थे।

केवल नाम-सादृश्य के आधार पर आधारित निष्कर्ष को अन्य प्रमाणों के बगैर कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर इस बात के पुष्ट प्रमाण मिलते हैं कि चरक कनिष्क से बहुत पहले हुए थे। वस्तुतः चरक का उल्लेख पाणिनी ने किया है और पतञ्जलि द्वारा उनकी टीका भी की गयी है—और ये दोनों ही महानुभाव ईसा के जन्म के बहुत पूर्व हुए थे। हालांकि इस सम्बन्ध में कोई निश्चित घोषणा करके संकट मोल नहीं लिया जा सकता, फिर भी संभवतः चरक पाणिनी के पहले हुए, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि गोल्डस्टुकर (Goldstuker) के निश्चयात्मक प्रमाणों के अनुसार चरक का प्रादुर्भाव ईसापूर्व छठी शताब्दि के बाद कभी नहीं हुआ होगा। चरक की शैली और अभिव्यक्ति की प्रणाली से भी इस बात का प्रमाण मिलता है कि इस ग्रंथ का प्रणयन अति प्रारंभिक युग में हुआ होगा। यह तो सर्व विदित है कि अग्निवेश ही 'चरक संहिता' के असली लेखक थे और चरक ने स्वयं प्रत्येक प्रकरण के अन्त में "अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते" कहकर इस बात को स्वीकार किया है। चरक ने अग्निवेश के सम्पूर्ण ग्रन्थ (Treatise) का, केवल अन्त के ४४ परिच्छेदों को छोड़कर संपादन किया। इन बचे हुए परिच्छेदों का संपादन दृढ़बल ने किया, जो पंचनदपुरा के एक ग्रामीण थे। पंचनदपुरा नामक स्थान का अबतक संतोषजनक पता नहीं लग सका है। कुछ लोग वर्त्तमान बनारस को ही उक्त स्थान बताते हैं, जब कि कुछ लोग पंजाब और काश्मीर में इस स्थान को प्रतिष्ठित करते हैं।

अग्निवेश प्रणीत ग्रंथ का मूल आकार-प्रकार क्या था, यह जानना बड़ा कठिन है—उतना ही कठिन यह भी है कि चरक ने मूलग्रंथ में कितना और कहाँतक संशोधन किया। किन्तु यह बात निःसन्देह कही जा सकती है कि चरक द्वारा 'संहिता' में महत्वपूर्ण संशोधन-परिवर्धन किए गए, क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि चरक को पुनः नए सिरे से पूरी पुस्तक लिखनी पड़ी।

विस्तारयतिलेशोक्तं संक्षिपत्यति विस्तरम्।
संस्कर्त्ता कुरुते तंत्रः पुराणं च पुनर्नवम्॥

अग्निवेश के पांच सहचर-शिष्य थे, जिनमें से प्रत्येक ने ग्रंथकर्त्ता अग्निवेश के नाम से एक-एक ग्रन्थ लिखा। इनमें से केवल हारीत-संहिता ही अभी हाल तक प्राप्य थी। किन्तु 'चरक संहिता' के साथ तुलनात्मक दृष्टि से 'हारीत संहिता' का अध्ययन करने पर उक्त पुस्तक के अग्निवेश के समकालीन हारीतप्रणीत होने में संदेह मालूम होता है। इन दोनों संहिताओं की ध्वनि और विषय-निरूपण में इतना पार्थक्य है कि उक्त ग्रंथ एक ही गुरु के शिष्यों द्वारा लिखे गए प्रतीत नहीं होते। हाँ, 'भेल संहिता', जो तंजौर राज्य पुस्तकालय में अपूर्णावस्था में अन्वेषित और कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुई थी, असली संहिता प्रतीत होती है। इन दोनों ग्रंथों के सम्बन्ध में अबतक कुछ भी शोध नहीं हुई। १९२३ ई० की जनवरी में कलकत्ते की एक सभा में सुप्रसिद्ध रिसर्च-स्कालर डाक्टर बेणीमाधव बरुआ ने भेल विषयक एक व्याख्यान के सिलसिले में यह प्रमाणित करने का प्रयास किया था कि भेल, बुद्ध और महावीर के युग तक जीवित रहे थे, किन्तु चरक—जिनका प्रादुर्भाव अग्निवेश के बहुत पीछे हुआ था और जो भेल के समकालीन थे—के युग के बारे में व्यक्त उनके विचार यहाँ पर समानरूप से लागू होते हैं। अबतक बहुत-सी ऐसी बातों का पता नहीं लगाया जा सका है, जिनके लगने से अनेक लाभ हो सकते हैं। अतएव इन विषयों में और भी शोध की आवश्यकता है।

चरक के बाद, वैद्यकशास्त्र के विख्यात प्रणेताओं में अग्निवेश ही सुश्रुत के नाम से प्रसिद्ध प्रतीत होते हैं। सुश्रुत ने दिवोदास के साथ अध्ययन किया था, जो कि देवगणों के चिकित्सक धन्वन्तरि के अवतार थे। वह राम के समकालीन विश्वामित्र के पुत्र थे। सुश्रुत अपने युग के सर्वोत्कृष्ट शल्य-शास्त्री (Surgeon) थे—ठीक उसी तरह चरक भी सब से बड़े चिकित्सक थे और सुश्रुत के युग में भारत में शल्य-चिकित्सा (Surgery) अपने चरमोत्कर्ष पर थी।

सुश्रुत के बारे में काल-निर्णय सम्बन्धी मतभेद होने के अतिरिक्त उनके रचनाकाल के बारे में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं है। ग्रंथकर्त्ता ग्रंथ के आरंभ में अन्यों की वन्दना करते हुए सुश्रुत की भी वन्दना करता है, ऐसा सुश्रुत में मिलता है—**"नमो ब्रह्म प्रजापत्यश्विबलमिधन्वतरि सुश्रुत प्रभृतिभ्यः"**। सचमुच सुश्रुत ने स्वयं अपने बारे में कदापि ऐसा नहीं लिखा होगा। डल्हणाचार्य की टिप्पणी में आए एक वाक्य के अनुसार नागार्जुन ने सुश्रुत का संपादन किया था। ऐसी स्थिति में उक्त वाक्य निश्चय ही नागार्जुन अथवा अन्य टीकाकारों द्वारा उद्धृत किया गया होगा। उक्त वाक्य की टीका करते हुए डल्हण कहते हैं—**"यत्र तत्र परोक्षे नियोगस्तत्र तत्रैव प्रतिसंस्कर्तृसूत्रं ज्ञातव्यमिति प्रतिसंस्कर्त्तापीह नागार्जुन एव।"**

अन्य विख्यात लेखकों में वाग्भट्, माधवकार, चक्रपाणि, शार्ङ्गधर और भावमिश्र उल्लेखनीय हैं, किन्तु इन लेखकों में से अधिकांश ऐसे हैं, जो न्यूनाधिक आधुनिक कहे जा सकते हैं।

विभिन्न लेखकों के काल-निर्णय सम्बन्धी अभिमतों के बारे में यह कहा जा सकता है कि नामों की एकरूपता पर आधारित प्रमाणों से बड़ी भ्रांति उत्पन्न हो सकती है। इस कारण, यह प्रमाण विश्वसनीय नहीं है। इसके सिवा, भारत की एक प्रथा यह रही है कि विशेष शास्त्र या मतवाद के प्रवर्त्तकों के नाम के द्वारा उक्त शास्त्र या मतवाद का प्रतिनिधित्व होता रहा है—जैसे न्यायादि शास्त्र। भारत और चिकित्सा विज्ञान ही क्यों—ज्ञान की अन्य शाखाओं में भी यही बात लागू होती है। इस प्रकार हमें प्रायः विभिन्न विचारधाराओं की वैसी पुस्तकें देखने में आती हैं, जिनमें एक-दूसरे के मत और युक्तियों का खण्डन-मण्डन रहता है। स्पष्ट ही पूर्ववर्त्ती लेखकों के लिए यह सभव नहीं था कि वह किसी उत्तरकालीन भाष्यकार द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों का खण्डन कर पाता। अतएव, इन सारी बातों का एक ही निष्कर्ष प्रतीत होता है और वह यह कि प्रत्येक लेखक के मूल ग्रंथ में आवश्यकतानुसार उनके अनुयायियों द्वारा कुछ अंश पूरक की तरह जोड़े गए तथा उनका रूप-परिवर्त्तन किया गया, तथापि लेखक के मूलनाम को रखा गया था। इस प्रकार मूलग्रंथ के आकार-प्रकार में

में वृद्धि होती चली गयी और अन्ततः ऐसा हुआ कि मूल ग्रंथ का स्वरूप और रचना-काल दोनों ही विस्तृत हो गए। चरक और सुश्रुत संहिताओं के सम्बन्ध में भी बहुत संभव है कि यही बात हुई हो।

पुरातत्ववेत्ता अभी तक पूरी तरह मोहँजदड़ो की खुदाई में प्राप्त अवशेषों के समय के बारे में समुचित प्रकाश नहीं डाल सके हैं, जिससे कि इतिहासकार मोहँजदड़ो की सभ्यता का तादात्म्य अथवा समत्व द्रविड़, असीरिया और बेबीलोन की सभ्यताओं के साथ स्थापित कर सकने में सक्षम हो सकें। किन्तु मोहँजदड़ो की सभ्यता के सम्बन्ध में यह बात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि यह सभ्यता स्वरूपतया तथा कालक्रमानुसार निश्चय ही प्राग्वैदिक (Pre-Vedic) थी। इसकी लम्बी-चौड़ी गलियाँ, सुनिमित नाले, स्नान गृह और जनता के मनोरंजनार्थ सुरम्य-स्थान आदि अत्युन्नत शहरी सभ्यता का प्रतिनिधित्व करते हैं। साथ ही यह भी प्रतीत होता है कि स्वास्थ्य और स्वच्छता के सम्बन्ध में उनलोगों का ज्ञान कितना विकसित था। खनिज द्रव्यों तथा अन्य औषधियों की विद्यमानता यह कल्पना करने के लिए विवश करती है कि मानव इतिहास के उस प्रारंभिक युग में भी उन लोगों को खनिज औषधियों (Mineral drugs) के आरोग्यकारी और निवारक मूल्यों (Preventive & curative value) का ज्ञान था।

देवता को प्रसन्न करने के लिए मंत्रोच्चार के साथ आतुरों को औषध दी जाती थी, क्योंकि प्राचीनों का दृढ़ विश्वास था कि व्याधियाँ देवताओं के आक्रोश के फलस्वरूप ही होती है। प्राचीन युग में धर्म के साथ चिकिसा का सम्बन्ध इसलिए किया गया कि चिकित्सा विषयक ज्ञान के मूलस्रोत ऋषिगण थे। सांसारिकता से विरक्त हो जाने के बाद ज्ञान का अन्वेषण और अपने अनुभूत ज्ञान का शिष्यों को मुक्त दान उनका सामाजिक दायित्व होता था। इस धार्मिक अनुबन्ध (Religious association) के कारण ही चिकित्सावृत्ति लोकसेवा की भावना के साथ सम्पृक्त रही है। वैदिक और उत्तरवैदिक कालीन चिकित्सा-पद्धतियाँ, बहुत अंशों में 'डाक्ट्रीन ऑफ सिगनेचर" नामक सिद्धान्त द्वारा निर्देशित की गयी हैं। शरीर के व्याधिग्रस्त भागों से मिलती-जुलती सी दीख पड़नेवाली वस्तुओं के रंग, आकारादि के आधार पर ही आतुरों की चिकित्सा की जाती थी। इस प्रकार की शुरूआतों और निम्न श्रेणी के पशुओं की सहज प्रवृत्ति (Instincts) तथा मनुष्य के प्रातिभ ज्ञान (Intuition) द्वारा निर्देशित होकर आरोग्यशास्त्र (Healing science) वर्तमान स्वरूप प्राप्त कर सका। अतीन्द्रिय यथार्थ (Super-sensual reality) की मानसिक चेतना के साथ मानव को आचारों और उपचारों द्वारा इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि जीवन के पार्श्व में रहनेवाली रहस्यात्मक शक्तियों को, जो देवताओं, देवदूतों और भूतों (Spirits) के रूप में व्यक्त होती रहती हैं, अनुकूल बनाया जाय अथवा उन्हें सन्तुष्ट रखा जाय। इस प्रकार अथर्ववेद चिकित्सा सम्बन्धी मनः-शारीरिक प्रक्रिया की एक ऐसी पंजिका (रेकार्ड) है, जिसमें अति-पुराकालीन जादू-टोने, मन्त्रोपचार, प्रार्थना, ताबीज-जन्तर के साथ-साथ औषधियों द्वारा उपचार किये जाने का विवरण हमें प्राप्त होता है। इसके ११४ श्लोक ऐसे हैं, जिनमें वैद्यक प्रसंगों की ही चर्चा है और ज्वर, यक्ष्मा (Consumption) व्रण (Wounds), कुष्ठ रोग (Leprosy) वात रोग (Rheumatism), चर्म रोग (Worms) नेत्र और कर्ण रोग, जहरबाद, उन्माद, अपस्मार (Epilepsy) हृदय रोग, शिरःशूल आदि का उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है।

अथर्ववेदकालीन लोग सर्प अथवा अन्य जंगली जानवरों के काटे जाने पर मंत्रों और टोने-टोटकों द्वारा विष उतारने का उपचार किया करते थे। इन वैदिक आर्यों को शरीर-रचना शास्त्र (Anatomy) और शल्य-क्रिया का व्यावहारिक ज्ञान था। वैज्ञानिक चिकित्सा के रूप में आयुर्वेद की कहानी का प्रारंभ इस वैदिक युग के बाद ही होता है, जब कि मानवों (Mortals) और देवों (Immortals) ने मिलकर दान-प्रतिदान किया—जब कि देव-दानव और प्रेतात्माएँ प्रतिदिन यथार्थरूप में दृष्टिगोचर हुआ करती थीं और जब कि राक्षसगण अविरल प्रवाहित निर्झरों मे रहते और गन्धर्व लोग पार्वत्य प्रदेशों और घाटियों में मृगया किया करते थे। स्वाभाविकतया उस युग में पुरोहित और चिकित्सक एक ही व्यक्ति होता था।

विश्व में आयुर्वेद के प्रचलित होने के सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि सर्व प्रथम करुण-हृदय स्वयम्भू ब्रह्मा ने ही आयुर्वेद की रचना की। प्रजापति ने यह विद्या उनसे सीखी, प्रजापति से पुनः अश्विनीकुमारों ने सीखी और अश्विनीकुमारों से इन्द्र को यह विद्या प्राप्त हुई। चरक संहिता में

ऐसा उल्लेख मिलता है कि कृतयुग के अन्त में जब पृथ्वी पर व्याधियाँ उत्पन्न हुईं तो अनेक महर्षियों ने भारद्वाज मुनि को इन्द्र के पास आयुर्वेद का अध्ययन करने के लिए भेजा। देवताओं के राजा इन्द्र के यहाँ भारद्वाज ने आयुर्वेद का अध्ययन किया और स्व-अर्जित आयुर्वेदीय ज्ञान का दान उन्होंने आत्रेय-पुत्र पुनर्वसु तथा अन्यों को दिया। पुनर्वसु ने बड़े यत्नपूर्वक अग्निवेश, भेल, जतुकर्ण, हारीत, पाराशर और क्षारपाणि को चिकित्सा-कला की शिक्षा दी और उन लोगों को चिकित्सा-कला में निष्णात बनाया। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इनमें से प्रत्येक ने एक-एक ग्रंथ लिखा और इस तरह आयुर्वेदीय ज्ञान के प्रसार में इन महानुभावों से बड़ी सहायता प्राप्त हुई। 'भावप्रकाश' में जैसा उल्लेख है, उसके अनुसार कहा जाता है कि आत्रेय मुनि स्वयं देवराज इन्द्र के यहाँ गये थे। 'भावप्रकाश' में ऐसा बताया गया है—

आयुर्वेदं पठिष्यामि नैरुज्याय शरीरिणाम्।
इति निश्चित्य गतवानात्रेयस्त्रिदशालयम्॥

सुश्रुत में पुनः ऐसा उल्लेख मिलता है कि सुरराज इन्द्र से धन्वन्तरि ने प्रशिक्षण प्राप्त किया था और प्रशिक्षित होने के पश्चात् धन्वन्तरि ने उपधानव, सुश्रुत और अन्य लोगों को इस ज्ञान से लाभान्वित किया।

इस युग के अन्त में चरक के अनुसार हिमालय पर ऋषियों का एक महासम्मेलन हुआ था। चरक और सुश्रुत की कृतियाँ ईसापूर्व १००० से २०० वष के बीच प्रकाश में आयीं। इस युग में वैज्ञानिक छानबीन करने की वास्तविक भावना विद्यमान थी और उसका व्यावहारिक रूप भी दिखायी देता था। दर्शन, ज्योतिष, गणित, त्रिकोणमिति (Trignometry), संगीत और प्रशासन (Administration) आदि विषयों का इस युग में विकास हुआ और उन विषयों की बुनियाद पड़ी। तक्षशिला और नालन्दा जैसे विश्वविद्यालय, समग्र संसार के विद्वानों तथा आचार्यों को अपनी ओर आकृष्ट करते थे और इन दोनों ज्ञान-केन्द्रों में विश्व-विश्रुत विद्वान रहते थे। औषधीय जड़ी-बूटियों में शोध करने की दृष्टि से यह विशाल देश सदैव अत्यन्त उर्वर रहा है। ईसा पूर्व ३२३ और ६४२ वर्ष के बौद्ध संस्कृति-युग के दौरान में आयुर्वेद की शैक्षणिक प्रगति (Academic progress) का प्रतिमान स्थिर बना रहा; साथ ही अस्पताल स्थापित करने सम्बन्धी विचारों का इस युग में उदय हुआ और धात्री विद्या (Nursing) की ओर भी इस युग में पर्याप्त ध्यान दिया गया तथा उसको सुव्यवस्थित रूप मिला। चिकित्सा-विषयक सहायता धार्मिक संगठन का एक आवश्यक अंग बन गयी। इस प्रकार आयुर्वेद का प्रसार भारत की सीमा के बाहर भी हुआ। यूनान, चीन तथा रोम से अध्ययनार्थ विद्यार्थी आते थे; क्योंकि भारत उस समय विद्या का केन्द्र था। संक्षेप में ऐसा कहा जा सकता है कि उपनिषद् अथवा ब्राह्मणयुग, वैदिक युग के बाद आया और उपनिषद् युग में ही आत्रेय मुनि ने औषधियों और व्याधियों के सम्बन्ध में मान्य सिद्धान्तों को परिष्कृत किया और ऐसा करके उन्होंने वैज्ञानिक चिकित्सा प्रणाली के युग में पदार्पण किया। उस युग में बाहरी देशों में भारतीय चिकित्सक आमंत्रित किए जाते थे, उनसे परामर्श किया जाता था और वे ही चिकित्सालयों में प्रधान चिकित्सक के पद पर प्रतिष्ठित भी किए जाते थे।

(सावशेष)

ग्रहणी-विमर्श

श्री ज्योतिर्मित्र आचार्य, ए० एम० बी० एस०, साहित्याचार्य, दर्शनाचार्य, आयुर्वेदाचार्य

आयुर्वेदे ग्रहण्या यद्वर्णनमुपलभ्यते, तत्रैकतयाऽपितु पृथङ्नामतः पृथग्रूपेण च। यदा खलु वयन्दत्तावधाना विमृशामो रचनादृष्ट्या कार्यदृष्ट्या विकृतितया वा तदा नूनं विशदी भवति स्थानविनिश्चितिर्हि चास्या रचनाया इति। अद्यत्वेऽपि जनाः संशेरतेऽस्या ऊरीकरणे।

तत्र ग्रहणी नाम अग्नेराश्रयीभूतमधिष्ठानम्, याऽऽमाशयादागतमर्धपक्वमन्नं, यावत् कार्त्स्न्येन न विपच्यते तावद् गृह्णाति, परिपक्वताञ्चापन्ने स्वस्मादधःकोष्ठाङ्गे विसृजति ; नाभेरुपरि ह्यस्याःस्थानमस्ति[1]। चरके ग्रहण्याः स्वरूप प्रतिपादने प्रसंगात्तत्प्राकृतकर्मनिरूपणावसरे च यद् "बलोपस्तभबृंहिता" इति पदं निवेशितं तत्तु विमर्शार्हम्। अत्राचार्यचक्रपाणिर्व्याचष्टे "उपस्तंभिता इति अग्निना पित्तव्यापारकरणेनानुकूलिता, उपबृंहितेति अग्निना बृंहणव्यापारकरणेन सशक्तीकृता ; किंवा उपस्तंभत्वेन उपबृंहिता, अत्र पक्षे उपस्तंभसाधारण्यं ग्रहण्या आह"इत्यस्मादेतदवगतं भवति यदत्र पित्तव्यापारः संगच्छते, उपबृंहणपदेनाग्निना सशक्तीकृता भवति ; इह प्राच्य प्रस्थानस्य "अनुकूलिता पित्तव्यापारेण सशक्तीकृताऽग्निना" पुष्टिर्भवत्यर्वाच्यदृशाऽवलोचनेन[2]। "तत्र च पित्तकोषादागतं पाचकपित्तम् (Bile), अग्न्याशयादागत आग्नेयरस (Pancreatic juice) इच पृथक् स्रोतोद्वयेनान्ते सम्मिलित मुखेन प्रसिच्येते, अर्द्धपक्वस्यान्नस्य सम्यग् विपाकाय" इति गणनाथसेनमहाशयानुसारेणापि सुस्पष्टं, परं पाश्चात्य क्रिया शारीरविद्भि र्द्वयोरसयोर्हि स्रवणं कोष्ठेऽन्नमुपगते सत्येव भवति इति प्रत्यक्षीकृत्य निरूपितमस्ति तस्मान्नात्र कश्चिद् विसंवादः।

ग्रहणीयं षष्ठीपित्तधरा कलाऽस्ति, या चतुर्विधमन्नपानमामाशयात् प्रच्युतं पक्वाशयोपस्थितं धारयति, पित्ततेजसा पचति शोषयति चेत्यादि विवृतं सुश्रुताचार्येण[1]। वाग्भटमतानुसारेण ग्रहणी एव पित्तधरा कला सा च पाचक पित्तस्य स्थानमस्ति ; इयं पक्वाशयद्वारि अर्गलेव सती आमाशय एवाहारं पचति पक्वाऽधो विमुञ्चति ; एवं ग्रहण्याबलमग्निरग्नेश्चबलं ग्रहणीति अन्योन्याश्रयीभूतं वरीवर्ति[2]। वृद्धवाग्भटमतमनुसृत्य सम्यकतया विषयवैशद्यं प्रकटी भवति। व्याहरति स यत् इयं पक्वामाशयमध्यस्था षष्ठी पित्तधरा कला याऽग्नेरधिष्ठानतयाऽऽमाशयात् पक्वाशयोन्मुखमन्नं पचति शोषयति पक्वे सति विमुञ्चति। दोषाश्रिता सत्यायामेवातएवान्नग्रहणाद् ग्रहणी प्रोच्यते। सा युक्ता सती शरीरं वर्त्तयतीति[3]।

१—अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद्ग्रहणी मता।
नाभेरुपरिसाह्यग्निर्बलोपस्तंभ वृंहिता॥
अपक्वं धारयत्यन्नं पक्वं सृजति चाप्यधः॥
—चरक चि० १५।५६।५७।

२—(a) × × × When the food enters the duodenum an harmone termed CHOLECYSTOKININ is secreted which causes contraction of gall-bladder and hence a small amount of bile enters the duodenum.—J.Mellanby's thought in "Handblook of Physiology" Page 257,

(b) In the duodenum the pancreatic juice, which is essential for the digestion of proteins and fats, and with bile, which promotes the absorption of the products of digestion of the latter.—A Text book of the practice of medicine. Page 599, Edition 1934 :2

१—षष्ठी पित्तधरा (कला) या चतुर्विधमन्नपानमामाशयात्प्रच्युतं पक्वाशयोपस्थितं धारयति। अशितं खादितं पीतं लीढं कोष्ठगतं नृणाम्। तज्जीर्यति यथाकालं शोषितं पित्ततेजसा॥ —सुश्रुत शा० ४।१८।-१९।

२—तदधिष्ठान मन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता।
सैव धन्वन्तरिमते कला पित्तधराह्वया।
स्थिता पक्वाशयाद्वारि भुक्तमार्गर्गलेव सा॥
ग्रहण्या बलमग्निर्हि सचापि ग्रहणी बलः।
भुक्तामामाशये रुद्ध्वा स विपाच्य नयत्यधः॥
—अष्टाङ्गहृदय शा० ३।५०,५१,५२,५३

३—षष्ठी पित्तधरा नाम पक्वामाशयमध्यस्था, सा ह्यन्तरग्नेरधिष्ठानतयाऽऽमाशयात्पक्वाशयोन्मुखमन्नं बलेन विधार्य पित्ततेजसा शोषयति, पचति, पक्वं च विमुञ्चति। दोषाधिष्ठिता तु दौर्बल्यादाममेव। ततोऽसावन्नस्य ग्रहणात् पुनर्ग्रहणी संज्ञा। बलं च तस्याः पित्तमेवाग्न्यभिधानमतः साऽग्निनोपबृंहितैकयोगक्षेम शरीरं वर्त्तयति।
—अष्टाङ्गसंग्रह नि०

ग्रह उपादान इति धातोः "ग्रहेरनि" इत्युणादिसूत्रेणानि प्रत्यये कृते ङिषा ग्रहणी साध्यते। अनया व्युत्पत्या सिद्धमिदं यद् या गृह्णाति सा ग्रहणी इति कृत्वा केवलं कार्यज्ञानमेव प्रतीयते न चावस्थितिः, अस्मिन् विषये चेदृशी विवेचना यत्—

नेयं स्वतन्त्रावयवरूपा रचना कोष्ठांग परिगणनेऽस्या अकीर्त्तनात्, तस्मात्कोष्ठान्तर्गता कस्यचिदङ्गस्य विभाग-रूपा। चरके कोष्ठांग परिगणने संभवतः पक्वाशय शब्द एवास्य बोधको भवितुं शक्नोति नान्यत्[1]। एतादृशमेव वर्णनं सुश्रुतवाग्भटयोरप्युपलभ्यते।

इयं धात्वाशयमध्यगैकाऽन्तस्त्वक् कला वा तस्याः पित्त-धराऽऽख्यानात् कलागुणोपपन्नत्वाच्च यतश्चाभिहितं सुश्रुतेन "कलाः खल्वपि सप्त भवन्ति धात्वाशयान्तर्मर्यादाः" अर्थात् यथा बहिष्ठात् त्वक् शरीरमावृणोति तथैव कलाऽपि आभ्यन्तरतया दोषधातुमलानावृणोतियद्धि दृढ़ीकृतं डल्हणेन। उदाजहार सुश्रुतस्तां "काष्ठसारवत्" मन्यमानः, यथा-काष्ठमध्यभागो बहिःस्थत्वगावृतत्त्वात् सुरक्षितो भवति तथैव कलामयी ग्रहण्यपि सुरक्षिता भवितव्यैव[2]।

इयं पित्तस्य स्थानमस्या अग्निकार्यकरत्वात्, सुश्रुते दहनपाचनाद्युपचार परम्परया पित्ताव्यतिरिक्तोऽग्नि-रभिमतः[3]। द्रवत्वसरत्वयोरपि प्राधान्यमाग्नेयस्यैव यत्पचत्या हारं पक्वे रसं गृह्णाति पक्वपदार्थान् विशेषतो मल-भूतान् उण्डुके प्रक्षिपति। उण्डुको नाम पक्वाशयस्यान्तिमो भागः पुरीषाधारो वा कोष्ठ विशेषः।

१—पंचदशकोष्ठांगानि यथा ×× यकृच्च प्लीहा च, वस्तिश्च, पुरीषाधारश्च, आमाशयश्च, पक्वाशयश्च, उत्तर-गुदं, अधरगुदं च, क्षुद्रान्त्रं स्थूलान्त्रं, च वपावहनं चेति॥

—चरक

२—यथा हि सारः काष्ठेषु छिद्यमानेषु दृश्यते।
तथा हि धातुर्मांसेषु छिद्यमानेषु दृश्यते॥

—चरक शा० ७।१०

स्नायुभिश्च प्रतिच्छन्नान् सन्ततांश्च जरायुणा।
श्लेष्मणावेष्टितांश्चापि कलाभागांस्तु तान् विदुः॥

—सुश्रुत शारीर० ४।६-७

३—तत्र जिज्ञास्यं किं पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निः? आहोस्वित् पित्तमेवाग्निरिति? अत्रोच्यते न खलु पित्तव्यति-रेकादन्योऽग्निरुपलभ्यते, आग्नेयत्वात् पित्ते दहन-पाचनादि-ष्वभिप्रवर्त्तमानेऽग्निवदुपचारः क्रियतेऽन्तरग्निरिति।

—सुश्रुत सूत्र० २१।९

ग्रहण्या बलमग्नावाश्रितमस्ति ग्रहण्याञ्चाग्नेः[1], यदा पित्तं विकृतिमापद्यते तदाऽस्याः कार्यविरोधी भवति, बल-नाशात्। यदा खलु पित्तधराकलाधिष्ठितो दोषो भवति तदाऽग्निरपि अकिञ्चित्करो भवति।

अथेदं विमृश्यते यद् "ग्रहणी" इत्यनेन कस्य बोधःस्यात् तत्र विनिश्चेतुं शक्ता वयन्तस्या रचना-क्रिया-विकृतिदृशा च। ग्रहण्याः स्थानं नाभेरुपरि वर्त्तते। इयं पक्वा-माशयमध्यगाः क्रमशः पक्वाशयात् प्रथमा ग्रहणी भवति। इयं कला नाडीरूपा वा रचना, या तत्र प्रसृताऽस्ति। यत् कार्यं पित्तधरायास्तत्कार्यमेव ग्रहण्याः। इयं पित्तधरा-कलाऽभिधाना सती-अपि पच्यमानाशयपित्ताशयाभ्यामपि व्यपदिश्यतेऽग्निस्थानस्वरूपाऽपि। इयमीदृशी रचना याऽऽ माशयात्पक्वाशयगमाहारं गृह्णाति, पुनश्च पक्वाशये विमुञ्चति तद्द्वारि चार्गलावत् कार्यं कुर्वन्ती—अधितिष्ठति। सुश्रुते पित्ताशयपक्वाशययोर्वर्णनं पृथक्कृतमुपलभ्यते।

कार्यदृष्ट्या ग्रहणी जाठराग्नेरधिष्ठानं पाचकपित्तस्य वा स्थानमस्ति या ईषत्पक्वमन्नं गृहीत्वा सम्यक् पचति, पाचकाग्निशक्तिं विवर्द्धयति ह्रासयति च, एवमामान्नस्य पक्त्री सारकिट्ट विवेचनी च, अविपक्वान्नं वामपार्श्वे (चरके) ऽधो (मधुकोषव्याख्यायाम्) वा विसृजति। चतुर्विधमन्न-पानं पित्ततेजसा पचति शोषयति च। आहोस्विदग्निरेव-ग्रहणी अन्योऽन्याश्रितत्वात्परस्परोपकारकत्वादेकयोगक्षेमकर करत्वाच्च, आयुर्बलवर्णस्वास्थ्योत्साहौजस्तेजः प्रभृतीनां सम्पादिका[2]। पाकादिकर्मणा चानलशब्देन व्यवह्रियते अस्योपर्येव धात्वग्निर्भूताग्निः पञ्चविधपित्तञ्चाश्रितमस्ति। इहहि पित्तमच्छमुदीर्यते। आमाशयस्य नाभेरुर्ध्वं पक्वाशयस्य

१—ग्रहण्या बलमग्निर्हि स चापि ग्रहणी बलः।

—अ० हृ० शा० ३।५३

२—आयुर्वर्णोबलंस्वास्थ्यमुत्साहोपचयौप्रभा।
ओजस्तेजोऽग्नयः प्राणाश्चोक्ता देहाग्नि हेतुकाः।

—चरक. चि. १५।३

३— × × तत्र पक्वामाशयमध्यगम्।
पंचभूतात्मकत्वेऽपि यत्तजस गुणोदयात्।
त्यक्तद्रवत्वं पाकादिकर्मणाऽनल शब्दितम्।
पचत्यन्नं विभजते सारकिट्टौ पृथक्तथा॥
तत्रस्थमेव पित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहात्।
करोति बलदानेन पाचकं नाम तत्स्मृतम्॥

—अ. हृ. सूत्र. १२

चाधोऽवस्थितत्वाच्च शरीररक्षा सम्पद्यते। इयमेव रचनाऽप्यपित्तस्थानेष्वनुग्रहं करोति।

विकृतिदृष्टया च पर्यालोचनेनाहिताहारवशाद् दोषेण दोषैर्वा दुष्टा सती अग्नेर्विकृतत्वाच्च, अपक्वं कदाचित्पक्वमामं मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवं चान्नं विमुञ्चति ईदृशी ग्रहणी व्याधिरूपा व्यपदिश्यते[1]। अग्निग्रहण्योश्चान्योऽन्याश्रितत्वादाराधेयभावाच्च एकस्य दुष्टेऽन्यस्य दुष्टिः सिद्धैव, अतोऽग्निना पच्यमानेऽपि ग्रहण्येव पचतीति व्यवह्रियते बुधैः। ग्रहणीदुष्टया ग्रहण्याश्रित वह्नेरपि दुष्टेऽग्निमान्द्यादयोऽपि ग्रहणी-विकार उच्यन्ते[2]। ग्रहणीगताग्नेरतिप्रबलत्वाद्भस्मकस्तीक्ष्णाग्निनां वा रोगः प्रादुर्भवत्येवञ्च मन्देऽग्नौ नानारोगजातजनकस्यामदोषस्यामविषस्य वोत्पादको भवति सामान्यतोऽपक्वान्नस्यापक्वमलस्याधः प्रवृत्तिरेव ग्रहणीरोगः कीर्त्यते। यतश्च प्रतिपादितमपि—

अधस्तु पक्वमामं वा प्रवृत्तं ग्रहणी गदः;
उच्यते, सर्वमेवान्नं प्रायोह्यस्य विदह्यते॥
अतिसृष्टं विबद्धं वा द्रवं तदुपदेश्यते।

केचन आमाशयस्याधोद्वारं मुद्रिकाद्वारमेव (Pyloric orfice) ग्रहणी पदेन मन्वते तन्न—शरीर-क्रियादृष्टया च तल्लक्षणैरसम्बद्धत्वात्। इतरे तत्पदेन समग्रं क्षुद्रान्त्रमभिनिवेशयन्ति तदप्यसमीचीनं-पचन-सार-किट्ट विभजन प्रभृतीनां क्रियाणान्तत्रासंभवात्। उण्डुकानन्तरं मलाधराकला संगच्छते यदाऽह सुश्रुतेऽपि पञ्चमी पुरीषधरा नाम यान्तः कोष्ठेमलमभिभजते पक्वाशयस्था, भवति चात्र—

यकृत्समन्तात् कोष्ठं च तथाऽन्त्राणि समाश्रिता।
उण्डुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला॥

एवमूहापोहेनैतन्निगमनं भवति यद् ग्रहणी पदेन "पित्तव्यापारकरणेनानुकुलिता" "अग्निना बृंहण व्यापारकरणेन स शक्तीकृता" इत्यत्र चक्रपाणेर्व्याख्यानेन पुरा विमृष्टं। अर्वाच्य विधिनाऽऽलोच्यमानमामाशयादधोलघ्वन्त्र प्रारंभं यावत् स्थानं यदि ग्रहणी (Duodenum) नाम्नोच्येत्तर्हि नात्र कश्चिद्भ्रमः संभाव्येत।

चिकित्सासौकर्यार्थमेवास्या विनिश्चयः क्रियते। ग्रहणीरोगे यानि सामान्य लक्षणान्युपलभ्यन्ते तानि सर्वाणि sprue रोगेण समं साम्यमादधति। परिभाषानुसारेण य उष्णकटिबन्धे आमाशयलघ्वन्त्रमार्गस्याव्यवस्थयाऽज्ञात निदानो व्याधिरस्ति यश्च वसाद्राक्षशर्करा-नियतजीवितिक्ति-सुधानामपर्याप्तिशोषणेन न्यून (हीन) शोषणेन वोत्पद्यते स एव ग्रहणी[1]।

ग्रहणी (माधवनिदाने)	Sprue (Savills System of medicine)
× ×पीताभंपीताभःसार्यते-द्रवम्, भिन्नामश्लेष्मसंसृष्ट गुरु-वर्चः प्रवर्त्तनम्। पूत्यम्ल..... × × × ×कार्श्यदौर्बल्यम्।	Apyrexial morning diarrhoea with bulky, acid, pale, frothy, fatty stool. Emaciation & wasting.

उपर्युक्त तुलनात्मक प्रणाल्याऽनुशीलनेनास्मदीयो विनिश्चयो दृढ़ायते। आशास्यते यद् विद्वत्तल्लजैरस्यां समधिकं विमर्क्ष्यते।

१—एकैकशः सर्वशश्चदोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः।
सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेवविमुञ्चति॥
पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम्।
ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः॥
—सुश्रुत उत्तर ४०।१७१-१७२

२—संग्रहण्या वर्णने मधुकोशकारो विजयरक्षितः।

१–Sprue is a tropical disease of unknown itiology associated with derangement of the gastro-intestinal tract, characterised by deficient absorption of fat, glucose, certain vitamins and calcium.
—Savill's System of Medicine Page 391 Edition 13.

आयुर्वेदीय कायचिकित्सा

श्री गणपतिलाल शर्मा मिश्र बी० आई० एम० एस०, आयुर्वेदाचार्य, विद्यावाचस्पति

यह विश्वविदित है कि वेद अनादि एवं अनन्त हैं एवं आयुर्वेद एक उपवेद होने से इसकी भी अनादिता व अनन्तता स्वतः सिद्ध है। यह एक ऐसा महासमुद्र है जिसमें समस्त चिकित्सा के तत्त्व भरे हैं। इसमें जो जितनी गहरी डुबकी लगाता है, उसे उतने ही अधिक मूल्यवान् रत्न प्राप्त होते हैं।

आयुर्वेद में कुछ नहीं है, ये शब्द प्रायः वे ही व्यक्ति कहते हैं जो आयुर्वेद के अर्थ एवं उसकी वास्तविकता से अनभिज्ञ हैं। प्राचीनकाल में शास्त्रों को सूत्र रूप में ही लिखने की परिपाटी थी। उसी परिपाटी के अनुसार आयुर्वेद को भी सूत्र रूप में ही लिखा गया था। इसके बाद अनेक प्रकार की क्रान्तियाँ हुई, समय बदलता रहा, हमारे देश में अनेकों विदेशी आये और उन्होंने भारत की प्राचीन संस्कृति एवं विज्ञान को दबा कर अपनी सभ्यता को प्रसरित किया। फलतः अनेकों ग्रन्थ इस देश से लुप्त हो गये एवं जो बचे वे भी प्रायः अपूर्ण रहे। यह हमारा दुर्भाग्यकाल कहा जा सकता है।

आज भारत पूर्ण स्वतन्त्र है। अब हमारा कर्त्तव्य है कि जितने भी आयुर्वेद विषयक शास्त्र प्राप्त होते हैं, उनके सूत्रों (फारमूलों) के वास्तविक अर्थों को अपनी बुद्धि से बड़ी सावधानी से सोच-विचार कर उन्हें विश्व के सम्मुख सर्वोत्कृष्ट बता फिर से इस भूमि पर आयुर्वेद का स्वर्ण युग लाने में अपना सहयोग प्रदान करें।

आयुर्वेद आठ अंगों में विभक्त था एवं उस समय प्रत्येक अंग अपने-अपने क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट था। परन्तु आज काय-चिकित्सा के अतिरिक्त सभी अंग लुप्तप्राय हो गये हैं अथवा यदि हैं भी तो छिन्न-भिन्न, शीर्ण-विशीर्ण रूप में प्राप्त होने के कारण उतने नहीं है जितनी कायचिकित्सा। आयुर्वेद में निहित गौरव को आयुर्वेद का एकमात्र अंग—कायचिकित्सा विशद रूप से जिज्ञासुओं की इच्छा पूर्ति करने में समर्थ है। प्रस्तुत लेख में केवल "कायचिकित्सा" शब्द के अर्थ एवं महत्ता को बताने का प्रयास किया गया है।

शब्दार्थ की दृष्टि से कायचिकित्सा का अर्थ होता है काय सम्बन्धी चिकित्सा। यहाँ पर दो शब्द है प्रथम काय, एवं दूसरा चिकित्सा। अब हम सबसे पूर्व काय शब्द को देखें।

काय:—काय शब्द के पर्याय स्वरूप देह, शरीर, गात्र, वपु, संहनन, वर्ष्म एवं विग्रह शब्द मिलते हैं। अब प्रश्न यह है कि इसका नाम शरीर चिकित्सा, देह चिकित्सा आदि पर्याय शब्दों में से किसी के साथ न रखते हुए काय के साथ ही क्यों रखा गया। अतः यह स्पष्ट है कि ऋषियों ने जो कायचिकित्सा ही नाम दिया तो वह किसी विशिष्ट कारण से ही दिया है। जितने भी काय के पर्यायवाची शब्द हैं उनको यदि हम देखें तो प्रत्येक से एक विशिष्ट अर्थ निकलता है जो हमारे शास्त्र की सर्वांगता एवं उत्कृष्टता का द्योतक है। जैसे—

(१) देह—दिह् उपचये धातु है घञ् प्रत्यय होकर यह रूप बना है, "दिह्यते उपचीयते इति देहः" अर्थात्—युक्ताहार विहार से वृद्धि होना, बढ़ना, या उचित होना, ये आधुनिकों के (Anabolic) की ओर संकेत करता है।

(२) शरीर—शृ धातु से इरन् प्रत्यय होकर यह शब्द बना है। "शीर्यते इति शरीरम्" जिसका अर्थ है शीर्ण होना (क्षीयमाण होना), टुकड़े-टुकड़े होना। यह शरीरा-न्तर्गत होने वाली अपचयात्मक या विघटनात्मक क्रियाओं (Katabolic process) की ओर संकेत करता है।

(३) वपु—डुवप् वीज सन्ताने धातु से उस् प्रत्यय होकर इसकी सिद्धि होती है। "ऊप्यते तद् वपु" जो ऊप्त हो उसे वपु कहते हैं। शुक्र-शोणित संयोग रूपी बीज-वपन के बाद बढ़ते-बढ़ते मनुष्य कितनी वृद्धि को प्राप्त हो जाता है एवं किस प्रकार इसकी वृद्धि होती है, यह अर्थ इस के द्वारा आ जाता है। इसमें गर्भ वृद्धि क्रम (Embriology) समाविष्ट हो जाता है।

(४) गात्र—गाते विभिन्नाङ्गासु अनेन इति गात्रम् जिसमें विभिन्नांगों की गति हो।

(५) संहनन—हन् हिंसागत्यो-इस धातु से शत्यर्थ में बना है। "संहन्यते इति संघननम्" अर्थात् जिसका सुव्यवस्थित गठन हुआ हो।

(६) विग्रह—"विशेषेण गृह्णाति पंच महाभूतादि अन्नादि इति विग्रहम्" जो पंच महाभूतों का एवं अन्नादि का विशेष रूप से ग्रहण करे।

(७) वर्ष्म—"वर्षति नव द्वारेभ्यः यत् मलं वर्ष्म" जो मुखनासादि शरीरस्थ नौ द्वारों से मल का त्याग करता हो।

(८) काय—चिञ् चयने इस धातु से काय शब्द बना है। इसका अर्थ है संग्रह करना। संग्रह आहार का निर्देशक भी है जैसे "चियते अन्नादिभिः"।

दूसरा "चीयते असौ कायः" यह भी है। इसका हम सूक्ष्मभूत अणुओं के चयन से निर्मित यह अर्थ करते है, एवं इससे शुक्रार्त्तव से गर्भ एवं मनुष्य की क्रमशः वृद्धि होती रहती है (युवा वस्था तक) यह तात्पर्य इससे निकलता है। प्रथम व्युत्पत्ति के अर्थ से ("चियते अन्नादिभिः" इससे) ज्ञात होता है कि काय अन्नादि का ग्रहण करता है, व उसका शोषण, संघटन, विघटन, (धातु मल का) करता है, अर्थात् आहार से शरीर का निर्माण करना इसका भावार्थ हुआ।

उक्त पर्यायों की व्युत्पत्ति द्वारा हमें यह ज्ञात होता है कि केवल काय शब्द से शरीर की चयापचयात्मक संपूर्ण क्रियाओं का बोध हो जाता है, जैसा अन्य किसी पर्यायवाची शब्द से नहीं होता। अतः काय चिकित्सा का उन व्याधियों से सम्बन्ध होगा जो चयापचय विकृति जन्य हों। या हम यों कहें कि विघटन, पाचनादि कार्य अग्नि द्वारा होता है इसको समझना अन्तराग्नि के ज्ञान पर निर्भर है। "काय चिकित्सेति कायस्यान्तराग्ने चिकित्सा (गंगाधर) या "कायस्यान्तराग्ने चिकित्सा" (चक्रपाणि)।

या हम इस प्रकार कहें कि वे रोग जो अन्तराग्नि के वैषम्य से उत्पन्न होते हैं उनका समावेश काय चिकित्सा में प्रधानतः होता है, जैसा कहा भी है—कायचिकित्सा नाम सर्वाङ्ग संसृतानाम् व्याधी नाम् ज्वरातिसार रक्तपित्त शोषोमादापस्मार कुष्ठ मेहादीनामुपशमनार्थं (सुश्रुत)।

इस दृष्टिकोण से काय चिकित्सा का सम्बन्ध उन रोगों से है जो आभ्यंतरिक कारणों से होते हैं, विशेषतः आहार और चयापचय विकृति से। इसीके अन्तर्गत सम्पूर्ण शरीर आ जाता है जैसा शिवदास सेन ने कहा है "कायः सकलं शरीरं तस्य चिकित्सा प्रायेण रसादेः सर्वांग व्यापकस्य दोषादेव ज्वरातिसाररक्तपित्तादयः संभवन्ति" एवं अन्त में बताते हैं कि "काय चिकित्सा विषय रोगा अग्नि दोषादेव भवन्ति"। इस उक्ति से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है।

आयुर्वेदानुसार यह शरीर आहारजन्य एवं रोग मिथ्याहार जन्य है। चरकानुसार शरीर आहार संभूत और रोग भी (विकृत) आहार संभूत है। सुख (स्वास्थ्य) और दुःख (व्याधि) का विभेद हित और अहित आहार के विभेद पर ही निर्भर है। कहा है:—

आहार संभवै यस्तु रोगाश्चाहार संभवाः।
हिताहित विशेषाश्च विशेषः सुख दुःखयोः।
(च० सू० २८–४५)

पूर्वोक्त विवरण से काय शब्द का अर्थ पाठकों के हृदय में आ ही गया होगा। यहाँ पर काय का प्रयोग शरीर एवं अग्नि अर्थ में हुआ है। इसमें अग्नि अर्थ बहुत ही महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। "रोगासर्वेपिमन्दाग्नौ" यह आर्ष सूत्र अग्नि अर्थ में दृढ़ प्रमाण है। प्रकरणवश अग्नि का विवेचन आपेक्षित है। अग्नि १३ प्रकार की हैं एवं उनके दोषानुसार मन्दाग्नि आदि ४ भेद हैं। प्रस्तुत लेख में यदि अग्नि पर विशद विवेचन यहाँ करें तो विषय बहुत ही विस्तृत हो जाता है, अतः अग्रिम लेख में केवल अग्नि के ऊपर विशद विवेचन करेंगे। इस समय अपने विषय पर आपका पुनः ध्यान आकर्षित करूंगा। यहाँ अब यह स्पष्ट हो गया कि काय का क्या अर्थ है, उसके क्या पर्याय हैं और उनमें काय की महत्ता क्या है। इन्हीं सब को ध्यान रख ऋषियों ने गात्र-देह आदि शब्द न रख काय शब्द को ही प्रधानता दी है।

चिकित्सा—चिकित्सा शब्द कित्‌रोगापने धातु से बनता है। इसका अर्थ है ऐसे उपायों का प्रयोग करना जो रोग को दूर करने में समर्थ हों, या रोग की चिकित्सा करना। अमर सिंह (अमरकोश के निर्माता) के अनुसार चिकित्सा का अर्थ रुक् प्रतिक्रिया और वैद्यक शब्दसिन्धु के अनुसार रोग निदान प्रतिकार होता है।

आयुर्वेदानुसार निम्न परिभाषाएं चिकित्सा शब्द की प्राप्त होती हैं—

(१) "या क्रिया व्याधिहरणी सा चिकित्सा निगद्यते"- अर्थात् जो क्रिया व्याधि को हरण करनेवाली हो उसे चिकित्सा कहते हैं।

(२) 'याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समा सा चिकित्सा'—जिन क्रियाओं के द्वारा शरीर की धातुओं

में साम्यता हो जाय (या साम्यता उत्पन्न करें) उन्हें चिकित्सा कहते हैं।

चतुर्णां भिषगार्थानां शस्तानां धातु वैकृते।
प्रवृत्तिर्धातु साम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते ।।
--च० सू० ९२ श्लो० ५

रोग निदान प्रतीकार शब्द रोग के कारणों को दूर करने पर ही महत्व देता है जैसा सुश्रुत ने कहा है--"संक्षेपतः क्रियायोगो निदान परिवर्जनम्" अर्थात् संक्षेप में रोग के कारणों को दूर करना ही चिकित्सा है। परन्तु चरकाचार्य ने चिकित्सा का क्षेत्र विस्तृत कर दिया है। उनके मत से निदान परिवर्जन से ही रोग का पूर्ण नाश नहीं होता क्योंकि रोग के परिणाम फिर भी प्रभावशील रहते हैं। इस कारण इनके मत में चिकित्सा का उद्देश्य निदान का ही समूल निवारण ही नहीं अपितु दोष साम्य स्थापित करना भी है जिससे व्याधि की पुनरुत्पत्ति की शंका ही न रहे एवं इन दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति चिकित्सा के चार अनिवार्य साधनों पर निर्भर होती है जिन्हें चतुष्पाद के नाम से कहा है। ये चतुष्पाद अन्योन्याश्रय हैं अतः चिकित्सा के प्राणभूत हैं। ये न केवल व्याधि नष्ट करते हैं पर साथ में दोष-धातु साम्य भी स्थापित करते हैं।

अब हम जरा काय की भाँति चिकित्सा शब्द के भी पर्याय देख लें।

चिकित्सा के पर्याय--चिकित्सित, व्याधिहर, पथ्य, साधन, औषध, प्रायश्चित, प्रशमन, प्रतिस्थापन, हित।

चिकित्सितं व्याधिहरं पथ्यं साधनमौषधम्।
प्रायश्चितं प्रशमनम् प्रकृति स्थापनं हितम्।
--च० चि० अ० १-३

चिकित्सा का विवेचन ऊपर हो चुका, अब व्याधिहरण-आदि का अर्थ देखें--

व्याधिहरण--व्याधिं हरतीति व्याधिहरम्--रोग दूर करनेवाली।

पथ्य--पथ्यं पथोनपेतं यत् (तत्पथ्यं)--च० सू० २५-४५। पथ्यं पथिषु श्रोतसु हितम् (गंगाधर) जो स्वास्थ्य के हेतु अनुकूल हो।

साधन--साधनं प्रकरणात् रोगाः साध्यन्ते निवर्त्यन्ते अनेन इति साधनम् (गंगाधर) अर्थात् वे उपाय जो व्याधि-हेतु और व्याधि प्रभाव दोनों को दूर करने में उपयोगी हैं।

औषधम्--औषधिभिर्निष्पन्नं व्याधि हितं हि यत् तत् औषधम् (गंगाधर) औषधि वह है जो रोगों का नाश करे। ओषधि--ओषति, दहति दोषान् धत्ते--गुणान् इति ओषधि (गदाधर भाष्य) अर्थात् जो दोषों को नष्ट करे एवं गुणकारी हो उसे औषधि कहते हैं।

प्रायश्चित--प्रायस्य पापस्य चित्तं शोधनं यस्मात् तत् प्रायश्चितम् (गंगाधर) रोगी के मन से रोग को दूर करना तात्पर्य है।

प्रशमनम्--प्रकर्षेण शमयति व्याधीन् इति प्रशमनम् (गंगाधर) जो व्याधियों को शमन करे।

प्रकृति स्थापन--प्रकृतौ स्थापयतीति प्रकृति स्थापनम् (गंगाधर) धातु साम्यता स्थापित करना।

हितम्--हितंपोषकत्वात् (गंगाधर) हित का प्रयोग स्वास्थ्य रक्षण और पोषण में हुआ है।

इन समस्त पर्यायों को देख कर इनके द्वारा जो विशिष्ट अर्थों को सामान्य व क्रमिक रूप में कहें, तो निम्न उद्देश्य की पूर्त्ति करते हैं--

(१) स्वस्थ में स्वास्थ्य, बल व वृद्धि का संरक्षण, (स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणं),

(२) रोगी में रोग की निवृत्ति अर्थात् रोग निवारक चिकित्सा--(आतुरस्य रोग प्रशमनम्)।

इनको हम चिकित्सा के उद्देश्य कहते हैं।

(१) स्वस्थ में स्वास्थ्य की रक्षा--इस क्षेत्र में दो प्रकार के साधनों का समावेश होता है--(१) रोग संरक्षण, (२) रोग प्रतिबन्ध। इसमें व्याधि व क्षय से शरीर की रक्षा व ओजादि की वृद्धि, स्वस्थवृत्त का पालन, रसायन व वाजीकरण सेवन। इनसे प्रथम उद्देश्य की पूर्त्ति होती है।

(२) रोग निवृत्ति--इसमें चरक ने बताया है त्रिविधं औषधमिति, (१) दैव व्यपाश्रयं, (२) युक्ति व्यपाश्रयं, (३) सत्वावजयश्च, (चरक सू० ११-५२) इसको हम संक्षेपतः देखें--

(१) दैवव्यपाश्रय--इसमें मंत्र, औषधि, मणि, मंगल, बलि, उपहार, होम, उपवास आदि आते हैं। चरक ने कहा है--मन्त्रौषधिमणिमंगलवल्युपहार होम नियम-प्रायश्चित्तोपवासस्वस्त्ययन प्रणिपात गमनादि। च० सू० अ० ११ सू० ५२

(२) युक्तिव्यपाश्रय--"युक्तिव्यपाश्रयंपुनराहारविहारौषधद्रव्याणां योजना"। च० सू० ११ सू० ४२

(क्रमशः)

आयुर्वेद में शवच्छेद विज्ञान

प्रोफेसर श्री कान्तिकृष्ण आयुर्वेदालंकार

"शारीर-शवच्छेद का इतिहास ४०० वर्ष पहले शुरू होता है, जब कि सन् १५४३ में इटली में वेसेलिअस (Vesalius) का ध्यान इसके महत्त्व की ओर गया। उससे पहले हेनरी अष्टम ने इंगलैण्ड में प्रतिवर्ष सिर्फ चार शवच्छेद किए जाने की अनुमति दी थी। लेकिन, जहाँ तक सिर्फ 'शवच्छेद' की बात है, वीएना (Viena) आधुनिक इतिहास में शवच्छेद शुरू करने में अग्रसर रहा। सबसे पहला शवच्छेद वीएना में १२ फरवरी १४०४ को सार्वजनिक रूप से किया गया। वेसेलिअस के बाद इंगलैण्ड में एलिजाबेथ ने मृत्युदण्ड प्राप्त अपराधियों के शव पर शवच्छेद करने की अनुमति दी (१५६५)। डोनेटो ने १५८६ में पोस्टमॉर्टम की परम्परा शुरू की"[1]।

योरोप में शवच्छेद

योरोप में शवच्छेद का इतिहास बहुत रोचक रहा है। 'केनेथ-वाकर' F. R. C. S.ने "द स्टोरीआफ मेडिसिन" में शारीर-शवच्छेद के इतिहास का विवरण इस प्रकार दिया है–

"मध्ययुग में मनुष्य-शारीर (Human Anatomy) पढ़ने की अनुमति चर्च की ओर से नहीं थी। चर्च ने अपनी शक्ति के अनुसार 'सर्जिकल आपरेशन' न होने देने के लिए सब प्रयत्न किए। ११६३ ई० में एक राजाज्ञा द्वारा स्पष्टतः घोषणा कर दी गई कि चर्च खून बहाने के विरुद्ध है[2]। दो शताब्दी बाद पोप बोनिफेस् अष्टम (Pope Boniface VIII) ने आज्ञा प्रसारितकी कि जो कोई भी मनुष्य-शरीर का छेदन करेगा या उसकी अस्थियाँ प्राप्त करने के लिए उसके किसी अंग को उबालेगा, वह चर्च से बहिष्कृत कर दिए जाने का अपराधी होगा। इसके परिणामस्वरूप कोई भी संभ्रान्त या शिक्षित व्यक्ति, भले ही वह चर्च की आज्ञा की अवहेलना करके उसे अपमानित करने की ताक में रहता हो, लेकिन अपनी पद-मर्यादा भ्रष्ट होने के भय से सर्जिकल आपरेशन तथा शवच्छेद सदृश कार्यों को नहीं करता था।"

"मध्ययुग के उत्तरार्द्ध में चर्च इस बात को समझने लगा कि चिकित्सा के ज्ञान की पूर्णता के लिए मानव-शारीर (Human Anatomy) का अध्ययन जरूरी है। अतएव, चर्च ने यदा-कदा शवच्छेद करने की अनुमति दे दी। शवच्छेद के लिए प्राणदण्ड प्राप्त अपराधियों के, जो बहुत थोड़े होते थे, शव का उपयोग ठीक समझा गया। मृत्यु-दण्डापराधी को फांसी देने के बाद उसका शव यूनिवर्सिटी के अधिकारियों को सुपुर्द कर दिया जाता था और उस शवच्छेद-समारोह में सम्मिलित होने के लिए प्रायः सब मुख्य अधिकारियों, सभ्यों को आमन्त्रित किया जाता था। अभ्यागतों के आ जाने पर, उनके यथास्थान बैठ जाने पर, पोप का कृपापूर्ण आज्ञापत्र—जिसमें शवच्छेद करने की आज्ञा दी होती थी—उच्चस्वर से पढ़ा जाता और उस शव पर यूनिवर्सिटी की मोहर लगा दी जाती थी। शवच्छेद समारोह का वर्णन H. W. Haggardने इस प्रकार किया है—'शवच्छेद के समय शुरू में शव का शिर काटा जाता और मस्तिष्क खोला जाता था, क्योंकि क्रिश्चिअन-मत के अनुसार वह आत्मा का स्थान होता था। फिर, इस प्रकार की वैधानिकताएँ निभाने के बाद विषय प्रवेशात्मक (Introductory) व्याख्यान होते और चिकित्सक कोरस गान गाते। तदनन्तर उपेक्षणीय ढंग से वे शवच्छेद करने का सिलसिला बाँधते। चिकित्सक शव नहीं छूता था। उसके बदले नौकर शव को खोलता और चिकित्सक एक तरफ खड़ा हो कर जोर से किताब (Galen) पढ़ता और किताब में लिखी रचनाओं को छड़ी से दिखाता जाता था। शवच्छेद का कार्यक्रम समारोहपूर्वक होता था। उस अवसर पर संगीत, अभिनय तथा दावत का कार्यक्रम रखा जाता। सारा कार्यक्रम दो दिन तक चलता और अन्त में जहाँ-तहाँ चीरे-फाड़े शव को दफना दिया जाता था। इस प्रकार शवच्छेद का कार्यक्रम उत्सवपूर्वक समाप्त किया जाता था।"

शवच्छेद के लिए शव मिलना एक कठिनाई है। यह समस्या आज भी है और पहले भी थी। पहले इस

१—डी० एन० बनर्जी—'आयुर्वेद शारीर
२—Galen 'Ecclesia abhorret a sanguine.'

कठिनाई को हल करने के लिए शव-व्यापारियों को किन अवैध उपायों का सहारा लेना पड़ता था, उसका वर्णन डा० केनेथ वाकर ने इस प्रकार किया है––

"वेसेलिअस द्वारा किया गया शवच्छेद शारीरशास्त्र के इतिहास में एक नया अध्याय था। क्योंकि उससे पहले के और उसके बाद के एनाटॉमिकल-चार्ट्स व मॉडल्स प्रायः सब अशुद्ध थे, जबकि वेसेलिअस की शारीर-पुस्तक प्रकाशित होने के बाद के चार्ट्स-मॉडल्स मानव शरीर की रचनाओं के यथार्थ निदर्शन थे। शवच्छेदार्थ चर्च की आज्ञा मिलने और वेसेलिअस के प्रोत्साहन के बावजूद शारीरशास्त्र का अध्यापन मन्दगति पर था, क्योंकि शवच्छेदार्थ प्रतिवर्ष शव मिलना कठिन समस्या थी। **उस समय शव मिलना इतना कठिन हो गया कि १७वीं शताब्दी में मॉण्टपेलियर यूनिवर्सिटी के शारीर-प्रोफ़ेसर रोनडेलेट को शारीर पढ़ाने के लिए अपने मृत बालक के शव का उपयोग करना पड़ा।** यद्यपि उस समय शवच्छेद कम होते थे, तथापि इसके विरुद्ध जनता में भयंकर रोष जागृत हुआ। १८वीं शती में एक गली की क्रुद्ध भीड़ ने उस इमारत पर आक्रमण किया, जिसमें डा० शिपन और फिलेडेल्फिआ-यूनिवर्सिटी के संस्थापक अमेरिकन मेडिकल छात्रों को शव पर शारीर पढ़ा रहे थे। एक अन्य अवसर पर जब डा० शिपन फिलेडेल्फिआ में अपनी गाड़ी पर जा रहे थे, तब उन पर किसी ने गोली चलायी। लेकिन, विलिअम शिपन अपनी गाड़ी से कूदकर एक तंग गली में छिप गए।"

"१९वीं शती में शव मिलने की कठिनाई उसी तरह बनी रही। उस समय शारीर अध्ययन की आवश्यकता विशेष-रूप से महसूस की जाने लगी और उसका व्यापक प्रचार भी हुआ। अतः १८२७ में एडिनबरा के विलिअम-हेअर और विलिअम बर्क ने साझीदार होकर शारीरविज्ञों को (एनाटमिस्ट) शारीर-शवच्छेद पढ़ाने के लिए शव मुहय्या करने का व्यापार शुरु किया। प्रारम्भ नें उनका यह व्यापार बिना किसी खतरे के, लेकिन स्थानीय अधिकारियों के प्रति कुछ बदनीयती के साथ शुरू हुआ। अधिकारियों ने एक मृत भिक्षुक के शव को लाने के लिए शव-गाड़ी भेजी। लेकिन, हेअर और बर्क ने शव की जगह गाड़ी में छालें भर दीं और शव को 'एडिनबरा-एनाटमी स्कूल' के डा० नौक्स (Knox) के हाथ बेच दिया। इस धोखा-धड़ी से किसी को क्षति नहीं उठानी पड़ी और हेअर तथा बर्क ने सात पौंड दस शिलिंग की चाँदी बना कर आनन्द अनुभव किया। इस प्रकार वे एडिनबरा-एनाटमी स्कूल को समय-समय पर रात में शव पहुँचाने लगे। हेअर और बर्क का शव-व्यापार सब तरह से ठीक चलता रहता यदि वे अपने इस व्यापार को लावारिस भिक्षुकों के शवों तक सीमित रखते जिससे उन शवों के गायब होने से किसी का ध्यान उस तरफ न जाता। लेकिन, एनाटमिस्टों द्वारा अधिक से अधिक शव की मांग से और प्रत्येक शव पर खूब चाँदी पाने के लोभ से उनका मन बढ़ता गया। एक दिन अचानक 'मेरी पेटर्सन' ––एडिनबरा की प्रसिद्ध वेश्या, और 'डाफ्टजेनी', जो समान रूप से एडिनबरा के मशहूर बाशिन्दे थे, लापता हो गए। लापता की तलाश के लिए पूछ-ताछ शुरू हुई जिसके फल-स्वरूप हेअर और बर्क संयोगवश पकड़े गए। हेअर ने चुस्ती से राजा के प्रमाण को व्यर्थ कर दिया। बर्क को फाँसी हुई। तब एडिनबरा की क्रुद्ध भीड़ का अभागे एनाटमिस्ट डा० 'नौक्स' की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। लेकिन डा० 'नौक्स' की जान पुलिस के बीचबचाव करने से बच गई।"

"डा० रोबर्ट नौक्स (१७९१-१८६२) **एनाटमी का जीवट शिक्षक था। उसकी एनाटमी की क्लासें इतनी मशहूर थीं कि उसमें ५०० तक की संख्या में लोग उपस्थित होते थे।** उसके सुरुचिपूर्ण शारीर व्याख्यानों में सिर्फ डाक्टर तथा मेडिकल छात्र ही नहीं––अपितु सभ्यगण, वकील, लेखक तथा कलाकार भी भाग लेते थे। बाद में डा० रोबर्ट नौक्स को चिन्ता हुई और उसे आश्चर्य भी हुआ कि कैसे बर्क और हेअर उत्तम कोटि के इतने शवों को मुहय्या करते रहे। जाँच के बाद यह प्रकट हो गया कि लगभग बत्तीस व्यक्तियों का रहस्यमय ढंग से गला घोंट कर उनके शवों को हेअर-बर्क रात में एडिनबरा-एनाटमी-स्कूल' में डा० नौक्स के पास पहुँचाते रहे। इस हालत में डा० नौक्स ने अपने को विकट स्थिति में अनुभव किया। लेकिन, उसने इन परिस्थितियों का शान्ति तथा बहादुरी के साथ सामना किया। उसने कुछ वर्षों के लिए शारीर-क्लासें पुनरारम्भ कीं। तदनन्तर एक दिन अचानक, अज्ञात कारणवश, उसने शीघ्र एडिनबरा छोड़ दिया और अपने जीवन के शेष दिन लन्दन में अप्रकट रूप से काटने लगा। आज भी शवच्छेदार्थ शव कठिनाई से तथा कम मिलते हैं।"

प्राचीन शवच्छेद

भारत में शवच्छेद का इतिहास उतना ही पुराना है जितना सुश्रुत का इतिहास। सुश्रुत शल्यसंप्रदाय के थे। शल्यचिकित्सा में दक्ष होने के लिए शवच्छेद की विशेष उपयोगिता है। अतः सुश्रुत ने शल्यचिकित्सक होने के लिए शवच्छेद पर विशेष बल दिया है, यद्यपि शवच्छेद का महत्व कायचिकित्सा में भी है। दक्ष वैद्य होने के लिए चरक ने शारीर-ज्ञान (Anatomy) की विशेष उपयोगिता बताई है। "शरीरं सर्वथा सर्वं सर्वदा वेद यो भिषक्; आयुर्वेद स कात्स्र्येन वेद लोक-सुखप्रदम्" (च० शा० ६)। जो समस्त शरीर की रचना को जानता है वह लोकसुखप्रद आयुर्वेद को संपूर्ण रूप से जानता है।

शारीरे सुश्रुतः श्रेष्ठः

शरीर-रचना का ज्ञान सुश्रुत में श्रेष्ठ है। इसकी पुष्टि इस कथन से होती है—"शारीरे सुश्रुतः श्रेष्ठः चरकस्तु चिकित्सिते" (शारीर में सुश्रुत श्रेष्ठ है और चिकित्सा में चरक)। चरक कायचिकित्सा सम्प्रदाय के थे अतः चरक का चिकित्सास्थान सर्वश्रेष्ठ है। यह कथन ठीक ही है। लेकिन, सुश्रुत तो शल्यसंप्रदाय के थे, अतः सुश्रुत की शल्यचिकित्सा को श्रेष्ठ कहना चाहिए था न कि शारीर-ज्ञान को। तो इस कथन का मर्म क्या है? मेरे खयाल में शारीर शल्यतन्त्र का आधार है। आधार ही नहीं वह उसका एक अविच्छेद्य अंग है। विद्वद्वर श्री डा० घाणेकर ने भी सुश्रुत-शारीरस्थान की आयुर्वेदरहस्यदीपिका टीका में लिखा है—"जिसको प्रत्यक्ष शारीर कहते हैं वह शास्त्र, शल्यतन्त्र का एक विभाग होता है और शल्यतन्त्र में ही उसका विवरण किया जाता है। क्योंकि उसके सिवा शरीरगत शल्यों को सफलता से निकालना एक असंभवनीय घटना है। आधुनिक काल में भी यह कथन सत्य प्रमाणित हुआ है। क्योंकि जो शल्यचिकित्सक होना चाहते हैं, उनको प्रत्यक्ष शारीर पर अधिक ध्यान देना पड़ता है और शवच्छेद (डिसेक्शन) भी अधिक करना पड़ता है।" (सु० शा० अ० ५, पृ० १६७)। सुश्रुत ने भी कहा है कि—**"त्वक्पर्यन्तस्य देहस्य योऽयमंगविनिश्चयः। शल्यज्ञानादृतेनैष वर्ण्यतेऽङ्गेषु केषुचित्।"** अस्थि मांस से लेकर त्वचा पर्यन्त शरीर का जो यह अंगविनिश्चय है, वह शल्यज्ञान के अलावा आयुर्वेद के अन्य किन्हीं आठ अंगों में नहीं वर्णित किया जाता। तात्पर्य शल्यविज्ञान में ही शारीर का वर्णन होता है। क्योंकि शारीर (Anatomy) के बिना शल्यविज्ञान है ही नहीं। इसीलिए सुश्रुत ने शल्यज्ञाता होने के लिए शवच्छेद (Dissection) पर पूरा बल दिया है—**"तस्मान्निःसंशयं ज्ञानं हर्त्रा शल्यस्य वाञ्छता; शोधयित्वा मृतं सम्यक् द्रष्टव्योऽङ्गविनिश्चयः।"** अतएव शल्यतन्त्र का निःसंशय ज्ञान प्राप्त करने के लिए मृतशरीर का सुरक्षण करके उस पर शवच्छेद का अभ्यास करे। सुश्रुत ने आयुर्वेद के आठों अंगों के वर्णन में शल्यकर्मात्मक दृष्टिकोण को ही प्रधानता दी है जबकि चरक में सब विषयों का वर्णन कायचिकित्सात्मक भाव से ओतप्रोत है।

सुश्रुत ने शवच्छेद की प्रक्रिया द्वारा प्रत्यक्ष देखे गए अंगविनिश्चय को शारीर कहा है। अतएव सुश्रुत का कहना है कि—**"प्रत्यक्षतो हि यद्दृष्टं शास्त्र दृष्टं च यद्भवेत्। समासतस्तदुभयं भूयो ज्ञानविवर्धनम्।"** प्रत्यक्ष दृष्ट और शास्त्रदृष्ट दोनों मिलकर अधिक ज्ञान बढ़ाने वाले होते हैं। इस सम्बन्ध में आगे सुश्रुत कहते हैं:—

"तस्मात् समस्तगात्रम्, अविषोपहतम्, अदीर्घव्याधिपीडितं, अवर्षशतिकं, निःसृष्टान्त्रपुरीषं पुरुषम् अवहन्त्याम् आपगायां निबद्धं पंजरस्थं मुंज-वल्कल-कुश-शणादीनाम् अन्यतमेन आवेष्टितांगप्रत्यंगम् अप्रकाशे देशे कोथयेत्। सम्यक् प्रकुथित च उद्धृत्य ततो देहं सप्तरात्रात् उशीर-बाल-वेणु-वल्कल-कूर्चानाम् अन्यतमेन शनैः शनैः अवघर्षयन् त्वगादीन् सर्वानेव बाह्याभ्यन्तरान् अंगप्रत्यंगविशेषान् यथोक्तान् लक्षयेत् चक्षुषा।" क्योंकि प्रत्यक्षज्ञान का महत्त्व है इसलिए सम्पूर्ण अंगोंवाले, विष से न मरे हुए, दीर्घव्याधि से न मरे हुए, बुढ़ापे से जर्जर होकर न मरे हुए और अन्त्रगत मल साफ कर लिए गए पुरुष के शव को नदी के स्थिर प्रवाह में डुबा कर बांधे और जल-जन्तुओं से बचाने के लिए उसे पिंजरे में रखे। फिर मुंज-वल्कल-कुश-सन में से किसी एक से अंग-प्रत्यंग को लपेट कर अप्रकट स्थान में सड़ाए। फिर सात दिन बाद उसके भलीभाँति प्रकुथित होने पर उसे नदी से बाहर निकाल ले। फिर उस पर से आवेष्टित मुंज-वल्कल को हटा कर उसे खस-बाल-बांस और छाल की कूंची में से किसी एक से

घिसते हुए उसकी त्वचा तथा समस्त बाह्य आभ्यन्तर अंग-प्रत्यगों को अपनी आंखों से देखे[1]।

सुश्रुत के उपर्युक्त सन्दर्भ से हम तीन परिणाम निकाल सकते हैं।

(१) **शव कैसा लें ?** **(क)** जिसके सब अंगप्रत्यंग विद्यमान हों। क्योंकि किसी अवयव के कटे-फटे होने से या न होने से उस अवयव का प्रत्यक्ष ज्ञान न होगा और शारीर ज्ञान अपूर्ण ही रह जाएगा। **(ख)** जो विष से न मरा हो। क्योंकि विष से मरे होने पर शव के किन्हीं अवयवों का प्राकृत स्वरूप नष्ट हो जाने से शारीर-ज्ञान यथार्थ न होगा। **(ग)** जो दीर्घ व्याधि से न मरा हो। क्योंकि दीर्घ व्याधि से मरे होने पर शव के किन्हीं अंगों का प्राकृत स्वरूप विकृत या नष्ट हो जाने से उन अवयवों की रचना का ठीक-ठीक ज्ञान न होगा। डा० घाणेकर इसकी व्याख्या में लिखते हैं—"दीर्घ व्याधि से पीड़ित होने पर शरीर के अंग और धातु खराब हो जाते हैं। जैसे—फिरंग में नासा तथा अन्य स्थान की हड्डियाँ गलती हैं। विषमज्वर, कालाजार में प्लीहोदर होता है। अतः दीर्घ व्याधियों से मृत मनुष्य का शरीर देखने से इन अंगों का परिज्ञान विकृत होगा।" **(घ)** जो बुढ़ापे से जर्जर होकर न मरा हो। इसकी व्याख्या में डा० घाणेकर लिखते हैं कि "हड्डियाँ वृद्धावस्था में कुछ हलकी, विरल और भंगुर हो जाती हैं। दाँत सब गिर जाते हैं। अधोहनु का आकार बदलता है। गर्भाशय सिकुड़ कर छोटा होता है और उसका मुख बन्द होता है।" इसके अलावा मेरे खयाल में संक्रामक व्याधियों—क्षयरोग, चेचक, हैजा, प्लेग से मरे को भी शवच्छेदार्थ न लें।

(२) **शव को सुरक्षित (प्रीजर्व) कैसे किया जाए ?** **(क)** शव के आंत्र में विद्यमान मल को निकाल दे। क्योंकि आन्तों में विद्यमान जीवाणुओं से शव के अन्य अवयव भी संक्रमित होकर सड़ेंगे। **(ख)** उसे मुंज-वल्कल कुश-शण से वेष्टित कर पिंजरे में रख मन्द प्रवाह नदी में बांध दे। इसकी व्याख्या में डा० घाणेकर लिखते हैं :—"मुंजादि से आवृत रहने के कारण त्वचा अक्षत रहती है और बाह्य जीवाणुओं का सम्बन्ध कम होता है। आन्त्र तथा उसका मल निकाल देने से शरीरगत जीवाणु, जो कोथ में मुख्यतया सहायता करते हैं, प्रायः नष्ट हो जाते हैं। गहरे पानी में प्रेत रहने के कारण उसका बाह्य वायु तथा बाह्य जीवाणुओं के साथ सम्बन्ध टूटता है और प्रेत न्यून ताप तथा एक ताप पर रहता है। इसके शरीर में कोथ देर से परन्तु एक सा (Uniform) प्रारम्भ होता है।"

(३) **उस शव पर कैसे शवच्छेद का अभ्यास करें ? (शवच्छेदविधि)**—सात दिन बाद उस शव को नदी में से निकाल कर बांस की कूंची से उसका अवघर्षण करते हुए उसकी त्वचा तथा बाह्य आभ्यन्तर अंगों (सिरा, धमनी, यकृत्-प्लीहा, हृदय) को देखे। डा० घाणेकर इसकी टीका में लिखते हैं "कुथित शरीर कूंची द्वारा रगड़ने से मृदु बन जाता है और रगड़ने पर धीरे-धीरे त्वचादि अंग निकल जाते हैं और निकलते समय उनका परीक्षण किया जाता है।"

प्राचीन शव-सुरक्षण

प्राचीन काल में शव-सुरक्षण तैल में किया जाता था। तैल में कोथ रोकने और कीटाणुनाशन की शक्ति है। रामायण अयोध्याकाण्ड में वर्णन है कि राम के वन में चले जाने के बाद दशरथ की मृत्यु हुई तो उस समय उनके पुत्रों में से राम-लक्ष्मण तो वन में ही थे और भरत भी उपस्थित न थे, तब आमात्यों ने दशरथ के मृतशरीर को तैलद्रोणी में सुरक्षणार्थ रखा। **तैलद्रोण्यां तदामात्याः संवेश्य जगतीपतिम्। राज्ञः सर्वाणि अथादिष्टाः चक्रुः कर्माण्यनन्तरम्।** (रामायण, अयोध्याकांड)

तेल नावँ भरि नृप तनु राखा।
दूत बोलाई बहुरि अस भाखा।
धावहु वेगि भरत पहि जाहू।
नृप सुधि कतहूँ कहहूँ जनि काहू।

(तुलसी रामायण)

इसके अलावा शालिहोत्र आशुमृतक-परीक्षा में तैलाभ्यक्त शव की आशुमृतक परीक्षा (पोष्टमॉर्टम) करने को कहते हैं (तैलाभ्यक्तमाशुमृतकं परीक्षेत) क्योंकि शव को तैलाक्त करके सुरक्षित रखने से उसमें कोथजन्य विकृतियाँ नहीं

---

१. अष्टांगहृदय ने भी कहा है—"युक्तकारी भिषग्-बुभूषुः पुरुषं संपूर्णगात्रम्, अविषोहतम्, अदीर्घव्याधि पीड़ितं निष्कृष्ट दृष्टान्त्रम् अवहन्त्याम् आपगायां मुंज-वल्कल-वेष्टितं पंजरस्थमप्रकाशे देशे कोथयेत्। तं सम्यक् प्रकुथितं चोद्धृत्यायतदेहं कृत्वा उशीर-वेणु-कुशादीनामन्यतमेन शनैः शनैरवघृष्य त्वगादीन् सर्वानेव बाह्याभ्यन्तरान् अंगसिरास्नाय्वादीन् अवयवान् आचार्योपदर्शितेन आगमेन चक्षुषा च लक्षयेत्।

होगी जिससे आशुमृतक-परीक्षा यथार्थ होगी[1]। सुश्रुत ने शवसुरक्षणार्थ शव को नदी के स्थिर प्रवाह में डूबा रखने को कहा है। शव को पानी या तैलद्रोणी में डुबा रखने से वह वायुमण्डल के बाह्य कीटाणुओं से संक्रमित नहीं होता।

अर्वाचीन शव-सुरक्षण विधि

सुश्रुत में उपलब्ध प्राचीन शव-सुरक्षण विधि उतनी विकसित नहीं जितनी कि अर्वाचीन शव सुरक्षण विधि विकसित है। अर्वाचीन शवसुरक्षण विधि शुरू से समुन्नत है। शव-सुरक्षण का प्राचीन-अर्वाचीन उद्देश्य एक ही है--शव को शवच्छेद के लायक बनाना, ताकि उसमें से तेज दुर्गन्ध न निकले, न उसमें कीड़े पैदा हों और न उसके अवयव सड़ कर विकृत हों अपितु उनकी प्राकृत रचना यथावत् रहे। "मुस्तफीज-प्रैक्टिकल-एनाटमी" में शवसुरक्षण विधि की अर्वाचीन पद्धति का इस प्रकार विवेचन किया है--"उष्णकटिवन्ध-देशों में शवच्छेद के लिए सर्वाधिक कठिन समस्या यह है कि ग्रीष्म में तापमान चरम सीमा ११० फा० तथा शव इससे भी अधिक होता है। अतः ग्रीष्म में मृत्यु के कुछ ही घण्टों बाद शीघ्र सड़ने लगता है। उस दशा में शव को सड़ने से बचाने के लिए प्रयुक्त किया गया कोई भी कोथ-प्रशमन घोल (प्रीजर्वेटिव सॉल्युशन) उस शव का कोथ से पूर्णतः संतोषजनक संरक्षण इस दृष्टि से नहीं कर सकता कि तेज दुर्गन्ध अनुभव किए बिना सुगमता से उस शव पर शवच्छेद किया जा सके। इसके अलावा भारत में कई जगह ऐसा रिवाज भी है कि अस्पताल में मृत व्यक्ति के शव में शवच्छेद करने की दृष्टि से सुरक्षणार्थ कोथप्रशमन घोल २४ घण्टे तक प्रयुक्त नहीं किया जा सकता, ताकि इस बीच उसके किसी कुटुम्बी के आने और मृतक के दाह-संस्कार करने का मौका कुटुम्बी को दिया जा सके। (चौबीस घण्टे तक उसके वारिस की खोज की जाती है। तदनन्तर उसे लावारिस कह कर अस्पताल से बाहर किया जाता है)। ग्रीष्म में इन २४ घण्टों के अन्दर शव इतना सड़ जाता है कि कोथ-प्रशमन घोल शव में देने के बाद भी वह शवच्छेदार्ह पर्याप्ति कोथप्रशान्त नहीं होता। अतएव भारत में मेडिकल कालेजों में शवच्छेद के लिए शव संग्रहार्थ शीतगृह बनाने की जरूरत महसूस की गई। ग्रीष्म में मृत्यु के बाद छः घण्टे के भीतर यदि शव में कोथप्रशमन घोल भरा जाए तो शव कोथप्रशान्त (प्रीजर्व्ड) हो जाता है और उस पर सुगमता से शवच्छेद का अभ्यास किया जा सकता है। शीतकाल में, विशेषतः दिसम्बर-जनवरी में, शव शीघ्र नहीं सड़ता। यहाँ तक कि मृत्यु के २४ घण्टे बाद भी शव में कोथप्रशमन घोल भरने से वह कोथप्रशान्त होकर शवच्छेद के योग्य पूरी तरह होता है। शवसंरक्षण के बारे में अगली कठि-नाई शव के प्रान्त भागों के शुष्क होने की है।"

"किंग-एडवार्ड मैडिकल कालेज, सिंगापुर के प्रोफेसर गोर्डन हारोवर (Gordon Harrower) ने 'जर्नल आफ एनाटमी' (Part II, Jan. 1924) में उष्णकटिबन्ध देशों में शवसुरक्षणार्थ नुस्खा प्रकाशित कराया था। वह इस प्रकार है—

"एक शव के लिए--(कोथप्रशमन घोल)

एसिड कार्वोलिक (क्रिस्टल्स)	...	पौन पौंड
मैथिलेटेड स्पिरिट	...	१।। पाइण्ट
ग्लिसरिन	...	१।। पाइण्ट
फार्मेलिन	...	१।। पाइण्ट

"पहले कार्वोलिक एसिड (क्रिस्टल) को कण्टेनर में गरम करें और एसिड कार्वोलिक क्रिस्टल्स के घुलने के लिए फार्मेलिन मिलाएँ। तदुपरान्त स्पिरिट तथा ग्लिसरीन मिलाएँ। यह घोल कीमती होता है और इससे भी शव पूरी तरह कोथप्रशान्त नहीं होता यदि ग्रीष्मकाल में मृत्यु के ८ घण्टों बाद शव में यह घोल भरा जाए। तदुपरान्त (२४ घण्टे बाद) रंगद्रव्य भरें, जिसकी विधि अधो-लिखित है--"

"स्टार्च	...	१ पौंड
कार्मीन	...	जितना प्रर्याप्त हो
फार्मेलिन	...	२ औंस
पानी	...	१।। पाइण्ट..."

"इस घोल को गरम ही भरें। अन्यथा ठण्डा होने पर जम जाने का भय है।"

(१) To prevent decomposition, dead bodies were kept immersed in oil or olejenous preparations (**Ashumritak pariksha in the Arthashastra** P.P. 215-217). When Dasharath died, as Ram was away in the forest and Bharat was away in the house of his maternal uncle, the dead body of his father was kept by the ministers immersed in oil in an iron pan. **—History of Indian Medicine, G. N. Mukhopadhya**

"इसके अलावा शीतकाल में विशेषतः दिसम्बर-जनवरी में, मृत्यु के २४ घण्टे बाद भी (उक्त घोल से) सस्ता घोल सफलतापूर्वक भरा जा सकता है। उसकी विधि यह है—"

"एक शव के लिए —(कोथप्रशमन घोल)

फार्मेलिन	...	८ औंस
आर्सेनिअस	...	पौन औंस
पौट. कार्ब.	...	पौन पौंड
एसिड कार्बोलिक	...	८ औंस
ग्लिसरीन	...	४ औंस
पानी	...	३ पाइण्ट"

"आर्सेनिक (ह्वाइट आर्सेनिक) का पौट. कार्ब. के साथ खौलते पानी में घोल बना लें। (तदनन्तर क्रम से अन्य वस्तुएँ मिला लें)। यह घोल पूर्व के कोथप्रशमन घोल से सस्ता है। शीतकाल में इससे शव सम्यक्तया कोथ-प्रशान्त होता है। तदुपरान्त २४ घण्टे बाद रंगद्रव्य भरें। इसकी विधि यह है—"

स्टार्च	...	पौन पौंड
रेड लेड	...	६ औंस
पानी	...	१॥ पाइण्ट'

"पानी खौला लें और इसमें अन्य वस्तुएँ मिला कर घोल बना लें। इस रंगद्रव्य घोल को शव में गरम ही भरें।"

"शव के हाथ-पैर तथा त्वचा को सूखने से बचाने के लिए अंगों पर नीचे लिखे द्रव का लेप करें—"

"एसिड कार्बोलिक	...	आधा औंस
कैस्टर आयल	...	आधा पाइण्ट
ग्लिसरीन	...	आधा पाइण्ट"

"इस द्रव में सन भिगा कर उसे हाथ-पैर में लपेट दें। फिर ऊपर से तैलयुक्त कागज लपेटें। फिर उस पर कपड़े की पट्टियाँ लपेटें। फिर पट्टी के ऊपर पिघलता हुआ पैराफीन लगा दें, ताकि सारा आवरण यथासम्भव निर्वात (एअर टाइट) हो जाए। जब-तब शेष शरीर तथा मुख पर भी इस द्रव का लेप करें और फिर उसे चारों ओर से कपड़े से ढंक कर रखें।"

"मस्तिष्क तथा सुषुम्नाकाण्ड को प्रीजर्व करने और सख्त बनाने के लिए उन्हें एक सप्ताह तक रैक्टीफाइड स्पिरिट में रखें। फिर उसमें से निकाल कर फार्मेलिन के १:१० के घोल में रखें।"

"कोथप्रशमन घोल (तथा रंगद्रव्य घोल) एक तरफ की और्वी धमनी (फीमोरल आर्टरी) द्वारा भरें। उक्त घोल ग्रीवा में महामातृका धमनी या तोरणी महाधमनी द्वारा भी सुविधानुसार भरा जा सकता है।"

इसके अलावा शव के शवच्छेदगृह में आने पर सबसे पहले उसकी दाढ़ी-मूंछें, सिर-बगल-गुप्तांगों तथा शरीर के अन्य स्थान के रोमों को उस्तरे से साफ कर दें। फिर उसे कार्बोलिक साबुन से नहला दें और पोंछ दें। फिर उसमें कोथप्रशमन घोल तथा रंगद्रव्य भरें।

उपसंहार

सुश्रुत ने शल्यतन्त्र में प्रयुक्त होने वाले शस्त्र-यन्त्रों के कर्माभ्यास पर बल देने के लिए 'योग्यमसूत्रीय' अध्याय लिखा है, जिसमें छेदन (Incision), कर्त्तन (Amputation) का अभ्यास अलाबु, कूष्माण्ड को सूक्ष्मता से छील-काट कर करने को कहा है और वेधन कर्म (Puncture) का अभ्यास तैल-पानी से भरे मशक को ब्रीहिशस्त्र से वेध कर करने को कहा है। वैसे तो यन्त्र-शस्त्रों के कर्माभ्यास के लिए शव ही उत्तम अधिष्ठान तथा शवच्छेद ही एक मात्र क्रिया है। सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा में शल्य-कर्म को ही सर्वप्रधान माना है। **अस्मिन् शास्त्रे शस्त्रकर्मप्राधान्याद् शस्त्रकर्मैव तावत् पूर्वमुपदेक्ष्यामः।** अतः सुश्रुत ने कहा है कि संपूर्ण शास्त्र पढ़ लेने पर भी शिष्य को शस्त्रकर्म करने के योग्य बनाएँ। शस्त्रकर्म के इस अभ्यास को 'योग्या' कहा है। **अधिगतसर्वशास्त्रार्थमति शिष्यं योग्यां कारयेत्।**

अतः शवच्छेद से शस्त्रकर्म का अभ्यास होता है, शरीर का ज्ञान होता है। शल्यचिकित्सा में निपुणता प्राप्त होती है और आशुमृतक परीक्षा के लिए अभ्यास होता है। शस्त्रकर्म का अभ्यास करने के उद्देश्य से सुश्रुत ने शव का उपयोग बताया है—"मृत पशुओं की सिराओं में सिरावेध का, रोमयुक्त चर्म पर लेखन का, मृत पशुओं के दाँतों में आहरण कर्म सिखाएँ।" (सु० सू० अ० ९)। प्राचीन शवच्छेद विधि इतनी समुन्नत न थी जितनी कि अर्वाचीन। प्राचीन शवच्छेद कूंची से मृतक को घिसकर किया जाता था जब कि अर्वाचीन शवच्छेद चाकू, कैंची, आरी आदि से विधिवत् चीरा देकर काट कर किया जाता है। अर्वाचीन शवच्छेद विधि प्राचीन से समुन्नत है।

प्रयोगज्ञस्य वैद्यस्य सिद्धिर्भवति नित्यशः।
तस्मात् परिचयं कुर्यात् शस्त्राणां ग्रहणे सदा॥
सु० सू० अ० ६

A few points about research in Ayurved

Vaidya N. V. Joshi, B. A. Ayurvidyavisharad

It is a matter of great delight that the Central and State Governments are interested in the Research of Ayurveda and a large amount of money is given by way of grants for this Research in the Ayurvedic System of Medicine.

However looking to the various schemes of this Research it is found that priority is given to the research about the chemical contents of drugs and their use in diseases, with an eye to modern medicine and its methods of diagnosis and treatment. Very few of these schemes are based on the fundamental principles of Ayurveda and it is, therefore, doubtful as to how far such Research will add to the science of Ayurveda.

According to Ayurveda the body is essentially made up of "Dosh Dhatu and Mala. (दोष धातुमलमूलं हि शरीरम्) The Anatomy, Physiology and Pathology of Ayurveda is based on the above three principles and the theory of Tridosh (त्रिदोष) is the fundamental base of Ayurveda. Hence Research in diseases and their treatment (durgs) must be based on the theory of Tridosh and Rasa, Vipak, Veerya and Prabhav. (रस-विपाक-वीर्य-प्रभाव). Mere chemical analysis of drugs and findings of their contents will not help clinical research in Ayurveda. For instance calcium is the main content in शौक्तिक-मौक्तिक भस्म, but the clinical effect of these two vary to a great extent. Much more the effects of the herbs can only be judged clinically as a whole. The instances of सहस्रपुटी अभ्रक and preparation like पर्पटीकल्प can be cited to prove this. Modern therapy can be benefitted by finding out their chemical contents and their uses according to modern medicine and it may be useful to the general public also. But this, certainly is not a Research in Ayurveda nor will it add to the Ayurvedic Science. Such researches may be done in the department of Modern Medicine but they should not be carried on by the department of Ayurveda under the name of Ayurvedic Research to the deception of the Vaidyas and the general public.

Nobody denies the importance of Research in Science like Ayurved. Medicine is a progressive Science based on experience and new findings. Study of the History of Ayurveda will also prove this fact. New diseases and drugs have to be explained in keeping with Tridosh theory as mentioned above. Otherwise under the external garb of the study of Ayurveda there will be a tendency to think on the lines of modern medical theory and try to express it in terms of Ayurveda. For instance a modern Vaidya tends to diagnose a fever as Typhoid fever but expresses it as in Ayurvedic terms, tries to treat it with Ayurvedic drugs, but along with it gives modern drugs and injections also. Unfortunately such a tendency is found to have increased amongst the Vaidyas coming out from the institutions teaching a combined course in Ayurveda and modern medicine.

Taking all these factors into consideration the following few points have been written to indicate the way in which proper Research in Ayurveda can be carried out.

Research in Ayurved can be divided mainly under the following three heads :–

(1) Research regarding Literature in Ayurveda, old and new;

(2) Clinical Research;

(3) Standardization of drugs and preparations in Ayurveda.

(1) *Literature* :—Charak, Sushrut and Vagbhat are the three great writers of Ayurveda and their works are known as वृहत् त्रयी. Few additions are made by succeeding writers like

Bhavamishra and Sharangdhar but their works are mainly collections of sutras from the वृहत् त्रयी.

Owing to the new system of education it has been quite necessary to prepare subject-wise text books with detailed explainatory notes. It is also essential to take into consideration the experience of new diseases and drugs which have to be explained in terms and theory of Ayurveda and these have to be added in new text books.

(2) *Clinical Research*--This can be subdivided in two heads : (*a*) Diseasewise and (*b*) Drugwise.

(a) According to Ayurvedic Pathology (संप्राप्ति विज्ञान) the unbalanced Dosh, while circulating in the different parts of the Body, finds a local debilitated spot and disturbing its functions causes the disease. 'कुपितानां हि दोषाणां, शरीरे परिधावताम्, यत्र संगः खवैगुण्याद् व्याधिस्त्रोपजायते।' Thus the Pathology in Ayurved takes into consideration both the Dosh and the Sthan (स्थान) in explaining a disease from the very beginning. The causes, symptoms and treatment are described accordingly. दोषहेतु, व्याधिहेतु, दोषलक्षण, व्याधिलक्षण दोषप्रत्यनीक चिकित्सा, व्याधिप्रत्यनीक चिकित्सा। Instances of diseases can be cited to explain the above factors. Taking into consideration these factors, the causes and symptoms of the disease have to be ascertained and explained. New diseases have to be added in the same way. In such clinical research, help of modern methods of investigation may be taken independently, to check and ascertain the results of the cases under investigation. Such help should not vitiate the mind of Vaidya. who has to diagnose and treat the case purely on Ayurvedic lines.

(*b*) Drugwise Research :—After the advent of रसशास्त्र a number of preparations (सिद्ध-कल्प) have been used in the treatment. They are found to be useful by experience. But their use has not been completely explained according to the theory of त्रिदोष and रस-वीर्य-विपाक. Their use is described mainly as प्रभावी (Empirical). But now research is essential to completely rationalise the use of these drugs according to the रस-वीर्य-विपाक and Tridosh theory. Such two-fold Research can only be carried out in large Hospitals.

(3) *Standardisation of durgs*--Formerly every Vaidya had his own Pharmacy for the preparation according to the Scientific formula. Hence the question of reliability did not arise.

But with the total change in the circumstances and surroundings, it is not generally possible for a Vaidya to have his own Pharmacy. Hence they have to purchase the drugs from other Pharmaceutical firms. But these firms being run mainly on business lines cannot in many cases, be relied upon for the scientific preparations of drugs. In case of large number of Ayurvedic preparations clinical test has to be the main test. Chemical test will not be of much use. For instance a drug like त्रिभुवनकीर्ति and the सहस्रपुटी अभ्रक भस्म etc. For this purpose the Government may have to start Ayurvedic Pharmacies in which methods of standardisation could be studied and supply of standard drugs could be made for the chemical research mentioned above.

Now-a-days it has become a growing tendency amongst the learned Vaidyas to prove the efficacy of Ayurved by the Empirical use of the प्रभावी drug. But such drugs can be included in the meteria-medica of any medicine. It is not the specific action--Prabhav (प्रभाव) of the drug that proves the efficacy of any system of medicine. The Scientific theory of the use and action of the drug described by that system can alone prove that efficacy. And for this purpose Research in Ayurveda based on purely Ayurvedic Theory of त्रिदोष एवं रसवीर्यविपाक is essential.

For such Research work it is essential to have a team of Vaidyas who have fullest faith in the fundamentals and functioning of the theory of Ayurved with a background of deep study and long experience of Ayurvedic Science and methods.

पाचक पित्त

कविराज लाला बदरीनारायण सेन, जी० ए० एम० एस०

मानव शरीर अपने पोषण या वृद्धि के लिये जो कुछ भी प्राप्त करता है उसे आहार या विहार द्वारा ही प्राप्त करता है। मगर आहार-विहार द्वारा यह जो कुछ भी प्राप्त करता है उसे उसी रूप में अपने पोषण या वृद्धि के काम में नहीं लाता है। आहार-विहार द्वारा ग्रहण किये द्रव्यों को पहले यह एक अपने रूप में परिणत करता है और तब इस परिणत रूप को आत्मसात करके अपना पोषण या वृद्धि करता है। आहार-विहारादि द्वारा ग्रहण किये द्रव्यों को एक अपने रूप में परिणत करने वाली क्रिया का नाम पाचन क्रिया है। जिस शक्ति द्वारा यह पाचन क्रिया एवं पचित द्रव्यों को आत्मासात करने की क्रिया सम्पादित होती है उसे **पाचक पित्त** कहते हैं।

पाचकं पचते भुक्तं शेषाग्नि बल वर्द्धनम् ।
रस मूत्र पूरीषाणि विरेचयति नित्यशः ।।

भा० पू० गर्भ० आ० २ श्लोक १३१

जैसा कि ऊपर कह चुके हैं कि शरीर की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति आहार-विहार द्वारा ही होती है। इस पाचक पित्त की भी यह आवश्यकता आहार-विहार द्वारा ही पूर्ण होती है। आहार द्वारा पाचक पित्त की प्राप्ति और पाचक पित्त द्वारा आहार का पचन, फिर पचित आहार से इसकी प्राप्ति यह चक्र निरन्तर चालू रहता है।

यदन्नं देह धात्वोज वल वर्णादि पोषकम् ।
ततः अग्निर्हेतुराहारन्नह्यपक्लाद्रसादयः ।।

च. चि. १५ अ० श्लो० ४

मूल पाचक पित्त शुक्र-शोणित के संयोग के समय ही निर्मित हो जाता है। चूंकि पाचक पित्त, दोष का एक भेद है और दोष या धातुरूप पित्त शुक्र-शोणित में विद्यमान रहते ही है, संयोग के समय एवं संयोगान्तर भी इन की उपस्थिति रहती ही है, अतः पाचक पित्त भी अपने मूल वस्तु धातु पित्त के साथ रहता ही है।

पुरुषस्यानुपहररतरेतसः स्त्रियाश्च प्रदुष्टयोनीशोणितगर्भाशयाया यदा भवन्ति संसर्ग ऋतु काले...जीवोऽवक्रामति...गर्भोऽभिनिर्वर्तते ।। (च० शा० ३ अ० श्लो० २)

चूंकि यह पित्त धातु का एक भेद है अतः पित्त धातु की ही तरह यह भी अत्यन्त सूक्ष्म इन्द्रिय अगोचर व्यापक एवं शक्तिस्वरूप है। मगर क्रिया काल में यह दो रूप से कार्य करता है—एक शक्तिस्वरूप हो एवं दूसरा स्थूल रूप लेकर। शक्तिस्वरूप तो इन्द्रिय अगोचर है ही मगर स्थूल रूप इसका स्रावों के रूप में होता है जिसमें लालास्राव, आमाशयिकस्राव, ग्रहणीस्राव, याकृतीय स्राव, अग्न्याशयिक स्राव एवं आन्त्रिक स्राव प्रमुख हैं। इसके शक्तिस्वरूप का नाम अग्नि भी है एवं स्थूल का पित्त।

अग्निर्भिन्नगुणैर्युक्तः पित्त भिन्न गुणैस्तथा ।
द्रवं स्निग्धमधोगञ्च पित्तं वह्निरतोऽन्यथा ।।

भा० पू० ख० गर्भ प्र० २ श्लो० १३६

सूक्ष्म रूप के पाचक पित्त को न तो देखा जा सकता है और न संग्रह, केवल उसके क्रियाफल को देख कर उसका अनुमान किया जा सकता है। एक भूखे व्यक्ति के सामने भोज्य पदार्थों को रखा जाये और उसके अज्ञात कारणवश उसे खाने में विलम्ब हो तो उसके मुख में लालास्राव होने लगता है और आमाशय में आमाशयिक स्राव। आहार के बिना पहुंचे ही मुख एवं आमाशय उसे स्थूल रूप से पचाने के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं। दृष्टि मात्र से ही ऐसा होना शक्तिरूपी एवं व्यापक पाचक पित्त का ही कार्य है जिसे हम देख नहीं पाते। यों तो स्थूल द्रव्यों के पाचनार्थ स्थान विशेष निर्दिष्ट हैं जहां उनका पाचन एवं शोषण होता है मगर यदि शरीर के किसी भाग में भी एक कोमल कांटे को चुभा कर कुछ देर छोड़ दिया जाये और तब उसे निकाल कर अणुवीक्षणयन्त्र द्वारा देखें तो पायेंगे कि उस का कुछ अंश शरीर में ही पचकर विलीन हो गया है। और यह कार्य भी सम्पादित होता है पाचक पित्त के द्वारा ही। इस प्रकार पाचक पित्त सूक्ष्म एवं व्यापक रूप से सारे शरीर में कार्य करता है, मगर स्थूलद्रव्यों का पाचन मुख्यतः नियत स्थूल स्थानों में स्थूल रूप की वस्तुओं द्वारा ही होता है। बोध सौकार्य्यार्थ इन स्थानों का सामूहिक नाम पाचन-संस्थान एवं पाचक वस्तुओं का नाम पाचकपित्त या पाचकस्राव

कहा जाता है। स्थानों में मुख्य हैं मुख, आमाशय, ग्रहणी एवं पक्वाशय। स्रावों का नाम ऊपर बताया जा चुका है। इन स्थानों पर इन स्थूल स्रावों द्वारा आहार द्रव्य अपना रूप परिवर्तित कर एक ऐसे रूप में आ जाता है जिसे कि शरीर आसानी से आत्मसात कर सके। इसी कारण इन स्थानों का नाम पाचन-संस्थान एवं स्रावों का नाम पाचक पित्त दिया गया है एवं शक्तिरूप, जिसे कि हम देख नहीं सकते, वह्नि दिया गया है। स्राव सभी "द्रवंस्निग्धमधोगञ्च" हैं और वह्नि शक्तिमान है।

पाचन कार्य

सर्व प्रथम स्थूल एवं ठोस आहार द्रव्यों को दांत एवं लालास्राव दोनों एक साथ मिल कर गलाने एवं पचाने का कार्य करते हैं। दांत उन्हें कुचल कर सूक्ष्म बनाता और लालास्राव उस सूक्ष्म द्रव्य को अपनी द्रवता से द्रवित, स्निग्धता से स्निग्ध करता एवं पाचकता से गलाने का काम करता है। मगर आहार द्रव्यों के कुछ ही अंश पर और उन अंशों के भी कुछ ही राशि पर वह कार्य करता है।

इसके बाद भुक्त आहार आमाशय में आता है। यहां इसके कुचलने का काम तो प्रत्यक्ष रूप से दांतों की तरह नहीं होता मगर पेशी-गति के दबाव से यह काम भी कुछ हद तक होता है। यहां एक प्रकार का स्राव होता है जिसे आमाशयिक स्राव कहते हैं। आमाशयिक अम्ल स्राव मुख से आये भुक्त आहार द्रव्यों में से लाला स्राव को जो कि क्षारीय होता है, उदासीन कर नष्ट करता है और अपना पाचन कार्य करता है। आहार द्रव्यों के कुछ अंशों की कुछ ही राशि पर अधिकार जमा यह स्राव उन्हें गलाने का काम करता है और लालास्राव ही की तरह इसे द्रवित एवं स्निग्ध करता है।

इसके पश्चात् भुक्त आहार आमाशय से ग्रहणी में आता है। इन आशयों की पेशीगति के कारण आहार एक निर्धारित समय से अधिक देर नहीं ठहरता, वह धकेला जाकर आगे बढ़ जाता है। ग्रहणी में आहार द्रव्यों का संयोग तीन प्रकार के स्रावों से होता है। एक ग्रहणी का अपना स्राव, दूसरा याकृतीय स्राव एवं तीसरा अग्न्याशयिक स्राव।

लालास्राव एवं आमाशयिक स्राव

ये दोनों स्राव दो कारण से स्रवित होते हैं। एक तो शक्तिरूपी पाचक पित्त (Physical & Nerves) के कारण, दूसरा भुक्त आहार द्रव्यस्थ रसों (Chemicals) के कारण। प्रथम तो शक्तिरूपी है, दृष्टि मात्र से ही कार्य करता है एवं द्वितीय किञ्चित स्थूलरूपी है, जो स्पर्श से होता है। आहार द्रव्यों में कुछ रस ऐसे रहते हैं जिनके स्पर्शमात्र से ही स्थानीय तन्तु उत्तेजित हो इन स्रावों को स्रवित करते हैं। जैसे तम्बाकू को लिया जाय—इस के स्पर्शमात्र से ही मुख विवरस्थ तन्तु उत्तेजित हो अत्यधिक लालास्राव स्रवित करते हैं; मांस एवं सुगन्धित भोज्यपदार्थों को लें, इनके स्पर्श से ही आमाशय अपना स्राव अधिक स्रवित करने लगता है। लालास्राव तो मुख्यतः भौतिक (Physical) एवं द्रव्य रस के संयोग से स्रवित होता है। मगर आमाशयिक स्राव इसके अतिरिक्त लालास्राव के कारण भी स्रवित होता है। लालास्राव भी परोक्ष रूप से उसे उत्तेजित कर अपना स्राव स्रवित करने पर बाध्य करता है। लालास्राव क्षारीय होता है एवं अग्न्याशयिक स्राव अम्ल।

ग्रहणी रस

ग्रहणी रस ग्रहणी का अपना स्राव है जो क्षारीय होता है। इसका काम यह है कि आमाशय से आहार द्रव्यों में से आमाशयिक स्राव को जिस से कि वह ओत-प्रोत रहता है उदासीन कर नष्ट करता है। इतना ही नहीं उसमें से वह उसे विलग कर आमाशय में धकेलकर वापस भेज देता है बल्कि उसके साथ-साथ स्वयं भी आमाशय में प्रवेश करता है और आमाशय में प्रविष्ट होकर उस पर यह नियन्त्रण करता है कि वह अन्दाज से अधिक अपना स्राव स्रवित नहीं करे। और आमाशय जब आहार द्रव्यों से रिक्त हो जाता है उस समय भी यह अपना स्राव स्रवित करते रहना जारी नहीं रखे इस पर भी नियन्त्रण रखता है। यदि ग्रहणीस्राव का यह कार्य अव्यवस्थित हो जाता है तो कई प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। यदि यह अव्यवस्थित हो जाये तो नाना प्रकार के शूलादि रोगों को उत्पन्न करता है। अगर आमाशय से आये आहार द्रव्यों में से आमाशयिकस्राव को यह उदासीन नहीं करे तो ग्रहणी व्रण (Deudonal ulcer), यदि आमाशय में प्रविष्ट हो उसे अन्दाज से अपना स्राव स्रवित करने पर नियन्त्रण नहीं कर सके तब अन्नद्रवशूल, यदि आमाशय को आहार द्रव्यों से रिक्त होने पर भी अपना स्राव स्रवित करने से नहीं रोक सके तो अम्लपित्त एवं आमाशयिक व्रण (Gastric ulcer), एवं यदि अत्यधिक मात्रा में यह ग्रहणी स्राव आमाशय में प्रविष्ट हो तो परिणामशूल (Bilious attack) नामक रोग उत्पन्न होते हैं। यह

ग्रहणी स्राव, याकृतीय स्राव, अग्न्याशयिक स्राव एवं ग्रहणी कला के अपने स्राव का योग है जो क्षारीय होता है।

याकृतीय स्राव (पित्त)

याकृतीय स्राव यकृत द्वारा स्रवित एक हरित पीत वर्ण का तरल पदार्थ है जो यकृत से एक नलिका द्वारा ग्रहणी में आकर गिरता है। इस स्राव का निर्माण यकृत, आहार रस एवं रक्त के प्रसादन कार्य कर परिणाम है।

भुक्त आहार जब पचित होकर इस रूप में परिवर्तित होता है कि उसका आत्मसात हो सके तब आन्त्रस्थ रसांकुर (villies) इस का शोषण कर सूक्ष्म स्रोत द्वारा शरीर में भेजता है। आहार द्रव्यों के इस शोषित रूप का नाम आहार रस है। आहार रस दो राहों से शरीर में प्रविष्ट होते हैं—एक यकृत के माध्यम से, दूसरा सीधे। आहार रस दो रूप का होता है—एक आग्नेय या तामस एवं दूसरा सात्विक एवं राजस। सात्विक आहार रस तो रसांकुरों द्वारा शोषित हो रस प्रपिक में आता है और वहां से सीधे उत्तरा महाशिरा में गिर हृदय में प्रविष्ट हो समस्त शरीर में संचारित होता है। मगर आग्नेय रस में ऐसा नहीं होता। यह रसांकुरों द्वारा शोषित हो सूक्ष्म स्रोतों द्वारा प्रतिहारिणी महासिरा में संग्रहित होता हुआ यकृत में आता है और यकृत उनके प्रसादन का कार्य करता है और प्रसादित होने के बाद पुनः यह एक मोटे स्रोत अधरामहासिरा में एकत्रित हो हृदय में आता है और वहां से सारे शरीर में संचारित होता है। रक्त भी जब संवहन करता हुआ प्रतिहारिणी महा-सिरा में एकत्रित हो यकृत में आता है तो यकृत इसका भी प्रसादन करता है। इसे भी प्रसादित कर अधरामहासिरा द्वारा हृदय में पुनः संचारित होने को भेजता है। इस प्रकार यकृत आहार-रस एवं रक्त दोनों के प्रसाद का कार्य करता है।

यकृत आहार-रस एवं रक्त दोनों में से आग्नेय वस्तुओं पर विशेष रूप से कार्य करता है—वल्कि यों कहें कि आग्नेय या पित्तल वस्तुओं पर यह विशेष नियन्त्रण रखता है। यों तो यह आहार-रस एवं रक्त दोनों में से हानिकर वस्तुओं को निकाल उसे नष्ट कर उन्हें प्रसादित करता है, मगर आग्नेय या पित्तल वस्तुओं पर चाहे वे इसकी किसी भी जाति अथवा सूक्ष्म एवं वैकारिक किसी भी रूप के हों उन पर विशेष नियन्त्रण रखता है। आहार-रस या रक्त दोनों में से किसी में भी यदि इसके सूक्ष्म रूप (पित्त के) या वैकारिक रूप जैसे क्षार-अम्ल-लवणादि—अपने मात्रा या अनुपात से अधिक हुए तो उन्हें छान कर यह अलग कर देता है। ये मात्रा या अपने अनुपात से अधिक संवाहित होने के लिये इससे आगे नहीं जा सकते।

चूंकि यकृत् हर जाति एवं रूप के पित्तों पर नियन्त्रण रखता है अतः रंजक पित्त पर भी इसका एक विशेष नियन्त्रण रहता है। मृत रक्त कणों से रंजकसंस्थान एक हरित पीत वर्ण के रंजक पदार्थ का निर्माण करता है जो रक्त में ही घुल जाता है। रक्तकणों की मृत्यु प्रतिदिन एक बहुत बड़ी संख्या में होती रहती है और इससे रंजक संस्थान एक बहुत बड़ी राशि में हरित पीत वर्ण के रंजक पदार्थ का निर्माण प्रतिदिन करता रहता है। यदि इस रंजक पदार्थ का निष्काषण शरीर से नहीं हो तो शीघ्र शरीर का वर्ण अस्वा-भाविक रूप से हरित पीत हो जाता है एवं नाना प्रकार के अन्य कष्टकर लक्षण उत्पन्न होते हैं। यकृत इसे निय-न्त्रित रखता है। रक्त में से इसे भी छान कर यह विलग कर देता है। इस प्रकार यकृत आहार-रस एवं रक्त में से अनावश्यक वस्तुओं को छान कर विलग कर रक्त का प्रसादन करता है।

इन छने द्रव्यों के याने सूक्ष्म स्वरूप पाचक पित्त, वैकारिक रूप पाचक पित्त तथा हरित पीत वर्ण के रंजक पदार्थ के मिश्रण से एक प्रकार का हरित पीत, कटु, लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, सत्वगुणोत्तर, मृगमदगंधी तथा क्षारीय द्रव्य का निर्हरण हो जाता है जो पाकान्तर अम्ल भी हो जाता है। वर्तमान आयुर्वेद ग्रन्थों में यही याकृतीय तरल स्राव पित्त नाम से भी सम्बोधित हुआ पाया जाता है। चूंकि यह यकृत द्वारा निर्मित होता है इस लिये इसे याकृतीय स्राव कहा है।

पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्त्वगुणोत्तरं।
रसं कटु लघु स्निग्धंतीक्ष्णमम्लन्तु पाकतः ।।

यह तरल याकृतीय स्राव सूक्ष्म नलिकाओं से होता हुआ एक-एक वृहत नलिका से यकृत के दोनों खण्डों से बाहर निकलता है। बाहर आकर ये दोनों नलिकाएं परस्पर संयुक्त हो एक हो जाती है और एक नलिका हो कर आगे बढ़ ग्रहणी में आकर खुलती है। इस नलिका का अधोभाग किञ्चित घूम कर ग्रहणी को अपने आक्रोश में लेता हुआ ग्रहणी में आकर खुलता है। मगर बीच मार्ग में ही इस नलिका से एक कोष स्थान का मुख भाग आकर

जुट गया है। नलिका का वह भाग जहां आकर कोषस्थान का मुखभाग जुटा रहता है एक मुख का निर्माण कर उस से संयुक्त हो जाता है। इस प्रकार एक ही नलिका दो स्थानों में आकर खुलती है--एक कोषस्थान में एवं दूसरा ग्रहणी में। इसी नलिका द्वारा याकृतीय स्राव यकृत से निकल कर कोषस्थान में एवं ग्रहणी में आता है। इस नलिका का नाम याकृतीय स्राव नलिका या पित्त नलिका है। कोषस्थान का नाम पित्त कोष है।

इस नलिका द्वारा याकृतीय स्राव ग्रहणी में निरन्तर गिरता रहता है मगर जिस समय ग्रहणी में आहार द्रव्य रहता है उस समय अधिक राशि में गिरता है और आहार द्रव्यों से ग्रहणी जब रिक्त रहता है तब एक साधारण राशि में गिरता है। इस का कारण यह है कि जब आहार द्रव्य आमाशय से मुद्रिका द्वार के राह ग्रहणी में प्रविष्ट होता है तो मुद्रिका द्वार विस्फारित होता है। इस से एक प्रकार की उत्तेजना की लहर सम्पूर्ण ग्रहणी में दौड़ जाती है और ग्रहणी पेशियां किञ्चित दृढ़ हो जाती हैं। पित्तनलिका का ग्रहणीय मुख भाग से लेकर समूचा वह भाग जो ग्रहणी को अपने घेरे में रखती है वह भी दृढ़ हो जाता है। इस का परिणाम यह होता है कि नलिका का मार्ग भी दृढ़ एवं विकसित हो जाता है जो पहले कुछ अवसादित (Relaxed) था और याकृतीय स्राव निर्वाध रूप से बाहर निकलने का मार्ग पाता है। ग्रहणी में आहार द्रव्यों के आने एवं उसके प्राचीरों के दृढ़ होने से पित्तकोष पर भी हल्का सा दबाव पड़ता है, चूंकि पित्तकोष का निचला भाग का एक हिस्सा ग्रहणी से सटा रहता है। इस दबाव से पित्तकोष में संग्रहित याकृतीय स्राव भी अपने मुख भाग से बाहर निकल कर पित्तनलिका में गिरता है। इस प्रकार पित्तकोष भी अपने में संग्रहित याकृतीय स्राव को ग्रहणी में आहार द्रव्यों के प्रविष्ट होने पर पित्तनलिका में उड़ेलता है। इस समय यकृत से चला स्राव एवं पित्तकोष द्वारा उड़ेला गया स्राव दोनों पित्तनलिका द्वारा ग्रहणी में आकर गिरता है और पित्तनलिका इन दोनों के संयुक्त स्राव को मार्ग देता है।

मगर जब ग्रहणी आहार द्रव्यों से रिक्त रहता है तो उस समय यह ढीला-सा हो जाता है—पित्तनलिका का निचला भाग इस प्रभाव से प्रभावित हो जाता है वह भी किञ्चित ढीला सा रहता है। इस का फल यह होता है कि नलिका का अन्तः मार्ग किञ्चित संकुचित (Relaxed) सा हो जाता है और इस समय याकृतीय स्राव की समूची राशि निर्वाधित रूप से बाहर निकल जाने को मार्ग नहीं पाती है। यकृत तो अपना स्राव निरन्तर एक ही सा स्रवित करता रहता है चाहे आहार द्रव्य ग्रहणी में हो अथवा नहीं हो। इसकी राशि में कोई अन्तर नहीं आता, यह अपनी राशि में स्रवित होता है। मगर पित्तनलिका का निम्न भाग जब किंचित संकुचितावस्था में रहता है तो यह निर्वाध रूप से ग्रहणी में नहीं गिरता है, नलिका के अन्तः मार्ग के संकोच के कारण इसके प्रवाह में वाधा पहुंचती है। प्रवाह में किञ्चित वाधा पाने के कारण याकृतीय स्राव का कुछ अंश इस समय पित्तकोष में गिरकर संग्रहित होता रहता है। आहार द्रव्यों से ग्रहणी जब रिक्त रहता है तब याकृतीय स्राव का कुछ अंश तो बूंद-बूंद कर निरन्तर ग्रहणी में गिरता है और कुछ अंश पित्त कोष में संग्रहित होता है जो आवश्यकता आने पर पुनः उसे पित्त नलिका में उड़ेल ग्रहणी में गिराता है। इस प्रकार याकृतीय स्राव का पित्तकोष में संग्रह एवं ग्रहणी में पतन दोनों एक साथ होता रहता है। ग्रहणी में जब आहार द्रव्य उपस्थित रहता है उस समय पित्तकोष में याकृतीय स्राव का संग्रह नहीं होता है। इस समय पित्तकोष भी अपने में संग्रहित याकृतीय स्राव को पित्तनलिका में उड़ेल कर बाहर निकालता है। इस प्रकार पित्तकोष में भी याकृतीय स्राव का संग्रह एवं पुनः उनके निष्काषण का क्रम चलता रहता है।

इस याकृतीय स्राव में पाचकपित्त के सूक्ष्म एवं शक्ति स्वरूप तथा वैकारिक रूप दोनों ही रहते हैं। इसके अतिरिक्त इस में रंजकपित्त के भी कुछ अंश मिले रहते हैं। वसा के भी कुछ अंश एवं आहार रस एवं रक्त में रहे अन्य अनावश्यक अंश जिसे कि यकृत छान कर अलग कर देता है सभी मिले रहते हैं। शक्तिरूपी पाचक पित्त तो शक्ति-रूप है— उसका कोई रूप नहीं, वह शक्ति रूप में ही इसमें भी रहता है। वैकारिक रूप में मुख्य जो इस में रहते हैं वे हैं, कुछ जाति के क्षार, कुछ जातिके लवण जैसे सैन्धव तथा अन्य वस्तु, रंजक पित्त का एक अंश हरित पीत वर्ण के रंजक पदार्थ के रूप में रहता है जिसे मृत रक्तकणों से रंजक बनाता है एवं यकृत उसे छान कर अलग करता है। कुछ स्निग्ध पदार्थ इस में (Muciniods) मिले रहते हैं, कुछ वसा का अंश

रहता है, कुछ जलीयांश रहता है। इस प्रकार यह नाना प्रकार के ऐसे द्रव्यों का मिश्रण होता है।

यद्यपि यकृत इन्हें छान कर, एक त्याज्य वस्तु के रूप में बाहर निकाल कर फेंकता है फिर भी इस का कुछ उपयोग होता है। इस के एक-एक वस्तु पर यदि ध्यान देंगे तब यह सिद्ध होगा कि ये शरीर के लिये अनावश्यक थे और इसीलिये यकृत उन्हें छान कर बाहर निकालता भी है। मगर इन सभी के मिश्रण से जिस वस्तु का निर्माण हो जाता है उस में कुछ विशेषता आ जाती है। अतः शरीर इसकी विशेषता को उपयोग में लाकर ही शरीर के बाहर निकालता है। या यों भी कहा जा सकता है कि बाहर जाते-जाते भी यह अपना कुछ कार्य करता जाता है।

याकृतीय स्राव ग्रहणी में गिर कर तीन कार्यों को करता हुआ पुरीष के साथ बाहर निकल जाता है। एक तो यह क्लोम रस (Secretine) को उत्पन्न करता है, दूसरा यह अग्न्याशयिक स्राव को स्रवित करता है एवं तीसरा वसा का पाचन वसाम्ल से करता है। इसी अम्ल पाचन को सूत्र रूप में "अम्लन्तु पाकतः" कहा है।

क्लोम रस

याकृतीय स्राव का गिरना ग्रहणी में निरन्तर होता रहता है। ग्रहणी की पित्तधराकला याकृतीय स्राव के कुछ अंशों को शोषित कर क्लोम रस (Secretine) नामक वस्तु का निर्माण करती है। पित्तधराकला याकृतीय स्राव के संयोग से प्रतिक्रिया रूप में इसे उत्पन्न करती है। यह क्लोम रस ग्रहणीस्थ रक्तस्रोतों द्वारा शोषित हो जाता है और सारे शरीर में संवाहित होता है।

अग्न्याधिष्ठानं अन्नस्य ग्रहणात ग्रहणी मता।

च० चि० १५ अ० श्लो० ५५

षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता।
आमपक्वाशयन्तःस्था ग्रहणी साऽभिधीयते॥
ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठे वह्निना जायते कटुः।

भा० पू० प्र० २ श्लो० २०४-२०५

षष्ठिपित्तधरा कला पक्वाशयमध्यस्था सा ह्यन्तरग्न्याधिष्ठानं। --अष्टांग संग्रह।

यह क्लोम रस शरीर में संवाहित होता हुआ अग्न्याशय में आ कर उसे उत्तेजना प्रदान करता है। अग्न्याशय इस से उत्तेजित होकर शक्तिरूपी कायाग्नि को उत्पन्न करता है जिसे कायोष्मा भी कहते हैं। अग्न्याशयस्थ रक्तस्रोत द्वारा शोषित हो यह सारे शरीर में फैल उसे उष्ण बनाये रखने का कार्य करता है। रक्तस्थ क्लोम रस इस में भी सहायक होता है। क्लोम रस से उत्पन्न यही कायाग्नि शारीरिक तन्तुओं को आहार रस आत्मसात करने की शक्ति प्रदान करती है, यही पाचक स्रावों में शक्ति रूप से उपस्थित रह उन्हें आहार द्रव्यों को पचाने की शक्ति देती है--शरीर को उष्मा प्रदान कर जीवित रखती है। इसे ही सूत्ररूप में कहा है--

तस्मात तेजोमयं पित्त पित्तोष्मा यः स शक्तिमान।
स सञ्चरति कुक्षिस्थ सर्वतो धमनी मुखैः॥
स कायाग्नि स कायोष्मा स पक्वा स च जीवनम्।
अनन्यगतिरिव्येयेव देहे कायाग्निरुच्यते।

भा० पू० प्र० २ श्लो० १४०-१४१

यह क्लोम रस पाचक स्रावों से सर्वथा भिन्न वस्तु है। यह अन्य स्रावों की तरह आहार द्रव्य से संयुक्त हो उसका पाचन करता हुआ बाहर निकल नहीं जाता बल्कि रक्तवाहिनी द्वारा शोषित हो कर सारे शरीर में फैलता है एवं रह जाता है। चूंकि याकृतीय स्राव ग्रहणी में निरन्तर गिरता रहता है, इसलिए क्लोम रस का निर्माण भी पित्तधराकला द्वारा होता रहता है और शरीर में निरन्तर कायाग्नि का निर्माण होता रहता है। मगर यदि क्लोम रस एक साधारण मात्रा से अधिक बने तो यह अपनी अधिक राशि के कारण अग्न्याशय को भी अधिक उत्तेजित करता है। आमाशय उत्तेजित होकर तो कायाग्नि का निर्माण करता ही रहता है मगर अधिक उत्तेजना मिलने पर कायाग्नि के साथ-साथ एक स्राव को स्रवित करने लगता है जिसे अग्न्याशयिक स्राव कहते हैं। इस प्रकार अाग्न्याशय अधिक अधिक उत्तेजना को अन्य काम में लगा अपने कायाग्नि उत्पन्न करने के अपने गुण को संतुलित रखता है। हां, क्लोम रस की अधिक राशि में उपस्थित होने के कारण रक्त की उष्णता उस समय किञ्चित अधिक अवश्य हो जाती है। मगर यह क्लोम रस के अपने प्रभाव से होता है जो कि रक्त में संवाहित होता रहता है--अग्न्याशय के अधिक कायोष्मा उत्पन्न करने के कारण नहीं, और यह उष्माधिक्यता प्रायः स्वाभाविक होती है। (सावशेष)

हेमन्त ऋतु और स्वास्थ्य

श्री जी० एस० अग्रवाल, आयुर्वेदाचार्य, साहित्यरत्न

मार्गशीर्ष (अगहन) तथा पौष (पूस) —ये दो मास हेमन्त ऋतु के अन्तर्गत माने जाते हैं। गुजरात में नव वर्ष का आरम्भ इसी समय होता है। गीता में योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र ने मार्गशीर्ष मास को सर्वश्रेष्ठ तथा प्रिय मास कहकर सम्बोधित किया है। वस्तुतः यह ऋतु ऐसी ही है। विसर्ग काल की अंतिम ऋतु होने के कारण यह ऋतु प्राणियों में शक्ति-संचय की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। इस समय सूर्यनारायण वृश्चिक तथा धन राशि में आ जाते हैं और दक्षिणायन सूर्य का प्रभाव और भी नष्ट हो जाता है। यही कारण है कि पृथ्वी के सौम्य अंश को वे पूर्णरूपेण ग्रहण करने में असमर्थ हो जाते हैं। इसके विपरीत सौम्यांश विधायक चन्द्रदेव पूर्ण शक्तिशाली होकर अपनी सुधामयी किरणों के द्वारा पृथ्वी पर पूर्ण स्नेह प्रदान करने लगते हैं। परिणामस्वरूप द्रव्य विशेष माधुर्ययुक्त तथा प्राणी शक्ति-सम्पन्न हो जाते हैं।

हेमन्त ऋतु में उत्तर दिशा की वायु चलती है। उस वायु में शीतलता रहती है और सभी दिशाएँ धूल तथा धुएँ से व्याप्त प्रतीत होने लगती हैं। कोहरा और पाला भी पड़ने लगता है। यहाँ तक कि सूर्य पर भी इसका प्रभाव पड़ता है और वे कोहरे से ढँक-से जाते हैं। जलाशय आदि का जल हिम के रूप में बदल जाता है और पशु प्रसन्नता का अनुभव करने लगते हैं। नदियों में तनिक भी अस्वच्छता नहीं रह जाती, जल और मार्ग भी पूर्ण स्वच्छ हो जाते हैं, धान पक जाता है और अन्न खूब तैयार हो जाता है।

शीतकाल के प्रभाव से शरीर के बाहरी भाग में शीत का स्पर्श होने के कारण त्वचा की उष्णता भीतर रुक जाती है और शीतल वायु से आघात पाकर शरीर में पहुँच जाती है जिससे जठराग्नि को शक्ति मिलती है। इस शक्तिमयी जठराग्नि को यदि आहार रूपी लकड़ी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाती है तो शरीर की रक्तादि धातुओं का शोषण करने लगती है। अतएव इसे भारी तथा स्निग्ध, मधुर, अम्ल एवं खारे पदार्थ पर्याप्त मात्रा में देते रहना चाहिए। ऐसा करने से पाचन एवं शारीरिक पोषण पूर्णरूपेण होता है। ऐसा न करने से शीत के कारण वायु-प्रकोप होने की सम्भावना रहती है। अतः हेमन्त ऋतु में अवलेह, मोदक, पाक, ईख का रस तथा उससे निर्मित पदार्थ, मिष्ठान्न, दूध, घृत, चावल, उड़द, बाजरा, मक्का सरीखे नये अन्न, मधु (शहद), तेल, केसर-कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्य, गुड़ तथा अमरूद का सेवन करना उपयोगी है। इस ऋतु में शुद्ध घृत, लड्डू, मेवा सरीखे पौष्टिक का विशेष सेवन करने से रस की वृद्धि होती है और कफधातु से शक्ति बढ़ती है। कफ-प्रकृति के लोगों का कफ इस ऋतु में बढ़ जाने से उनको दमा, खाँसी, जुकाम, हृदयशूल, आदि व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, किन्तु जिनकी कफ-प्रकृति नहीं होती, उनमें विशेष कफ-वृद्धि हो जाने पर वसंत-ऋतु में पड़ने वाली सूर्य-किरणों की उष्णता से वह कफ पिघलने लगता है और उससे अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतः बढ़े हुए कफ को वसन्त ऋतु में कम कर देना आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है।

हेमन्त ऋतु में स्नान गरम जल से करना चाहिये। इसके पूर्व तैल-मालिश और उबटन का विधान है। इस ऋतु में शौच तथा हाथ-पैर धोने के काम में भी कुनकुने जल का प्रयोग करना चाहिये। घर में गरमाहट रखनी चाहिये। गरम तहखाने भी उपयोगी होते हैं। शरीर को ढँककर रखना चाहिये ताकि शीत से रक्षा होती रहे। पहनने तथा ओढ़ने-बिछाने में ऊनी, रेशमी तथा रूई भरे गर्म कपड़ों का व्यवहार करना चाहिये। संचित कफ के पूर्वोक्त प्रकोप से बचने के लिये हेमन्त ऋतु में धूम्रपान तथा अंजन-क्रिया उपयोगी मानी गई है। आग तापना तथा सूर्य-किरणों का सेवन करना भी लाभप्रद है। सूर्य की किरणें पीठ की ओर और अग्नि पेट की ओर रहे यह स्मरण रखना आवश्यक है। कुशल कुश्तीबाजों से यथाशक्ति कुश्ती लड़ना और पैरों से बदन दबवाना इस ऋतु में उपयोगी है। वस्त्रों में कीटाणुओं के प्रवेश से सुरक्षा की दृष्टि से केसर, कस्तूरी, अगर आदि की धूनी देनी चाहिये। जूते और मोजे का उपयोग तो सुबह-शाम करना ही चाहिये।

(शेषांश ६८६ पृष्ठ पर)

स्वप्नों की दुनिया

आयुर्वेदाचार्य डा० श्रीकृष्ण जायसवाल, ए० एम० एस०

जिस प्रकार शरीर के मनोरंजन के लिये खेलकूद आदि आनन्दकर होते हैं उसी प्रकार स्वप्न, मस्तिष्क को व्यक्ति के स्वभावानुसार मनोरंजन देता है। स्वप्न, स्वस्थ मस्तिष्क की पहिचान है। अस्वप्नावस्था मस्तिष्क के विकृत होने का लक्षण है। हमारे जीवन में न जानते हुए तथा जाग्रतावस्था की इच्छाएं, जिन्हें हम कोई महत्त्व नहीं देते स्वप्न द्वारा पूरी की जाती है। स्वप्न बच्चों, बूढ़ों, युवकों-युवतियों सभी को अवस्था तथा स्वभाव के अनुसार मनोरंजन प्रदान करता रहता है।

यह स्वप्न निद्रावस्था में आता है जब कि शरीर के सभी वाह्य अंग 'इन्द्रिय' वाह्य संसार से सम्पर्क बनाये रहते हैं। 'चरक' पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के मत से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि मस्तिष्क वाह्य संसार से सम्बन्ध नहीं रखता जिसे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक मानते हैं। यह भी इन्द्रियों के समान वाह्य संसार से पृथक हो जाता है। स्वप्नावस्था ही एक ऐसी अवस्था है जिस समय यह वाह्य संसार से सम्पर्क करता है।

यदा तु मनसिक्लांते,
कर्मात्मानः क्लमान्वितः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते,
तदा स्वपिति मानवः।।

(चरक)

जब कि मस्तिष्क तथा अन्य वाह्य अंग थक जाते हैं वे बाह्य संसार से पृथक हो जाते हैं और मनुष्य सोता है। इससे प्रमाणित होता है कि मस्तिष्क ही सोता है जिसे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक नहीं मानते।

स्वप्नों के कारण

(१) वाह्य, (२) आभ्यन्तरीय, (३) आभ्यन्तरीय भौतिक, (४) मनोवैज्ञानिक।

वाह्य

सूचना ले जाने वाली लहरें (अवाज, स्पर्श, गंध आदि) सोते समय मस्तिष्क में पहुँचती हैं। ये लहरें बड़ी सरलता से स्वप्नों का कारण बन जाती हैं। इसी कारण हमलोग सोते समय एकान्त चाहते हैं—प्रकाश, शब्द आदि सभी से। आँख बंद कर सुखप्रद बिछौना आदि पर हाथ पाँव मनोनुकूल फैला या संकुचित कर लेते हैं। परन्तु इन शब्दों द्वारा हम कभी भी जगाये जा सकते हैं। वाह्य संसार से निद्रावस्था में मस्तिष्क का सम्बन्ध बना रहना ही स्वप्नावस्था है। 'वाग्भट' भी मस्तिष्क की अवस्था उसी प्रकार स्वप्नावस्था में बतलाते हैं।

"सर्वेन्द्रिय व्युपरतौ मनोऽनुपरतं यदा।
विषयेभ्यस्तदा स्वप्नं नानारूपं प्रपश्यति।।"

(अष्टांग संग्रह)

जब कभी वाह्य अंग 'इन्द्रिय' वाह्य संसार से पृथक कर दिये जाते हैं और निद्रावस्था में मस्तिष्क वाह्य संसार से सम्पर्क रखता है, वैसे ही जिस प्रकार जाग्रतावस्था में रहता है, तब स्वप्न विभिन्न प्रकार के आते हैं।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि पुरातन काल में जब कि पाश्चात्य देशों को अ–ब–स भी नहीं मालूम था, हमारे यहाँ के विद्वानों को पता था कि मस्तिष्क की दशा स्वप्नावस्था में क्या रहती है।

विभिन्न प्रकार की वाह्य उत्तेजनाओं की लहरें अपने प्रकार का स्वप्न देती हैं। बादलों की गड़गड़ाहट, लड़ाई-वाला स्वप्न देती है, मुर्गे की बाँग घबराहट या डर की आवाज देती है। रात्रि के समय जब कम्बल या चादर शरीर के ऊपर से हट जाती है, तब नंगे चलने का या पानी में गिरने का स्वप्न होता है। अगर चारपाई से आगे पाँव बढ़े हों, तो ऐसा स्वप्न आता है कि हम पहाड़ से गिर रहे हों या किसी ऊँचे स्थान से।

इन उदाहरणों से यह साफ मालूम होता है कि बाह्य उत्तेजना स्वप्न पैदा करने में अधिक सहायता देती है।

प्रश्न यह आता है कि वाह्य लहरें एक प्रकार की और उससे सम्बन्धित स्वप्न दूसरे प्रकार क्यों होते हैं। स्ट्रम्पेल साहब का कहना है कि लहरों तथा मस्तिष्क का सम्बन्ध निद्रावस्था में बिगड़ जाता है तथा उतना साफ

नहीं रहता। जिसका परिणाम रस्सी को साँप समझने के समान हो जाता है। जैसे हम एक दूर स्थित वस्तु को देखते हैं। वह सफेद-सी कोई वस्तु मालूम होती है। किन्तु जैसे-जैसे उसके पास आते जाते हैं वह सफेद पत्थर या टीला, से सफेद कपड़ा पहने हुए कोई व्यक्ति में परिवर्तित हो जाती है।

इस प्रकार पहले मस्तिष्क पर प्रभाव स्पष्ट नहीं पड़ता। इसलिये यह विभिन्नता देखने को मिलती है। जब जाग्रतावस्था में कुछ वस्तु दूसरी दिखाई पड़ती है, तब स्वप्नावस्था में अन्तर होना अधिक स्वाभाविक है।

आभ्यन्तरीय

इसमें उन लहरों का प्रभाव अधिक होता है जिनसे दृष्टि तथा अन्य इन्द्रियाँ अधिक परिचित होती हैं। इन स्वप्नों में अधिक समानता रहती है। जैसे प्रातःकाल के स्वप्न में लहरें प्रकाश से अधिक मिलती हैं। ये बाद में आँखों से हो कर मस्तिष्क में सूचना देती हैं। इसी कारण जो प्रातः देर तक सोने के अभ्यासी होते हैं उन्हें अधिक स्वप्न दिखाई देते हैं।

आभ्यन्तरीय भौतिक

हमको अपने शरीर के अन्दर कार्य करनेवाले अवयवों का ज्ञान नहीं रहता। वे बिना किसी प्रकार की लहरें दिए हुए कार्य करते रहते हैं। उनकी उपस्थिति तभी मालूम होती है जब उनमें किसी प्रकार की विकृति आ जाती है।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि निद्रावस्था में मस्तिष्क उनकी खबर विशेष रूप से लेता है। जाग्रतावस्था में उसके पास अन्य कार्यों की भरमार रहती है। इसी कारण हम देखते हैं कि दिन के शोर-गुल समाप्त होने पर रात्रि के समय रोगी अपने कष्ट को अधिक अनुभव करता है। वह जाग्रतावस्था में इन अवयवों की लहरों पर विशेष ध्यान नहीं दे पाता। उन्हीं लहरों पर वह निद्रावस्था में ध्यान देता है। इसलिये इस प्रकार के स्वप्नों पर विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योंकि यह बीमारी होने के पहले आगाह कर देता है।

मेरे एक रोगी ने देखा कि उसके दाँत गिर रहे हैं; उसके तीन दिन बाद उसे टाइफाइड हो गया। इससे मालूम होता है कि आँतों के खराब होने की सूचना मस्तिष्क को तीन दिन पूर्व ही मालूम हो गई थी।

आयुर्वेद में 'चरक' तथा 'सुश्रुत' ने विभिन्न प्रकार के स्वप्नों का वर्णन किया है, जो निदान (रोग पहचानना) तथा साध्यासाध्यता (अच्छा होगा या नहीं) पर विशेष बल देते हैं इस प्रकार का कोई भी वर्णन पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने नहीं किया है। उदाहरण स्वरूप—

"लभेताश्नीत वा पक्वमन्नं यश्च पिबेत् सुराम्।
स्वस्थः सः लभते व्याधिं व्याधितो मृत्युमृच्छति॥"
(सुश्रुत)

जो पका हुआ भोजन तथा शराब पीना स्वप्न में देखता है वह स्वस्थ है, तो बीमार पड़ जायगा और अगर बीमार है, तो मर जायगा। इस प्रकार बहुत से स्वप्नों का एक पाठ ही दिया है। यह आयुर्वेद की सूक्ष्म देन है। घबराहट के स्वप्नों को फेफड़े या हृदय के विकार का प्रमाण सभी मानते हैं। विकृत अंगों की सूचना हमें स्वप्न द्वारा पहले से ही मिल जाती है अर्थात् रोग के लक्षण होने के पूर्व। हृदय विकार के स्वप्न बड़े-छोटे होते हैं तथा वे हमें जगा देते हैं। पाचन-संस्थान की विकृति से पैदा हुए स्वप्नों में मनुष्य विभिन्न प्रकार के भोजन खाता है। स्वप्नदोष व्यक्ति की लैंगिक इच्छा का द्योतक होता है।

मनोवैज्ञानिक

स्वप्नों का सम्बन्ध जब जाग्रतावस्था से स्थापित किया जाता है तब यह मालूम होता है कि मनुष्य उन विषयों को स्वप्न में देखता है जिसे उसने किसी न किसी रूप में जाग्रतावस्था में देखा है। वह अपनी रुचि से सम्बन्धित विषयों को विशेषकर देखता है। क्योंकि ये विषय जाग्रतावस्था से स्वप्नावस्था में बड़ी सरलता से चले जाते हैं।

स्वप्नों को क्यों भूल जाते हैं?

हम कहा करते हैं कि रात्रि में एक बहुत सुन्दर स्वप्न हमने देखा है, परन्तु उसे भूल गए। इस भूलने के विभिन्न कारण हैं।

(१) जो कारण किसी विषय को जाग्रत अवस्था में भुला देते हैं वे सभी कारण स्वप्नों को भी भुला देते हैं। यह स्वाभाविक है। अगर मनुष्य में भूलने की आदत न हो, तो वह पागल हो जाये तथा शायद ही उसका कोई

मित्र सम्बन्धी बना रहे। बचपन से न जाने कितने अत्याचार, लड़ाई, झगड़े एक दूसरे से करते रहते हैं तथा हम उन्हें भूलते भी रहते हैं। अगर न भूलें, तो माँ-बाप, भाई-बहन, पत्नी, पुत्र सभी से झगड़ा बना रहे।

(२) बहुत-से स्वप्नों में आकार आदि इतने विचित्र रहते हैं कि हम उन्हें स्मरण नहीं रख सकते।

(३) अगर किसी कविता को अस्त-व्यस्त करके तथा बिना किसी भाव या अर्थ का बना डालें तो उसे याद करना कठिन होता है। भावपूर्ण तथा नियमबद्ध कविता तथा विषय याद रहते हैं।

स्वप्नों में यही दोष होते हैं। जिन स्वप्नों में कोई नियमबद्धता नहीं होती तथा जो बिना सिर-पैर के होते हैं, वे याद नहीं रहते।

(४) जाग्रतावस्था में आते ही संसार के सुख-दुःख, चिन्ता, काम, शोर-गुल आदि सभी मस्तिष्क को घेर लेते हैं। इसलिये स्वप्नों की मृदु रेखायें मिट जाती हैं और हमें स्वप्न याद नहीं रहते।

(५) अधिकतर लोग स्वप्नों के बारे में नहीं सोचते। परन्तु जिन लोगों की आदत स्वप्नों के बारे में सोचने की होती है, उन्हें स्वप्न याद रहते हैं।

स्वप्नों का प्रभाव

(१) डेल बूफ का सिद्धान्त—इसमें जाग्रतावस्था तथा स्वप्नावस्था में विशेष अन्तर नहीं माना जाता। इसमें जाग्रतावस्था का मनोवैज्ञानिक प्रमाद स्वप्नावस्था में पूर्ण-रूप से चला जाता है।

(२) भौतिक सिद्धान्त—स्वप्न हमेशा जाग्रतावस्था में दिखाई देते हैं। मस्तिष्क को थकाने वाले पदार्थ इकट्ठा हो जाते हैं। उन्हें रक्तप्रवाह धीरे-धीरे बहा ले जाता है। इस तरह कुछ भाग मस्तिष्क के साफ हो जाते हैं, कुछ साफ होते रहते हैं और इस बीच के काल में स्वप्न पैदा होते हैं। यही कारण है कि प्रातःकाल के स्वप्न मध्य रात्रि के स्वप्नों से अधिक भावपूर्ण होते हैं क्योंकि इस समय मस्तिष्क को बढ़ाने वाले पदार्थ बहुत ही अल्प मात्रा में रह जाते हैं।

(३) रोबर्ट का सिद्धान्त—मनुष्य अधिकतर दिन के प्रभावहीन विषयों को स्वप्न में देखता है। दिन के प्रधान विषयों को यदाकदा ही स्वप्न में देखता है। पूर्ण हुए विषय तथा जिन विषयों का पूर्ण निर्णय हो चुका है उन्हें स्वप्न में नहीं देखा जाता। स्वप्नों द्वारा हम मस्तिष्क से न जाने कितने विषय बाहर निकाल देते हैं जो कि जाने-अनजाने मस्तिष्क में पहुँच जाते हैं। अगर स्वप्न मनुष्य के जीवन से पृथक कर दिया जाय तो मस्तिष्कों में विकार पैदा हो जायेंगे; क्योंकि न जाने कितने विषयों तथा बातों की कितनी रेखाएं मस्तिष्क में पड़ती जायँगी और ये रेखाएं मस्तिष्क को भार पहुँचायेंगी, स्मरणशक्ति तथा ग्राह्य शक्ति कम होती जायगी। इसलिए स्वप्न द्वारा हमारे मस्तिष्क में पड़ी रेखाएं मिट जाती हैं तथा मस्तिष्क हल्का हो जाता है।

(४) बूर्डा का सिद्धान्त—स्वप्न मस्तिष्क का स्वाभाविक गुण है तथा वाह्य बातों द्वारा यह संचालित नहीं होता।

स्वप्न मस्तिष्क को आनन्द पहुँचाने के लिये होते हैं। स्वप्न के अभाव में हम जल्दी बूढ़े होते हैं। यह मस्तिष्क को स्वस्थ रखने के लिये हल्का-सा व्यायाम है।

भारतीय सिद्धान्त

वेदान्त—स्वप्नों में नई दुनिया का निर्माण होता है जो कि 'माया' द्वारा बनाई जाती है। यह माया जिसको हम चेतनता से नहीं समझ सकते बहुत-सी बातें दिखलाती हैं जो हमारे जीवन में किसी प्रकार बीत चुकी होती है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक इस माया को अचेतन मस्तिष्क समझते हैं।

न्याय—निद्रावस्था में स्वप्न आते हैं, जिससे न जानते हुए भी मस्तिष्क की लहरें वाह्य दुनिया से प्राप्त होती रहती हैं और इसका ज्ञान वाह्य अंगों 'इन्द्रियों' को नहीं रहता और ये लहरें पिछले जीवन से कुछ न कुछ सम्बन्ध रखती हैं।

आयुर्वेद :—**नाति प्रसुप्तः पुरुषः सफलान फलानपि।**
इन्द्रियेशेन मनसा स्वप्तान् पश्यत्यनेकधा॥

निद्रावस्था में जबकि मनुष्य अर्ध जाग्रतावस्था में रहता है तथा मस्तिष्क के पास लहरें पहुँचती रहती हैं, वाह्य जगत की विभिन्न बातों को वह इन्द्रियों द्वारा स्वप्नों में देखता है जो कभी पुरानी बातों के होते हैं तथा कभी नवीन बातों के।

स्वप्न तथा मस्तिष्क के विकारों का सम्बन्ध

पागलपन का पहला दौर साधारणतः घबराहट के स्वप्न के बाद शुरू होता है। अगर स्वप्न में भूत-प्रेतों को अपने साथ नाचते देखे तथा बाद में पानी में डूब जाय

तब वह मस्तिष्क-विकार से जरूर पीड़ित होगा और प्राण त्याग देगा।

विवेचन

(मनोवैज्ञानिकों द्वारा)

(१) पागल जाग्रतावस्था में स्वप्न देखता है।

(२) पागलपन एक स्वप्न है, जिसमें इन्द्रियाँ जागती रहती हैं।

(३) स्वप्न थोड़ा सा पागलपन है तथा पागलपन एक लम्बा स्वप्न है।

बेतरतीबी से मिले विचारों तथा निर्णय की कमजोरी ही स्वप्न तथा पागलपन के प्रधान विषय होते हैं। बीमारियों में बड़बड़ाना आदि को रोगी बिना आराम का स्वप्न देखता है।

स्वप्न इच्छापूर्ति का साधन

स्वप्न हमेशा बिना अर्थ के नहीं होते, न बेकार होते हैं। अगर प्यासा मनुष्य सोता रहता है तो वह जाग उठता है। जागने के पहले वह स्वप्न देखता है जैसे वह कुछ पी रहा है। प्यासा रहने से पानी पीने की इच्छा रहती है। स्वप्न उसे जगाकर पूरा कर देता है। पानी पीकर वह सो जाता है और स्वप्न नहीं आते। इसी प्रकार हर स्वप्न किसी न किसी प्रकार से इच्छा की पूर्ति करते रहते हैं। इन्हें दो भागों में बाँटा जा सकता है। (१) इच्छा की पूर्ति, (२) इच्छा की पूर्ति, न पहचाने जाने वाले स्वप्न—जो कि छिपाए जाते हैं। पहले प्रकार के स्वप्न बच्चों को अधिक दिखाई देते हैं और दूसरी प्रकार के बड़ों को।

स्वप्नों के प्रकार

आधुनिक मनोवैज्ञानिक सभी स्वप्नों को इच्छापूर्ति वाले मानते हैं परन्तु 'चरक' ने इन्हें सात प्रकार का माना है।

दृष्टं श्रुतानुभूतं च प्रार्थितं कल्पितं तथा।
भावितंदोषजंचैव स्वप्नं सप्तविधं विदुः॥

सुने-देखे, अनुभव किये हुए, करने की इच्छा वाले, करने के पक्के इरादे के, करने चाहने की आशा वाले, शरीर की अस्वस्थता के।

इस प्रकार चरक ही एक ऐसे ज्ञाता संसार में हुए हैं जो स्वप्नों का सच्चा विश्लेषण कर सके। वही स्वप्नों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव तथा बीमारी से सम्बन्ध जोड़ सके जबकि आजकल के मनोवैज्ञानिक विभिन्न यन्त्रों द्वारा भी इतनी दूर तक पहुँचने में असमर्थ हैं। हमारे पूर्वजों को स्वप्नों के बारे में कितना ज्ञान था यह देखकर हमें आश्चर्य होता है।

शेषांश] **हेमन्त ऋतु और स्वास्थ्य** [६८२ पृष्ठ का

'शयन के समय मृगचर्म तथा कम्बल सुखदायक सिद्ध होंगे। इस ऋतु में सम्भोग किया जा सकता है। किन्तु "अति सर्वत्र वर्जयेत्"। रात्रि में तापने के लिये धधकती हुई आग बन्द कमरे में रखते समय धुआँ निकलने की व्यवस्था कर लेनी चाहिये, अर्थात् खिड़की वगैरह खुली रखनी चाहिये और धूनी आदि देते समय स्वयम् उस बन्द स्थान में भूलकर भी नहीं रहना चाहिये। यदि सुबह या रात्रि के समय कहीं कार्यवश बाहर जाना हो तो बन्द सवारी में जाना चाहिए ताकि शीत से रक्षा होती रहे। हेमन्त ऋतु में अल्पाहार के साथ ही कटु, तीक्ष्ण, कषाय, वातकारक, हल्के, शीतल शुष्क आहार से बचना चाहिये। कर्कश-पूर्वी वायु और शीतल जल का सेवन भी हानिप्रद है। बर्फ, सत्तू, कसेरू, सिंघाड़ा, पोस्ता, पुराना आलू, केला, मोठ, जौ, पुराना अन्न तथा भैंस का दूध—से सभी हेमन्त ऋतु में अपथ्य माने गये हैं; अतः त्याज्य—न ग्रहण करने योग्य हैं। संक्षेप में, यही आयुर्वेदोक्त हेमन्त ऋतुचर्या है।

गोरक्ष संहिता

(षष्ठ पटलः)

(पूर्वतोऽनुवृत्तः)

तारकान्तस्य दिव्यस्य कालपाशेन वज्रवत् ।
काठिन्यं मौक्तिकं लोके तस्या संज्ञा विधीयते ॥५४॥
सबध्नाति रसं क्षिप्रं धनदं स्पर्धते नरः ।
कर्षेणैवोपयुक्तेन यमस्तस्यैव किङ्करः ॥५५॥
हेम तारेण संयुक्तं सूतकं कारयेद्बुधः ।
उक्तमूषोदरे संस्थं कपाग्नौ तन्निधापयेत् ॥५६॥
मुखे तस्य मणिर्देयः पूर्णिमायां (?) निर्हृतः ।
त्रिपुरादिहितं मन्त्रं धारयेत्कालयोगतः ॥५७॥
सोमस्यांशुसमायोगात्तारका तु (न्तो) मृतोपमः ।
बध्नाति स्पर्शनात्सूतः (तं) रञ्जत्यत्र न संशयः ॥५८॥
महानलसहो ह्येषु सारयित्वा महारसम् ।
वेधयेत्सर्वलोहानि कोटयंशेन महारसः ॥५६॥
कर्षेणैवोपयुक्तेन विश्वार्धं व्रजति क्षणात् ।
अमरश्च तथा विन्ध्यो यथा रुद्रस्तथैव सः ॥६०॥

अथ चपलस्य कर्म सर्वस्वे ।

वङ्गवत्द्रवते वह्नौ च (प) लस्तेन कीर्तितः ॥६१॥
क्षीयते नापि वह्निस्थ (:) सत्त्वरूपो महाबलः ।
इदृशश्चपलो वा स्याद्वादिनां वादकर्मणि ॥६२॥
वस्त्रेण बध्वा चपलं लङ्घयेद्यदि सागरम् ।
वस्त्रेण वेष्टयते सद्यस्तेन तच्चपलो मतः ॥६३॥
सितपीताऽरुणःकृष्ण इति भेदाच्चतुर्विधः ।
चपलेन समः सूतो क्षणेनैव निबध्यते ॥६४॥
द्रावकेन तु योगेन मूषालेपं तु कारयेत् ।
हेम्नैवाऽथ च तारेण योजयित्वा महारसम् ॥६५॥
खदिराग्नावधो धाम्यं तत्क्षणान्मिलति ध्रुवम् ।
चतुर्थांशेन तु तस्य ग्रासं दद्याद्धि साम्लकम् ॥६६॥
चणकाम्लेन संमर्द्य द्रावकं तु विनिक्षिपेत् ।
कृत्वा गर्भद्रुतिं तस्य धाम्य (म्यं) मूषागतं हि तत् ॥६७॥
तत्क्षणाद्बन्धमायाति वज्रौपम्यो न संशयः ।
सारयित्वा समं हेम तारैकशत वेधितम् ॥६८॥
सहस्रलक्षकोटीभिः कुर्यादिष रसोत्तमः ।
चारणोत्तरयोगेन उच्चवेधी क्रमाद्भवेत् ॥६९॥
यदा कल्प पलेनैव उपयुक्तेन जीवति ।
अथ वज्रस्य पातेन सूतको बन्धमाप्नुयात् ॥७०॥
विबोध्य हेमताराभ्यां वज्रकन्दरसेन तु ।
ततस्तद्धि न्यसेत्सूतं निर्मले घा (घो) पभाजने ॥७१॥
समुन्नता यदा मेघा (मेघा) जेष्ठाषाढेऽम्बुपूरिताः ॥
कार्त्तिके वाश्वयुजि वा नभस्योपरि विन्यसेत् ॥७२॥
वने वा तरुशाखायां यत्र कश्चिन्न पश्यति ।
आरामशून्यगेहे वा यत्र वज्रं निपातयेत् ॥७३॥
तडित (त्) घोषप्रिया नित्यं जीमूतस्था क्वचित्क्षणः ।
निष्कामवातयोगेन तदावश्यं तु तत्र सा ॥७४॥
लिप्यते तत्क्षणादेव भस्मतां सन्नयेद्रसम् ।
निपुणस्तद्रसं ग्राह्यवज्रकन्देन लेपिते ॥७५॥
उत्थाय निक्षिपेत्सूतं तारं हेम च संयुतम् ।
शतांशेन तु तेनैव छादयित्वा तवोपरि ॥७६॥
अध (न्ध) यित्वा धमेद्धीमांस्तद्रसम् तत्क्षणाद्भवेत् ॥
पुनः शतेनैव ···· गोलकःसर्वजो भवेत् ॥७७॥
हेमतारसमायुक्तः सारयित्वा समं बुधः ।
शतसाहस्त्र (स्र) योगेन लक्षकांशप्रयोगतः ॥७८॥
वेधयेत्सर्वलोहानि क्रमाद्धेम सितं भवेत् ।
पलोपयोगमात्रेण महाकल्पप्रदो भवेत् ॥७९॥
रक्ताभ्रस्य ततो वक्ष्ये यथाकर्म व्यवस्थितम्
योगेनैकेन विधिवदर्कं हेम्ना नियोजयेत् ॥८०॥
यथा करोति बन्धं सूतकस्य तथा शृणु ।
यान्यमलसारसां[1] पीतं सिद्धं वन्योपलाग्निना ॥८१॥
चक्रयोगेन निर्बीजं खखाचूर्णं समायुतम् ।
चाङ्गेरी कोष्ट्रकी रम्भा दधिस्थ (त्थ) दधिवारिणा ॥८२॥
क्षारमूत्रं त्रिधा पीतं पादटङ्कागुहागतम् ।
वज्रमूषादिक्षि(दी)प्ताग्नौ खादिरे द्वन्द्वतां व्रजेत् ॥८३॥
खजं वातेन योगेन पतत्यय निरञ्जनम् ।
खखावशेषितं कृत्वा वापसेकेन निर्दहेत् ॥८४॥
टङ्कसिन्धुधरा कांक्षी रञ्जनी शंखयोजनात् ।
रक्तपीतेन तैले (न) रक्तं रागेन्द्र रञ्जितम् ॥८५॥

१—पादेऽस्मिन्नवाक्षराणि पादभ्रंशं सूचयन्ति ।

खखं गुरुत्मतां याति रुग्माद्वैं मातृकोत्तरम् ।
बलिना रक्ततैलस्य अष्ट भागस्य जीवितम् ।।८६।।
तत्खखं · · ·टके सूते सप्ताहं स्वेदयेन्मनाक् ।
तदारविंदलेपं त (न्तु) विश्रामं पुटितं तु तत् ।।८७।।
वरं संयोज्य लेपेन विश्रामपुटितं ततः ।
लिप्ता (प्तं) गुहागत (तं) ध्मातं त्रिसारं मात्रि (तृ) कोत्तरम् ।।८८।।
स्वस्वा (खखा) भ्र समचूर्णं तु हेमाभ्रस्यैव चारणात् ।
सितहिंगुधरा कांक्षी सितकनक टंङ्कणम् ।।८९।।
जलशूकभवक्षारस्त्रिरथ चमनीरसः ।
सोष्मे (ष्णे) संमर्द्य यामं तु गर्भोदरभवोभवेत् ।।९०।।
बलिना व (1) सितं भाव्यं मुहुः क्षारेण सप्तधा ।
दोलाग्निसोमसंचीर्णं विधिनानेन सर्वजम् ।।९१।।
खजाभ्रनिर्गते सारे समसारित सर्वजः ।
प्रत्यानुसारेण कार्या जीर्णे समचतुर्गुणः ।।९२।।
अष्टधा चैव संचीर्णः शतसाहस्र लक्षधाः ।
त्रिभागव्यूढं शुल्वं तु क्रमात्काञ्चनतां नयेत् ।।९३।।
खादेत्संवत्सरं त्वेकं माषनिष्पावरक्तिका ।
जरामृत्युविनिर्मुक्तो कल्पायुर्जायते नरः ।।९४।।
सक्रीडेन्मर्त्यलोके तु दिव्यदेहो यदे (दृ) च्छया ।
खखाभ्रकविधानं तु सरहस्यं प्रकाशितम् ।।९५।।
गोपयितव्यं यत्नेन दद्याद्वैसव्यकर्मणि ।
सस्यकस्याप्यतोवक्ष्ये यथा कर्म व्यवस्थितम् ।।९६।।
पूर्वोक्तेन विधानेन पातयित्वा तु सस्यकम् ।
रसैश्चोपरसैश्चैव यथा लाभेन वापयेत् ।।९७।।
रक्ततैले निषेक्तव्यं ततो हेम्ना नियोजयेत् ।
द्वन्द्वमेलापकेनैव तद्रसे चारयेद्बुधः ।।९८।।
गर्भे द्रव्ये ततो जार्य (र्यं) तेन हेम तु निर्गतम् ।
सारयित्वा (ऽथ) मन्त्रेण शतांशेन समं बुधः ।।९९।।
वेधेन जायते हेम जाम्बूनदसमप्रभम् ।
उत्तरोत्तरयोगेन उच्चवेधी महारसः ।।१००।।
महारसायने योग्यो रक्त (क्ति) मात्रोपयोगतः ।
जरामयास्था (?) मृत्युः षण्मासान्नश्यति ध्रुवम् ।।१०१।।
समेन दिव्यदेहस्तु खेचरैः सह गच्छति ।
सस्यकं पतति शोध्यं रागस्नेहेन सेचनात् ।।१०२।।
सितानि कृष्णहेमानि षोडशांशेन भावयेत् ।।
उत्तमत्वं नयेत्तानि कलमूनान्यवाप्नुयात् ।।१०३।।
सस्यकाश्म तु संभाव्य त्वम्लेन तु यथाक्रमात् ।
रागस्नेहेन संस्नेहात्पञ्चमांशेन वापयेत् ।।१०४।।
रागस्नेहे निषेक्तव्यं चतुर्गुणगुणोदयम् ।
हेमात्कर्षस्त्वयं श्रेष्ठः सस्यकाश्म न संभवेत् ।।१०५।।
तत्समं वाहयेत्तारे रागस्नेहे निषेचयेत् ।
तदर्धमूल्यं भवति हेमार्द्धे (र्धे) नाष्टकोणकम् ।।१०६।।
ताराऱिष्टे समं वाऽपि तारशेषं तु कारयेत् ।
तत्पीतं जायते हेम (?) पीतं सोऽष्टकोणकम् ।।१०७।।
सस्यकं पतितं ध्मातमम्लवर्गेण सूतकम् ।
चारयित्वा तु पादेन मध्वाज्येन विमर्दयेत् ।।१०८।।
तेन तारं पुटे पीतं त्रिभिः पीतं तु जायते ।
पीतेन मन्त्रका (मात्रिका) तुल्यं लभते नात्र संशयः ।।१०९।।
तेन शुल्वं पुटं पक्वं क्रमेण (?) समन्वितम् ।
हेमार्द्धे (र्धे) न भवेद्धेम सोमार्कं वा पुटे पुटेत् ।।११०।।
हेमार्धार्द्धे (र्धे) भवेद्धेम रससस्यकयोगतः ।
मध्वाज्येन कृतं कल्पं सस्यकं सूतमेकतः ।।१११।।
सृष्टि त्रया वला शून्यं मेघनादरसं तथा ।
मुनिपुष्पं चैव तेन मर्द्य दिने दिने ।।११२।।
माषकं प्राशयेन्मत्री दीप्तबीजादिभिर्बुधः ।
कामदेववपुः श्रीमान् पद्मगर्भोपम (मो) वपुः ।।११३।।
जरामयविनिर्मुक्तः षण्मासाज्जीवितायुतः ।
महाकल्प समेनैव सम्यक् सूतक योगतः ।।११४।।
चारणाज्जारणान्तेन पद्मरागोपमोद्भ (भ) वेत् ।
सूतको हेमकारी स्याद्धेमयुक्तस्तु सारितः ।।११५।।
तारारविन्दारेभ्योऽथ शतभेदी (वेधी) महारसः ।
उत्तरोत्तर योगेन उत्तरोत्तरवेधकृत् ।।११६।।
तदोपयोगे दीर्घायुः खेचरत्वमवाप्नुयात् ।
अथादिकस्य वक्ष्यामि यथा कर्मक्रमं शृणु ।।११७।।
पतितमग्नितापेन पीतरक्तासितं तु तत् ।
तद्धेमयुक्तं सूते तु जारयेच्च समं बुधः ।।११८।।
रसैश्चोपरसैश्चैव यथा लाभेन चाम्लिजैः ।
स्नेहैस्तैर्वापयेत्पूर्वं रागस्नेहे निषेचयेत् ।।११९।।
तेन बद्धो रस श्रीमान् भवेदिन्द्रायुधोपमः ।
शैलेन निर्गतं हेम सारयित्वा समं बुधः ।।१२०।।
चतुष्षष्टिगुणं तारं ताम्रारं वाऽथ हेमकृत् ।
तद्धि द्वं (?) शतवेधी स्याच्चतुर्धा तु सहस्रधा ।।१२१।।
अष्टधा लक्षवेधी स्यात्षोडशात्कोटिवेधतः ।
रसायेन भवेच्छ्रेष्ठो महाकल्पायुदो रसः ।।१२२।।

(क्रमशः)

रोग परीक्षा-चिकित्सा

वैद्य पं० सभाकान्त झा, शास्त्री

रोग-परीक्षा चिकित्सा का आवश्यक अंग है। रोग का पूर्ण निश्चयात्मक ज्ञान हुए बिना चिकित्सा में प्रायः सफलता नहीं मिलती। हारीत मुनि कहते हैं कि जो वैद्य रोग को बिना जाने चिकित्सा प्रारम्भ कर देता है, वह शास्त्र तथा क्रिया का विशेषज्ञ होने पर भी चिकित्सा में सफलता प्राप्त नहीं करता। अतएव रोग-रोगी, औषध, देश, कालादि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद ही चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिये।

रोग किसे कहते हैं ?

आयुर्वेद वातादि दोष, रस-रक्तादि धातु और मूत्र-पुरीषादि मलों की न्यूनाधिकता जन्य दुःखसंयोग को रोग मानता है और उसी न्यूनाधिक्य को प्राकृतावस्था में लाना सफल चिकित्सा कही जाती है। कभी कई ऐसे रोगी भी देखे जाते हैं, जिनके रोग का ज्ञान सरलता से नहीं होता अथवा वह रोग ही अदृष्टपूर्व होता है। ऐसी स्थिति में अनुभवी चिकित्सक रोग की प्रकृति, रोगाक्रान्त अधिष्ठान रोगोत्पादक कारण आदि विषयों का अनुमान कर चिकित्सा करके रोगियों को रोगमुक्त कर देते हैं।

साधारणतया रोग-परीक्षा अनुमान (प्रश्न द्वारा), प्रत्यक्ष (इन्द्रियों द्वारा परीक्षा) तथा आप्तोपदेश इन तीन विभागों में विभक्त की जा सकती है। यथा—

"त्रिविधं खलु रोगविशेषज्ञानं भवति। तद्यथा—आप्तोपदेशःप्रत्यक्षमनुमानंचेति।"

यद्यपि रोग-परीक्षा विधान का भिन्न-भिन्न आचार्यों के पृथक्-पृथक् हैं। यथा—**सुश्रुत का मत है**—"षड्विधो हि रोगाणां विज्ञानोपायः। पञ्चभिः श्रोत्रादिभिः। प्रश्नेन-चेति।" **हारीत का मत है**—"दर्शन-स्पर्शन—प्रश्नैः रोगज्ञानं त्रिधास्मृतम्। मुखाक्षि दर्शनात् स्पर्शनात् शीतादि प्रश्नतः परम्।।" **भगवान धन्वन्तरि का मत है**—पश्येत् स्पृशेत् पृच्छेच्च, त्रिभिरेतै विज्ञानोपायैः रोगाः।।" **वाग्भट का मत है**—"दर्शन स्पर्शन प्रश्नैः परीक्षेताथ रोगि-णाम्।।" ये भेद पाठकों की जानकारी के लिये लिखे गये हैं। वास्तव में रोग-परीक्षा तो रोगी को देखकर रोगी से प्रश्न पूछकर और रोगी को स्पर्श करने से ही सरलता से हो जाती है।

प्रश्न-परीक्षा

प्रश्न द्वारा रोगी का नाम-जाति, आयु, जन्म एवं रहने का स्थान देश, रोगोत्पत्ति और वृद्धि, काल, सात्म्य (आहार और व्यसन), लक्षण, पूर्वरूप, कारण, मानसिकबल, वात-मूत्र पुरीषादि मलों की प्रवृत्ति अथवा संग—आदि बातें जाननी चाहिये।

प्रश्न करते समय वैद्य को रोगी द्वारा दिए गए उत्तर को खूब शान्तचित्त से सुनना चाहिये। क्योंकि प्रायः देखा जाता है—रोगी सामान्य कष्ट को भी अधिकाधिक भूमिका बांध कर बतलाते हैं। इसके विपरीत कई रोगी भयंकर कष्ट को भी संक्षेप में बतलाते हैं, कई रोगी अन्यथा बात अधिक करते जिनसे रोग का कोई सम्बन्ध नहीं। ऐसी स्थिति में वैद्य को चाहिये, कि रोगी की इन बातों से ऊब कर रोगी का विश्वास नष्ट न करे अन्यथा चिकित्सा में सफलता नहीं मिलेगी। अतः धैर्य तथा प्रेमपूर्वक रोगी से प्रश्न करना तथा उसका उत्तर सुनना चाहिये।

प्रश्न करते समय निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है—

१—प्रश्न संक्षिप्त और सारगर्भित हो, (अनावश्यक बातों से रोगी का विश्वास उठ जाता है।

२—एक ही प्रश्न दुबारा न किया जाय (इससे चिकित्सक की उपेक्षा वृत्ति सूचित होती है)।

३—प्रश्न उत्तरात्मक न हो; यथा—विबन्ध तो नहीं; (इस प्रकार प्रश्न करने पर स्वल्प बुद्धि वाले रोगी, विबन्ध होते हुए भी प्रश्न में संकेत होने से नकारात्मक ही उत्तर देते हैं) उत्तरात्मक प्रश्न दो स्थानों में पूछे जाते हैं—(१) जहाँ चिकित्सक को सन्देह हो, कि वस्तुतः इस रोगी को कोई रोग नहीं, केवल ठोंग बना रहा है, अथवा इस व्यक्ति को केवल रोग का वहम मात्र है। ऐसे समय में जान-बूझ कर उत्तरात्मक प्रश्न करने से रोगी भ्रम में पड़कर वस्तु-स्थिति का निर्देश कर देता है। (२) कुष्ठादि रोगों के

पूर्णरूप में स्पर्शज्ञान जानने के लिए सुई अथवा पिन चुभाकर पूछा जाता है कि—मालूम होता है या नहीं ? अथवा उष्ण-शीत पदार्थों का स्पर्श कराकर पूछना कि उष्ण है या शीत आदि ।

(४) गुप्त रोगों (आतशक-सुजाक) में रोगों के विषय में सभ्यता का विशेष ध्यान रखना चाहिये । (इसमें एक ही प्रश्न कई बार पूछा जा सकता है) ।

(५) स्त्रियों से एकान्त में न तो कोई प्रश्न करना और न उनकी परीक्षा ही करना चाहिय । सामान्य और विशेष भेद से प्रश्न-परीक्षा दो विभागों में विभक्त की जाती है ।

(१) सामान्य रूप से सभी रोगियों में पूछे जाने वाले प्रश्न को सामान्य प्रश्न कहा जाता है । यथा—रोगी का नाम, जाति, आयु, आहार, स्थान आदि । (२) जिस प्रश्न द्वारा रोग सम्बन्धी विशेष बातों का ज्ञान होता है, उसे विशेष प्रश्न कहते हैं ।

यथा—निदान, पूर्वरूप, लक्षण (वर्तमान कष्ट), उपशय, रोगी के कुल का वृत्तान्त, रोगी के स्वास्थ्य का पूर्व वृत्तान्त, रोगोत्पत्ति काल आदि । चिकित्सक ऊपरिनिर्दिष्ट क्रम में अपनी सुविधानुसार परिवर्तन कर सकते हैं ।

प्रत्यक्ष इन्द्रियों द्वारा परीक्षा

रोग—परीक्षा का दूसरा भेद प्रत्यक्ष (इन्द्रियों द्वारा रोग परीक्षा) है । इसमें कान, नाक, जीभ, आँख, त्वचा आदि इन्द्रियों द्वारा रोग-परीक्षा की जाती है । यथा—

(१) **कान**—कानों से सुनकर ही हम जान सकते हैं, कि रोगी को डकारें आ रही हैं, आँतों में वायु गड़गड़ शब्द कर रहा है । रोगी अनाप-सनाप बक रहा है, कण्ठ में घर-घर कफ बोल रहा है और स्वरभंग हो गया है ।

(२) **नाक**—नाक से ही हमें सुगन्ध-दुर्गंध का ज्ञान होता है, नाक से सूँघते हैं, तब मालूम होता है कि रोगी के शरीर में एक अपूर्व सुगन्ध या दुर्गन्ध आ रही है । यह गन्ध अरिष्ट सूचक है या स्वाभाविक है । यह जानने के लिए अथवा जख्मों की बदबू वगैरह जानने के लिए नाक से भी काम लेना चाहिये ।

(३) **जीभ**—जीभ से रक्तपित्त के रोगी का हाल तथा प्रमेह रोगी के पेशाब का हाल मालूम होता है । रक्तपित्त वाले के रक्त को यदि कौए या कुत्ते न खाएँ तो निश्चय ही रक्तपित्त समझें । मधुमेह के पेशाब पर चींटियाँ लगें तो पेशाब मीठा है, ऐसा समझते हैं ।

(४) **आँख**—आँख से ही देखने पर मालूम होता है कि रोगी का शरीर दुबला या मोटा है, रोगी की आकृति अच्छी है या खराब, आँखें सफेद हैं या पीली । शरीर का रंग कैसा है इत्यादि ।

(५) **त्वचा**—त्वचा या चमड़े से कोई स्पर्श करके ही हम जान सकते हैं कि रोगी का बदन ठंढ़ा है या गरम। शरीर चिकना है या खुरदरा, कड़ा है या नरम । सूजन शीतल है या गरम आदि ।

आप्तोपदेश (निदान पंचक)

चरकोक्त आप्तोपदेश के अन्तर्गत ही माधव का निदान पंचक है । यथा;—

"निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।
सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ॥"

अर्थात् निदान पूर्णरूप, रूप, उपशय, सम्प्राप्ति—इन पाँचों के द्वारा रोग-ज्ञान होता है । ऐसा माधवकार लिखते हैं। बस इस निदान पंचक को ही आप "आप्तोपदेश" अर्थात् त्रिकालज्ञ महात्माओं का उपदेश समझिए । यद्यपि इन पाँचों से रोग-ज्ञान हो सकता है, परन्तु वगैर अनुमान (प्रश्न) और प्रत्यक्ष (इन्द्रियों द्वारा परीक्षा) की सहायता से कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता ।

हम शास्त्रोपदेश से जानते हैं, कि ज्वर में शरीर तपने लगता है, मगर बिना शरीर को स्पर्श किए हमें शरीर के गर्म होने का निश्चय कैसे हो सकता है । हम जानते हैं कि पीलिया में रोगी के नेत्र-नखादि पीले हो जाते हैं, किन्तु बिना आँखों से देखे हमें कैसे मालूम हो सकता है कि रोगी के नेत्र, नख, मूत्र प्रभृति पीले हो गये हैं । हम शास्त्रोपदेश से जानते हैं कि अमुक रोग में आँतों में गुड़गुड़ आवाज होती है । मगर बिना कानों से सुने हमें पक्का निश्चय कैसे हो सकता है । हम शास्त्र पढ़ने से जानते हैं कि चेचक अथवा मोतीझरा के रोगी के शरीर में एक प्रकार की बदबू आया करती है । पर बिना नाक से सूँघे हमें इस बात का पक्का निश्चय कैसे हो सकता है । हम शास्त्र से जानते हैं कि रक्तपित्त में रोगी का रक्त अशुद्ध हो जाता है । रोगी का खून खराब हुआ है या नहीं इसकी परीक्षा के लिए रक्तपित्ती रोगी का रक्त कुत्ते या कौए को डाला जाता है।

इस तरह देखा जाता है कि रोग-परीक्षा के लिए अनुमान, प्रत्यक्ष और आप्तोपदेश तीनों की सहायता लेना आवश्यक है। इनमें से किसी एक की कमी होने से रोग परीक्षा अच्छी तरह हम नहीं कर सकते, अतः इसका जानना आवश्यक है।

चिकित्सा

"याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां मतम्॥"

भगवान चरक ने चिकित्सा की परिभाषा करते हुए उपर्युक्तश्लोक कहा है। अर्थात्–मिथ्या आहार-विहार से शरीर में रहे हुए वात, पित्त और कफ धातुओं में उत्पन्न हुई विकृतिजन्य क्रियाओं द्वारा दूर होकर समानता को प्राप्त हो, वह "चिकित्सा" कहलाती है और चिकित्सकों का वही कर्म माना गया है।

प्रधानतया चिकित्सा के (१) दोष प्रत्यनीक और (२) व्याधि प्रत्यनीक भेद से दो भेद माने गये हैं।

(१) **दोष प्रत्यनीक चिकित्सा**—दोष प्रत्यनीक का अर्थ होता है दोष के विरुद्ध। वात आदि दूषित धातुओं के न्यूनाधिक लक्षणों पर विचार कर दूषित धातुओं को समस्थिति में लाने वाली औषधियों के उपचार और क्रियाओं को दोष प्रत्यनीक चिकित्सा कहते हैं।

रोगी के बाह्य लक्षणों पर विशेष लक्ष्य न देकर जिस दोष-प्रकोप से रोग और लक्षणों की उत्पत्ति हुई हो, उस मूल हेतु के विरुद्ध चिकित्सा करने से वे दोषजन्य विकार स्वयंमेव नष्ट हो जाते हैं। जैसे किसी रोग में वात धातु की विकृति हो, तो प्रथम यह निश्चय करना चाहिये कि रूक्षता, शीतता, चलत्व आदि गुणों में से किस गुण की वृद्धि या ह्रास होने से विकृति हुई है? इस बात को जानकर दोष के गुण विरोधी औषध और आहार-विहार आदि क्रियाओं द्वारा धातुओं को सम-अवस्था में स्थापित करने से उस विकृत दोष से उत्पन्न विकारों का प्रवाह बन्द हो जाता है। इस चिकित्सा को श्रेष्ठ माना गया है।

(२) **व्याधि प्रत्यनीक**—रोग विरुद्ध उपायों की योजना करने को व्याधि प्रत्यनीक चिकित्सा कहते हैं। जैसे—अतिसार शमनार्थ व्याधि विपरीत स्तम्भक औषध देना। इस चिकित्सा में दोष-दूष्य का विवेचन नहीं किया जाता। जिससे कभी-कभी बाहर निकलने योग्य विष का भी अवरोध हो जाने से (यथा—अतिसार की आमावस्था में ही शमन हो जाने से) उस दूषित द्रव्य (विष) का शरीर के अन्य भागों में प्रवेश होकर कालान्तर में पुनः उसी व्याधि की अथवा अन्य किसी व्याधि की उत्पत्ति हो जाती है।

आयुर्वेद में इन दोनों प्रकार की चिकित्सा में दोष प्रत्यनीक श्रेष्ठ और व्याधि प्रत्यनीक कनिष्ठ चिकित्सा मानी गयी है। दोष प्रत्यनीक चिकित्सा में रोग के नाम अथवा रोग की संख्या के बोध को महत्त्व नहीं दिया गया, परन्तु रोग के दोष-दूष्य और स्थान आदि के ज्ञान को ही आवश्यक माना गया है। किस प्रकार कौन दोष दूषित हुआ? किस दोष का किन दूष्यों से संयोग हुआ और कौन-कौन स्थान दूषित हुए—इन विचारों के निश्चय को ही प्राधान्य दिया गया है। इनका सम्यक् बोध हो जाने पर चिकित्सा निर्भयतापूर्वक की जा सकती है।

मसूरिका

(Small Pox)

वैद्य योगेन्द्रचन्द्र शुक्ल, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेदरत्न

माता शीतला का नाम जितना सुन्दर और श्रवण सुखद है, मानव शरीर में प्रकट होनेवाला उनका स्वरूप उतना ही रौद्र, भयंकर और कष्टप्रद है। भारतवर्ष में सहस्रों बालक प्रतिवर्ष इस रोग से पीड़ित होकर करुण चीत्कार करते काल-कवलित हो जाया करते हैं। किन्तु अज्ञानान्धकार में पड़े धर्मभीरु भारतवासी उन अबोध निरीह बालकों की करुण चीख-पुकार और मृत्यु से दुखी होते हुए भी उनकी रक्षा का कोई उपाय नहीं करते। जनता में आमतौर पर यह अंधविश्वास प्रचलित है कि इस रोग में कदापि चिकित्सा न करनी चाहिए, अन्यथा शीतला माता कुपित हो जाती हैं। यह विश्वास जितना भ्रममूलक है, उससे अधिक विनाशकारी है। इस सम्बन्ध में आगे अधिक प्रकाश डाला जायगा।

रोग परिचय—बहुत संक्रामक व्याधि है। रोगी बालक के निकट सम्पर्क में आने से छूत फैलती है। यह रोग महामारी के रूप में फैलने पर तेजी से फैलता है और बहुतों की मृत्यु होती है। बेचैनी के साथ निरन्तर रहनेवाला ज्वर, सारे शरीर में विशेषतया कटि में तीव्र पीड़ा, सारे शरीर में विस्फोट या छाले उत्पन्न होना इसके मुख्य लक्षण हैं।

कारण-काल—यह संक्रामक रोग विषाणु (Virus) के उपसर्ग के कारण उत्पन्न होता है। गोलाकार बिन्दु के रूप में रोगविष त्वचा के निम्नस्तर में फैलकर विस्फोटक प्रभाव उत्पन्न करता है। यह रोग हर अवस्था और ऋतु में स्त्री-पुरुषों में समान रूप से उत्पन्न हो सकता है, तथापि बचपन में विशेषतया होता है। प्रौढ़ों को यह रोग प्रायः कम होता है। एक बार रोग हो जाने पर प्रायः रोगक्षमता (Immunity) हो जाने से रोग दुबारा प्रायः नहीं होता। यह विशेषतया शिशिर के अंत या वसंत में सामूहिक रूप से फैलता है। रोगोत्पादक कीटाणु अभी अज्ञात है। आयुर्वेद-शास्त्र तो सब रोगों का मूल कारण अपथ्य सेवन से प्रकुपित वात-पित्त और कफ (त्रिदोष) को ही मानता है। किन्तु आधुनिक विज्ञानवेत्ता इसे न मानकर कीटाणुवाद के चक्कर में पड़े रहते हैं। इस रोग के सम्बन्ध में आयुर्वेद के आचार्यों का मत है कि विक्षोभक, विदाहकारी, उत्तेजक और रक्त-दूषित करने वाले आहार-विहारादि के सेवन से दोष-प्रकुपित रक्त में असाधारण उबाल-सा आ जाता और रक्त सन्तप्त हो जाता है, तब रोग की उत्पत्ति होती है। कड़ुए, खट्टे, सड़े, गले भोजन, फल, शाक अधिक खाने से, घनी बस्ती, प्रकाश और शुद्ध वायु रहित गन्दी बस्ती या संकुचित स्थान में बहुत लोगों के निवास करने से जैसा कि मेले और सिनेमाघरों में होता है, मसूरिका रोग के प्रसार होने में सहायता मिलती है। दूध-मछली या दूध के साथ खट्टे फल जैसे विरुद्ध गुण के द्रव्य मिलाकर खाने से, गन्दे अशुद्ध संक्रमित जल का प्रयोग करने से अथवा क्रूर ग्रहों का प्रकोप होने से शीतला रोग की उत्पत्ति होती है।

सम्प्राप्ति—उपर्युक्त आहार-विहार का सेवन करने से वातादि दोषों का प्रकोप होकर शारीरिक रक्त में विक्षोभ उत्पन्न हो जाता है—वह अत्यधिक बिगड़ जाता है। शरीर में इस कारण मसूरिका के दाने या विस्फोट निकल आते हैं।

पूर्वरूप—दाने निकलने के पूर्व से ही रोगी को सहसा तीव्र ज्वर हो जाता है। सारे शरीर में खाज होती है। सारे शरीर, सन्धियों और विशेषतया कमर में तीव्र पीड़ा, भोजन या किसी काम में रुचि नहीं होती, चक्कर आते हैं, शरीर की त्वचा सूजी हुई लाल और ममरियाई-सी होती है। नेत्र की श्लेष्मल कला (Conjuctiva) में रक्ताधिक्य, दाने होते हैं। इस प्रकार विचार करने से ज्ञात होता है कि आयुर्वेदोक्त मत ही ठीक है, क्योंकि ज्वर, अंगमर्द रोग का लक्षण नहीं पूर्वरूप है, जो मुख्य लक्षण विस्फोट की उत्पत्ति के बाद शांत प्रायः हो जाता है।

लक्षण—आरम्भ में शिर, शरीर विशेषतया कटिप्रदेश में तीव्र वेदना, व्याकुलतायुक्त निरन्तर रहनेवाला ज्वर, शरीर भर में दाह तीसरे दिन तक रहती है। पाँचवें दिन

असली विस्फोटों या दानों की उत्पत्ति होती है। दाने पहले कठिन, लाल, विन्दु रूप में उगते हैं और बाद में छर्रे जैसे हो जाते हैं, जो कि स्पर्श किए जा सकते हैं। प्रायः दानों की उत्पत्ति के बाद ज्वर मन्द पड़ जाता है। विस्फोटों में मवाद पड़ते समय फिर कुछ बढ़ जाता है। प्रायः पूयोत्पत्ति के बाद ज्वर शान्त हो जाता है अथवा रह भी सकता है।

विस्फोट (Rash) दो प्रकार के होते हैं—(१) पूर्वरूपीय विस्फोट (२) असली विस्फोट।

(१) पूर्वरूपीय विस्फोट—ज्वरारंभ के दो दिन बाद प्रकट होते हैं। ये वंक्षण प्रांत में प्रकट होकर ऊपर नाभि की ओर और वंक्षण बंधन के २-३ इंच नीचे फैलते हैं। ये रक्तवर्ण के होते हैं—कभी कभी इनसे रक्तस्राव भी होता है।

(२) यथार्थ (असली) विस्फोट—असली दाने मस्तक, चेहरे से आरम्भ होकर हाथ-पैर, धड़, उदर, पीठ, मुख, नेत्र की श्लैष्मिककला में निकलते हैं। ये धड़ में कम, हाथ-पैर, चेहरादि दूरस्थ अंगों में अधिक निकलते, खुले रहनेवाले भाग तथा वाह्य पृष्ठ पर विशेषतया निकलते ह। काँख में प्रायः नहीं निकलते। अवस्था भेद से दाने चार भागों में विभक्त किए जा सकते हैं।

(अ) आमविस्फोट (Maculas)—ये कठिन दाने त्वचा में बहुत गहराई में होते हैं। स्पर्श करने पर छर्रे जैसे प्रतीत होते हैं। स्फोट स्थान में ऊष्मा कम, स्फोटों का रंग त्वचा समान, स्फोट कठिन और स्थिर होना, स्फोटों में वेदना मन्द होना, उनमें उभार भी कम नहीं होना आमावस्था के लक्षण हैं।

(ब) पच्यमान विस्फोट (Velicles)—इस अवस्था में स्फोटों में नीर भरना आरम्भ होने से यथाक्रम उनका उभार बढ़ने लगता है। भीतर दोषसंचय पाकाभिमुख होने से वेदना बहुत बढ़ जाती है। मानो स्फोट स्थल में सुई चुभाई अथवा शस्त्र गड़ाए जा रहे हों, अग्निक्षार से जलाया जा रहा हो, बिच्छू काट रहा हो—ऐसी पीड़ा होती है। रोगी को लेटे-बैठे किसी दशा में भी शांति नहीं मिलती। ज्वर अधिक रहता है, जलन होती है। रोगी के लिए यह अवस्था बड़ी कष्टप्रद होती है। त्वचा (स्फोटों की) का रंग परिवर्तित हो जाता है।

(स) पक्वविस्फोट (Puctules)—इस अवस्था में स्फोटों में पाक होता, अतः स्फोट स्थल की त्वचा पाण्डुवर्ण, शोथ, वेदना में कमी, कुछ सिकुड़न, स्फोट भरे हुए पूयोद्गम के कारण खुजली मालूम होती है। विभिन्न वेदनाएँ, दाह, ज्वर, पिपासा आदि लक्षण घट जाते हैं। रोगी पहले की अपेक्षा कुछ शांति और राहत अनुभव करता है।

(द) विशुष्यमाण विस्फोट—इस अवस्था में विस्फोट का पूय सूखकर पपड़ी-सा हो जाता है और त्वचा समतल होने लगती है, किन्तु चिह्न अवशिष्ट रह जाते हैं। सपूयावस्था में खुजला देने से सड़न भी पैदा हो सकती है और घाव देर में भर सकते हैं।

दोनों मसूरिका के दानों में अंतर—पूर्वोक्त वर्णन से विदित है कि मसूरिका के दाने धड़ में कम तथा दूरस्थ हाथ, पैर, चेहरे आदि अंगों में तथा वाह्य पृष्ठ और खुले रहनेवाले भागों में अधिक निकलते हैं। किन्तु लघुमसूरिका (Chicken Pox) के दाने खुले और दूरस्थ भागों की अपेक्षा धड़, उदरपृष्ठ में अधिक निकलते हैं। मसूरिका के दाने काँख में नहीं निकलते। लघु मसूरिका के दानों का निकलना ज्वरारंभ के प्रथम दिन से ही आरंभ हो जाता है। पहले दाने अन्तः मुख, स्वरयंत्र, नेत्र की श्लेष्मिक कला में निकलकर धड़, उदरपृष्ठ एवं सारे शरीर में फैलते हैं। दाने गुच्छों में निकलने के कारण एक ही समय में विभिन्न अवस्था के देखे जाते हैं। कोई सजल, कोई सपूय एवं कोई सूखे भी होते हैं। किन्तु मसूरिका के दाने ललाट, मुखमण्डल और कपोल की त्वचा से आरम्भ होकर कलाई, भुजा, धड़, उदर, पीठ आदि पर निकल कर फैलते हैं। दाने झुण्ड या गुच्छे के रूप में नहीं निकलते, प्रायः एकसे होते हैं। विभिन्न अवस्था में एक ही समय में नहीं पाये जाते। दाने के चारों ओर लालचक्र-सा तथा बीच में दवाव होता है, जैसा कि 'चरक संहिता' में भी वर्णित है—"याश्चापरास्युः पिडका; प्रकीर्णाः स्थूलाणु गद्यास्पि पित्तजास्ताः। सर्वत्र गात्रेषु मसूर भा व्यो मसूरिकाः पित्त कफ प्रदिष्टाः। उत्पत्ति-प्रकार और चिकित्सा की दृष्टि से आयुर्वेदिक वर्णन-शैली बहुत महत्त्वपूर्ण है। दोषानुसार रोग का वर्णन करने से रोग की पहचान और चिकित्सा सरलता के साथ की जा सकती है।

वातज मसूरिका के दाने श्याम और गुलाबी रंग के, रूखे, तीव्र पीड़ायुक्त और कठिन होते हैं। इनमें पूयोद्गम देर से होता है। परिणामतः व्याकुलता, ज्वरादि लक्षण भी तीव्र और अधिक काल तक पाए जाते हैं। अस्थि,

संधियों में टूटने की-सी पीड़ा, खाँसी, कम्पन, थकान, भूख, मुख, तालू, ओठ सूखना, अरुचि, तृष्णा आदि शारीरिक अन्य लक्षण पाए जाते हैं।

पित्तज मसूरिका में विस्फोट पीले, श्वेत होते हैं। दाह पीड़ायुक्त होता है। पूयोत्पत्ति शीघ्र होती, अन्य लक्षणों में पतले दस्त, अंग दर्द, दाह, तृष्णा, अरुचि, नेत्र-मुख के अन्दर दाने निकलने के कारण पाक और लालिमा तीव्र ज्वर होता है। रक्तज मसूरिका में यही लक्षण प्रबल होते हैं।

कफज मसूरिका में दाने श्वेत, स्निग्ध, बड़े आकार के, मन्द वेदनायुक्त, किन्तु खुजली तीव्र, मुख से कफ स्राव, चर्म गीले वस्त्र से ढँके रहने के समान शीतल, शिर और शरीर में पीड़ा तथा भारीपन, जी मिचलाना, अरुचि, नींद आना, झपकी-सी लगी रहना, जुकाम होकर बिगड़ जाने से न्यूमोनिया (Pneumonia) होने का भय रहता है।

सन्निपातज—तीनों दोषों के प्रकोपजनित मसूरिका में तीनों दोषों में वर्णित लक्षण होते हैं। दाने नीले, चिपटे, लम्बाकार, मध्य में अधिक दबे, तीव्र पीड़ा युक्त, देर से पूयोत्पत्ति, दुर्गन्धित सड़े स्राव वाले होते हैं। इसके अतिरिक्त विकृत दोष विभिन्न धातुओं में स्थित होकर विभिन्न लक्षणों की मसूरिका उत्पन्न करते हैं। जैसे कि—

रसगत मसूरिका के विस्फोट जल के बुलबुले के समान चमकीले, होते हैं। फूटने पर इनसे जलस्राव होता है।

रक्तज के विस्फोट लाल, शीघ्र पकने वाले, स्फोटों के ऊपर की त्वचा पतली होती है। ये साध्य माने गए हैं। फूटने पर दोनों से रक्त-स्राव होता है।

मांसगत के दाने कठिन, स्निग्ध, पतली त्वचा वाले, देर से पकनेवाले, खुजली और दाहयुक्त होते हैं। अंग-मर्द, बेचैनी, तृष्णा और मूर्छा भी होती हैं।

मेदोगत मसूरिका के दाने कोमल, गोल, उन्नत, स्थूल और काले रंग के होते हैं। वेदना, घोर ज्वर, मूर्छा, दाह, सन्ताप ये शारीरिक अन्य लक्षण होते हैं। इसके रोगी कम बचते हैं।

अस्थिगत मसूरिका के दाने, बहुत छोटे, कम उन्नत, प्रायः शरीर के समतल से चिपटे होते हैं।

मज्जागत मसूरिका में भयानक पीड़ा, व्याकुलता और मूर्च्छा होती है। मर्मछेदन की-सी पीड़ा होती है रोगी की अस्थि, भँवरों से छेदी गयी के समान बहुछिद्र हो जाती है। इसका रोगी नहीं बचता।

शुक्रगत मसूरिका के दाने पके हुए के समान चिकने, चमकीले, स्पर्श के श्लक्ष्य (Smooth) होते हैं। अत्यन्त वेदना, शरीर त्वचा गीले वस्त्र से ढंके हुए के समान होती है रोगी में बेचैनी, मूर्छा, दाह, प्रलाप आदि अधिक होते हैं इस अवस्था का रोगी बचता नहीं।

साध्यासाध्य—त्वचा (रस) गत, रक्तगत, पित्तज, कफज, पित्त श्लेष्मज मसूरिका उचित उपचार होने से अच्छी हो जाती है। वातज, वातपित्तज मसूरिका कठिनता से अच्छी होती है। मसूरिका के जिस रोगी में तीनों दोषों के लक्षण मिलें एवं कुछ दाने मूँगे के समान लाल, कुछ जामुन के समान काले या अधिक काले सघन निकलें-लोहे के तारों की जाली के समान प्रतीत हों, अलसी के बीज के समान हों, वह सन्निपातज मसूरिका असाध्य होती है।

अरिष्ट—खाँसी, हिचकी, अचेतना, तीव्रदारुण ज्वर, प्रलाप, तीव्र प्यास, दाह, आँखें फाड़कर देखना (घूरना), मुख, नेत्र और नासिका से रक्तस्राव, गले में घुरघुराहट, श्वासकष्टयुक्त (Pneumonic stage) के लक्षण शीघ्र मृत्यु होने के सूचक हैं।

पारस्परिक निदान लघु मसूरिका (Chicken Pox) से करना चाहिए। बेचैनी के साथ अकस्मात् होनेवाला ज्वर निरन्तर बना रहे, सारे शरीर विशेषतया कमर में असह्य वेदना, पाँचवें दिन असली दाने निकलना तथा पूर्व-वर्णनानुसार लघु मसूरिका और मसूरिका विस्फोटों के लक्षण की समीक्षा करके सहज ही रोग निश्चित किया जा सकता है।

चिकित्सा—यह रोग अत्यन्त संक्रामक होता है। अतः यह आवश्यक है कि यदि रोगी को अस्पताल में भर्ती करने की सुविधा न हो तो घर के स्वच्छ, हवादार और जिसमें किसी किस्म का सामान न हो-ऐसे खाली कमरे में परिवार के अन्य सदस्यों से सर्वथा पृथक रखा जाय। चारपाई कसी हुई, उस पर कोमल गद्दा और चादर बिछी हो, मुलायम तकिया भी हो। रोगी के प्रयोग में आनेवाले वर्त्तन अलग हों—उन्हें दूसरे लोग काम में न लावें। साफ करने के बाद वर्त्तनों को कार्बोलिक लोशन में डुबा देना चाहिए। दरवाजे पर कार्बोलिक लोशन से भीगी हुई चादर लटकी रहे—अनावश्यक लोग कमरे में न जायँ।

रोशनदान और दरवाजों में हरे या नीले काँच हों तो अत्युत्तम। हल्का, तरल, सुपाच्य, अविदाहकारी आहार देना चाहिए। ग्राम मसूरिका में दूध देने की राय लोग नहीं देते--उससे दाने सूखने में विलम्ब होने की संभावना है, क्योंकि गुरु और बृंहण आहार सूखती मसूरिका में ही देना उचित है। रोगी के कण्ठ और नेत्र में व्रण होने पर नीम का काढ़ा या पंचतिक्त (नीम, परवल, गुर्च, अडूसा, भटकटैया) का क्वाथ या जल में भूनी हुई फिटकरी मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। सूखते छाले पर डस्टिंग पाउडर या पंचक्षीरी वृक्षों की छाल (गूलर, पीपल, बड़, पाकड़ तथा सिरस) का चूर्ण रूई से छिड़कना चाहिए। नेत्र को फिटकरी के घोल या बोरिक घोल से धोकर गुलाबजल, फिटकरी और रसवत डालना चाहिए। चारपाई पर नीम की टहनी रख कर उससे ही हवा करनी चाहिए और मक्खी उड़ानी चाहिए।

औषधि प्रयोग--मसूरिका में औषधि प्रयोग करने की प्रथा भारत में सम्प्रति नहीं है। सामान्यतया यह भावना फैली हुई है कि शीतला में दवा देने से शीतला माता कुपित हो जाती हैं। फलतः रोगी बचने के बदले मर जाता है।। यह प्रश्न विचारणीय है कि इसमें कहाँतक सचाई है और क्या कभी भी इस रोगों की चिकित्सा की जाती थी या नहीं ? प्राचीन काल में ऋषिगण और भगवान धन्वन्तरि के शिष्य सुश्रुत महोदय कहीं अधिक आस्तिक या ईश्वरपरस्त रहे होंगे--इसमें सन्देश की कुछ भी गुंजायश नहीं है। जब त्रिकालज्ञ ऋषि आत्रेय और महर्षि सुश्रुत ने विस्तारपूर्वक शीतला के उपचार का वर्णन किया है और चिकित्सा करने का आदेश दिया है, तब आजकल के मिथ्या देवी-पूजकों की बात तर्क की कसौटी पर खरी नहीं प्रतीत होती।

मसूरिका में चिकित्सा न कराने सम्बन्धी विचारों के बारे में विश्लेषण करने पर इसके दो कारण प्रतीत होते हैं। (१) धार्मिक भावना (२) वैज्ञानिक विचार।

(१) धार्मिक भावना के रूप में शीतला में चिकित्सा न करने का एक आधार प्रधानतया शीतलाष्टक का एक श्लोक प्रतीत होता है। यथा--"न मंत्रो नौषधं किञ्चित् पाप रोगस्य विद्यते। त्वामेकां शीतले धात्रीनान्या-पश्यामि देवताम्"। इसके आधार पर औषधोपचार रुक गया, किन्तु आश्चर्य है कि सबसे पहला निषेध "प्रमन्त्रों" का कोई प्रभाव न पड़ा। जब शीतला का शामक कोई मंत्र औषधोपचार नहीं है, तब औषधोपचार के साथ झाड़-फूंक और टोटके को क्यों न रोका गया ? स्पष्ट है कि यह झाड़-फूंक करने वाले माली-ओझा आदि के स्वार्थमूलक षडयंत्र की सफलता का परिणाम है। क्यों कि वे चिकित्सकों को अपनी कमाई में बाधक होने देना नहीं चाहते।

(२) वैज्ञानिक या चिकित्सकों से सम्बन्धित चिकित्सा-शास्त्र की दृष्टि से समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि शीतला रोग में रोग का विष बड़ी उग्रता के साथ समस्त रक्त में व्याप्त होकर सारे रक्त को विक्षुब्ध किए रहता है जिससे रोगी बड़ी नाजुक स्थिति में रहता है। इसलिए इस व्याधि में बड़ी सतर्कता के साथ आशुफलदायी और सौम्य उपचार करना ही श्रेयस्कर है। थोड़ी भी असावधानी भयंकर परिणाम ला सकती है।

अतएव मसूरिका में चिकित्सा न कराने के सम्बन्ध में जो मूढ़ता जन-साधारण में फैली हुई है, वह यथाशीघ्र दूर होनी चाहिए। सरकार की ओर टीके लगाने की व्यवस्था की जाती है। टीके से अमित लाभ होता देखा गया है। मसूरिका की रोकथाम के लिए टीके का अधिकाधिक प्रसार-प्रचार होना आवश्यक है।

आयुर्वेद शास्त्र, दैवव्यपाश्रय और युक्तिव्यपाश्रय भेद से दो प्रकार की चिकित्सा मानता है। शीतला ही क्यों, ज्वरादि सभी रोगों में देवाराधन, हवन, पूजन आदि करना उचित और विहित ही माना गया है। फिर शीतला जैसे कष्टदायी रोग में शीतला देवी की आराधना करने से कौन आस्तिक भारतीय इन्कार कर सकता है ? साथ ही आयुर्वेद शास्त्र में ऋषियों द्वारा वर्णित वनौषधियों का सेवन श्रेयस्कर बताया गया है।

शीतलारोग में दुर्गासप्तशती का साधारण पाठ अथवा "सर्वमङ्गल माङ्गल्ये" "शरणागतदीनार्त्ति" "रोगानशेषान-पहंसितुष्टा" आदि मंत्रों से सम्पुटित पाठ अथवा शीतला-ष्टक का पाठ रोगी के पास करना चाहिए। शीतला के आयुर्वेदिक उपचार का हम यहाँ संक्षिप्त उल्लेख करते हैं; आशा है, इससे जनता लाभ उठावेगी।

कमरे की वायु शुद्धि के लिए निम्नलिखित धूनी आग में डालनी चाहिए--

(१) बच, घी, बाँस की पत्ती, नीम की पत्ती, नील, अड़ूसे की पत्ती, बिनौला, ब्राह्मी, तुलसीपत्र, लाख और अपामार्ग। (२) केवल नीम की पत्ती जलावे (३)

केवल गुग्गुल की धूनी दे। चिकित्सा के प्रतिबन्धात्मक (Preventive) तथा प्रतीकारात्मक या रोगशामक दो मुख्य भेद हैं—यहाँ इन दोनों प्रकारों पर प्रकाश डाला जाता है।

(अ) प्रतिबन्धात्मक उपाय के रूप में सर्वप्रसिद्ध एवं सर्वसुलभ शीतला के टीके (Small pox vaccine) का उपयोग है। यह शहर और गाँव सभी स्थानों की जनता के लिए सुलभ है। सरकारी स्वास्थ्य-विभाग की ओर से वेक्सनेटरों के द्वारा इसके लगाने का प्रबन्ध होता है। इसके लगाने के बाद रोग नहीं होता। कभी-कभी हलका आक्रमण होता देखा गया है किन्तु टीका लेने के बाद मृत्यु का भय नहीं रहता।

निम्नलिखित आयुर्वेदिक प्रयोग भी शीतला के आक्रमण से रक्षा करते हैं—(१) महामारी के समय बच्चों को रुद्राक्ष धारण कराया जाय। (२) पूस या माघ के महीनों में ही बच्चों को २-३ बार एक-एक तोला करेले के फलों का रस मधुके साथ पिलाया जाय। (३) रोग के दिनों में रुद्राक्ष जल में घिसकर मधु के साथ बच्चों को चटाया जाय। (४) कभी-कभी केले की फली में बीज बहुत पैदा होते हैं – उनके बीजों को ४।५ की संख्या में लेकर जलके साथ निगला देवें। रोग के दिनों में स्वस्थ लोग कचनार के पुष्प या नीम की फली की कोमल पत्ती का शाक, घी में भूनकर, हल्का सेंधा नमक मिलाकर सेवन करें।

(ब) प्रतीकारात्मक चिकित्सा कुष्ठ, विसर्प के सिद्धान्त से करनी चाहिए। चिकित्सा शोधन-शमन भेद से दो प्रकार की होती है। शोधन का प्रयोग एवं शमन की चिकित्सा का प्रयोग निर्वल, सुकुमार और धनियों के लिए किया जाता है। विशेषता यह है कि वमन-विरेचन-वस्ति द्वारा शरीर और दोषों का शोधन कर देने से रोग सदा के लिए विदा हो जाता है, फिर उत्पन्न नहीं होता। "ये तु संशोधनैः शुद्धाः न तेषां पुनरुद्भवः"। शीतला रोगी के लिए भी यही नियम है। सबल रोगियों को वमन-विरेचन देकर उदर-शुद्धि करायी जाती है। वमन कराने के लिए परवल के पत्ते, नीम और अडूसे के पत्ते का काढ़ा आधा सेर कड़ुई, बच, इन्द्रयव और कुटज की छाल, मुलेठी और मैनफल की पीठी या चूर्ण १ तोला मिलाकर पिलावें, कै होगी और रोग शांत होगा। ब्राह्मी का रस दो या तीन तोले, १ तोला मधु डालकर पिलावें। रस न मिल सके तो ऽ। या ऽ।। ब्राह्मी निर्मित काढ़ा पिलावें।

वमन कराने के बाद निम्नलिखित दवा देकर (विरेचन) कराना चाहिए :—

१. निशोथ का चूर्ण ६ माशा, १ तोला मिश्री मिलाकर गर्म पानी के साथ पिलावें।

२. बीजरहित मुनक्का, अमलतास का गूदा, हरीतकी, गुलाबफूल, कचनार की छाल और कुटकी समान भाग तीन तोला लेकर ऽ।।। पानी में पकावे, ऽ≡ रहने पर छान कर कुनकुना (मन्द उष्ण) पिलावें अथवा इनका चूर्ण बनाकर रख लें और ६ माशे गर्म पानी के साथ पिलावें। उदर का शोधन होगा।

शामकयोग—(१) काले जीरे की पत्ती का रस या काढ़ा हल्दी का चूर्ण मिला कर पिलावें।

(२) नीम और बहेड़े का बीज-मज्जा २।। माशे जल में पीस कर दिन में दो बार दें।

(३) इमली के पत्तों का रस २ तोला हल्दी का चूर्ण २ माशा, सबेरे-शाम पिलावें। एक प्राचीन वैद्य जी का अनुभव है कि इमली के फल जल में घोल कर पना तैयार करें—उसमें केवल शक्कर और हल्दी मिलाकर पिलावें ो वार प्रतिदिन— इससे रोग का आक्रमण शान्त होता है।

सब प्रकार की मसूरिका की शांति के लिए—(१) परवल के पत्ते, गुर्च, नागरमोथा, अडूसे की पत्ती, जवासा, चिरायता, नीम की छाल या पत्ते, कुटकी, पित्तपापड़ा सब समान भाग २ तोला ले ऽ।। पानी में पकावें, ऽ= रहने पर पिलावें। दोनों मसूरिका, रोमान्तिका, विस्फोट विसर्प शान्त होते हैं। (२) खैर की छाल, आमला, हर्र, बहेड़ा, नीम की पत्ती, परवल की पत्ती, गुर्च और अडूसे का काढ़ा दोनों मसूरिका रोमान्तिका, कुष्ठ, विसर्प विस्फोट और खुजली को नष्ट करता है। दोषानुसार नीचे चिकित्सा लिखी जाती है।

वातप्रधान—दशमूल, रास्ना, दारुहल्दी, खस, जवासे की जड़, गुर्च, घनियाँ और नागरमोथा समान भाग-२ तोला दवा ऽ।। पानी में पकावें, ऽ= बचने पर छान कर पिलावें।

मसूरिका के पाक काल में—जब दाने पकने वाले हों तब गुर्च, रास्ना, मुलेठी लघु पंचमूल पिठवन, गोखरू, छोटी बड़ी भटकटैया, लालचन्दन और खम्भार की छाल का काढ़ा पिलावें।

पित्तजन्य मसूरिका में मुनक्का, खम्भार, छोहारा, परवल की पत्ती, नीम की पत्ती, रुसे की पत्ती, धान का लावा, आमला और जवासा का काढ़ा, मिश्री मिलाकर दें।

कफज मसूरिका में जवासा, पित्तपापड़ा, चिरायता, कुटकी का काढ़ा दें।

सन्निपातज मसूरिका यद्यपि दुःसाध्य है तथापि प्राण-रक्षा का प्रयास तो करना ही चाहिए। नीम की छाल या पत्ते, पित्तपापड़ा, पाढ़ी, परवल पत्र, वासा, जवासा, आमला, खस, दोनों चन्दन का काढ़ा, शक्कर मिलाकर पिलावें। यदि दाने निकल कर सुप्त हो गये हों तब यह काढ़ा विशेष लाभप्रद है—दानों का पुनः उभार होकर शान्ति मिलती है।

दाह शांति—विजौरे के फल के केशर, काँजी के साथ पीस कर लेप करें। (१) नीम की पत्ती को पीस और जल में घोलकर उसका शरीर पर लेप करें।

पाक काल में वायु दानों को सुखाने की ओर प्रयत्न-शील होता है—अतः उन दिनों बृंहण और पौष्टिक आहार देना चाहिए, जिससे वायु अधिक कुपित होकर कष्टकर न हो जाय। रुक्ष और हलके द्रव्य कर्षणकारी एवं अपथ्य होंगे। गुर्च, मुलेठी, मुनक्का, मोरट और अनार का काढ़ा, गुड़ मिलाकर पिलावें—इससे शीघ्र पककर दाने सूख जाते हैं। बेर के फल का चूर्ण १ माशा, गुड़ दो माशा मिलाकर खिलावें।

लेप—हल्दी, दारुहल्दी, खस, सिरस की छाल या बीज, पठानी लोध, लालचन्दन और नागर के रस का लेप लगाने से दाने शीघ्र पककर सूख जाते हैं और सरलता से पपड़ी छूट कर त्वचा शुद्ध हो जाती है।

नोट—रोग का संक्रमण फैलाने में यह पपड़ी बड़ी सहायक होती है—अतः स्वस्थ बच्चे इससे दूर रहें तभी अच्छा होगा।

हरी दूब, हल्दी पीसकर सरसों के तैल में मिलाकर शरीर पर लगाने से सरलता से पपड़ी छूट कर त्वचा साफ निकल आती है।

शीतला में कुछ उपयोगी औषधि प्रयोग—(१) १ भाग पारद शुद्ध, २ भाग शुद्ध आमलासार गंधक की कज्जली घोट लें। १-१ रत्ती गुर्च के रस और मधु से खिलावें (२) परवल की जड़; लाल चौलाई के पत्ते का काढ़ा हल्दी और आमले की पीठी मिलाकर पिलावें। (३) रोगी का कण्ठ गर्म जल में फिटकरी डालकर रुई से पोंछकर, खूब साफ कर देना चाहिए—अन्यथा व्रण बढ़कर कण्ठावरोध उत्पन्न कर सकते हैं। मधु और भुना हुआ टंकण मिलाकर गले में लगाना चाहिए अथवा बोरोग्ली-सरीन लगा सकते हैं—फिटकरी जल से नेत्र भी धोना चाहिए, जिससे मांड़ा न पड़ जाय।

उपद्रव—इस रोग में सब से भयानक उपद्रव श्वसनक सन्निपात (Pneumonia) है, जो रोगकाल में शीतल द्रव्यों एवं दही आदि अभिष्यन्दी वस्तुओं के खाने अथवा किसी प्रकार से कफ विकृत होने से हो जाता है। पकाए हुए जल का प्रयोग करने से बचत रहती है। कण्ठ और नेत्र की विकृति भी होती है—अतः उधर भी ध्यान रखना आवश्यक है। दाने जहाँ तक हो न खुजलाये जावें। रोग के अन्त में कोहनी, कलाई, कन्धे में शोथ आना भी कष्टकर उपद्रव है।

शोथ शान्ति के लिए व्रणशोथ नाशक, वातनाशक (दशमूलादि) द्रव्यों का लेप कर उस स्थान पर जोंक लगाकर रक्त-मोक्षण कराकर शान्त करें। तिल के तैल में पुनर्नवा की जड़-छाल पकाकर लेप करना चाहिए।

बन गोखरू

वैद्य कृष्ण प्रसाद द्विवेदी बी० ए०, आयुर्वेदाचार्य

बन गोखरू का उल्लेख किसी भी पाश्चात्य डाक्टर या यूनानी हकीम ने नहीं किया है; और न आयुर्वेदीय निघण्टुओं में इसका कहीं विस्तृत वर्णन पाया जाता है। कहा जाता है कि पहले यह भारतवर्ष में या अन्यत्र भी कहीं देखने में नहीं आता था। आजकल तो यह भारत में ठेठ दक्षिण से लेकर ऊपर युक्तप्रदेश के प्रायः सभी स्थानों में पाया जाता है। यह घने जंगलों में उतना नहीं पाया जाता, जितना शहर या ग्रामों में घरों के आसपास के कूड़ा-कचरों में, नालियों, नाले या नदियों के किनारे पाया जाता है। लगभग १५ या २० वर्षों के अन्दर ही इसकी जहाँ-तहाँ इतनी भरमार हो गई है कि इसके कारण दूसरे उपयोगी पौधे उगने ही नहीं पाते। जहाँ देखो वहाँ समूह या झुंड के रूप में इसके क्षुप उगते हैं।

राजनिघण्टुकार ने जिसे आम्रगंधकृत, नद्याम्र, गण्डीर, समष्ठिल, कण्टकिफल, उपदंश आदि नामों से पुकारा है, शायद वही यह हो ऐसी कल्पना की जाती है। हिन्दी में इसे कहीं-कहीं कोथई, बना और बनगोखरू कहते हैं। मराठी भाषा में 'कोतुम्बा' कहते हैं।

इसके फल कांटेदार होने से राजनिघण्टुकार ने इसे 'कण्टकिफल', नदी या जलाशयों के किनारे आम की अमराई जैसे समुदाय रूप में होने से, 'नद्याम्र,' इसमें अष्ठीला या अठली, तथा ऊपर का कंटक युक्त छिलका एक समान होता है, अर्थात् इसका फल अठलीमय ही रहता है, इसीसे 'समण्ठीला'; इसके पत्तों में कुछ कच्ची केरी या आम जैसी गंध आने से शायद 'आम्रगंधकृत'; इसके पौधे में यत्रतत्र कुछ गांठें होती हैं, अथवा फलों पर धत्तूर, फल या कटहल फल के समान कांटेदार गाँठियाँ होती हैं; इसीलिये 'गाण्डीर'; तथा इसके पौधों के पास (उप) से जाने पर ये फल वस्त्रों में या शरीर में (दंश) छिद जाते हैं, इसलिये शायद (उपदंश) नाम दिया गया है।

विवरण—इसके पौधे का आकार प्रायः भिण्डी के पौधे जैसा होता है। यह एक हाथ से लेकर दो या ढाई हाथ ऊँचा बढ़ता है। प्रायः वर्षाकाल में ही ऊगता है, और फाल्गुन या चैत्र मास तक बना रहता है। पत्ते भिण्डी के ही पत्र जैसे रोंयेदार और कड़े होते हैं। पुष्प हमारे देखने में नहीं आये, किन्तु कहा जाता है, कि इसमें बैंगन के पुष्प जैसे कुछ नीले वर्ण के फूल आते हैं। फल गुच्छों में, कंटकयुक्त, छोटे-छोटे, लम्बे, गोलाकार होते हैं। ये फल वस्त्रों में और शरीर में चिपट जाते हैं। वस्त्रों में ये ऐसे उलझ जाते हैं कि इनका निकालना कष्टदायक हो जाता है।

गुणधर्म—जहाँ तक हमने पता लगाया, हमें मालूम हुआ कि ये उष्ण हैं, पित्त प्रकृतिवाले को हानिकर है, दाहक, कफवात नाशक, दीपन तथा मुख को विशेष शुद्ध करने वाले हैं। स्वाद में फल कसैले और चरपरे होते हैं। राज-निघण्टुकार ने भी इसी प्रकार से इसके गुणधर्म लिखे हैं।

किन्तु परम खेद की बात है कि यह वनौषधि हमारे यहाँ आसपास अत्यधिक विपुल प्रमाण में प्रतिवर्ष होने पर भी इसका परीक्षणात्मक अनुसंधान अभीतक किसी ने नहीं किया। केवल कोथई नामक नेत्र रोग में, जो बाल्यावस्था में बहुत कष्टदायक होता है यह प्रयुक्त होता है। (इस रोग में, नेत्र के ऊपर की पलकों के अन्दर की श्लेष्मल त्वचा में नुकीली ग्रन्थि या ग्रन्थियां उभर कर नेत्रों को पीड़ा पहुँचाती हैं और बालक बड़ा दुःख पाता है।) इस 'अर्शोवर्त्म' रोग में, इसके फलों के काँटों को दूर कर, तागे में पिरोकर माला बना बालक के गले में धारण कराते हैं तथा फलों को थोड़े जल के साथ स्वच्छ पत्थर पर घिस कर आँख के अन्दर भी लगाते हैं। इस प्रयोग से देखा गया है कि यह कष्टदायक रोग बड़ी सरलता से दूर हो जाता है। इसीसे इस पौधे का नाम 'कोथई' रखा है।

कहा जाता है कि इसके पत्रों में रक्तप्रदर नाशक शक्ति है। इसके पत्रों का रस निकाल कर उसमें थोड़ी मिश्री मिला कर रक्त प्रदर पर सेवन कराया जाता है।

इन्फ्लुएंजा और कभी-कभी निमोनिया की दशा में इसके पत्तों की लुगदी को आग पर गरम कर, कंठ से लेकर

छाती और पसुलियों पर थोप दिया जाता है, और ऊपर से सेंक किया जाता है। लुगदी के सूख जाने पर दूसरी लुगदी का लेप उसी प्रकार किया जाता है और सेंका जाता है। रोगी को शीघ्र आराम मिलता है, और उसे सुखपूर्वक निद्रा आती है।

इसके अन्य गुणधर्म और प्रयोगों का निरीक्षण किया जा रहा है, जो आगे क्रमशः प्रकाशित किये जायेंगे।

नोट :—ध्यान रहे, जिसे लैटिन में लिम्नोफाइला ग्रेटिओलायडिस (Limnophila Gratioloides) कहा जाता है, तथा जिसका संस्कृत में 'आम्रगंधा' नाम रखा गया है, वह उक्त बनौषधि से एकदम भिन्न है। वह ब्राह्मी वर्ग (Scrophularineae) की है, जो प्रायः समशीतोष्ण कटिबन्ध में पाई जाती है। इस 'आम्रगंधा' का भी संतोषदायक विवरण आयुर्वेदीय निघंटुओं में नहीं पाया जाता। कीचड़ या जलमय स्थानों में ही प्रायः उत्पन्न होने से इसे किसी ने 'अम्बुज' नाम दे दिया है, जो भ्रमात्मक ही है। कारण 'अम्बुज' से कमल, हिज्जल आदि कई चीजों का बोध होता है। इसके अतिरिक्त 'आम्रगंधा' नाम आमाहल्दी या आम-आदा को भी दिया गया है।

इस ब्राह्मी वर्ग की वनौषधि को हिन्दी की प्रान्तीय भाषा में कहीं कहीं 'कुतर', बंगाल में कर्पूर, मराठी में अम्बुली आदि कहते हैं। इसका छोटा बहुशाखी पौधा ४ से ७ इंच ऊँचा होता है। जबलपुर और रायपुर के तालाबों के किनारे पर हमने इसे बहुत देखा है। इसकी जड़ें अधिकांश में नीचे की ओर विस्तृत रूप से फैली हुई होती हैं। इसका तना पुष्ट एवं कोमल होता है। इसके पत्ते डंठल के चारों ओर चक्राकार परिवेष्टित, कतरनदार, लगभग आधे इंच तक लम्बे होते हैं। अधिक आर्द्रस्थलों में तने के सिरे पर, जल से बाहर निकले हुए सम्मुखवर्ती इसके पत्ते दिखलाई देते हैं। फूल छोटे-छोटे नील वर्ण के होते हैं।

गुणधर्म :—यह दुर्गन्ध, कृमि, श्लीपद, ज्वर, अतिसार और प्रवाहिका को दूर करती है।

डॉक्टर डाइमाक का कथन है, कि यह कोथ प्रशमन (antiseptic) हैं, तथा हिन्दू लोग संक्रामक ज्वरों में इसके रस को शरीर पर मालिश करते हैं। आमातिसार या प्रवाहिका में इसे सोंठ व जीरा तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यों के साथ उपयोग में लाते हैं। श्लीपद (हाथी पाँव) रोग में इसके कल्क को नारियल तैल में मिला लेप करते हैं। इसके ताजे पौधे की गंध अत्यन्त शांतिदायक एवं ग्राह्य होती है, तथा कर्पूर और नींबू तैल का स्मरण दिलाती है।

डॉक्टर देसाई जी लिखते हैं कि यह पूतिहर तथा छोटी रक्तवाहिनियों को संकोचन करने वाली है। रोगी का संस्पर्शजन्य ज्वर दूसरों को न लग जाय, इस ख्याल से इसके पंचांग के रस को ज्वर रोगी के शरीर पर मर्दन करते हैं। सूक्ष्म रक्तवाहिनियों के संकोचनार्थ इसके रस का श्लीपद पर मर्दन करते हैं। रक्तमिश्रित प्रवाहिका में इसके रस का जीरा और बच के चूर्ण के साथ सेवन कराया जाता है। इस प्रयोग से सूक्ष्म रक्तवाहिनियों का संकोचन होकर रक्तस्राव दूर हो जाता है।

हमने इसके स्वरस १ तोला में, जीरा (श्वेत) भूना हुआ का चूर्ण १ माशा, कपूर देशी १ रत्ती और बच (मीठी) ४ रत्ती मिला (यह एक मात्रा हुई) रक्त प्रवाहिका के रोगी को दिन में तीन बार सेवन कराया था। ४ दिन में पूर्ण लाभ हो गया था।

ध्यान रहे हिन्दी में जिसे 'कुतरा' कहते हैं, वह इसी की जाति की एवं समान गुणधर्म वाली है। इसे लेटिन में लिम्नोफाइला ग्रेटिसिमा (Limnophila Gratissima) कहते हैं। यह भारतवर्ष में बहुत कम पाई जाती है। यह पश्चिमी प्रायःद्वीप, सीलोन, मलाया द्वीप, फिलीपाइन्स, चीन, जापान आदि देशों में बहुतायत से होती है। इसका स्वरस ज्वरोष्मा को शांत करता है। इसके रस का सेवन दूध में मिला कर करने से पुत्रवती स्त्री के दुग्ध की खराबी दूर हो जाती है। माता का शुद्ध दूध पीकर बालक हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। इसमें कृमिघ्न गुण की विशेषता है। यह गुण उक्त 'कुतर' बूटी में नहीं पाया जाता। कहा जाता है कि यह बूटी आल्मोड़ा, टेहरी, गढ़वाल के जलाशयों के किनारे पर होती है, तथा वहाँ के पंसारी लोग इसे 'कोकतारा' नाम से बेचते हैं।

गाजर और सेब

कविराज श्री केवल धीर

प्राचीन समय में ऋषि-मुनि खुले मैदानों में रहते थे, स्वच्छ जलवायु ग्रहण करते थे और अधिकतर अपना निर्वाह फल तथा सब्जियों द्वारा ही करते थे। यही उनका रहन-सहन और भोजन था। प्रकृति में उन्हें पूर्ण विश्वास था। यही विशेष कारण था उनके सुखी तथा स्वस्थ रहने का। आज के वैज्ञानिकों द्वारा निकाला गया परिणाम भी यही है कि प्राकृतिक नियमों का पालन करने से मनुष्य सदैव सुखी रहता है तथा दीर्घकाल तक जीवित रह सकता है।

फल-सब्जियां मनुष्य को प्रकृति की देन हैं। जितना अधिक हो सके मनुष्य को इनका प्रयोग करना चाहिये।

गाजर अपने स्थान पर फल भी है और सब्जी भी। यह प्रकृति की अमूल्य देन है। यह कई प्रकार की होती है। लाल तथा काले रंग की गाजरें अन्य प्रकार की गाजरों से अच्छी होती हैं। गाजर में ८६ प्रतिशत पानी, ६ प्रतिशत प्रोटीन, एक प्रतिशत चरबी (Fat), कुछ नमक (Salts), ११/५ प्रतिशत कारबोहाईड्रेटस (Carbohydratcs), ४/५ प्रतिशत कैलिसियम (Calsium) तथा कुछ फास्फोरस (Phosphorus) होता है। गाजर में शक्कर (Sugar) भी पाई जाती है। इसके अतिरिक्त इसमें गंधक तथा कुछ स्टार्च (Starch) भी होती है। यह हर लिहाज़ से स्वास्थ्य के लिये बहुत लाभकारी है।

फासफोरस (Phosphorus) के होने के कारण इसके प्रयोग से आँखों को बहुत लाभ होता है। इससे आँखों के भीतरी अंग शक्तिशाली होते हैं क्योंकि इसमें लोह के तत्व भी होते हैं। गाजर के लगातार प्रयोग से रक्त की कमी जाती रहती है। गंधक की कुछ मात्रा होने के कारण शरीर के ऊपरी भाग के रोग, फोड़े फुन्सी आदि नहीं हो पाते। खुजली आदि विशेषत: शीतकाल में ही होती है। गाजर भी इसी मौसम में होती है। इसके प्रयोग से चर्म रोग जाते रहते हैं। दाद या किसी अन्य रोग के हो जाने पर गाजर तथा दूध का सेवन कुछ दिनों तक करना चाहिये। इससे यह रोग जाते रहते हैं। पीलिया, क्षय रोग, बवासीर तथा पित्त आदि रोगों में यह बहुत लाभकारी है।

गाजर के प्रयोग से शरीर मुलायम तथा सुन्दर हो जाता है। यह शरीर में शक्ति का संचार करती है। इसके प्रयोग से मनुष्य के वजन में भी अंतर पड़ जाता है। यह पेट को साफ करती है तथा दस्त आदि ठीक आता रहता है। बच्चों को गाजर का रस पिलाने से उनके दाँत निकलने में सुविधा रहती है तथा उन्हें दूध भी ठीक प्रकार से हजम होता रहता है।

गाजर का रस मस्तिष्क के लिये बहुत अच्छा सिद्ध हुआ है। शारीरिक विकास एवं बुद्धि के लिये इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिये। रोगों के आक्रमण से रक्षा तथा इनसे सुरक्षित रखना गाजर का विशेष गुण है। गुर्दों की जलन मिटाने में भी गाजर अद्वितीय है। उदर तथा आँतों के घाव की तो गाजर रामबाण औषधि है। भयंकर कोष्ठवद्धता के निवारण का विलक्षण गुण गाजर में भरा पड़ा है। पके हुए पुराने घाव पर गाजर को उबाल कर बाँधने से शांति मिलती है। कच्ची गाजर कुचल कर और उसमें आटा मिलाकर छालों तथा जलन वाले घावों पर यदि बांध दिया जाय तो अवश्य लाभ होता है।

गाजर की जड़ और पत्तों में भी विशेष गुण है। इसकी जड़ को स्त्री-दुग्ध में पीसकर, उसे नाक से खींचने पर हिचकी जाती रहती है। इसकी पत्तियों के दोनों ओर घी चुपड़ कर, उसे गरम करके और उसका रस निकाल कर एक-एक बून्द कान तथा नाक में डालने पर आधाशीशी (अधकपारी) का कष्ट दूर हो जाता है। पाचन क्रिया की खराबियों से आँतों में विषैले पदार्थ एकत्रित हो जाते हैं और उनके सड़ने से भयङ्कर कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं, किन्तु गाजर का सेवन करने से सड़न नष्ट हो जाती है और कीटाणु समाप्त हो जाते हैं। इसमें विटामिन ए अधिक रहने के कारण दूध, दही, मछली के तेल के पूरक के रूप में इस की गणना होती है। गाय तथा घोड़ों की जाति के पशुओं के लिये भी गाजर में पोषक तत्व है। दूध गाढ़ा करने तथा बढ़ाने के लिये गांवों में गाय को गाजर खिलाई जाती है।

गाजर प्रायः सभी जगह पाई जाती है। इसकी खेती नरम तथा भुरभुरी मिट्टी में की जाती है। नमकीन मिट्टी इसकी उपज के लिये विशेष उपयोगी है। भाद्रपद से कार्तिक पर्यन्त बोई जाने के कारण गाजर की खेती में विशेष सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। गाजर को कच्चे रूप में ही प्रयोग करना चाहिये। उबालने या पकाने से इसके बहुत से रासायनिक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। यह प्रकृति की अमूल्य देन है, हमें इसका अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिये।

उपयोगी फल सेव

किसी भी देश के प्राचीन इतिहास को पलटिये आप को पता चलेगा कि सेव की जानकारी लोगों को बहुत पहले से है। बाईबल में, मिस्र के प्राचीन इतिहास में तथा प्रस्तर युग के प्राचीन शिलालेखों से भी इसकी जानकारी प्राप्त होती है। सबसे पूर्व सेव काकेशस पहाड़ पर पाये जाते थे। इस पहाड़ पर आज भी जंगली सेव प्राप्त होते हैं। किन्तु आज के समय में यह फल सभी शीतोष्ण क्षेत्रों और स्वल्प-उष्ण देशों में उपजाया जाता है तथा यह संसार का सबसे अधिक सामान्य फल है। हमारा देश गर्म देश है किन्तु यहाँ भी समुद्र-स्तर से पाँच हजार फुट की ऊँचाई पर पाया जाता है।

संसार भर में सबसे अधिक फ्रांस, अमेरिका, इटली, जर्मनी, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा जापान में यह होता है। स्वादिष्ट होने के अतिरिक्त इस फल का महत्त्व बहुत अधिक है। यह आरोग्यवर्धक फल है। पुराने लोग कहा करते थे कि जो मनुष्य प्रतिदिन एक सेव खाता है, उसे डाक्टर का द्वार खटखटाने की आवश्यकता नहीं होती। आज ऐसा लगता है कि यह कहावत शत-प्रतिशत सत्य है। सेव का रासायनिक विश्लेषण करें तो पता चलता है कि इसमें ०·३ प्रतिशत प्रोटीन, ०·१ प्रतिशत वसा (चर्बी), ०·०१ प्रतिशत कैलशियम, ०·०२ प्रतिशत फास्फोरस और १·६ प्रतिशत लोह होता है। इनके अतिरिक्त इसमें शर्करा, पोटैशियम, सोडियम, गंधक, कैरोटाईन, थियामाईन, रिबोफ्लोविन तथा विटामिन 'सी' आदि पदार्थ भी हैं।

शर्करा से ही सेव के भोजन मूल्य (Food Value) का मुख्य रूप से विचार किया जाता है। इसमें शर्करा का अंश भी बहुत अधिक अर्थात् ६ से २१ प्रतिशत तक होता है, जिसका ८८ प्रतिशत से भी अधिक भाग दो सुपाच्य शर्कराओं से युक्त रहता है अर्थात् ६० प्रतिशत फल-शर्करा और २५ प्रतिशत ग्लूकोज होता है। कच्चे सेव में साधारणतः थोड़ा-सा श्वेतसार रहता है। पकते समय प्रायः वह सम्पूर्ण स्टार्च, शर्करा में बदल जाता है किन्तु यह शर्करा सामान्य तौर पर पेड़ की पत्तियों में तैयार होती है और तब फलों में होती है। शर्करा के साथ-साथ सेव का अम्ल तत्त्व भी प्रायः पूरे का पूरा 'मोलिक एसिड' होता है जो शर्करा की भाँति शरीर में जल जाता है तथा पूर्ण रूप में व्यवहृत होता है। सेव में इस अम्ल तत्व का अंश ०·१६ से १·११ प्रतिशत तक होता है। सेव में 'पेक्टिन' भी पाया जाता है। इसमें विटामिन तथा खनिज लवण अधिक नहीं होता। प्रोटीन तथा वसा भी बहुत कम मात्रा में पाई जाती है। यदि कोई दो सेव प्रतिदिन खाता है तो अपनी आँतों की सफाई के विषय में उसे चिंतित नहीं होना चाहिये।

यह फल बच्चों के उग्र तथा जीर्ण पेचिश में बहुत लाभप्रद है। ऐसे रोगों में पके हुए और मीठे सेव की मुलायम लुगदी बना कर बच्चों को दिन में कई बार खिलाई जाती है। अक्सर ४८ घण्टे के भीतर ही यह रोग दूर हो जाता है।

सेव अनुत्तेजक खाद्य है, इसलिये यह आँतों की अन्य कई बीमारियों में भी अच्छा साबित होता है। पथ्य की दृष्टि से सेव का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। सेव का रस पेट और आँतों के कीटाणुओं को नष्ट कर देता है। यह सड़न-विनाशक भी है। यह पेट और आँतों के श्लेष्म-स्राव, पित्त प्रकोप, पीलिया, गुर्दे तथा यकृत की खराबी में बहुत लाभप्रद है। यदि सेव को चबाकर खाया जाय तो इसका अम्ल रस भी मुंह और दाँतों में मौजूद कीटाणुओं पर प्रभाव डालता है। दाँतों की तकलीफ में भी इसे प्रयोग में लाया जा सकता है। सेव में एक प्रकार का तत्त्व रहता है जो रक्त के क्षारतत्त्वों को कायम रखता तथा अम्लत्त्व को दूर भगाता है। सेव गठिया तथा ग्रंथि रोग में भी प्रयोग में लाया जाता है। जब यह रोग 'यूरिक-एसिड' के विष से पैदा हो तब यह फल विशेष हितकर सिद्ध होता है।

सेव अधिकांश कच्चा और भोजन के खतम होने पर सेवन किया जाना चाहिए। मीठे तथा सुगन्धित रस वाले

(शेषांश ७०३ पृष्ठ पर)

अलर्क विष रोग

कविराज लक्ष्मीनारायण पाण्डेय, आयुर्वेदाचार्य

पर्याय—अलर्कविषजन्य रोग, श्वानशृंगालादि विष रोग, हाइड्रोफोबिया, रेबीज।

परिभाषा—यह एक तीव्र संक्रामक पीड़ाकारक रोग है जो विक्षप्प हुए श्वान-शृगाल प्रभृति पशु के काटने के कारण उत्पन्न होता है।

संप्राप्ति—यह व्याधि अधिकतर विक्षिप्त कुत्ते के काटने से उत्पन्न होती है जैसे बिल्ली, भेड़िया, लोमड़ी, आदि के द्वारा भी पागल अवस्था में मनुष्य को काटने से यह उत्पन्न हो सकती है। जब उक्त पशुओं में से कोई भी विक्षिप्त अवस्था में मनुष्य को काटता है तो रोग का कीटाणु उसकी लार द्वारा मनुष्य-शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। यहाँ यह यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस प्रकार पागल कुत्तों से काटे जाने पर सभी रोगग्रस्त नहीं होते हैं किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि सावधानी न बरती जाय।

कीटाणु शीघ्र ही मस्तिष्क तक पहुँच जाते हैं और सुषुम्नाकाण्ड, लाला ग्रन्थियाँ, अन्ननलिका और आमाशय में एक प्रकार की विकृति या शोथ पैदा कर देते हैं।

साधारणतया दो तीन दिन के भीतर ही इस रोग के लक्षण प्रकट हो जाते हैं, किंतु कभी-कभी १ वर्ष तक की अवधि भी देखी गई है।

आयुर्वेद-मतानुसार श्वान-शृगाल प्रभृति पशुओं के शरीर में जब वायु कफदुष्टि से दुष्ट हो जाता है तो वह उन पशुओं के मस्तिष्क को प्रभावित कर संज्ञावहा शिराओं की गति में बाधक बन जाता है। उनके सारे कार्य विरुद्ध चेष्टामय होकर वे काटने व एक ही मार्ग पर दौड़ने लग जाते हैं। साधारणतः ऐसे पशु जल से डरते हैं। लाला-स्राव निरन्तर होता है रहता है। प्रायः उनकी पूँछ भी सीधी हो जाती है।

पागल कुत्तों या अन्य पागल पशुओं के काटे मनुष्यों में भी प्रायः वैसे लक्षण दिखाई देते हैं।

रोग लक्षण व उसकी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ

१. प्रायः कटा हुआ स्थान शून्य हो जाता है और कुछ भूरे मटमैले रंग का खून निकलता है। दंश-स्थान पर कभी-कभी जलन भी ज्ञात होती है और यह भी देखा गया है कि घाव दो-चार दिनों में भर जाता है और किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती है। साधारणतः ऐसी दशा में रोगी निश्चित हो जाता है, और उस ओर कोई ध्यान नहीं देता। किन्तु तीन-चार मास के पश्चात् ये लक्षण उभर आते हैं और दंशित व्यक्तियों को दंश-स्थान पर जलन या पीड़ा का अनुभव होता है और इसके साथ ही दूसरे अन्य लक्षण भी प्रकट होने लगते हैं। मन्दज्वर, वातसूत्रों में खिंचावट, बैचेनी आदि लक्षण सामान्य हैं।

२. रोगी को प्यास का अनुभव होता है पर जल से भय होता है और जल पीने में भी नाड़ियों के खिंचाव के कारण असमर्थ रहता है। प्रलाप, मूर्च्छा या बार-बार भय-प्रदर्शन सामान्य से हो जाते हैं। रोगी को नींद भी नहीं आती। कभी-कभी तो यह भी होता है रोगी बहते हुए जल के शब्द से भी डरने लगता है। गलग्रन्थियों के शोथ के कारण रोगी परेशान हो जाता है। उससे कफ बाहर भी नहीं निकाला जाता है। उसे सदा थू-थू करना पड़ता है। जल से वह इस प्रकार डरने लगता है कि प्यासा छटपटाता रहता है किन्तु जल पीता नहीं। यही कारण है कि इस रोग का नाम हायड्रोफोबिया रखा गया है। यह स्थिति १ से ३ दिन तक रहती है। इसी स्थिति में आक्षेप भी कभी-कभी देखे जाते हैं।

३. यह बड़ी तीव्रतर स्थिति होती है। आक्षेप की गति तीव्र हो जाती है, साथ ही ज्वर का वेग भी बढ़ जाता है। रोगी बेहोश हो जाता है और श्वांसावरोध या हृद्‌गति रुकने से वह इस असार संसार से प्रयाण कर जाता है। मेरे देखने में जो रोगी आए हैं उनमें उक्त लक्षणों के अतिरिक्त रोगी का दौड़ना, सामने बैठे व्यक्ति को न पहचानना, जल को कुत्ते की भांति चाटना व कुत्ते के समान भर्राये हुए स्वर में निरर्थक आवाज़े करना आदि लक्षण होते हैं।

जो मनुष्य उक्त पशुओं के काटने से रोग संक्रान्त हो तो उसकी चिकित्सा-व्यवस्था तत्काल होनी चाहिए, अन्यथा

उपचार में बड़ी कठिनाई होती है और रोगी हाथ से जाता रहता है।

चिकित्सा—काटे स्थान पर तीव्र कीटाणुनाशक औषध "कार्बोलिक एसिड" प्रभृति लगाना लाभदायक है। "ऐन्टिरेबिक वेक्सीन" ऐलोपैथी का विशिष्ट इलाज है। अल्पमात्रा में मर्फिया, ऐट्रोपिन आदि का प्रयोग भी होता है।

साधारणतः रोगी को बन्द कमरे में रखना चाहिए तथा बर्फ चूसने को देना चाहिए। आयुर्वेद मतानुसार रोगी को श्लेष्मा नाश के लिए वमन-विरेचन देना आवश्यक है। घाव को गरम जल से धोना एवं उस स्थान का खून निकालना जरूरी है।

रोगी के घाव पर गर्म घी लगाना तथा रोगी को घी पिलाना भी विहित है। रोगी को "स्वेद" चिकित्सा द्वारा भी चिकित्सा करते देखा गया है। उसे वाष्प स्वेद दिया जाता है या फिर उष्ण जल से स्नान कराया जाता है।

आज भी गाँवों में जब किसी को पागल कुत्ता काट खाता है तो उसे लहसुन और नमक का प्रयोग कराया जाता है। गाँवों में इस रोग को "हडकवा" कहते हैं, जिससे वायु के दूषित होने का स्पष्ट बोध होता है।

रोगी को खट्टे या चरपरे पदार्थ हानिकर होते हैं साथ ही उसे जल से भी दूर रखाना जरूरी है।

आक का दूध, लहसुन, पुनर्नवा, कुचला व जटामांसी आदि के भिन्न प्रयोग लाभदायक रहते हैं।

"विमर्कर्मपयोलेपः श्वान वृश्चिकयोर्जयेत्।
कौक्कुरं पान लेपाभ्यामयश्वान विषंहरेत्॥

—वैद्य सर्वस्व

असाध्य लक्षण

"योऽद्भ्स्त्रस्येद् दष्टोऽपि शब्द संस्पर्शदर्शनैः॥
जलं संत्रास नोमानं दष्टं तमपि वर्जयेत्॥

—वाग्भट

शेषांश] **गाजर और सेव** [७०१ पृष्ठ का

फल प्रायः भोजन के साथ प्रयोग में लाये जाते हैं। कहा जाता है कि ताजे सेव का रस अंगूर के रस से कहीं अधिक अच्छा होता है। यदि सेव के रस का सेवन मधु (शहद) के साथ किया जाय तो अधिक अच्छा तथा आरोग्यवर्धक होता है।

सेव की चटनी, मुरब्बा, खीर, कढी तथा केक आदि तैयार की जाती है। सेव से सिरका तथा शराब भी बनती है। सेव का छिलका भी अपना महत्व रखता है। प्रायः देखा गया है कि सेद का छिलका फेंक दिया जाता है। याद रहे कि इस छिलके में गुद्दे से कहीं अधिक विटामिन 'सी' होती है। पुराने समय में जब 'स्कर्वी' रोग अर्थात् पोषणाभाव से शरीर की त्वचा पर चकत्ते पड़ने की बीमारी के कारण का ठीक से पता न था और टमाटरों तथा संतरों का प्रयोग भी शायद ही किया जाता था, उस समय सेव ने ही बहुत से देशों के निवासियों की इस रोग से रक्षा की। सेव के गूदे की अपेक्षा उसके छिलके में विटामिन 'ए' भी पाँच गुना अधिक पाया जाता है। इसलिये छिलके को फेंकने की बजाय उसे भी प्रयोग करना चाहिये।

सेव खाने से पूर्व यह ध्यान रखें कि उसे पानी में खूब अच्छी प्रकार से धो लें। जहाँ यह स्वादिष्ट तथा मीठा फल है वहाँ एक उपयोगी दवा भी है।

चना के महान गुण

श्री आचार्य नित्यानन्द

पिछले दिनों मैंने एक लेख में नास्ते के रूप में मेवे खाने की सलाह दी थी। उसी के सम्बन्ध में प्राथमिक विद्यालय के एक अध्यापक ने मुझे उलाहना दिया है कि सामान्य स्थिति के मनुष्य के बूते की बात मेवे खाना नहीं है। बात जंचनेवाली है, वास्तव में मेवे मंहगे हैं। मेवे की जगह उसी के समान गुणकारी दूसरी चीज का प्रयोग भी किया जा सकता है। इस को हम जानते हैं—यह है चना। चने का प्रयोग खाद्यान्नों में जनप्रिय है। चने के बेशन से बनी मिठाइयां और नमकीन का उपयोग बराबर किया जाता है। किन्तु नास्ते में सस्ते और अत्यन्त गुणकारी ढंग से इस का प्रयोग वांछनीय है।

गर्मियों में दो बार नास्ते की जरूरत महसूस होती है, एक तो प्रातःकाल और दुबारा दोपहर के बाद। सौभाग्य से दोनों ही समय चने का प्रयोग किया जा सकता है। प्रातः-कालीन नास्ते में भीगे चने और दोपहर में भुने चने का प्रयोग होना उचित है। जिन लोगों को चने खाने की आदत न हो, उन्हें सम्भव है, प्रारम्भ में चने का प्रयोग उतना रुचिकर न हो। किन्तु बाद में वे इस के स्वाद और गुणों की प्रशंसा किये बिना न रहेंगे।

प्रातःकालीन नास्ता

रात को चौगुने पानी में साफ किये हुये चने भिंगो देवें। यदि चने एक छटांक हों तो हमें एक पाव जल डालना चाहिए। भिंगोने का बर्तन मिट्टी का हो तो उत्तम है। शीशे या चीनी मिट्टी के पात्र भी लिये जा सकते हैं। पानी और चना पात्र में उलने के बाद उसे ढंक देवें। इस प्रकार सबेरा होने तक चने फूल जायेंगे और नरम हो जायेंगे। आपका सबेरे का नास्ता तैयार है। यदि पहले थोड़ी कसरत भी कर लें, तो चना वह गुण करेगा, जो दूध या मेवे ही कर सकते हैं। जिन्हें दूध पीने की आदत हो, वे चने के बाद दूध पी सकते हैं।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि चने को अधिक मात्रा में न खाया जाये, वर्ना भूख बन्द होने से भोजन का आनन्द जाता रहेगा। मेरे खयाल से ३ तोले से ५ तोले तक चने का नियमित प्रयोग सबेरे के नास्ते में किया जाय। इस प्रकार का नास्ता गर्मियों की मौसम में प्रत्येक स्कूल में अनिवार्य कर छात्रों की शारीरिक उन्नति बिना विशेष खर्च के की जा सकती है। थोड़ी देर की ड्रिल या कसरत के बाद प्रत्येक छात्र को मुट्ठी भर भीगा चना दीजिये।

यह तो सरल तरीका है। गुणों के लिहाज से इस में थोड़ा परिवर्तन वांछनीय है। रात के भीगे चने को सबेरे एक कपड़े में बांध कर रख देवें। कपड़े को किसी गीले स्थान में रख दें। कपड़ा सूख जाये तो भिंगो देवें। फिर इस प्रकार दो दिन बाद चनों से अपने आप अंकुर निकल आयेंगे। इन अंकुरों में खाद्योज "सी" पर्याप्त है और ये पहले की अपेक्षा अधिक गुणकारी हो गये हैं। इनका उपयोग सबेरे के नास्ते में कीजिये।

मध्याह्नकालीन नास्ता

गर्मियों के दिन काफी बड़े होते हैं, इसलिये जिन्हें दोपहर में नास्ता करने की आदत नहीं है, वे भी भूख महसूस करते हैं। इस समय भी दो मुट्ठी चने ले लीजिये। किन्तु चने भुने हुए हों। दिन भर भीगे चने खाने से अरुचि होने का डर रहता है। चने के बाद ठण्डे पानी का गिलास ले लीजिये। कुछ लोगों का तो यह नियम होता है कि जब भी उन्हें प्यास लगती है, दस पांच चने (भुने हुए) खाने के बाद ही पानी पीते हैं। ऐसा करने में बड़ा लाभ यह है कि पसीने में पानी पिये जाने पर भी किसी किस्म का नुकसान नहीं करता। वर्ना जुखाम लगने का अन्देशा बना रहता है। इस समय भूने चने के साथ धानी (भुने हुए जौ) खाने का रिवाज भी है। यह भी लाभप्रद है। कुछ प्रदेशों में सत्तू खाने का प्रचलन है, वह भी उपयोगी है।

इस समय के नास्ते में भीगे या अंकुरित चने को छौंकने के बाद भी उपयोग में लिया जा सकता है। मसाले मिल जाने से अरुचि नहीं होती।

चणक-रसायन

चने का प्रयोग शक्तिदाता रसायन के रूप में भी किया जाता है। जो लोग सदा कमजोर रहते हैं, वे इस प्रयोग

से अपने आप को इतना स्थूल बना सकते हैं कि देखनेवाले दांतों तले अंगुली दबाकर रह जायेंगे। इस काम के लिये केवल भींगे चने का उपयोग वांछनीय है। पहले मास में एक छटांक से अधिक भींगे चने मत खावें और ये भी प्रातःकाल ही लें। फिर अगले दो महीने में दोपहर के बाद भी एक छटांक भीगा चना लेना चाहिए। चना खाने के पूर्व हलका सा व्यायाम भी कर लें और चने खाने के बाद थोड़ा सा दूध भी पी लें।

तीन मास के बाद केवल चने का प्रयोग करें। दूसरे अनाज सर्वथा छोड़ दें। दिन में तीन-तीन घण्टे के अन्तर से अंकुरित चने ले लिया करें और खूब चबाया करें। चबाना इतना चाहिए कि यह कहा जा सके कि चने पिये जा रहे हैं। इसके बाद दूध भी पी लेवें। इस अर्से में फल या फलों का रस भी लिया जा सकता है। ब्रह्मचर्य से रहना जरूरी है। छः महीनों में ही आप देखेंगे कि शरीर वज्र के समान मजबूत हो जायेगा। जितनी स्थूलता अच्छे-अच्छे टानिकों से प्राप्त नहीं हो सकती, वह इस सस्ते कल्प द्वारा मिल सकेगी। चने का यह महान चमत्कार जो भी देखेगा, आश्चर्य-चकित हुए बिना नहीं रह सकेगा।

इस रसायन में साधारण चने की जगह काबुली चने का प्रयोग करें तो और भी अच्छा। यदि कभी भूख न लगे और पेट फूलने सा लगे तो हिंग्वाष्टक चूर्ण का प्रयोग करना चाहिए।

अद्भुत वाजीकरण

धातुक्षीणता को नष्ट कर शुक्र बढ़ानेवाली दवाइयां वाजीकरण कहलाती है। घोड़े को ही "वाजी" कहते हैं। घोड़े की कामशक्ति प्रसिद्ध है। घोड़े में भी यह शक्ति चने के द्वारा ही आती है। चने की दाल घोड़ों का मुख्य खाद्य है। यही चना मनुष्य की कामशक्ति को भी बढ़ाता है। जो युवक कमजोर रहते हों, उनको चने के प्रयोग किसी भी रूप में अवश्य करना चाहिए।

प्रमेह में चने का सफलता के साथ उपयोग किया जाता है। जिन्हें भोजन में पौष्टिक पदार्थ उपलब्ध नहीं होते हों, उन्हें भोजन में चने का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। मैं स्वयं अपने भोजन में पिछले दस वर्षों से चने का नियमित प्रयोग करता हूँ। मैं गेहूँ के आटे में ही चना डलवा लेता हूँ। इस प्रकार की मेसी रोटियां खाने में भी स्वादिष्ट लगती हैं। पहले पहल मैंने यह प्रयोग मलावरोध को दूर करने के लिये किया था। किन्तु अब तो चने के दूसरे गुणों को देख कर उसका कायल हो गया हूँ।

भूने हुए चने

कुछ लोगों का खयाल है कि भुने हुए चने खून को कम करते हैं। यह गलत है। चने केवल खून की शुद्धि करते हैं। रक्त की खराबी दूर करने से कुछ समय के लिए खून में कमी सी प्रतीत होती है। हिकमत के अनुसार भुने चने का पहला गुण तेजी के कारण मलावरोध को दूर करना है। दूसरे वह अंगों को विकसित करता है।

तुरन्त भुने चनों का प्रयोग जुकाम में लाभप्रद है। कुछ लोगों का तो कहना है कि गरमागरम चनों को सूंघने से ही जुकाम नष्ट हो जाता है। परन्तु मेरे विचार से गरम चने खाने से तो अवश्य ही जुकाम चला जाता है। खूनी बवासीर में भी गरम चने खाने का रिवाज है।

यदि आप चेहरे की कान्ति बढ़ाने और झांई आदि मिटाने के चक्कर में क्रीम और वैसलीनों से ऊब चुके हों, तो मैं चने के आटे से बनी पिठ्ठी को लगाने की सलाह दूंगा। आप देखेंगे कि कुछ दिनों के प्रयोग से ही चेहरे पर कमल के समान कोमलता आ जायेगी। रंग निखर कर गोरा हो जायेगा।

गले को साफ करने और खांसी में जमे कफ को बाहर निकालने में भी भुने चने का प्रयोग किया जाता है। बहुमूत्र रोग में भी भुने चने का प्रयोग तुरन्त लाभ दिखाता है।

विभिन्न रोगों में

हरे चने के पत्तों का साग पित्तनाशक है और बुखार को दूर करता है। मसूढ़ों की सूजन में विशेष उपयोगी है। कच्चे हरे चने पित्त की बिमारियों में अत्यन्त फायदा पहुँचाते हैं। चने से बढ़े हुए यकृत और प्लीहा अपना प्राकृतिक रूप धारण कर लेते हैं। सभी किस्म के वीर्य-विकारों में इसका प्रयोग वांछनीय है। चने का खार अजीर्ण, भूख की कमी और अंशुघात में फायदेमन्द है। हिक्का, जलोदर और विषमज्वर में भी उपयोगी है।

आयुर्वेद में चने को "सकलप्रिय" कहा गया है। गुण और उपयोगिता की कसौटी पर मुझे भी यह नाम सर्वथा उपयुक्त लगता है। केवल सस्ते होने से हमें चने को त्याज्य नहीं मान लेना चाहिए।

आतशक-मीमांसा

श्री शिवपूजन सिंह, कुशवाहा 'पथिक' बी० ए०,

भयङ्कर और कष्टदायक संक्रामक व्याधियों में 'आतशक' भी है। भारतवर्ष में इसे आतशक, गर्मी व फिरङ्ग नाम से पुकारा जाता है। यह एक विदेशी व्याधि मानी जाती है। इस व्याधि को भिन्न-भिन्न देशवाले अन्य देशों से आया हुआ समझते हैं। फ्रान्स वाले इसे नेपल्स से आया हुआ समझ कर 'नेपल्स रोग' (Madle Napoles) कहते हैं। इटालियन इसे फ्रांस से आया हुआ समझकर 'फ्रेंच रोग' (Malum Francoum) कहते हैं। पुर्त्तगाल वाले स्पेन से आया समझकर 'स्पेन की बीमारी' (Madle Castilea) कहते हैं। स्पेन वाले फ्रांस की बीमारी' (Madle Gallies), पोलैण्ड वाले 'जर्मन रोग' (Dent-Schekran kheit), रूस वाले 'पोलैण्ड का रोग' (Polnischekran-kheit), कहते हैं। भारतीय इसे 'फिरंग रोग' कहते हैं। यह रोग पहिले यहाँ नहीं था। इसे फिरङ्गी (पुर्तगीज) जाति ने ही यहाँ लाया, अतः, 'फिरंग' नाम समुचित है। 'गर्मी' और 'आतशक' नाम इस व्याधि की प्रकृति-निदान के अनुसार रख लिए गए हैं। इसे 'उपदंश' भी कहते हैं। कई लोग इसे भिन्न रोग समझते हैं, पर यह बात नहीं है। आंग्ल भाषा में इस रोग को 'सिफसिल' (Syphilis) कहते हैं।

कारण—(१) यह एक संक्रामक रोग है। इस रोग के कीटाणु होते हैं, जिसे आंग्ल भाषा में 'स्पाइरोकीट' (Spirochoete Pollida) कहते हैं। सर्वप्रथम इन कीटाणुओं का 'शाडीन' और 'हॉफमैन' नामक अंग्रेजों ने पता लगाया था। ये कीटाणु मच्छर-मक्खियों के द्वारा नहीं आते और न चूहे से फैलते हैं; वरन् इन कीटाणुओं के फैलाने में मादक द्रव्य अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए हैं। नशा करने से इन कीटाणुओं में तेजी आ जाती है। यह रोग आतशक पीड़ित वेश्या के संसर्ग से उत्पन्न होता है। मुख व ओठों की श्लेष्म-धरा कला द्वारा भी रोग फैलता है। चुम्बन, उच्छिष्ट पात्र, हुक्के और सिगरेट द्वारा भी रोग संक्रमण होता है। बच्चों को खेलाते समय प्रत्येक व्यक्ति का बच्चे को चूमना, इस प्रकार के खतरे से खाली नहीं है। यदि माता-पिता को यह रोग हो तो उनके संयोग से उत्पन्न होने वाले बच्चों में भी रोग संक्रमण हो जाता है, जिसे पैतृक संक्रमण कहा जाता है। कुछ लोग इस रोग का आक्रमण होते ही बिना रोग वाली स्त्री के साथ इस खयाल से सहवास करते हैं कि रोग से मुक्ति मिल जायेगी, परन्तु परिणाम सर्वथा ही विपरीत होता है। विषय-भोग करने से गर्मी के घाव फट कर अत्यन्त भीषण यन्त्रणा देते हैं। यह एक ऐसी व्याधि है जिसे मूर्ख लोग किञ्चिन्मात्र आनन्द के लिए बाजार से खरीदते हैं। परन्तु कुछ निर्दोष व्यक्ति भी संसर्ग से रोगाक्रान्त हो जाते हैं।

संक्रमणकाल—आतशक रोगग्रसित वेश्याओं के साथ रमण करने से पुरुष की उपस्थेन्द्रिय के उपचर्म की त्वचा फट कर उसमें स्त्री के जननेन्द्रिय के भीतर की कोमल त्वचा से इसका विष प्रवेश करता है। कभी-कभी त्वचा के न फटने पर भी उपस्थेन्द्रिय में इस विष के लगने और सूक्ष्म सिराओं द्वारा शोषित होने पर यह रोग उत्पन्न हो सकता है। तीन दिन से लगाकर १४ दिन में यह रोग फूटता है। कभी कभी इससे भी देर से आक्रमण होता है। जब कीटाणु अपना क्षेत्र तैयार कर लेते हैं, तब उपस्थेन्द्रिय के अग्रभाग (मुण्डाग्र) पर एक फुन्सी उठती है। धीरे-धीरे यह फुन्सी बढ़कर फोड़े के रूप में हो जाती है और फूटकर घाव का रूप धारण कर लेती है। इस घाव के किनारे और आसपास की चमड़ी कठोर हो जाती है जिसे अंग्रेजी में 'हार्डशेंकर' (Hard chancre) अर्थात् 'कर्कश व्रण' कहते हैं। 'सॉफ्ट शेंकर' (Soft chancre) अर्थात् 'कोमल व्रण' भी होता है। कर्कश व्रण पुरुषों के 'शिश्न-मुण्ड' और स्त्रियों के 'योनि-मुख' के पास ही होता है। इस व्रण में किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती और पूय (पीब) आदि भी नहीं निकलती, केवल पानी-सा चेप बहता है। दस दिनों के बाद आसपास की गिल्टियाँ सूजने लगती हैं, परन्तु वे न तो पकती हैं और न दर्द करती हैं। इस प्रकार की गिल्टियाँ शरीर के अन्य हिस्सों में भी निकल आती हैं। इस समय तक गर्मी रोग का विष समस्त शरीर पर प्रभुत्व स्थापित कर लेता है।

माध्यमिक अवस्था—प्रारम्भिक फुन्सी उत्पन्न होने के लगभग चार मास पश्चात् इस रोग का माध्यमिक काल प्रारम्भ होता है। इस रोग में ज्वर भी होता है। त्वचा पर लाल दाने और चकत्ते होने प्रारम्भ हो जाते हैं। शरीर में खुजली होती है। भूख कम लगती है। मुख और जिह्वा में घाव हो जाते हैं, नेत्रों और सन्धि स्थानों में पीड़ा होती है। सिर में गंज होकर बाल गिरने लगते हैं। गलित कुष्ठ हो जाता है। स्नायुशूल, क्षय और हृदय रोग भी हो जाते हैं। गले के अन्दर शोथ हो जाता है और व्रण बन जाते हैं।

जीर्णावस्था—माध्यमिक अवस्था में उचित औषधि न करने से यह रोग अत्यन्त भीषण रूप में प्रकट हो जाता है। सारा शरीर गर्मी से सड़ जाता है। तालू सड़ कर फट जाता है। नासिका के छिद्र रुक जाते हैं। जिह्वा पक जाती है। अण्डकोष सूज जाते हैं। उपस्थेन्द्रिय सड़ जाता है। मृगी का दौरा भी हो जाता है। अस्थि आवरणों, मस्तिष्कावरणों, प्लीहा, यकृत, अण्डकोष में एक प्रकार की ग्रन्थियाँ उत्पन्न होने लगती हैं, जो 'गमा' (Gumma) कहलाती हैं। यह ग्रन्थियाँ गाँठदार और चपटी होती है। गमा के ऊपर की खाल धीरे-धीरे घिसती रहती है और अन्त में यह सड़कर फूट जाती है। इनमें भूरे रंग का गाढ़ा पीव जमा रहता है। जब यह सख्त जमा पीब का भाग अलग हो जाता है, तो उस स्थान पर गहरा घाव हो जाता है। यह गमा तालू में होने पर वहाँ छेद कर देता है जिसे तालू फूटना कहते हैं। मस्तिष्क और सुषुम्ना में गमा होने से लकवा, पक्षाघात, उन्माद, मिर्गी (अपस्मार) हो जाते हैं।

भेद—फिरंग तीन प्रकार का होता है—वाह्य, आभ्यन्तर और वाह्याभ्यन्तर।

वाह्य का फिरंग फोड़े के समान होता है। उसमें फोड़े के समान ही वेदना होती है। यह औषधि साध्य है।

आभ्यन्तर रोग शरीर में अन्दर रहता है। रोग-कीटाणु रक्त में पहुँच कर उसे दूषित करते हैं। शरीर में चकत्ते, व्रण हो जाते हैं।

वाह्याभ्यन्तर अर्थात् बाहर और भीतर जो रोग होता है, उसमें शरीर बुरी तरह सड़ जाता है। सिर के बाल गिरने लगते हैं। अपस्मार-उन्माद होता है। यह दुःसाध्य है।

आतशक के अन्य उपद्रव

बद—आतशक के रोगी को ठीक उसी प्रकार बद होती है, जैसे पूयमेह के रोगी को। पूयमेह की बद प्रायः पकती नहीं है, पर आतशक की बद अवश्य पकती है।

गठिया—शरीर के सन्धि स्थानों में फिरंग का विष पहुँच कर वहाँ वेदना उत्पन्न करता है। उसे गठिया कहते हैं। घुटनों में और रीढ़ में विशेषतया वेदना होती है।

उपचार—उपदंश (आतशक) के मैथुनजन्य रोग होने के कारण प्रायः रोगाक्रान्त व्यक्ति लज्जा का अनुभव करके भिषकों के पास जाकर उपचार नहीं कराते हैं। किसी अच्छे दक्ष भिषक् से उपचार कराना चाहिए अन्यथा इस रोग का परिणाम बड़ा भयंकर होता है। औषधि लेने के पूर्व रेड़ी का तेल दुग्ध में मिलाकर पीने से उदर साफ हो जाता है। खाने और लगाने दोनों औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। रोगी को पथ्य का ध्यान रखना चाहिए। गेहूँ की रोटी या दलिया बिना लवण का और भुने हुए चने ही उत्तम पथ्य हैं। औषधि सेवन के पश्चात् शुद्ध गन्धक का सेवन करना अनिवार्य है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

(क) गेहूँ के आटे की कुप्पी बना उसमें रस कर्पूर ४ रत्ती बन्द कर आटे पर लवँग चूर्ण लगा जल के साथ निगलने को देना चाहिए। दाँत से स्पर्श नहीं होने देना चाहिए और ऊपर से पान खिलाना चाहिए। पान में तम्बाकू न हो। इसके सेवन के समय शाक, अम्ल, नमकीन पदार्थ, धूप, परिश्रम, स्त्री-प्रसंग सर्वथा ही त्याज्य है।

(ख) चिकनी सुपारी को घिस कर घावों पर लगाने से लाभ होगा।

(ग) खुरासानी अजवाइन, देशी अजवाइन, अजमोद प्रत्येक तीन-तीन माशा, सफेद मिर्च २१ संख्या, लौंग टोपीदार २१ दाना, शुद्ध रस कर्पूर ६ माशा और मुर्दाशंख ३ रत्ती, इन सब को एक सप्ताह तक अदरक के रस में खरल करके छोटे बेर के बराबर गोलियाँ बना लें। नित्य एक गोली पानी के साथ निगला देनी चाहिए। दो सप्ताह तक सेवन करे, स्नान करना वर्जित है। हवा में न रहे। चने की तरी के साथ केवल गेहूँ की रोटी खावे और कुछ न खावे। जीर्ण आतशक भी जाता रहेगा।

(शेषांश ७१४ पृष्ठ पर)

आयुर्वेदीय द्रव्यों का होम्योकरण

कविराज डा० गौरीशंकर श्रीवास्तव

होम्योपैथी (सदृश्य विज्ञान) पाश्चात्य जगत में भले ही एक स्वतंत्र विज्ञान माना जाता हो, किन्तु भारतीय दृष्टि से उसे आयुर्वेद के एक अङ्ग मात्र के रूप में प्रतिष्ठापित करना पड़ेगा। आयुर्वेद में स्पष्ट रूप से दो चिकित्सा विधियों का वर्णन है :—(१) विपरीत और (२) सदृश्य। माधवाचार्य ने पंच निदान के अन्तर्गत उपशय शीर्षक में लिखा है—

"हेतुर्व्याधि विपर्यस्त विपर्यस्तार्थ कारणाम्
औषधान्न विहाराणामुपयोग सुखावहम्।"

विपरीत विधि में—(अ) हेतु विपरीत (ब) व्याधि विपरीत और (स) हेतु-व्याधि उभय विपरीत। इसी प्रकार सदृश्य विधि में—(क) हेतु सदृश्य (ख) व्याधि सदृश्य और (ग) हेतु-व्याधि उभय सदृश्य।

पित्तजन्य व्रण में पुल्टिश बाँधना, छर्दि रोग में मेनफल आदि वमनकारी पदार्थों का प्रयोग और विषजन्य रोगों में विष के द्वारा चिकित्सा करना इसी सदृश्य विधि के दैनिक उदाहरण है जो आयुर्वेदिक चिकित्सक नित्यशः व्यवहृत करते हैं।

स्पष्ट है कि सदृश्य विधान का सिद्धान्त आयुर्वेद का प्राचीन सिद्धान्त है। किन्तु महात्मा हेनीमन ने उसका विकास करके जो स्वतंत्र चिकित्सा विधान के रूप में उसे प्रतिष्ठित किया है इसका श्रेय उन्हें देना ही होगा। आज होम्योपैथी एक स्वतंत्र चिकित्सा प्रणाली है और हमें भी उसे इसी रूप में स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु इतना निर्विवाद मानना पड़ेगा कि होम्योपैथी को जितनी बारीकी से एक आयुर्वेदिक चिकित्सक समझ सकने में समर्थ होगा उतना स्वयं आयुर्वेद से अनभिज्ञ होम्योपैथ नहीं।

कुछ भी हो, हमारा विषय इस विवाद के झमेले में पड़ने का नहीं है। प्रस्तुत लेख में हम किसी अन्य सत्य की ओर ही पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

होम्योपैथिक मेटेरिया मेडिका (निघण्टु) में प्रारम्भ में वही भेषज द्रव्य प्रयुक्त होते रहे हैं जो एलोपैथी में उपलब्ध थे। किन्तु इधर कुछ दिनों से भारतीय होम्योपैथों का ध्यान आयुर्वेदीय द्रव्यों की ओर आकर्षित हुआ है और वे उन द्रव्यों का होम्योकरण करके चिकित्सा क्षेत्र में यश-लाभ कर रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि आयुर्वेदिक चिकित्सक-गण भी इन भेषजों से अवगत होकर उनकी परीक्षा करें और लाभ उठाएँ।

विल्व पत्र (Eagle Folia)

(१) प्रवल नया बुखार अथवा सन्निपातिक ज्वर में मस्तिष्क में रक्त संचय के लक्षण पैदा हो जाना।

(२) शोथ की विशेष (Specific) औषधि है। नए अविराम ज्वर (Continous fever) में, जिसमें शोथ भी हो, बहुत लाभप्रद है।

(३) बेरीबेरी रोग में, जिसमें आँख-मुंह-हाथ-पाँव तथा समूचे शरीर में शोथ हो जाता है—लाभप्रद है। इसकी नाड़ी मोटी और सरल होती है तथा पेशाब की मात्रा घट जाती है।

(४) इन्फ्लुएंजा या बलगमी बुखार में या अविराम ज्वर में जिसमें चेहरा और पलकें फूल जाती है।

(५) धातु दौर्बल्य और ध्वजभंग; स्त्री सहवास की शक्ति का लोप।

(६) यह शोरा दोषनाशक और धातुशोधक औषधि मानी जाती है।

क्रम— Q. अतिसार के साथ शोथ में।
३०x कब्जियत के साथ शोथ में।
२००x धातु दौर्बल्य में।

बेल का गुदा (Eagle Marmelus)

(१) अतिसार और रक्तामाशय में।

क्रम—मूल अरिष्ट (Q)

अर्जुन (Terminalia Arjun)

(१) हृत्पिण्ड की सब तरह की बीमारियां—कलेजा धड़कना, हृत्पिण्ड का दर्द (एञ्जिआइना पेक्टोरिस)

(२) गिर पड़ने की वजह से बदन में दर्द। हड्डी टूटने या खिसक जाने पर। चोट लग जाने से चमड़े के ऊपर काला दाग पड़ जाना।

अभी तक इसका पूरा पूरा प्रूविंग होम्योमत से नहीं हो सका है। आयुर्वेदिक मत से इसे—नाना प्रकार के रक्त-स्राव, रक्तातिसार, ग्रहणी, मूत्राघात प्रदर आदि रोगों में व्यवहार में लाया जा सकता है।

क्रम— ३x या ३०x

अशोक (Jenosia Asoka)

(१) रक्त प्रदर या बहुत अधिक रक्त स्राव।
(२) जरायु में ताकत लाना।
(३) श्वेत प्रदर में।

क्रम— १x ३x, ३०x, २००x

ऋतु सम्बन्धी रक्त विकारों में उच्च शक्ति का प्रयोग करना चाहिए।

नीम (Azadiracta Indica)

(१) क्विनाइन के अपव्यवहार के बाद के ज्वर।
(२) सविराम ज्वर या पुराना जीर्ण ज्वर।
(३) पित्त की अधिकता से होने वाला सिर दर्द।
(४) नाना प्रकार के चर्म रोग।
(५) जननेन्द्रिय की जीर्णता।

क्रम—६x, ३०x, २००x

कुकरोंदा (Blumia Odorata)

(१) एक तरह की खाँसी जिसमें कुत्ते की आवाज की तरह स्वर निकलना है।

(२) खूनी बवासीर का खून रोकना।

(३) रक्ततिसार और रक्तामाशय में बहुत अधिक खून जाने पर।

(४) स्त्रियों का रक्त प्रदर; बहुत ज्यादा रक्त स्राव; बहुत ज्यादा रजःस्राव; गर्भस्राव आदि पर व्यवहृत होता है।

क्रम—Q, १x, ३x, ३०x.

पुनर्नवा (Boerhavia Diffuza)

होम्योपैथी में यह दवा सर दर्द—खासकर अधकपारी में तथा वात के दर्द और उनके उपसर्गों में व्यवहृत होती है।

(२) शोथ और बेरी-बेरी में भी इसका उपयोग किया जाता है।

क्रम—मूल अरिष्ट Q या १x।

इसका विशेष प्रूविंग अभी नहीं हो सका है। आयुर्वेदिक मत से पुनर्नवा शोथ, वायु, कफ. पाण्डुरोग, व्रण और उदर रोग का नाश करता है। मूत्रकृच्छ्र के लिये भी आयुर्वेद में यह सफलता के साथ प्रयुक्त होता है। चिकित्सक इसे अनुभव करें।

चिरायता (Gentiana Chirata)

१. नए और पुराने ज्वर की उत्कृष्ट दवा। सबेरे या दोपहर से जाड़ा लगकर आनेवाला बुखार। धीमा-धीमा तीसरे पहर में आ जाने वाला ज्वर।

इसके ज्वर में आँखों में भयंकर जलन। कनपटी और माथे में धीमा-धीमा दर्द। पैरों में कमजोरी। अंगुलियों में झुनझुनी।

क्रम—निम्नक्रम १x।

मदार (Calotropis Gigantia)

ज्वर—हेक्टिक ज्वर, पीव का बुखार, पित्तज्वर, अतिसार के साथ ज्वर, गण्डमाला या उपदंश के ज्वर, बच्चों के दाँत निकलने के समय आने वाला ज्वर आदि, शीत प्रधान ज्वर, शरीर ठंडा माथा गरम।

मूत्र स्थली के रोग—खून का पेशाब और तलपेट में दर्द। बार-बार पेशाब की इच्छा होना।

छाती का दर्द—मानो कोई छुरी मार रहा है; पीव मिला बलगम निकलता है। कलेजे में दबाव। सुस्ती।

चर्मरोग—सड़ने वाला जख्म और ग्रेंग्रीन में यह सफलता से व्यवहृत होता है। कुष्ट की जलन में विशेष लाभदायक। इसी प्रकार उपदंश के जख्मों में भी इससे बहुत उपकार होता है।

कुष्ट में पैदा हुए नाना प्रकार के जख्म और लाल रंग का दाग पड़ने वाला हार्पिस रोग इसके द्वारा ठीक हो जाते हैं।

उपदंश जन्य विकार—उपदंश जन्य गुटिका में यह लाभप्रद है।

कृमि—फीता कृमि (Tape worm) की यह एक उत्कृष्ट दवा है।

उदर रोग—पेट और आँत में तेज जलन। हैजा में जब रोगी की आँखें लाल हों, पेट में असह्य जलन, मूर्छा और सुस्ती।

शालपर्णी (Desmodium Gangetium)

१. सन्निपातिक ज्वर और सेरिब्रो स्पाइनल मेनिन्जाइटिस रोग जिसमें समूचे शरीर में दर्द होता है। हमेशा नींद का भाव और सर दर्द।

२. बच्चों के अविराम या स्वल्पविराम रोग में जहाँ बालक को झपकी (तंद्रा) आती हो और सर दर्द रहता हो वहाँ उपकारी है।

३. वातश्लेष्म ज्वर, रेमीटेन्ट फीवर या सान्निपातिक ज्वर में जिनमें बदन में और रीढ़ की हड्डी में दर्द होना है सर दर्द और तन्द्रा आती है।

४. सविराम और मलेरिया ज्वर में जो सुबह जाड़ा देकर आता है और एक दो घण्टे बाद उतर जाता है।

क्रम--१x, ३x, ३०x।

बायविडंग (Embelia Ribes)

१. बच्चों के कृमिरोग में, कृमि से उत्पन्न अतिसार में यह व्यवहृत होता है।

२. अजीर्ण और पेट फूलना।

क्रम--१x, ३x और ३०x ।

पीपल (Ficus Religiosa)

१. शरीर के किसी भी अंग से रक्त स्राव होने पर इस दवा का स्मरण करना चाहिए। नाक से खून गिरना, रक्तार्श, खांसी में खून, खून मिला पेशाब, खून की कै, स्त्रियों को चमकीला खूनी स्राव।

२. स्त्रियों को अति ऋतुस्राव।

३. रक्त प्रदर या जरायु से रक्त स्राव।

४. खूनी बवासीर जिसमें चमकीले लाल रंग का खून गिरता हो।

बड़ (Ficus Indica)

१. किसी भी कारण मुँह या गले से खून निकलना।

२. अधोगामी रक्तपित्त जिसमें पाखाने के पहिले रक्तस्राव होता हो।

३. स्त्रियों का रक्त प्रदर।

४. पुराना और नया आमाशय।

५. पेशाब में जलन और रक्तस्राव।

६. सुजाक की बीमारी।

७. शुक्रक्षय के कारण धातु दौर्बल्य।

क्रम--निम्न या १x

ब्राह्मी (Hydrocotyle Asiatica)

१. चमड़े पर विशेष क्रिया होती है! खुजली और कुष्ट रोग में लाभ होता है।

२. मुहासे (Acne) की यह उत्कृष्ट दवा है।

३. श्लीपद रोग में भी यह व्यवहृत होता है।

४. मूत्र और स्त्री रोगों में काम आता है। मूत्रस्थली की उत्तेजना, जननेन्द्रिय की खुजली और जलन।

क्रम-- १x, ३x और ३०x

कूटच (कूड़ा)

(Holarrhena Antidysenterica)

जीर्ण आमाशय और रक्तामाशय में विशेष सफलता के साथ व्यवहृत होती है।

क्रम--निम्न १x से ६x तक।

देवदारु (विदाली) (Luffa Bindal)

१. पित्त शूल ((Gall stone) और यकृत के नाना प्रकार के रोगों में।

२. बढ़ी हुई प्लीहा, यकृत और शोथ युक्त पुराना मलेरिया।

३. अर्श में भी इसका व्यवहार होता है। मसों पर इसका लेप भी लगाया जाता है।

४. सर्दी—जो साधारण ढंग से होती है लेकिन सहज ही नहीं जाती।

क्रम—१x से ६x तक

द्रोणपुष्पी (Leucus Aspera)

१. जीर्णज्वर—बहुत दिनों से भोगने वाला।

२. दमा और हँफनी।

३. रक्तामाशय।

४. शरीर की खुजली।

५. प्लीहायुक्त पुराना मलेरिया।

६. सर्दी-खांसी में।

६. साँप का विष दूर करने की इसमें सफल शक्ति है।

क्रम—१x से ६x तक।

रक्तकण्डाली (Menespernum)

१. स्त्रियों के ऋतु के समय या जरायु से जब बहुत अधिक रक्त स्राव हो।

२. श्वेत प्रदर के कारण स्त्री बहुत कमजोर हो गई हो।

क्रम---१x से ६x तक

तुलसी (Ocimus Sanctum)

स्त्रीरोग--(१) प्रसव के बाद के परिस्राव, स्राव बहुत बदबूदार बहुत दिनों तक रहने वाला। पीव या मछली के धोवन की तरह स्राव होता है।

(२) अनियमित ऋतुस्राव, बहुत दिनों तक स्राव होते रहना।

(३) श्वेत प्रदर।

ज्वर--(१) न्यूमोनिया, ब्रांकाइटिस, छाती का दर्द, रोगी स्थिर होकर नहीं सोता।

(२) तीसरे पहर से जाड़ा देकर आने वाला ज्वर।

(३) सन्निपातिक ज्वर जिसमें कभी दाह, कभी कम्प, कभी पसीना, कभी प्रलाप, कभी तन्द्रा आदि भाव रहें।

(४) ज्वर और सर्दी के साथ पेट की गड़बड़ी।

(५) इन्फ्लुएंज़ा और साधारण सर्दी-खाँसी।

प्लीहा और यकृत--प्लीहा और यकृत का दर्द।

बालकों के रोग--(१) बच्चों के अविराम ज्वर, दाँत निकलने के समय के बुखार अतिसार और कृमि उपद्रव।

(२) बच्चे का हमेशा रोते रहना, मिजाज में चिड़-चिड़ापन, बिछावन पर नहीं रहना चाहता।

(२) बच्चों को अनजान में पाखाना होना, पेशाब करते समय नली में जलन। बारबार पेशाब करने की इच्छा।

उदरामय

(१) अधिक परिमाण में पानी सा पतला दस्त, पेट में फूलन जो पाखाना जाने पर घट जाती है पर मिटती नहीं।

(२) बरसात और शरद में होनेवाला अतिसार।

(३) रक्त संचय की वजह से पाकस्थली में गड़बड़ी।

(४) पतला बदबूदार दस्त गंध लिए हरा या पीला।

(५) पेट फूलना, डकारें आना, पेट का भारीपन।

सर दर्द

(१) सर दर्द, बाँधने पर अच्छा नहीं होना, माथे के ऊपरी भाग में गरमी, ठंडे पानी और हवा में आराम।

आँख के रोग

(१) आँख उठना, आँखों का लाल होना और उनसे पानी निकलना।

(२) आँख में खून का इकट्ठा होना।

(३) आँख में दर्द, रोशनी सहन नहीं होती।

(४) असंलग्न दृष्टि—टकटकी लगाए देखते रहना।

कान का रोग

(१) कान में टपका का दर्द।

(२) कान से पानी या पीव बहना।

(३) कान से कम सुनना।

नाक के रोग

(१) बारबार छींक के साथ नई सर्दी।

(२) नाक में जखम।

(३) नाक से खून गिरना और बदबूदार पीव।

मुख रोग

(१) मुँह में छाले।

(२) मुँह का स्वाद तीता या सड़ा।

(३) मसूड़ों के जखम।

(४) गले में दर्द—घूंट लेने में तकलीफ।

विशेष लक्षण

ओसिमस का विशेष लक्षण भूल (भ्रांति) होना है। सभी कामों में भूल होती है यहाँ तक कि बातों में भी भूल होती है।

क्रम--१x; ३x; ६x; ३०x और २००x.

पित्तपापड़ा (Oldenlandia Herbacia)

(१) नए और पुराने दोनों प्रकार के ज्वरों में व्यवहार में आता है। यह दवा पित्त ज्वर में अधिक लाभप्रद है (होम्यो मत से भी)।

(२) ज्वर एक दिन ज्यादा, दूसरे दिन कम।

(३) जाड़ा लगकर बुखार, सिर में दर्द, प्यास।

(४) पित्त के कै और पित्त के दस्त।

जामुन (Syzygium fambolanum)

(१) बहुमूत्र रोग की यह एक उत्कृष्ट दवा है।

(२) अम्ल प्रधान धातु विशिष्ट रोगियों के लिए यह अधिक लाभप्रद है।

भटकटैया (Salanum Xanthocarpum)

इसकी प्रधान क्रिया कण्ठ रोगों पर होती है।

(१) बच्चों का न्यूमोनिया ब्राँकाइटिस जिसमें गला घर्रघर्र करता हो।

(२) सूखा रोग के बाद की सूखी खाँसी।

(३) बच्चों का स्वर भंग।

(४) किसी भी कारण से साधारण स्वर भंग।

(५) नए बुखार में जिसमें खाँसी और पसलियों का दर्द हो, प्यास, वमन, अरुचि और जलन हो।

(६) मूत्रकृच्छ्र में भी यह प्रयुक्त होती है।

क्रम--Q या १x ; ३x ; ६x.

गुड़ुच (Tinospora Cordifolia)

(१) जीर्णज्वर में जिसमें शुक्रक्षय और प्रमेह भी साथ हो।

(२) कुनायन के अपव्यवहार से पैदा हुए रोग जिसमें प्लीहा बढ़ जाती है और आँखें पीली हो जाती है।

(३) नाना प्रकार के वमन।

क्रम--३०x।

लटजीरा (Achyvanthes Aspera)

(१) अत्यधिक परिमाणमें होने वाला अतिसार।

(२) वमन।

(३) सारे शरीर में जलन।

(४) फोड़ा, कार्बङ्कल और दूषित घावों में सफलता से व्यवहृत होता है। आक्रान्त अंग में जलन अवश्य होना चाहिए।

(५) किडनी की गड़बड़ी के कारण उदरी और सारे शरीर में शोथ।

(६) गर्भस्रावक, शीघ्र प्रसव कारक।

क्रम--Q, १x, ३x, ६x

कूट (Saussurea Lappa)

(१) दमा विशेषकर बायुनली का दमा।

(२) दुर्दम्य हिचकी।

क्रम--Q या १x

चान्दर (Rauwolfia Serpentina)

(१) विषनाशक-साँप बिच्छू आदि के काटने पर।

(२) अनिद्रानाशक।

(३) उच्च रक्तचाप जिसमें अनिद्रा और स्नायु विधान की उग्रता रहती हो।

(४) प्रचण्ड उन्माद।

क्रम--Q या १x

चालमोंगरा (Gynocordia Odorata)

(१) अकौता, दाद और खसरा।

(२) कुष्ट रोग--श्वेत और गलित।

(३) गठिया वात।

क्रम--Q या १x, ३x

पत्थरचूर (Colieus Aromaticus)

(१) मूत्र सम्बन्धी प्रायः सभी रोगों की उत्कृष्ट दवा है। मूत्रघात, मूत्रनाश, मूत्रकृच्छ्र, मूत्र पथरी, रक्तमूत्र।

क्रम--Q या १x ।

बाकूची (Vernonia Anthelmintica)

(१) श्वेत रोग।

(२) विर्चचिका या सोरायसिस।

(३) अन्यान्य चर्म रोग।

(४) कृमिनाशक (Thread &r ound worm)।

(५) बच्चों का रात में विस्तर पर पेशाव करना।

(६) बच्चों का सोते में दाँत किटकिटाना।

क्रम--Q, १x, ३x

हर्र (Terminalia chebula)

(१) पुराना उदरामय।

(२) रक्तामाशय।

(३) अर्श।

(४) चर्मरोग।

क्रम--१ से ३० शक्ति तक।

उक्त प्रकरण से स्पष्ट है कि आयुर्वेदिक द्रव्यों के भेषज गुण होम्योकरण करने पर भी अधिकांश वैसे ही रहते हैं और होम्योपैथी में भी वह प्रायः उन्हीं रोगों के लिए व्यवहृत होते हैं जैसे कि आयुर्वेद में।

नेत्रहीनों की समस्या

(संकलित)

अनुमानतः पूरे भारत में नेत्रहीनों (अन्धों) की संख्या २१ लाख से कुछ अधिक ही होगी ; किन्तु अन्धों के लिए देश भर में ऐसी केवल ६० संस्थाएँ ही हैं, जहाँ सिर्फ १८०० बच्चों और प्रौढ़ों के प्रशिक्षण की सुविधाएँ प्राप्त हैं। परिणामस्वरूप देश के हजारों अन्धे व्यक्ति, प्रशिक्षण सम्बन्धी सुविधाओं के अभाव में विपदग्रस्त रहते हैं और कष्ट की जिन्दगी बिताते हैं। यह तो जाहिर है कि बहुतों का अन्धापन दूर किया जा सकता है, क्योंकि अन्धेपन का मुख्य कारण बचपन से ही बच्चे की आँखों की सफाई आदि की घोर उपेक्षा के साथ-साथ सन्तुलित भोजन का अभाव है। समय-समय पर स्कूल के बच्चों की मेडिकल परीक्षा करने और नियमित रूप से दूध दिए जाने के फलस्वरूप इस दिशा में कुछ सुधार अवश्य हुए और इससे इस विश्वास को पर्याप्त बल मिलता है कि भविष्य में इससे हजारों बच्चे अन्धे होने से बचाए जा सकते हैं, बशर्ते कि लगभग सभी बच्चों को ये दोनों सुविधाएँ प्राप्य हो सकें। इस सम्बन्ध में अन्धता (Blindness) के अमेरिकी विशेषज्ञ डा० उल्मर (Dr. Ulmer) के उन पत्रों का उल्लेख समीचीन होगा, जो उन्होंने आल इण्डिया आफ्थेलमोलोजीकल सोसायटी (All India ophthalmological Society) को भेजा था। उन पत्रों में डा० उल्मर ने अन्धेपन (Blindness) को रोकने की दृष्टि से नेत्र-रोग-विज्ञान में अनुसन्धान करने का अनुरोध करते हुए अन्धेपन के कारणों की छान-बीन करने का आग्रह किया था। इस वर्ष बंगलोर में नेत्र-रोग-विज्ञानवेत्ताओं का जो सम्मेलन हुआ, उसमें डा० उल्मर के सुझावों पर भी विचार-विमर्श हुआ था—उक्त सोसायटी को चाहिए कि अन्धेपन की समस्या को अपने हाथ में ले। साथ ही साथ राष्ट्रीय-प्रसार खण्डों और सामुदायिक कल्याण योजनाओं में संलग्न सामाजिक स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यकर्त्ताओं का भी इस क्षेत्र में उपयोग किया जाना समीचीन होगा।

अन्धेपन को रोकने की दिशा में सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की सेवाएँ भी बड़ी कारगर साबित हो सकती हैं—यदि सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की टोली घर-घर जाकर अशिक्षित ग्रामीण महिलाओं को, जिन कारणों से अन्धापन होता है, उनकी जानकारी उन्हें करावें—जैसे समुचित पोषण का अभाव, पढ़ने-लिखने के समय शरीर की ठीक स्थिति न होना (Effects of wrong posture), समुचित प्रकाश की कमी, शिशु-जन्म के समय नीम-हकीमों द्वारा की जानेवाली गलत चिकित्सा और हानिप्रद औषधियों का प्रयोग।

ऊपर जिन कारणों का उल्लेख किया गया है, वे कारण बहुत हद तक प्रयत्न करने पर दूर किये जा सकते हैं और अन्धापन मिटाया जा सकता है। अतएव, अन्धता के कारणों का किस प्रकार निवारण किया जा सकता है, इसका अधिकाधिक प्रसार-प्रचार जहाँ एक ओर वांछनीय है, वहाँ दूसरी ओर सर्वसाधारण जनता का जीवन-स्तर ऊँचा करना भी आवश्यक है। साथ ही साथ स्वास्थ्य- सम्बन्धी सेवाओं का अधिकाधिक प्रसार होना चाहिए।

भारत में अन्धों के पुनर्वास की समस्या का हल जितना इस समय आवश्यक है, उतना पहले कभी नहीं था। भारत सरकार भी इस समस्या के प्रति बड़ी सजग है, और पंचवर्षीय योजना में अन्धों के लिए एक राष्ट्रीय केन्द्र (National centre) की स्थापना करने की गुंजायश निकाली गयी है। इस केन्द्रीय संस्था से सम्बद्ध अन्यान्य सहायक संस्थाएँ तथा एक ब्रेल प्रेस (उभरे हुए अक्षरों की छपाई जो अन्धों के लिए होती है, इसमें ६-६ बिन्दुओं के ६३ संकेत होते हैं) भी होगी। अन्धों को विभिन्न पेशों अथवा धन्धों में लगाने के लिए एक राष्ट्रीय संगठन होगा। नेत्रहीनों की निराशा और आक्रोश—इन बुराइयों से अवश्य रक्षा करनी होगी—साथ ही उनके अन्दर विश्वास और सुरक्षा की भावना उत्पन्न करनी होगी। "अमेरिकन फाउण्डेशन फॉर द ओवरसीज ब्लाइण्ड" (American foundation for the oveseas rlind) के क्षेत्र निर्देशक श्री एरिक बाउल्टर (Eric Boulter) ने पूर्वीय देशों के

भ्रमण के सिलसिले में जून के प्रारम्भ में मद्रास आने पर पून्नामल्ली और टेनामपेट नामक स्कूलों का निरीक्षण किया था, जहाँ नेत्रहीनों के लिए बड़ी सरलता से कार्य हो रहा है। अम्बात्तुर स्थित टी० आई० सायकिल फैक्टरी का भी उन्होंने निरीक्षण किया था, जहाँ पर ६ अन्धे कार्य कर रहे हैं और अच्छी तरह अपनी आजीविका का उपार्जन कर रहे हैं। श्री बाउल्टर इससे बड़े प्रभावित हुए थे, किन्तु उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि अन्धों की बड़ी संख्या इससे लाभान्वित नहीं हो पा रही है—न उनकी जरूरतें ही पूरी हो पा रही हैं; और नेत्रहीनों की भारी संख्या दर्दनाक गरीबी में अपने दिन गुजार रही है। श्री बाउल्टर ने बताया था कि अन्धों के पुनर्वास का जहाँ तक प्रश्न है, अमेरिकी संस्थान (American foundation) इस दिशा में कार्य करनेवाली विभिन्न संस्थाओं को सहायता देने के लिए इच्छुक है। न केवल अन्धों के ही, प्रत्युत शारीरिक दृष्टि से अन्य अपंगों के पुनर्वास के लिए भी भारत में यह जरूरी है कि सरकार यहाँ के उद्योगपतियों की भी सहायता ले। उद्योगों के विकास के साथ-साथ नेत्रहीनों में जो प्रशिक्षित हैं, उनको अधिकाधिक कार्य में लगाया जा सकेगा। प्रशिक्षण के लिए जो संस्थाएँ हैं, उनकी संख्या सर्वथा असन्तोषजनक है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कि अन्धों के लिए अभी सिर्फ ६० स्कूल ही हैं, इसलिए न केवल मद्रास राज्य में ही बल्कि भारत के अन्य भागों में भी कितने ही स्कूलों की जरूरत है। शारीरिक दृष्टि से अपंग लोगों के लिए भारत में जो अधिक लोकप्रिय और विकासशील शिक्षण-संस्थाएँ हैं, उनमें से अधिकांश ऐसी संस्थाएँ हैं, जिनका संचालन गैर-सरकारी सूत्रों खास कर धार्मिक संस्थाओं (जिनमें रुग्ण और अपंग प्राणियों की सेवा करने की भावना से प्रेरित होकर स्त्री-पुरुष अपना जीवनदान कर देते हैं) के द्वारा होता है। इन संस्थाओं की उपयोगिता को बढ़ाने तथा स्थिर रखने के लिए अधिकाधिक राजकीय सहायता की आवश्यकता है। ऐसी संस्थाओं के पोषण-संवर्द्धन के लिए मद्रास राज्य में प्राप्त राजकीय अनुदान की तिगुनी रकम मिशनरियाँ व्यय करती हैं। भारत तथा भारत के बाहरी देशों में मिशनरियाँ, इस व्यय-भार का वहन सार्वजनिक चन्दे और जनता से दान में प्राप्त रुपए के बल पर करती हैं।

राजकीय संस्थाओं को विकसित करना ही पर्याप्त नहीं है, हालाँकि यह भी परमावश्यक है। अन्धों को सुचारूरूपेण शिक्षा देने तथा अपंगों की समस्या के समाधान के लिए नए और उन्नत तरीके राज्य द्वारा अपनाए जाने चाहिए।

शेषांश] आतशक मीमांसा [७०७ पृष्ठ का

(घ) रसकर्पूर आधा तोला बहुत महीन चूर्ण करके एक छटाँक घी या दो औंस वेसलिन में मिला दें। यह आतशक के घाव के लिए सर्वोत्तम मलहम है।

यदि सहवास के पश्चात् इस मलहम को उपस्थेन्द्रिय पर भलीभाँति लगा दिया जावे तो आतशक होने का डर नहीं रहता है। आतशक के कीटाणु बड़े सख्त होते हैं, सहज में नहीं मरते हैं। इसलिए मलहम अच्छी तरह लगाना चाहिए।

(ङ) रीठे के छिलके को सुखा कर बारीक चूर्ण करके चने के बराबर गोलियाँ बना और दही में मिला कर खाने से कठिन आतशक भी दूर हो जाता है। नमक, लालमिर्च नहीं खाना चाहिए।

(च) रक्तचन्दन, काली मिर्च, असली केसर, लौंग तथा रसकर्पूर इन सबको समान भाग ले जल द्वारा खरल में घोंट एक-एक रत्ती की गोलियाँ बना उनमें से एक गोली प्रतिदिन मक्खन में लपेट कर प्रयोग करने से भीषण फिरंग रोग भी नाश हो जाता है। गोली को मक्खन में इस प्रकार से रखें कि चारों ओर से मक्खन ही मक्खन हो जिससे गोली दाँतों में न लगने पावे अन्यथा दाँत गिर जायेंगे।

रक्तपित्त

डा० रामगोपाल गुप्त, ए० बी०, एम० ए० एस० एम०

रक्तपित्त-विकार तीन प्रकार का होता है, (१) उद्‌र्ध्वगत, (२) अधोगत और (३) उद्‌र्ध्वाधोगत। उद्‌र्ध्वगत में मुख से रक्त निकलता है या नासिका, कर्ण, चक्षु आदि सात द्वारों में से, अधोगत में गुदा और मूत्रेन्द्रिय से रक्त निकलता है और उर्द्धाधोगत में ऊपर और नीचे के दोनों ही मार्गों से रक्तपात होता है।

रक्तपित्त अन्य रक्तस्रावों से भिन्न है। उद्‌र्ध्वगत रक्तपित्त उरःक्षत, रक्त निष्ठिवन और कर्ण, मुख, मसूढ़ों आदि में क्षत होने से या, इन स्थानों में से किसी स्थान की धमनी या शिरा फटने से भी रक्त निकल सकता है। रक्तपित्त में रक्त का मिश्रण होता है, जब कि अन्य प्रकार के रक्तपात या रक्तास्राव में पित्त का मिश्रण नहीं होता। इसी प्रकार गुदा से रक्तपात अर्श, अन्त्र में क्षत इत्यादि होने से हो सकता है, परन्तु उसमें पित्त का मिश्रण न होने के कारण वह रक्त-पित्त नहीं माना जाता, मूत्रेन्द्रिय से रक्त-पित्त भी वृक्क कुप्पी प्रदाह, वृक्क क्षत, मूत्राशय में शिरा-धमनियों के भेद से या इन्द्रिय की कला के प्रस्फुटन आदि से तथा मूत्रमार्ग में पथरी के अवरोध के कारण हो सकता है, परन्तु इसमें पित्त का मिश्रण नहीं होता है, इसलिए इसे रक्तपित्त नहीं कह सकते।

रक्तपित्त के कारण—उष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल, कटु और लवण रस प्रधान द्रव्यों का सतत या अति सेवन, गरमी में बहुत समय तक काम करना, संताप और अन्न-विदाह आदि रक्तपित्त के कारण होते हैं।

संप्राप्ति—रक्त उष्ण है, पित्त भी उष्ण है। तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही-द्रव्य भी रक्तपित्त के समान गुण-धर्ममय होते हैं, इसलिए इस प्रकार के द्रव्यों के सेवन से रक्त तथा पित्त में दाह की वृद्धि होती है और रक्त तथा पित्त दोनों ही दूषित हो कर यकृत् और प्लीहा रक्त और पित्त प्रधान ग्रन्थियों में क्षोभ उत्पन्न करते हैं। यकृत और प्लीहा के कोष अतिरक्तपरिभ्रमण तथा पित्त के ऊष्मा से प्रस्फुटन हो जाते हैं तथा प्रकुपित रक्त और पित्त की सतत बेकारी क्रिया से इन अंगों के कोष में क्षोभ उत्पन्न होता है। फिर ये प्रकुपित रक्तपित्त रक्तवाही तथा पित्तवाही स्रोत में प्रकोप उत्पन्न करते अपने सम्पूर्ण मार्ग में ऊष्मा की वृद्धि कर देते हैं। परिणाम यह होता है कि शिराएँ, धमनियाँ और अन्य स्रोत रक्त मिश्रित पित्त के प्रकुपित परिभ्रमण को सहन न कर दोषों की गति के अनुसार अधो या उर्द्ध्व मार्ग से या दोनों ही मार्गों से रक्तवाही स्रोतों से पित्त मिश्रित रक्त निकलने लगता है।

रक्तपित्त के अधिष्ठान—उपर्युक्त सम्प्राप्ति के अनुसार यकृत-प्लीहा और रक्तवाही स्रोत रक्तपित्त के अधिष्ठान होते हैं।

रक्तपित्त के भेद—वातिक, पैत्तिक, कफज और सान्निपातिक ये रक्तपित्त के चार भेद हैं।

कफज रक्तपित्त के लक्षण—सान्द्र, सस्नेह पीताभयुक्त और पिच्छिल रक्तपात कफज रक्तपित्त कहा जाता है।

वातज रक्तपित्त के लक्षण—फेनयुक्त, श्यामवर्ण, पतला और रूक्ष पित्त का पड़ना वातज रक्तपित्त कहा जाता है।

पैत्तिक रक्तपित्त के लक्षणः—कषाय, आमयुक्त, कृष्णवर्ण, गोमूत्र के समान, सधूम पित्त मिश्रित रक्तपात पित्त के कारण माना जाता है।

सान्निपातिक रक्तपित्त के लक्षणः—तीनों दोषों के मिश्रित लक्षण वाला् रक्तपित्त सान्निपातिक रक्तपित्त कहा जाता है।

साध्यासाध्य विचार—एक दोषज रक्तपित्त साध्य, द्विदोषज याप्य और त्रिदोषज असाध्य होता है—इसी प्रकार उद्ध्वंगत साध्य, अधोगत याप्य और दोनों मार्ग से एक ही साथ होनेवाला रक्तपित्त असाध्य होता है। जिन रोगियों की अग्नि क्षीण होती है यदि उनको वेगपूर्वक रक्तपित्त का आक्रमण हो तो उसे भी असाध्य मानना चाहिए। इसी प्रकार अतिकृश, अतिव्याधित और अतिवृद्ध रोगियों में भी यह असाध्य ही माना जाता है। जब रक्तपित्त का प्रकोप सम्पूर्ण शरीरगत हो जाता है और वह शरीर के नवों मार्गों के अतिरिक्त सभी रोमकूपों से प्रवृत्त होने

लगता है तब उसकी गति अनावरुद्ध हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में तो यह विकार सर्वथा मारक ही सिद्ध होता है। उपद्रव युक्त रक्तपित्त जिसमें कफवात संसृष्ट हों तथा कण्ठ को अवरुद्ध कर देता हो—सम्पूर्णतः मारक सिद्ध होता है। इसी प्रकार क्षीणकाय पीड़ित रोगी में इसका वेग रोकना असम्भव हो जाता है।

द्विदोषज रक्तपित्त—जिसका प्रकोप मन्द हो तथा जो कभी उद्र्ध्वगत हो जाता हो और कभी अधोगत वह याप्य होता है।

अल्प वेगवाला तथा एक मार्ग से होनेवाला रक्तपित्त-विकार यदि उपद्रव रहित हो तो सहजसाध्य मानना चाहिए।

रक्तपित्त के उपसर्ग—दुर्बलता, श्वास, कास, ज्वर वमन, मद, अरुचि, पाण्डु, दाह, मूर्च्छा, मुक्तविदाह, अधृति, हृदय व्यथा, तृष्णा, कण्ठभेद, शिरःवेदना, दुष्ट छींक आना और अविपाक।

रक्तपित्त में पड़नेवाले रक्त का स्वरूप—मांस को धोने से जैसा मांस धोवन हो वैसा, अथवा क्वाथित मांस के यूष जैसा, अथवा कमल को कीचड़ में मिला कर मथा जाय उसका जैसा वर्ण हो वैसा, यदि यकृत-प्लीहा में से ही रक्त आता हो तो मेद-पूय और रक्त का मिश्रण जैसा अथवा पकी हुई जामुन के रस के सदृश। जो रक्तपित्त कृष्ण, नील, दुर्गन्धयुक्त और इन्द्रधनुष के समान वर्णवाला हो उसे असाध्य समझना चाहिए।

रक्तपित्त में वर्ज्य—क्रोध, शोक, भय, आयास, मैथुन तथा विरुद्धान्नपान, कटु, अम्ल, लवण, क्षार, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही द्रव्यों का सेवन।

रक्तपित्त में पथ्य—शीतल जल, शृतशीत या मधु-शर्करा मिश्रित धारोष्णदूध, जांगाल रस, शाली चावल, षष्टि चावल, गोघृत, वटांकुर-स्वरस, इक्षु-रस तथा दूर्वा, स्वरस-पटोल, घीया, तोरई आदि के घी में तैयार किए हुए उष्ण-तीक्ष्ण मसालों रहित शाक। आमला दाड़िम का मिश्रित स्वरस, घृत मिश्रित यवागु। कमलादि वर्ग, वटादि वर्ग और मधुकादि वर्ग के द्रव्यों से शोधित घृत, शीत और तथा मधुर विपाक द्रव्य आदि।

रक्तपित्त की चिकित्सा में कठिनता—उर्द्धगत में कफ प्रधान रक्तपित्त की तथा अधोगत में वात प्रधान रक्तपित्त की चिकित्सा करनी पड़ती है, इसलिए यदि वातनाशक कफ प्रधान चिकित्सा करते हैं तो उद्र्ध्वगत रक्तपित्त की वृद्धि होती है और यदि कफ नाशक वात प्रधान चिकित्सा करते हैं तो अधोगत रक्तपित्त का प्रवर्तन होता है।

चिकित्सा—रक्तपित्त की चिकित्सा में उद्र्ध्वाधो का विचार करके उद्र्ध्वगत रक्तपित्त में विरेचन योग दें और अधोगत में वमन योग, इस प्रकार दोषों के क्रम बदलने से रोग की शान्ति होगी।

रक्तपित्त की चिकित्सा में जिस विकार के कारण से इस रोग की उत्पत्ति हुई हो सर्वप्रथम उसकी चिकित्सा करनी चाहिए यथा गलग्रह के कारण होनेवाले में गलग्रह की, पूतिनस्य में पूतिनस्य की और ज्वर में होनेवाले में ज्वर की इत्यादि।

चिकित्सा का प्रारम्भ करने से पूर्व दोषों की प्रधानता-अप्रधानता का निर्णय सर्वदा रोग के संशमन में सहायक होता है।

यदि रक्तपित्त का कारण क्षीणाग्नि, अतिभोजन आदि है या कफ दोष प्रधान रक्तपित्त है तो वहाँ लंघन कराना चाहिए। यदि शरीर-कृशता में रूक्षता बढ़ने से रोग का आक्रमण हुआ हो तो वहाँ वातनाशक अथवा शरीर तर्पक चिकित्सा करना हितावह है।

रक्तपित्त में पित्त संशमनार्थ साधारण प्रयोग—यष्टिमधु, सुहाँजन के फूल, कोविदार के फूल तथा प्रियंगु के पुष्पों का चूर्ण करके मधु मिला कर घण्टे-घण्टे, दो-दो घण्टे के अन्तर से दें।

चिकित्सार्थ औषध प्रयोग—रक्तातिसार को रोकने के लिए प्रयोग में लाये जानेवाले द्रव्यों का अधोगत रक्तपित्त में प्रयोग करें।

एक नवीन मिट्टी के घड़े में ठण्डा जल भर कर उसमें इक्षुकाण्ड (ईख की गण्डेरियाँ) और उत्पल चूर्ण भर कर रात भर रखा रहने दें; प्रातःकाल इस को छान कर, मधु मिला कर पीवें। यह उद्र्ध्व, अधो और द्विमार्गगत तीनों ही प्रकार के रक्तपित्त में हितकर है।

जामुन, आम और अर्जुन की त्वचा का शीत कषाय पीवें।

उदुम्बर के फल को पीस कर उसका रस निचोड़ कर पीवें। ककड़ी के मूल के कल्क में चावल का पानी और मधु मिला कर पीवें।

(शेषांश ७२४ पृष्ठ पर)

दिल्ली में विद्यापीठ का महाविद्यालय स्वीकृत

वैद्य रामनारायण शर्मा के वक्तव्य का व्यापक प्रभाव

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी-समिति तथा निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ की केन्द्रीय प्रबन्धक समिति के दिल्ली में २७-२८ नवम्बर को हुए अधिवेशनों के पूर्व वैद्य रामनारायण जी ने १७ नवम्बर को 'आयुर्वेद महासम्मेलन सदस्यों से नम्र निवेदन' शीर्षक एक वक्तव्य प्रसारित किया था—जो सचित्र आयुर्वेद के गतांक में प्रकाशित हुआ है। इस वक्तव्य में व्यक्तिगत विवादों से ऊपर उठकर और पारस्परिक मतभेदों को भूल कर रचनात्मक कार्यों में सामूहिक सहयोग का आह्वान किया गया था और सदस्यों से उक्त समितियों के दिल्ली में आयोजित अधिवेशनों में पधार कर विद्यापीठ के महाविद्यालय की योजना को कार्यान्वित करने का निश्चय करने विषयक निवेदन किया गया था।

यह हर्ष की बात है कि आयुर्वेद जगत् में सर्वत्र ही इस वक्तव्य का व्यापक प्रभाव पड़ा और विचारवान वैद्य समुदाय ने उसकी भावना का स्वागत किया। वैद्य जगत् में उस वक्तव्य से रचनात्मक कार्यों पर बल देने वाले एक स्वस्थ और अभूतपूर्व वातावरण का निर्माण हुआ; यह दिल्ली के स्थायी-समिति तथा विद्यापीठ केन्द्रीय प्रबन्धक समिति के अधिवेशनों में, दिल्ली में ही महाविद्यालय स्थापित करने के भारी बहुमत द्वारा किये गए निर्णय से स्पष्ट प्रकट होता है। समितियों के अधिवेशनों में उपस्थित होने का प्रगाढ़ उत्साह हमारे सदस्यों में जैसा इस बार देखा गया, वैसा कभी देखने में नहीं आया। दक्षिण में हुए वार्षिक अधिवेशनों तक में समिति के इतने अधिक सदस्यों की उपस्थिति नहीं हुई, स्थायी समिति के इसके पूर्व के दिल्ली अधिवेशनों में भी कदाचित् कभी ऐसा अवसर नहीं आया जबकि सदस्यों ने इतनी बड़ी संख्या में उत्साहपूर्वक आकर समिति में भाग लिया हो। दिल्ली में स्थायी समिति के अधिवेशन में विभिन्न प्रान्तों के डेढ़ सौ से ऊपर सदस्यों ने उपस्थित होकर भाग लिया। कहना अनुचित न होगा कि वैद्य रामनारायण जी के वक्तव्य की विधायक भावना ने ही सदस्य बन्धुओं को इस प्रकार प्रेरित किया। इन अधिवेशनों में रचनात्मक कार्य करने पर बल देने के लिए अनेक विद्वान सदस्यों ने अपनी शुभकामना भरी प्रेरक सम्मतियाँ भी भेजीं। जितनी अधिक सम्मतियाँ इस बार महाविद्यालय के सम्बन्ध में लोगों ने भेजीं, इससे पूर्व किसी प्रश्न पर ऐसा नहीं हुआ। श्री रामनारायण जी के वक्तव्य पर स्थायी समिति और विद्यापीठ प्रबन्ध समिति के सदस्यों के अतिरिक्त सम्मेलन के बहुत से मान्य सदस्यों और अन्य प्रमुख वैद्यजनों ने भी अपने विशेष उत्साहपूर्ण विचार व्यक्त किये हैं और प्रबल शब्दों में यह आग्रह किया है कि महासम्मेलन तथा विद्यापीठ के पदाधिकारियों को रचनात्मक कार्यों की योजनायें कार्यान्वित करनी चाहिए। जिन सैकड़ों वैद्यों ने अपने विचार पत्र द्वारा व्यक्त किये हैं, उनमें निम्न कुछ के नाम उल्लेखनीय हैं :—

आयुर्वेद पंचानन पं० जगन्नाथ प्रसाद जी, शुक्ल प्रयाग
राष्ट्रपति-चिकित्सक वैद्यराज श्री रामेश्वरजी शास्त्री शुक्ल, ग्वालियर
वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा, अमृतधारा देहरादून (उ० प्र०)
कविराज श्री हनुमत्प्रसाद जी शास्त्री, जामनगर
वैद्यराज श्री सत्यनारायण जी मिश्र, कानपुर
आचार्य श्री मणिराम जी शर्मा, रतनगढ़
राजवैद्य आयुर्वेद बृहस्पति श्री स्यालीरामजी द्विवेदी, इन्दौर (म० प्र०)
वैद्य श्री दुर्गादत्त जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, वाराणसी (उ० प्र०)
वद्यराज स्वामी मंगलदास जी, जयपुर (राजस्थान)
कविराज श्री आशुतोष मजूमदार, दिल्ली
आचार्य श्री शिवदत्त जी शुक्ल, लखनऊ
वैद्य श्री गणेशदत्त जी सारस्वत आयुर्वेदाचार्य जामनगर (सौराष्ट्र)
वैद्यराज श्री धर्मदत्त जी वैद्य एम० एल० ए०, बरेली
वैद्य श्री जयरामदासजी स्वामी भिषागाचार्य, (जयपुर)
कविराज श्री कपिलदेव जी त्रिपाठी, बक्सीमहल्ला (बिहार)

वैद्यराज श्री ताराशंकर जी प्रधानाचार्य, वाराणसी
वैद्य श्री ओंकार प्रसाद जी शर्मा, देहली
वैद्य श्री बैद्यनाथ जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, बम्बई
वैद्यराज श्री रामगोपाल जी शास्त्री, मथुरा (उ० प्र०)
आचार्य श्री नित्यानन्द जी, बिड़ला कालिज, पिलानी (जयपुर)
आयुर्वेदवाचस्पति कविराज डा० त्रिलोकीनाथ शास्त्री, सियाना (उ० प्र०)
वैद्यराज श्री पं० विश्वेश्वरदयालु जी, कुष्ठ चिकित्साश्रम, बरालोकपुर (इटावा)
वैद्यराज श्री अमृतलाल माणिकलाल जी, अमरोली (सौराष्ट्र)
वैद्य श्री महाबीर प्रसाद जी आयुर्वेदाचार्य, बम्बई
वैद्य पं० ब्रजनन्दन जी मिश्र आयुर्वेदाचार्य, पानापुर (सारन बिहार)
डाक्टर श्री गयाप्रसाद जी शास्त्री, हैदराबाद (आन्ध्र)
आयुर्वेदाचार्य श्री ऋषिदेव जी शर्मा शास्त्री, सुजानगढ़ (बीकानेर)
कविराज श्री छोट्टनलाल जी मिश्र, पटना (बिहार)
कविराज रुद्रनारायण सिंह जी, नयागाँव सारन, (बिहार)
वैद्य श्री कैलाश प्रसाद जी गुप्त, पिरो (बिहार)
आयुर्वेदाचार्य श्री शम्भुनाथ जी शास्त्री, कानपुर
वैद्य श्री शिवकरणजी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, (नागपुर)
वैद्य श्री पंढरीनाथ जी, गोगाँवाँ (म० प्र०)
वैद्य श्री केशरीमल जी जैन आयुर्वेदाचार्य, कटनी
आयुर्वेदाचार्य श्री रामप्रकाश जी स्वामी आयुर्वेद-वाचस्पति, जयपुर
वैद्य श्री सीतारामदास जी गुरु वासुदेवदास जी पुद्दरा, (मेहसाना)
वैद्य श्री रामस्वरूप जी कौशिक, जीरा, (फिरोजपुर)
कविराज श्री घनश्याम पण्डित जमर्नाकोला (संथाल परगना)
वैद्यराज श्री रामादर्श सिंह जी, सबरी बक्सी (बिहार)
श्री गिरिजाशंकर जी पाठक वैद्य. बरौनी (बिहार)
पं० वीरलभाया वैद्योपाध्याय छतरपुर, महरौली
वैद्य श्री भवानीदत्त जी व्यास शास्त्री बादा
राजवैद्य डाक्टर अमरदत्त जी, आयुर्वेद बृहस्पति, केकड़ी (अजमेर)
आयुर्वेद कांग्रेस कमेटी अजमेर
वैद्य श्री पाण्डुरंग शिवरामजी आयुर्वेदाचार्य, दमोह (म० प्र०)
वैद्यराज श्री नथमल जी जोशी कानपुर (उ० प्र०)
कविराज रमेशचन्द्र शर्मा ए० एम० एस० मंत्री नगर वैद्य सभा अलीगढ़
राजवैद्य श्री घासीराम गणपतराय जी, देवास जूनियर
वैद्यराज श्री हरदयालु जी वैद्य, अमृतसर (पंजाब)
वैद्य श्री जोगेन्द्र सिंह जी आयुर्वेदाचार्य भादसों (पंजाब)
श्रीयुत मदनगोपाल जी वैद्य ए० एम० एस०, एम० एल० ए० फैजाबाद
वैद्यराज श्री पारसनाथ जी जैन, देशरक्षक औषधालय, कनखल उत्तर प्रदेश
कविराज श्री श्यामलाल जी पाठक, दमोह (म० प्र०)
राजवैद्य श्री ऋषिरामजी शर्मा अमृतसर (पंजाब)
कविराज डा० पं० रामगोपाल मिश्र आयुर्वेदाचार्य, गोंदिया (म० प्र०)
वैद्य श्री चन्द्रकुमार द्विवेदी भिषगाचार्य शामली (उ० प्र०)
वैद्यराज श्री हीरालाल जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, फर्रुखाबाद (उ० प्र०)
वैद्य श्री कन्हैयालाल जी भेड़ा, बम्बई

कई प्रमुख वैद्यों ने यह सम्मति व्यक्त की है कि वे महा-सम्मेलन की वर्तमान स्थिति से दुःखी हैं और जब तक उसके द्वारा कुछ यथार्थ आयुर्वेदोन्नति के कार्य नहीं होने लगते— तब तक तटस्थ ही रहना चाहते हैं। उनका उल्लेख यहाँ व्यर्थ ही है। वक्तव्य के उत्तर में कुछ भाइयों ने दिल्ली में महाविद्यालय योजना में अपनी ओर से सहयोग और सहायता देने की उत्कट इच्छा व्यक्त की है।

विगत धन्वन्तरि जयन्ती पर देश भर में लगभग तीन सौ स्थानों पर वैद्य सभाओं में प्रस्ताव स्वीकार करके यह आग्रह किया गया था कि दिल्ली में विद्यापीठ का विद्यालय स्थापित किया जाना चाहिए और विद्यापीठ के संचित कोष को उस महाविद्यालय में लगाया जाना चाहिए। सम्पूर्ण आयुर्वेद जगत की इस मांग से भी प्रकट है कि महाविद्यालय के हेतु लोगों में उत्कट रुचि है।

यह बड़े सन्तोष की बात है कि वैद्य जगत् में ऐसे अनुकूल वातावरण का निर्माण हुआ, और स्थायी समिति एवं विद्या-

पीठ केन्द्रीय प्रबन्धक समिति के दिल्ली में २७-२८ नवम्बर को हुए अधिवेशनों में प्रबल बहुमत से दिल्ली में अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय, विद्यापीठ की ओर से स्थापित करने की योजना को स्वीकार कर लिया गया है।

एक तदर्थ समिति की नियुक्ति भी कर दी गई है जो महाविद्यालय योजना को क्रियान्वित करने की दिशा में शीघ्र गति से कार्य करेगी। इस समय आयुर्वेद महाविद्यालय के लिए सर्वत्र ही अत्यन्त अनुकूल वातावरण है और यह विश्वास किया जा सकता है कि यदि सम्मेलन और विद्यापीठ के अधिकारियों ने कर्त्तव्यपरायणता और लगन के साथ कार्य किया तो आयुर्वेद जगत् की पचास वर्षों से निरन्तर चली आ रही गहरी आकांक्षा की पूर्ति की दिशा में बड़ा भारी कार्य हो जायगा।

इस बार स्थायी समिति की बैठक में दूसरा महत्त्वपूर्ण निर्णय यह भी हुआ कि महासम्मेलन का आगामी वार्षिक अधिवेशन भी राजधानी दिल्ली में किया जाय। यह निश्चय सब दृष्टियों से बहुत ही महत्त्वपूर्ण हुआ है। इधर प्रायः एक वर्ष से राजधानी में विभिन्न प्रयत्नों द्वारा आयुर्वेद की गूंज होती आ रही है। संसद-सदस्य क्लब नार्थ एविन्यू में वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा संचालित आयुर्वेदिक औषधालय, संसद के माननीय सदस्यों का ध्यान निरन्तर आकर्षित कर रहा है। कई बार दिल्ली में आयुर्वेद के विषय में प्रभावशाली समारोह और प्रेस सम्मेलन हो चुके हैं। इन सब प्रयत्नों द्वारा राजधानी के राजकीय क्षेत्रों में आयुर्वेद के हित में जिस अनुकूल स्थिति का निर्माण हुआ है, उसको बराबर बढ़ाया जाना चाहिए। ऐसा करना आयुर्वेद के लिए बहुत हितकर होगा। केन्द्रीय सरकार के कर्णधारों पर आयुर्वेद के हित में प्रभाव डालने के लिए दिल्ली में किये गये कार्यों का बहुत बड़ा महत्त्व है। ऐसी दशा में आगामी महासम्मेलन का दिल्ली में होना—पिछले प्रयासों को तो आगे बढ़ायगा ही—केन्द्रीय राजकीय क्षेत्र को आयुर्वेद की ओर आकर्षित करने का बहुत बड़ा साधन होगा। इस दृष्टि से इस निश्चय को भी सब प्रकार से कल्याणकर कहा जा सकता है। दिल्ली में आगामी अधिवेशन को आमन्त्रित करने के लिए इन्द्रप्रस्थीय वैद्य सभा और दिल्ली के समस्त वैद्यगणों ने जिस सामयिक उदारता, साहस और आयुर्वेदप्रेम का परिचय दिया है उसके लिए वे सब धन्यवाद के पात्र हैं। समितियों के अधिवेशनों में इन दोनों महत्त्वपूर्ण निर्णयों को स्वीकार करने वाले सदस्यों ने इस अवसर पर जो उत्साह प्रदर्शित किया है, उनसे यह आशा की जा सकती है कि वे आगे भी उसी उत्साह से इन कार्यों में सक्रिय सहयोग देंगे। सहयोगपूर्ण और विधायक वातावरण में किस प्रकार क्रियात्मक कार्य सम्पन्न हो सकते हैं, इसका अद्वितीय उदाहरण समितियों के गत अधिवेशन में स्पष्ट सामने आया है। वैद्य जगत् को इस ओर ध्यान देना चाहिए। वैद्य श्री रामनारायण जी अपने इस वक्तव्य के द्वारा महासम्मेलन क्षेत्र में जो मंगलमय वातावरण बनाया और अपनी उदारता एवं कार्यप्रियता की भावना के प्रसार से जो प्रेरणा दी—आयुर्वेद जगत् का कर्त्तव्य है उस वातावरण को चिरस्थायी बनाने में आगे भी सक्रिय रहे।

खेदजनक स्थिति

इन पंक्तियों को लिखते समय आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका का दिसम्बर अंक हमारे सामने आया है। हम नहीं चाहते थे कि समितियों के दिल्ली अधिवेशनों के अवसर पर कुछ व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित असहयोग की भावना और होते हुए रचनात्मक कार्य में रोड़े अटकाने के प्रसंग की किंचित भी चर्चा यहाँ भी की जाय। किन्तु पत्रिका के इस अंक को देखकर यह दुःख के साथ अनुभव करना पड़ता है कि महासम्मेलन क्षेत्र के कुछ अपने को विशिष्ट कहने वाले व्यक्ति आयुर्वेद के लिए ठोस कार्यों की योजना में अच्छी और सहयोगपूर्ण भावना नहीं रखते। दिल्ली में समिति के अधिवेशन में ही पण्डित शिवशर्मा जैसे उत्तरदायी सज्जन ने दिल्ली में महाविद्यालय स्थापन योजना का भरसक विरोध किया और उसके लिए अन्यत्र स्थान और दूसरे विद्यालयों पर जोर दिया था। उनके और कुछ अन्य माननीय व्यक्तियों के दिल्ली में विद्यालय करने के विरोध का आधार क्या है, यह बात समझ में नहीं आती। उन्हें तो जनभावना और बहुमत का आदर करना चाहिए तथा रचनात्मक कार्यों में उमंग के साथ सहयोग देना चाहिए। महासम्मेलन के आगामी अधिवेशन के विषय में भी दिल्ली के निमंत्रण का इन महारथियों ने घोर विरोध किया और पुरी (उड़ीसा) में ही महासम्मेलन करने का हठ किया। हम नहीं समझते कि उनके इस हठ का भी क्या महत्त्व है। केवल इतनी बात कि पुरी का निमंत्रण पुराना है और उसको विचाराधीन रखकर ही गत अधिवेशन बंगलोर

में किया गया था—कोई बड़ा वजन नहीं रखती। पुरी का निमंत्रण जैसे एक बार विचाराधीन रखा जा सकता है वैसे दूसरी बार भी पुरी के भाइयों को सन्तोष और प्रतीक्षा करने के लिए विनम्रतापूर्वक निवेदन करके राजी किया जा सकता है। महत्त्व की बात तो यह है कि अधिवेशन कहाँ किया जाय—इस प्रश्न पर उन पहलुओं से विचार करना चाहिए कि कहाँ करना सबसे अधिक उपयोगी होगा। यह निश्चित है कि पुरी जैसे दूरस्थ स्थान पर महासम्मेलन के ९९ प्रतिशत सदस्य अधिवेशन में भाग लेने नहीं पहुँच सकते। जब कि समय ऐसा है और स्थितियाँ ऐसी हैं, हमारे सामने समस्यायें ऐसी हैं, जिनपर अधिक से अधिक संख्या में वैद्यों को एकत्र होकर विचार करना चाहिए। इधर कई वर्षों से महासम्मेलन के अधिवेशन दक्षिण में ही होते आ रहे हैं। उनका अनुभव स्पष्ट सामने है कि अधिवेशन जैसे अवसर पर महासम्मेलन के २५-३० सदस्य एकत्र हुए। जब कई वर्षों से अधिवेशन दक्षिण की ओर किया जा रहा है तो उत्तर भारत के वैद्यों का हक है कि अब एक अधिवेशन उत्तर में किया जाय और महासम्मेलन के शिथिल संगठन को फिर से दृढ़तर बनाया जाय। अपने विशाल और दृढ़ संगठन की शक्ति से केन्द्रीय सरकार को प्रभावित करने के लिए दिल्ली में अधिवेशन करना ही युक्तिसंगत है—जिसकी आज सबसे अधिक आवश्यकता है। विद्यापीठ का महाविद्यालय स्थापित करने का जो निश्चय किया गया है, उसके लिए अधिवेशन के अवसर पर दिल्ली में ही वैद्यजगत् का विराट् सहयोग मिल सकता है। यह सारी बातें समिति के अधिवेशन में निवेदन की गई थीं—फिर भी कुछ स्वयंभू व्यक्तियों ने दिल्ली में अधिवेशन करने का विरोध किया और यहाँ तक कि बहुमत के आधार पर किये गए इस महत्त्वपूर्ण निश्चय के विरोध में माननीय सभापति द्वारा रिफरेण्डम (सम्पूर्ण सदस्यों का डाक द्वारा मत-संग्रह करने) की कार्यवाही करने की चर्चा उठाई गई। यह हर्ष की बात है कि सभापति महोदय ने उस पर ध्यान नहीं दिया।

पत्रिका का दिसम्बर अंक जब हम देखते हैं तो उसमें स्थायी समिति और विद्यापीठ केन्द्रीय प्रबन्धक समितियों के इन दिल्ली अधिवेशनों की कार्यवाही प्रकाशित नहीं की गई। पत्रिका सम्मेलन के प्रचार के मूल उद्देश्य से प्रकाशित की जाती है, परन्तु उसमें महासम्मेलन की कार्यवाहियों का प्रकाशन भी अनपेक्षित विलम्ब से किया जाय—यह बात क्या अनुचित नहीं है? जहाँ समितियों के अधिवेशनों का उल्लेख है वहाँ केवल दो-दो पंक्तियों में यह लिखा जा सकता था कि 'दिल्ली में विद्यापीठ के महाविद्यालय स्थापन का निश्चय कर लिया गया और आगामी अधिवेशन भी दिल्ली में करने का निश्चय किया गया'। परन्तु इतना तक लिखना पत्रिका-सम्पादक ने उचित नहीं समझा। यदि इसी अंक में महाविद्यालय के निश्चय का समाचार, उसके लिए उत्कंठित वैद्यजगत् को दे दिया जाता तो महाविद्यालय के लिए चारों ओर से सहयोग और सहायता का वातावरण बनना आरम्भ हो जाता। दिल्ली में आगामी अधिवेशन होने के निश्चय की सूचना पाकर अभी से आसपास के लोग सक्रिय कार्य करने की ओर प्रवृत्त हो जाते। परन्तु पत्रिका में केवल इतना लिखकर इन दोनों सूचनाओं को पूरे एक माह के लिए टाल दिया गया कि अधिवेशनों का विवरण आगामी अंक में प्रकाशित किया जायगा। पत्रिका-सम्पादक अथवा सम्मेलन के महारथियों का ऐसा करने में क्या उद्देश्य हो सकता है, इस विषय में हम कोई भी अनुमान करना नहीं चाहते। पत्रिका में स्थानाभाव की कल्पना यदि की जाय तो कम उचित जँचती है। इसी अंक में पण्डित शिवशर्मा जी का ग्यारह पृष्ठों का वक्तव्य प्रकाशित हुआ है। हम समझते हैं, आयुर्वेद जगत् को स्थायी समिति की कार्यवाही का विवरण जानने की जितनी उत्कण्ठा हो सकती है, उतनी इस वक्तव्य के लिए नहीं हो सकती। वक्तव्य आगामी अंक में भी छप सकता था—परन्तु कार्यवाही का विवरण इसी अंक में प्रकाशित किया जाना अनेक दृष्टियों से हितकर होता। सम्मेलन के सदस्य, प्रादेशिक समितियाँ और हजारों वैद्य दिल्ली में हुए स्थायी समिति के अधिवेशन में क्या हुआ, यह जानने की उत्कष्ठा से प्रतीक्षा कर रहे होंगे! परन्तु पत्रिका में उसका विवरण न पाकर लोगों की उत्कंठा को जो आघात पहुँचेगा—इसका विचार पत्रिका-सम्पादक ने नहीं किया। यहीं हमें सोचना पड़ता है कि पत्रिका का वैद्य-जगत् और महासम्मेलन के हित में कितना सदुपयोग हो रहा है।

बुद्धि की बलिहारी

पत्रिका के इसी अंक में दिल्ली में हुए एक सद्भावना सम्मेलन की कार्यवाही का विवरण दिया गया है। उस सम्मेलन में कितनी सद्भावना के निर्माण का वास्तविक

प्रयास किया गया यह तो वैद्यजगत् उसकी कार्यवाही से समझ लेगा। इस कार्यवाही में महासम्मेलन के सभापति माननीय विद्वद्वर पण्डित अनन्त त्रिपाठी शर्मा के भाषण में, दिल्ली में विद्यापीठ के महाविद्यालय की स्थापना के विचार की चर्चा की गई है। विद्वान सभापति के भाषण का निम्न अंश दृष्टव्य है :—

'किन्तु किसी व्यक्ति ने कुछ देने का वचन दिया तो उस पर किस प्रकार निर्भर रहा जा सकता है। श्री पण्डित रामनारायण जी ने जो ५००) रुपया प्रतिमास देने का वचन दिया है, यदि वे एक-दो मास यह सहायता देने के पश्चात् फिर बन्द कर दें तो हमारी क्या गति होगी? ऐसे किसी का आश्रय लेकर कार्य चलाना असम्भव है। हाँ, यदि वे विद्यालय के नाम से एक निश्चित धनराशि एक साथ निकालकर दे दें और उसके व्याज से यह पाँच सौ रुपया प्रति मास मिलता रहे तो ही यह वास्तविक सहायता होगी और उस पर निर्भर रहना अधिक युक्तिसंगत होगा।'

प्रथम तो यह उल्लेखनीय है कि उक्त बात महासम्मेलन के सर्वोच्च अधिकारी ने उस सभा में कही जिसपर बिल्ला लगाया गया था 'सद्भावना सम्मेलन' का! अन्य कार्यवाही को जाने दीजिए, केवल एक इसी बात को लीजिये और देखिए कि उसमें कितनी सद्भावना और प्रेम भरा हुआ है।

यहाँ यह भी विचारणीय है कि महासम्मेलन के पदाधिकारीगण यथार्थ और रचनात्मक कार्य करने में कितनी रुचि रखते हैं और सच्चे हृदय से अच्छे कार्यों में मुक्त सहयोग करने वालों के प्रति क्या भावना और कैसा व्यवहार रखते हैं। एक सद्भावना तो यह होती है कि रचनात्मक कार्यों में सहयोग और सहायता देने वाले के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करके अन्यों को उसी प्रकार सहयोग देने के लिए प्रोत्साहित करना और दूसरी वृत्ति यह होती है कि कृतघ्नतापूर्वक सहायता करने वाले के प्रति अविश्वास, उपेक्षा और अपमानजनक विचार सार्वजनिक रूप से व्यक्त करना। सद्भावना सम्मेलन में व्यक्त किये गए उक्त विचारों में किस प्रकार की सद्भावना है, यह बात वैद्य जगत् विचार कर सकता है।

वर्तमान में प्रमुख बैंकों की प्रचलित व्याज-दर से देखा जाय तो पाँच सौ रुपया मासिक व्याज प्राप्ति के लिये लगभग दो लाख रुपया चाहिए। एक ही व्यक्ति एक साथ दो लाख रुपये की थैली महासम्मेलनाधिकारियों को सम्हला दे—तब वे दिल्ली महाविद्यालय स्थापित करने की बात को युक्तिसंगत समझेंगे। यही बुद्धि की बलिहारी है। यदि ऐसा नहीं होता तो सम्मेलनाधिकारी क्यों यह सोचते हैं कि आगे 'हमारी क्या गति होगी?'—हम पूछना चाहते हैं कि मान लीजिए वैसा ही होता है तो फिर आपकी गद्दियों का पुरुषार्थ कहाँ जायगा? आपलोग क्या केवल भाषणों में लम्बी-चौड़ी बात बघारने के लिए हैं? महासम्मेलन की गद्दियों पर वर्षों से सुशोभित होने वाले इतना भी न कर सकेंगे कि २॥ लाख जनसंख्या वाले वैद्य सम्प्रदाय से केवल दो लाख रुपया एकत्र कर सकें। अपने को सर्वाधिक प्रभावशाली नेता कहने वाले पण्डित शिवशर्मा जी तो पन्द्रह लाख रुपया जुटाने की बात करते रहे हैं। हमारे पूर्वाध्यक्ष माननीय पण्डित पार्थनारायण जी अकेले अपने प्रदेश से एक लाख रुपया देने की बात अभी छह माह पूर्व कह चुके हैं। ऐसे प्रभावशाली महारथियों के होते हुए आपको किस गति का डर है? कितने क्षोभ और लज्जा की बात है कि तीस हजार रुपया वार्षिक, परीक्षाओं के नाम पर आयुर्वेद जगत् से प्राप्त करने वाली विद्यापीठ अपना एक महाविद्यालय नहीं चला सकती? और जब उसके लिए उपयुक्त वातावरण बनता है, लोग सहायता करने को आगे आते हैं तो अधिकारी वर्ग उन सहायताओं की उपेक्षा करके केवल पाँच सौ रुपयों के लिए यह सोचने लगता है कि हमारी क्या गति होगी?

बात की बात है, इसलिए यहाँ कहना पड़ता है कि दूसरों पर सार्वजनिक रूप से अविश्वास व्यक्त करनेवाले सम्मेलनाधिकारी स्वयं के विश्वस्त होने का क्या प्रमाण रखते हैं? कोई व्यक्ति किस आशा और विश्वास पर उनको दो लाख रुपया सौंप दे? इतनी बड़ी निधि देने वाले को किस आधार पर यह विश्वास हो जाय कि उसके द्रव्य का सदुपयोग ही किया जायगा? जब कि पिछला इतिहास आइने की तरह यह दिखा रहा है कि महासम्मेलन में निर्धन वैद्य समाज के चन्दे का कैसा उपयोग किया गया है। श्री चानना के कुछ दिनों पूर्व प्रकाशित वक्तव्य में महासम्मेलन की आर्थिक व्यथा-कथा का जो चित्रण किया गया था वह देखने योग्य है।

हम नहीं समझते कि आयुर्वेद जगत् में रचनात्मक कार्यों के लिए निर्माण होने वाले अनुकूल और उत्साहपूर्ण वाता-

वरण में ऐसी सद्भावनाहीन बातें करने का अर्थ सिवा इसके और क्या हो सकता है कि कुछ लोग यथार्थ कार्य नहीं करना चाहते और अनुकूल वातावरण को विवादों म विलीन करने की इच्छा रखते हैं। सम्पूर्ण आयुर्वेद जगत् को इस दुर्नीति से सावधान हो जाना चाहिए।

सद्भावना सम्मेलन की तथाकथित सभा में उपर्युक्त विचार व्यक्त करने वाले माननीय सभापति विद्वद्वर पण्डित श्री अनन्त त्रिपाठी को कदाचित् यह नहीं मालूम कि पण्डित रामनारायणजी अभी भी प्राय: एक हजार रुपया मासिक देश के विभिन्न आयुर्वेद विद्यालयों को सहायता तथा आयुर्वेद विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति आदि देने में व्यय करते हैं और वर्षों से करते आ रहे हैं। एक स्वतन्त्र संस्कृत और आयुर्वेद विद्यालय भी वे अपनी ओर से कई वर्ष से चला रहे हैं। विद्यापीठ महाविद्यालय के पक्ष में वे दृढ़ता के साथ इसलिये हैं कि इस अखिल भारतीय संस्था की यथार्थता बढ़े। प्रतिवर्ष हजारों आयुर्वेद विद्यार्थी जो धन और समय का व्यय करके विद्यापीठ की परीक्षाओं में बैठते हैं उन्हें उत्तीर्ण हो जाने पर एक निराशा का ही अनुभव करना पड़ता है, क्योंकि महाविद्यालय के अभाव में ही विद्यापीठ की परीक्षाओं की कोई मान्यता कहीं नहीं है। पण्डित रामनारायणजी आयुर्वेद की इस एकमात्र संस्था के इस कलंक को मिटाना चाहते हैं। विद्यापीठ यदि अपना महाविद्यालय दिल्ली में स्थापित करती है और सुव्यवस्थित रूप से उसका संचालन करती है तो पं० रामनारायणजी की सहायता उसको पाने में किसी प्रकार की शंका की गुंजायश नहीं है। और अन्य क्षेत्रों से भी उसको भारी सहायता मिलना निश्चित है।

हम कदापि उस स्थिति के उपस्थित होने की कल्पना नहीं करना चाहते जिसमें वर्तमान के बने हुए उत्साहपूर्ण वातावरण में किंचित भी व्याघात उपस्थित हो। इस नाते हम सद्भावना सम्मेलन के इस प्रसंग को भी उपेक्षित कर देना ही अधिक उचित समझते हैं। हम ऐसा ही समझे रहना चाहते हैं कि माननीय सभापति पण्डित अनन्त त्रिपाठी एक सुयोग्य विद्वान और व्यवहारकुशल व्यक्ति हैं और जो विचार उन्होंने व्यक्त किये हैं, वे उनके अपने विचार नहीं हो सकते। उनकी स्वाभाविक सरलता का दुरुपयोग किया गया है और उन्हें पुराने कूटनीतिप्रवर किसी व्यक्ति ने भ्रमित करके ऐसे भाव व्यक्त कराकर स्वयं को साफ रखने का यत्न किया है। साथ ही यह दुष्प्रयत्न भी किया है कि वैद्य जगत पण्डित त्रिपाठी जी को भी रचनात्मक कार्यों में विवाद उठाकर अवरोध उत्पन्न करने वाले वर्ग में गिनने लगे। यदि त्रिपाठी जी की सरलता का दुरुपयोग न किया गया होता और वस्तु स्थिति के सही अध्ययन करने का अवसर उन्हें मिला होता तो कदाचित् वे ऐसी बात न कहते।

आगामी अधिवेशन

महासमिति के अधिवेशन में प्रबल बहुमत से दिल्ली का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया गया है। पुरी, उड़ीसा में अधिवेशन करने के पक्ष में केवल ९ मत आये, इसलिए यह निश्चय कर लिया गया है कि आगामी महासम्मेलन दिल्ली में ही किया जाय। तथापि दिल्ली के निमंत्रण पर विचार होते समय कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के हठपूर्वक विरोध करने और रिफरेन्डम की चर्चा करने से तथा इस पत्रिका में स्थायी समिति की कार्यवाही प्रकाशित न करने से अनायास ही यह सन्देह होता है कि कुछ कूटनीतिक विशिष्ट व्यक्ति दिल्ली में हुए निर्णयों को किसी अन्य प्रकार से उलझा देने के उपक्रम में रत हैं। यद्यपि महासम्मेलन के विधान की धारा ३२ (ग) के अनुसार किसी प्रकार के रिफरेण्डम की कार्यवाही की नियमित गुंजायश नहीं रहती, क्योंकि उसके लिए किसी प्रकार के प्रस्ताव की स्वीकृति के तुरन्त बाद ही घोषणा करने का विधान है। फिर भी ऐसे लोग जिन्हें रचनात्मक कार्यों से अपना हठ ही अधिक प्रिय है, अन्य प्रकार से महासम्मेलन कार्यालय पर अपने प्रभाव का दुरुपयोग करके निश्चयों को कार्यान्वित करने में ढील और प्रकारान्तर से अवरोध उपस्थित कर सकते हैं। विशेष रूप से अपने सुयोग्य सम्मेलनाध्यक्ष महोदय से इस विषय में हम यह निवेदन करना चाहेंगे कि वे जन-भावना का आदर करके स्थायी समिति के निश्चयों को शीघ्र कार्यान्वित करने की दिशा में आगे बढ़ाकर यश के भागी बनें।

—श्री हजारीलाल शर्मा, दिल्ली

श्री पं० राजेश्वरदत्त शास्त्री आयुर्वेदशास्त्राचार्य

आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की एग्जीक्युटिव काउन्सिल ने अपनी गत बैठक में १५ सितम्बर को आयुर्वेद कालेज के स्थानापन्न प्रिंसिपल तथा आयुर्वेद-विभागाध्यक्ष श्री पं० राजेश्वरदत्त शास्त्रीजी को विशेषज्ञ समिति की सर्वमान्य सम्मति के अनुसार प्रोफेसर आफ आयुर्वेद के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित किया है। इसके लिए कई विद्वज्जन देश के विभिन्न भागों से आमन्त्रित किए गए थे, जिन सब में श्री शास्त्रीजी को सर्वश्रेष्ठ माना गया।

आपने सन् १९२७ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की आयुर्वेद-शास्त्राचार्य - परीक्षा सर्वप्रथम रूप में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की और तदर्थ उनको स्वर्णपदक भी प्राप्त हुआ। प्रातः-स्मरणीय पूज्यचरण महामना मालवीयजी सदैव योग्य व्यक्तियों की खोज में रहा करते थे। अतएव उन्होंने शास्त्रीजी को सर सुन्दरलाल चिकित्सालय में हाउस फिजीशियन पद पर नियुक्त किया तथा १६–८–१९२८ को रेजीडेण्ट मेडीकल आफिसर पद पर भेज दिया। इस पद पर वे १९४२ तक रहे तथा इसी काल में आयुर्वेद फार्मेसी में औषधि-निर्माण के साथ छात्रों को भैषज्य कल्पना का व्यावहारिक निर्देशन भी किया।



श्री राजेश्वरदत्त शास्त्री

फिर आप क्लीनिकल आयुर्वेद मेडिसिन के लेक्चरर पद पर अपनी विद्वत्ता के कारण मालवीयजी महाराज द्वारा बैठा दिए गये। लगभग ६ वर्ष इस पद पर सफलतापूर्वक कार्य करने के बाद बिना किसी निर्वाचनकारिणी समिति के समक्ष भेजे आपकी प्रतिभा और विद्वत्ता पर मुग्ध हो कर विश्वविद्यालय अधिकारियों ने आपको सन् १९४८ में असिस्टेण्ट प्रोफेसर आफ आयुर्वेद थेराप्यूटिक्स के पद पर नियुक्त कर दिया। पूज्यचरण कविराज पं० सत्यनारायण शास्त्री जी के कालेज-सेवा से विमुक्त होने पर उनके स्थान पर आपको वासनजी खेमजी चेयर पर प्रोफेसर आफ आयुर्वेद के पद पर ४००)से ७००)के ग्रेड में सीधा नियुक्त कर दिया गया। बाद में विश्वविद्यालय ने एक विशेष नियम के अनुसार इस पद को ५००) से ८००) के वेतनक्रम में रीडर आफ आयुर्वेद कर दिया। इस पद पर १९५१ से आप कार्य कर रहे हैं। इसी साल आपको आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष पद पर भी प्रतिष्ठापित कर दिया गया। सन् ५५ तक आप डीन आफ दी फैकल्टी आफ मेडीसिन एण्ड सर्जरी (आयुर्वेद) भी रहे। सन् १९५६ में जब सर सी० पी० रामस्वामी ऐयर महोदय के प्रयत्नों से केन्द्रीय सरकार ने यहाँ आयुर्वेद रिसर्च विभाग खोलना स्वीकार कर लिया तो उसमें आयुर्वेद डाइरेक्टर के गौरवास्पद पद पर नियुक्त किया गया। आप सन् १९४२ से ही सर सुन्दरलाल चिकित्सालय के चिकित्सक तथा प्रधान चिकित्सक के रूप में सम्बद्ध रहे हैं।

डाक्टर वर्मा महोदय के रिटायर होने पर जुलाई १९५७ से आप आयुर्वेद कालेज के प्रिन्सिपल, सर सुन्दरलाल चिकित्सालय के सुपरिण्टेण्डेण्ट तथा आयुर्वेद छात्रावास के चीफ वार्डन भी बना दिए गए हैं।

आयुर्वेद कालेज में प्रोफेसर आफ आयुर्वेद का सर्वोच्च पद है। इसका वतनक्रम ८००–५०–१२५० है। सम्भवतः

देश में इतने अधिक वेतनक्रम की आयुर्वेदीय सेवाओं में प्रथम पद है जिस पर पूज्य शास्त्रीजी की नियुक्ति परम शोभनीय तथा पूर्णतया उपयुक्त हुई है। शास्त्रीजी का पूरा जीवन आयुर्वेद के अध्ययन, अध्यापन तथा शुद्ध आयुर्वेदीय चिकित्सा करने में व्यतीत हुआ है। २९–३० वर्ष के इस प्रगाढ़ पाण्डित्यपूर्ण अनुभव से ओत-प्रोत कुछेक विद्वान् ही इस समय दिखलाई देते हैं।

आपने आयुर्वेदीय वाङ्मय की भी ठोस सेवा की है। १९३० में आपने सर्वप्रथम सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'स्वस्थवृत्तसमुच्चय' लिखा, जिसमें आयुर्वेदीय स्वास्थ्य साहित्य का अनूठा संकलन अपनी प्रतापकण्ठाभरण का हिन्दी अनुवाद किया। तदनन्तर सुप्रसिद्ध भैषज्यरत्नावली रूप परिमार्जित शुद्ध टीका से युक्त ग्रन्थ का सम्पादन किया तथा अपने अनुभव से एक सर्वथा नवीन अध्याय जोड़ कर अपने प्रखर पाण्डित्य का सफल परिचय दिया। अभी-अभी आपकी लेखनी से जो ग्रन्थ कृतार्थ हुआ है इसका नाम है 'चिकित्सादर्श' जिसमें उनके अनुभव की पूरी पूँजी संजोई हुई भरी है। आयुर्वेदीय चिकित्सा का यह ग्रन्थ नवीनतम तथा अन्यतम है।

सार्वजनिक सेवा क्षेत्र में भी श्री शास्त्रीजी किसी से पीछे नहीं रहे। सर्वप्रथम १९३० में आपको अखिल यू० पी० आयुर्वेद कान्फ्रेन्स झाँसी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। वहाँ आपके विद्वत्तापूर्ण भाषण को श्रवण कर आयुर्वेदीय विद्वज्जन बहुत सन्तुष्ट हुए। बोर्ड आफ इण्डियन मेडीसिन में १९३६ से १९४७ तक आप आयुर्वेदीय शिक्षकों के निर्वाचन क्षेत्र से सफलता पूर्वक विजय प्राप्त कर आये। १९४८ में वैद्यों ने आपको अपना प्रतिनिधि चुन कर भेजा तथा अब पुनः विश्वविद्यालय ने आपको उसकी सदस्यता के लिए नामजद किया है। चोपड़ा कमेटी की साइंटिफिक मेमोरण्डा कमेटी के आप सरकार द्वारा मनोनीत सदस्य रहे हैं। उत्तर प्रदेश की रिआर्गेना-इजेशन कमेटी के १९५० में तथा राजस्थान सरकार द्वारा नियुक्त आयुर्वेदोत्थानकारिणी समिति के १९५५ में सदस्य बनाए गए हैं। आप आयुर्वेद तथा तिब्बी एकेडेमी यू० पी० के भी सरकार द्वारा सदस्य बनाए गए हैं। आप वर्षों अखिल भारतवर्षीय महासम्मेलन में तथा विद्यापीठ में अच्छे स्थान प्राप्त कर चुके हैं।

शास्त्री जी का जीवन आयुर्वेद की सेवा में बीत रहा है। वे हृदय से आयुर्वेद की शुद्ध धारा को माननेवाले हैं, पर वे मिश्र-पद्धति को समयोचित बनाने के लिए सर्वथा प्रयत्नशील रहते हैं। उनका अपना यह मत है कि जब तक विद्यार्थी मूल आप्त प्रणीत ग्रन्थों को समझने की शक्ति नहीं रखता तब तक वह आयुर्वेद में निष्णात नहीं माना जा सकता।

शास्त्री जी का स्वभाव बहुत सरल है। वे सदैव स्मितवदन प्रत्येक व्यक्ति की सहायतार्थ कुछ-न-कुछ करते ही रहते हैं। कभी-कभी उनसे ऐसे सज्जन भी लाभ उठा ले जाते हैं जिनको वे अपना विरोधी रूप में कार्य करते पाते हैं। फिर भी उनके दया दाक्षिण्य में कोई कमी नहीं आया करती।

शास्त्रीजी अपनी पीढ़ी के माने हुए विद्वान् हैं। उनका आयुर्वेद-ज्ञान उनके वर्षों के अनुभव से परिपुष्ट हुआ है। उनके आयुर्वेदीय भाषण, जिन्हें वे बहुधा रोगी शैयाओं के किनारे खड़े हो कर विद्यार्थियों को प्रदान करते हैं, अपूर्व और उनकी वैदुषी के प्रसारक होते हैं।

परमात्मा से प्रार्थना है कि वह उन्हें आयुर्वेद सेवा के लिए शतायु करे।

शेषांश]

रक्त-पित्त

[७१९ पृष्ठ का

चन्दन, यष्टिमधु, लोध्र तीनों समान भाग ले कर शीतल जल के साथ पीवें।

करंज-बीज का चूर्ण करके उसमें मिश्री और मधु मिलाकर सेवन करें।

आमले का चूर्ण या हरड़ का चूर्ण घृत और दूध में मिला कर उसका नाक से होनेवाले रक्तपित्त में नस्य लें।

द्राक्षा, उशीर, पद्माख और मिश्री ४-४ तोले ले कर जल में रात भर रखा रहने दें, प्रातःकाल इस जल को पीने से रक्तपित्त शान्त होता है।

द्राक्षा, मिश्री और कुटकी का चूर्ण यष्टिमधु के कषाय में मिला कर या शीतल जल के साथ लें।

हरीतकी चूर्ण तथा हरिद्रा घृत में मिला कर चाटें।

नाक से प्रवृत्त होनेवाले रक्तपित्त में—शर्करा मिश्रित जल या दूध नाक से चढ़ावें या नाक द्वारा पिला दें, अथवा द्राक्षा-रस या दूध-घृत अथवा शर्करा मिश्रित इक्षु-रस दें।

रक्तपित्त में द्राक्षा, घृत, मधु और शर्करा को विदारी गन्धादि क्वाथ में मिला कर इसकी अनुवासन बस्ति दें अथवा दूध की बस्ति दें।

मधु-घृत-शीतल जल और दूध की निरूहण बस्ति दें।

जहाँ उपर्युक्त साधारण योगों से रोग का अवरोध न हो वहाँ निम्नलिखित रस, घृत, आसवारिष्टादि का सेवन कराना चाहिए और जहाँ इनसे भी अवरोध न हो वहाँ शस्त्रक्रिया करनी चाहिए।

चन्दनादि लौह को साधारण रक्तपित्त में—जहाँ ज्वर या संताप के कारण रक्तपित्त हुआ हो—चावल के धोवन और मधु के साथ दें। इसके सेवन से यकृत-प्लीहा के तन्तुओं में उत्पन्न हुई उग्रता नष्ट होगी।

पाठकों के विचार

(इस स्तम्भ के अन्तर्गत व्यक्त विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।)

आयुर्वेदीय संशोधन--एक सुझाव

यह सर्वज्ञात है कि आयुर्वेद आठ खण्डों में विभक्त है यथा--शल्य तन्त्र, शालाक्य तन्त्र, काय चिकित्सा, भूत-विद्या, कुमार तन्त्र, अगद तन्त्र, रसायन तन्त्र और वाजीकरण तन्त्र। इसी अष्टविध चिकित्सा पद्धति का नाम ही आयुर्वेद है। किन्तु आजकल सचराचर देखने में आता है कि प्राचीन पद्धति के चिकित्सक सिर्फ काय चिकित्सा को ही प्रधानता दे कर अपना काम चला रहे हैं। विशेषतः प्राचीन पद्धति को अपनाने वाले चिकित्सकों से कोई शल्य, शालाक्य एवं कौमार इन तीन विषयों के माध्यम से चिकित्सा करवाना नहीं चाहता। यह कोई कभी करवाता है--ऐसा बिरला ही नजर आता है। इस दृष्टिकोण से मेरा अनुरोध है कि हम लोगों की निगाह इस ओर होनी चाहिये। "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन" का आयुर्वेद की उन्नति के लिये पथ-प्रदर्शन करना प्रशंसनीय है। उस दिन सचित्र आयुर्वेद पत्रिका में बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर श्रीयुत रामनारायणजी ने वैद्यों की तरफ से एक आयुर्वेद महाविद्यालय दिल्ली में खोलने के लिये, प्रस्ताव रख कर, उसमें मासिक ५००) के हिसाब से पाँच साल तक आर्थिक सहायता देने की स्वीकृति दी है। यह बड़ी ही खुशी की बात है। लेकिन मेरी राय में यह बड़ा ही लाभदायक होता कि जो लोग स्नातक हो चुके हैं उनके लिये "रिफ्रेसर ट्रेनिंग कोर्स" या स्नातकोत्तर शिक्षा नामक कोई "पोस्ट ग्रेजुएट ट्रेनिंग" होनी चाहिये थी, जिसमें शल्य, शालाक्य और प्रसूति-तन्त्र की व्यावहारिक शिक्षा की व्यवस्था होती। जो स्नातक, शिक्षा ग्रहण करेंगे वे उसके लिये शिक्षा-शुल्क भी दें। फलतः इससे महाविद्यालय को कुछ-न-कुछ आर्थिक लाभ होने के साथ-साथ, आयुर्वेद-आकाश से लुप्तप्राय उपर्युक्त विषयों की जानकारी में चिकित्सकों की अभिवृद्धि होगी। अगर हम काय चिकित्सा पर ही निर्भर करते रहे तो हमारी अवस्था अन्धकाराच्छन्न ही रहेगी--जैसी कि वर्त्तमान है। और भी आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा में प्रतिष्ठित करवाने की हमारी जो महत् आशा है--वह केवल आशा ही बनी रहेगी। वर्त्तमान में जो स्थिति है उससे जन-साधारण की यह धारणा बन गई है कि आयुर्वेद में सिर्फ काय चिकित्सा ही है। इस प्रकार से राष्ट्रीय स्वास्थ्य समस्या का समाधान होना संदेहजनक है। इसलिये हम सब लोगों को एक हो कर अष्टांग आयुर्वेद को पृथक्-पृथक् तथा सब प्रकार से समालोचना करके इसको व्यावहारिक रूप देना होगा तथा जनता को समझाना होगा कि आयुर्वेद की सीमा सिर्फ काय चिकित्सा तक ही नहीं है। तदुपरान्त इस कार्य की सिद्धि के लिये अगर हमें पाश्चात्य चिकित्सा से कुछ लेना पड़े तो उसको हम बिना हिचकिचाहट ले लेवें। ऐसा करना उचित भी है--क्योंकि यह विज्ञान का दावा और समय का तकाजा है। इस तरह हम लुप्तप्राय पंच-कर्म चिकित्सा को पुनः प्रतिष्ठित करने में समर्थ हो सकेंगे।

सौराष्ट्र (जामनगर) में, केन्द्रीय सरकार की तरफ से चलनेवाली 'पोस्ट ग्रेजुएट ट्रेनिंग' से चिकित्सकों की उन्नति का कोई साधन प्रतीत नहीं होता। यदि हम लोगों की तरफ से एक स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र खोला जाता तथा उसमें व्यावहारिक शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता तो निःसंदेह भारत के लाखों चिकित्सकों के ज्ञान को अष्टांग विधि में परिमार्जित किया जा सकता।

मेरा निवेदन है कि देश के किसी भी एक महाविद्यालय के जरिये, उपयुक्त आर्थिक सहायता दे कर नया कॉलेज खोलने के सिवा इस काम को पहले किया जाता तो बड़ा ही कल्याणकर होता। इस विषय में आयुर्वेद के सभी मान्य नेताओं से मेरा अनुरोध है कि विषय की गहराई व तात्पर्य की उपलब्धि कर आयुर्वेद के प्रत्येक अंग को परिपुष्ट करने के लिये विहित प्रतिकार किया जाए।

शेष में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर तथा भारत के चिकित्सा विज्ञान के वरेण्य नेता श्रीयुत रामनारायणजी से नम्र निवेदन है कि

वे इस दिशा में हमारे पथ-प्रदर्शक हो कर लुप्त गौरव को पुनः प्रतिष्ठित करायें। —**कविराज श्री गोविन्दचन्द्र रथ,** आयुर्वेदाचार्य, कल्याण फार्मेसी, पो० बरगढ़, जि० सम्बलपुर।

ब्लेकवाटर फिवर की अमोघ औषध

बंगला 'प्रेक्टिस ऑफ मेडिसिन' जो डॉक्टर यतीन्द्रनाथ घोषाल एल० एम० एस० द्वारा बंगला संवत् १३५४ में लिखित है, उसका प्राप्तिस्थान है—लंदन मेडिकल स्टोर, १९७, बहूबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। उक्त पुस्तक के प्रथम खण्ड के पृष्ट ५६ पर ब्लेकवाटर फिवर की चिकित्सा में 'भाइटेक्स-पिडांकुलारिस' को उत्तम लिखा है। इसके वर्णन में लिखा है कि यह आसाम प्रदेश का बृहत् वृक्ष है जो उस देश में 'आहइ, आशइ' नाम से प्रख्यात है। वृक्ष बहुत बड़ा होता है। तना मोटा, मुलायम और सूक्ष्म छालयुक्त। पत्ते प्रायः त्रिपत्र व एक-दो फीट लम्बे होते हैं। फूल—सादा छोटे आकार का, उसके मध्य से गुच्छ हल्दी के रंग का। फल इसके एक इन्च प्रमाण होते हैं। गोआलपाड़ा, कामरूप, शिलांग, नवगांव, जोरहाट, गारो पहाड़ याने आसाम प्रदेश में सब जगह यह वृक्ष देखा जाता है। इस वृक्ष के पत्तों से सिद्ध किये हुए क्वाथ को उस प्रदेश में ब्लेक वाटर फिवर की चिकित्सा में धन्वन्तरि औषध कहा जाता है। मुंडा, भील, कोल, ओरांव, संथाल सभी लोग ज्वर होते ही इसके पत्तों का रस सेवन करते हैं।

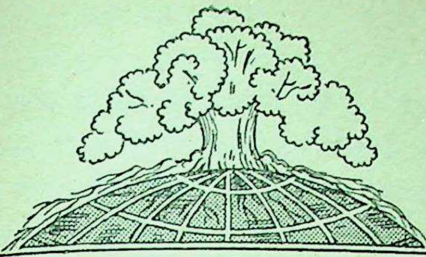
एक ऑफिसर लिखते हैं कि उनके भाई के सन् १९२६ में नवगांव में ज्वर व रक्त पेशाब से ग्रसित होने पर अंग्रेज व देशी चिकित्सकों ने जबाव दे दिया। इसके पत्तों के रस के सेवन से मृतप्राय: रोगी ने आरोग्य लाभ किया। संथालों के एक पादरी पुरोहित ने सिविल सर्जन को इस औषधि का परिचय दिया। डॉ० हर्नि ने सरक्यूलर द्वारा इसके क्वाथ का प्रचार किया।

क्वाथ तैयार करने की विधि—आधी छटाँक हरे पत्ते १० छटाँक जल में २० मिनट उबालना चाहिए। जब गहरा हल्दी के रंग का जल हो जाय तब उतार कर छान कर प्रति घण्टे एक आउन्स परिमाण से सेवन करावें। सूखे पत्ते होने पर भी आधी छटाँक ले कर १० छटाँक उबलते हुए जल में १० मिनट रख कर गहरा रंग आने पर १ आउन्स मात्रा में घण्टे-घण्टे देवें।

एक प्रतिष्ठान ने टिंचर व इंजेक्शन 'पिडांकुलीन' निकाला है। मांस में सूचीवेध करने के बाद १२ से १८ घण्टे में पेशाब का रंग स्वाभाविक व परिमाण में ज्यादा हो जाता है। रक्तकण अब नष्ट नहीं होते। हिमालिसिस की रुकावट होती है। इसकी कोई विष-क्रिया नहीं होती।

बंगाल और आसाम प्रदेश के वैद्य-बन्धुओं को इस ओर पूरा लक्ष्य दे कर विशेष कर बंगाल और आसाम प्रदेश के प्रान्तीय वैद्य सम्मेलनों को और अनुसन्धान-प्रिय वैद्यों को ध्यान दे कर रंगीन चित्र, आयुर्वेदीय नाम, रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव व दोषों पर अनुभव शीघ्र आयुर्वेदीय पत्र-पत्रिकाओं में देवें, जिससे आगे बननेवाले निघण्टुओं में इस उपादेय वृक्ष का समावेश हो जाय।

—**वैद्याचार्य उदयलाल महात्मा,** देवगढ़ (राजस्थान)।



आयुर्वेद-जगत्

चिकित्सा में मन का स्थान

उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने लखनऊ में अनुष्ठित भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के वार्षिक अधिवेशन में अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए शारीरिक चिकित्सा में मानव मस्तिष्क की अन्तर्भूत शक्तियों के उपयोग की सलाह दी और कहा कि किसी भी रोग या व्याधि का उपचार करने के लिये मानव के मन और मस्तिष्क की उन मूलभूत शक्तियों के अध्ययन की अपेक्षा है जो रोग-शमन करने में सहायक होती हैं।

डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने उक्त कथन को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा—यह सिद्ध हो चुका है कि चिकित्सा-विज्ञान में मन का एक विशेष स्थान है। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में मन और शरीर का यह अन्योन्याश्रय सम्बन्ध बहुत पहले से स्वीकार किया जा चुका है। वर्तमान औषधि-विज्ञान ने भी मन और मस्तिष्क को न केवल स्वास्थ्य के लिए एक आवश्यक चीज माना है वरन् उसे एक चमत्कारपूर्ण रोगोपचारक भी स्वीकार किया है।

मुख्यमंत्री ने कहा कि चिकित्सा-विज्ञान वस्तुतः अन्य प्रकार के ज्ञान-विज्ञान से सर्वथा पृथक् कोई विषय नहीं, बल्कि भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र और मनोविज्ञान आदि से सम्बन्धित उस ज्ञानराशि का ही एक अंग है जो मानवता ने कालक्रम से अर्जित किया है। हम यह आशा करते हैं कि ज्ञान-विज्ञान की समस्त शाखाओं-प्रशाखाओं के सहयोग से मानवता का कल्याण यथापूर्व होता रहेगा। आयुर्वेद और वर्तमान चिकित्सा-पद्धति का अन्तर बताते हुए डाक्टर सम्पूर्णानन्द ने कहा कि आज की चिकित्सा पद्धति में जहाँ शरीर के रासायनिक परिवर्तनों और तज्जन्य दोषों को दूर करने की चेष्टा की जाती है, वहाँ आयुर्वेद में उन मौलिक दशाओं में ही उन्मूलन का प्रयत्न किया जाता है जिनके कारण शरीर में इस प्रकार के रासायनिक परिवर्तन हुआ करते हैं। ऐसी दशा में आंगिक दोषों और दवाओं का अध्ययन करने के साथ ही आवश्यकता इस बात की है कि शरीर की उन विविध प्रक्रियाओं का भी भलीभाँति अध्ययन किया जाय जिनका संतुलन बिगड़ जाने से मनुष्य का शरीर रुग्ण हो जाता है।

आयुर्वेद का प्रमाणीकरण आवश्यक

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड के पटना स्थित कार्यालय में भवन के अध्यक्ष श्री रामदयाल जोशी द्वारा गत ३० अक्टूबर को भारत सरकार के रेल मंत्री श्री जगजीवन राम के सम्मान में एक चाय पार्टी दी गयी। भवन की ओर से श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य ने रेल-मंत्री का स्वागत करते हुए भवन द्वारा आयुर्वेद के क्षेत्र में की गयी सेवाओं का उल्लेख किया। अपने स्वागत के उत्तर में रेलमंत्री श्री जगजीवन राम ने कहा कि आयुर्वेदिक औषधियों का प्रमाणीकरण आवश्यक है। आपने कहा कि जबतक आयुर्वेदिक औषधियों का स्टैण्डर्ड निश्चित नहीं हो जाता तबतक गड़बड़ी बनी रहेगी। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा आयुर्वेदोत्थान के हित में की जाने वाली सेवाओं के लिए भवन संचालकों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए आपने भवन के उत्तरोत्तर अभ्युदय की शुभकामना की। इस अवसर पर केन्द्रीय रेलवे मंत्री के अतिरिक्त बिहार के राजस्व मंत्री पण्डित विनोदानन्द झा और नगर के अनेक विशिष्ट व्यक्ति उपस्थित थे।

कविराज प्रताप सिंह का भाषण

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीनस्थ आयुर्वेदीय विभाग के परामर्शदाता वैद्यरत्न कविराज प्रताप सिंह ने आसाम के आयुर्वेदज्ञों के सम्मुख शिलांग में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि वैद्य समाज प्रकृति का पुजारी होता है, इसी कारण वैद्य को "प्राकृतिक" की संज्ञा दी गयी है। मनुष्य की प्रकृति और उनकी व्याधियों को भली-भाँति जान कर वैद्यगण पीड़ित मानवता की सेवा पूर्ण दक्षता और शुद्धता के साथ कर सकते हैं। आसाम पर प्रकृति की महान कृपा रही है और यह राज्य प्राकृतिक साधनों यथा वनस्पतियों, जड़ी-बूटियों और खनिज सम्पत्ति से पूर्णतया सम्पन्न है। अतएव, आयुर्वेदीय दृष्टि से आसाम महत्त्व रखता है।

यहाँ की जड़ी-बूटियों से विस्मयकारी औषधियां बनायी जा सकती हैं।

आपने खेद प्रकट करते हुए कहा कि हमलोगों ने अपने प्राचीन ऋषियों की महान परम्पराओं को भुला दिया है और सम्प्रत्ति हम सिर्फ व्यवसायी बन गये हैं। इसीसे हमलोग अपनी प्रतिष्ठा, अधिकार और वैद्यक वृत्ति--प्रैक्टिस सब खोते चले जा रहे हैं। कविराज जी ने जोरदार शब्दों में आयुर्वेद प्रेमियों से प्रकृति और उसके साथ-साथ आयुर्वेद शास्त्र का गंभीर अध्ययन करने की मार्मिक अपील की। आपने कहा कि प्रकृति और आयुर्वेद दोनों ही ईश्वरीय अवदान हैं--अतएव, इनका मानव कल्याण के लिए अधिकाधिक अध्ययन कर उपयोग किया जाना समीचीन है।

कविराज जी ने कहा कि अब हमलोग विदेशी-दासता से मुक्त हैं और विश्व में अपनी प्रतिष्ठा और मान-सम्मान बढ़ाना चाहते हैं। हमारे प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत का मान बढ़ाया है। अतएव, हमलोगों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि भारत अपनी सभी आवश्यकताओं--जिनमें औषधियां भी हैं--की पूर्त्ति स्वयं कर सके। किसी भी क्षेत्र में भारत का परमुखापेक्षी बना रहना अत्यन्त खेद का विषय है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमें अविराम प्रयत्न करते रहना है। आपने विद्यार्थी वर्ग को संबोधित करते हुए कहा कि आज के छात्र ही कल इस देश के नागरिक बनेंगे और राष्ट्रोन्नति का सारा दायित्व उन पर ही आने वाला है। इसलिए, प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू का ृष्टान्त अपने सम्मुख रखते हुए-भारत को स्वस्थ, सुखी और समृद्धिशाली बनाने के लिए सतत् प्रयत्न करना चाहिए।

कविराज जी ने सरकार की ओर से अपनी गहरी आशावादिता प्रकट करते हुए कहा कि जहाँ तक वर्तमान राष्ट्रीय सरकार का प्रश्न है, आयुर्वेद के पुनरुत्थान की दिशा में वह कदापि पीछे पाँव नहीं देगी और आयुर्वेद के सम्पूर्ण अंग-उपाङ्ग को शोध द्वारा सम्पन्न बनाने के लिए आर्थिक योगदान भी करेगी। सरकार बम्बई, बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, केरल, कोचीन, मद्रास और आंध्रप्रदेश में पृथक आयुर्वेदिक विभागों की स्थापना कर चुकी है। साथ ही इन राज्यों में इन विभागों के अन्तर्गत निर्देशक तथा उपनिर्देशक की भी नियुक्ति की गयी है, जिनके जिम्मे विभिन्न राज्यों में सरकार द्वारा संचालित आयुर्वेदिक कालेजों, स्कूलों, अस्पतालों और औषधालयों की व्यवस्था का भार है।

आपने कहा कि उत्कल सरकार ने हाल ही में इस आशय की घोषणा की है कि वह आयुर्वेदिक डिप्लोमा प्राप्त व्यक्तियों यथा आयुर्वेदाचार्य आदि का दर्जा (स्तर) आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के डिप्लोमा होल्डरों तथा स्नातकों के समकक्ष करने जा रही है ताकि आयुर्वेदज्ञों को समकक्षता का दर्जा प्राप्त हो सके।

आपने आसाम सरकार की चर्चा करते हुए बताया कि आसाम की लोकप्रिय सरकार भी शीघ्र ही इस ओर कदम उठावेगी। मुझे पूर्ण आशा है कि सरकार एक निर्देशक की नियुक्ति कर आयुर्वेद का एक सर्वथा पृथक विभाग स्थापित करते हुए आयुर्वेदिक स्नातकों को यह अवसर प्रदान करेगी कि वे लोग आसाम राज्य के प्रत्येक गाँव की सेवा आयुर्वेद के माध्यम से कर सकें।

जहाँ तक प्राकृतिक साधनों का प्रश्न है, यह राज्य प्राकृतिक साधनों से अत्यन्त सम्पन्न है और आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियां भी प्रचुर परिमाण में इस राज्य में प्राप्य हैं--फलतः आयुर्वेद के विकास के लिए इस राज्य का बड़ा महत्त्व है। आपने एक सुझाव रखते हुए कहा कि यदि सरकार आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों का उद्यान लगाने की दिशा में प्रयत्नशील हो तो जनता को सच्ची आयुर्वेदिक औषधियाँ प्राप्त हो सकें--साथ ही सरकार को भी राजस्व के रूप में आर्थिक लाभ हो सके।

बिहार प्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन

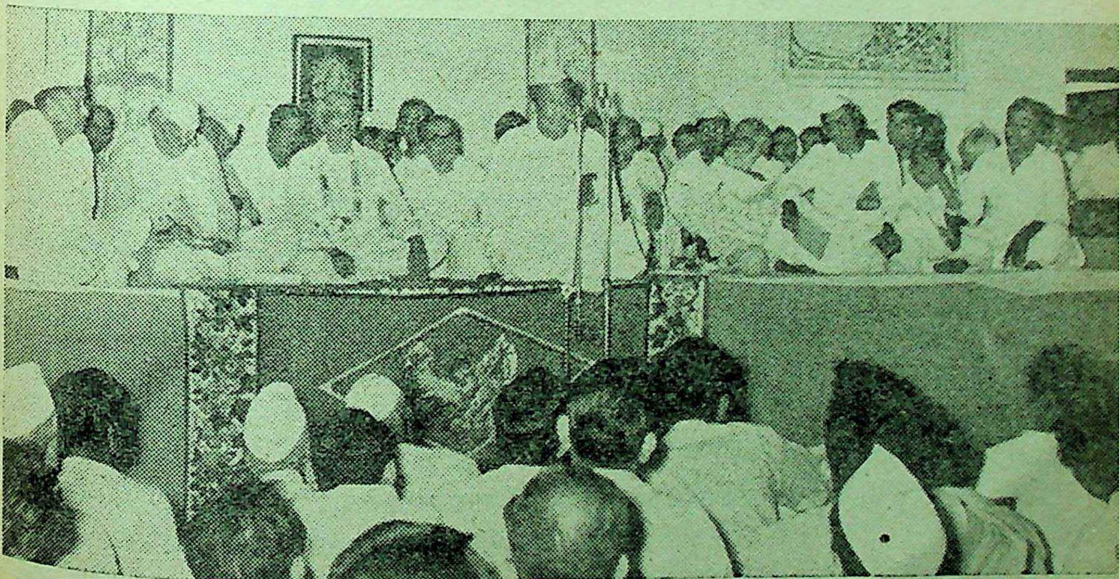
बिहार प्रान्तीय वैद्य-सम्मेलन का २१वाँ अधिवेशन ता० २६, २७ अक्टूबर १९५७ को पटना जिला अन्तर्गत विक्रम में बिहार के ज्ञान वयोवृद्ध आयुर्वेद-सेवी आचार्य त्रिपाठी कमला प्रसाद मणि की अध्यक्षता में ससमारोह सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर बिहार सरकार के जन-स्वास्थ्य मन्त्री श्री वीरचन्द पटेल, राजस्व मन्त्री पं० विनोदानन्द झा, कानून मन्त्री श्री जगत नारायण लाल, उपशिक्षा-मन्त्री श्री कृष्णकान्त सिंह एवं आयुर्वेद महामण्डल के भूतपूर्व अध्यक्ष आयुर्वेदपंचानन पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल आदि विद्वानों ने भाषण दिये। जनतन्त्र के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद, उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन, योजना मन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा, वाणिज्य मन्त्री श्री मुरारजी

देसाई, रेलवे मन्त्री श्री जगजीवन राम, बिहार के शिक्षा मन्त्री श्री कुमार गंगानन्द सिंह, उत्पादन मन्त्री श्री भोला शास्त्री, मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री पटाशकर एवं अन्य प्रान्तीय एवं केन्द्रीय मन्त्रियों, साहित्यकारों के शुभ संदेश प्राप्त हुए।

बिहार के विभिन्न भागों से करीब ४०० प्रतिनिधि अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। बिहार की सभी आयुर्वेदीय संस्थाओं, संस्कृत विद्यालयों एवं आयुर्वेदिक कालेजों के प्रतिनिधि अधिवेशन में उपस्थित थे। विशेष रूप से बिहार की जनता एवं उसके प्रतिनिधियों, पत्रकारों, आकाशवाणी केन्द्र पटना, पब्लिक रिलेशन्स डिपार्टमेन्ट बिहार ने सम्मेलन को सफल बनाने के लिए पूर्ण सहयोग दिया।

२६ फरवरी को सुबह ६ बजे प्रदर्शनी का उद्घाटन बिहार सरकार के राजस्व मन्त्री माननीय पं० विनोदानन्द झाजी द्वारा सम्पन्न हुआ। प्रदर्शनी का आयोजन सभा-भवन के सामने आकर्षक पुस्तकालय-भवन में किया गया था। प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए राजस्व मन्त्री ने कहा कि पश्चिम के प्रभाव में आकर आत्मविस्मरण के फलस्वरूप हमें अपनी ही संस्कृति से अश्रद्धा होने लगी। हमारा संस्कार बिगड़ता गया और उसी के परिणाम स्वरूप आयुर्वेद के प्रति हम उदासीन होते गये। आज लोग ऐलोपैथिक की ओर क्यों दौड़ते चले जा रहे हैं। इसलिए कि उसका असर तात्कालिक होता है। बाद में क्या परिणाम होगा, इसे सोचने की फुर्सत आज किसे है। छात्र लोग भी अधिक पैसा कमाने के फेर में ऐलोपैथी चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। उन्होंने वैद्यों से भी अपील की कि वे इस परीक्षा के युग में खरा उतरने के लिए प्रयत्न करें तथा आपस के भेदभाव भुला कर आयुर्वेद की उन्नति के लिए संगठित प्रयास करें।

सम्मेलन का खुला अधिवेशन २ बजे दिन से सभा-भवन में प्रारम्भ हुआ। सभा-भवन प्रतिनिधियों और दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था। पं० गणेशदेव आर्य ने मंगल पाठ किया। तदनन्तर स्वास्थ्य मन्त्री श्री वीरचन्द पटेल ने सम्मेलन का उद्घाटन किया। अपने उद्घाटन भाषण में जनस्वास्थ्य मन्त्री ने कहा कि प्राचीन काल आयुर्वेद के लिए स्वर्ण युग था, परन्तु केवल उसकी चर्चा करने से आज कोई लाभ नहीं। आयुर्वेद के भविष्य की चिन्ता करनेवालों को चाहिए कि नये सिद्धान्तों को ग्रहण करते हुए वे आयुर्वेद के उन मौलिक सिद्धान्तों को न भूलें, जो इस चिकित्सा-प्रणाली की आधारशिला है। उन्होंने आयुर्वेद की उन्नति के लिए तीन बातों की आवश्यकता बतायी। उन्होंने कहा कि रोगों के कारण कीटाणु हैं। आयुर्वेद के अनुसार रोग का कारण 'त्रिदोष' होता है। अब प्रश्न उठता है कि नये सिद्धान्त की सत्यता को जान कर क्या हम



बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन में स्वास्थ्य-मंत्री श्री वीरचन्द पटेल भाषण करते दिखायी दे रहे हैं।

आयुर्वेद के आधार भूत सिद्धान्त को त्याग दें। किन्तु ऐसा करने से आयुर्वेद ही समाप्त हो जायगा। उन्होंने आयुर्वेद उन्नति के लिए आयुर्वेद अनुसन्धान कार्य की आवश्यकता भी बतलायी। साथ ही उन्होंने आयुर्वेद के अध्ययन के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक बताया। तत्पश्चात स्वागताध्यक्ष श्री खदेरन सिंह, अध्यक्ष जिला परिषद्, पटना ने अपना स्वागत भाषण किया। स्वागत भाषण के अनन्तर आपने अध्यक्ष पद का प्रस्ताव किया, जिसका सब जिलों की ओर से अनुमोदन किया गया। तदनन्तर अध्यक्ष आचार्य पं० कमला प्रसाद मणि जी ने अध्यक्ष पद का आसन ग्रहण किया।

अध्यक्ष पद से बोलते हुए आचार्य जी ने आयुर्वेद के प्रति सरकार की उपेक्षापूर्ण नीति पर खेद प्रकट किया और दावे के साथ कहा कि ऐलोपैथी के लिए सरकार जितना ध्यान दे रही है, उसका दशमांश भी यदि वह आयुर्वेद के लिए देने की कृपा करे तो आयुर्वेद की महत्ता सिद्ध हो जा सकती है। आगे उन्होंने कहा कि आधुनिक विज्ञान की ओर से यदि हम मुख मोड़ें तो हमारा विज्ञान समीचीन नहीं कहा जा सकता। कोई भी विज्ञान, चाहे वह कितना भी साधन-सम्पन्न क्यों न हो, बराबर अनुसन्धान एवं उनका देश-काल-परिस्थितिवश उसमें संकलन कर उसमें सदा घुलना अपेक्षित है। यदि हम उसमें निरन्तर समीचीनता लाने में उदासीन रहे तो एक दिन वह सार्वभौम विज्ञान निष्क्रिय हो जायगा। अतः आयुर्वेद के छिन्न-भिन्न अंगों को सुसंकलित कर एवं आधुनिक विज्ञान को अपने अनुसार सुव्यवस्थित कर उसे समयानुसार सम्पन्न करना होगा।

अगले दिन २७ अक्टूबर के ९ बजे सवेरे आयुर्वेद द्रव्य गुण परिषद्, औषध निर्माण परिषद् एवं आयुर्वेद-दर्शन परिषद् के अधिवेशन हुए, जिसका सभापतित्व क्रमशः आचार्य पं० उपेन्द्रनाथ झा, वैद्य पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा एवं आचार्य पं० उमेशचन्द मिश्र जी ने किया। अधिवेशन का उद्घाटन आयुर्वेद महामण्डल के भूतपूर्व अध्यक्ष आयुर्वेद-पंचानन पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल ने किया। शुक्लजी का उद्घाटन भाषण अत्यन्त ही ओजपूर्ण और सामयिक था। उन्होंने वैद्यों को एक हो कर रचनात्मक कार्य करने का सुझाव दिया।

पुनः २ बजे दिन से सम्मेलन का खुला अधिवेशन आचार्य पं० त्रिपाठी कमला प्रसाद मणि की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ, जिसमें कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। खुले अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा आसवारिष्ट पर लगाए गये प्रतिबन्ध का घोर विरोध किया गया और सरकार से निवेदन किया गया कि आसवारिष्ट पर लगाए गये प्रतिबन्ध को अविलम्ब उठा लिया जाय और उसके निर्माण में सरकार सहयोग प्रदान करे ताकि देशी चिकित्सा विज्ञान स्वतन्त्र भारत में पूर्ण रूप से फूल-फल सके।

उस दिन के अधिवेशन में बिहार सरकार के कानून मन्त्री श्री जगत नारायण लाल, श्रीमती रामप्यारी देवी एवं उपशिक्षा मन्त्री श्री कृष्णकान्त सिंह के ओजस्वी भाषण हुए।

अन्त में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के अध्यक्ष पं० रामदयाल जोशीजी ने वैद्यों से निवेदन करते हुए कहा कि एकता और सद्भावना में आयुर्वेद और आयुर्वेद-समाज का कल्याण सम्भव है। विवाद का युग समाप्त हो चुका। आज जो मिल कर काम करेगा वही आगे बढ़ सकेगा, जनता और सरकार का प्रिय होगा। अतः वैद्यों को पारस्परिक मतभेद भूल कर रचनात्मक कार्य में हाथ बँटाना चाहिए। खुले अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा सर्वसम्मति से कार्य-कारी सभा गठित करने का भार सभापति महोदय को सौंपा गया। इस तरह अधिवेशन का कार्य-क्रम २७ अक्टूबर १९५७ के रात्रि सात बजे सुमधुर वातावरण में समाप्त हुआ।

राजकीय आयुर्वेद यूनानी चिकित्सक संघ

राजकीय आयुर्वेद यूनानी चिकित्सक संघ, उत्तर प्रदेश की कार्यकारिणी की बैठक गत २२ नवम्बर को श्री हकीम ज्याउद्दीन अहमद नदवी के सभापतित्व में लखनऊ में हुई, जिसमें निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए—

सर्वप्रथम स्वर्गीय श्री विज्ञानानन्द पाण्डेय भूतपूर्व वैद्य इन्चार्ज पौन नगला चि० (बरेली) की निर्मम हत्या पर शोक प्रस्ताव पास किया तथा उनके शोक संतप्त परिवार को समवेदनात्मक पत्र लिखा गया। साथ ही यह भी तय हुआ कि स्वर्गीय वैद्यजी के परिवार को उचित आर्थिक सहायता दिलाने के लिये संघ उचित कार्यवाही करे।

पौन नगला से राजकीय चिकित्सालय को अविलम्ब स्थानान्तर करने के लिये विभागीय उपसंचालक महोदय से प्रार्थना की गई।

सरकार से प्रार्थना की गई कि हम चिकित्सकों के कैडर एवं Designation को क्रमशः State Subordinate Medical Service (Ayurved) तथा चिकित्साधिकारी निश्चित किया जाय।

चिकित्सकों की दवाओं की मांग को आवश्यकता के अनुसार पूर्ति करने के निमित्त विभागीय उपसंचालक महोदय से प्रार्थना की गई।

चिकित्सालय के साथ समीपस्थ रेलवे या बस स्टेशन सूचक लिस्ट बनवाने के निमित्त उपसंचालक महोदय से प्रार्थना की गई।

चिकित्सकों का Confirmation नियत अवधि के अन्दर-अन्दर अवश्य होने के लिये विभागीय उपसंचालक महोदय से प्रार्थना की गई।

परस्पर (Mutual) ट्रांस्फर चाहनेवाले चिकित्सकों को अवश्य Transfer करने के निमित्त उपसंचालक महोदय से प्रार्थना की गई।

विभागीय चिकित्सालयों में संलग्न कम्पौन्डर बन्धु कहीं-कहीं अपनी प्राइवेट प्रैक्टिस करते हैं। अतः जनता व चिकित्सालय के हित-संरक्षण के लिये तथा नियम विरुद्ध होने के नाते उनके खिलाफ सख्त कार्यवाही करने के लिये विभागीय उपसंचालक महोदय से प्रार्थना की गई।

आयुर्वेद व तिब्ब की सेवाओं की सूचना सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिये अपना एक पत्र निकालने के निमित्त विभागीय उपसंचालक महोदय से स्वीकृति प्रदानार्थ प्रार्थना की गई।

संघ का वार्षिक अधिवेशन मार्च १९५८ ई० में करना तय किया गया, जिसकी निश्चित तिथि की सूचना बाद में दी जायेगी।

कार्यकारिणी के सदस्य माननीय विभागीय उपसंचालक महोदय से उनके कार्यालय में चिकित्सकों के सामूहिक कष्टों के निराकरण के निमित्त मिले थे। श्रीमान् जी ने हमारे कष्टों को सहानुभूतिपूर्वक सुना तथा उनको नोट किया। आपने उनके निराकरण का पूर्ण आश्वासन दिया।

स्वर्गीय श्री विज्ञानानन्द पाण्डेय जी के केस में विभाग अत्यधिक सहानुभूतिपूर्वक कार्य कर रहा है, यह जान कर सदस्यों को बड़ा सन्तोष हुआ।

आल इण्डिया यूनानी तिब्बी कानफरेन्स

कानफरेन्स के जनरल सेक्रेटरी ने उप-संचालक, आयुर्वेद, उत्तर प्रदेश, को सूचित किया है कि उनकी संस्था का वार्षिक अधिवेशन दिनांक २७, २८, २९, ३० दिसम्बर १९५७ को बुरहानपुर मध्य प्रदेश में हो रहा है। इस अवसर पर एक तिब्बी नुमायश भी लगी है। प्रदेश में आयुर्वेद एवं तिब्ब विभाग में कार्य करने वाले हकीमों को भी अधिवेशन में भाग लेने के लिये आमन्त्रित किया गया है।

पारद-अनुसन्धान कार्यालय

पारद अनुसन्धान कार्यालय का स्थानान्तर देवप्रयाग (गढ़वाल) से कनखल (हरिद्वार) में हो गया है। अतएव अब निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करना चाहिए—

श्री नारायण स्वामी, पारद अनुसन्धान कार्यालय, विश्वज्ञान मन्दिर, कनखल, हरिद्वार (जिला सहारनपुर)।

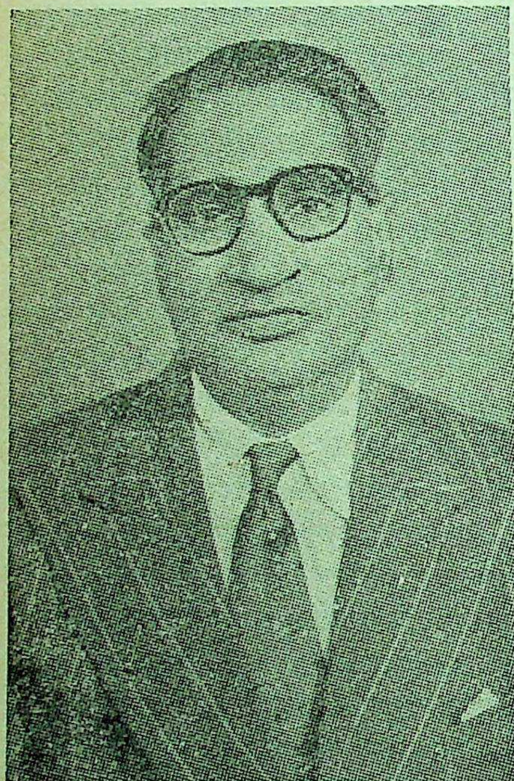
वैद्यराज श्री सूर्यनारायण जोशी का अभिनंदन

झाँसी विद्वत्परिषद् एवं बुन्देलखण्ड वैद्य-हकीम परिषद् की ओर से इन्दौर निवासी सुख्यात आयुर्वेदीय विद्वान श्री पं० सूर्यनारायण जी जोशी वैद्यराज का भव्य अभिनन्दन गत २८ नवम्बर को किया गया। समारोह की अध्यक्षता वयोवृद्ध वैद्यराज पंडित परमानन्द जी व्यास ने की। समारोह में स्थानीय सभी प्रमुख वैद्य-हकीम एवं प्रतिष्ठित नागरिकों ने भाग लिया। आरम्भ में वैद्य श्री महावीरप्रसाद जी शर्मा बहड़ ने मुख्य अतिथि श्री जोशी जी का संक्षिप्त परिचय दिया। संस्कृताचार्य पण्डित लक्ष्मीकान्त जी झा शास्त्री, प्रधान सारस्वत संस्कृत विद्यालय ने झाँसीस्थ विद्वत्परिषद् की ओर से संस्कृत पद्यमय अभिनन्दन-पत्र पढ़ा और श्रीयुत जोशी जी को समर्पित किया। बुन्देलखण्ड वैद्य-हकीम परिषद् झाँसी की ओर से प्रस्तुत अभिनन्दन पत्र को परिषद् के प्रधानमंत्री वैद्य बाबू राजकिशोर जी ने श्री जोशी जी को अर्पित किया। आयुर्वेद विश्वविद्यालय के प्राध्यापक विद्वद्वर श्री राधाकृष्ण जी पाराशर ने श्रीयुत जोशी जी के जीवन पर बड़ा गंभीर प्रकाश डाला और उन दिनों के संस्मरण सुनाये जब श्री जोशी जी ने इन्दौर के विख्यात सेठ हुकुमचन्द्र जी को आयुर्वेद के हित-कार्यों में धन लगाने को प्रेरित किया था, इन्दौर में राजकुमार सिंह आयुर्वेद विद्यालय को प्रारम्भिक अवस्था में स्थापित किया था। अभिनन्दन पत्रों का उत्तर देते हुए वैद्यराज श्री सूर्यनारायण जी जोशी ने अपनी विस्तृत वक्तृता में उपस्थित जनों और संस्थाओं के प्रति अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट की और कहा कि मेरा तो जीवन ही आयुर्वेद के लिए है और जो

कुछ कार्य में कर सका—वह तो स्वाभाविक रूप में ही मेरे द्वारा हो गए या यों कहिए कि ऐसे सुयोग और साधन मिलते गए जिनसे कुछ कार्य मेरे द्वारा सम्पन्न हुए। आपने इच्छा व्यक्त की कि आयुर्वेद के अधिकाधिक प्रचार के लिए प्रत्येक शहर में एक धन्वन्तरि मन्दिर की स्थापना की जानी चाहिए, जिसमें साधारण जनता को आयुर्वेदीय चिकित्सा का सब प्रकार का लाभ दिया जा सके। अन्त में स्वल्पाहार के उपरान्त समारोह सानन्द सम्पन्न हुआ।

आन्ध्र प्रदेश में आयुर्वेद

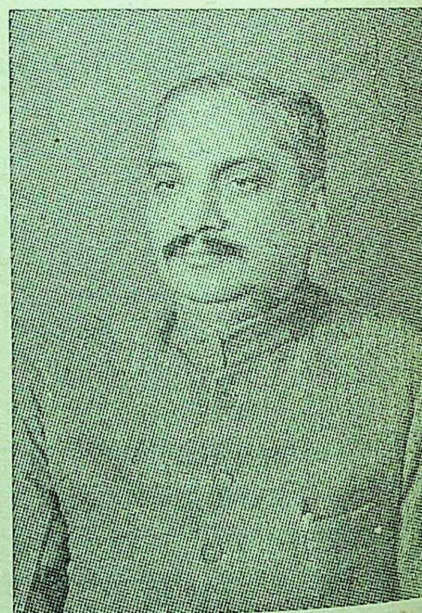
गत १ नवम्बर १९५६ को आंध्र प्रदेश का श्री गणेश हुआ। उसी दिन से प्रान्त में स्वतन्त्र भारतीय चिकित्सा विभाग कार्य करने लगा। दिसम्बर १९५६ में मद्रास के सुप्रसिद्ध वैद्यराज एवं कालेज आफ इन्टेग्रेटिड मैडिसन



श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त, स्वास्थ्य सचिव, आन्ध्र-प्रदेश

के उपाचार्य श्री एम० विश्वेश्वर शास्त्री आयुर्वेदाचार्य इस विभाग के प्रथम अध्यक्ष नियुक्त हुए। आप आंध्र के सुप्रसिद्ध आयुर्वेद मनीषी श्री रामलिंगय्या गारु शास्त्री के सुपुत्र हैं। आयुर्वेद कालेज तथा बोर्ड को वर्तमान रूप देने का बहुत कुछ श्रेय आपको ही है। उसके अतिरिक्त आंध्र आयुर्वेद परिषद् (१९४८) तथा अखिल हैदराबाद आयुर्वेद कान्फ्रेंस (१९५०) के सभापति तथा त्रावणकोर, मैसूर तथा काशी विश्वविद्यालय एवं जामनगर आयुर्वेद अनुसंधानशाला आदि की प्रबन्ध समिति तथा परीक्षा समिति के आप विशिष्ट सदस्य थे। कृषि अनुसन्धान शाला की भारतीय द्रव्य अनुसंधान समिति के भी आप सदस्य हैं। १९५५ में लंका सरकार के विशेष निमन्त्रण पर लंका के राजकीय आयुर्वेद कालेज की रजत जयन्ती के अवसर पर आप विशिष्ट प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित थे।

'अष्टांगहृदय' के शारीर स्थान का तेलगु भाषा में तथा वैद्य योगरत्नावली का तेलगु से अंग्रेजी में आपने भाषानुवाद किया है। इसके अतिरिक्त अन्य भी कई ग्रन्थों का आपने सम्पादन व लेखन किया है। इन सबसे स्पष्ट है कि आंध्र प्रदेश की सरकार ने आयुर्वेद की बागडोर आपके सुयोग्य हाथों में सौंप कर सर्वोत्कृष्ट चुनाव किया है क्योंकि आप जैसी सर्वतोमुखी योग्यता, प्रतिभा, विद्वत्ता तथा प्रशासकीय अनुभव आदि गुणों का एक ही व्यक्ति में समावेश बहुत दुर्लभ होता है।



श्री एम० विश्वेश्वर शास्त्री

इस समय प्रान्त के भारतीय चिकित्सा विभाग का बजट १६ लाख रुपए के लगभग है। इनमें ७ लाख के लगभग आयुर्वेद पर तथा ९ लाख के लगभग यूनानी पर व्यय होता है।

आंध्र प्रदेश, तेलंगाना (भू० पू० हैदराबाद राज्य का तेलगू भाषाभाषी क्षेत्र) तथा आंध्र क्षेत्र में बंटा हुआ है।

तेलंगाना में ३७ राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय तथा ३३ सहायता प्राप्त औषधालय हैं जिनपर प्रतिवर्ष ३ लाख रुपए के लगभग व्यय होता है। आंध्र क्षेत्र में ४६६ सहायता प्राप्त (पंचायत बोर्ड, म्युनिसिपैलिटी, स्थानीय कोष, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि संस्थाओं द्वारा संचालित) तथा १ राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय है।

राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय हैदराबाद प्रान्त का एकमात्र राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय है। इसमें इस वर्ष हिन्दी माध्यम के साथ तेलगु माध्यम से भी शिक्षा की व्यवस्था की गई है। इसके प्रिंसिपल श्री डा० मलिकार्जुन राव आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध विद्वान हैं। इसके पूर्व आप मद्रास आयुर्वेद कालेज में सीनियर प्रोफेसर थे। महाविद्यालय में संलग्न आतुरालय में ६० रुग्ण शय्याओं का प्रबन्ध है। इस वर्ष भारत सरकार ने अतिरिक्त ३० रुग्ण शय्याओं तथा वनस्पति उद्यान के लिए ७००००) रुपए तथा प्रान्तीय सरकार ने आयुर्वेदीय अनुसंधान के लिए १००००) रुपए की स्वीकृति दी है।

तेलगाना क्षेत्र में पहले से ही वैद्यों के रजिस्ट्रेशन के लिए बोर्ड आफ इण्डियन मैडिसन कायम है जिसके अध्यक्ष प्रान्त के स्वास्थ्य सचिव श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त आई० ए० एम० हैं। हैदराबाद राज्य में गैरसरकारी क्षेत्र में भी आपकी गतिविधि बहुमुखी थी। राज्य की अनेक संस्थाएं आपके ही सत्प्रयत्न से पनप सकी हैं। भारतीय संस्कृति व चिकित्सा पद्धति में आपको विशेष अनुराग है। बोर्ड के मंत्री, स्पेशल आफिसर श्री एम० विश्वेश्वर शास्त्री हैं। इसके अतिरिक्त ३ वैद्य (सर्व श्री रामानुज स्वामी, राजवद्य गया प्रसाद शास्त्री तथा श्री वैद्य परांकुशदास) तथा ३ हकीम मनोनीत सदस्य हैं।

आंध्र क्षेत्र के लिए हाल ही में सितम्बर '५७ को राज्य के उपमंत्री ने आंध्र आयुर्वेदिक बोर्ड का उद्घाटन किया है, जिसके अध्यक्ष डा० ए० लक्ष्मीपति हैं तथ २० वैद्य इसके सदस्य होंगे। आंध्र क्षेत्र में वैद्यों का रजिस्ट्रेशन इसी बोर्ड द्वारा होगा। बाद में दोनों बोर्डों का विलीनीकरण कर एक ही बोर्ड कायम रहने का सरकार का विचार है, इस बोर्ड का उद्घाटन करते हुए माननीय मुख्य मंत्री एवं स्वास्थ्य मंत्री श्री एन० संजीव रेड्डी ने कहा कि "आयुर्वेद का भविष्य वैद्यों के हाथ में है। वे अपनी योग्यता व चिकित्सा पटुता से जनता में इसके प्रति आस्था व विश्वास पैदा करें। सरकार हर तरह से आयुर्वेद की प्रगति में सहायक सिद्ध होगी।"

यह स्पष्ट है कि आंध्र प्रदेश की सरकार आयुर्वेद के पुनरुद्धार के लिए कटिबद्ध है। राज्य के माननीय मुख्य मंत्री, स्वास्थ्य सचिव एवं स्पेशल आफिसर साहिब के सुयोग्य नेतृत्व में भारतीय चिकित्सा विभाग की १ वर्ष की प्रगति सराहनीय एवं प्रशंसनीय है। आशा है इस त्रिमूर्ति के सत्प्रयत्नों से आंध्रप्रदेश शीघ्र ही आयुर्वेद प्रसार व प्रचार में दूसरे राज्यों का मार्गदर्शन करेगा।

मुजफ्फरपुर आयुर्वेद विज्ञान सम्मेलन

मुजफ्फरपुर जिला आयुर्वेद विज्ञान सम्मेलन के पदाधिकारियों का नये वर्ष (१९५७-५८) के लिये चुनाव हुआ जिसमें उत्तर विहार के ख्यातिलब्ध चिकित्सक श्रीयुत् पं० ब्रह्मदत्त शर्मा वैद्यराज, आयुर्वेदाचार्य, सभापति, श्री पं० सुरेन्द्र शर्मा वैद्य साहित्यायुर्वेदाचार्य, षड्शास्त्री,-उपसभापति, श्री पं० सीताराम शास्त्री वैद्य आयुर्वेदाचार्य, प्रधान मंत्री, कविराज श्री रामकिंकर प्रसाद जी, जी० ए० एम० एस० (आयुर्वेदाचार्य) उप मंत्री, चुने गये। साथ ही मुजफ्फरपुर नगर आयुर्वेद विज्ञान समिति के पदाधिकारियों का भी निर्वाचन हुआ जिसमें कविराज श्री गोस्वामी सुरेन्द्र गिरिजी आयुर्वेदाचार्य सभापति, श्री पं० कन्हैयालाल जी शर्मा वैद्य आयुर्वेद शास्त्री तथा श्री हरिहर प्रसाद जी वैद्य उपसभापति, श्री पं० ब्रजलाल शर्मा जी आयुर्वेदाचार्य प्रधानमंत्री, श्री पं० रामाकान्त जी ठाकुर आयुर्वेदाचार्य, उपमंत्री चुने गये। इसके अतिरिक्त सात वैद्य प्रान्तीय प्रतिनिधि तथा ग्यारह वैद्य जिला प्रतिनिधि बनाये गये।

आयुर्वेद साहित्य समिति का वार्षिकोत्सव

पिलानी में आयुर्वेद साहित्य समिति का तृतीय वार्षिकोत्सव श्री लोयलका आतुरालय में विरला आयुर्वेद विभाग के मंत्री श्री रामनिवास शाह की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। आयुर्वेदीय झंडागायन से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। इस अवसर पर श्री रघुनन्दनलाल दत्त ने आयुर्वेदीय संस्थाओं की उन्नति के उपायों पर प्रकाश डाला तथा श्री राजेन्द्रकुमार मिश्र ने भारतीय और पाश्चात्य चिकित्साप्रणालियों की तुलना की। राजस्थान के प्रसिद्ध कवि श्री द्विरेफ की रचना और संगीताचार्य श्री केलकर का गायन लोगों ने बहुत पसन्द

किया। समिति के प्रधानमंत्री श्री किशोरीलाल शर्मा किशोर ने सबका स्वागत किया।

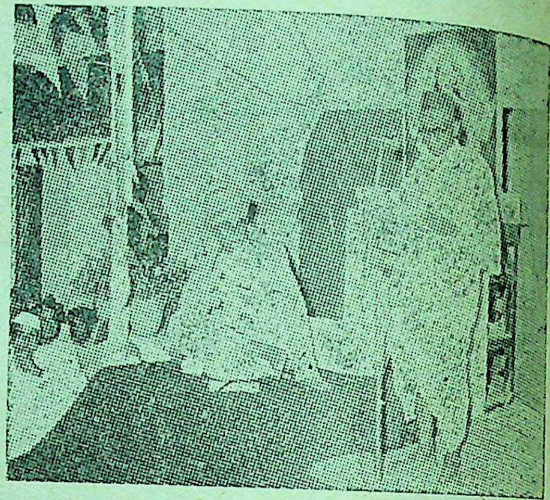
श्री ब्रजमोहन दास लोयलका ने उत्सव का उद्घाटन करते हुए बताया कि आयुर्वेद दूसरी चिकित्सा प्रणालियों की तरह केवल एक चिकित्सा पद्धति मात्र नहीं है। आयुर्वेद में हमारे समग्र जीवन को आदर्श रूप से बिता कर मोक्ष-प्राप्ति के उपायों तक का निदर्शन है। यह जीवन विज्ञान है। इस का प्रसार करना हम सबका लक्ष्य होना चाहिए। डा० श्री एच० एल० शर्मा पी० एच० डी० ने आयुर्वेदज्ञों को उद्बोधन करते हुए विस्तार से कहा कि आयुर्वेद को नव्यविज्ञान से घबराना नहीं चाहिए, अपितु उसकी अच्छी बातों को आत्मसात् करना उचित है। आयुर्वेद में कितनी ही बातों का सूक्ष्म रूप में निर्देश है, उनके सम्बन्ध में अन्वेषण होना चाहिए और वह अनुसन्धान पाश्चात्य चिकित्सकों की कसौटी पर भी खरा उतरे, ऐसी व्यवस्था करें। एक पाश्चात्य चिकित्सक ने महर्षि सुश्रुत के बाजीकरण तंत्र में वर्णित वृषभवृषणों के उल्लेख को पढ़ कर पुंसत्वशक्ति बढ़ाने की अपूर्व दवा खोज निकाली है। आयुर्वेद के छात्रों को भी अपना अध्ययन दिल और दिमाग दोनों खुले रख कर पाश्चात्य चिकित्सा और नव्य विज्ञान की अच्छी बातों का मनन करना चाहिए।

आचार्य नित्यानन्द ने समिति की प्रवृत्तियों की प्रशंसा करते हुए सदस्यों को बताया कि आप लोग एक महान और आदर्श कार्य में संलग्न हैं। चिकित्सा का कार्य सम्पूर्ण विश्व के लिए महत्वपूर्ण कार्य है। भारतीयों ने तो इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए स्कन्दपुराण में यहाँ तक कह डाला है कि रोग ग्रस्त व्यक्ति की सफल चिकित्सा से जितना पुण्य होता है, वह महान यज्ञों के सम्पन्न करने से भी प्राप्त नहीं हो सकता।

अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए श्री शाह ने कहा कि पारद को संस्कृत किये जाने पर उसमें अचिन्त्य शक्ति का उदय होता है। इस लुप्त प्रक्रिया के उद्धार की जो चेष्टा यहाँ हो रही है, उसे शीघ्रता से बढ़ाया जाना चाहिये। मैं भी आयर्वेद की यथाशक्ति सेवा करता रहता हूँ, किन्तु आयुर्वेद का भविष्य आयुर्वेद के वर्तमान छात्रों के हाथों में है। यदि वे उभयविद्याप्रवीण हो सके तो भविष्य में आयुर्वेद की उन्नति अनिवार्य है।

दमोह में धन्वन्तरि महोत्सव

"हम आयुर्वेद की वास्तविक प्रगति का अनुभव उस दिन करेंगे जिस दिन हमारे वैद्य राजकीय चिकित्सालयों, फौजी अस्पतालों व सरकारी पदों पर सफलतापूर्वक कार्य



दमोह में धन्वन्तरि जयन्ती उत्सव

करते हुए दिखाई देंगे।" उक्त शब्द आयुर्वेद के धुरन्धर विद्वान् प्रयाग निवासी पण्डित जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल ने यहाँ धन्वन्तरि महोत्सव के अध्यक्ष-पद से कहे। आयुर्वेदाचार्य पण्डित शेंड्ये वैद्य जी के विशेष अनुरोध पर शुक्लजी यहाँ उक्त उत्सव के निमित्त पधारे थे। श्री शुक्लजी ने आगे कहा कि हम आयुर्वेद में अन्वेषण के विरोधी नहीं, किन्तु हम ऐसा अन्वेषण चाहते हैं जो आयुर्वेद के सिद्धान्तों को दृष्टिगत रखते हुए आयुर्वेद विज्ञान के विकास में सहायक हो। हम पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली एवं डाक्टरों के विद्वेषी नहीं वरन् हम ऐसे डाक्टर चाहते हैं जो कि स्व० कविराज गणनाथ सेन एवं स्व० यामिनीभूषण राय का आदर्श अपने समक्ष रखें, जिन्होंने पाश्चात्य शिक्षा पद्धति से अध्ययन करने के बाद भी अपनी भारतीय पद्धति को नहीं छोड़ा। बल्कि स्वतः को डाक्टर कहलाने के स्थान पर कविराज कहना अधिक गौरवास्पद माना। जब यह स्थिति होगी तभी हम उन डाक्टर बन्धुओं की उस प्रकार वंदना करेंगे जैसे हम भगवान धन्वन्तरि की कर रहे हैं।

आयुर्वेद विज्ञान की प्राचीनता का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि "जो लोग आयुर्वेद को दो हजार वर्ष पुराना मानते हैं, उन्हें यह जानना चाहिए कि जिस दिवोदास के

पुत्र महाराज प्रतरदत्त का नाम सुश्रुत में आया है वह भगवान राम के समकालीन थे। बाल्मीकि रामायण के उत्तरखंड में उनका उल्लेख आता है। आयुर्वेद तो वह ब्रह्म विद्या है जिसका पुनः स्मरण प्रथम ब्रह्मा ने किया और उसके उपरान्त वह दक्ष प्रजापति, अश्विनी कुमार, इन्द्र व भरद्वाज के द्वारा अनेकानेक ऋषियों को प्राप्त हुई तथा उसका सर्वत्र प्रसार हुआ। समुद्र-मंथन के समय देव-दानवों के सामूहिक प्रयत्नों से मंद्राचल पर्वत की सब प्रकार की जड़ी-बूटियाँ समुद्र में डाली गयीं जिससे प्रथम हलाहल प्रकट हुआ व तदनन्तर ही अमृत कुम्भयुक्त भगवान धन्वन्तरि लोक-कल्याणार्थ प्रकट हुए। प्रारम्भ में पण्डित शेंड्येजी वैद्य ने श्री शुक्लजी का स्वागत करते हुए धन्वन्तरि उत्सव के महत्त्व को समझाया तथा आरोग्य प्राप्ति के लिये आयुर्वेद में बतलाये गये जीवनक्रम का पालन करते हुए मनुष्यमात्र किस प्रकार सुखी रह सकता है उस पर प्रकाश डाला तथा श्री शुक्ल को श्री गणेश चिकित्सा भवन की ओर से मानपत्र भी समर्पित किया। स्थानीय नगरपालिका औषधालय के पण्डित शारदाप्रसादजी पाठक ने श्री शुक्लजी का परिचय कराते हुए उनके त्यागमय जीवन पर प्रकाश डाला। दमोह वैद्य परिषद् की ओर से पण्डित श्यामलालजी पाठक ने तथा दमोह आयुर्वेद विद्यालय की ओर से श्री शिवशंकर दीक्षित ने भी शुक्लजी को मानपत्र समर्पित किये।

मध्याह्न में दमोह वैद्य परिषद् की ओर से आयोजित विशेष सभा में अनेक प्रस्ताव पारित किये गये थे जिन पर सायंकाल की सभा में अनेक विद्वानों के भाषण हुए।

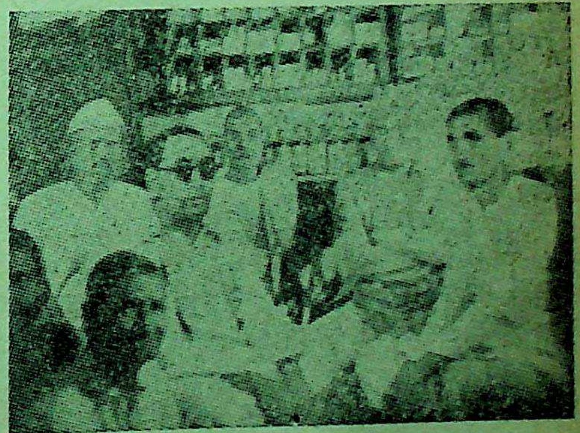
वैद्यों के रजिस्ट्रेशन

जिन वैद्यों ने धारा ४ में रजिस्ट्री कराने के लिए उ० प्र० इण्डियन मेडिसन बोर्ड को प्रार्थना-पत्र भेजे थे, उनमें से सैकड़ों वैद्यों के प्रार्थना-पत्र खारिज हो गये हैं। ऐसे वैद्यों को प्रार्थना-पत्र खारिज होने के कारणों का पता लगा कर तुरन्त अपील दायर कर देनी चाहिए। यह अपील इण्डियन मेडिसन एक्ट १६३६ की धारा २७ के अन्तर्गत अध्यक्ष—उ० प्र० इण्डियन मेडिसिन बोर्ड लखनऊ के नाम करनी चाहिए। अपील करने की फीस ५) साथ में भेजनी चाहिए तथा अपील के प्रार्थना-पत्र के साथ आयु सम्बन्धी प्रमाण-पत्र तथा एक मजिस्ट्रेट का चिकित्सा-काल सम्बन्धी प्रमाण-पत्र एवं ४-५ अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के प्रमाण-पत्र जैसे—सभापति ग्राम सभा, अदालत-सरपंच, एम० एल० ए०, एम० एल० सी० अध्यक्ष जिला बोर्ड आदि साथ में संलग्न करना चाहिए।

पिछला प्रार्थना-पत्र कब भेजा था उसकी सही निश्चित तिथि अवश्य लिखनी चाहिए, साथ में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पिछले प्रार्थना-पत्र में जो चिकित्सा-काल या आयु लिखी थी वही इसमें न लिख कर उस दिन से ले कर अपील के दिन तक की आयु व चिकित्सा-काल को उसमें जोड़ कर तब प्रमाण-पत्र लिखाना चाहिए, अन्यथा दोनों में गड़बड़ी हो जाने से अपील भी खारिज हो सकती है। इसमें शीघ्रता करनी चाहिए। (आ० संदेश)

बोर्ड के नवनिर्वाचित सदस्य

उ० प्र० इण्डियन मेडिसन बोर्ड की सदस्यता के लिए अब तक निम्नलिखित विद्वान् वैद्य-हकीम चुन कर गये हैं—रजिस्टर्ड वैद्यों की सीट से—सर्वश्री (१) वैद्य बाबू राम मिश्र, आयुर्वेदाचार्य, हापुड़-मेरठ, (२) वैद्य प्रयागदत्त जी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, आगरा, (३) वैद्य धर्मदत्तजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, एम० एल० ए०, बरेली, (४) वैद्य ताराशंकर मिश्र, आयुर्वेदाचार्य, वाराणसी, (५) वैद्य गिरीशचन्द्रजी शर्मा, आयुर्वेदाचार्य, कानपुर, (६) वैद्य मधुसूदन दीक्षित, आयुर्वेदाचार्य, सीतापुर। अध्यापकों की सीट से—(१) वैद्य लक्ष्मीनारायण मिश्र, आयुर्वेदाचार्य, मेरठ, (२) वैद्य के० डी० जोशी, आयुर्वेदाचार्य, पीलीभीत, (३) हकीम अब्दुल हम्माद साहब, इलाहाबाद, विश्व-विद्यालयों के आयुर्वेदिक-यूनानी फैकेल्टियों से—(१) वैद्य राजेश्वरदत्त शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, हि० वि० विद्यालय—



पेन्ड्रारोड में धन्वन्तरि जयन्ती उत्सव का दृश्य

वाराणसी, (२) वैद्य शिवदत्त शुक्ल, आयुर्वेदाचार्य, स्टेट आयुर्वेदिक कालेज–लखनऊ, (३) हकीम अब्दुल लतीफ साहब, अलीगढ़।

बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय पटना

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा संचालित बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय में गत नबम्बर में कुल ११८४ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई। इसमें ४३७ नये तथा ७४७ पुराने रोगी थे। इसमें पुरुष रोगियों की संख्या २६७, स्त्री रोगियों की संख्या ८१ तथा बालक रोगियों की संख्या ८९ थी। इस मास की दैनिक उपस्थिति का औसत ३९.४ रहा। नये रोगियों की संख्या रोगानुसार नीचे लिखे मुताबिक है :—

ज्वर २८, विषमज्वर २, मंथरज्वर २, श्वसनकज्वर ७, उत्फुल्लिका २, उदर ५७, आमातिसार २५, कृमि १०, प्रमेह ४, कास ५६, श्वास ९, अर्श १, कुष्ठ १, क्षुद्र कुष्ठ २६, रजोदोष ७, प्रदर ५, वातव्याधि २६, आमवात २, शिरोरोग ३, नत्ररोग २२, कर्णरोग ६, मुखरोग ३०, प्रतिश्याय ५४, व्रण १२, वृद्धिरोग ६, श्लीपद ३, शोथ ३, वातरक्त ३, मूत्रघात १, रक्ताल्पता २, प्रसूताज्वर १, वातगुल्म १, हृच्छूल १।

बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, झाँसी

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० झाँसी द्वारा संचालित श्री धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र में गत नवम्बर १९५७ में २८४८ रोगियों का मुफ्त इलाज किया गया, जिसमें ६५२ नये रोगी आये। नये रोगियों का रोगानुसार विवरण निम्न प्रकार है :—

प्रतिश्याय ७५, कास १०५, ज्वर २५, अतिसार २५, आमातिसार २०, श्वास १५, वातव्याधि २५, रक्तपित्त ४, क्षय ३, मलेरिया २५, अर्श ११, अग्निमान्द्य १८, हिक्का १, सूर्यावर्त ९, क्रोष्टुशीर्ष १, भ्रम ११, विबन्ध २५, ज्वरातिसार ३, हृद्रोग ५, दौर्बल्य २८, प्रमेह ३७, स्वरभंग ४, निमोनिया २, प्रदर ४०, उदर रोग २८, मुखपाक १८, कर्ण रोग १८, नेत्र रोग २०, व्रण ११, विद्रधी ५, पामा १०, विचर्चिका २, दद्रु ६, सिध्म २, यकृतिवृद्धि ४, अण्डवृद्धि २, श्लीपद १, शोथ २, पाण्डु ३।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० झाँसी द्वारा संचालित श्री धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र झाँसी में गत अक्तूबर १९५७ में १९९७ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई जिसमें ६४१ नये रोगी आये।

नये रोगियों का रोगानुसार विवरण निम्न प्रकार से है। विबन्ध १८, उदरशूल १४, ज्वर ४५, कास ५८, प्रतिश्याय ६५, निमोनिया ३, श्वास १७, अतिसार १०, आमातिसार ४, संग्रहणी २, अग्निमांद्य १२, प्रसूत रोग ६, प्रदर ३५, पाण्डू ३, यक्ष्मा १, फक्करोग २, विद्रधि ८, श्लीपद १, व्रण २८, नेत्ररोग ३०, कर्णस्राव १६, वातव्याधि २१, गुल्म १, गृध्रसी ३, मुखपाक १५, पामा ४८, रक्तप्रदर १०, मलेरिया ३८, हृद्रोग ४, दीर्घश्वास ९, अर्श १०, मन्थर ज्वर ३, रक्तपित्त ८, मुखपाक २९, शिरोरोग १५, स्नायु दौर्बल्य २२, कटिशूल १०, श्वित्र ३, विविध १६।

बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय नागपुर

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा संचालित धर्मार्थ औषधालय नागपुर में गत नम्वम्बर १९५७ में कुल रोगियों की किचित्सा की गई, जिनमें ६०२ नये ३१८८ पुरातन रोगी आये। विवरण निम्न प्रकार है:—

ज्वर ५०, जीर्णज्वर १६, विषमज्वर ३६, आन्त्रिक ज्वर ३, अम्लपित्त २६, अतिसार १२, आमातिसार १२, प्रवाहिका ७, संग्रहणी ३, अर्श ४, अजीर्ण १०, संग्रहणी १४, उदरशूल २०, यकृतविकार ३, पामा ३०, हृदयरोग ४, वात ३०, शिरःशूल १८, दंतपीड़ा ८, प्रदरविकार १०, प्रतिश्याय २८, कास ५०, श्वास ४, कृमिविकार १२, अम्लपित्त ६, दौर्बल्य ८, प्रमेह १२, मूत्रकृच्छ्र ३, उपदंश २, रजोवरोध ५, कुष्ठरोग ३, मुखपाक १२, नेत्रविकार १०, गलगंड ३, कर्णविकार ७, भ्रम ३, शोथ ३, व्रण ५, पार्श्वशूल ३, शीतपित्त २, सोमरोग ४, प्रसूतिविकार ३, विविध ७५, छर्दि ३।

बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा संचालित धर्मार्थ औषधालय नागपुर में गत अक्टूबर मास में ३९६० रोगियों की चिकित्सा की गई, जिनमें ७१४ नये और ३२५४ पुरातन रोगी आये। विवरण निम्न प्रकार है—
ज्वर ८५, जीर्णज्वर १८, विषमज्वर ५० आंत्रिक ज्वर ३, अतिसार ४४, ज्वरातिसार १५, आमातिसार २५, प्रवाहिका ५, संग्रहणी ३, अर्श ४, अजीर्ण २२, मन्दाग्नि १५, उदरशूल ३८, यकृतविकार ३, पामा २०, हृदयदौर्बल्य ६, वातविकार ३६, शिरःशूल २२, दंतपीड़ा ११, प्रदरविकार १२, प्रतिश्याय २५, कास ६०, श्वास ५, कृमिविकार ५, अम्लपित्त ९, दौर्बल्य १२, प्रमेह १३, मूत्रकृच्छ्र ३, उपदंश ३, रजोवरोध ६, कष्टार्तव ४, मुखपाक १२, नेत्रविकार ११, गलगंड ३, कर्णविकार ११, भ्रम ३, शोथ ४, पूय ३, पार्श्वशूल ३, शीतपित्त ३, सोमरोग ४, प्रसूतिविकार ५, दंतोद्भव ५, हृदयविकार ६, छर्दि २, हिस्टीरिया ३, दद्रु ४, विविध ४८।

उत्तर प्रदेश में आयुर्वेद की प्रगति

राजकीय चिकित्सालय भवनों का निर्माण--

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत २० नवीन स्थापित आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सालय भवनों का निर्माण कराने का कार्यक्रम है। आयोजना काल में इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये ४.६३ लाख रुपये की धन-राशि सुरक्षित रखी गई है। तदनुसार आयोजना के प्रथम दो वर्षों में पाँच चिकित्सालय भवनों का निर्माण करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। गत वर्ष प्रारम्भ में पचेवरा (मिर्जापुर), टोंचीगढ़ (अलीगढ़), सखवानियां (देवरिया), चण्डायरवलीपुर (बलिया), चण्डेश्वर (आजमगढ़) के पाँच नव स्थापित चिकित्सालयों के भवन बनाने का निश्चय किया गया था। तद्पश्चात् यह ज्ञात कर कि चण्डेश्वर (आजमगढ़) का भवन-निर्माण स्थानीय जनता द्वारा होगा; अनुमोदित सूची से इसका नाम हटा कर सीतलाखेत (अल्मोड़ा) का नाम सम्मिलित किया गया। प्रारम्भिक कार्यवाहियाँ पूर्ण न हो सकने के कारण गत वर्ष निर्माण-कार्य प्रारम्भ न हो सकेगा। शासन ने इस वित्तीय वर्ष के अन्तर्गत इन्हीं ६ स्थानोंके नाम चिकित्सालय भवन-निर्माण-कार्य के हेतु अनुमोदित किये हैं। प्रत्येक चिकित्सालय भवन-निर्माण के सम्बन्ध में १८८०८) रु० के प्रमाप मानचित्र एवं आगणन शासन द्वारा अनुमोदित हैं। इस धनराशि में चार रोगी शय्याओंयुक्त चिकित्सालय भवन के लिये ११,८४४) रु०, चिकित्सालय के निवास के लिये ६०२८) रु०, शौचालय के लिये २०६) रु० तथा भूमि व्यवस्था, कूप अथवा चौहद्दी के लिये ६६०) रु० की धनराशि सम्मिलित है। इस वर्ष अब तक इन भवनों का निर्माण-कार्य सम्बन्धी की गई कार्यवाही का विवरण निम्नानुसार है।

पचेवरा (मिर्जापुर)---प्रारम्भिक आगणन एवं मानचित्र अनुमोदित किये जा कर कार्य प्रारम्भ के हेतु प्रशासकीय अनुमोदन प्रदान किये जा चुके हैं। निर्माण कार्य के सम्बन्ध में सार्वजनिक निर्माण विभाग की प्रगति-विवरण की प्रतीक्षा की जा रही है।

टोंचीगढ़ (अलीगढ़)—प्रारम्भिक आगणन एवं मानचित्र अनुमोदित किये जा कर प्रशासकीय अनुमोदन प्रदान किया गया। किन्तु भूमि-उपलब्धता का प्रश्न पुनः विचाराधीन है। पूर्व उपलब्ध भूमि एक तो सिंचाई विभाग द्वारा ड्रेनेज बनाने के सम्बन्ध में ले ली गई है। दूसरे वह भूमि काफी निचाई पर है। और वर्षा ऋतु में उसमें पानी भरा रहता है। अतः सार्वजनिक निर्माण कार्य विभाग ने उसे चिकित्सालय भवन निर्माण के योग्य नहीं समझा है।

सखवानियाँ (देवरिया)—प्रारम्भिक आगणन व मानचित्र प्रशासकीय अनुमोदन प्रदानार्थ शासन के विचाराधीन है। जो शीघ्र ही दिये जाने वाले हैं। तत्पश्चात् निर्माण-कार्य प्रारम्भ किया जा सकेगा।

चण्डायरवलीपुर (बलिया)—इस चिकित्सालय के भी मानचित्र व आगणन शासन के विचाराधीन हैं। प्रशासकीय अनुमोदन दिये जाने के बाद निर्माण-कार्य प्रारम्भ किया जा सकेगा।

सीतलाखेत (अल्मोड़ा)–अभी सम्बन्धित अभियन्ताओं ने प्रारम्भिक आगणन व मानचित्र तैयार कर नहीं भेजे हैं। सम्बन्धित जिला स्वास्थ्य अधिकारी से वाञ्छित प्रतिवेदन की प्रतीक्षा की जा रही है। उन्हें शीघ्रता करने को लिखा गया है।

चण्डेश्वर (आजमगढ़)—भवन निर्माण कार्य सूची में इस स्थान का नाम विशेष परिस्थितियों में क्षेत्रीय जनता के आर्थिक सहयोग की भावना को दृष्टि में रखते हुए सम्मिलित किया गया। शासन तथा क्षेत्रीय एम० एल० ए० श्री ब्रह्मचारीजी के बीच चलनेवाली बातों पर ही निर्माण-कार्य की प्रगति निर्भर है।

सम्बन्धित अधिकारीगण इस सम्बन्ध में व्यक्तिगत ध्यान देते रह कर इस योजना को पूर्णरूपेण सफल बनाने का प्रयत्न करें।

टेहरी-गढ़वाल जिले में चिकित्सालय भवन

टेहरी-गढ़वाल जिले में इस समय ४३ राजकीय आयुर्वेदीय एवं यूनानी चिकित्सालय हैं। मुनि की रेती चिकित्सालय का कार्य स्थगित हो जाने से केवल ४२ चिकित्सालय भवन-व्यवस्था का ही प्रश्न सम्मुख रह जाता है। भवन व्यवस्था निम्नानुसार है—

राजकीय—(अ) १९४९ में प्रदेश में राज्य के विज्ञापन के पूर्व के भवन—(१) जाखनीधार बनगढ़, (२) अखोरी हिन्दाव, (३) नेलवाड़ फतेहपर्वत, (४) डांगचौरा, (५)

थातीवरियागढ़, (६) चेमियाला केमर, (७) पोखाल फेगुल, (८) चम्बा, (९) हिन्डोला खाल। (ब) श्रमदान द्वारा निर्मित—(१) सिद्धौड़ बड़मा, (२) पोखरी, (३) भटवारी धनारी, (४) बुड़कोटरमोली, (५) जाखाल भरदार, (६) क्लिडांग, (७) सौन्दी, (८) डुगड्डापालीगढ़, (९) संदेगल सकलाना, (१०) जिम्पादसगी, (११) खर-सलीराजगढ़ी, (१२) ज्ञानसूमखतोगी।

सशुल्क—(१) धुतभिलंग, (२) भर्वान, (३) पंथगाँवभारपुर, (४) भ्याजी लबर, (५) थाती कंठेड, (६) किलकिलेश्वर चौरास, (७) जाजल, (८) पाँवसिल-वाड़, (९) कीर्तिनगर, (१०) मदननेगी, (११) जखोली-लस्या, (१२) हिंसरियाखाल, (१३) गुडयातगाँव, (१४) नवागाँव मुगराशान्ति, (१५) कन्डारी गोडर।

निःशुल्क—(१) राजगढ़ीखाई, (२) भटवारी-टकनौर, (३) काफलपानी जुम्मा, (४) सिरांई, (५) लम्बगाँवबरमोली, (६) म्यार्णीलालूर।

मदननेगी, क्लिडांग, जाजल, पावसिलवाड़, काफल-पानीजुआँ, म्याणीलालूर के ६ चिकित्सालय भवनों का निर्माण जनता के सहयोग से श्रमदान द्वारा हो रहा है। ये चिकित्सालय जैसा कि उक्त विवरण से ज्ञात होता है, अभी सशुल्क भवनों में कार्य कर रहे हैं।

राजकीय औषधि निर्माण शाला

माह अक्तूबर १९५७ से सम्बन्धित औषधि निर्माणशाला के कार्यों का प्रगति-विवरण निम्नानुसार है—

निर्माणशाला में निर्मित औषधियों की संख्या— ४०
चिकित्सालयों की संख्या जहाँ औषधियाँ भेजी गईं— ८३
निर्माणशाला द्वारा प्रेषित ग्राम औषधि पेटिकाओं की संख्या-२
उन औषधियों की संख्या जिनका निर्माणशाला से सम्बद्ध प्रयोगशाला में रासायनिक विश्लेषण हुआ— ६

गत फरवरी मास में निर्माणशाला से सम्बद्ध एक बिक्री-केन्द्र भी हलवासिया मार्केट हजरतगंज, लखनऊ में स्थापित किया गया था, जो दिनांक १८, १०, ५७ को एक शासकीय आदेश द्वारा बन्द कर दिया गया है।

क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारियों की बैठक

प्रदेश के समस्त क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधि-कारियों की अर्धवार्षिक बैठक दिनांक ४, ५ और ६ नवम्बर १९५७ को लखनऊ में उप-संचालक, आयुर्वेद, के कार्यालय में हुई, बैठक में बहुत-सी महत्त्वपूर्ण विभागीय समस्याओं पर विचार-विमर्श हुआ।

निजी वैद्य हकीम तथा संस्थाओं को राजकीय अनुदान

माह अक्तूबर १९५८ में निजी वैद्य-हकीम तथा संस्थाओं को ७५०) रु० की राजकीय सहायता स्वास्थ्य-मन्त्री के विवेकाधीन अनुदान के मद से दी गई। चालू वित्तीय वर्ष में माह सितम्बर १९५७ के अन्त तक इस मद से ९६२५) रु० का अनुदान दिया जा चुका था। इस प्रकार माह अक्तूबर १९५७ के अन्त तक इस मद से १०,३७५) रु० का अनुदान प्रदान किया गया।

राजकीय चिकित्सालय के वैद्य की हत्या

दिनांक १३-९-५७ को राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय पौनगला, जिला बरेली के वैद्य श्री विज्ञानानन्द पाण्डे, समीपस्थ डाकघर बुधौली से कर्मचारियों का वेतन आदि उपलब्ध करने गये थे। डाकघर से प्राप्त १९९०) रु० की धनराशि लेकर जब वे उसी दिन शाम को पौनगला वापिस आ रहे थे, मार्ग में उनकी निर्मम हत्या कर दी गई। इस सम्बन्ध में बरेली जिले का पुलिस विभाग समुचित छानबीन कर रहा है। अबतक प्राप्त सूचना के अनुसार इस सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। पहले भी इस ग्राम में कोई भी राजकीय कर्मचारी चैन से नहीं रहा। हत्या के कारण उत्पन्न क्षुब्ध वातावरण को दृष्टि में रखते हुए जिला स्वास्थ्य अधिकारी को आदेश दिये गये हैं कि वे इस चिकित्सालय को अन्य स्थान पर स्थानान्तरित कर दें।

धन्वन्तरि जयन्ती समारोह

उप-संचालक, आयुर्वेद, उत्तर प्रदेश, लखनऊ के कार्यालय में प्राप्त सूचना के अनुसार विभाग के निम्नांकित चिकित्सालयों में धन्वन्तरि जयन्ती-समारोह मनाया गया—

रानीपुर (झाँसी) में दिनांक २१-१०-५७ को भगवान धन्वन्तरि जयन्ती समारोह उत्साह के साथ मनाया गया। श्री गौरीशंकर त्रिपाठी कर्मकाण्डी द्वारा भगवान धन्वन्तरि का पूजन वेदमन्त्रों द्वारा किया गया। तद्पश्चात् स्थानीय वैद्य श्री ईश्वरी प्रसाद की अध्यक्षता में सर्वश्री अयोध्या प्रसाद शर्मा तथा सुखनन्दन के स्वास्थ्य विषय पर भाषण हुए।

राजकीय कर्मचारी तथा साधारण शिक्षा

गत दो-तीन वर्ष पूर्व शासन ने पूर्णकालिक राजकीय कर्मचारियों को एकेडेमिक (साधारण शिक्षा सम्बन्धी) कक्षाओं में सम्मिलित होने अथवा परीक्षाओं के देने पर रोक लगा दी थी। अब शासन ने उस विषय पर पुनः विचार कर यह निश्चय किया है कि राजकीय कर्मचारियों को साधारण शिक्षा सम्बन्धी परीक्षाओं में कार्यालय काल के पश्चात् सम्मिलित होने तथा ऐसी परीक्षाओं को निजी प्रकार से देने की अनुमति सम्बन्धित विभागाध्यक्षों द्वारा निम्न प्रतिबन्धों को दृष्टि में रखते हुए दी जाय कि किसी भी दशा में सरकारी काम में बाधा न पहुँचनी चाहिए।

(१) इस प्रकार अनुमति पाने वाले कर्मचारियों की संख्या कार्यालय में काम करनेवाले कुल कर्मचारियों के १० प्रतिशत से अधिक न हो।

(२) इस प्रकार अनुमति पानेवाले कर्मचारियों को परीक्षाओं की तैयारी करने के सम्बन्ध में नियुक्ति, स्थानान्तरण, अथवा अवकाश विषयक कोई भी विशेष सुविधा न दी जाय। अवकाश की स्वीकृति साधारणतः दी जाय।

(३) यदि इन कर्मचारियों के सरकारी दैनिक कार्य में कोई बाधा पहुँचती है तो अनुमति सम्बन्धी आदेश विभागाध्यक्षों द्वारा वापिस लिये जा सकते हैं।

(४) वर्ष तथा परीक्षा विशेष के लिये दी गई अनुमति किसी अन्य वर्ष अथवा परीक्षा पर लागू न होगी।

क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी

अभी हाल ही में प्रदेश के समस्त क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारियों के स्थानान्तरण एक स्थान से दूसरे स्थान को हो जाने से उनकी डाक के परिवर्तित पते सम्बन्धित सज्जनों के सूचनार्थ नीचे दिये जा रहे हैं। इन अधिकारियों के कार्यक्षेत्र के जिले भी इनके नाम के सम्मुख अंकित किए जा रहे हैं—

क्षेत्रीय अधिकारियों के नाम व पते	कार्यक्षेत्र के जिले
(१) श्री नर्मदेश्वर पाण्डे, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी (केन्द्रस्थ) कार्यालय उप-संचालक, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य (आयुर्वेद), उत्तर प्रदेश, लखनऊ।	लखनऊ, खीरी, सीतापुर, हरदोई, उन्नाव, रायबरेली।
(२) श्री वजीर हसन तिरमिज़ी, क्षेत्रीय यूनानी अधिकारी (केन्द्रस्थ), कार्यालय उप-संचालक, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य, (आयुर्वेद), उत्तर प्रदेश, लखनऊ।	लखनऊ, रायबरेली, बाराबंकी, फैज़ाबाद, सीतापुर, खेरी, हरदोई, उन्नाव, कानपुर, फर्रुखाबाद, इटावा, बाँदा, झाँसी।
(३) श्री ज्ञानेन्द्रनाथ शुक्ल, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी २बी।२२३, भदौनी, बाराणसी।	वाराणसी, जौनपुर, गाजीपुर, मिर्ज़ापुर, बलिया।
(४) श्री मोहम्मद यूसुफ सिद्दीकी, क्षेत्रीय यूनानी अधिकारी, छतारी कम्पाउण्ड, रसलगंज, अलीगढ़।	अलीगढ़, मेरठ, देहरादून, बुलन्दशहर, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, मैनपुरी, मथुरा, मुरादाबाद, आगरा, एटा, बिजनौर, बरेली, बदायूँ, पीलीभीत, रामपुर।
(५) श्री चन्द्रदत्त त्रिपाठी, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी, बनमालीदास औषधालय, अलीनगर, गोरखपुर।	गोरखपुर, आजमगढ़, देवरिया, बस्ती।
(६) श्री रामसेवक मिश्र, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी, ४, सिविल लाइन, मेरठ।	मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, बुलन्दशहर, देहरादून।
(७) श्री शिवनाथ शास्त्री, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी (पश्चिमीक्षेत्र) द्वारा सहायक संचालक, जन-स्वास्थ्य, आगरा।	आगरा, मथुरा, अलीगढ़, एटा, मैनपुरी।

(८) श्री बद्रीप्रसाद पुरोहित, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी, लक्ष्मी-भवन, रानीखेत, अल्मोड़ा।	अल्मोड़ा, गढ़वाल, नैनीताल।
(९) श्री सी० एम० पटवर्धन, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी, ४५ ए, जीरो रोड, इलाहाबाद।	इटावा, कानपुर, फतेहपुर, फर्रुखाबाद, इलाहाबाद।
(१०) श्री अनवार अहमद खाँ शेरवानी, क्षेत्रीय यूनानी अधिकारी, (पूर्वीक्षेत्र) मकान संख्या १३१, गोशाला के समीप, मोहल्ला पहाड़पुर, आजमगढ़।	आजमगढ़, बाराणसी, बलिया, बस्ती, देवरिया, गोन्डा, बहराइच, सुलतानपुर, प्रतापगढ़, मिर्जापुर, गोरखपुर, जौनपुर, गाजीपुर, फतेहपुर, इलाहाबाद।
(११) श्री बिन्देश्वरी प्रसाद सक्सेना, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी, ७०८, रकाबगंज, फैजाबाद।	फैजाबाद, बाराबंकी, बहराइच, गोन्डा, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़।
(१२) श्री रामगोपाल शर्मा, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी, १७५, लक्ष्मीगंज, झाँसी।	झाँसी, हमीरपुर, बान्दा, जालौन।
(१३) श्री बिपिन बिहारी शास्त्री, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी, १३१, नयाटोला, शिवाजी मार्ग, बरेली।	बरेली, बदायूँ, बिजनौर, पीलीभीत, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर, रामपुर।
(१४) श्री रामादत्त उनियाल, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी, द्वारा जिला स्वास्थ्य अधिकारी, (नरेन्द्रनगर) टेहरी-गढ़वाल।	टेहरी–गढ़वाल।

उत्तर प्रदेश में बोर्ड द्वारा संचालित चिकित्सालय

इस प्रदेश में राज्य द्वारा संचालित आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सालय तो जनता की पर्याप्त सेवा कर रही हैं। साथ ही विभिन्न जिला बोर्डों तथा नगरपालिकाओं द्वारा संचालित देशी चिकित्सालय भी जनता की पर्याप्त सेवा कर रहे हैं। निम्नांकित आँकड़े इन संस्थाओं द्वारा किये जानेवाले कार्यों पर प्रकाश डालते हैं––

(अ) जिला बोर्ड द्वारा संचालित चिकित्सालय––

वर्ष	चिकित्सालयों की संख्या		कुल संख्या	उपचारित रोगी संख्या
	आयुर्वेदिक	यूनानी		
१९५०–५१	२४३	३४	२७७	१७,०२,५७६
१९५१–५२	२४३	३४	२७७	१७,५०,३६८
१९५२–५३	२२८	३४	२६२	१५,८०,६७३
१९५३–५४	२४२	३५	२७७	१९,८२,०६४
१९५४–५५	२४४	२८	२७२	२९,३४,८८५
१९५५–५६	३७९	३२	४११	३६,३७,३०७
१९५६–५७	३७९	४४	४२३	३३,४९,११५

(ब) नगरपालिकाओं द्वारा संचालित चिकित्सालय––

वर्ष	चिकित्सालयों की संख्या		कुल संख्या	उपचारित रोगियों की संख्या
	आयुर्वेदिक	यूनानी		
१९५०–५१	२२	१५	३७	८,८७,४२०
१९५१–५२	२२	१५	३७	८,६७,७२९
१९५२–५३	३७	२१	५८	८,५९,९२८

वर्ष	चिकित्सालयों की संख्या आयुर्वेदिक	यूनानी	कुल संख्या	उपचारित रोगियों की संख्या
१९५३–५४	४४	१८	६२	९,५६,१८९
१९५४–५५	४४	२७	६५	१४,७६,०६८
१९५५–५६	५२	२१	७३	१८,७४,२१०
१९५६–५७	५४	१४	६८	३३,१५,३८३

प्रदेश में श्रम विभाग द्वारा संचालित चिकित्सालय

आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सा प्रणाली द्वारा श्रमिक वर्ग की चिकित्सा सेवा करने की दृष्टि से प्रदेशीय सरकार श्रम विभाग के अन्तर्गत कतिपय आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सालय चला रही है। १९५५–५६ के वर्ष में इन चिकित्सालयों की संख्या ७ थीं। गत वर्ष १९५६–५७ में इन चिकित्सालयों की संख्या बढ़ा कर १० कर दी गई। इन चिकित्सालयों में योग्यता प्राप्त वैद्य एवं हकीम तथा विभिन्न कार्यों में सहायता प्रदान करने के हेतु सहायक वैद्य, सहायक हकीम, भृत्य एवं मेहतर कार्य करते हैं। सहारनपुर श्रमहितकारी क्षेत्र में एक मिडवाइफ भी कार्य करती है। गत वर्ष नये तथा पुराने मिल कर कुल ४,१२,३७२ रोगियों को चिकित्सा की सुविधा प्रदान की गई। इन आँकड़ों से स्पष्ट है कि इन श्रमहितकारी केन्द्रों का कार्य सन्तोषजनक रहा है और इनके द्वारा अधिक से अधिक जनसमुदाय ने सहायता प्राप्त की है। विभिन्न चिकित्सालयों के नाम तथा उनके द्वारा उपचारित रोगियों की संख्या का विवरण नीचे दिया जा रहा है—

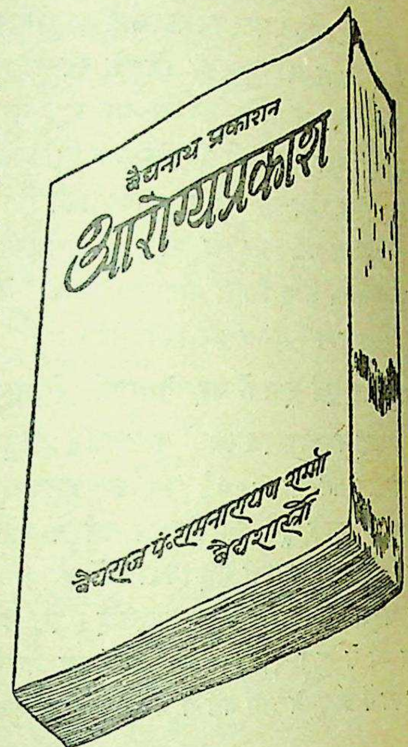
चिकित्सालय का नाम (आयुर्वेदिक, यूनानी)	नये रोगी	पुराने रोगी	कुल संख्या
(१) मीरपुर (कानपुर) आ०	२१,११६	४२,२४९	६३,३६५
(२) रामनारायण बाजार (कानपुर) आ०	१२,००२	२८,२५४	४०,२५६
(३) जाजमऊ (कानपुर) आ०	७,३२०	२०,८९०	२८,२१०
(४) कर्नलगंज (कानपुर) यू०	२०,५५२	४८,९८२	६९,५३४
(५) खलासी लाइन (सहारनपुर) आ०	२१,३५९	१८,५७७	३९,९३६
(६) मदार दरवाजा (अलीगढ़) आ०	२०,६३४	२३,३८५	४४,०१९
(७) चौबे का बाग (सहारनपुर) आ०	२८,७४६	३१,६३३	६०,३७९
(८) धौरा (झाँसी) आयुर्वेदिक	२,४०७	४,३३३	६,७४०
(९) आगरा-आयुर्वेदिक	२१,६८१	२७,५२२	४९,२०३
(१०) हाथरस-आयुर्वेदिक	५,७२५	१६,००५	२१,७३०
कुल योग :—	१,५१,५४२	२,६१,८३०	४,१३,३७२

नवीन राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सालय

शासन ने शासकीय आदेश संख्या ४७३३ वी० आई० (५-११९७) १९५० दिनांक ११-११-५७ द्वारा द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत चालू वित्तीय वर्ष में निम्न लिखित स्थानों पर १० नवीन चिकित्सालय स्थापित करने के लिये स्वीकृति दी है। इन ग्रामों में भवन व्यवस्था का विवरण उनके नाम के सामने दिया जा रहा है :—

आरोग्य, स्वच्छता और चिकित्सा पर श्रेष्ठ ग्रन्थ

भारत प्रसिद्ध "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०" के मैनेजिंग डायरेक्टर वैद्यराज पण्डित रामनारायण शर्मा आयुर्वेदोपाध्याय ने ५-६ वर्षों में बड़ी मिहनत से इस ग्रन्थ को स्वयं लिखा है। ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हजारों रुपये का काम देता है। इसके ११वें संस्करणों तक १,०८००० प्रतियाँ छपकर बिक चुकी हैं और १२वें संस्करण में २० हजार प्रतियाँ फिर छापी जा रही हैं। इसीसे इसकी लोकप्रियता और उपयोगिता स्पष्ट मालूम होती है। प्रचार की दृष्टि से मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। मूल्य २), डाकखर्च ।।=)





हिन्दी में ऐसी आयुर्वेदीय पुस्तकों की बड़ी कमी थी, जिनमें रोग-विचार के साथ चिकित्सा, औषध-निर्माण, अनुपान, पथ्यापथ्य आदि का विवरण समझा कर सरल भाषा में एकत्र दिया गया हो। इससे सर्वसाधारण पाठकों के सामने बहुत दिक्कतें आती थीं। प्रस्तुत पुस्तक में आयुर्वेद-साहित्य की इसी कमी को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। "श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०" द्वारा बनाई जाने-वाली प्रायः सभी दवाओं की निर्माण-विधि तथा उनके गुण-धर्म और प्रयोगविधि के साथ साथ वैद्योपयोगी बातों का वर्णन सरल हिन्दी भाषा में किया गया है। मूल्य—७) मात्र।

प्रकाशक

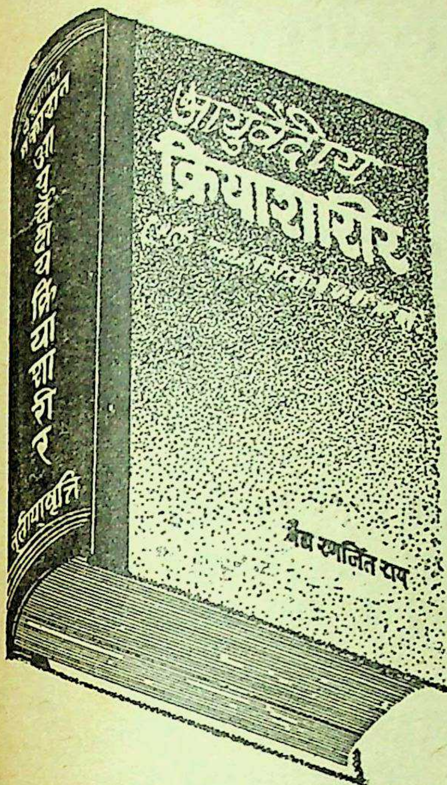
आयुर्वेदीय एवं पेटेण्ट औषधियों के सबसे बड़े निर्माता

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

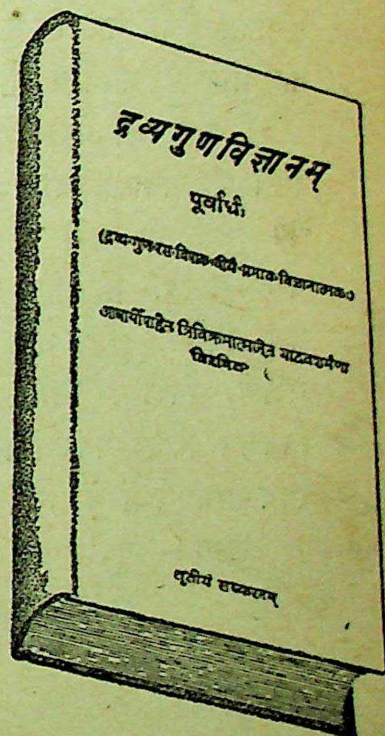
कलकत्ता पटना झाँसी नागपुर

आयुर्वेद-विज्ञान के अनुपम ग्रन्थरत्न

शास्त्रीय विवेचन, सुग्राह्य शैली और प्रामाणिक सिद्धान्तों के एकत्रीकरण से गागर में सागर भरने की लोकोक्ति चरितार्थ हो गई है :



आयुर्वेद-जगत् के सुख्यात वैद्य श्री रणजितराय ने इस ग्रन्थ के प्रणयन द्वारा आयुर्वेद-साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्त्ति की है। इसलिए मदनमोहन लाल आयुर्वेदीय रिसर्च इन्स्टीच्यूट ने एक हजार रुपये पारितोषिक के रूप में देकर इस ग्रन्थ को समादृत किया है। शारीर-शास्त्र सम्बन्धी प्राचीन और अर्वाचीन सिद्धान्तों का तुलनात्मक विवेचन इस पुस्तक की विशेषता है। इस एक ही पुस्तक में प्राचीन और अर्वाचीन, उभय क्रियाशारीर-पद्धति को सामने रखने का पूर्ण प्रयास किया गया है। साथ ही विषय को व्यावहारिक रूप देने के लिये स्थान-स्थान पर रोगों के निदान और चिकित्सा का भी उल्लेख है, जिससे पुस्तक की उपयोगिता और बढ़ गई है। नयनाभिराम कवर, सुन्दर गेटअप और पक्की जिल्द युक्त ११०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य लागत मात्र ११) ।



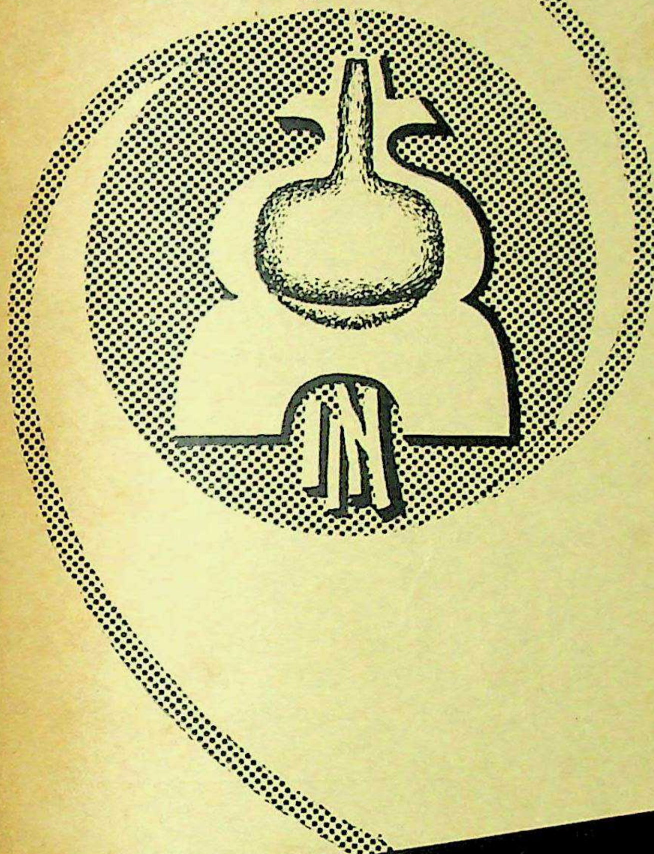
आयुर्वेदीय-साहित्य में द्रव्यगुण-विवेचन सूत्ररूप में यत्र-तत्र बिखरे हुए पाये जाते हैं। आयुर्वेद तत्त्ववेत्ता पूज्यपाद स्व० आचार्य यादवजी त्रिकमजी वैद्य ने उन्हीं सूत्रों का क्रमबद्ध संकलन करके रस-गुण-वीर्य विपाक और प्रभाव आदि पृथक्-पृथक् पाँच अध्यायों द्वारा, संस्कृत-हिन्दी उभय भाषाओं में, ऐसा सरल सांगोपांग विवेचन किया है, जो आयुर्वेद-विज्ञान को समझने के लिए बहुत लाभदायक है। विशेषकर आयुर्वेद के अध्यापकों, छात्रों तथा छात्रोपयोगी पाठ्य-ग्रन्थ निर्माणकर्त्ताओं को इस ग्रन्थ के द्वारा आयुर्वेद-विज्ञान की मूलभित्ति द्रव्य-गुण-शास्त्र का विस्तृत ज्ञान सरलता से प्राप्त हो सकेगा। स्नातकों के शिक्षण के लिये भी यह ग्रन्थ अत्युपयोगी है। डबल डिमाई १६ पेजी ४०० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य लागतमात्र ४।।) है।

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
१, गुप्ता लेन, कलकत्ता -६

जाड़े के मौसम में

मां के दूध के समान शुद्ध और गुणकारी ....



सिद्ध मकरध्वज,
वसन्तकुसुमाकर,
स्वर्णभस्म, च्यवनप्राश
आदि का सेवन करें
और अपने शरीर को
बल, वीर्य से परिपूर्ण
और स्वस्थ बनाये रखें।

बैद्यनाथ रस रसायन



श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

देशी दवाओं का सबसे बड़ा और विश्वासी कारखाना

P46

प्रकाशक—पं० सभाकान्त झा, १, गुप्ता लेन, कलकत्ता के लिए, जनवाणी प्रिन्टिंग एण्ड पब्लिशर्स प्राइवेट लि०, कलकत्ता में मु

सचित्र आयुर्वेद

वर्ष १०　　कलकत्ता, मार्च, १९५८　　अंक ९

आयुर्वेद में अनुसन्धान आवश्यक

"इसमें सन्देह नहीं कि आयुर्वेद भारत की अतिप्राचीन तथा प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति है, लेकिन इसकी प्राचीन गौरव-गाथा को गाने एवं अन्य चिकित्सा-पद्धतियों की निन्दा करने से आयुर्वेद को विकसित एवं समुन्नत नहीं बनाया जा सकता। आयुर्वेद में अनुसन्धान और प्रतिसंस्कार करते रहने से ही अन्य पद्धतियों की तुलना में इसका विकास हो सकता है। वैद्य-समाज अपने त्याग, अध्यवसाय और कठोर परिश्रम के बल पर ही आयुर्वेद को लोकप्रिय बना सकता है।"

—श्री मुरारजी देसाई
केन्द्रीय उद्योग-वाणिज्य मन्त्री



प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०



रजिस्ट्रेशन आफ न्यूजपेपर्स (सेण्ट्रल) रूल्स, १९५६ के ८ वें नियम के अन्तर्गत 'सचित्र आयुर्वेद' नामक मासिक पत्रिका के स्वामित्व एवं अन्य विषयों के सम्बन्ध में विवरण।

फार्म ४

१. प्रकाशन का स्थान	कलकत्ता
२. प्रकाशन का अवधिक्रम	प्रति मास
३. मुद्रक का नाम	पं० सभाकान्त झा शास्त्री निमित्त स्वत्वाधिकारी श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड,
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	३६, बाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता–७
४. प्रकाशक का नाम	पं० सभाकान्त झा शास्त्री निमित्त स्वत्वाधिकारी श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	३६, बाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता–७
५. सम्पादक का नाम	पं० कामेश्वर शर्मा 'कमल'
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	१, गुप्ता लेन, कलकत्ता–६
६. उन शेयर होल्डरों के नाम और पते, जिनके पास कुल पूँजी के १ प्रतिशत से अधिक के शेयर हैं–	पं० रामदयाल जोशी, ग्राम कांसली, पो० कोटपुतली, जयपुर। पं० रामनारायण वैद्य, १, गुप्ता लेन, कलकत्ता–६। श्रीमती भूरी देवी, ग्राम-श्यामपुरा, पो० बानसुर, अलवर। श्री बनवारी लाल शर्मा, १५६-सी हरीसन रोड, कलकत्ता–७। पं० शिवनारायण ऐंग्लो-संस्कृत विद्यालय, ग्राम कांसली, जयपुर। श्रीमती विमला देवी, ४ कृष्णाश्रम, मुरादाबाद। श्रीमती सुशीला देवी, पुरानीमण्डी, नारनौल। श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा, वैद्यनाथ भवन रोड, पटना –१ श्री रामावतार शर्मा, ३६ बाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता–७ श्री रमाकान्त शर्मा, कदमकुआँ, पटना। श्रीमती कमला देवी, ३६ बाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता। श्री हजारीलाल शर्मा, चन्द्रगुप्त पथ, पटना। श्री विश्वनाथ शर्मा, बस्ती (उत्तरप्रदेश) श्री बृजेन्द्र कुमार शर्मा, गुसाईंपुरा, झाँसी। श्री शिवनाथ शर्मा, महाल, नागपुर। श्री रामकृष्ण शर्मा, वैद्यनाथ भवन रोड, पटना–१ श्री सुरेश कुमार शर्मा, गुसाईंपुरा, झाँसी। श्री रमेश कुमार शर्मा, गुसाईंपुरा, झाँसी। श्रीमती स्नेहलता देवी, गुसाईंपुरा, झाँसी। श्री राजेश्वर प्रसाद शर्मा, चन्द्रगुप्त पथ, पटना।

मैं, सभाकान्त झा शास्त्री, यह घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गये सभी विवरण, जहाँ तक मैं जानता हूँ तथा मेरा विश्वास है, सत्य हैं।

१ मार्च, १९५८ — प्रकाशक का हस्ताक्षर **(सभाकान्त झा शास्त्री)**

'सचित्र आयुर्वेद' के पाठकों को सूचना

भारत की निजस्व चिकित्सा-पद्धति—आयुर्वेद के विकास और प्रतिसंस्कार के साथ-साथ राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के गौरवपूर्ण आसन पर आयुर्वेद को पुनः प्रतिष्ठित कराने की दिशा में "सचित्र आयुर्वेद" पिछले १० वर्षों से पूरी सचाई, ईमानदारी तथा लगन के साथ संलग्न है। 'सचित्र आयुर्वेद' का एकमात्र लक्ष्य आयुर्वेद-पद्धति को राष्ट्रीय चिकित्सा के रूप में मान्य कराना एवं वैद्य समुदाय के सामाजिक और आर्थिक स्तर को समुन्नत बनाना है। इस लक्ष्य की पूर्ति की दिशा में 'सचित्र आयुर्वेद' शुरू से ही प्रयत्न करता आ रहा है और अपने कर्तव्य-पथ पर अविचलित रहने के लिए कृतसंकल्प है। अब, इस तथ्य को सर्वत्र स्वीकार किया जा चुका है कि आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा-पद्धति में विशेष पार्थक्य नहीं है और यूनानी पद्धति का मूल आयुर्वेद ही है। सरकार ने भी आयुर्वेद-यूनानी को एक ही भारतीय चिकित्सा-पद्धति स्वीकार की है। अतएव, इन दोनों पद्धतियों के सम्बन्ध में विशद विवेचन होना वांछनीय है।

आयुर्वेद-यूनानी पद्धतियों के पारस्परिक महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध को ध्यान में रखकर **'सचित्र आयुर्वेद' का एक विशेषांक आगामी मई–जून '५८ में** प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें उभय चिकित्सा-पद्धतियों के समन्वयात्मक स्वरूप के विषय पर देश के प्रमुख विद्वानों के विवेचनात्मक निबन्ध प्रकाशित किए जायँगे। इस विशेषांक के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना इसी अंक में प्रकाशित की जा रही है। 'सचित्र आयुर्वेद' के सभी ग्राहकों को यह विशेषांक मुफ्त दिया जायगा। अतएव, जिन ग्राहकों के चन्दे का रुपया अबतक कार्यालय में नहीं आया है, वे अविलम्ब रुपया भेजकर ग्राहक बन जायँ तथा इस महत्त्वपूर्ण विशेषांक की प्राप्ति को सुनिश्चित बना लें।

ग्राहकों से अनुरोध

'सचित्र आयुर्वेद' के सभी ग्राहकों के पास हम नये वर्ष का सुन्दर बहुरंगा कैलेण्डर भेज चुके हैं। फिर भी ग्राहकों से आये दिन हमें इस बात की शिकायत मिलती रहती है कि उनके पास अब तक कैलेण्डर नहीं पहुँचा। अतएव, ग्राहकों से अनुरोध है कि वे हमारे पास शिकायती पत्र लिखने के पूर्व अपने इलाके के डाकघर में कैलेण्डर की तलाश कर लिया करें। चूंकि, हमारे पास अब कैलेण्डर नहीं रह गये हैं, अतएव ग्राहकों को दुबारा कैलेण्डर देने में हम असमर्थ हैं।

– व्यवस्थापक

'सचित्र आयुर्वेद' के अबतक प्रकाशित सभी विशेषांकों की अपेक्षा अधिकतर महत्वपूर्ण, उपयोगी और सामयिक विशेषांक

आयुर्वेद-यूनानी समन्वयांक

सचित्र आयुर्वेद के आगामी महत्वपूर्ण विशेषांक—**आयुर्वेद-यूनानी समन्वयांक**—के प्रकाशन के सम्बन्ध में हम आयुर्वेद-जगत् एवं अपने पाठकों को गतांकों में ही सूचना दे चुके हैं। यह विशेषांक आगामी मई-जून १९५८ में पूरे सजधज के साथ प्रकाशित होने जा रहा है। अतएव विद्वत्समाज से हमारा अनुरोध है कि निम्नलिखित विषय-तालिका में से किसी एक विषय पर उच्चकोटि का निबन्ध लिख भेजने का प्रयत्न करें। एक विषय पर अनेक लेख और अनेक विषयों पर एक भी लेख नहीं, ऐसी स्थिति की उत्पत्ति को रोकने के लिए यह वांछनीय है कि जिस विषय पर लिखने की इच्छा हो, उसकी पूर्व सूचना हमें अविलम्ब प्रदान कर दी जाय ताकि किसी विषय का पिष्ट-पेषण होने की आशंका नहीं रह जाय और विद्वानों द्वारा लिखित लेखों को उचित रूप में प्रकाशित किया जा सके। हमें पूर्ण विश्वास है कि विद्वत्समाज के सहयोग से हम यह सामयिक विशेषांक भी अपनी परम्परा के अनुकूल ठोस एवं महत्वपूर्ण सामग्रियों के साथ प्रकाशित करने में सफल हो सकेंगे। लेखकों से प्रार्थना है कि वे अपनी रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र प्रेषित कर आयुर्वेद की उन्नति में सक्रिय अंश ग्रहण करें।

आयुर्वेद-यूनानी समन्वयाङ्क की विषय-सूची

१. समन्वय के विषय में विवरण करने से पूर्व, 'यूनानी शब्द का वास्तविक भाव क्या है तथा यूनानी वैद्यक या तिब किसे कहते हैं' इस विषय का विवरण आवश्यक है।

२. यूनानी वैद्यक के क्रमविकास का संक्षिप्त इतिवृत्त और उस पर आर्यवैद्यक का प्रभाव।

३. यूनानी पद्धति से आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक (डॉक्टरी) की उत्पत्ति एवं परिबृंहण अर्थात् यूनानी वैद्यक ही आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक की आधारशिला है इसका निरूपण।

४. आज भारतवर्ष में इन तीनों की स्थिति—उसका हेतु।

५. समन्वय का भाव—प्रमेयों में भेद होने के कारण तथा यथार्थ समन्वय का स्वरूप एवं विधि।

६. समन्वय का प्रयोजन या हेतु—आवश्यकता—समय की पुकार।

७. समन्वय का आधार—क्रियात्मक रूपमें एकता—समानशीलता, समशीलता—'समशीले व्यसनेषु सख्यम्'

(१) उत्पत्ति विषयक समानता—एक स्रोतकालोद्भवता, प्राचीनता आदि विषयक समानता—दोनों की उत्पत्ति के दो भेद रूप समानता—(अ) अपौरुषेयत्व, अनादित्व या इलहाम। (ब) क्रमिकविकास।

(२) दोनों के सिद्धान्तों (प्रमेयों) की समानता—प्रमेयों का अभ्यास करते समय दोनों के प्रमेय समानशील—प्रमुख समानशील का निर्देश।

(क) दोनों ही हेतुव्याधि विपरीत (प्रत्यनीक) चिकित्सा पद्धति (एलाज बिज्जिद)।

(ख) दोनों के ज्ञान साधन (प्रमाण) समान—प्रत्यक्ष और अनुमान आदि। परिस्थिति और प्राप्त ज्ञान साधन-सामग्री की, जिनसे प्रमेयों में भेद होता हैं, समानता।

(ग) दोनों ही पथ्यप्रधान चिकित्सा पद्धतियाँ हैं।

(घ) दोनों में संसार की हर एक वस्तु को औषध रूप से प्रयोग करने का निर्देश है--इसमें भी यूनानी से आयुर्वेद का महत्त्व है।

(ङ) दोनों पद्धति में आज के अनुभूत रासायनिक एवं भौतिक परीक्षणों का उपयोग कम होता है। वनस्पति का अधिक होता है।

(च) दोनों में जीवमान प्राणी, विशेषत: मनुष्य के ऊपर होनेवाले औषधियों के परिणामों का विचार करके चिकित्सा निश्चित की जाती है।

(छ) दोनों में कायचिकित्सा में और शल्य-शालाक्य आदि चिकित्सा भी हेतु, सम्प्राप्ति, लक्षण और चिकित्सा आदि के विषय में समान प्रकार की कल्पनाएँ तैयार होती है अर्थात् दोनों में इनकी समानता पायी जाती है। दोनों में इन कल्पनाओं का आधार प्रत्यक्ष प्रत्ययों पर न कि जड़ उपकरण प्राप्त रासायनिक एवं भौतिक प्रयोगों से प्राप्त प्रत्ययों पर होता है।

(ज) दोनों की उपयोगिता की समानता आदि।

(८) समन्वय का स्वरूप--रूपरेखा--

(क) चिकित्सा पद्धतियों में भेद होने के मूलभूत कारण और यथार्थ समन्वय का स्वरूप तथा उसकी विधि--भाषाभेद, आवश्यकता भेद।

(ख) प्रथम समन्वय आयुर्वेद से आयुर्वेद का।

(ग) द्वितीय समन्वय यूनानी से यूनानी का।

(घ) अन्तिम समन्वय आयुर्वेद से यूनानी का--आयुर्वेद से आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक का समन्वय करने के पूर्व आयुर्वेद से यूनानी का समन्वय अनिवार्य है। बिना इसके आयुर्वेद और एलोपैथी का समन्वय अपूर्ण होगा।

(९) समन्वय में बाधा और उसके हेतु--

(क) भाषा की भिन्नता,

(ख) पृथक् रहकर विकास पाना,

(१०) समन्वय के विषय--

अष्टाङ्ग आयुर्वेद--आयुर्वेद के आठो अंगों अर्थात् समस्त विषयों का विषय क्रमानुसार यूनानी के साथ समन्वय के विषय है। नीचे उनमें से कुछ का नामोल्लेख किया गया है--

आधारभूत सिद्धान्त--सामान्य और विशेष--

पदार्थ विज्ञान--(क) महाभूत आदि (वात, पित्त, कफ, रक्त)।

शारीर--(क) रचना शारीर या शारीर (तश्रीह--एनाटॉमी), (ख) क्रिया शारीर--दोष (त्रिदोष या चतुर्दोष), धातु (और उपधातु) तथा मलविज्ञान (उमूर तबीइय्या--फिजियोलॉजी)।

रोग विज्ञान--विकृति विज्ञान (पैथोलॉजी)

निदान--हेतु, रोग परीक्षा तथा इसके साधन।

लक्षण--

चिकित्सा--मुख्य दो भाग--

(१) कार्यचिकित्सा--औषध

उपभाग-- अंग-- द्रव्यगुण विज्ञान (निघण्टु), रसशास्त्र (रसायन)

उपांग--भैषज्य कल्पना

पञ्चकर्म--संशोधन (इस्तिफ्राग), रक्तमोक्षण (फस्द)

(२) शल्य-शालाक्य--शवच्छेदन, शस्त्रकर्म आदि प्रसूति तन्त्र (मिडवाइफ्री)

(११) दोनों में यत्किञ्चित भिन्नता के हेतु--

(अ) देश-काल-प्रकृति आदि की भिन्नता,

(ब) पृथक् पृथक् या स्वतन्त्रतया विकास पाना,

(स) साधनों का अभाव।

(१२) पारस्परिक वैशिष्य

(अ) यूनानी से आयुर्वेद का वैशिष्य,

(ब) आयुर्वेद से यूनानी का वैशिष्य।

(१३) आयुर्वेद के प्रतिसंस्कार, परिबृंहण, आपूरण और समयोपयोगी पूर्ण कार्यक्षम बनाने के हेतु समन्वयपूर्वक यूनानी विशेषताओं का आयुर्वेद में ग्रहण--

ग्रहण के हेतु--

(अ) आयुर्वेद की अपूर्णता,

(ब) 'नानौषधिभूत' इस आयुर्वेद वचन के पालनार्थ,

(स) विद्या और विज्ञान किसी की बपौती नहीं--यूनानी वैद्यक में समय-समय पर आयर्वेद का बहुलांश में ग्रहण हुआ है।

(१४) आयुर्वेद-यूनानी अर्थात देशी वैद्यक के अधिक उपयोगी एवं आरोग्यकारी होने के प्रमाण।

१५. आयुर्वेद-यूनानी पद्धति से समन्वयात्मक पाठ्यग्रन्थ की रूप-रेखा जो एक-दूसरे की विशेषता जानने के लिए वैद्यों और हकीमों को समानरूप से लाभप्रद हो।

१६. आयुर्वेदीय और यूनानी निघण्टुओं की विशेषता।

१७. आयुर्वेदीय और यूनानी-पारिभाषिक संज्ञाओं की तुलनात्मक नाम-सूची।

१८. रोग विशेष में वैद्यों और हकीमों द्वारा प्रयुक्त आयुर्वेद और यूनानी मिश्रित आनुभविक योग।

१९. आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा-पद्धति का चिरकालीन पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में ख्याति प्राप्त विद्वानों के विचार।

२०. आयुर्वेद-यूनानी का समन्वयात्मक दृष्टिकोण रखते हुए इसकी उन्नति के लिए प्रयत्नशील वैद्यों-हकीमों (जैसे हकीम अजमल खाँ, आचार्य यादवजी आदि) के सचित्र संक्षिप्त परिचय, उनकी कृति तथा उनके द्वारा प्रयुक्त समन्वयात्मक सुप्रसिद्ध योग।

२१. आयुर्वेद में तीन दोष (वात, पित्त, कफ) और यूनानी में चार दोष—(वात, पित्त, कफ और रक्त) होने का कारण।

२२. केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों द्वारा साहाय्य प्राप्त आयुर्वेद और यूनानी बोर्डों के संक्षिप्त परिचय, प्रगति एवं वर्तमान स्थिति।

द्रष्टव्य :—

(१) पूरी तालिका का भली-भाँति मनन करने के बाद अपने विवेच्य विषय का चुनाव करें।

(२) उपर्युक्त सभी विषय पृथक्-पृथक् विवेचन की अपेक्षा रखते हैं। प्रत्येक विषय के अन्तर को समझते हुए अपनी रचना प्रस्तुत करें।

(३) जिस विषय का जितना क्षेत्र है, उसीमें सीमित रह कर अपने विचार व्यक्त करें।

(४) विषय-तालिका में प्रदत्त विषयों के अलावा भी आयुर्वेद-यूनानी के समन्वय के विषय पर महत्वपूर्ण लेख स्वीकार किए जायँगे।

(५) सचित्र रचनाओं को सर्वाधिक महत्व दिया जायगा।

(६) हिन्दी या अंग्रेजी या संस्कृत भाषा में अपना लेख भेजने की लेखकों को पूरी स्वतन्त्रता है, लेकिन यदि कोई विद्वान उर्दू में भी लिखना चाहें तो वे अपना लेख उर्दू भाषा में भी लिख कर भेज सकते हैं।

(७) पेन्सिल से या अस्पष्ट अक्षरों में लिखे गये लेख स्वीकार नहीं किए जायँगे।

(८) किस लेख का कितना क्षेत्र है, इसकी जानकारी पत्र लिख कर प्राप्त कर लें।

(९) रचनाएँ निम्नलिखित किसी भी पते पर भेजी जा सकती हैं :—

पं० कामेश्वर शर्मा, 'कमल', सम्पादक,
सचित्र आयुर्वेद, १, गुप्ता लेन, कलकत्ता–६

हकीम ठाकुर दलजीत सिंहजी, विशेष सम्पादक,
आयुर्वेद-यूनानी समन्वयांक, सचित्र आयुर्वेद,
चुनार आयुर्वेद-यूनानी औषधालय, पो०–चुनार,
जिला–मिर्जापुर।

सम्पादक—पं० कामेश्वर शर्मा 'कमल'

विषय-सूची

वार्षिक मूल्य ५)

एक प्रति ।।) (५० नये पैसे)



प्राग्ज्योतिषपुर (गौहाटी) में अनुष्ठित राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर आयोजित खादी-ग्रामोद्योग प्रदर्शिनी में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० का भव्य प्रदर्शन-कक्ष। (बाएं) दर्शकों की टोलियां प्रदर्शन-कक्ष देखकर जा रही हैं और (दाएं) कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य सेठ गोविन्ददास मालपाणी तथा मध्यप्रदेश के उपमंत्री श्री जगमोहन दासजी प्रदर्शन-कक्ष का निरीक्षण कर रहे हैं।



वैद्यनाथ प्रदर्शन-कक्ष में मद्रास के राज्यपाल श्री विष्णुराम मेधी तथा असम कांग्रेस के प्रमुख नेता श्री सिद्धिनाथ शर्मा।



भारत सरकार के वाणिज्य-उद्योग मंत्री श्री मुरारजी देसाई वैद्यनाथ प्रदर्शन-कक्ष में वैद्यनाथ-औषधियों की गुणवता के विषय में अपने अभिमत प्रकट करते दिखायी दे रहे हैं।

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होनेवाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख-मासिक पत्र



सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष १० | कलकत्ता, मार्च, १९५८ | अंक ९

चेचक का निरोध और चिकित्सा

आजकल बंगाल-बिहार में मसूरिका (चेचक) का प्रकोप यत्र-तत्र हो रहा है। ऐसी आशंका है कि आगामी महीनों में इसका प्रकोप विशेष रूप से बढ़ सकता है। इस सम्बन्ध में जैसा एलोपैथी वाले चेचक-निरोधक टीका लगाते हैं, उसी तरह आयुर्वेदिक मतानुसार चेचक-निरोधक औषधि तथा चेचक हो जाने पर चिकित्सा एवं उपचार के सम्बन्ध में निश्चित औषधि की व्यवस्था की जाये। विगत शीतज्वर-प्रकोप के समय बिहार के स्वास्थ्य-मन्त्री के परामर्श से हम लोगों ने आयुर्वेदिक पद्धति से शीतज्वर-निवारण के सम्बन्ध में जैसा प्रयास किया, उससे आयुर्वेद को बहुत सफलता और श्रेय मिला। इसी तरह चेचक के सम्बन्ध में बिहार के स्वास्थ्य मन्त्री की इच्छा है कि चेचक-निरोध के लिए भी आयुर्वेद का आश्रय लिया जाये। इसके लिए निकट भविष्य में एक प्रेस-कान्फ्रेन्स बिहार सरकार की तरफ से होने जा रही है। अतः वैद्य-बन्धुओं से अनुरोध है कि वे अपने अनुभव इस सम्बन्ध में अविलम्ब भेजें, ताकि प्रेस कान्फ्रेन्स में उक्त विचार उपस्थित किये जा सकें और तदनुसार चेचक-निरोधक कार्य आरम्भ कर दिया जाये। अगर हमारा यह अभियान सफल हुआ तो जन-कल्याण के साथ-साथ आयुर्वेद की भी बहुत बड़ी ख्याति होगी। आशा है, वैद्य-बन्धु आयुर्वेद की प्रतिष्ठा के लिये अति शीघ्र अपना अनुभव भेज कर हमें कृतार्थ करेंगे।

वैद्य दुर्गाप्रसाद शर्मा

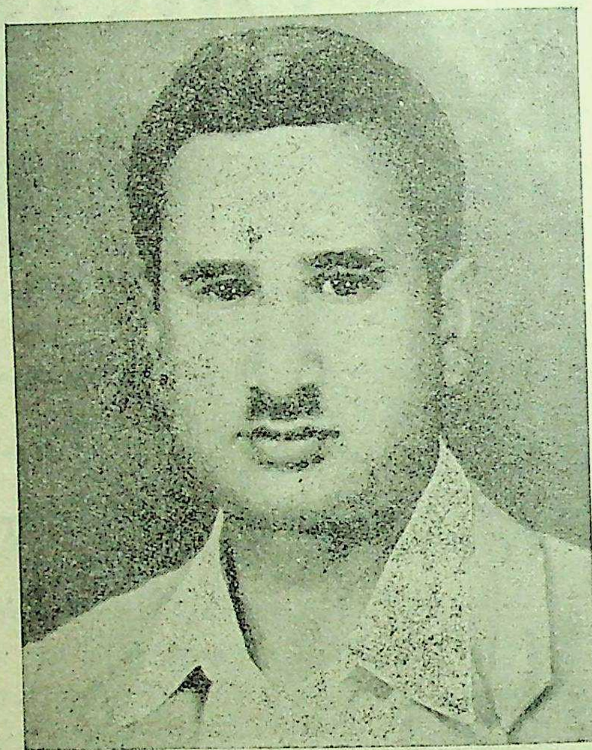
श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड, पटना—१

डॉ० अनन्तानन्द आयुर्वेदालंकार का संक्षिप्त परिचय

'सचित्र आयुर्वेद' के नवम् वर्ष के दौरान में प्रकाशित लेखों में से गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा० अनन्तानन्द आयुर्वेदालंकार द्वारा लिखित 'अस्थिरोग' विषयक लेखों को सर्वोत्तम लेख स्वीकार कर 'सचित्र आयुर्वेद पुरस्कार निर्णायक समिति' ने २५०) का वार्षिक पुरस्कार देने की घोषणा की है और तदनुसार 'सचित्र आयुर्वेद' के प्रकाशक श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० की ओर से डा० अनन्तानन्द जी को उक्त २५०) का वार्षिक पुरस्कार प्रदान कर दिया गया है।

'सचित्र आयुर्वेद' में प्रकाशित सर्वोत्तम लेखों के लिए प्रतिवर्ष पुरस्कार देने की परम्परा शुरू से ही कायम है। अबतक आयुर्वेद-जगत् के अनेक प्रौढ़ लेखकों और विद्वानों को यह वार्षिक पुरस्कार प्राप्त हो चुका है, जिनमें सर्वश्री कविराज सतीन्द्रनाथ बसु भिषग्रत्न, आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी आयुर्वेदशास्त्राचार्य, वैद्य बापालाल भाई, वैद्य रणजितराय देसाई, वैद्य पं० रामरक्ष पाठक के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार वार्षिक पुरस्कार देने से आयुर्वेद विषयक महत्त्वपूर्ण निबन्धों की रचना के लिए लेखकों को प्रोत्साहन मिलता है और आयुर्वेद की उन्नति एवं प्रगति में सहायता पहुँचती है।

डा० अनन्तानन्द आयुर्वेदालंकार, आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता स्व० श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दजी के सुपुत्र हैं। आपका जन्म स्थान गुरुकुल कांगड़ी (पुरानी भूमि) है। आपका जन्म २९ मार्च १९१९ को हुआ था। १९३९ में आपने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से आयुर्वेदालंकार की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। स्नातक होकर निकलने के बाद आप पंजाब चले गए और वहाँ के प्रसिद्ध नेत्ररोग विशेषज्ञ तथा शल्य चिकित्सक डा० बालकृष्ण के पास एक वर्ष रहे। १९४० में गान्धी चैरिटेबल हौस्पिटल बदरपुर (देहली) के अध्यक्ष नियुक्त हुए। १९४२ में हौस्पिटल के बृटिश गवर्नमेण्ट द्वारा जब्त कर लिए जाने पर आप गुरुकुल बुला लिए गए और श्रद्धानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय में चिकित्सक का कार्य तथा आयुर्वेद-कॉलिज में शवच्छेदन का कार्य आपको सौंपा गया। १९४६ में शारीर के प्राध्यापक तथा ऐक्सरे-विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। १९५५ में उत्तरप्रदेशीय रेडिओलौजिकल ऐसोसिएशन के अवैतनिक ऑडिटर तथा ऑल इण्डिया रेडिओलॉजिकल ऐसोसिएशन के ऐसोशिएट मेम्बर बने। आजकल आयुर्वेदिक कॉलिज गुरुकुल कांगड़ी में पूर्वोक्त पदों पर कार्य कर रहे हैं और एक अत्यन्त लोकप्रिय और सिद्धहस्त चिकित्सक हैं।



डॉ० अनन्तानन्द आयुर्वेदालंकार

आयुर्वेद चिकित्सा क्षेत्र से शल्य-शालाक्य चिकित्सा का तो आजकल प्रायः लोप-सा ही हो गया है। डा० अनन्तानन्द जैसे कुछ आयुर्वेद विद्वान इस ओर आयुर्वेदज्ञों का ध्यान आकृष्ट करने के साथ नवीन विज्ञान के सहयोग से आयुर्वेद के भण्डार को पूर्ण करने का जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसकी हम सराहना करते हैं। हमें आशा है कि डा० अनन्तानन्द जी अपने प्रयासों को बराबर जारी रखेंगे और इस प्रकार आयुर्वेद विज्ञान को सर्वांगपूर्ण बनाने में सहायक होंगे।



आयुर्वेद का विधिवत् शिक्षण

जब किसी प्राचीन संस्कृति, कला, ज्ञान-विज्ञान और आचार-विचार को समाप्त करना हो तो उसकी शिक्षण-पद्धति पर प्रहार किया जाता है, यह तथ्य इतिहास-विख्यात है। अंग्रेजों ने जब अपनी तोड़-फोड़ और भेद-भाव को बढ़ाने वाली कूटनीति के संबल से, भारत के विशाल-भू-भाग पर अपना अधिकार किया, तब पहले तो अपने 'बन्दोबस्त' के बेलन से यहाँ की ग्राम-पंचायतों और नागरिक व्यवस्था को चौरस किया, फिर अपने राज्य-शासन को स्थायी बनाने के लिए, उन्हें यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि यहाँ की जनता की प्राचीन संस्कृति और परम्पराओं में पली हुई स्वतंत्र भावनाओं को तिरोहित किया जाय और देशवासियों को जीवन के हर पहलू में परावलम्बी बना दिया जाय। इसके लिए उन्होंने सबसे पहला और उपयुक्त साधन यही अपनाया था कि उस काल में प्रचलित भारतीय शिक्षण-पद्धति को समाप्त करके, अपने ढंग की—'अदब-क़ायदे की'—शिक्षा-प्रणाली का प्रसार किया। विषय, पाठ और पाठ्य-क्रम—सबके सब नये और अपने प्रकार के! उसका परिणाम अंग्रेजों के लिए हितकर हुआ, और वे प्रताप एवं शिवाजी के देश में सौ वर्ष से ऊपर तक एकछत्र राज्य करते रहे। उनके द्वारा प्रचलित की गयी शिक्षा-प्रणाली ने देशी-विज्ञान और कलाओं को तो नष्ट किया ही—भारतीय जीवन, दर्शन, संस्कृति, विचार और ज्ञान-परम्पराओं को जिस सांचे में ढाल दिया, उसका ज्वलन्त स्वरूप हमारे सामने है—स्वावलंबन तो जैसे हम भूल ही गये।

आयुर्वेद का ह्रास भी जितना शिक्षा में पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धतियों के प्रचार से हुआ, उतना अन्य किसी कारण से नहीं हुआ। यद्यपि समुचित प्रोत्साहन न मिलना भी आयुर्वेद के पतन का एक कारण है, परन्तु उसके स्थान पर अन्य पद्धति से शिक्षण का बाहुल्य ही आयुर्वेद के पिछड़ने का सबसे बड़ा और अति प्रभावकर कारण रहा है। जब तक देश में मेडिकल कालिज नहीं खुले थे, तब तक भारत में चिकित्सा का सर्वाधिक श्रेय-प्राप्त साधन देशी चिकित्सा पद्धतियाँ और प्रधानतः आयुर्वेद ही था। ज्यों-ज्यों मेडिकल कालिज खुलते गये, त्यों-त्यों आयुर्वेद के ज्ञान के प्रति लोग अनायास ही विमुख होते गये, और ज्यों-ज्यों उन कालिजों से पाश्चात्य-पद्धति के स्नातक निकले, त्यों-त्यों कम-से-कम शहरी और उच्च वर्ग की जनता की चिकित्सा का श्रेय आयुर्वेद की गाँठ से खिसकता गया। क्रमशः इसी प्रकार जनप्रिय वैद्यों के विस्तृत यश पर डाक्टरों की चमत्कारपूर्ण कीर्ति ने पानी फेर दिया। बीसवीं सदी के उदय तक, दो समूची पीढ़ियों को डाक्टरी चिकित्सा पर ही आश्रित होने के लिए, अंग्रेजों की नये प्रकार की शिक्षण-प्रणाली ने पहले ही तैयार कर दिया था! इस प्रकार लगे हाथ देशी चिकित्सा-पद्धतियाँ दब गयीं, और पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान हमारे देश में चमक गया। भारतवर्ष में विदेशी चिकित्सा-विज्ञान की उन्नति का सम्पूर्ण इतिहास यदि ग़ौर से देखा जाय, तो वह वास्तव में मेडिकल कालिजों की उन्नति का इतिहास है। मेडिकल कालिजों और विदेशी चिकित्सा-पद्धति एवं विदेशी औषधों की बढ़ती पर, देश का कितना पुष्कल धन व्यय हुआ; और उससे जन-स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के क्षेत्र में देश को कितने अंशों में लाभ हुआ, यह अब सर्वविदित है और इतना स्पष्ट है कि किसी प्रकार की टिप्पणी की अपेक्षा नहीं रखता। इतना तो निर्विवाद निश्चित है कि भारत की अपनी स्वास्थ्य-परम्पराओं के विघटन के साथ ही हमारी जनता की स्वास्थ्य-विषयक रुचि और विचारधारा में जो परिवर्तन आ गया है, उसने देश के स्वास्थ्य को इतना अधिक निर्बल कर दिया है कि वह गंभीर चिन्ता का विषय बन गया है, और पाश्चात्य-चिकित्सा-विज्ञान का अनुसरण, असीमित धन-व्यय कराके भी उस चिन्ता के समाधान की दिशा में कोई ठोस प्रगति नहीं कर सका है। फिर भी विचित्रता यह है कि हमारे भाग्य-विधाताजन प्रगति के मोह में उसी लीक पर चले जाना चाहते हैं।

जब हम देखते हैं कि करोड़ों रुपये की लागत वाले मेडिकल कालिजों की स्थापना में हमारी सरकार, अब भी, पूर्ववर्ती शासकों की अपेक्षा अधिक सक्रिय है तो आश्चर्य होता है। कदाचित् सरकार इस नीति का अनुसरण भोर कमेटी के सुझावों पर कर रही है, जिसका सर्वत्र विरोध

हुआ था। हम निःसंशय कह सकते हैं कि मेडिकल कालिजों की बढ़ती, आयुर्वेद और वैद्यों की रही-सही स्थिति को भी समाप्त कर देने का कारण सिद्ध हो सकती है। एक समय कलकत्ता जैसा बड़ा नगर वैद्यों की कीर्ति का केन्द्र था, समूचे बंग-प्रदेश में कविराजों का विशिष्ट स्थान था, परन्तु मेडिकल कालिजों के प्रसार ने उसी कलकत्ते में आयुर्वेद और वैद्यों की जीविका को ऐसा चूस लिया जैसा अमरबेल किसी हरे-भरे पौधे के जीवन-रस को सोख लेती है। आयुर्वेद के विधिवत् अच्छे शिक्षण की व्यवस्था की ओर न तो सरकार का समुचित ध्यान है, और न ही आयुर्वेद के नाम पर प्रतिष्ठा पाने वाले महारथियों का। हमारे मत से आयुर्वेद का भविष्य एवं स्थिति ही मात्र इस बात पर निर्भर है कि आयुर्वेद के विधिवत् शिक्षण का प्रसार किया जाय; जिसकी ओर किसी का ध्यान नहीं। इसके विपरीत जगह-जगह, नये-नये मेडिकल कालिजों के स्थापना की योजनाएँ चल रही हैं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में एक बहुत बड़ी रक़म मेडिकल कालिजों की स्थापना के लिए व्यय करने का राज्य का विचार है। यदि यही क्रम रहा तो स्पष्ट है कि देश में पाश्चात्य चिकित्सा का जहाँ निःसीम विस्तार होगा, वहाँ आयुर्वेद का क्षेत्र संकुचित होता जायगा। फिर स्वभावतः ही वैद्यों की जीविका निर्बल होती जायगी। वैद्य-समाज को, विशेष कर, इस खतरे से सावधान होना चाहिए और मेडिकल कालिजों की इस बाढ़ को रोकने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। जनतन्त्रीय व्यवस्था में होने-वाले अहितकर कार्यों को सबल विरोध के द्वारा रोका जा सकता है। खेद है कि अबतक वैद्य-समाज का ध्यान इस ओर नहीं गया। केवल आयुर्वेद के विकास के लिए सहायता की याचना करते रहने से ही उसकी रक्षा नहीं हो जायगी। एक ओर जहाँ उसके विकास के लिए यत्न होना चाहिए, दूसरी ओर वहाँ उसके विस्तार के अवरोधक व्यवहारों से बचाव के लिए प्रवल संघर्ष किया जाना चाहिए। हाल ही में एक बड़ा मेडिकल कालिज बीकानेर में खोलने की योजना थी; फिर कहा जाता है कि वह योजना बीकानेर के स्थान पर जोधपुर के लिए स्थिर हुई है। वर्तमान में अन्य प्रदेशों की अपेक्षा राजस्थान में आयुर्वेद की स्थिति कुछ अच्छी है। वैद्यों का बड़ा समुदाय वहाँ है। अनेक जागरूक वैद्य हैं और अच्छे संगठनकर्ता हैं, फिर भी राजस्थान में अपने यहाँ इस नये मेडिकल कालिज की योजना के विरोध में वैद्यों की ओर से कोई स्वर नहीं उठाया गया। जोधपुर से प्रकाशित होने वाला सहयोगी 'जय आयुर्वेद' वैसे तो, अपने को, बड़ा स्पष्टवादी तथा तथ्यवादी तथा आयुर्वेद एवं वैद्य-समाज के हितों का उन्नायक कहता है—परन्तु इस विषय में उसने भी एक अक्षर नहीं लिखा। आयुर्वेद-क्षेत्र के पत्रों की इस विषय में उपेक्षा और उदासीनता हमें अच्छी नहीं लगती। हमारे सहयोगियों को पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति की जड़ जमाने वाले और आयुर्वेद के रहे-सहे गौरव का अपहरण करने वाले प्रयत्नों का विरोधी वातावरण बनाने में सक्रिय होना चाहिए। राजस्थान में पहिले से ही मेडिकल कालिज विद्यमान है, अन्य की आवश्यकता नहीं, यह बात—राजस्थानवासी सरकार को समझावें। बटवृक्ष की एक अपनी विशेषता होती है कि जहाँ वह बढ़ता है उस स्थल पर अपनी छाया तक के क्षेत्र में वह किसी दूसरे पौधे को पनपने नहीं देता। यह मेडिकल कालिज भी बटवृक्ष के समान हैं, जहाँ एकबार जमे कि देखते-देखते अपनी विस्तृत काया बढ़ायी और फिर क्या मजाल कि वहाँ दूसरी पद्धति का प्रभाव-क्षेत्र बना रह जाय। अबतक अनुभव यही बताता है। जहाँ-जहाँ मेडिकल कालिज बने वहाँ-वहाँ उन्होंने आयुर्वेद का विघटन किया। आयुर्वेद-हितैषियों और वैद्य-समाज को इस दिशा में सतर्क विचार करना चाहिए।

हम कदापि प्रगतिशील शिक्षा के विरोधी नहीं हैं। शिक्षा में उपयोगिता को भी प्रधान महत्त्व दिया जाय, इसके पक्षपाती अवश्य हैं। मेडिकल कालिजों को भी शिक्षा की उपयोगिता के आधार पर विचारना चाहिए। डाक्टरों की संख्या-वृद्धि से यदि जन-स्वास्थ्य-समस्या का हल होने वाला हो, तो भी मेडिकल कालिजों के विस्तार को उचित मान लिया जाय। प्रसंगवश यहाँ अपनी सरकार से भी इस विषय में पुनर्विचार के लिए अनुरोध कर देना अनुचित न होगा। व्यावहारिक, आर्थिक और लाभांकन के दृष्टि-कोण से यह स्पष्ट सत्य है कि मेडिकल कालिजों की अपेक्षा देशी चिकित्सा-पद्धति के विद्यालयों का विस्तार अधिक सुगम हितकर हो सकता है। जहाँ एक ही मेडिकल कालिज की स्थापना में प्रायः एक-डेढ़ करोड़ रुपया लग जाता है, वहाँ उतने ही धन में कम से कम बीस भारतीय चिकित्सा-प्रणाली के श्रेष्ठतम विद्यालयों की स्थापना और संचालन बड़ी सुविधा के साथ हो सकता है। सीधे-सादे अर्थशास्त्र

(शेषांश पृष्ठ ८४३ पर)

भूल-भुलैयाँ

श्री द्वारिकेश मिश्र

"सत्य की उपेक्षा क्यों?"––इस शीर्षक से मैंने दिल्ली की पत्रिका में प्रकाशित वक्तव्य-श्रृंखला के प्रथम भाग पर, मुख्यतः, विचार किया था। उस विचार से, अन्त में यही प्रश्न सामने आया था कि सत्य की यह उपेक्षा क्यों? एक ऐसी आर्थिक दशा वाली संस्था के निर्बल कोष से, जिसके सन्तुलन-पत्रों में प्रति वर्ष आय से व्यय अधिक दिखाया जाता है,—लगभग डेढ़ हजार रुपयों का कल्याण करके प्रकाशित की गयी, एक सौ दस द्विभाषीय पृष्ठों वाली इस वक्तव्य-श्रृंखला का दूसरा और तीसरा भाग मेरे सामने है। इन दोनों भागों को बहुत सावधानी और भरपूर सहानुभूति के साथ आद्योपान्त पढ़ लेने के बाद भी, वही प्रश्न––अपने उसी आकार में मेरे सामने खड़ा है, और मैं अतिविनम्र भाव से अपनी कल्पनाओं में चिन्तित एवं उद्वेगाच्छन्न वक्तव्य प्रकाशक के भव्य स्वरूप को सामने करके उसी प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ।

धन्य हो चतुर कूटनीतिज्ञ? जिस कमाल के साथ आप मूल प्रश्नों की मूल भावना को दूर फेंकते हुए, समाज के व्यक्तियों को अपने बुद्धि कौशल से चमत्कृत करने का गंभीर उपक्रम कर रहे हैं, उसके लिए तो आपको बेलौस बधाई। परन्तु विद्वान जी, यह प्रयत्न किस सीमा तक सफल होगा, इसमें जरा सन्देह हो जाता है। क्योंकि जिनको समझाने के लिए आपने यह कलम घसीटन किया––यह तो आपने पूरे चातुर्य का काम किया कि गाँठ से पाई खर्च न करके प्रकाशन में उनके ही धन का सदुपयोग कर डाला; लेकिन, वे कुछ बदले हुए जमाने की हवा पाकर, पहले जैसे नहीं रहे। पहले तो निश्चय ही आपकी वाणी के प्रसाद को पाकर वे गद्गद् हो जाया करते थे––परन्तु अब तो उन्हें भी यह पता लग गया है कि ऐसे स्वरों में गले के नीचे कुछ और होता है, और गले के ऊपर कुछ और। फिर भगवन्! यह भी तो सोचिए कि जिनको आप अपनी सफाई में यह कुतर्कों की चन्द्रकान्ता सुना रहे हैं, उनमें से जो अधिकांश वस्तुस्थिति की जानकारी रखते हैं––वे क्या सोचते और कहते होंगे? हाँ, आपके अन्तरिक्ष में छुपी हुई एक बात हम भी मानने को तैयार हैं धुरंधर जी, कि आपका यह सम्पूर्ण प्रयत्न यदि आयुर्वेद-जगत के बाहर अपने को पाक-साफ बनाये रखने के लिए है, तो वह शायद कुछ असर कर जायगा, इस प्रकार पत्रिका के अतिरिक्त विस्तारित होने वाली सैकड़ों प्रतियां कुछ अंशों में तो सार्थक हो ही जायेंगी। और महामान्य, मूलतः आपको चिन्ता भी आयुर्वेदेतर क्षेत्र की ही दिखायी देती है, क्योंकि आपके श्रीकरकमलांकित वक्तव्यों में यह बात बार-बार उभरकर ऊपर आयी है कि आपके सदा शान्त रहने वाले मस्तिष्क को, खलबली का उफान इसी कारण ने दिया है कि उस पैम्फ्लेट की प्रतियां कुछ ऐसे लोगों ने भी देख लीं, जिनके सामने आप अपनी निर्द्वन्द्व नेतागिरी के, ऊपर से विनम्र पर असर में भारी, प्रवचन किया करते होंगे। अपने राम भी मान गए महात्मा? उनके लिए तो आपका यह प्रयास प्रभावकर हो ही जायगा, जिन्हें इस सम्पूर्ण प्रसंग की पूरी जानकारी नहीं है। परन्तु उसमें भी एक खटका अवश्य है कि जिस दिन उन सबको भी इन विविध कलाओं का परिचय मिल जायगा, उस दिन किरकिरी हो जायगी, सो आप सोच लीजिए।

दूसरों को प्रस्तुत विषय से बिदका कर इधर-उधर की बातों में उलझा लेना और सामने वाले को इस बात के लिए कायल कर लेना कि हम कितना सतर्क न्याय और कितना बारीक विवेचन करते हैं, यह भी एक गूढ़ कला है जो बीसवीं सदी के सुघर-साधकों को मिला करती है। सो पण्डित जी? इस कलावन्ती का परिचय आपने जिस बुलन्दी के साथ इन वक्तव्यों में दिया है, उससे अपने राम तो मान गए कि आप अपने तौर-तरीकों के आचार्य हैं। परन्तु क्या बताऊँ साहब! यह वैद्य-समाज के कुछ लोग ऐसे हैं कि पहले की भाँति अब, आँख मींचकर, आपकी हाँ में हाँ मिलाने तो तैयार ही नहीं होते। क्षमा कीजिएगा, मैं अभी तक यह निश्चय नहीं कर पाया कि आपको पण्डित जी सम्बोधन करूँ या साहब? क्योंकि आप नाम के पण्डित और स्वरूप के साहब हैं। आचार-विचार और व्यवहार की दृष्टि से इस मामले में तौल करने की हिम्मत नहीं पड़ती, क्योंकि

एकाध बार उस महामायापुरी में स्थित आपके बंगले रूपी आश्रम पर जाने का साहस किया तो पहले तो चार-चार मुचण्ड महापशुओं के भीषण-भाषण की चपेट में अपने राम चौकड़ी भूल गए। बाद को आसपास के भले-मानुसों ने बताया कि वे प्रत्येक एक-एक हजार मुद्रा से ऊपर मूल्य के विदेशी जीव हैं जिन्हें 'डॉग' कहते हैं। फिर महाराज? शुद्ध आयुर्वेद के उस सृजन-स्थल पर जो बहार बहती देखी, उसको अपने राम नहीं पहिचान पाये कि वह किस लोक की है। और जब महाराज, यह देखा कि बड़े-बड़ों की बुद्धि में शुद्ध आयुर्वेद की मेख ठोकने वाले आधुनिक महर्षि की आगामी पीढ़ी—उसको क्या कहते हैं, भला-सा नाम है—विशुद्ध एलोपैथी में दीक्षित है तो सच कहता हूँ महाराज, शुद्ध आयुर्वेद के परिशुद्ध भविष्य पर आत्मा गद्गद् हो गई। घिसी-पिटी संस्कृत के विषय को केवल फर्राटेदार अंग्रेजी में घोंकने वाले आप महापण्डित को मैं क्या सम्बोधन करूँ, यह फिर भी निश्चय न कर पाया। इस कारण यदि सम्बोधन में कहीं अज्ञानतावश, कुछ उल्टा-सीधा हो जाय, तो क्षमा कीजिएगा।

हां, तो अपने दूसरे वक्तव्य में आपने दूसरों की विस्मृतियों के मनमाने उदाहरण देकर स्वयं के एक अशोभन आचरण को विस्मृतिजन्य कहकर और उस विस्मृति को भी सर्वथा अमहत्त्वपूर्ण और अविचार्य बताने का जो उपक्रम किया है, वह कुछ जँचा नहीं साहब! यह तो ऐसा ही रहा कि किसी बज्र झूंठे से कहा जाय कि तुम झूंठ क्यों बोले और वह उत्तर देने लगे कि फलां-फलां ने भी झूंठ बोला। सच बात तो यह है कि पण्डित जी कि विस्मृति कुछ और होती है। उस २२००) रुपये की घटना के प्रसंग में आपने न्यायालय में सर्वथा सत्य एवं निर्भ्रान्त भाषण करने की शपथ लेकर भी, जो असत्याधारित, आश्चर्यजनक और मनोरंजक अभिनय किया, वह कुछ और है। विस्मृतिवश उसे नहीं कहा जायगा। एक विनम्र प्रार्थना यह भी है कि आपको पत्रिका के पन्द्रह हजार मुद्रित पृष्ठों को स्मृति-पथ में रखने की आवश्यकता ही क्या थी, उन पन्द्रह हजार पृष्ठों में बहुत-से तो आपके स्वयं के भाषणों की आवृत्तियों और आपके विरुद-बखानों में ही रंगे हुए होंगे। और पण्डित जी, यह दोनों विषय आपको वैसे ही कण्ठाग्र रहते हैं। अवशिष्ट अधिकांश पृष्ठों में लेखादि छपे होंगे, जिनको न कंठाग्र करने की आवश्यकता थी और न आपको व्यस्त घड़ियों में से कभी पढ़ने का अवसर मिला होगा। अब स्मृतिपथ में रखने के लिए वे थोड़े-से ही पृष्ठ रह जाते हैं, जिनमें यदा-कदा महासम्मेलन की कार्यवाहियों का विवरण प्रकाशित हुआ होगा। उनसे ही मतलब था। इस प्रकार पन्द्रह हजार मुद्रित पृष्ठों को स्मृतिपथ में रखने की आपकी बात कुछ अमान्य ही समझ में आती है। अब, यह बात लीजिए कि वह घटना विशेष भी क्या आपके स्मृतिपथ में नहीं रहना चाहिए थी? सो पण्डित जी, जब आपको उन अठारह वर्षों की पुरानी से पुरानी बातें ऐसी याद थीं कि आप पूरे पारंगत-वेदान्ती की भांति सटासट उच्चारण करते गए, तो इस एक खास घटना को जो केवल लगभग एक वर्ष पूर्व की थी, आप भूल गए हों, इस बात को कोई समझदार कैसे माना जायगा?

आखिर कोई कैसे इसपर विश्वास कर ले कि २२००) रुपये की घटना के उस प्रसंग को आप बिलकुल भूले हुए थे, जब उसकी समकालीन ऐसी बातें आज तक आपके स्मृति-पथ में हैं जो कहीं लिखी-पढ़ी नहीं। आपको यह तो याद है कि उस दिन आकाश में बादल भरे थे, तूफान आया था और हवाई मार्ग खराब था, परन्तु यह याद नहीं रहा कि आप स्वयं पृथिवी पर क्या कर रहे थे? आकाश की बातें तो याद रहीं और पृथिवी की बात भूल गए। उस दशा में भी कि वह घटना ऐसी हुई जिसके बाद आपके एक सम्बन्धी—वह सौतेले सही—से सदा के लिए बोल-चाल बन्द हो गया। धन्य हो बीसवीं सदी के शंकराचार्य! आपकी यह भूल भी कमाल है। भूले भी तो केवल वही बात भूले जिसमें स्वयं के प्रस्ताव द्वारा संस्था के कोष से तीन हजार से ऊपर की रकम खिसका दी, और वर्षों तक सदस्यों को उसका पता तक न होने दिया। यह बात नहीं कि आप केवल न्यायालय में ही भूले हों। भाग्य की बात है कि इस एक ही प्रसंग में आप जैसे अनन्त-कला-विभूषित व्यक्ति आदि से अन्त तक भूलते चले गए। आश्चर्य है पण्डित जी! त्रिवेन्द्रम में जब विश्वविद्यालय का जिक्र आया तो उस विषय की अपनी घोषणाएँ भूल गए और योजना को स्थगित कराके ही माने। चन्दे की कुछ रकम वापिस करने की बात आई तो यह पूछना भूल गए कि क्या वास्तव में वह निधि कोई जमीन खरीदने के लिए आयी थी। अधिवेशन में जब सभापतित्व के चमकीले सिंहासन से रकम वापिस करने का प्रस्ताव स्वयं श्रीमुख से फटकारा, तब यह बताना भूल गए कि रकम किसको लौटायी जायगी। रकम लौटा देने के बाद अन्य दान-दाताओं को

यह जताना भूल गए कि एकत्र चन्दे में से अमुक का रुपया लौटा दिया गया है। तीन हजार से ऊपर की रकम केवल अपनी जिद रखने के लिए संस्था के कोष में से चलायमान करके उसके सदस्यों को यह बताना भूल गए कि यह पुरुषार्थ उनके अमुक हित के लिए किया गया है। न्यायालय में 'भगवान को हाजिर नाजिर' जानकर इस सम्पूर्ण प्रसंग के अस्तित्व को ही भूल गए। और कहां तक बताऊँ पण्डित जी? इन वक्तव्यों में तो आप उस भूल को भूल स्वीकार करना ही भूल गए।

अब आप ही बतलाइये दयानिधान! इस सारे प्रसंग को कोई विस्मृति का कारण कैसे मान लेगा? यदि कुपित न हों तो निवेदन करूं? थोड़ी देर के लिए इस कहावत को चरितार्थ करना छोड़ दीजिए कि "पंचों की बात सर माथे पर, पर नाला यहीं से निकलेगा"। तथ्यों के साथ जबर्दस्ती की अड़ को त्यागकर सौजन्य और सत्य के धरातल पर खड़े होकर, ठंडे दिल से जिस साधारण-सी बात के लिए आपने मुफ्त ही पत्रिका के इतने पृष्ठ रंग डाले, उसको ही इस प्रकार विचारिए कि जब न्यायालय में आपके सामने यह प्रसंग आया था, तब यदि आप किसी तथ्य को छिपाने का दुराग्रह नहीं करना चाहते थे, तो ज्यों ही पत्रिका आपके सामने रख दी गयी, तब आपको सम्पूर्ण घटना, यदि भूले भी थे तो याद आ जानी चाहिए थी और एक वास्तविक सत्यवादी की भांति आपको सारा वृत्तान्त स्पष्ट सूचित करना था कि हाँ यह प्रस्ताव मैंने प्रस्तुत किया, स्वीकृत हुआ और अमुक रकम, अमुक कारण से, अमुक सज्जन को लौटायी गई थी। बिना किसी लाग-लपेट के और बिना अधिक जिरह का अवसर दिए, जो कुछ हुआ, वह जैसा हुआ उसको वैसा ही मान लेने और बताने में आपकी कोई हानि नहीं होती—और होती भी तो आप जैसे, अपने को सत्यप्रिय कहने वाले व्यक्ति के लिए वह हानि भी गौरवास्पद होती। इसके विपरीत माननीय पण्डित जी, आपने जो अभिनय न्यायालय में किया, उसका वर्णन, उससे अच्छा तो मैं कर नहीं सकता जैसा विद्वान न्यायाधीश ने किया है। इतना अवश्य कह सकता हूँ कि यदि आप वस्तुतः सत्य पर आधारित होते, तो विवाद और निर्णय पर उसका कुछ भी प्रभाव पड़ता, परन्तु कम स कम, किसी को आपके सम्बन्ध में ऐसी बात कहने का साहस न होता, जिसको आप अब अपने आचरण की तीव्र और हानिकर निन्दा समझते हैं और अपनी चरित्रदृढ़ता एवं सत्यता की बहुत कड़ी आलोचना कहते हैं। न्यायालय में तो महाराज, अपने साधारण से बचाव के मोह में एक झूंठ को सत्य बताने के लिए सौ झूंठ बोले, चाहे वे परिस्थिति या अनवधानतावश ही बोले हों, फिर अब उन सौ झूंठों के लिए डेढ़ सौ झूंठ बोलने से क्या लाभ? यह साधारण-सी समझ का तकाजा है कि आप इस मौलिक बात पर विचार करें। आप सामान्य से कुछ अधिक अच्छे स्तर का व्यक्तित्व अर्जित कर लेने वाले व्यक्ति हैं, और आपके लिए इस प्रकार का दुराग्रह न केवल अशोभनीय है, प्रत्युत निन्दनीय भी है।

यह तो हुई आपकी वक्तव्य-शृंखला के द्वितीय भाग की समीक्षा। अब उसके तृतीय भाग को उठा लीजिए। तृतीय भाग में उल्लिखित विषयांक १ की व्याख्या जिस प्रकार आप वक्तव्य नं० २ में कर चुके हैं उसी प्रकार आपके इस सेवक द्वारा, ऊपर हो चुकी है। अब विषयांक २ को लीजिए।

हरे शिव-शिव-शिव! महामना पण्डित जी, इस दूसरे विषयांक को पढ़कर तो अपने राम धक् से रह गए! सौतेली मां तो हमने सुनी है, यह सौतेला भाई क्या होता है? एक ही पिता की दो नैतिक पत्नियों से उत्पन्न सन्तानों को हम तो भाई-भाई ही सुनते आये हैं महाराज! सौत की संज्ञा स्त्रीपक्ष में ही लगती है। फिर जैसा आप कहते हैं, वैसा ही सही, तो सौतेली मां को मां न कहने की बात आप जैसे विचारवान् पण्डित कहते हैं, राम और कृष्ण के इस देश में! जिस देश में सौतेली माँ कैकेयी को निज माता से भी बड़ी मानकर राम ने वह आदर्श उपस्थित किया, जो हजारों वर्ष से संसार को प्रकाश दे रहा है। यशोदा कृष्ण की न निज माता थी, न सौतेली, पर कोई कह सकता है कि कृष्ण ने अपने को यशोदानन्दन नहीं माना? कम से कम भारत का इतिहास और भारतीय संस्कृति तो सौतेली मां को भी वही प्रतिष्ठा देती है जो मां को देती है और उसको भी मां न कहा जायगा तो आपके विचार से क्या कहा जायगा? इसी प्रकार उस पक्ष के सम्बन्धी को भी सम्बन्धी कहा जायगा। मूढ़ों की बात दूसरी होती है, पंडितराज! परन्तु आप की कलम से मां सरीखे पवित्र शब्द के लिए यह व्यवधान निकला कैसे? हम पढ़ते आये हैं कि साधारण रूप से संसार में दो प्रकार के व्यक्ति होते हैं—पहले वे जो कामना के क्षेत्र में सिद्धान्त का कोई प्रतिबन्ध नहीं मानते और

आवश्यकता देखकर सहज ही चाहे जैसे कर्म की व्यवस्था कर लेते हैं; दूसरे वे जो कामना के लिए उन साधनों और उपकरणों का अवलम्ब कभी ग्रहण नहीं करते जो हेय, असत्य और केवल अधिकारवाद पर आधारित रहा करते हैं। पहले प्रकार के व्यक्तियों के लिए साध्य के हेतु साधन कैसा भी हो, इसकी उन्हें चिन्ता नहीं; परन्तु दूसरे प्रकार के व्यक्ति उच्च साध्य के लिए उच्च साधन ही अपनाते हैं। आप जैसे पण्डितों को, मैं जड़बुद्धि क्या ज्ञान दूँ?

यहां एक साधारण-सी अनियमितता और ऐच्छिक कार्य का दोष ही तो सर पर आता था, परन्तु इतनी-सी बात के लिए पण्डित जी महाराज, आप सम्बन्धी को सम्बन्धी और मां को मां——भले ही वह सौतेली हो——मानने में भी साफ़ विदक जाने को तैयार हैं। लोग तो मुँह बोले भाई को भाई और मुँह बोली मां को मां मानकर जीवन का बड़ा से बड़ा त्याग करने में नहीं हिचकते। मेवाड़ की रानी कर्णावती क्या मुगल सम्राट हुमायूं की निज बहिन थीं, जिनकी राखी के दो धागों मात्र के बन्धन में बंधकर उस परिस्थिति में भी जब कि शेरशाह उसके साम्राज्य की प्रत्येक ईंट हिला चुका था, वह अपने स्वार्थों पर लात मारकर कर्णावती की रक्षा के लिए गया था। इतना ही नहीं, भारत से भागते समय केवल एक रात जब उसको उदयपुर के जंगलों में बितानी पड़ी तो हुमायूं ने मेवाड़ के महलों में उसी प्रकार भेंट भेजी थी, जिस प्रकार एक भारतीय भाई अपनी बहिन के घर जाने पर देता है, हालांकि कर्णावती मर चुकी थी। हिन्दू संस्कृति का यह जादू था जिसने विजातीय व्यक्ति को भी यह सबक दिया कि सम्बन्ध और सम्बन्धी किसे कहते हैं, लेकिन पण्डितराज। यहां एक न कुछ-सी बात पर आप यह लिखने में न हिचके कि "एक सौतेले सम्बन्धी को सम्बन्धी कहना, एक सौतेली मां को मां कहने के बराबर है।" यह स्थल ऐसा है, जिसको मनन करके यदि कोई अपने गले को साफ और आँखों को सूखा रख सकता है, तो वह स्थितप्रज्ञ पाषाण ही कहा जायगा।

अब जिस विषय को लेकर आपने अपने वक्तव्य संख्या तीन में पत्रिका के पूरे तेरह पृष्ठ काले किए हैं, मैं उसी विषय को आपके आधारों के अनुसार ही विनम्रतापूर्वक आपकी सेवा में इस प्रकार निवेदन करता हूँ। विवाद को बढ़ाना कभी हितकर नहीं होता, इसलिए थोड़ी देर के लिए इस बात को मान लिया जाय कि २२०० रुपये की वापसी में आपकी कोई पूर्व योजना नहीं थी, फिर भी आप यह कैसे सिद्ध करना चाहते हैं कि वह सम्पूर्ण घटना आपकी ऐच्छिक कार्यप्रणाली की परिचायक नहीं है। बुद्धिमान पण्डितजी, मैं आपसे वैद्य-समाज के हित के नाम पर ही यह अपील करना चाहूँगा कि अब भी दुराग्रह की वृत्ति को छोड़ दीजिए तो आप रत्न से बढ़कर हीरा हो जायंगे। इस प्रसंग को भी सद्भावना के साथ, दुराग्रह त्याग कर, विचार कीजिए। मैं वहीं से लेता हूँ, जहाँ से इस घटना का प्रारम्भ होता है। जुलाई, ५५ की पत्रिका में मुद्रित कार्यवाही सामने रख लीजिए। आपकी दलील के भवन की यही पहली महत्त्वपूर्ण नींव है। त्रिवेन्द्रम में उस दिन स्थायी समिति और विषय निर्धारिणी समिति की २२ तारीख की बैठक में जब विश्वविद्यालय का विषय उपस्थित हुआ तो आरम्भ में सर्वप्रथम ही बिना सदस्यों की सम्मति जाने यह क्या आवश्यक था कि आपने सभापति के आसन से अपनी सम्मति ठोकना शुरू कर दी? आप तो विधान-शास्त्री हैं महाराज! परम्परा यह होती है कि सदस्यों की सम्मति के अनन्तर सभापति अपनी सम्मति देता है। यद्यपि आपने असीम उदारतापूर्वक हृषीकेश में विद्यालय खोलने से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए अन्त में यह भी कहा कि "यह सदस्यों के विचार का विषय है। वे जैसा निर्णय करेंगे, कार्य तो उसी के अनुसार किया जाना है।" आपके बाद आपकी कृपापूर्ण आज्ञा से विद्यापीठ मन्त्री स्वनामधन्य श्री श्रीदत्तजी ने अपने विचार सभा में प्रस्तुत किए। उनके विचारों सहित उस दिन की शेष कार्यवाही को यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत करता हूँ।

"श्री पं० श्रीदत्तजी ने अपने विचार सभा के सम्मुख प्रकट करते हुए कहा कि सम्मेलन की तथा विद्यापीठ की प्रतिष्ठा एवं गौरव की रक्षा के लिए हृषीकेश में विश्वविद्यालय का स्थापित किया जाना परमावश्यक है। मैं सब कठिनाइयों को समझते हुए आयुर्वेद की गौरव-वृद्धि के लिए अपनी आहुति दे कर भी विश्वविद्यालय की स्थापना हृषीकेश में करना चाहता हूँ। ४० वर्ष से विश्वविद्यालय की चर्चा हर समय और हर अधिवेशन में होती रही है, किन्तु आज तक इसकी स्थापना न हो सकी——यह वैद्य-समाज के लिए भारी कलङ्क है। मैं इस कलङ्क को दूर करना चाहता हूँ। मैं इस सम्मेलन को विश्वास दिलाता हूँ कि विद्यापीठ

के कोष से विश्वविद्यालय के निर्माण-कार्य में एक पैसा भी ले कर नहीं लगाऊँगा। वैद्य-बन्धुओं का एवं आयुर्वेद-प्रेमियों का सहयोग चाहिए--रुपये की कमी नहीं है। मैं जंगल में रहता हूँ, जंगल में खड़े हुए वृक्षों के पत्ते भी भगवान धन्वन्तरि की कृपा से नोट बन जायेंगे। हृषीकेश में विश्वविद्यालय बनने की अवस्था में ही मैं पूर्ण लगन और शक्ति से कार्य कर सकता हूँ,क्योंकि मैं यह दिखा देना चाहता हूँ कि लखपतियों के सहयोग के बिना भी विश्वविद्यालय का कार्य रुक नहीं सकता। यदि आप विश्वविद्यालय नहीं बनाना चाहते तो मैं विद्यापीठ का मन्त्री रहने के लिए तैयार नहीं हूँ--आपसे क्षमा चाहता हूँ।

इसके पश्चात् श्री डा० ए० लक्ष्मीपति मद्रास, श्री गोवर्धन शर्मा छांगाणी नागपुर, श्री कमलाप्रसाद मणि त्रिपाठी पटना, आचार्य श्री बद्रीविशाल त्रिपाठी कानपुर, श्री दुरे स्वामी आयंगर मद्रास ने विश्वविद्यालय के हृषीकेश में बनाये जाने के पक्ष में अपना-अपना मत व्यक्त किया और कहा कि श्री विद्यापीठ-मन्त्री को इस कार्य के लिए एक वर्ष का समय और दिया जाय। प्रायः सम्पूर्ण सभा ने इस मत का समर्थन किया। तदुपरान्त सभापतिजी ने कहा कि यदि सभी सदस्यों की ऐसी इच्छा है कि हृषीकेश में ही विश्वविद्यालय बनाने के प्रयत्नों को चालू रखा जाये तो ऐसा किया जाय, किन्तु मैं स्वयं इस विषय में तटस्थ हूँ। इस पर प्रधान मन्त्री श्री वामनराव दीनानाथजी तथा संयुक्त मन्त्री श्री स्वामी चेतनानन्दजी ने भी क्रमशः अपने तटस्थ रहने की घोषणा की। अभी इस विषय पर अन्तिम निश्चय नहीं हो पाया था कि रात्रि अधिक व्यतीत हो जाने के कारण सभा का कार्य अगले दिन के लिए स्थगित कर दिया गया।"

अब महाराज आपसे थोड़ा नम्र निवेदन करता हूँ। ऊपर की कार्यवाही को एक बार फिर पढ़ लीजिए और बताइए कि जब आप स्वयं अपने श्रीमुख से इसी सभा में यह कह चुके थे कि कार्य तो सदस्यों के निर्णय के अनुसार ही होना है, फिर जब आपने प्रत्यक्ष देखा कि सदस्यों का बहुमत विश्वविद्यालय-योजना के लिए एक वर्ष का समय और देने के पक्ष में है तो फिर तुरन्त ही अपने वचन से मुकरकर आपने अपनी तटस्थता की धौंस का डण्डा क्यों चलाया कृपानिधान! बड़े मियां तो बड़े मियां छोटे मियां सुभान अल्लाह। आप तो आप, हमारे पंचवर्षीय प्रधानमंत्री जी और दूसरे महास्वामी जी भी तटस्थता का घूँसा तान बैठे। जैसे उनकी घोषणा से किसी राज्य का सिंहासन हिलने वाला हो! खैर जाने दीजिए।

पूरी सद्भावना के साथ, हृदय पर हाथ रखकर यह बताइए कि उस दिन आप सदस्यों की बहुमत-सम्मति पर यदि अपनी तटस्थता का अस्त्र न चलाते और योजना को सदस्यों के मतानुसार एक वर्ष का समय हँसी-खुशी ही स्वीकृत हो जाने देते तो आप पर या महासम्मेलन पर, कौन-सी विपत्ति आनेवाली थी? एक बात और ध्यान में रखिए पण्डित जी, कि उस समय कम से कम आपको यह मालूम था कि उस रात्रि के ठीक ४८ घण्टों बाद आपको सभापति नहीं रहना है, इसलिए यदि कोई विपत्ति आती भी तो वह आप पर नहीं आनी थी। फिर कौन-सा ऐसा कारण था कि जिसने आपको तटस्थ हो जाने के लिए बाध्य कर दिया और आपने ऐसी असहयोगपूर्ण घोषणा की जिसके कारण सदस्यों के हौंसले पस्त हो गए। जरा हमें भी बताइए सर्वशक्तिमान!

एक बार उस बूढ़े तपस्वी श्रीदत्त जी के विचार पढ़कर देखिए, जिसने उसी स्थल पर महासम्मेलन और विद्यापीठ की प्रतिष्ठा के गौरव की रक्षा के लिए अपनी आहुति देकर भी विश्वविद्यालय स्थापित करने का हौसला दिखाया। उसने यह भी वचन दिया कि वह उसके लिए आपके कोष से एक पैसा नहीं लेगा। फिर भी आपकी नसों का जवान खून नहीं खौला। वैद्य-समाज का कलंक मिटाने के लिए एक बूढ़ा संन्यासी अपनी आहुति देने को तैयार होता है और उसका युवक कर्णधार बिना कारण, बिना किसी विपत्ति के ही कायरतापूर्ण तटस्थता की बातें करता है। अब आप ही बताइए आयुर्वेद-जवाहर! इस शर्म को लेकर हम किस कुयें में डूब मरें?

आगे चलिए। दूसरे दिन जब पुनः उसी प्रकार बैठक हुई तो फिर भी आपने बिना सदस्यों की सम्मति जाने सर्वप्रथम अपना ही विचार उनकी खोपड़ी पर थोप दिया। इतना ही नहीं, बिना इस बात की प्रतीक्षा किए कि आपके विचारों की सदस्यों पर क्या प्रतिक्रिया हुई, आपने स्वयं अपनी ओर से लगे हाथ विश्वविद्यालय-योजना को स्थगित करने का एक प्रस्ताव भी एक ही सांस में जड़ दिया। इन तथ्यों को पत्रिका में जून '५५के पृष्ठ २८७पर देख लीजिए! उस कार्यवाही का एक-एक अक्षर यह बता रहा है कि उस

समय उस समिति की स्थिति वही थी जो एक उर्दू शायर के मर्म के फफोले की भांति किसी एकछत्राधिपति के दरबार के लिए इस प्रकार फूटी थी—

महफिल उनकी, साकी उनका।
आँखें अपनी, बाकी उनका।

उस कार्यवाही के विवरण को पढ़कर कोई भी समझदार यह कह देगा कि आपने अकारण ही सदस्यों की सम्मति पर अपने दुराग्रह का तुषारपात किया। माना कि आपका विचार उस विषय में आगे प्रयास करना निरर्थक समझता था, परन्तु आपका ही विचार तो कोई वेदवाक्य था नहीं। आपने क्यों न सदस्यों की बहुमत-सम्मति का आदर किया? यदि आप वास्तव में संस्था के हितू थे तो आपको संस्था के कोष की रक्षा के लिए अपने विचार का दमन करना चाहिए था, जब कि उस विचार में कोई विवेक नहीं था। साधारण-सी बात है कि यदि आप सदस्यों की बात मान जाते तो आपकी तो कोई हानि होती नहीं, संस्था का हित होता। इसके विपरीत आपने अपनी ही बात रखने का बचपने जैसा हठ करके ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी कि तीन हजार से ऊपर की रकम संस्था के कोष से चलायमान हुई और श्रीदत्त जी सरीखे परम उत्साही कार्यकर्ता को संस्था को तत्काल ही सदा के लिए खो देना पड़ा। आपका व्यक्तिगत विचार क्या इतना मूल्यवान था पण्डित जी कि उस पर आपने संस्था के हितों को इतनी दरियादिली से वलिदान हो जाने दिया। अब, हे विधान-पंचानन? आप ही बताइए, संस्था म इस प्रकार के आचरण को एकछत्राधिपति न कहा जायगा, तो कौन-सी संज्ञा दी जायगी और वह किस लुग़त में लिखी है।

इस संस्था के द्वारा विश्वविद्यालय स्थापित करने की इच्छा इसके सदस्यों की वर्षों पुरानी लालसा थी, यह तो आप भी मानेंगे। सदस्यों की इस लालसा के ही नाम पर यदि आप थोड़ी-सी उदारता कर देते, कम से कम यही न कहते कि मैं तटस्थ हूँ, तो पहले तो वह आया हुआ चन्दा वापिस न करना पड़ता, फिर श्रीदत्त जी जैसा लगन का पक्का साधक कार्यकर्ता न खोना पड़ता और भगवान चाहता तो येन-केन-प्रकारेण वह विश्वविद्यालय स्थापित हो ही जाता। फिर चाहे बाद में आप तटस्थ ही रहते और यही मान लीजिए कि वह कार्य कतई न होता, तो भी केवल एक वर्ष का समय दे देने से आप पर कौन-सा विपत्ति का पहाड़ टूट रहा था? यह बात इस जड़बुद्धि की समझ में नहीं आ रही, पण्डितराज! हां उस योजना को स्थगित करके यदि आप तत्काल ही कोई अन्य योजना विद्यालय के लिए प्रस्तुत करते और उस पर ऐसा हठ करते तो भी आपके हठ को न्यायपूर्ण मान लिया जाता। खैर यह भी जाने दीजिए!

उस बैठक में जब आपने अपने ही विचार को मनवा लिया और जब संस्था के कोष से तीन हजार रुपया देने की नौबत आई तो संस्था का सच्चा हितू होने के नाते और सत्य पर अडिग रहने वाले एक न्यायपूर्ण व्यक्ति के नाते, आपका यह धर्म था कि आप पहला प्रयत्न संस्था के कोष को बचाने का करते। आप श्रीदत्तजी से विनय करते कि दिया हुआ चन्दा वापस न माँगिए, और मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि श्रीदत्तजी जैसा परम उदार व्यक्ति कदापि आपकी ऐसी विनय को न ठुकराता, क्योंकि परिस्थिति बता रही है कि संस्था का हित आपसे अधिक उनके हृदय में सुरक्षित था। वे आपकी बात को मानते, बशर्ते कि आपकी बात में विनय का कोमल भाव होता। और, वे न भी मानते तो जिस प्रभाव का उपयोग करके, आपने अपना एक विचार मनवाया था, उसका ही उपयोग संस्था के हित में करके आप चन्दा वापिस न करने का निश्चय भी करा सकते थे। उसको कोई भी अनैतिक, अनियमित या अव्यावहारिक न कहता। क्योंकि ऐसा करना संस्था के हित में था, बहुजन हिताय था। इसे भी जाने दीजिए!

जब चन्दा लौटाना ही निश्चय किया था, तो संस्था के सर्वश्रेष्ठ हितरक्षक होने के नाते, निष्ठावतार, इतना तो पूँछ ही लेते कि वह चन्दा किसको लौटाना है और वह वास्तव में किस कार्य के लिए आया था? जब कभी अपनी जेब से कोई चार पैसा निकाल कर देता है तो चार बार यह देखता है कि वह ठीक दे रहा है, या नहीं। फिर यह तो २२००) की रकम थी, और यह कोई खाला जी का माल नहीं था, एक वैधानिक संस्था का चन्दे से एकत्र किया हुआ कोष था, जिसपर केवल आपका ही अधिकार नहीं था, उस पर डेढ़ हजार सदस्यों का अधिकार था। इसे भी जाने दीजिए!

जब चन्दा लौटा दिया गया तो जिस पत्रिका के हजारों पृष्ठ आपकी विरुदावली में रंगे गये, उसमें केवल चार पंक्तियाँ लिखकर सदस्यों को तो बता देते कि अमुक

कोष में से अमुक व्यक्तियों का, इतना चन्दा अमुक कारण से लौटा दिया गया। अब बताइए विधानवेत्ता पण्डितराज! इन सब बातों के उत्तर में आप क्या कहते हैं?

इतना निवेदन करने के बाद, फिर आपके तीसरे वक्तव्य पर आता हूँ, और विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि यदि कोई पूर्व-योजना नहीं थी, और आपने जानबूझ कर संस्था के कोष की कोई उपेक्षा नहीं की तो आपको उपर्युक्त बातें तो करना ही चाहिये थीं। इनके अभाव में कोई क्या सोच सकता है, इनका निर्णय आप ही कर लीजिए। जहांतक कागजात देखने से पता चलता है, कोई रक़म ऐसी नहीं थी, जो किसी शर्त विशेष पर आई हो। समस्त दानदाताओं की तरह आपके पूज्य पिताजी ने भी वह चन्दा, अधिवेशन में विश्वविद्यालय के हेतु की गई धन देने की अपील के फल-स्वरूप दिया था, ऐसा पत्रिका में लिखा है। सबने स्वेच्छा से विश्वविद्यालय के लिए धन दिया था, उसी प्रकार उन दो दानियों ने भी तदर्थ धन दिया था, और यदि आप ने अपनी मनमानी न की होती, तो पूर्ण विश्वासपूर्वक यह कहा जा सकता है कि आपके पूजनीय पिताजी और श्रीदत्तजी दोनों इतनी बात वाले हैं कि दिया हुआ दान वापस न लेते।

इस लेख के अधिक विस्तृत हो जाने का भय यदि न होता, तो मैं आपके वक्तव्य संख्या ३ के प्रत्येक विषयांक को लेकर आपसे निवेदन करता। ऊपर का विवरण इसलिए देना पड़ा कि इस सारी फजीहत की जड़ वही घटना है। हर एक समझदार यह आसानी से समझ लेगा कि इस घटना में यदि आपने थोड़ी-सी भी उदारता और वास्तविक बुद्धिमानी से काम लिया होता तो, आजतक जो कुछ अप्रिय हुआ और अब भी हो रहा है, वह कुछ न होता और साथ ही यह भी विनय कर दूं विद्वान जी, कि सत्यपरक उदारता और शोभन सन्तोष से यदि आप अब भी काम लें, तो समाज में बढ़ता हुआ यह जहर जहां का तहां समाप्त हो जायगा, क्योंकि, विश्वास कीजिए कि किसी को आपके विशाल व्यक्तित्व से चिढ़ नहीं। किसी को आपसे व्यक्तिगत द्वेष नहीं। आपके अद्भुत और अपने में अनुपमेय विविध गुणों तथा आपकी प्रतिभा का जहांतक ताल्लुक है, उससे किसी ने भी इन्कार नहीं किया। आपका व्यक्तित्व यहाँ विचार का विषय है ही नहीं। अपने व्यक्तित्व और चरित्रदृढ़ता के विषय में आप वृथा ही वर्तमान युग के बड़े लोगों के वक्तव्य संकलित करने का श्रम कर रहे हैं। यहाँ तो प्रश्न आपके संस्थागत कार्य-कलापों का प्रस्तुत है भाग्यवान! उसपर ही एक बार ठण्डे दिल से विचार कर लीजिए और जहां जो भूल हो गयी है उसको, सारे समाज को कुतर्कों की भूल-भुलइयों में घुमाने के बजाय साहसी सेनापति की भांति स्वीकार कर लीजिए! और, हे प्रज्ञावतार जन्मजात नेता! संकटों के भंवर में पड़े हुए इस आयुर्वेद-सम्प्रदाय पर, अब तो कृपा ही कर दीजिए! या तो कुछ ऐसे कार्य कर डालिए जिनसे कुछ क्रियात्मक गति दिखायी दे और समाज का कल्याण हो। या फिर थोड़ा शान्त रहिए, उसमें भी क्या हानि है—छोड़ दीजिए वैद्यों को उनके भाग्य पर।

इतनी प्रार्थना कर लेने के बाद, वक्तव्य संख्या ३ के नवग्रही विषयांकों पर कुछ और निवेदन करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। फिर भी आपकी और आपके सेनापतियों की इच्छा हुई तो आगे फिर सेवा में उपस्थित हो जाऊंगा। और बिल्कुल अन्त में एक निवेदन और कर दूं पण्डितराज! यह सारी बातें मैं भरपूर सद्भावना के साथ, विनम्र भाव से शर्मदारों के लिए निवेदन कर रहा हूँ।

शेषांश] संपादकीय [८३६ पृष्ठ का

के अनुसार यह बात तो सुनिश्चित है ही कि जितनी संख्या में एक मेडिकल कालिज चिकित्सक तैयार करेगा, देशी चिकित्सा के विद्यालय उससे बीस गुने चिकित्सक, कम से कम, प्रस्तुत कर देंगे। यह अनुभव सिद्ध सत्य है कि मेडिकल कालिजों से तैयार हुए डाक्टर शहरी क्षेत्र में ही अपना कार्य विस्तार करेंगे, देश के सुविस्तृत ग्रामीण क्षेत्र की स्वास्थ्य-समस्या का तनिक भी समाधान उनके द्वारा नहीं हो सकेगा। शहरों में तो अब भी डाक्टरों की कमी नहीं है। देश की बहुसंख्यक जनता को चिकित्सा-सुविधा पहुँचाने का प्रश्न है तो उसका हल भारतीय चिकित्सा-प्रणाली के चिकित्सकों की वृद्धि से ही हो सकता है। पाश्चात्य-प्रणाली के स्वास्थ्य-रक्षण तरीकों को अपनाने से कोई लाभ नहीं हुआ, पिछले सौ वर्ष का अनुभव इसका साक्षी है। इसके विपरीत भारतीय स्वास्थ्य-सिद्धान्त इतने पूर्ण और सुगम हैं कि उनको जनता के जीवन में उतारने से देश का स्वास्थ्य निश्चित सबल हो सकता है, हमारा हजारों वर्ष का इतिहास यह बताता है। भारतीय प्रणाली के अनुयायी वैद्य स्वाभाविक ही गरीब और ग्रामीण जनता के काम आवेंगे। जनता के अधिक निकट होने के कारण वे जनसाधारण में भारतीय स्वास्थ्य-सिद्धान्तों के प्रति सुरुचि जागृत करने में अधिक सफल हो सकेंगे। ऐसी दशा में सरकार को जनस्वास्थ्य के विषय में अपनी नीति पर पुनर्विचार करना चाहिए और अनावश्यक ही अधिक मेडिकल कालिजों में पुष्कल द्रव्य-व्यय न करके आयुर्वेद की पद्धति के विकास के हेतु आधुनिक स्थिति के अनुरूप आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम पर आधारित अधिक से अधिक आयुर्वेद विद्यालयों की स्थापना करनी चाहिए।

पित्तला योनिव्यापत्

वैद्य रणजितराय

वर्तमान आयुर्वेदीय पाठचक्रमों म स्त्रीरोग नाम से जो रोग अभिहित हैं उनमें गर्भयन्त्र-संबन्धी रोगों को प्राचीनों ने योनिव्यापत् नाम दिया है। योनि शब्द यहाँ केवल अपत्यपथ का वाचक नहीं; किन्तु संपूर्ण गर्भयन्त्र के लिए आया है। इस के रोगों को योनिव्यापत् यह सर्वग्राही नाम देकर आगे उत्कट दोष के भेद से योनिव्यापत्तियों के वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक तथा सान्निपातिक ये भेद किये गए हैं। इनमें पैत्तिक योनिव्यापदों के नीचे लिखे भेद सुश्रुत ने दिए हैं--**पित्तोत्या रुधिरक्षरा। वामिनी स्रंसिनी चापि पुत्रघ्नी पित्तला च या**--सु. उ. ३८।७--रुधिरक्षरा (असृक्क्षरा, लोहितक्षरा, लोहितक्षया या रक्तयोनि); वामिनी, स्रंसनी या प्रस्रंसिनी, पुत्रघ्नी तथा **पित्तला योनि**। यों तो इनमें प्रत्येक व्यापत्ति में पित्तका प्राधान्य होता है (**चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत्**--सु.उ.३८।१४) तथापि अन्तिम योनि को ही पित्तला योनि यह विशेष नाम दिया गया है।

सामान्यतया अध्यापक जन योनिव्यापत् रोगों के प्रकरण में अन्य योनि रोगों के साथ और उनके सदृश पित्तला योनि का भी ग्रन्थोक्त निदानादि बता देते हैं। व्यवहार में यह रुग्णा पित्तला योनिव्यापत्ति से ग्रस्त है, ऐसा निर्देश नहीं करते। तथापि पाश्चात्य विज्ञान में इस व्यापत्ति का जो पर्यायभूत रोग है, उसका पृथक् विवरण नव्यविज्ञानानुसार किया जाता है। विचार करने से यह स्थिति टाली जा सकती है। यही रोग नहीं, अन्य रोगों के विषय में भी इसी रीति से सुधार किया जा सकता है। नवीनोक्त यह रोग प्राचीनों ने इस नाम से दिया है, यह समझा दिया जाए तो प्राचीनोक्त निदान-लक्षण-चिकित्सा स्पष्टतर हो जाती है। अन्यथा वह '**श्रुतौ तस्करता स्थिता**' के समान केवल शास्त्र में बद्ध रह जाती है। उसके जानने की कोई क्रियात्मक उपयोगिता रह नहीं जाती। परिणामतया, परीक्षा के अनन्तर उस की उपेक्षा कर दी जाती है।

नवीनोक्त नाम से रोग-विशेष का परिचय देने की सलाह यहाँ इस लिए दी है कि शास्त्र में कई रोगों को दृष्टान्त देकर स्पष्ट दर्शाना अभी सुगम नहीं है। कारण, मध्यकाल में आयुर्वेद के अध्यापन की परम्परा छूट गयी, जिससे उसका बहुत-सा अंश केवल अक्षरार्थमात्र के अध्ययन-अध्यापन की वस्तु रहा है। वर्तमान विज्ञान में रोगों को प्रत्यक्ष दिखाने की सुविधा है। उस के अनुसार रोग-विशेष को जान कर यह प्रयत्न करना चाहिए कि प्राचीनोक्त कौन-सा रोग नवीनोक्त किस रोग से साम्य रखता है। इस समन्वय से यथा-कथंचित् आयुर्वेद के शब्दों का अर्थ-निश्चय करना ही हमारा प्रयोजन नहीं है। आयुर्वेदोपदिष्ट कई रोगों को इस रीति से समझ लिया जाए तो आयुर्वेद हमारे सामने हस्तामलक होने का संतोष तो हमें प्राप्त होगा ही, साथ ही यह भी संभव है कि, हम प्राचीन संज्ञा से रोग को समझ कर उसके नवीनोक्त उपचार की अपेक्षा अधिक यशस्वी उपचार आयुर्वेद-मत से करने में समर्थ हो सकें।

कुछ यही दृष्टि प्रस्तुत लेख लिखने में हैं। इसी कारण संहिता के शब्दों में इसके लक्षण लिखने के पूर्व लिख देना चाहता हूँ कि--पाश्चात्य स्त्रीरोग-विज्ञान में जिसे 'इरोझन' कहते हैं वह आयुर्वेद की पित्तला योनिव्यापत् है।

इरोझन शब्द का परिचय अंग्रेजी के विद्यार्थी को प्रथम भूगोल में होता है। नदी के प्रवाह से भूमि का धोया जाना इरोझन कहाता है। इसी से केवल शाब्दिक परिचय से नवीन विद्यार्थी यही समझता है कि गर्भाशय-ग्रीवा आदि में व्रण होना यही इरोझन का अर्थ है। यत्सत्यं, इन अवयवों में पित्त का स्थानसंश्रय होने से जो पाक, व्रण-शोथ या इन्फ्लेमेशन होता है वह तथा आगे उसका भेद होकर --व्रणशोथ फूट कर--जो व्रण बनता है वह सब इरोझन कहाता है। आयुर्वेद-मत से तो यह सर्वस्थिति पाक के ही अन्तर्गत है। देखिए।

सुश्रुत ने दोषों की वृद्धि या प्रकोप की जो छः अवस्थाएँ बताई हैं उनमें चतुर्थ अवस्था स्थानसंश्रय या पूर्वरूपावस्था के अनन्तर पञ्चम अवस्था का निर्देश करते कहा है--**अत ऊर्ध्वं व्याधेर्दशनं वक्ष्यामः--शोफार्बुद ग्रन्थि विद्रधि विसर्प**

प्रभृतीनां प्रव्यक्तलक्षणता ज्वरातीसार प्रभृतीनां च--सु. सू. २१।३४। शोफ या शोथ का अर्थ स्पष्ट करते चक्रपाणि ने कहा है--शोथ का अर्थ यहाँ व्रणशोथ है। कारण अगली अवस्था में इसके विदीर्ण होकर व्रणभाव को प्राप्त होने का उल्लेख तन्त्रकर्ता ने किया है--**शोथश्चेह व्रणशोथ उच्यते, उत्तरकालमस्यावदीर्णताभिधानात्।** मूल वचन का तात्पर्य यह है कि पूर्वरूपावस्था में रोगों के व्यक्त लक्षण, जिनके आधार पर रोग का निदान होता है वे प्रादुर्भूत नहीं होते। अपचार--मिथ्याहार-विहार--चालू रहे, रोग की उपेक्षा की जाय--उपचार न किया जाए, किंवा मिथ्योपचार हो तो रोगारम्भक दोष की वृद्धि होती जाती है और शेष दो अवस्थाएँ क्रमशः उपस्थित होती हैं। दोनों अवस्थाओं में शल्य-शालाक्यतन्त्रोक्त तथा कायचिकित्सोक्त रोगों में कुछ भेद होता है। पञ्चमावस्था में व्रणशोथ, अर्बुद, ग्रन्थि, विद्रधि, विसर्प प्रभृति शल्य-शालाक्योपदिष्ट रोगों के व्यक्त लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इन्हें देखकर निर्णय करना सुगम हो जाता है कि विकृति अर्बुद है, ग्रन्थि है, विद्रधि है इत्यादि। इसके पूर्व लक्षण अस्पष्ट होने से केवल उत्सेध देखकर अनेक रोगों की संभावना मात्र की जा सकती थी। इस पञ्चमावस्था में कायचिकित्सोक्त रोगों के व्यक्त लक्षण, जिन्हें प्रत्यात्म लक्षण या व्याधिलक्षण भी कहा जाता है, वे प्रकट हो जाते हैं। उन्हें देख कर रोग-विनिश्चय करना सरल हो जाता है। यथा-इस अवस्था में ज्वर में संताप (शरीरोष्मा की वृद्धि), अतिसार में अति सरण (अति एवं द्रवमलप्रवृत्ति), उदर में उदर का पूरण (चिरकारी उत्सेध) इत्यादि तत्-तत् रोग में तत्-तत् विशिष्ट लक्षण का उदय हो जाता है और रोग की निश्चिति हो जाती है।

षष्ठ अवस्था का निर्देश करते सुश्रुत जी आगे लिखते हैं--**अत ऊर्ध्वमेतेषामवदीर्णानां व्रणभावमापन्नानां षष्ठः क्रियाकालः, ज्वरातिसारप्रभृतीनां च दीर्घकालानुबन्धः। तत्राप्रतिक्रियमाणेऽसाध्यतामुपयान्ति**--सु. सू. २१। ३५। इसकी व्याख्या करते डल्हन कहते हैं--**व्यक्तिमभिधाय भेदं कथयन्नाह--अत ऊर्ध्वमित्यादि। एतेषां शोफादीनामित्यर्थः। अवदीर्णानां विदरणं गतानां भिन्नानामित्यर्थः। अवदीर्णत्वं च शोफादीनां विशेषलक्षणं, तच्च भेदः। व्रणभावमापन्नानामिति यत एव विदीर्णा अत एव व्रणत्वं गता इत्यर्थः। ज्वरातीसार प्रभृतीनां च दीर्घकालानुबन्ध इति यथा व्यक्तिप्रस्तावे ज्वरादीनां संतापसरणपूरणादिकं सामान्यलक्षणमुक्तं, तथात्र भेदप्रस्तावाद् विशेषलक्षणं दीर्घकालानुबन्धो ज्वरादिजातिषु भेद इति ज्ञातव्यः**--व्यक्ति नामक अवस्था के अनन्तर भेद-संज्ञक छठी अवस्था आती है। उक्त उभयतन्त्रोक्त रोगों के पक्ष में भेद शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न होता है। व्रणशोथ, अर्बुद, विद्रधि आदि शल्यतन्त्रोक्त रोग इस अवस्था में भिन्न हो जाते हैं--वे पक्व हों या अपक्व, फूट जाते हैं। इस कारण उनकी इस अवस्था को भेद कहते हैं। (भिन्न--फटा हुआ--तथा भेद दोनों शब्द 'भिद्' धातु से बने हैं)। काय-चिकित्सोक्त ज्वर, अतिसार, उदर आदि रोगों में भेद शब्द का अर्थ प्रकार है। इस अर्थ में भेद शब्द लोक में भी प्रसिद्ध है। इस अवस्था में प्रकार का अर्थ यह है कि रोग चिरकारिता (जीर्णता) एवं असाध्यता को प्राप्त हो जाते हैं। सो, इन रोगों में भेद का अर्थ है रोगों का जीर्ण और असाध्य यह भेद[1]-विशेष, प्रकार-विशेष।

प्रस्तुत प्रकरण में इस विवेचन का तात्पर्य यह है कि गर्भाशय-ग्रीवा आदि में जो पाक या व्रणशोथ होता है वह फूट कर व्रणरूप में परिणत हो जाए तो वह भी पाक की अवस्था ही है, पाक शब्द से उस का भी ग्रहण किया जा सकता है। इसी प्रकार अंग्रेजी इरोज़न शब्द से पाक या व्रणशोथ तथा उसकी व्रणरूपता दोनों गृहीत हैं।

विशदता के लिए पित्तला योनि का नवीन मत से पर्याय तथा उस की व्याप्ति दर्शाकर अब इस विकृति का संहितोक्त लक्षण देखते हैं--

अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता
सु. उ. ३८।१३

व्यापत् कट्वम्ललवणक्षाराद्यैः पित्तजा भवेत्।
दाहपाकज्वरोष्णार्ता नीलपीतासितार्तवा॥

१--भिन्न-भिन्न अर्थों का एक ही शब्द अनेक वस्तुओं के लिए व्यवहृत हुआ हो तो इन अनेक वस्तुओं को एक ही वर्ग में स्थापित करने की यह शैली आयुर्वेद की विशिष्ट शैली है। यहाँ भेद शब्द के दो भिन्न अर्थ हैं तथापि उनका वाचक भेद शब्द एक ही होने के कारण एक ही अवस्था में दोनों का संनिवेश किया है। एक अन्य उदाहरण लें। विषम शब्द का अर्थ दारुण तथा ऊष्मा आदि की विषमता (अन्तर अधिक होना) ये दोनों हैं। परन्तु विषम शब्द दोनों का समान रूप से वाचक होने के कारण तृतीयक आदि विषम ज्वर तथा संतत-संनिपात ज्वरों को कभी विषम इस एक ही वर्ग में रखा जाता है।

भृशोष्णकुणपस्रावा योनिः स्यात् पित्तदूषिता ।
च. चि. ३०।११-१२

यथास्वैर्दूषणैर्दुष्टं पित्तं योनिमुपाश्रितम् ।
करोति दाहपाकोषापूतिगन्ध ज्वरान्विताम् ।।
भृशोष्णभूरिकुणपनीलपीतासितार्तवाम् ।
सा व्यापत् पैत्तिकी ।। अ. हृ. उ. ३३।४२

हरी मिर्च आदि कटु, दही, टमाटर आदि अम्लरस या अम्ल विपाकी, लवण एवं पापडखार, सोडा आदि क्षार एवं अन्य पित्तप्रकोपक आहारादि के अतियोग से पित्त प्रकुपित होकर योनि (गर्भयन्त्र) में स्थानसंश्रय करता है। इसके कारण योनि में पाक होता है। साथ ही, रुग्णा में उष्णता, दाह, ज्वर ये प्रादेशिक तथा सार्वदहिक लक्षण होते हैं। अपत्यपथ से नित्य अति उष्ण एवं दुर्गन्धयुक्त (शवगन्धी) स्राव हुआ करता है। ऋतुकाल में जो आर्तव प्रवृत्त होता है वह भी अधिक, एवं वर्ण में नील (श्याम), पीत तथा श्वेत-भिन्न तथा दाहयुक्त होता है।

पित्तला योनि में पाक मुख्यतया स्मरणीय लक्षण है। जैसे पित्त के प्रकोप से मुख, गुद, मेढ्र आदि में पाक होता है वैसे योन्याश्रित पित्त से योनिपाक होता है। पाक अथवा व्रणशोथ बाहर हो तो जैसे उसमें वेदना होती है वैसे पैत्तिक योनि में भी वेदना प्रमुख लक्षण के रूप में होती है। यह वेदना गर्भाशय के स्थान पर—बस्तिप्रदेश या पेड़ू में—(हायपोगेस्ट्रिक रीजन में) होती है। बाह्य व्रणशोथ के सदृश ही इसमें पीडनाक्षमता या दबाने से वेदना में वृद्धि होती है—पीडन सह्य नहीं होता।

दाह प्रादेशिक तो होता ही है, पित्त के प्रमाण के तारतम्य तथा स्थानसंश्रय के भेद से मूत्र, मूत्रप्रसेक, नेत्र, मल, गुद, सर्वाङ्ग आदि में भी दाह होता है। उष्ण का अर्थ है अवयव किंवा स्राव रोगी को उष्ण प्रतीत होना, किंवा परीक्षक को उसका स्पर्श उष्ण प्रतीत होना। यह उष्णता भी उक्त सर्व अवयवों में होना संभव है। ज्वर प्रायः मन्दवेगी तथा नित्य रहता है।

स्राव के रूप में दुर्गन्धयुक्तता प्रायः होती है। सिद्धान्त की दृष्टि से विचार करें तो पित्तप्रकोपक आहार सड़ा-गला कर बनाया हुआ किंवा पड़ा रहने से दुर्गन्धी स्वभाव का हो तो जो पित्त वृद्धि को प्राप्त होगा वह विस्र—दुर्गन्धवाला—होगा। इसमें उत्तरबस्ति के कषाय आदि प्रादेशिक उपचारों में एवं मुखादि मार्गों से दिए जानेवाले कल्पों में जो पित्तहर द्रव्य पसन्द किए जाएँ वे सुगन्धी होने चाहिए—यथा चन्दन, उशीर इत्यादि। यह एक प्रस्ताव है। जिनके पास सुविधा है वे सुचिकित्सक प्रयोग-परीक्षण द्वारा इसकी परीक्षा करें तथा परिणाम प्रकाशित करने की कृपा करें।

लवण और क्षार द्रव्यों के अतियोग से पित्त की वृद्धि हुई हो तो अपत्यपथ से जो स्राव होता है उसमें द्रवत्व अधिक होने से उसका प्रमाण विशेष होता है। यही स्थिति पाण्डुरोग में होती है। किं बहुना, केवल अपत्यपथ से स्राव का वृत्तान्त जान कर मन में 'ल्यूकोरीआ' की स्मृति कर या स्वतन्त्रतया श्वेत प्रदर का विचार न करना चाहिए। वैसे तो श्वेत प्रदर संज्ञा स्वयं अशास्त्रीय है। श्लेष्मला योनि नाम शास्त्रशुद्ध है। परन्तु दोष-भेद से भिन्न-भिन्न प्रकार के स्राव अपत्यपथ से हुआ करते हैं। उनको प्रश्नादि परीक्षाओं द्वारा जान कर दोष-विशेष का निदान कर चिकित्सा के तदनुरूप मार्ग का निर्धारण करना चाहिए। यही आयुर्वेद की पद्धति होगी।

प्रश्न-परीक्षा द्वारा निदान अर्थात् रोगकारण का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। मिर्च आदि के अतियोग का वृत्तान्त उपलब्ध हो तो पित्तला योनि का निश्चय करना सुगम होता है। उपशयानुपशय की निश्चिति (पथ्यापथ्य) का भी निर्णय हो जाता है। परन्तु, पित्तप्रकोपक आहार के अतियोग के अतिरिक्त गर्भस्थिति जनित किंवा उदावर्त (कब्ज) के कारण प्रतिदिन मलमार्ग से पित्त का जितने प्रमाण में निर्हरण होना चाहिए उतने प्रमाण में निर्हरण होता नहीं। उसका संचय होकर वृद्धि होती है। वृद्ध हुए इस पित्त का स्थानसंश्रय विशेषतया योनि में हो तो पित्तला योनि की उत्पत्ति होती है। अधोवायु के वेगावरोध से हुए उदावर्त के लक्षणों में सुश्रुत ने कहा है कि इससे कफ और पित्त का दारुण प्रसर होता है—**बलासपित्तप्रसरं च घोरम्**—सु. उ. ५५-७। सहज अर्श के प्रकरण में भी अधोमार्ग के अवरोधपूर्वक अवरोध से इतर वायुओं, पित्त तथा कफ का अवरोधपूर्वक संचय एवं प्रकोप होने का निर्देश सर्व संहिताकारों ने किया है। इन तथा अन्य प्रकरणों को मैं 'उदावर्त'—शीर्षक लेखमाला में उद्धृत करूँगा। उससे इस विषय की अधिक स्पष्टता होगी।

पित्तला योनि में स्राव दुर्गन्धयुक्त हो और क्षत से रक्त की भी प्रवृत्ति हो, एवं रुग्णा कदाचित् पूर्ववय पार कर

चुकी हो तो रक्तार्बुद (कैंसर) की शङ्का होती है। परन्तु उसमें रक्तस्राव सतत हुआ करता है। यह उसका पैत्तिक योनि से भेदक लक्षण है। पित्तला योनि में क्षत होकर रक्तस्राव हो तो उसमें एक विशेषता यह होती है कि, इस पर शुद्ध या अशुद्ध धातु का आवरण आने पर रक्तस्रुति तब तक बन्द रहती है, जब तक शुद्ध धातु क्लिन्न होकर झड़ न जाए। पुनः शुद्ध धातु का प्रादुर्भाव होने पर रक्त-स्राव बन्द रहता है। इस प्रकार मध्य-मध्य में रक्तस्रुति बन्द होने का वृत्तान्त प्राप्त होता है। रक्तार्बुद में यह स्थिति होती नहीं।

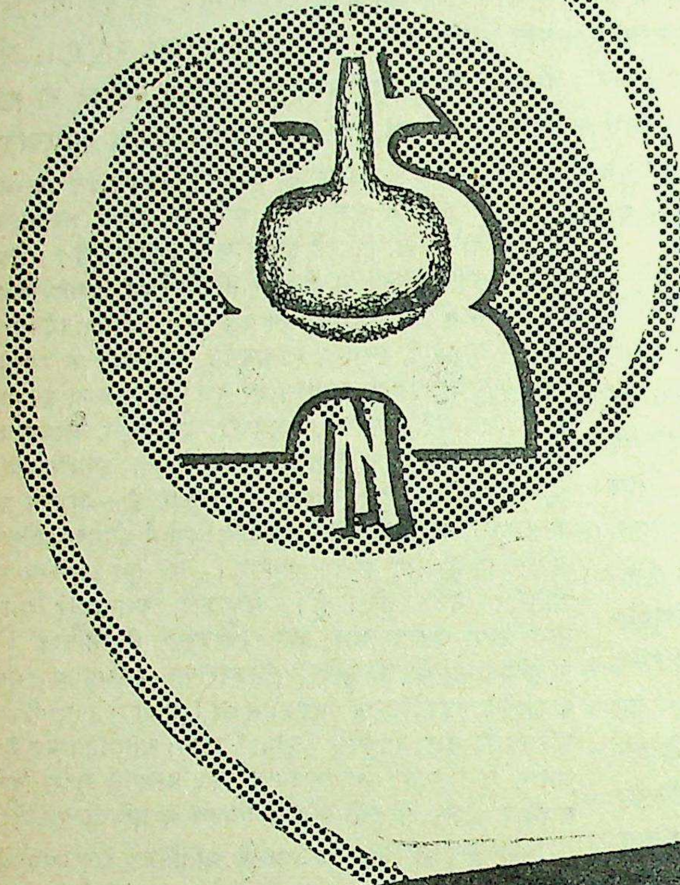
दुर्गन्धयुक्त पित्तला योनि को पाश्चात्य स्त्रीरोग-विज्ञान में 'श्वैड इरोझना' कहते हैं।

आयुर्वेद-मत से पित्तला योनि निदान होने पर चिकित्सा का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। संभव हो तो, चिकित्सा के पूर्व प्रत्यक्ष-परीक्षा करा लें। प्रायः पुरुष चिकित्सकों के लिए यह संभाव्य न होने से ऊपर दिए सार्व-देहिक तथा प्रादेशिक लक्षण एवं निदान (कारण) रोग-विनिश्चय में बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं। आयुर्वेद-मत से इस रोग को समझ लिया जाना चिकित्सा की दृष्टि से बहुत उपयुक्त होता है। निदान परिवर्जन, पथ्य का सेवन एवं पित्तानुसारी शोधन-शमनात्मक चिकित्सा से इस रोग की चिकित्सा अधिक फलवती होती है। मिश्र चिकित्सा पद्धति के अध्ययन-अध्यापन तथा व्यवसाय की जिन्हें सुविधा हो वे इस दिशा में अनुभवपूर्वक अधिक प्रकाश डाल सकते हैं।

चिकित्सा में, जैसा कि ऊपर कहा निदान-परिवर्जन प्रथमावश्यक है। निदान यदि कटु द्रव्यों के सेवन का हो तो वह यथावश्यक अल्प कराएँ। अर्थापत्ति से निदान परिवर्जन का अर्थ है हित का सेवन। सो दूध, घी, सितो-पला आदि का सेवन सविशेष कराना चाहिए। रोग-निदान यदि उदावर्त हो तो उसके लिए विरेचन का महत्व विशेष है। कई बार पित्तला योनिव्यापत्ति गर्भस्थिति के कारण होती है। उसमें भी उपयुक्त विरेचन देने पर ध्यान दें। आयुर्वेद में शमन की अपेक्षया शोधन का अधिक महत्त्व माना गया है, उसे इस रोग में स्मरण रखें। उदा-वर्त के स्पष्ट लक्षण न होने पर भी **'विरेचनं पित्तहराणाम्'** को स्मृति में रख मृदु विरेचन देते रहें। शमन औषध के रूप में गुलकन्द, आमला का अवलेह, आमलकी के रसायन चूर्ण (गुडूची, गोक्षुर, आमला का चूर्ण) आदि कल्प उपयुक्त हैं। शतावरी, विदारी, मधुयष्टी, अनन्तमूल, अश्वगन्धा, वाकेरी आदि शीत पित्तशामक द्रव्यों का उपयोग अति हितावह होता है। सुश्रुत ने लिखा है—गर्भिणी की मासानुमासिक चिकित्सा में जो द्रव्य लिखे हैं योनिव्यापत्तियों में उन का उपयोग करना चाहिए। वह सूत्र इस रोग पर सविशेष घटित होता है। मधुयष्टी, अनन्तमूल आदि द्रव्य प्रायः प्रत्येक मास की चिकित्सा में निर्दिष्ट हैं। प्रादेशिक उपचार में मुखरोगाधिकारोक्त—मुखपाक (मुख के छाले), दन्तवेष्टपाक (मसूड़ों में दर्द) आदि में उपयोगी—इरिमेदादि तैल का पिचु (फोया) रखना अति हितावह है। अभाव में त्रिफला तथा मधुयष्टी का वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण मलमल में भर, पोटली बाँध अपत्यपथ में प्रविष्ट कर दें।

कुपित हुआ पित्त गर्भाशय के अतिरिक्त अपत्यपथ में स्थान संश्रय करे तो व्यवायकाल में वेदना यह विशेष लक्षण होता है। इसे **परिप्लुता योनि** यह नाम विशेष दिया गया है।

मां के दूध के समान शुद्ध और गुणकारी....



सिद्ध मकरध्वज,
बसन्तकुसुमाकर,
स्वर्णभस्म, च्यवनप्राश
आदि का सेवन करें
और अपने शरीर को
बल, वीर्य से परिपूर्ण
और स्वस्थ बनाये रखें।

बैद्यनाथ रस रसायन



श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता • पटना • झाँसी • नागपुर

देशी दवाओं का सबसे बड़ा और विश्वासी कारखाना

P46

जीवन की अनेकता और एकता—१

प्रो० जे० बी० एस० हाल्डेन

विख्यात जीव-शास्त्री, प्रो० जे० डी० एस० हाल्डेन ने स्व० सरदार पटेल स्मारक भाषणमाला के अन्तर्गत इस वर्ष 'जीवन की अनेकता और एकता' पर तीन भाषण किये हैं। प्रो० हाल्डेन का कैम्ब्रिज और लन्दन विश्वविद्यालय से अनेक वर्ष तक सम्बन्ध रहा है। उन्होंने "जन्तु जीव-शास्त्र", "विज्ञान और नीति-शास्त्र", "पित्रागति और राजनीति" "शान्ति और युद्ध में विज्ञान", "जीव रसायन-शास्त्र और प्रजनन विज्ञान", विषयक अनेक ग्रन्थों की रचना की है। प्रो० हाल्डेन अब भारत में ही बस गये हैं और इस समय वह भारतीय सांख्यिकी-संस्थान, कलकत्ता में काम करते हैं। प्रस्तुत लेख आल इण्डिया रेडियो द्वारा आयोजित इस भाषण-माला का पहला भाषण है। —संपादक

'जीवन की अनेकता' से मेरा क्या आशय है? इसके अनेक आशय हैं। पहला तो यह कि संसार में विभिन्न प्रकार के प्राणी जैसे, गाय, कोयल, धान का पौधा और पीपल का वृक्ष मौजूद हैं। इन विभिन्न प्रकार के प्राणियों के बोध के लिए हम जाति शब्द का प्रयोग करते हैं। ऐसे प्राणियों की दस लाख से भी अधिक जातियाँ हैं। दूसरा यह कि इन जातियों में भी अनेक सदस्य होते हैं और वे सब एक-दूसरे से थोड़े-बहुत भिन्न होते हैं। तीसरा यह कि प्रत्येक प्राणी का शरीर विभिन्न भागों, जैसे—बाल और हड्डियां, पत्ते और जड़ का बना होता है और अपना आचरण बदल भी सकता है। उदाहरणार्थ एक समय वह भागता है, तो दूसरे समय वह खाता है; एक समय उसमें फूल आते हैं, तो दूसरे समय उसमें फल लगते हैं।

एकता और अनेकता के विषय में भारतीय विचारकों की दो हजार वर्ष से भी अधिक समय से रुचि रही है। आप सब इन तथ्यों को जानते हैं। पर शायद आपने जीवन की अनेकता के बारे में गम्भीरता से विचार नहीं किया या इस बात पर विचार नहीं किया कि भारत से इनका क्या सम्बन्ध है। उदाहरण के रूप में मैं पूछ सकता हूँ कि फूल देनेवाले पौधों की कितनी जातियां हैं और उनमें से कितनी भारत की ही उपज हैं? इस प्रश्न के उत्तर से भारत की सम्पदा का कुछ अनुमान लग सकता है।

"जीवन की एकता" से मेरा क्या आशय है? मोटे तौर से मेरा आशय यह है कि एक नजर देखने पर जितनी विभिन्नता दीखती है, वह वास्तव में उतनी नहीं है। पहली बात यह कि विकास के सिद्धान्त के अनुसार, जिसमें मेरा विश्वास है, गाय और साँप इतने भिन्न दीखने पर भी उनके पूर्वज एक ही थे। इस उदाहरण के विषय में हम एक कदम आगे बढ़कर यह भी कह सकते हैं कि ये पूर्वज उस युग में रहते थे, जब ब्रिटेन के भूगर्भ में कोयले की तहों का निर्माण हो रहा था। इस बात का प्रमाण मौजूद है कि पृथ्वी के सब प्राणियों के पूर्वज एक ही थे, हालांकि यह प्रमाण बहुत ठोस नहीं हैं। इस प्रमाण का कुछ अंश मैं आपके सामने रखूंगा। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय विचारकों ने इस बात पर जोर दिया है कि मनुष्यों और पशुओं में वंशगत संबन्ध है और कुछ पशुओं में बुद्धि भी होती है।

किसी पौधे या जन्तु में अपनी ही एक इयत्ता होती है। यह इयत्ता क्या किसी आत्मा के कारण होती है, जो काया से न्यूनाधिक रूप से मुक्त होती है या क्या वह काया के विभिन्न अंगों के आचरण का परिणाम है, जैसे परिवार या राष्ट्र की इयत्ता उसके सदस्यों के आचरण के रूप में होती है? भारतीय विचारकों ने मानव बुद्धि या मन के रूप पर भी विचार किया है और उनके मत भिन्न हैं। बौद्ध विचारकों का मत है कि मन या बुद्धि क्षणिक तत्त्वों का समुदाय मात्र है। वैशेषिक दर्शन में कहा गया है कि मन या बुद्धि अणुओं का संघटन है। इसी के साथ व्यक्ति की अलग सत्ता या अहंकार का प्रश्न भी है। बौद्ध और अद्वैत दोनों दर्शनों में यह प्रतिपादित है कि अहंकार एक भ्रम है। मैं इस प्रश्न पर बौद्धिक नहीं, बल्कि जैविक दृष्टि से विचार करूँगा।

तीसरी बात यह है कि जन्तुओं के परिवार की एकता जैसी भी एक चीज होती है। यहाँ मेरा परम्परागत भारतीय विचारधारा से गहरा मतभेद है। आपके

विचारकों ने मात्स्य-न्याय की बात कही है। उन्होंने इस मत का प्रतिपादन किया है कि मनुष्यों का आपस में एक-दूसरे के प्रति कोई कर्तव्य नहीं है और सबल का दुर्बल को हड़प कर जाना न्यायोचित है, क्योंकि मछलियाँ भी ऐसा ही करती हैं। मैं मछलियों को इस कलंक से बचाने और यह दिखाने का प्रयत्न करूँगा कि कम से कम कुछ मछलियां ऐसी हैं, जो पति या पत्नी के प्रति वफादारी, बच्चों की देखभाल और सामाजिक जीवन के मामले में मनुष्य के लिए आदर्श हो सकती हैं।

मेरा पहला काम जातियों की विभिन्नता और उनके पूर्वजों के एक होने के प्रमाण के बारे में कुछ बताना होगा। किसी जाति की हम कोई निश्चित व्याख्या नहीं कर सकते। मोटे तौर से हमारा आशय जन्तुओं अथवा पौधों के ऐसे वर्ग से होता है, जो अन्य सब वर्गों से कई प्रकार से भिन्न हो और जिसे दूसरों से मिलानेवाली कड़ी के रूप में बीच का कोई जन्तु वर्ग न हो। कई सौ उदाहरण ऐसे हैं, जिनके बारे में कहा जा सकता है कि वे दो अलग जातियों के इसलिए हैं, क्योंकि वे आपस में मैथुन नहीं करते और यदि करते हैं तो उससे किसी संकर जाति का जन्म नहीं होता या खच्चरों की भाँति नपुंसक संतति का जन्म होता है।

विभिन्न जातियों की संख्या का मोटा अनुमान लगा लेना चाहिए। जन्तुओं के जिन वर्गों से हमारा विशेष परिचय है, वे हैं स्तनपायी जन्तु और पक्षी। मनुष्य, गाय, कुत्ता, चूहा, चिमगादड़, ह्वेल आदि सब स्तनपायी जन्तु हैं। स्तनपायी जन्तुओं की लगभग १० हजार और पक्षियों की ८ हजार जातियां हैं। इससे अधिक जातियों का पता चलने की सम्भावना कम है। मछलियों की लगभग २० हजार जातियाँ हैं और सर्प आदि तथा मेंढक की भाँति जल और थल, दोनों पर रहनेवाले जन्तुओं की जातियों की संख्या कुछ कम है। कहना चाहिए, रीढ़ की हड्डी-वाले जन्तुओं की कुल मिलाकर ४० हजार जातियाँ हैं। इसके विपरीत कीड़ों की लगभग १० लाख ऐसी जातियाँ हैं, जिनके बारे में हमें ज्ञान है। सम्भव है, कीड़ों की १० लाख जातियां और हों जिनकी जानकारी प्राप्त करना अभी बाकी है। बाकी जन्तुओं, जैसे घोंघे, केंचुए आदि की संख्या शायद ५ लाख है।

यहाँ मैं रीढ़ की हड्डीवाले जानवरों का संक्षिप्त इतिहास आपके सामने रख दूँ। ऐसे जन्तु लगभग ४० करोड़ वर्ष पहले पानी में रहा करते थे। वे बहुत कुछ मछली की तरह होते थे, परन्तु उनके न तो मछलियों की भाँति पक्ष होते थे और न ही निचला जबड़ा होता था। वे वर्तमान मछलियों की भाँति नहीं खाते थे, बल्कि कीचड़ को चूस लेते थे। यह कीचड़ उनके मुँह के पीछे बने अनेक छिद्रों से छन जाता था। उनकी आँखें होती थीं, लेकिन उनका जीवन केंचुओं से बहुत भिन्न नहीं था। इनके कुछ वंशज, जो आज भी उन्हीं जैसा जीवन बिताते हैं, अब तक शेष हैं।

इन जन्तुओं के मुँह में छलनी को सहारा दिये हुए कोमल हड्डियों की सलाखों का एक ढांचा होता था। लगभग ३५ करोड़ वर्ष पहले या उससे भी पहले इस ढांचे की प्रथम सलाखें जुड़ गयीं और जुड़ने से इन जन्तुओं के दो जबड़े बन गये। अब ये जन्तु पहले से बड़ी चीजें खा सकते थे। लगभग इसी समय मछलियों की भाँति इनके पक्ष भी उग आये और ये जन्तु मछलियों की ही भाँति तैरने लगे। कुछ करोड़ साल तक मछलियों की बहुत-सी भिन्न जातियां रहीं। इनमें से कुछ के तीन या चार पक्ष होते थे, लेकिन केवल दो पक्षोंवाली मछलियां ही जीवित बचीं। यही हमारे और वर्तमान मछलियों और पक्षियों तथा चौपायों के पूर्वज थे। यदि छः पक्षवाले जन्तु बने रहते तो आज शायद हमारे भी फरिश्तों की तरह पंख और हाथ होते या दैत्यों की तरह बहुत से हाथ होते।

लगभग ३२ करोड़ वर्ष पहले बहुत सी छिछली खाड़ियां थीं, जो समय-समय पर सूखती रहीं। इन खाड़ियों की जो मछलियां बाहर निकल आयीं केवल वही बची रहीं। इनके पक्षों में जोड़ हो गये, जो बाद में पांव बन गये। मछलियां जमीन पर होनेवाले पौधों और कीड़ों को खाने लगीं। हमारे पास ऐसी ठठरियां मौजूद हैं, जिनसे इस प्रकार के विकास का प्रमाण मिलता है। एक ऐसे जन्तु की ठठरी भी है, जिसके चार छोटे-छोटे पांव हैं और मछलियों जैसी पूंछ है।

ये आदिम चौपाए जन्तु पानी और जमीन, दोनों पर रहते थे और इनकी शक्ल बहुत कुछ गोह या छिपकलियों की तरह थी। लेकिन, मेढ़कों की भांति इन्हें भी अंड़े देने के लिए पानी में जाना पड़ता था। लगभग ३० करोड़ वर्ष पहले इनमें से कुछ जन्तुओं ने जमीन पर भी खोलदार अंड़े देने शुरू किये। यह क्रिया इन जन्तुओं के दो दलों में या तो स्वाधीन रूप से हुई या ये दो दल बाद में अलग-अलग

हुए। इनमें से एक दल के जन्तु, जो बाद में स्तनपायी जन्तुओं के पूर्वज बने, लगभग १० लाख वर्ष तक स्थल पर रहनेवाले सब से विशाल जीव थे। फिर वे लगभग नष्ट हो गये और १ करोड़ वर्ष तक भूमि पर छिपकलियों या गोहों और पक्षियों की-सी शक्ल के जन्तुओं का आधिपत्य रहा। इनमें से कुछ हाथियों से भी बड़े थे और कुछ चूहों से भी छोटे। बहुत से जन्तु पिछले पांवों पर खड़े होकर चलते या दौड़ते भी थे। जन्तुओं के दो दल ऐसे थे, जो हवा में भी उड़ने लगे। इनमें से पहला दल उन विशालकाय जन्तुओं का था, जिनके पंख चिमगादड़ों की तरह थे। बाद में, पक्षी भी हवा में उड़ने लगे। जन्तुओं का एक दल जमीन खोद कर नीचे जाने और रहने लगा और कालान्तर में उनके पांव नहीं रहे। जब वे दोबारा भूमि की सतह पर आये तो वे सांप आदि बन चुके थे। कुछ जन्तुओं ने अपने को एक प्रकार के कवच से ढँक लिया और वे कछुआ आदि बने। जन्तुओं के कम से कम पांच दल फिर समुद्र को लौट गये, हालांकि उन्होंने हवा में सांस लेना जारी रखा। रीढ़ की हड्डीवाले और हवा में सांस लेनेवाले जन्तुओं में आज जितनी जातियां हैं, १० करोड़ वर्ष पहले उससे शायद कहीं ज्यादा थीं। इसी काल में मछलियों का आकार और शरीर-रचना भी वर्तमान मछलियों की भाँति होती गयी।

लगभग ८ करोड़ वर्ष पहले एक ऐसी आश्चर्यजनक घटना घटी जिसका आजतक कोई कारण नहीं मालूम। लगभग २ करोड़ वर्ष की अवधि में रेंगकर चलनेवाले जन्तुओं के अधिकांश वर्ग नष्ट हो गये। उनका स्थान स्तनपायी जन्तुओं, मछलियों और पक्षियों ने ले लिया। शुरू में, स्तनपायी जन्तुओं में बहुत विभिन्नता नहीं थी, लेकिन बाद में ७ करोड़ वर्ष तक उनका भिन्न-भिन्न ढंग से विकास हुआ। जहाँ तक आकार का प्रश्न है, उनमें इतना परिवर्तन नहीं हुआ, जितना रेंगनेवाले जन्तुओं में। स्तनपायी जन्तुओं में कोई भी इतना विचित्र नहीं है, जितना साँप या कछुआ हालांकि, दक्षिण अमेरिका के कुछ जन्तुओं के शरीर पर कछुओं की भाँति कवच-सा उत्पन्न हो गया। ये जन्तु अब बाकी नहीं हैं। सबसे मौलिक जन्तु वर्ग शायद हाथियों का था, जो ५० लाख वर्ष पहले आस्ट्रेलिया, दक्षिण ध्रुव देश और अधिकांश द्वीपों को छोड़ बाकी सारे संसार में फैल गये थे।

तीन दुखद घटनाओं के फलस्वरूप यह चमत्कारपूर्ण विविधता कम हो गयी। दक्षिण अमेरिका पहले एक द्वीप था। लगभग ५० लाख वर्ष पहले वह उत्तर अमेरिका से जुड़ गया और आज तक जुड़ा हुआ है। तब उत्तर के स्तनपायी जन्तुओं ने दक्षिण पर धावा बोला और अधिकांश दक्षिण देशी जन्तुओं को, जिनमें से कुछ बहुत सुन्दर थे, नष्ट कर डाला। १० लाख वर्ष या उससे कुछ कम पहले अनेक हिमयुग आये, जिन्होंने जन्तुओं की अनेक जातियों को नष्ट कर दिया। अन्त में, मनुष्य का विकास हुआ और उसने कम से कम २।। लाख वर्ष तक मुख्यतः जन्तुओं का ही शिकार करके जीवन बिताया। कुछ जन्तुओं को उसने पालतू भी बना लिया, लेकिन अन्य जन्तुओं को उसने नष्ट कर डाला। गोला-बारूद और बन्दूक आदि के बनने से जन्तुओं के नाश का क्रम और भी तेजी से चल पड़ा और ऊष्णदेशीय अफ्रीका को, जो हिमयुगों के आक्रमण से बचा रहा था, मनुष्यों ने करीब-करीब जन्तुहीन कर डाला। अब, आखिरकार हम यह महसूस करने लगे हैं कि जन्तुओं के रूप में सृष्टि में जो विविधता शेष है, उसको बनाये रखना हमारा कर्तव्य है। भारत सरकार भी यहाँ सिंह और गैंडे को बचाने का पूरा प्रयत्न कर रही है।

हम देखते हैं कि जैसे-जैसे नयी-नयी शक्तियों का उदय हुआ, वैसे ही जीवधारियों में विविधता बढ़ती गयी, परन्तु मनुष्य के प्रादुर्भाव के बाद यह क्रम उलटा हो गया। जीवशास्त्री की नजर में एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से कोई भेद नहीं, परन्तु अपने आचरण और बुद्धि में वे बहुत भिन्न होते हैं। यह एक नयी प्रकार की विभिन्नता है। मैं यहाँ उसकी चर्चा नहीं करूंगा। जब हम कीड़ों का, विशेषकर सामाजिक कीड़ों का इतिहास जान पाएंगे, तो वह शायद रीढ़ की हड्डीवाले जन्तुओं के इतिहास से भी अधिक दिलचस्प साबित होगा।

कीड़ों में इतनी विविधता क्यों है? आपको याद होगा कि कीड़ों की दस लाख या इससे भी अधिक जातियां हैं। मैं एक उदाहरण दूंगा। कीड़ों में बुद्धि होती है और मेरा मत है कि उनमें से कुछ की बुद्धि काफी विकसित होती है। पाश्चात्य प्राणिशास्त्री 'इंस्टिंक्ट' या पशु-बुद्धि की बात कहते हैं। किसी जाति के कीड़े केवल एक ही जाति के पौधों या जन्तुओं का आहार करते हैं, इस बात को कहने के लिए 'स्वधर्म' भी उतना ही अच्छा शब्द है।

उदाहरणार्थ, जूंओं की तीन जातियां ऐसी हैं, जो केवल मनुष्य के रक्त पर ही जिन्दा रहती हैं। अतः आचरण की विभिन्नता के कारण भी अनेक जातियां पैदा हो जाती हैं।

फूलोंवाले पौधों की २, १०, ००० या २ लाख जातियाँ ज्ञात हैं। मेरा ख्याल है कि अब शायद ३० हजार जातियाँ बची हों, जिनका अभी पता नहीं चला है। यह दिलचस्प बात है कि उपर्युक्त जातियों में से १० प्रतिशत भारत में पायी जाती हैं। रूस जैसे अधिक बड़े देशों में कम जातियां पायी जाती हैं। केवल ब्राजील ऐसा देश है, जहाँ फूलों-वाले पौधों की भारत से भी अधिक जातियाँ मिलती हैं। ब्रिटेन में तो केवल १ हजार ही जातियाँ मिलती हैं।

मुस्लिम और ईसाई वैज्ञानिकों का विश्वास था कि संसार की सृष्टि को १० हजार वर्ष से भी कम हुआ है। स्वभावतः, उन्होंने सोचा कि प्रत्येक जाति का अलग-अलग निर्माण हुआ है। प्राचीन भारतीय विचारकों ने "परिणाम" या परिवर्तन का सिद्धान्त प्रतिपादित किया, परन्तु 'विकास' का आधुनिक सिद्धांत इससे भिन्न है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन सब से पहले फ्रांस में लैमार्क ने किया। लेकिन, जीवशास्त्रियों को इस सिद्धांत की सच्चाई का विश्वास सब से पहले डारविन ने कराया। डारविन ने विकास के सिद्धांत को वैज्ञानिक ढंग से समझाया है और अब मैं समझता हूँ कि उसका मत अधिकांश में ठीक है यद्यपि इसे मानने की जरूरत नहीं है कि प्रकृति चुन-चुन कर दुर्बल जीवों को मारती रहती है। जैसे यह ठीक है कि अजातशत्रु ने लिच्छवियों को हराया पर हम यह नहीं मानते कि उसने देवताओं की मदद से ऐसा किया।

विकास की क्रिया के दो प्रकार के प्रमाण मिलते हैं। एक तो, प्रस्तरीभूत कंकालों से और दूसरा, प्रजनन विज्ञान से अर्थात, जीवित पौधों और जन्तुओं के वास्तविक प्रजनन से। जिन पुरातन चट्टानों में पर्याप्त सुरक्षित रूप में प्रस्तरित अस्थियां मिलती हैं, वे लगभग ५५ करोड़ वर्ष पुरानी हैं। वैसे इससे भी पुराने प्रस्तरित कंकाल मिले हैं और सम्भव है कि पृथ्वी पर जीव-सृष्टि की उम्र इससे दुगनी हो। पृथ्वी के बहुत से भू-भागों में कोई प्रस्तरीभूत कंकाल नहीं मिलते। उदाहरण के रूप में, दक्षिण का निर्माण ज्वालामुखियों के जमे हुए लावे से हुआ है। अन्य भू-भाग, जैसे गंगा के कांठे पर इधर की कीचड़-मिट्टी जमा है। लखनऊ और कलकत्ते के बहुत नीचे जो चट्टानें हैं, उनमें पुराने पथराये कंकाल हो सकते हैं, लेकिन ये चट्टानें बहुत नीचे हैं।

यदि पिछले ५० करोड़ वर्ष में पृथ्वी के सभी युगों के अवशेष मिलते तो प्रत्येक १० लाख वर्ष की अवधि में बनी चट्टानें पृथ्वी के एक हजारवें भाग पर मिलतीं। पर कुछ युगों की चट्टानें या अवशेष तो अब मिलते ही नहीं। जितने पुराने अवशेष होते हैं, उनका मिलना उतना ही दुर्लभ होता है। बहुत से जन्तु और पौधे ऐसे होते हैं, जिनका कोई ठोस और सख्त अवयव नहीं होता। ऐसे जन्तुओं और पौधों की अस्थियां प्रस्तरीभूत रूप में नहीं पायी जातीं। कीड़ों आदि की तुलना में हड्डियोंवाले जन्तुओं के कंकाल बचे रहना अधिक सम्भव है।

जो भी हो, पिछले करोड़ों वर्षों में बनी मिट्टी या चट्टानों आदि की जो तहें पायी जाती हैं वे यह दिखाने के लिए काफी हैं कि कुछ जातियाँ धीरे-धीरे लेकिन निरन्तर रूप से बदलती रहीं और यह परिवर्तन इतना बड़ा था कि यदि एक ही जाति के विभिन्न युगों में जीवित नमूनों को लिया जाए तो वे अलग-अलग जाति के माने जाएंगे। जैसे भारत में पाये जानेवाले शालिग्राम जो पुरातन शंख जाति के जीवों का रूपान्तर है। कुछ वर्तमान जन्तुओं, जैसे घोड़ों और हाथियों के प्राचीन कंकाल काफी मात्रा में उपलब्ध हैं और इस प्रकार हम उनके वंश-क्रम के बारे में जान सकते हैं। जहाँ तक दूसरे प्राणियों, जैसे मनुष्य का प्रश्न है यह शृंखला बीच-बीच में काफी टूटी हुई मिलती है। तो भी, ऐसे बहुत से कंकाल मिलते हैं, जिनका सिर मनुष्य के सिर से छोटा, लेकिन अपने आकार के अन्य जन्तुओं से बड़ा है और जो वर्तमान मनुष्य का पूर्व रूप जान पड़ता है।

विकास की क्रिया के सम्बन्ध में प्रचलित धारणाएँ अनेक कारणों से भ्रामक हैं। एक कारण यह है कि इस क्रिया की अत्यन्त मंथर गति पर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता। आप जानते हैं कि घोड़ों के दाँत विशेष प्रकार के होते हैं। ये दाँत घास चरने के काम आते हैं और चरने से घिसते भी जाते हैं। पिछले ५० करोड़ वर्षों में घोड़ों के जो पूर्वज रहे, उनके दाँत देखने पर पता चलता है कि इनमें सबसे पहले पूर्वजों के दाँत मनुष्यों और सूअरों की तरह छोटे-छोटे थे। बाद में उनके दाँत बड़े होते चले गये। यह वृद्धि प्रति १० लाख वर्ष में औसतन ३ या ४ प्रतिशत के हिसाब से हुई।

दूसरी मिथ्या धारणा यह है कि विकास प्रायः प्रगतिशील होता है और नयी संतति आकार तथा आचार में अपने पूर्वजों से अधिक विकसित होती है। मेरा विचार है कि ऐसी प्रगति का यदि एक उदाहरण लिया जाय तो अवनति के दस उदाहरण मिल सकते हैं। उदाहरणार्थ, पक्षी शायद उस एक जाति के वंशज हैं, जिसने पहले-पहल उड़ना सीखा, परन्तु बहुत से पक्षियों की उड़ने की सामर्थ्य नष्ट हो गयी है--जैसे शुतरमुर्ग। इसी तरह मछलियों की बहुत-सी जातियाँ समुद्र-गर्भ की चट्टानों में बनी गुफाओं में रहने लगीं और अपनी दृष्टि खो बैठीं। सब मिलाकर विकास की क्रिया इस दृष्टि से प्रगतिशील है कि एक जाति जिसने नयी सामर्थ्य पायी, उसकी अनेक संतति हो सकती है जो इस सामर्थ्य का विभिन्न प्रकार से लाभ उठायें। जो जाति सामर्थ्य खो दे, संभव है वह नयी जातियों को जन्म न दे सके।

५० वर्ष पहले यह समझा जाता था कि विभिन्न नस्लों के कुत्तों, मुर्गियों या मटरों में बहुत भेद होते हुए भी यह भेद केवल ऊपरी है, क्योंकि वे सब परस्पर मैथुन कर सकती हैं और ऐसी संतति को जन्म दे सकतीं हैं, जो दूसरी संतति पैदा कर सकती है। जबकि कुत्ते और लोमड़ियां ऐसा नहीं कर सकतीं। परन्तु अब एक जाति में ही नहीं, बल्कि किसी नयी जाति में भी परस्पर मैथुन और संतति-जन्म का अवरोध सम्भव हो गया है। विकासात्मक परिवर्तन बहुत शीघ्र होते भी देखा गया है। उदाहरणार्थ, इंगलैंड के धुएँदार औद्योगिक क्षेत्रों में पतंगों की लगभग ७० जातियां काली हो गयी हैं। एक जाति के बारे में तो यह निश्चित रूप से प्रमाणित हो गया है कि यह परिवर्तन प्राकृतिक चुनाव के कारण हुआ है। अतः, अधिकांश प्राणिशास्त्रियों का विश्वास है कि दो भिन्न जातियों में उसी प्रकार का भेद होता है, जैसा एक ही जाति की दो शाखाओं में।

रीढ़ की हड्डी वाले जानवरों के विकास का काफी इतिहास हमें ज्ञात है। कीड़ों के इतिहास का हमें इतना ज्ञान नहीं। जन्तुओं में ये दो श्रेणियां ही सबसे अधिक उन्नत हैं। ४० करोड़ वर्ष पहले जो कीड़े और रीढ़ की हड्डी वाले जन्तु थे, वे दूसरी श्रेणियों के जन्तुओं से बहुत भिन्न नहीं थे। इसमें सन्देह नहीं कि इस समय कीड़ों या रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं की जीवित जातियाँ उस समय की एक या थोड़ी सी जातियों की ही वंशज हैं। जैसा कि प्रो० एम० आर० साहनी और दूसरों ने बताया है, भगवान विष्णु के विविध अवतारों से मोटे तौर पर इस बात का पता चलता है कि विभिन्न युगों में रीढ़ की हड्डी वाले कौन से जन्तु सर्वाधिक विकसित थे। ३५ करोड़ वर्ष पहले रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं में मछलियां ही सबसे ज्यादा विकसित थीं (मत्स्य अवतार)। २५ करोड़ वर्ष पहले उनका स्थान रेंग कर चलने वाले जन्तुओं ने ले लिया था। करीब ६ करोड़ वर्ष पहले स्तनपायी चौपाये, जो वाराहों की तरह रहे होंगे, सबसे अधिक विकसित थे (वाराह अवतार)। १।। करोड़ वर्ष पहले उनमें मानवों जैसे कुछ गुण आ गये थे। नरसिंह अवतार से इसी बात का संकेत मिलता है। लगभग १० लाख वर्ष पहले सीधी खड़ी रहने वाली बौनों की जाति, जो मनुष्य तो नहीं थी परन्तु बन्दरों के मुकाबले में मनुष्य से अधिक मिलती-जुलती थी, रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं में सबसे अधिक विकसित थी। वामन अवतार इसका द्योतक है।

रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं में जिस प्रकार मछलियों की श्रेणी सबसे पुरानी है, उसी प्रकार पंख वाले कीड़ों में टिड्डियाँ और इसी प्रकार के कीड़े सबसे पुरानी जाति के हैं। पौधों के विकास के बारे में हमें कम मालूम है। फूलों वाले पौधों का तो जन्म ही केवल १५ करोड़ वर्ष पहले हुआ। मैं यह तिथियाँ कुछ विश्वास के साथ पेश कर रहा हूँ, क्योंकि चट्टानों में रेडियो सक्रियता से उत्पन्न पदार्थों के जमा रहने के कारण अब इस बात का ठीक-ठीक पता लगाया जा सकता है कि वे चट्टानें कितनी पुरानी हैं। परन्तु समुद्री जन्तुओं की अनेक श्रेणियां ऐसी हैं, जो ५० करोड़ वर्ष पहले भी करीब-करीब इसी रूप में थीं। उनके उद्गम के विषय में हम क्या कह सकते हैं?

जीव-विज्ञान की तीन शाखाएँ ऐसी हैं, जो कंकालों द्वारा पता चलने वाले इतिहास की पुष्टि और पूर्ति करती हैं। इनमें से एक शरीर की भीतरी रचना के तुलनात्मक अध्ययन से संबंधित है। अलग-अलग जाति के दो जन्तुओं के शरीर की भीतरी रचना जितनी ही समान होगी, उनके समान पूर्वज का अस्तित्व उतना ही कम पुराना होगा। उदाहरण के लिए घड़ियाल बाहरी तौर पर पक्षी की बजाय गाय से अधिक मिलता जुलता है। परन्तु, उसका हृदय और अन्य भीतरी अंग बहुत कुछ पक्षियों से मिलते हैं। वास्तव

में घड़ियाल और पक्षियों के समान पूर्वज २० करोड़ वर्ष पहले रहते थे, जबकि गाय और घड़ियाल के समान पूर्वज लगभग ३० करोड़ वर्ष पहले थे। अतः जब कंकाल उपलब्ध न हों, तब हम शरीर की भीतरी रचना की तुलना करके विभिन्न जाति के जन्तुओं के परस्पर सम्बन्ध का पता चला सकते हैं। सादृश्य के रूप में हिन्दी और इटालियन भाषा को लें तो उनमें बहुत थोड़ा साम्य है। परन्तु इन दोनों की पूर्वज भाषाओं—संस्कृत और लैटिन—में कहीं अधिक साम्य है और, इसमें सन्देह नहीं कि संस्कृत और लैटिन का जन्म किसी एक ही भाषा से हुआ होगा। यदि हमें पुरानी भाषाओं के लेख आदि न मिलते तो भाषाओं के विकास का क्रम न बताया जा सकता। परन्तु, संस्कृत, लैटिन, हीब्रू और अन्य प्राचीन भाषाओं का हमें जो ज्ञान है, उसके आधार पर हम इन भाषाओं का अफ्रीकी भाषाओं से संबंध ढूंढ़ निकाल सकते हैं। इसी प्रकार हम यह भी विश्वास के साथ कह सकते हैं कि कीड़ों, कनखजूरों, मकड़ियों और केकड़ों के पूर्वज एक ही थे और घोंघों, सीपों आदि के पूर्वज भी इसी प्रकार एक थे।

तुलनात्मक भ्रूण विज्ञान से भी हमें इसी बात का पता चलता है। परस्पर संबंधित जन्तुओं के विकास की प्रारंभिक क्रिया प्रायः एक जैसी होती है। अनेक जन्तु, जो वयस्क होने पर एक-दूसरे से नहीं मिलते, वे भी भ्रूण अवस्था में परस्पर मिलते हैं।

सबसे साधारण शरीर रचना एककोशी जन्तुओं की होती है। इनमें से अनेक जमीन या पानी में रहते हैं और उनसे कोई नुकसान नहीं पहुँचता, परन्तु कुछ एककोशी जन्तु परजीवी होते हैं और मलेरिया तथा आमातिसार जैसे गंभीर रोगों को जन्म देते हैं। इन एककोशी जन्तुओं को बहुकोशी जन्तुओं का पूर्वज समझा जाता है।

स्पंज, जिन्हें मुश्किल से ही जन्तु कहा जा सकता है, शायद इन एककोशी जन्तुओं के एक वंश के प्रतिनिधि हैं और बाकी सब बहुकोशीय जन्तु दूसरे वंश के। बहुकोशी जन्तुओं में रचना की दृष्टि से सबसे सरल आन्तरगुही जन्तु, जैसे प्रवाल आदि हैं। इन जन्तुओं को प्रायः आदिकालीन समझा जाता रहा है। परन्तु, यूगोस्लाविया के एक जीव-शास्त्री, हाजी, ने यह मत प्रकट किया है कि आन्तरगुही जन्तु शुरू से ही ऐसे नहीं थे, बल्कि बिगड़कर ऐसे बने हैं।

मेरा विश्वास है कि इस प्रकार के जन्तुओं का निर्णय जीवशास्त्र की एक तीसरी शाखा—जीव-रसायन—द्वारा किया जा सकता है। जो जन्तु रचना की दृष्टि से एक जैसे होते हैं, वे जीव-रसायन की दृष्टि से भी एक समान होते हैं। आप यह जानते हैं, पर आपको शायद यह नहीं मालूम कि आपको यह ज्ञान है। आप शायद यह मानकर चलते हैं कि रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं का रक्त लाल होता है और दूसरे जन्तुओं का लाल नहीं होता। वास्तव में, ध्रुव प्रदेश की कुछ मछलियों का रक्त पारदर्शक होता है, जबकि कुछ कीड़ों, घोंघों और कुछ पौधों की जड़ों में भी वह तत्त्व मिलता है, जिससे रक्त का रंग लाल होता है। इसलिए, रक्त की अपेक्षा रीढ़ की हड्डी ही वर्गीकरण का श्रेष्ठ मापदण्ड है। परन्तु, रक्त के रंग से परस्पर सम्बन्ध की अच्छी जानकारी मिलती है।

हमें रंगहीन पदार्थों के विषय में ऐसी ही बात देखने को मिली है। उदाहरणार्थ, रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं को मांसपेशियाँ सिकोड़ने के लिए जिस तत्त्व से शक्ति मिलती है, वह तत्त्व बिना रीढ़ की हड्डी वाले कुछ जन्तुओं में भी मिला है, लेकिन अन्यत्र नहीं मिलता। इससे तुलनात्मक शरीर रचना और भ्रूण विज्ञान द्वारा प्रकट इस बात की पुष्टि होती है कि ये जीव रीढ़ की हड्डी वाले जन्तुओं से सम्बन्धित हैं।

तुलनात्मक जीव रसायन से सबसे आश्चर्यजनक जानकारी यह मिली कि सब जन्तुओं और पौधों में जो जीवित तत्त्व होते हैं, उनकी रचना एक-सी होती है और उनमें एक-से ही रासायनिक परिवर्तन होते हैं। प्राणियों के निर्जीव भाग, जैसे हड्डियां, लकड़ी, छिलके आदि एक दूसरे से बहुत भिन्न होते हैं। उदाहरणार्थ, मनुष्य के रक्त में एक हजारवां भाग वह शक्कर होती है, जिसे ग्लूकोज कहते हैं। इस शक्कर का उपयोग हमारे शरीर का प्रत्येक अंग करता है। बहुत से पौधों में भी ग्लूकोज मिलता है। अन्य पौधों में इक्षु-शर्करा होती है, यह ग्लूकोज और स्तनपायी जन्तुओं के वीर्य में मिलने वाली शर्करा का योग होता है। जिन रासायनिक प्रक्रियाओं से प्राणी श्रम करने योग्य बनते हैं, वे प्रक्रियाएँ सभी प्राणियों में एक-सी होती है। रहट के बैल को लीजिए, जो कुएँ से पानी खींचता है। उसके पास ही खड़े किसी ताड़ के वृक्ष को भी लीजिए। वृक्ष भी पानी खींचता है, हालांकि उसकी पानी खींचने की गति प्रति घंटा

कुछ फुट की होती है। यदि वह पानी खींचना बन्द कर दे, तो उसके पत्ते शीघ्र ही सूख जाएँगे। पशु और वृक्ष की शक्ति का स्रोत निश्चय ही एडेनोसाइन ट्राइफास्फेट नामक रासायनिक तत्त्व है। जुगनुओं में प्रकाश भी इसी के कारण होता है। बैल और ताड़, दोनों को जिस शक्ति की जरूरत होती है, उसे देने वाला तत्त्व एडेनोसाइन ट्राइफास्फेट अनेक रासायनिक प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप बनता है। इन प्रतिक्रियाओं में बहुत थोड़ा-सा अन्तर होता है। श्री जगदीश चन्द्र बसु का यह विश्वास सत्य प्रमाणित हो चुका है कि पौधों और जन्तुओं में एक-सा जीवन है।

वास्तव में जन्तुओं और पौधों के कोशों में जो प्रक्रियाएँ होती हैं, वे लगभग एक जैसी ही हैं, हालांकि वे कोश बहुत भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए होते हैं। सभी प्राणियों के पूर्वज एक ही थे, यह मान लिया जाय तो यह समानता तुरंत समझ में आ जाती है।

जीवन की उत्पत्ति के विषय में व्यक्तिगत रूप से मेरा विचार है कि सजीव और निर्जीव पदार्थों में विभाजन की कोई निश्चित रेखा नहीं है। अपने मत के पक्ष में मुझे उन विषाणुओं की चर्चा करने की आवश्यकता नहीं, जिनसे चेचक और इंफ्लुएंजा होता है और जिन्हें कुछ लोग सजीव मानते हैं और कुछ लोग निर्जीव। मांडी के एक व्यहाणु में कार्बन का जो एक अणु होता है, जरा उसकी कल्पना कीजिए। जब आप चावल की मांडी खाते हैं और जब वह आपके मुँह या पेट में होता है तो कार्बन का अणु जीवित शरीर में होने पर भी उसका अंग नहीं बन जाता। जब वह रक्त में मिलता है, तब भी वह आपका हिस्सा नहीं बनता। वहाँ से वह जिगर में जाता है और फिर रक्त के द्वारा किसी मांसपेशी तक पहुँचता है। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है। हो सकता है कि कार्बन का यह अणु कुछ वर्ष तक हमारे शरीर में बना रहे या आक्सीजन से मिलकर कार्बन डाइआक्साइड के रूप में हमारी सांस के रास्ते बाहर निकल आए। यह कोई नहीं कह सकता कि वास्तव में वह कब हमारे जीवन का हिस्सा बना और कब उससे अलग हो गया। हालांकि इसमें सन्देह नहीं कि वह कुछ समय तक हमारे जीव का अंग अवश्य रहा।

इसी प्रकार अतीत के बारे में हमारा ज्ञान अब से बहुत अधिक भी हो जाए तब भी हम नहीं कह सकेंगे कि कुछ प्रकार के पदार्थ ठीक किस समय सजीव हो उठे। हमारे सौरमंडल के अन्य नक्षत्रों की हवा में आक्सीजन, अलग रूप से, बहुत कम होती है। पृथ्वी पर भी वह मुख्य रूप से पेड़-पौधों से मिलती है, जो सूर्य की सहायता से हवा में से कार्बन डाइआक्साइड खींच लेते हैं। अतः पृथ्वी के आदिकालीन वातावरण में आक्सीजन अलग रूप से शायद नहीं थी। यदि ऐसा था तो शक्ति देने वाले और सृजन करने वाले बहुत से रासायनिक तत्त्व हवा, पानी और मिट्टी में मिले रहे होंगे। बाद में धीरे-धीरे वे अलग हुए होंगे।

संचित रासायनिक शक्ति को ताप और गति में बदलने की क्रिया जिस पद्धति के अनुसार होती है, वह इस क्रिया के कारण एक रूप धर लेती है, जो कुछ समय तक बना रहता है। आग की लपटें इसका उदाहरण हैं। इसी प्रकार कुछ परमाणु दूसरे परमाणुओं को खींच लेते हैं और उनसे मिलकर 'कण' का रूप लेते हैं। इस प्रश्न का अभी निश्चयपूर्वक उत्तर नहीं दिया जा सकता कि क्या भौतिक क्रियाओं की कोई आदिकालीन पद्धति इतनी विकसित हो गयी थी कि उसने जीवन का रूप धारण कर लिया।

मैंने हाल ही में इस विषय पर विस्तृत रूप से विचार किया है और विशेष रूप से गणित और विज्ञान के कुछ ऐसे प्रश्न सामने रखे हैं, जिनका उत्तर देना बहुत कठिन नहीं होगा। इन प्रश्नों के उत्तर से उपर्युक्त सिद्धांत के के सही या गलत होने का पता चल जायगा। यह सिद्धांत गलत सिद्ध होने पर पृथ्वी के सब प्राणियों के एक पूर्वज से जन्म पाने के विषय में दो ही सिद्धांत और रखे जा सकते हैं। एक सिद्धांत यह है कि पदार्थ और जीवन दोनों अनादि-अनन्त हैं, परन्तु क्योंकि जीवन की उत्पत्ति केवल जीवन से ही हो सकती है, अतः पहला जीवधारी किसी दूसरे नक्षत्र से यहाँ आया होगा। दूसरा सिद्धांत, जिसे डार्विन ने सुझाया है, यह है कि जीवन की उत्पत्ति परमात्मा ने की और उसने एक बार ही समूचे जीवन का सृजन किया। परमात्मा ने प्राणियों की सृष्टि अलग-अलग नहीं की, जैसा कि बहुत से धर्मों में माना जाता है। व्यक्तिगत रूप से मेरा मत यह है कि पृथ्वी पर जीवधारियों की सृष्टि एक प्राकृतिक प्रक्रिया के फलस्वरूप हुई।

इस विषय में हाल ही में मास्को में एक सम्मेलन हुआ है। इस सम्मेलन में मुख्यतः भूमि, समुद्र और वायु की रचना, निर्जीव तत्त्वों से जीव तत्त्व का निर्माण, वर्तमान जीवधारियों की जीवन प्रक्रिया आदि के विषय में विचार किया गया। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य जीवन की सृष्टि करने का प्रयत्न करेगा। यदि यह सम्भव है तो उसके लिए स्पुतनिक छोड़ने के मुकाबले उतना ही अधिक शिल्पिक और बौद्धिक प्रयत्न करना पड़ेगा, जितना ५० गज दूर तीर छोड़ने वाला पहला धनुष बनाने की तुलना में, स्पुतनिक बनाने के लिए करना पड़ा था।

उदावर्त—३

वैद्य रणजितराय

वर्त : वात-प्रकोप का एक परिणाम

वायु का कोप अपने प्रकोपक आहार, विहार, औषध, देश या काल के अतियोग से हो, किंवा अन्य दोष, धातु, उपधातु, मल आदि के संयोग से—उनके द्वारा हुए अवरोध या आवरण से—हो उसके प्रकोप के परिणामों में एक वर्त होता है। च. सू. २०।१२ पर चरक ने तथा अ. हृ. सू. १२।४९ में वाग्भटाचार्य ने कुपित वात के कर्मों में वर्त का निर्देश किया है। चक्रपाणि ने वर्त का अर्थ दिया है : **वर्तुलीकरणं वर्तः**। अरुणदत्त ने अधिक स्पष्टता करते कहा है : **वर्तनं वर्तः, पुरीषादीनां पिण्डीकरणम्**। किसी भी शारीर द्रव्य को—यथा पुरीषादि को पिण्ड-रूप बनाकर—उसका द्रवांश क्षीणकर—उसे वर्तुल बनाना—उसे गोलाकार बनाना वर्त कहाता है। यह कुपित वायु के कारण होता है।

वातकलाकलीय अध्याय (च. सू. १२) में वायु के प्राकृत कर्मों का उल्लेख करते अत्रिपुत्र ने एक कर्म बताया है—**संशोषणो दोषाणाम्**। (यहाँ **दोषसंशोषणः** यह पाठान्तर है)। इसका अर्थ बताते दीपिकाकार कहते हैं—**दोषसंशोषणः शरीरक्लेदसंशोषणः**। नाम, शरीर के दोष, धातु, मल किंवा तद्घटित अवयवों में जो क्लेद, आर्द्रता या द्रवत्व है उसके शोषण का कार्य वायु के प्राकृत कर्मों में एक है। दोषों के प्राकृत गुण-कर्मों के विषय में एक स्मरणीय सत्य यह है कि ये प्राकृतावस्था में प्रायः ज्ञात नहीं होते। दोषों का किसी कारण से प्रकोप हो—किंवा उनके विरोधी दोष का क्षय हो, तो ही इनके गुण-कर्म की प्रतीति हमें होती है। यथा, पुरीष को ही उदाहरणतया लें। घृत-तैलादि स्नेहरहित आहार के अतियोग के रूप में रूक्ष अन्नपान का सेवन किया जाए, किंवा कटु द्रव्यों का अतिसेवन हो, अथवा वेगधारणादि वात-प्रकोप के कारण विद्यमान हों तो वायु का प्रकोप होकर उसके रूक्ष, शुष्क आदि गुणों की अभिव्यक्ति होती है। पुरीष को स्निग्ध और मृदु रखने वाले कारणों का अभिभव होता है—वे दब जाते हैं, तथा पुरीष शुष्क हो जाता है। किंवा कफ का क्षय हो, या पुरीष की स्निग्धता का कारणभूत मज्जा का स्नेह मज्जा धातु के क्षीण होने से क्षय को प्राप्त हो तो वायु के रूक्ष गुण का स्वयं प्रकोप न होने पर भी उसको समावस्था में रखने वाले इन द्रव्यों का स्नेहांश न्यून हो जाने से रूक्ष गुण जानो वृद्धि को प्राप्त हो जाता है और रूक्ष गुण का स्थानसंश्रय पुरीषादि जिस द्रव्य में हो वह शुष्क हो जाता है।

विरोधी दोष के गुण-विशेष की क्षीणता या वृद्धि के कारण इतर दोष के विरुद्ध गुण की वृद्धि या क्षय कैसे होता है इस बातको एक प्रसिद्ध कथा के दृष्टान्त से समझ सकते हैं। अकबर और बीरबल की यह कथा है। सभासदों की बुद्धि की परीक्षा के लिए सम्राट् ने एक दिन एक फट्टे पर एक रेखा खींच दी और कहा कि, इसे हाथ लगाए बिना—इसके किसी किनारे रेखा को लंबाए बिना—बड़ा कर दो। सम्राट् की स्पष्ट शब्दों में कही भी शर्त को समझे बिना कई सभ्यों ने खटिका से रेखा को लम्बी कर बढ़ाने का मिथ्या प्रयत्न किया। परन्तु सम्राट् ने अपनी शर्त की स्मृति करा कर उन्हें वहीं रोक दिया। अन्त में बीरबल उठा। उसने पहली रेखा के निकट ही एक अन्य रेखा खेंच दी, जो लंबाई में पूर्व रेखा से छोटी थी। पश्चात्, सम्राट् को संबोधित कर बीरबल ने पहले दूसरी रेखा के प्रति संकेत कर कहा—दोनों रेखाओं में यह रेखा छोटी है या बड़ी? सम्राट् ने कहा—छोटी। पश्चात् प्रथम रेखा के प्रति अंगुली कर बीरबल ने प्रश्न किया—और यह? सम्राट् ने उत्तर दिया—बड़ी। बीरबल ने कहा—देखिए, पहली रेखा को हाथ लगाए बिना ही, आपकी शर्त का पालन करते हुए मैंने उसे बड़ा बना दिया। और सम्राट् ने संतोष व्यक्त किया।

किसी दोष के, किसी गुण-विशेष के क्षय-वृद्धि से इतर दोष के विपरीत गुण-विशेष की वृद्धि या क्षय होता है-होता-सा है—यह नियम इस दृष्टान्त से स्पष्ट समझा जा सकता है। दो विरोधी गुण तुल्यबल हों तो अपने परस्पर अभिभव करने के स्वभाव से वे एक-दूसरे को दबाए रखते हैं। दोनों में

किसी भी गुण की न वृद्धि होती है, न ह्रास। इस प्रकार तत्तत् दोष के गुरु-लघु, उष्ण-शीत, रूक्ष-स्निग्ध, मन्द-तीक्ष्ण, द्रव-सान्द्र, सर-स्थिर, खर-श्लक्षण, सूक्ष्म-स्थूल, विशद-पिच्छिल तथा मृदु-कठिन इन प्रमुख तथा अन्य गौण गुणों का साम्य शरीर में स्थिर रहता है—परिणामतया दोष भी शरीर में समावस्था में रहते हैं। कारण, इन गुणों का समुदाय ही तो दोष हैं। परन्तु इनमें किसी गुण की वृद्धि हो गयी तो जैसे छोटी रेखा की तुलना में पहली रेखा बड़ी होती है वैसे क्षीण गुण के कारण उसका विरोधी गुण वस्तुतः वृद्धि को प्राप्त न होते हुए भी उसका बल बढ़ जाता है। इसी प्रकार अपने वर्धक कारण के सेवन से किसी गुण की वृद्धि हुई हो तो विरोधी गुण-विशेष के क्षय के कारणों का सेवन न किया होने पर भी उसका बल न्यून होने से उसकी क्षीणता के लक्षण व्यक्त होते हैं। यथा, उक्त उदाहरण में दूसरी रेखा बड़ी खेंच दी जाए तो उसकी तुलना में पूर्वाङ्कित रेखा वस्तुतः छोटी न होने पर भी छोटी हो जायगी। गुण-विशेष की वृद्धि या क्षय के कारण कोई भी हों—उसका वृद्धि-क्षय अपने स्वतन्त्र कारणों से हो, किंवा विरोधी गुण का क्षय या वृद्धि होने से हुआ हो—परिणाम यह होता है कि उस गुण वाले दोष की वृद्धि या क्षय होता है।

इस प्रकरण से हम अन्य एक सिद्धान्त भी समझ सकते हैं। जैसे दोषों के कतिपय गुण परस्पर-विरोधी होते हैं, जिनके कारण उनके अपने-अपने प्राकृत कर्म तो हुआ ही करते हैं, साथ ही जैसा कि ऊपर कहा, विरोधी गुणों का साम्य बना रहता है, वैसे दोषों के कुछ गुण परस्पर-सदृश भी होते हैं। यथा, अम्ल गुण कफ का भी है, पित्त का भी, शीत गुण कफ का भी है वायु का भी। इन समान गुणों की वृद्धि या ह्रास करने वाले कारणों का अतियोग हो तो वृद्धि-क्षय किस दोष के होंगे यह प्रश्न है। इसका उत्तर यह है कि, जिस गुण-विशेष का अतियोग हुआ है उसके साथ अन्य भी कई गुणों का अतियोग होना संभव है। सब गुण मिलकर जिस दोष के गुणों के साथ अधिक साम्य रखने-वाले होंगे उस दोष का ही प्रकोप प्रधानतया होगा। यथा, अम्ल के साथ गुरु, स्निग्ध आदि गुणों का भी अति सेवन किया जायगा तो मुख्य प्रकोप ये गुण जिसमें अधिक हैं उस कफ का प्रकोप होगा। परन्तु, अम्ल गुण पित्त का भी है, किंचित् स्निग्धता भी पित्त में होती है, इन कारणों से पित्त का भी प्रकोप होगा ही, परन्तु स्वल्प मात्रा में। इसी प्रकार क्षयकारक कारण अनेक गुणों को क्षीण करने वाले होंगे तो जिस दोष के अधिक संख्यक गुणों का क्षय होगा उसकी क्षीणता तथा तज्जनित रोग प्रधानतया शरीर में व्यक्त होंगे। शेष, जिस दोष के अल्पसंख्यक गुण क्षीण होंगे उस दोष का भी क्षय तो अवश्य होगा, किन्तु प्रधान दोष से अल्प प्रमाण में। उससे भी तत्तत् लक्षण और रोग उत्पन्न होंगे, परन्तु वे उतने बलवान् न होंगे।

वाचक समझ सकते हैं, दोषों के गुणपरक वृद्धि-क्षय की यह चर्चा करते हुए हम संप्राप्ति के प्रकरण में पहुँच गए हैं। वृद्धि या क्षय करने वाले आहार-विहारादि कारणों के योग से जिस दोष के अधिकांश गुणों की वृद्धि (कोप) या क्षय होगा, उसीके कोप या क्षीणता के लक्षण अधिक संख्या में रोगी में उपलब्ध होंगे। वही प्रधान दोष कहा जायगा। उसके द्वारा उत्पादित लक्षण-समुच्चय जिस रोग के होंगे वही प्रधान रोग माना जायगा। शेष जिस दोष के लक्षण संख्या तथा बल में न्यून होंगे उस दोष को अप्रधान कहा जायगा। उससे उत्पादित लक्षण जिस रोग के होंगे वह रोग भी अप्रधान कहा जायगा। इसी अप्रधान रोग को **उपद्रव** भी कहा जाता है। यह प्रायः प्रधान रोग के उत्पन्न होने के पश्चात् अभिव्यक्त होता है। हम जान चुके हैं कि, दोनों दोषों के वैषम्य तथा उनसे उत्पादित लक्षणों किंवा रोगों की उत्पत्ति का कारण तो एक ही था, यथा अम्ल द्रव्यों के विशेष सेवन से प्रधानतया कफ और अल्पतया पित्त का कोप हुआ हो तो अम्लगुण विशिष्ट द्रव्यों, देश तथा काल का अतियोग यह एक ही कारण दोनों दोषों के कोप तथा तज्जनित व्याधि का है। परिणामतया, यह भी समझा जा सकता है कि मूल कारण 'अम्लत्व' को लक्ष्य में रखते हुए, साथ ही, कफ के प्रकोपक अन्य गुणों की भी निदान-परिवर्जन उपशय—सेवन, संशमन, संशोधन के रूप में चिकित्सा करते हुए, जो क्रिया की जायगी वह कफ के साथ पित्त को भी समावस्था में लाएगी ही। परिणाम में, मुख्यतया कफ को लक्ष्य में रखकर किया गया यह उपचार कफज प्रधान रोग के साथ अप्रधान, अनुबन्ध या उपद्रवभूत पैत्तिक रोग का भी शमन करेगा ही। इसी से उपद्रव के लक्षणों में एक लक्षण है कि उपद्रव की पृथक् चिकित्सा नहीं की जाती। प्रधान रोग की चिकित्सा से ही उसकी भी निवृत्ति हो जाती है। परन्तु यह नियम प्रायिक है। उपद्रव

बलवान् हो तो कभी उसकी पृथक् चिकित्सा भी करनी ही पड़ती है।

इस चर्चा से एक और छोटी-सी बात समझी जा सकती है। उपद्रव का अंग्रेजी पर्याय प्रायः 'कांप्लीकेशन' दिया जाता है। परन्तु काम्प्लीकेशन में पश्चाद्भाविता को छोड़कर उपद्रव के साथ कोई साधर्म्य नहीं होता। कॉम्प्लीकेशन का कारण और चिकित्सा भी मूल रोग से सर्वथा भिन्न होते हैं। यथा, टायफॉयड के पश्चात् मलेरिया हुआ हो तो दोनों के निदान एवं चिकित्सा में कुछ सादृश्य नहीं होता। उसे 'कॉम्प्लीकेशन' कह सकते हैं, उपद्रव नहीं। आयुर्वेद के मत से वह एक रोग से अन्य रोग की उत्पत्ति का उदाहरण 'कथंचित्' हो सकता है। परन्तु एक रोग से रोगान्तर की उत्पत्ति में भी संप्राप्ति का सातत्य तो रहता ही है यथा ज्वर से रक्तपित्त की उत्पत्ति में ज्वरारम्भक पित्त का कोप...इत्यादि। किं बहुना, उपद्रव उपद्रव है, कॉम्प्लीकेशन कॉम्प्लीकेशन। दोनों का पर्यायतया व्यवहार उचित नहीं प्रतीत होता।

छात्रजनोपयुक्त इतना प्रासंगिक विवेचन कर इसी प्रयोजन से एक अन्य अवान्तर विषय का विचार करता हूँ। ऊपर कहा है कि, पुरीष में जो स्नेह होता है, जिसके कारण उसकी यथाकाल ससुख प्रवृत्ति होना सुगम होता है—उदावर्त की भीति नहीं रहती, वह—मज्जा धातु का मल है। विशेषतया, तरुणावस्था में शुक्र का संचलन या प्रवृत्ति होती रहने से उसका क्षय होता रहता है। परिणामतया, रसधातु इतर धातुओं की अपेक्षया शुक्र के ही पूरण में सविशेष व्यापृत होता है, जिससे उनकी (इतर धातुओं की) यथावत् पुष्टि नहीं होती। इसका प्रथम परिणाम मज्जा धातु पर होता है। धातु-विशेष के वृद्धि-क्षय का परिणाम सुश्रुत ने सू. सु. १५-१८ में दर्शाया है। उसकी टीका में डल्ह्नाचार्य ने स्पष्ट कहा है—**तथा परोऽपि क्षीणः पूर्वं क्षपयति**—अर्थात् शुक्रादि पर धातु भी क्षीण होकर मज्जा आदि पूर्व धातु को क्षीण करता है। क्षयज राजयक्ष्मा में इसी स्थिति को प्रतिलोम क्षय नाम दिया है। सो शुक्र का क्षय सुलभ होने से मज्जा का भी क्षय उक्त रीत्या तारुण्य में होता है। किसी मूल धातु का क्षय होने से उस के उपधातु तथा मल का भी क्षय होता है यह आयुर्वेद का नियम है। कारण, रस धातु का जितना प्रमाण उस धातु की पुष्टि के लिए उपलब्ध होता है उसका सामान्य से अधिक प्रमाण उस धातु के क्षीण होने के कारण उसीके पोषण में जाता है। शेष अंशउ पधातु तथा मल की पुष्टि के लिए अपर्याप्त होने से उस धातु के उपधातु तथा मल का भी क्षय होता है। प्रस्तुत उदाहरण में मज्जा की क्षीणता के कारण उसके मलभूत पुरीषगत स्नेह की भी क्षीणता स्वभावतया होती है। पुरीष का स्नेहांश क्षय को प्राप्त होने से वह रूक्ष होता है। रूक्षीभूत पुरीष में रौक्ष्य के कारण वायु का अधिकतर प्रकोप होता है। कुपित वायु अपने शोषणात्मक स्वभाव से पुरीष को और भी शुष्क कर देता है। इस प्रकार उदावर्त (विबन्ध) या कब्ज की संप्राप्ति तारुण्य में होती है। उसका यशस्वी उपचार शुक्रधातु की वृद्धि करनेवाले द्रव्यों के मात्रावत् सेवन से होता है या नहीं, इसका दर्शन कर सुचिकित्सक इस विषय को अधिक विशद कर सकते हैं।

मज्जा का मल जैसे पुरीष की स्निग्धता का कारण है वैसे उससे चक्षु और त्वचा की भी स्निग्धता रहती है। जैसे प्रायः हम भूल जाते हैं कि मुख में क्लेद या आर्द्रता रखनेवाला द्रव्य एक है तथा उसमें मृदुता तथा स्निग्धता का कारणभूत द्रव्य जो रसनेन्द्रिय को मृदु रखता हुआ रसों के ग्रहण का कारण है वह तद्भिन्न द्रव्यान्तर है, वैसे त्वचा के प्रकरण में भी प्रायः भुला दिया जाता है कि त्वचा की क्लिन्नता (भीनापन) का कारणभूत द्रव्य तथा उसमें स्नेह और मार्दव का निमित्तभूत द्रव्य पृथक्-पृथक् हैं। आधुनिक क्रियाशारीरविदों का मत है कि, चर्वणवश अणुभाव को प्राप्त द्रव्य लालारस-मिश्र हो जब रसनेन्द्रिय के (स्वादांकुरों के) संस्पर्श में आते हैं तो रस का बोध होता है। इस मत के वशीभूत हो आयुर्वेद के व्याख्याता भी लाला को ही आयुर्वेद का बोधक कफ मान लेते हैं। परन्तु बोधक कफ लाला से भिन्न होता है। असा ताम्बूल का अतियोग हो तो उसके चूने और कत्थे सदृश कफ के लेखन द्रव्यों के कारण किंवा खदिरादि वटी आदि औषधों के अतिमात्र सेवनवश, अथवा उष्ण स्पर्श द्रव्यों के संसर्गवश जिह्वामूलगत कफ का लेखन या पचन हो कर क्षय हो जाता है उस काल भी लाला तो स्वमानावस्थित (सम-प्रमाण) होती ही है तथापि जिस पिच्छिल एवं रस बोध के यथार्थ कारणभूत द्रव्य के क्षय के कारण रसों का बोध नहीं होता, अच्छी से अच्छी वस्तु का भी कोई स्वाद ही नहीं प्रतीत होता वह द्रव्य आयुर्वेद का बोधक कफ है।

नव्य क्रियाशारीर में मुख की म्यूकस ग्लैण्ड्स से उत्पन्न होने-वाला 'म्यूकस', यत्सत्यं, आयुर्वेद का बोधक कफ है तथा लाला-ग्रन्थियों (सेलीवरी ग्लैण्ड्स) द्वारा उदीरित लाला या सेलाइवा आयुर्वेद का मुखोदक या लाला है। लाला तथा कफ के प्रकोप का भी पृथक् नामाभिधान होता है, जो इन द्रव्यों के पार्थक्य का द्योतक है। लालास्राव का अतिरेक हृल्लास या प्रसेक कहाता है तथा कफ का अतिमात्र स्रवण कफष्ठीवन या कफप्रसेक कहाता है। दोनों में उपचार भी भिन्न हैं। अधिक विचार विज्ञ वाचक इसी दिशा से कर ही सकते हैं। मुख के सदृश त्वग्गत दो पृथक् द्रव्यों को भी एक मानने की भ्रमणा प्रायः देखी जाती है। त्वचा में क्लेद या आर्द्रता (भीनापन) जिस द्रव्य के कारण होती है वह एक द्रव्य है। यह स्वेद है तथा आयुर्वेद-मत से मेदोधातु का मल है। त्वचा में स्निग्धता जिसके कारण रहती है वह इतर द्रव्य है। यह एक मल है तथा मज्जा का मल माना जाता है—**मज्ज्ञः स्नेहोऽक्षिविट् त्वचाम्।** आधुनिक क्रियाशारीर में भी एक प्रकार की ग्रन्थियों से स्वेद उत्पन्न होता है तथा अन्य ग्रन्थियों से स्निग्ध द्रव्य विशेष (सीबम) क्षरित होता है। प्रथम प्रकार की ग्रन्थियों के स्वेट ग्लैण्ड्स आदि नाम हैं तथा द्वितीय प्रकार की ग्रन्थियाँ सिबेशस ग्लैण्ड्स कही जाती हैं।

द्रव्यों की यह भिन्नता समझना सार्थक है। इसका एक उदाहरण इसी प्रकरण में उपयोगी है। तरुण वय में मज्जा के क्षय से उसके मल का क्षय हो कर पुरीषगत स्नेह क्षीण होने से उदावर्त होता है, जो तरुण पुरुषों का प्रायोभावी रोग है, यह हम ऊपर देख चुके हैं। तारुण्य में ही प्रायः देखा जानेवाला एक अन्य रोग यौवनपिडका (अंग्रेजी नाम–एक्नी वल्गेरिस या केवल एक्नी; मुख-दूषिका) है। मज्जा के क्षय का ही परिणामभूत यह भी रोग है। होता यह है कि, मज्जा के क्षय से पुरीषगत स्नेह के सदृश त्वग्गत स्नेह भी क्षीण होता है। मलों के क्षय के लक्षणों में एक लक्षण मलों का संग (अप्रवृत्ति) भी है। देखिए, मलों के वृद्धि-क्षय के ज्ञान के उपायभूत लक्षणों का निर्देश करते चरकाचार्य कहते हैं—

मलवृद्धिं गुरुतया लाघवान्मलसंक्षयम्।
मलायनानां, बुध्येत संगोत्सर्गादतीव च ॥

—च० सू० ७।४३

तात्पर्य—किसी मलद्वार में गुरुता की प्रतीति (सेन्स ऑफ हेवीनेस) हो तो उस मल की वृद्धि हुई है यह समझना चाहिए। इसके विपरीत, किसी मलद्वार में लघुता—हलकापन—मालूम हो तो वह मल विशेष क्षय को प्राप्त हुआ है, ऐसा निदान करना चाहिए। मलों के क्षय-वृद्धि जानने का अन्य भी प्रकार है। किसी मल का अत्यधिक संग हो—उसकी प्रवृत्ति न हो तो उसका क्षय हुआ समझें, एवं मल-विशेष की अत्यधिक प्रवृत्ति देखी जाए तो उसकी वृद्धि हुई है, यह निश्चय करें।—**संगोत्सर्गादतीव चेति अतीव संगादप्रवृत्तेर्मलक्षयम्, अतीवोत्सर्गान्मलवृद्धिं जानीयादित्यर्थः**—चक्रपाणि। इस नियम के अनुसार किसी मल की प्रवृत्ति न होती हो तो उसकी क्षीणता का अनुमान होता है। इसके विपरीत सुगमतया यह सिद्धान्त समझा जा सकता है कि, किसी मल का क्षय हुआ हो—उसका प्रमाण जितना चाहिए उतना न हो—तो उसकी प्रवृत्ति यथावत् होती नहीं। उदाहरणतया, पुरीष की पुष्टि जिन द्रव्यों से हो ऐसे द्रव्यों का हीनयोग हो तो पुरीष की उत्पत्ति सप्रमाण होती नहीं। परिणाम में उसकी यथावत् प्रवृत्ति नहीं होती। पुरीष की यथावत् प्रवृत्ति न होने का ही नाम उदावर्त या कब्ज है। इस रोग का अनुशीलन जिन्होंने किया है वे सम्यक् जानते हैं कि इसके कारणों में एक मलक्षय भी है। उदावर्त का यह कारण हो तो ऐसे द्रव्यों का यथेष्ट प्रमाण में सेवन करने की सलाह दी जाती है जो पुरीष की मात्रा में वृद्धि करें—जैसे चोकर, भाजी इत्यादि।

मल के क्षय का परिणाम मल के संचय आदि के रूप में होता है। पुरीष का मलद्वार के समीप स्थित जो भाग पुरीष के क्षय के कारण प्रवृत्त नहीं होता वह वायु एवं पुरीषाग्नि के शोषण और पाचन स्वभाव के कारण और भी शुष्क तथा पिण्डीभावापन्न होता है। यह स्थिरतर हो जाता है—शुष्कता के कारण ही इसकी प्रवृत्ति में और भी रोध उत्पन्न होता है। रुद्ध हुआ यह पुरीषाग्र अपने पीछे स्थित पुरीष की गति को भी अवरुद्ध करता है। सुचिकित्सा से यह क्रम भङ्ग न हो जाए तब तक उदावर्त इस प्रकार मूलबद्ध होता जाता है। क्षीणता को प्राप्त पुरीष के कारण अनुगामी पुरीष के अवरोध के इस दृष्टान्त से हम अब प्रस्तुत विषय को समझने का प्रयास करते हैं।

त्वचा का स्नेह जो अपने द्वार-विशेष से त्वचा पर आता था, उस द्वार से इस स्नेह की प्रवृत्ति भी क्षीणता के कारण उसी प्रकार रुद्ध हो जाती है जैसे क्षीण हुए पुरीष के कारण पहले मलद्वार पर स्थित पुरीष की होती है। पश्चात् जैसे अनुगामी पुरीष भी पुरोगामी पुरीष द्वारा अवरुद्ध होता है वैसे त्वग्गत स्नेह के पुरोगामी शुष्कीभूत अंश द्वारा पीछे से आनेवाले स्नेह का भी अवरोध होता है। द्वार बन्द होने से इस प्रकार त्वग्गत स्नेह अपने स्रोत में ही संचित होता है तथा शुष्कता को प्राप्त होता रहता है। इस प्रकार संचित एवं शुष्कीभूत यह त्वग्गत स्नेह की गुटिका ही है जो यौवनपिडका (मुँहासे) आदि नामों से अभिहित होती है। नव्य प्रत्यक्षानुसार मुख पर स्नेह ग्रन्थियाँ संख्या में अधिक होती हैं, अत: पिडकाएँ भी मुख पर ही प्रायः होती हैं। यौवन पिडकाओं की उपरिनिर्दिष्ट संप्राप्ति में अन्त को इनका संबन्ध यौवन-सुलभ शुक्रस्खलन या शुक्र की स्वस्थानच्युति से हम देख आए हैं। शुक्र के इस प्रकार हुए क्षय के कारण ही अन्त में तरुणों में उदावर्त या कब्ज का आविर्भाव किसी के लिए नवीन और विस्मयावह हो सकता है, परन्तु यौवन-पिडकाओं का शुक्र के साथ यःकश्चित् संबन्ध सिद्ध वैद्य सदा से मानते आए हैं। कई आधुनिक विज्ञानवेत्ता भी यौवनपिडका में शुक्रोत्पादक ग्रन्थियों के अन्तःस्राव (पर ओज) इत्यादि का नाना प्रकार से उपयोग करते हुए मन में इसी धारणा को पुष्टि दे रहे देखे जाते हैं। विचारक चिकित्सक यौवनपिडका की इस संप्राप्ति को लक्ष्य में रख कर संप्राप्तिभङ्गमूलक उपचार को अपनाते हुए उसके फलाफल का अनुभव प्राप्त करें, यही अभ्यर्थना है।

किसी भी कारण से पुरीष पक्वाशय में स्थिर हो जाए तो पुरीषाग्नि के स्नेह और क्लेद के पाचक स्वभाव तथा वायु के क्लेद शोषक स्वभाव का प्रभाव पुरीष पर सामान्य अवस्था से अधिक मात्रा में होता है। परिणामतया, उसका द्रवत्व न्यूनतर होता जाता है। इससे उसमें क्रमशः शुष्कत्व और स्थिरत्व उत्पन्न होते जाते हैं। थोड़ा रुक कर इस बात को विशद कर लें।

हमने ऊपर देखा है कि आयुर्वेद में गुणों का निर्देश गुरु-लघु, शीत-उष्ण आदि विरुद्ध गुण-धर्म वाले युग्मों के रूप में किया है। इसी प्रकार एक अन्य आधार पर भी गुणों के युग्म बनाए जा सकते हैं। देखते हैं कि, कई गुण परस्पर सहचारी होते हैं। अमुक एक गुण द्रव्य-विशेष में हो तो दूसरा गुण-विशेष उस द्रव्य में होता ही है। यथा, द्रव के साथ सर (गमनकर्मा) गुण रहता ही है। इसके विपरीत शुष्क के साथ स्थिर गुण रहा करता है। गुरु के साथ सान्द्र (घन) गुण का साहचर्य होता है। लघु द्रव्य प्रायः सुषिर (सच्छिद्र ; न्यून घनत्ववाला) होता है। विशेषतया, कफ में मन्द गुण के साथ पिच्छिल भी होता है। अतएव, हृदय तथा रस-रक्त की गति मन्द होने की दशा में पैच्छिल्य गुण भी उद्रिक्त होता है, जिससे रस-रक्त स्त्यानीभूत (जम गया हुआ ; कोएग्युलेटेड) हो कर स्थान भेद से हृच्छूल आदि रोग होते हैं।

सहचारी गुणों के निर्देश का इस प्रकरण में कुछ प्रयोजन है। मल, मूत्र, शुक्र, रक्त आदि द्रव्यों में द्रवत्व जितना हो उतना ही उनमें सरत्व या सरणशीलता होती है। मल में द्रवत्व की वृद्धि हो जाए तो सरणशीलता भी वृद्धि को प्राप्त हो कर अतिसार, प्रवाहिका तथा ग्रहणी नामक विकार उत्पन्न होते हैं। मूत्र में द्रवत्व की वृद्धि से उसका सरण अधिक होता है। प्रमेहों में कफ कारणभूत होता है—पर वह बहुद्रव ही—**बहुद्रवः श्लेष्मा दोषविशेषः**—च० नि० ४-६। इस द्रवत्व के कारण मूत्र में सरत्व भी रहता है—मूत्र की मुहुर्मुहुः प्रवृत्ति प्रमेहों में लक्षणतया रहती है। शुक्र में द्रवत्व हो (तरलता उसमें अधिक हो) तो सर या चल गुण अधिक होता है। उसमें स्तम्भन औषध दिए जाते हैं। यह स्थिति शुक्र के आधिक्य में या शुक्र में पित्त का द्रव गुण बढ़ कर स्थानसंश्रय कर ले तब देखी जाती है। दोनों स्थितियों का निदान कर पृथक् उपचार करना चाहिए। शुक्र के विषय में स्मरण रखना चाहिए कि शुक्र में वातकृत दुष्टि के कारण भी उसमें चलत्व आ जाता है। शुक्रगत वात के लक्षणों में इस दुष्टि का निरूपण इस रूप में किया है कि—इस विकृति में कभी-कभी शुक्र की अतिप्रवृत्ति होती है। दिन में या स्वप्नावस्था में किसी प्रकार के विचार हों या न हों शुक्र का स्खलन होता है। अथवा—व्यवाय काल में समागम के पूर्व ही या सौमनस्य के पूर्व ही शुक्रच्युति हो जाती है। किंवा यह भी स्थिति होना संभव है कि शुक्र गर्भशय्या में स्थित तो हो जाए, परन्तु न्यूनाधिक काल में बाहर आ जाए। शुक्र कितने काल में बाहर आता है इसके आधार पर रुग्णा में अनपत्यता, गर्भ का स्थित हो-हो कर स्राव या पात किंवा गर्भ प्रसव के अनन्तर

पुनः-पुनः मृत्यु को प्राप्त होना—यह वृत्तान्त उपलब्ध होता है। इन सब अवस्थाओं में यथावत् उपचार निदान-शुद्धिपूर्वक करना योग्य होता है। रक्त में द्रवत्व अधिक हो तो अवस्थाभेद से सरत्व दो-तीन रूपों में व्यक्त होता है। रक्त में द्रवत्व पाण्डुरोग में होता है। रक्तज रोगों में इसे शोणित क्लेद (हाइड्रीमिया) नाम दिया गया है। सरत्व के कारण अब्धातु त्वचा और मांस के मध्य संचित होता है। यह अवस्था शोथ नाम से प्रसिद्ध है। द्रवत्व ऐसे किसी अवयव में हो, जिस का संबन्ध बाह्य वायु-मण्डल से हो तो सर गुण उन अवयवों से स्राव-विशेष के रूप में व्यक्त होता है। यथा, पाण्डु रोग में अपत्यपथ से स्राव(श्वेत प्रदर का एक प्रकार)होता है। मुख में—मुखगत कला में—क्लेदाधिक्य हो तो सरत्व, हृल्लास या अतिलालास्राव के रूप में व्यक्त होता है। रस-रक्त में क्लेद का आधिक्य हो, साथ ही हृदय तथा अन्य रसवह स्रोत दुर्बल हों तो दोषों का हृदय की दिशा में सिराओं द्वारा गमन प्राकृतवत् नहीं होता—क्लेद आदि दोष पाद आदि अधःकाय में पादशोथ के रूप में संचित हो जाते हैं। शोथ की यह संप्राप्ति प्रमेहपिडकाओं के प्रकरण में सुश्रुताचार्य ने दी है। मूल वचन तथा उस पर डल्हन की टीका पादशोथ की संप्राप्ति को समझने की दृष्टि से विद्यार्थी के लिए अत्युप-युक्त हो सकती है। अतः यहाँ दी जाती है।—

रसायनीनां च दौर्बल्यात् नोर्ध्वमुत्तिष्ठन्ति प्रमेहिणां दोषाः। ततो मधुमेहिनामधःकाये पिडकाः प्रादुर्भवन्ति।

सु० चि० १२-८।

कुतः पुनरधोदेहे एव पिडकासंभव इत्याह-रसायनीनां च दौर्बल्यादित्यादि। रसायनीनामित्यत्रादिशब्दो लुप्त-निर्दिष्टो द्रष्टव्यः। तेन रसपित्तकफशोणितवहानां धमनी-नाम् इत्यर्थः। दौर्बल्यादिति सर्वशरीरगतस्य द्रवधातोः अपानव्यानाभ्यामधोऽनुलोम्यमानत्वाद् रसादि वहानामपि धमनीनामध एव बलवत्त्वं, न तु ऊर्ध्वमित्यर्थः—डल्हन।

रसायनियों की दुर्बलता अधःकाय में पिडकाओं की उत्पत्ति में हेतु होती है। मूलोक्त 'रसायनी' शब्द का अर्थ विशद करते डल्हन कहते हैं कि रस, पित्त, कफ और शोणित इनका वहन करनेवाली धमनियाँ भी यहाँ रसायनी शब्द से विवक्षित हैं। डल्हन ने इसके लिए रसायनी शब्द के आगे संस्कृत भाषा की परंपरा के अनुसार लुप्त हुए आदि शब्द का ग्रहण किया है। 'रसायन्यादीनाम्' इस शब्द के स्थान पर आदि शब्द का लोप कर तन्त्रकार ने 'रसायनी-नाम्' शब्द का व्यवहार किया है, यह डल्हन जी का मन्तव्य है। किंवा, जैसा कि, चक्रपाणि ने एक स्थान पर कहा है, रस शब्द गत्यर्थक रस धातु से बना है। अतः शरीर में जो भी गतिशील रक्तादि द्रव्य है उसका रस शब्द से क्वचित् ग्रहण किया जा सकता है।—**रसतीति रसो द्रवधातुरुच्यते। तेन रुधिरादीनामपि द्रवाणां ग्रहणं भवति**—च० चि० १५।३६ पर चक्रपाणि। रसायन शब्द में 'रस' शब्द इस व्यापक अर्थ में ही ग्राह्य है। रसायन द्रव्य तत्तद् गतिशील शारीर द्रव्य या मन का वहन करनेवाले स्रोत में किसी भी कारणवश हुए रोध को दूर करते हैं। रोध के दूर होने से बाह्य द्रव्य का अयन समीचीनतया होता है। इस प्रकार रस-रक्तादि के वहन के सुधरने से शरीर की पुष्टि यथावत् होती है तथा, मलों के वहन (अयन) करनेवाले स्रोतों में मलों का अयन यथास्थित होने से शरीर में दोषों का संचय और प्रकोप नहीं होने पाता। अतएव रसायन द्रव्य या उपचार व्याधि को नष्ट करते तथा आयु को दीर्घ बनाते हैं। मन का अयन सम्यक् होने से मन का अवसाद दूर हो कर जो सुखद परिणाम होता है उसकी विशेष व्याख्या की आवश्यकता ही नहीं। ऐसे प्रकरण में रसायनी शब्द भी वाहक स्रोतमात्र के लिए प्रयुक्त हुआ समझना चाहिए।

किं बहुना, ये रसायनियाँ, जिनमें रस के अयन का मूलभूत हृदय भी समाविष्ट है, प्रमेही पुरुषों में दुर्बल हुई होती हैं। व्यान और अपान वायुओं की प्रेरक क्रिया हृदय-सहित सर्व रसायनियों पर हो कर रस, रक्त, स्वेद, मल, मूत्र आदि द्रव धातुओं का शरीर में सर्वत्र विक्षेपण होता है तथा उन्हीं की प्रेरणा से मलों की बहिःप्रवृत्ति—निर्हरण होता रहता है। प्रमेह में रसायनियाँ दुर्बल हुई होने से रस-रक्तादि द्रव धातु तथा उनके अन्तर्गत दोष ऊपर की दिशा में आ नहीं सकते। परिणामतया, प्रमेही पुरुषों के अधःकाय में पिडकाएँ होती हैं। इस प्रकरण से फलितार्थ यह निकलता है कि पाण्डु रोग आदि में भी रस-रक्त-मांस के क्षय से हृदय तथा रसायनियाँ दुर्बल होती हैं। अतएव, पाण्डु रोग की पूर्वरूपावस्था में ही हृदय स्पन्दन के रूप में हृदय की दुर्बलता अभिव्यक्त होती है तथा आगे पादशोथ, सर्वाङ्गशोथ आदि होते हैं। विद्वान् वाचकों से इस वचन पर विचार करने की विनति करता हूँ।

प्रस्तुत विषय यह है कि द्रवगुण के साथ सरगुण रहता है। अतः पुरीष में द्रवत्व तथा स्निग्धत्व रहे तो पुरीष-प्रवृत्ति ससुख होती है। अन्य द्रव द्रव्यों में भी इसी प्रकार सरणशीलता रहती है। द्रव के विपरीत गुण का नाम शुष्क है। स्थिर गुण इसका सहचारी है। द्रव द्रव्य में जैसे-जैसे द्रवत्व न्यून होता जाता है—जैसे-जैसे उसमें शुष्कत्व आता जाता है—वैसे-वैसे उसमें स्थिरत्व आता जाता है। किसी भी कारणवश पुरीष द्रव से सान्द्र, सान्द्र से शुष्क, शुष्क से ग्रथित और ग्रथित से वृत्त होता जाता है। इसी क्रम से उसमें स्थिरता भी आती है। वह प्रायः मलद्वार से प्रवृत्त होने के स्वभाव का परित्याग कर देता है। पुरीष इस अवस्था को प्राप्त हो तो इसे उदावर्त कहा जाता है। पुरीष के समान मूत्र का वर्त हो तो सिकता, शर्करा या अश्मरी रोग शुष्क हो कर वर्तुलीभूत मूत्र अर्थात् मूत्र के घन द्रव्यों के हैं। सिकता की भी पूर्वावस्था स्फटिकों की प्रवृत्ति है। इसे अंग्रेजी में क्रिस्टल यूरिआ कहते हैं। ये स्फटिक केवल अणुवीक्षण यन्त्र से देखे जा सकते हैं। इनके द्वारा क्षणन होने से क्षत हो कर मूत्रमार्ग से रक्त की प्रवृत्ति होती है। मैं समझता हूँ यह प्राचीनों का रक्तमेह है। क्रिस्टल यूरीआ में उशीरासव, चन्दनासव आदि देने से रोग शान्ति होती देखी गयी है—दाह तथा रक्त प्रवृत्ति दूर होती है। सुविधा संपन्न वैद्य इस प्रस्ताव पर सक्रिय विचार करें। शेष, अश्मरी आदि में वात का स्थान विचारणीय है, इसके लिए गुदगत वात के लक्षण प्रस्तुत करता हूँ, इनमें अश्मरी और शर्करा की भी गणना है।—

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्कराः।
जङ्घोरुत्रिकपात्पृष्ठरोगशोषौ (थौ) गुदस्थिते॥
—च० चि० २८।२७

पुरीष, मूत्र और वायु का ग्रह, शूल, आध्मान, अश्मरी, एवं पृष्ठ, त्रिक, ऊरु, जङ्घा तथा पैर में वेदना और शोष (या शुष्कता) ये लक्षण गुदगत वात के हैं। अश्मरी के अतिरिक्त पृष्ठ से पाद पर्यन्त शूल पर भी मैं वाचकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। एक या दोनों पैरों में में शूल देख कर गृध्रसी की शंका चिकित्सक को होती है। पर गृध्रसी नाड़ी के मार्ग पर यह वेदना प्रायः नहीं होती। यह वेदना कभी गर्भिणी में गर्भ के पीडनवश उदावर्त होने से भी होती देखी जाती है। शुद्ध निदान कर मल वातानुलोमन उपचार इसमें यशस्वी होता है। यथा यवानी, सौवर्चल, हिंगु, शतपुष्पा आदि के क्वाथ में एरण्ड तैल दिया जाना किंवा आवश्यकता हो तो भेदनार्थ कटुकी देना चाहिए।

(सावशेष)

भारत में चिकित्सा-व्यवसाय के नैतिक-पतन पर कुछ मननीय विचार

मूल लेखक--डॉक्टर सुमन्त मेहता

अनुवादक--श्री शंकरदेव विद्यालंकार

(डॉक्टर सुमन्त मेहता गुजरात के लब्धप्रतिष्ठ समाजसेवक, देशभक्त और साहित्य-सेवक हैं। गुजरात के आधुनिक सांस्कृतिक समुत्थान में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे वर्षों तक बड़ौदा के प्रधान चिकित्सालय के अधिकारी और चिकित्सक रहे हैं। चिकित्सा-व्यवसाय और समाज-सेवा के अपने दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर इस व्यवसाय के नैतिक-अधःपतन पर उन्होंने जो स्वस्थ, सुचिन्तित और मननीय विचार प्रस्तुत किये हैं, वे देश के समस्त चिकित्सकों और समाज-सेवियों के लिए पथ-प्रदर्शक हैं।
--सम्पादक)

कुछ समय हुआ, बम्बई में चिकित्सा-व्यवसाय करने-वाले कुछ-एक डॉक्टरों की एक सभा समवेत हुई थी। सभा में महत्त्वपूर्ण चर्चाएँ हुई थीं। सभा के अध्यक्ष स्थान पर अखिल भारतीय मेडिकल कौंसिल के सभापति डॉक्टर सी० एस्० पटेल विराज रहे थे। इस सभा का वृतान्त "टाइम्स ऑफ इण्डिया" पत्र में प्रकट हुआ था।

डॉक्टर यू० बी० नारायणराव बंबई में गत चालीस वर्ष से चिकित्सा-व्यवसाय कर रहे हैं। उन्होंने उक्त सभा में जरा कठोर भाषा में निम्नलिखित पाँच बातें प्रस्तुत की थीं।

(१) क्या डॉक्टरी व्यवसाय में घोर स्पर्धा नहीं चल रही?

(२) विविध चिकित्सा-विषयों के निष्णात (लुटेरों की मण्डली की तरह) टोली बना कर अपना धंधा चला रहे हैं। यह प्रथा समाज के लिए तथा रोगियों के लिए क्या ठीक है?

(३) हम लोग (डॉक्टर) अपनी अनुभवसिद्ध और ब्रिटिश मेडिकल कौन्सिल द्वारा प्रमाणित औषधियों (ब्रिटिश फार्मेकोपिया) का ज्ञान भूल कर क्या केवल इन्जेक्शन देने वाले नहीं बन गये?

(४) विदेशी और स्वदेशी पेटेण्ट दवाएँ बनानेवाली फार्मेसियों के क्या हम लोग दलाल नहीं बन गये हैं?

(५) अपने उच्च ध्येय और नैतिक दृष्टि को परे रख कर क्या हम केवल कमाई बढ़ाने में ही नहीं लग गये हैं?

इन प्रश्नों के विषय में अनुभवी और वयोवृद्ध डॉ० नारायणराव ने निम्नलिखित विचार प्रकट किये—

(१) बंबई के डॉक्टरों में अवांछनीय प्रतियोगिता चल रही है।

(२) डॉक्टर लोग टोली बना कर अपने साथियों को काम खोज देते हैं, इस कारण रोगियों को व्यर्थ ही बड़ा भारी खर्च भोगना पड़ता है।

(३) सामान्य डॉक्टर लोग तथा विशेषज्ञ (स्पेशियलिस्ट) प्रमाणभूत ब्रिटिश फार्मेकोपिया की पर्वाह न करके प्रायः कीमती पेटेण्ट दवाइयाँ लिख देते हैं। डॉक्टरों ने आधुनिक जनता को बिना कारण ही, औषध-सेवन-परायण बना डाला है, जिससे लोग डरपोक और अधीर (Hypochondriac) बन गये हैं।

(४) ब्रिटिश फार्माकोपिया में अच्छी, सस्ती और सरल औषधियाँ हैं, तथापि डॉक्टर बहुत मँहगी और अधिकांश में परदेशी दवाइयाँ ही सूचित करते हैं।

भारतीय डॉक्टर लोग अधिकतर जिन दवाइयों के नुस्खे सूचित करते हैं, उनकी सूची देख कर यूरोप और अमेरिका के डॉक्टर तो विस्मित हो जायं। आजकल नई-नई अमुक कृमिविनाशक (एन्टी-बायोटिक) औषधियाँ निकली हैं। अनेक बार ये दवाएँ खतरनाक परिमाण में व्यवहार में लाई जाती हैं। पेनिसिलीन-सदृश दवाइयों का अनावश्यक उपयोग हो रहा है।

(५) चिकित्सा-व्यवसाय के नैतिक स्तर को ऊँचा करने की बहुत आवश्यकता है।

इस सभा में बंबई के कई प्रसिद्ध डॉक्टर उपस्थित थे। सभी ने ऊपर कथित बातों का पूर्णतया समर्थन किया था। किसी ने भी स्पष्ट प्रमाण देकर यह नहीं कहा कि ये आक्षेप खोटे हैं। सभी को ऐसा प्रतीत हो रहा था कि चिकित्सा व्यवसायी लोग अशुद्ध मार्ग पर जा रहे हैं।

× × ×

मेरे पिता बंबई विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण हुए डॉक्टर थे। वे दस-एक बार विदेश भी हो आये थे। अतः वे यूरोप के प्रख्यात डॉक्टरों के सम्पर्क में भी आये थे। बचपन से ही मेरे मन पर उन्होंने यह प्रभाव डाला था कि चिकित्सा-व्यवसाय द्वारा अच्छी कमाई होती है और उसके द्वारा गरीब और अज्ञानी जनता की सेवा का बड़ा अवसर मिलता है। बंबई के मेडिकल कॉलेज में प्रविष्ट हो कर मैंने तीन वर्ष के अन्दर, अन्तिम परीक्षा के सिवाय, सभी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थी। उसके पश्चात् इंगलैण्ड जा कर वहाँ पर साढ़े तीन वर्ष अध्ययन करके सब परीक्षा उत्तीर्ण की। वहाँ के कॉलेज में मुझे ऐसे प्रख्यात और अनुभवी प्राध्यापकों के समीप तालीम पाने की सुविधा मिली, जिन प्राध्यापकों के सहायकों की पुस्तकें इंगलैण्ड तथा भारत में पाठ्य-पुस्तक के रूप में प्रचलित थीं। उसके अनन्तर एक वर्ष तक मैंने लन्दन में सार्वजनिक आरोग्यशास्त्र का अध्ययन किया। बड़ौदा के मुख्य चिकित्सालय में मैंने वर्षों तक काम किया। उसके साथ-साथ मैंने भारतीय आयुर्वेदशास्त्र का भी अध्ययन प्रारम्भ किया। उसमें विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए मैंने अहमदाबाद, बंबई, पूना, जयपुर, दिल्ली, लाहौर, बनारस और कलकत्ता आदि के विद्यालयों का अवलोकन किया और वहाँ के अध्यापकों और कविराजों (वैद्यराजों) के साथ चर्चाएँ कीं। अनुकूल संयोगों के परिणामस्वरूप पाटन (उत्तर गुजरात) में आयुर्वेद कॉलेज स्थापित करने का तथा उसके संचालन का सौभाग्य भी मुझे बीस वर्ष तक मिला है।

परन्तु मुझे स्वीकार करना चाहिए कि सन् १९२१ के पश्चात् यूरोपीय चिकित्साशास्त्र के साथ मेरा सम्बन्ध कम हो गया, यद्यपि आयुर्वेद कॉलेज के संचालक के रूप में उसका नवीनतम ज्ञान तो मुझे रखना ही पड़ता था। आयुर्वेद का मेरा अध्ययन सामान्य था तथापि त्रिधातु और त्रिदोष का वास्तविक अर्थ क्या है, रोग किस प्रकार उत्पन्न होते हैं, उनका निदान किस प्रकार करना चाहिए—इत्यादि विषयों में मुझे विशेष रुचि थी। इस लेख को लिखने के लिए अपने अधिकार के विषय में ऊपर की पंक्तियाँ मैंने लिखी हैं।

× × ×

संसार में प्रचलित सभी प्रकार के चिकित्साशास्त्रों का मूल आशय एक ही है—अपने आयुष्य की किस प्रकार रक्षा की जाय तथा शरीर को किस प्रकार नीरोग रखा जाय! भारतवर्ष में आज ऐसे भी थोड़े से आयुर्वेदज्ञ वैद्य हैं जो यह मानते हैं कि चरक, सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रन्थों में से चिकित्सा-सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सकता है। यूरोप में की गई गवेषणाओं के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसकी वैद्यों को परवाह नहीं है। "शुद्ध आयुर्वेद" ही सर्वोत्तम है और उसके साथ यूरोपीय विज्ञान को सम्मिलित करने से अलाभ होता है—इस चर्चा में उतरने की यहाँ आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यहाँ पर उसी चिकित्सा पद्धति के विषय में विचार किया जायगा जो पद्धति आज सारे जगत् में प्रचलित है।

वैज्ञानिक पद्धति में प्रत्यक्ष ज्ञान को बहुत महत्व दिया जाता है और इसी कारण शारीर (एनेटोमी तथा फिज़ियोलोजी) का गहरा अध्ययन करना पड़ता है। प्रयोगशाला में प्रयोग भी करने पड़ते हैं। तथ्य भले ही सर्वमान्य हों और औषधियाँ एक हजार वर्ष से व्यवहार में लाई जा रही हों—तथापि प्रयोगशालाओं में उनकी पर्यालोचना और पुनः परीक्षा होनी चाहिए—इस प्रकार की आधुनिक वैज्ञानिकों की मान्यता है।

किसी मनुष्य को कोई रोग हुआ हो और उसके कारण उसकी मृत्यु हो गई हो तो उसके शरीर के दूषित अवयव की परीक्षा की जानी चाहिए—यह यूरोपीय चिकित्साशास्त्र की प्रथा है। और जब से सूक्ष्मवीक्षण यंत्र का व्यवहार होने लगा है, तब से तो यह परीक्षा अधिकाधिक सुनिश्चित होने लगी है। दृष्टान्त के लिए किसी व्यक्ति को क्षयरोग हुआ हो और उसके फेफड़े का अमुक भाग नष्ट हो गया हो तो उस रोगी के मर जाने पर शवच्छेद करके उसके फेफड़े की परीक्षा की जाती है और इस बात का सुनिश्चित ज्ञान प्राप्त किया जाता है कि फेफड़े में किस प्रकार का विकार हुआ है तथा वह कितने अंश में हुआ है।

यूरोपीय चिकित्सक प्रत्येक रोगी की दैनिक स्थिति का ठीक-ठीक लेखा रखते हैं। छाती पर टकोर करके या छाती पर स्टेथस्कोप रखकर वे फेफड़े की ध्वनियों का अवलोकन करते रहते हैं। आज से ५०० या १००० वर्ष पूर्व आयुर्वेदज्ञ वैद्य लोग इस प्रकार का लेखा रखते थे या नहीं, इस का कोई प्रमाण नहीं है।

शरीर के जो अवयव रोग से प्रभावित हुए हों, उनकी परीक्षा करते हुए जब सूक्ष्मवीक्षणयंत्र का सहारा लिया जाने लगा तब ज्ञात हुआ कि कुछ-एक रोग कीटाणुओं से होते हैं। इस प्रकार कीटाणुविज्ञान का विकास हुआ। सभी रोग कीटाणुओं से नहीं होते। कुछ-एक रोग स्पर्शजन्य होते हैं, जैसे—शीतला, खसरा आदि। कदाचित् वे भी कीटाणुओं से होते हैं, परन्तु उनके कीटाणु ज्ञात नहीं हुए हैं। कुछ समय से एक नई खोज हुई है कि यदि ये कीटाणु अमुक मात्रा में अमुक प्राणी के रक्त में (शरीर में) प्रविष्ट किये जायं तो एक ऐसा इंजेक्शन उत्पन्न होता है, जिसके द्वारा उस रोग पर रोकथाम लगाई जा सकती है। अनुभव के आधार पर एक खोज तो हो चुकी थी कि यदि गाय के बछड़े को शीतला हो जाय और उसके शरीर के चेप की सूक्ष्म मात्रा मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट की जाय तो उस मनुष्य को शीतला नहीं होती, यदि हो जाय तो वह ठीक हो जाता है। इस खोज के आधार पर टाइफॉईड, हैजा आदि रोगों के भी इंजेक्शन बनाये गए और प्रयोग में आने लगे।

इन खोजों के आधार पर यूरोपीय डाक्टर लोग शीघ्रता में ऐसा मानने लगे कि बहुत से रोग अब नष्ट किये जा सकेंगे, अटकाये जा सकेंगे, उन का प्रभाव कम किया जा सकेगा या वे घातक नहीं रहेंगे। इस प्रकार कष्टसाध्य रोगों को निर्बल बना दिया जा सकेगा। परन्तु रोग अटकाने या मिटाने के लिए इस प्रकार के इन्जेक्शन प्रत्येक संक्रमणशील रोग के नहीं बनाये जा सके।

इसके बाद एक खोज हुई कि मनुष्य के शरीर में कुछ ग्रंथियाँ ऐसी होती है, जिन्हें वाहिनी विहीन ग्रंथि (Ductless gland) कहते हैं। इन ग्रंथियों में अमुक प्रकार का रस पैदा होता है। यह रस रक्त में प्रविष्ट होकर अमुक अवयवों पर तथा सारे शरीर की क्रियाओं पर प्रभाव डालता है। उदाहरण के लिए गले में थायरॉइड ग्रन्थि होती है। उसके द्वारा हृदय पर अमुक प्रभाव होता है। इस प्रकार की ग्रन्थियों के रस बकरी, गाय आदि प्राणियों की ग्रंथियों से प्राप्त करके रोगियों पर प्रयुक्त किये जाने लगे और अमुक रोग अच्छे होने लगे। इस खोज के कारण डाक्टर पुनः खूब उत्साहित हो गये और मानने लगे कि अमुक रोग अब अवश्य मिटाये जा सकेंगे। यह आशा कुछ अंशों में सफल हुई है, परन्तु धारणा के अनुकूल नहीं।

इसके बाद एक्स-रे का आविष्कार हुआ। उसके द्वारा भी बड़ा लाभ हुआ। कैन्सर, सार्कोमा आदि व्याधियों के परिज्ञान के लिए यह बहुत सहायक सिद्ध हुआ। इसी प्रकार रेडियम के आविष्कार से भी बहुत लाभ हुआ है। परन्तु दुःख की बात यह है कि नई-नई खोज होती है, नए-नए फैशन प्रचलित होते हैं और मामूली डाक्टर आँख मींच कर इन साधनों का भयंकर गैर उपयोग करते हैं। दोष विज्ञान का नहीं, परन्तु अल्प शिक्षण वाले सामान्य प्रेक्टिशनरों (साधारण रोगों की चिकित्सा करनेवालों) का है। यही हाल पेनिसिलीन तथा नवीन एन्टीबायोटिक दवाइयों का हो रहा है। यह तो स्पष्ट है कि अमुक दवाइयां द्वारा मनुष्य जाति का बहुत लाभ हुआ है, परन्तु उन्हीं औषधों के गैर उपयोग से हानि भी बहुत हो रही है। उस अशुद्ध व्यवहार की रोकथाम अवश्य होनी चाहिए।

आजकल यूरोप और अमेरिका आदि देशों में जिस पद्धति से रोगों का निदान और चिकित्सा-कार्य किया जाता है, उसे वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है। क्योंकि रोग की परीक्षा के लिए तथा औषधियों का जो प्रभाव शरीर पर होता है, उसकी परीक्षा के लिए बहुत से मनुष्य आधुनिक साधन-सामग्री से प्रयोग और खोज करते ही रहते हैं। यह बात ठीक है, परन्तु ये पश्चिमी डाक्टर ऐसा मानते हैं कि हमारी पद्धति वैज्ञानिक है तथा अन्य पद्धतियाँ परम्परागत मान्यताओं पर आश्रित हैं। उनकी इस धारणा में अर्धसत्य भी नहीं है। दक्षिणी अमेरिका के जंगलों में रहनेवाले मूलनिवासी, मलेरिया ज्वर के होने पर एक वृक्ष की छाल का काढ़ा पीकर ज्वर का निवारण करते थे। यह तथ्य पहले अमेरिकनों को ज्ञात हुआ। बाद को यही बात जब किसी डाक्टर को ज्ञात हुई, तब जगत् को पता चला कि सिन्कोना की छाल के उपयोग से ज्वर मिटता है। डाक्टरों द्वारा जब वह चिकित्सालयों में व्यवहार में लाई गई तब उसे वैज्ञानिक कहा गया। आज तो वह सिन्कोना भी प्रयोग में लाया जाता है और उसमें से निकलनेवाली क्विनाइन भी प्रयुक्त हो रही है। इसके

सिवाय सिन्कोना में से निकलनेवाले अन्य तत्त्व भी व्यवहार में लाये जा रहे हैं। यह सब ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ? उत्तर स्पष्ट है और ठीक भी है कि रसायनशास्त्र द्वारा! मुझे तो अनुभव द्वारा पुराने मलेरिया के लिए क्विनाइन के स्थान पर सिन्कोना अधिक उपयोगी प्रतीत हुआ है। यहाँ पर मेरे मन में विनोदभरी बात याद आ गई है। वैज्ञानिक कहे जानेवाले डाक्टर लोग इस ज्वर को मलेरिया कहते हैं क्योंकि उनके मतानुसार यह (मेल=खराब,एयर=हवा) खराब हवा से उत्पन्न होनेवाला है। परन्तु यह बात अशुद्ध है। इसका अशुद्ध हवा से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह ज्वर तो एक प्रकार के मच्छर के काटने से पैदा होता है। और इसकी खोज पश्चिमी पद्धति के डाक्टर रोनाल्ड रौस ने की थी।

यूरोप में एक अन्य पद्धति भी है, जिससे रोग अच्छे किये जाते हैं। उसे होमियोपैथी कहते हैं। इस पद्धति का प्रसार भी अनेक देशों में हो गया है। होमियोपैथी का आविष्कार जर्मनी के डाक्टर हनीमान द्वारा किया गया था। होमियोपैथी में औषधि बड़ी सूक्ष्म मात्रा में दी जाती है। उसका सिद्धान्त यह है कि Like cures like—अर्थात् समः समेन प्रशाम्यति। जिस प्रकार चोर चोर को पकड़ता है उसी प्रकार पित्त करनेवाली दवा पित्त को मिटाती है—इस प्रकार की मान्यता इस पद्धति में है। हजारों अमेरिकन लोग एक अन्य पद्धति का भी व्यवहार करते हैं, उसमें केवल प्रार्थना की जाती है।

आयुर्वेद के लिए तत्त्वज्ञान (दर्शन-शास्त्र) का अध्ययन आवश्यक है। चरक और सुश्रुत में दार्शनिक तत्त्व का ठीक-ठीक विवेचन किया गया है। इसी प्रकार एक ग्रीक दार्शनिक और चिकित्सक का स्पष्ट कथन है—"जिस चिकित्सक ने तत्त्वज्ञान का अध्ययन नहीं किया, वह चिकित्सक ही नहीं।"

आज तो मनुष्य ने ज्ञान-विज्ञान के इतने अधिक बाड़े बना दिए हैं कि डाक्टरों को तत्त्वज्ञान और नीतिशास्त्र का जरा भी ज्ञान नहीं होता। डाक्टर भी अन्य कारीगरों की तरह अपने व्यवसाय को सीख कर और प्रमाणपत्र प्राप्त करके अपने धन्धे में रचापचा रहता है। भिन्न-भिन्न देशों में जब चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान गुरुशिष्य की परम्परा द्वारा दिया जाता था, तब गुरु के पास अध्ययन करनेवाले छात्र प्रतिदिन गुरु से गाढ़ संपर्क में आते थे और उनको गुरु से नैतिक शिक्षाएँ मिला करती थीं। उनको गुरु द्वारा इन बातों की भी शिक्षा मिला करती थी कि—रोगियों को क्या कहना चाहिए, कितना कहना चाहिए और उन्हें क्या नहीं कहना चाहिए। अन्य वैद्यों से कैसा व्यवहार रखना चाहिए, किस प्रकार के गरीबों को मुफ्त दवा देनी चाहिए धनवानों से किस प्रकार कीमती औषधियाँ प्राप्त करके गरीबों को देनी चाहिए, आदि आदि।

× × ×

अब डाक्टर नारायण राव द्वारा सूचित बातों पर जरा विस्तार से विचार किया जाता है—

(१) पहली बात डाक्टरी का व्यवसाय करनेवालों में प्रचलित अनुचित स्पर्धा की है। और अन्तिम बात यह है कि चिकित्सा व्यवसाय में नीति का पालन अवश्य होना चाहिए।

यह सर्वविदित है कि आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भारतवर्ष में तथा यूनान (ग्रीस) में चिकित्सा-विद्या बड़ी उन्नत दशा में थी। ग्रीस के प्रसिद्ध वैद्य हिपोक्रेटिस् (बुकरात—उपक्रतु) के युग में प्रत्येक सुशिक्षित और नवदीक्षित वैद्य को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह नीतियुक्त और संयमी जीवन व्यतीत करेगा, अपनी कमाई के लिए विशेष लोभ नहीं करेगा, गरीबों की मुफ्त चिकित्सा करेगा, अपने व्यवसाय के निमित्त विविध कुटुम्बों से उसने जो गुप्त बातें की होंगी, उन्हें वह किसी से नहीं कहेगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञाएँ चरक और सुश्रुत के ग्रन्थों में भी विद्यमान हैं। पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र के स्नातकों को आज भी इस प्रकार की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है, परन्तु वे इतनी अधिक यंत्रवत् और जड़ हो गई हैं कि नवदीक्षितों पर उनका प्रभाव कायम नहीं रहता।

पाश्चात्य देशों में प्रत्येक देश में एक मेडिकल कौन्सिल होती है। वह कठोरता से ऊपर वर्णित प्रतिज्ञाओं तथा अन्य शर्तों का पालन करवाती है। प्रत्येक देश में डाक्टरों को अपना नाम कौन्सिल में आवश्यक रूप में अंकित कराना पड़ता है। योग्य शिक्षाप्राप्त डाक्टर का नाम रजिस्टर में अंकित होता है। रजिस्टर्ड हुए बिना कोई भी व्यक्ति चिकित्सा कार्य नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति बिना रजिस्टर्ड हुए चिकित्सा करता है और उसके द्वारा रोगी को हानि पहुँचती है, तो उसे कठोर दंड मिलता है।

कोई भी डाक्टर अखबारों में या अन्य प्रकार से अपना विज्ञापन, अपना गुणगान, नहीं कर सकता। अन्य व्यक्ति द्वारा भी अपना विज्ञापन नहीं करा सकता! चिकित्सा विषयक सदाचार (मेडिकल इथिक्स) का पालन न करने वाले को पहली बार सावधानी की सूचना दी जाती है। इस प्रबोधन का अनादर करने वाले का नाम रजिस्टर से निकाल दिया जाता है। रजिस्ट्रेशन के बिना किसी भी व्यक्ति को वैतनिक या अवैतनिक नौकरी नहीं मिल सकती। उसके प्रमाण-पत्रों को कोई पूछता नहीं। अपने उच्च व्यवसाय को लाञ्छन लगाने वाला कृत्य करने वाले को, अक्षम्य असावधानी के लिए दण्ड दिया जाता है। इस प्रकार के अनेक कठोर नियम हैं। दक्षिणा (फीस) कितनी लेनी चाहिए, इसके लिए भी नियम बना दिए गए हैं। परन्तु उच्च पदवीप्राप्तों और विशेषज्ञों की फीस की दर स्वाभाविक रूप में ऊँची होती है।

हमारे देश में भी अब रजिस्ट्रेशन प्रारंभ हो गया है और कौन्सिल चिकित्सा विषयक सदाचार को व्यवहार में लाने का प्रयत्न कर रही है। परन्तु बुद्धिमान् लोग किसी भी नियम में से छटक जाने का उपाय खोज निकालते हैं।

अभी-अभी पिछले दिनों तक अपने देश में आयुर्वेदिक हकीमी (यूनानी), होमियोपैथी, बायोकेमिस्ट्री, निसर्गोपचार, आदि अनेक पद्धतियों द्वारा लोग स्वतन्त्रता से चिकित्सा कार्य कर सकते थे। पुराने जमाने में तो वैद्य का व्यवसाय करने वाले को सोंठ आदि की थैली अपने पास रखनी होती होगी, परन्तु भारत में बीसवीं शती के प्रथम पचास वर्षों में तो सोंठ की भी आवश्यकता नहीं रही।

मैंने अपनी युवावस्था में इस बात का खूब अनुभव किया था कि हमारे देश में परोक्ष रूप में डाक्टर अपना विज्ञापन कराते थे और दूसरों की निन्दा भी कराते थे। नवसारी (जिला सूरत—गुजरात) नगर के निवासियों में पारसी तथा हिन्दू लोग, वहाँ की सीली हवा के कारण कुछ दुर्बल तथा कुछ अंश में घबराने वाले स्वभाव से होते हैं। वे समय-समय पर डाक्टरों के पास आ धमकते थे। वहाँ पर डाक्टरों की संख्या भी अधिक थी, अतः वहाँ प्रतिस्पर्धा भी विशेष थी। डाक्टर पैदल चलकर या अपने खर्च से रोगी के घर पर जाकर चिकित्सा करते थे, और इस कार्य की फीस केवल एक रुपया थी। इस प्रकार नवसारी में मैंने यह प्रतिस्पर्धा अपने खराब से खराब रूप में निहारी। बड़ौदा में भी डाक्टर अपनी खूब प्रशंसा करते थे और अन्यों की निन्दा। मेरे लिए तो यह सब कुछ बाधारूप नहीं था। क्योंकि मेरे पास इंग्लैण्ड की उपाधि थी और मैं ऊँचे पदाधिकार पर पहुँचा हुआ था। मेरे उपयोग के लिए बड़े चिकित्सालय के साधन भी विद्यमान थे।

दूसरी लज्जाजनक स्पर्धा मैंने बीमे के व्यवसाय में देखी। जिस व्यक्ति का बीमा करवाना होता था, उसकी पूरी परीक्षा करने के लिए जो फीस डाक्टरों को मिलती थी उससे वे प्रत्येक व्यक्ति के लिए २, ३ या ५ रुपये कमीशन के वापिस देते थे। एक बार एक एजेण्ट ने मुझे कमीशन की बात कही। मैंने तुरंत ही उसको दरवाजा दिखा दिया और बीमा कम्पनी को भी सूचना कर दी। बीमा कम्पनी ने एजेण्टों को आदेश किया कि सब केस अनुकूलता हो तो सिविल सर्जन को ही बताए जायँ। परन्तु चालाक एजेण्टों को अनुकूलता प्रतीत नहीं हुई और मैंने बीमा प्रेक्टिस् गँवा दी। तथापि मुझे कहना चाहिए कि इन स्पर्धाओं में मुझे विशेष हानि नहीं हुई। क्योंकि मुझे पर्याप्त कार्य मिल जाता था। प्राइवेट डाक्टरों के विषय में ऐसी बातें सैकड़ों बार सुनी गई हैं कि उनके रोगी को जब आराम होने लगता है, तब वे दवाई की मात्रा कम करके रोग को लम्बा कर देते हैं। गाँव में जाकर चिकित्सा करने के लिए डाक्टर लोग कई बार इतनी अधिक फीस मांग लेते थे, जो रोगी के लिए देनी मुश्किल होती थी। प्रसूति के समय लोगों को मुँहमाँगी फीस देनी पड़ती थी। इस प्रकार भयंकर प्रतिस्पर्धा और लालचपूर्ण घटनाओं का मुझे परिचय हुआ है। चिकित्सा विभाग के सहायक डाक्टरों के अतिशय लोभ पर तो सिविल सर्जन को अंकुश रखना पड़ता था।

(सावशेष)

आयुर्वेदीय विकृतिविज्ञानम्-२

पूर्वतोऽनुवृत्तः

वैद्यराज पुरुषोत्तम सखाराम हिर्लेकर

मेदोधातुरस्थ्नां पोषकः। घनस्वरूपो मेदोधातुः स्वोष्मणा विपक्वः परिणमति कठिनसंघातरूपेणास्थिधातुरयं परिगण्यते। यदाह चरकः—

स्वतेजोऽम्बुगुणस्निग्धोद्रिक्तं मेदोऽभिजायते।
पृथिव्यग्न्यनिलादीनां संघातः स्वोष्मणा कृतः।
खरत्वं प्रकरोत्यस्य जायतेऽस्थि ततो नृणाम्॥

मज्जा शुक्रं चेति धातुद्वयं सर्वशरीरगतं नाम साकारेष्ववयवेष्वनुप्रविष्टं सर्वावयवानामुत्पादकं संघातसाधनं प्रमुखमिति तस्मात् शरीरावयवाः सर्वे ससत्त्वाः सारान्विताश्च भवन्तीति जीवने प्रधानं शुक्रम् तत्पूर्वावस्थो मज्जाधातुः, परिणामश्चोजःसंज्ञः।

रसरक्तयोरयथोत्पादनात् सर्वेषामेव धातूनामुत्पादनमभिवृद्धिश्च यथावन्न भवेत्। विकृते च रसरक्ते तत्पोष्येषु धातुष्वखिलेषु विकृतिर्जायेत। मेदसो यथावदुत्पादनाभावात् यथावदुत्पादनमस्थ्नां न भवेत् विकृते च मेदसि विकृतो भवेदस्थिधातुः। मज्जा-शुक्रं च अयथावत्संजातं सन्ततिकरं न स्यात्, विकृतं च विकृतसन्ततिकरं जायते। तथा शुक्रक्षयादोजःक्षयः, ओजःक्षयाच्च सर्वेषां धात्ववयवानां क्षयो, विकृते च विकृता हीनसत्त्वाः शरीरावयवाः शीघ्रं विनाशमायान्ति। यदुक्तं सुश्रुतसंहितायाम्,

"ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्रं शीतं स्थिरं सरम्।
विविक्तं मृदु मृत्स्नं च प्राणायतनमुत्तमम्॥
देहः सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम्।
तदभावाच्च शीर्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम्॥"

विकृताभ्यां रसरक्ताभ्यां सर्वे धातवः अवयवाश्च विकृता भवन्ति। अपि तु रसरक्तं शरीरे प्रथमावस्थावस्थितं द्रव्यमिति तद्विकृतिर्नातिगम्भीरा गम्भीरा च तदपेक्षया मेदोविकृतिर्घनत्वात् परिणामावस्थावस्थितं द्रव्यमिति परिणामावस्थावस्थितत्वाच्च मेदसः मज्जः शुक्रस्य च विकृतिर्गम्भीरतरा विनाशकारणादिति।

रसरक्तं यथा देहे सर्वव्यापकं तथा शुक्रमपि सर्वावयवव्यापित्वेनावतिष्ठते। यथा सुश्रुतसंहितायामभिहितम्,

"यथा पयसि सर्पिस्तु गुडश्चेक्षुरसे यथा।
शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्यात् भिषग्वरः॥"

ततश्च रसरक्तयोस्तथा शुक्रस्यापि विकृतौ सर्वशरीरव्यापिनो विकारा जायन्ते। किन्तु रसरक्ते विकृते धातुनामुत्पादनमभिवर्धनं च विकृतं भवति। शुक्रे मज्जि च पम्परया विकृतिमापन्ने संहननं जीवनं नाम विकृतं भवेत्। उत्पादनाभिवर्धनं विहाय स्वाभाविकं विनाशोन्मुखा भवन्त्यवयवा धातवो वा। ततश्च उत्पादनाभिवर्धनहानौ व्ययातिरेको विनाशकर इति शुक्रविकृतेरभिव्यक्तिः प्रथमं रुग्विशेषादिभिर्नातितीव्रा अपि परिणामतः तीव्रतरा भवति। संक्षीणे जीवनाख्ये वा कर्मणि सम्यग्वर्तमानमुत्पादनं नालं भवेत् जीवनार्थं संपादयितुमिति।

उत्पादनमभिवर्धनं च सम्यक् प्रवर्तमानं जीवनं नाम समासतः। स्वभावविरुद्धो ह्रासो विनाशश्चोत्पद्यमानो विकृतिरिति। सारस्वरूपेण शुक्रेणौजसा वा संहननं धात्ववयवानां दृढीक्रियते। ततश्च आकृतिमंतो धातवः स्वावस्थानाभिरक्षिता भवन्ति। ततश्च रसरक्तं धातूनां सर्वेषामुत्पत्तिसाधनं शुक्रं च संरक्षकमिति तत्त्वार्थः प्रतिपद्यते।

शारीराणामवयवानामाकृतिमतामुत्पादनाभिवर्धनं रस आहारसंभवे विलीनैः पोषकांशैर्जायते। तदर्थं चैवंविधस्य रसस्य संचारः सर्वावयवेषु प्रवेशश्च भवतीत्यनुगतार्थः सुगमावबोधः स्यात्। रसोऽयं पोषकः सर्वशरीरसंचारी कैश्चित् रक्तसंज्ञया परिगण्यते। रक्ताभिसरणाख्यं च आयुर्वेदे नोपलभ्यत इति जीवनाख्यस्य कर्मणो यथावत्प्रशंसने, पोषणस्य उत्पादनाभिवर्धनस्य वा विवेचनाभाव आयुर्वेदस्य इत्यभिव्यज्यमानोऽयमभिप्रायः शास्त्रीयत्वमायुर्वेदस्याधिक्षिपति। तत एव चास्मिन् विशदीकरणमवश्यम्।

शरीरस्य पोषणमुत्पादनमभिवर्धनं वा यथावदुपवर्णितं भवत्यायुर्वेदीयतन्त्रान्तरेषु। किन्तु न तद्रक्ताभिसरणसंज्ञया उपवर्णितमस्ति। यत आयुर्वेदीयपरिभाषानुसारं

पोषकद्रव्यमिदं रसधातुसंज्ञं न रक्तधातुसंज्ञम्। रस इति संज्ञयैवास्य प्रसरणशीलत्वमधिगम्यते। एतदभिप्रायेणैव सुश्रुतसंहितायाम्, **"रस गतौ अहरहर्गच्छतीति रसः"** एवं रसशब्दस्य निरुक्तिरुपदिष्टा, रसस्याऽभिसरणं चाविरतं जायते इत्याख्यातम्। यथा—**"स शब्दार्चिर्जलसन्तानवदणुना विशेषेण अनुधावत्येव केवलं शरीरम्। स खलु त्रीणि कलासहस्राणि च एकैकस्मिन् धातौ अवतिष्ठते एवं मासेन रसः शुक्रीभवति स्त्रीणां चार्तवम्।"** तथा—

"रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जातः शुक्रसंभवः॥"

इति रसधातोर्धातुपोषणं चरकसंहितायामभिख्यातम्। अष्टाङ्गहृदयेऽपि एवमेव—

"रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदस्ततोऽस्थि च।
अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रं शुक्राद्गर्भः प्रजायते॥"—

इति रसधातुनैव पोषणं धातूनामभिहितम्। रसधातुप्रसारश्च **विक्षेप**संज्ञया प्रदर्शितः। यथा—

"व्यानेन रसाधातुर्हि विक्षेपोचितकर्मणा।
युगपत्सर्वतोऽजस्रं देहे विक्षिप्यते सदा॥
क्षिप्यमाणः स्ववैगुण्यात् रसः सज्जति यत्र सः।
तस्मन् विकारं कुरते खे वर्षमिव तोयदः॥"

विक्षेपशब्दश्च विशेषतो वास्तवार्थः। यतः अभिसरणं नाम प्रसरणमधस्तात् तिर्यक् वा। प्रेरणस्थानं रसस्य हृदयं मध्यभागावस्थितं देहस्य। तस्मात् अधस्तिर्यक् च प्रापणं स्वाभाविकं द्रवद्रव्यस्याऽभिसरणं नाम। किन्तु ऊर्ध्वभागे शिरसि प्रापणं नभिसरणाज्जायते। उत्क्षेपणाख्यं गमनमेवैतत्संपादयतीति अभिसरणात् विक्षेपो वास्तवार्थाभिव्यञ्जकः स्यात्। ऊर्ध्वाधस्तीर्यक्क्षेपणं च रसस्य सुश्रुतसंहितायामुपवर्णितं यथा—

"स च हृदयात् चतुर्विंशतिधमनीरनुप्रविश्य ऊर्ध्वगा दश दश च अधोगामिन्यः चतस्रश्च तिर्यग्गाः कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयति वर्धयति धारयति यापयति च।" इति।

विवेचने चैतस्मिन्नायुर्वेदीये विवक्षेपणमभिसरणं वा यस्य, तत् द्रव्यं रससंज्ञयाऽख्यातं सर्वत्र इत्यभिधातव्यं स्याद्विशेषेणेति। रक्ताख्यो धातुरायुर्वेदपरिचितो न स्यादितिशङ्कासंभवस्याप्रयोजकत्वं **"रससृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि धातवः"** इति प्रधानद्रव्यस्वरूपसप्तधातुसंख्यानदर्शनादुपदर्शितं भवति। आयुर्वेदविद्भिः कैश्चित् शरीरे रक्तधातोः प्राधान्यमभिवीक्ष्य वाताद्या दोषा यथा देहकर्मकर्तारः प्रधानास्तथा रक्तधातुरित्यभिप्रशंसितं दृश्यते। यथा सौश्रुतेतन्त्रे

"नर्ते देहः कफादस्ति न पित्तान्न च मारुतात्।
शोणितादपि वा नित्यं देह एतैस्तु धार्यते॥"

इति रक्तमपि वातादिवद् देहधारकं भवेदित्यभिप्राय उपदर्शितः।

पोषकद्रव्यप्रेरणस्थानं हृदयं रसवहस्रोतोमूलमाख्यातम्। यथा, **"रसवहानां स्रोतसां हृदयं मूलम्"** इति। रक्तवहानां स्रोतसां मूलं न हृदयम्, किन्तु यकृत्प्लीहा च इत्याख्यातम् यथा, **"रक्तवहानां स्रोतसां यकृन्मूलं प्लीहा च"** इत्यनुचिन्तनीयम्।

यकृत्प्लीन्हो: पचनाद्रसो रक्तवर्णतां यातीत्येतदप्यायुर्वेदेनाख्यातम्। यथा सौश्रुते—**"स खलु आप्यो रसः यकृत्प्लीहानौ प्राप्य रागमुपैति।"** एवमपि सति पोषकं द्रव्यमिदं रससंज्ञं रक्ताद् भिन्नमित्यायुर्वेदाभिप्रायो निरपवादः। यथार्थत्वं चास्य आयुर्वेदीयस्वसंज्ञापरिभाषानुसारं विमर्शितव्यं भवेत्।

आहारस्य सारांशे द्रवद्रव्यरूपे आहारादादृताः पोषकांशा धातूनां विलीनावस्थायामवतिष्ठन्ते। विलीनत्वं निराकारत्वममूर्तत्वं नाम। एवंविधायामवस्थायां सन्निकर्षस्य संश्लेषस्य वा अभावः सर्वथा प्रतिपद्यते। विश्लेषणं भावो यस्मिन् स रसः। पदार्थविद्भिः प्राञ्चैः **स्यन्दनासमवायि कारणं द्रवत्वम्"** अभिधायि।

शरीरे पत्ररेखाप्रतानवत्सूक्ष्मानुसूक्ष्मैःस्रोतोभिः अभिवहनाय विलीनत्वं विश्लेषणावस्थानमवश्यम्। ततश्चाऽभिवहनशीलस्य विश्लेषणावस्थावस्थितस्य द्रव्यस्य रससंज्ञयाऽख्यानं वास्तवं वास्तवार्थाभिव्यञ्जकं चेत्युपपद्यते।

धातुविवेचने प्रयुक्तस्य **"रक्तम्"** इति शब्दस्य रक्तवर्णत्वमिति लौकिकव्यवहारे व्यवह्रियमाणः अर्थः आयुर्वेदाभिप्रायसंगतो न स्यात्। पदार्थविज्ञाने जीवनक्रियाविज्ञाने च अवस्थान्तरोत्पादकस्य भावस्याभिव्यञ्जकः स्यात् शब्दो रक्तमिति। **रञ्जनाद्रक्तं रञ्जनावस्थावस्थितं वा द्रव्यं रक्तमिति।** शरीरे सर्वत्र रसधातोरभिसरणे संजाते तद्गतैरंशैः पोषकैः शरीरावयवसंप्रविष्टैः अभिवर्धनं नवीनोत्पादनं च भवति। उत्पादनाभिवर्धनार्थमेव रसाभिसरणस्यायोजनं शारीरक्रियासु इत्यभिप्रायः सुगमावबोधः स्यात्। उत्पादनमभिव्यक्तिर्वा संश्लेषाद्भवति। विश्लेषणस्वभावेषु पोषकद्रव्यांशेषु रसगतेषु संश्लेषकत्वोत्पादनं रञ्जनं नाम।

रसधातोः सर्वशरीरमभिप्रपन्नस्य धात्वग्निना कायाग्निना वा विहितात् पाकात् सन्धीभावानुकूलं रञ्जनं जायते। एवं रंजितो विश्लेषणभावं विहाय संश्लेषणभावमापन्नो रसधातू रक्तधातुसंज्ञया संख्यातः स्यादायुर्वेदे। ततश्चाधिगतं भवेत्, रक्तत्वं नाम न रक्तवर्णत्वं अपि तु संघावस्थानानुकूलो भाव इति। एवंविधो रक्तधातुः पुनः पाकात् प्रव्यक्तरूपमाकारवन्मांसं जायते। अभिप्रायोऽयं चरकसंहितायां यथावद्विशदीकृतो यथा—

"तेजो रसानां सर्वेषां मनुजानां यदुच्यते।
पित्तोष्मणः स रागेण रसो रक्तत्वमृच्छति॥"
वाय्वम्बुतेजसा रक्तमूष्मणा चाभिसंयुतम्।
स्थिरतां प्राप्य मांसं स्यात् स्वोष्मणा पक्वमेव तत्॥"

सुश्रुतसंहितायामप्येवमभिहितम्, यथा—

"रंञ्जितास्तेजसा त्वापः शरीरस्थेन देहिनाम्
अव्यापन्नाः प्रसन्नेन रक्तमित्यभिधीयते॥"

अस्मिन् वाक्ये तेजसा इत्यस्य **यकृद्गतेन पित्तेन** इत्यर्थः स्वीक्रियते कैश्चित्। ततश्च यकृति रागंप्राप्तो रसः रक्ताख्यो धातुः, तस्य रक्तस्य नाम संग्रहप्रेरणं स्थानं हृदयम्, रक्ताभिसरणमेवमायुर्वेदे उपवर्णितं इत्यभिसंधीयते। तत् आयुर्वेदाभिसरणप्रायेण संगतार्थमिति न समीचीनम्।

विलीनत्वं विश्लेषकत्वं च विशेषःस्यात् रसधातोः, संहतीभावहेतुः श्लेषकत्वं च रक्तधातोर्विशेषः। स च आयुर्वेदापेक्षितः, स एव च रक्तसंज्ञया संसूचितः, रक्तोत्पत्तिवर्णने च विशदीकृतः। विमर्शोऽयं शारीरधातुनिर्माणक्रमाभिव्यञ्जको वास्तवार्थश्चेति आयुर्वेदाभिप्रायमधिगन्तुमिच्छद्भिरस्मिन् विपर्यासो न विधेय इति।

शारीराणां द्रव्यविशेषाणां धातूनां वा स्वरूपमुत्पत्तिक्रमः, परस्परसंबन्धश्चेत्यादिके यथावदधिगते, क्रियाविशेषाश्चापि यथावदधिगता भवन्ति। आकृतिमत्वं स्वरूपं शारीरावयवानां सूक्ष्माणां ,तत्संघाताश्च रचनावस्थानविशेषैर्विशिष्टाकारा अवयवाः स्थानानि च भवन्ति। तदनुरूपाणि च शिष्टानि तेषां कार्याणि भवन्ति। स्वभावानुबद्धमेव एतत्। द्रवस्वरूपाणि द्रव्याणि , साकाराश्चावयवाः सूक्ष्माः, संघातरूपाण्यंगोपाङ्गानि स्थानानि चेति शारीरद्रव्याणि त्रिविधावस्थावस्थितानि सन्ति।

द्रवद्रव्येषु आकृतिमतामवयवानां पोषकांशा विलीनावस्थायां निवसन्ति, आकृतिमत्सु सूक्ष्मावयवेषु पोषकाणि द्रवद्रव्याणि, संघातस्वरूपेषु स्थानेष्वङ्गापाङ्गेषु च सूक्ष्मावयवानां पोषकद्रव्यसंहितानामवस्थितिरिति रचनाविशेषानुसारमवस्थितमङ्गमवयवो वा पूर्णतां यातः संघात इत्यधिगम्यते। सूक्ष्मावयवोऽपि संघातरूपः, अपि तु द्रवद्रव्यादृतानां संघातः। द्रवेषु संघातस्याऽभाव एव, यतो द्रवत्वमसंहतत्वं नाम।

आकृतिरहितान्यपि आकृतिमतां कारणानि द्रवद्रव्याणि सुसूक्ष्मा अपि संघातरूपा अवयवाः, तत्संघातरूपाण्यङ्गानि च धातुसंज्ञयाऽख्यायन्ते। दृश्यत्वसामान्यात् सामान्यया संज्ञयाऽख्यानं समीचिनमपि द्रव्यविशेषाणां विशेषाववुद्धये विशिष्टसंज्ञाभिःसंख्यानमवश्यमित्यत्र संख्याविद्भिर्विमर्शयितव्यम्। सविशेषसंख्यानाभावे च क्रियाविशेषाववोधार्थं द्रव्यविशेषाववोधो नोपेक्ष्य इति।

चलनात्मकं कर्म इत्याख्यातं पदार्थविद्भिः। उत्क्षेपणम्, अपक्षेपणं, आकुञ्चनम्, प्रसारणम्, गमनम् चेति भेदाः पञ्च, कर्मणः समाख्याताः। दिग्भेदात् परिणामभेदेन भिन्नेषु उत्क्षेपणापक्षेपणप्रसारणेषु शरीरविप्रकृष्टसंयोगः सामान्यः, तद्विपरीतश्च शरीरसन्निकृष्टसंयोग ; इति आकर्षणमपकर्षणं चेति द्वैविध्यमेव उत्क्षेपणापक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणेषु तत्त्वतोऽधिगम्यते। चतुर्ष्वपि च शरीरं नाम कश्चित् वस्तुविशेषो मध्यगतः स्थायीभावावस्थितस्तमधिकृत्याकर्षणमपकर्षणं च कर्म गमनविशेषस्वरूपं जायत इत्यनुगतार्थः सुगमाववोधः। ततश्च आकर्षणम्, अपकर्षणम्, आकुञ्चनम्, प्रसारणं वा कर्मद्वयमिदं सप्रतिवद्धं गमनमेवेति सिध्यति। गतिप्रतिवन्धश्चायं मध्यदेशावस्थितेन स्थिरद्रव्यविशेषेण विधीयते। आकर्षणम्, अपकर्षणम्, आकुञ्चनम्, प्रसारणम्, च कर्मद्वयं परस्परावलम्बित्वेन प्रतिनिर्वर्त्यते। एकदेशप्रवर्तितस्य गमनस्य प्रतिरोधो भवति तदा तद्विपरीतदेशगमनस्यारम्भो भवति। एवं परस्परविरोधावर्तनैः साध्यते कर्मद्वयं प्रसारणाकुञ्चनाख्यम्। प्रतिबन्धकत्वं चैतत् मध्यवर्तिनो द्रव्यस्य। स च निसर्गस्वभावोऽचिन्त्य इति।

गमनाख्यं कर्म भिन्नस्वरूपमेतस्माद्भवति। नैतस्मिन् प्रतिबन्धो विधीयते केनचित्। ततश्च विप्रकृष्टदेशाभिसरणं प्रसरणं नाम स्वरूपं तस्याधिगम्यते। प्रतिबन्धाभावात् पूर्वस्थानानुबन्धाभावः स्थलान्तरं च परिणाम इति गमनस्वरूपम्। प्रतिबोधकस्याभावोऽपि स्वभाव एव।

रसादिसंज्ञेषु धातुषु शारीरेषु रसो रक्तमिति द्रवत्वावस्थितौ विशेषेण। तत्त्वतस्तु द्रवत्वं नाम रसत्वमिति

प्रागेव विशदीकृतमस्ति। द्रवरूपेषु धातुषु सम्प्रवर्त्यमानस्य कर्मणः स्वरूपं गमनं भवति। गमनप्रतिबन्धकस्याभावात् आकुञ्चनप्रसारणरूपं गमनमेतेषु न भवति। स्थानादेकस्मात् प्रसृता धातवो द्रवावस्थावस्थिता रससंज्ञाः पुनर्न प्रतिनिवर्तन्ते। "रसगतौ अहरहर्गच्छतीति रसः" इति सुश्रुतसंहितायां विहितं व्याख्यानं रसस्य गमनार्थाभिव्यञ्जकम्। रस एवावस्थाविशेषावस्थिते रक्ते, रसापेक्षया सान्द्रे, गमनाख्यमेव कर्म रसत्वात्। मेदो, मज्जा, शुक्रं चेति धातवस्त्रयः सान्द्राः पिच्छिलाश्चापि नाकृतिमन्तः, तेषां स्वाश्रयेषु अवयवेषु प्रसारणं गमनाख्यं कर्म। सर्वशरीरसंचाराभावेऽप्येतेषां गमने--प्रसारणे--प्रसारणाकुञ्चनस्वरूपस्य भावो न भविता।

घनं साकारं च मांसमस्थि चेति धातुद्वयम्। तस्मिन्नेव आकुञ्चनप्रसरणस्वरूपं कर्म अभिव्यक्तं भवति। साकारत्वसामान्येऽपि मांसापेक्षया स्थिरसंघातरूपमस्थि स्थिरतरं कठिनतरं च भवति। स्थिरत्वादस्थ्नि आकुञ्चनं च नात्यभिव्यक्तं भवति। स्थिरकठिनेन संघातेनैकेनान्यस्य प्रपीडनं कर्म विशिष्टमस्थिषु जायते। आकुञ्चनप्रसारणस्वरूपस्य कर्मणो यथावत्वेनाऽऽविष्कारो मांसे भवति। मांसावयवः सूक्ष्मोऽपि प्रत्येकं आकुञ्चनप्रसारणाभ्यां क्रमात् पोषकांशानां आकर्षणं निःसारणं च निःसाराणां तथा धात्वन्तरोत्पादकानामंशानां कुर्वन् जीवमानोऽवतिष्ठते। मांसावयवसंघातरूपाणां पेशीनां पेशीविनिर्मितानां च अङ्गानां आकुञ्चन-प्रसारणं नाम सान्धिकं संचालनम्। सान्धिके संचालने संघस्थितानामवयवानां प्रत्येकशो व्यक्तिगतं चलनं भवत्येव। तदभावे सामुदायिकस्य चलनस्याप्यभावः। अपि तु प्रत्यङ्गं विभिन्नस्य समुदायस्य कर्म चलनस्वरूपं विभिन्नं भवति; व्यक्तिगतं च समवेतानामवयवानां प्रत्येकशश्चलनं सामान्यमिति जीवमानानां क्रियावतां नाम अवयवानां जीवितं-क्रियानुवर्तनं नाम द्विविधं भवति, व्यक्तिगतं समुदायगतं चेति।

शरीरान्तर्गताः सूक्ष्मा अवयवा मांसमयाः स्वीयं जीवनं वृद्धिक्षयात्मकं आकुञ्चनप्रसारणाभ्यां संपादयन्तः सामुदायिकं स्थानविशेषानुगतं जीवनं स्थानविशिष्टैराकुञ्चनप्रसारणविशेषरूपैः कर्मभिः संपादयन्ति। समुदायस्वरूपस्य शरीरस्य जीवनं नाम सूक्ष्मावयवक्रियाणां अङ्गप्रत्यङ्गक्रियाणां च स्वभावप्रतिनियतः समवायः।

शारीराणां धातूनां कर्मविशेषस्य चलनविशेषस्य वाऽधिगमादधिगतं भवेत् क्रियावैषम्यं विकारो वा धातुषु जायते अनुभूयते च; तथा च आकुञ्चनप्रसारणाख्यं कर्म प्राधान्येन वृद्धिक्षयकारणं भवेत् साकारेषु विशेषतश्च मांसमयेष्ववयवेष्विति।

विशिष्टाकृतिमतः शरीरस्यावस्थानं नाम आकृतिमतामवयवानांसमुदायावस्थानम्। ततश्चैवंविधानामवयवानामुत्पादनसातत्यं कर्म प्रधानं जीवितव्यव्यवहारस्येति। कर्माणि विविधानि विविधस्थानीयानि शारीराणि, शारीरावयवानामाकृतिमतामुत्पादने विपरिणमन्ति। विशिष्टाकारस्य समुदायस्वरूपस्य शरीरस्य धारकाः सूक्ष्मावयवाः साकारा इति त एव धातवः। तदुत्पादनक्रियावैषम्यं नाम विकारो रोग इति।

स्वभावनियतेन स्वरूपेण क्रमेण चोत्पत्तिरभिवर्धनं जीवनम् तद्विपर्ययश्च विकारो रोग इति।

पञ्चभूतविकारसमुदायात् चेतनाधिष्ठानात् संजातायां जीवसृष्टौ जीवानां यस्मात् बीजात् समुत्पत्तिस्तद्रूपेण बीजेन विपरिणमनमिति जीवनव्यापारस्याकांक्षितं परिसमाप्तिश्च स्यात्।

मनुष्यशरीरस्याद्योऽवयवः सूक्ष्मः शुक्रार्तवरूपाद्बीजाज्जायते। परिवृद्धश्चायं स्वसमानानवयवान् जनयति। संजातेभ्यश्च परिपाट्याऽन्यैवान्येषां समुद्भवः। तेभ्यश्च समुदितेभ्य अंगापाङ्गानि विविधानि जायन्ते। एवमुत्पादनमभिवर्धनं च शरीरबाह्यसृष्टिगतैः स्वमानैर्द्रव्यैः शरीरान्तः कृष्टैर्भवन्ति। गर्भावस्थायां मातुराहाररसगतैराप्याय्यन्ते गर्भशरीरगतानि द्रव्याणि। जननानन्तरं च बाह्यद्रव्याणामाहारेणाभिवर्धनं भवति। आहार्यद्रव्याणां च समासतस्वरूपं द्विविधं स्थूलमन्नपानादिरूपमेकं, तेजो वायुश्च सूक्ष्मस्वरूपमन्यदिति। आहरणं सात्मीकरणमाहारो नाम। अन्नपानादिगतानां पोषकांशानां सात्मीकरणं पचनाभिसरणादिभिः कर्मभिर्विधीयते; श्वसनकर्मणा-वायोः संयोगेन च तेजसश्चाहरणं विधीयते।

एवं समाहृतानां पोषकद्रव्याणां साहाय्येन उत्पादनमभिवर्धनमुत्क्रमणं चेति कर्मणां निर्वर्तनार्थमेव शरीरे कर्म संपादनानुकूलाः समुदायस्वरूपाः अवयवाः स्थानानि अङ्गोपाङ्गानि वा जायन्ते। तद्गतैः क्रियाविशेषैः सात्मीकृतादाहारात् समुत्पन्नाः संवृद्धाः क्रमेणोत्क्रान्ताश्च शरीरावयवाः स्वसमानशरीरोत्पादकबीजरूपेण विपरिणमन्ति।

पुरुषशरीरान्तर्गतं शुक्राख्यं स्त्रीशरीरान्तर्गतं च आर्तवाख्यं इति मनुष्यशरीरारम्भकं बीजं द्विविधम्। ततश्च

परिणाममापद्यमानानां धातूनां शारीराणां पुरुषबीजत्वेन स्त्रीबीजत्वेन च द्विविधो भवति परिणामः। विशेषतश्च पुरुषशरीरे पुरुषबीजं शुक्रम् स्त्रीशरीरे स्त्रीबीजमार्तवमिति परिणामः कारणानुरूपः स्यात्।

शुक्रार्तवसंयोगात् शरीरं जायते। आद्यावयवः शरीरस्य शुक्रार्तवयोः संयोगः। शुक्रमार्तवं चैतत् पुरुषशरीरजं स्त्रीशरीरजं चेति द्विविधम्, द्विविधे देहे पृथक्तया आविर्भवति। किन्तु शरीरावयवेषु अवयवान्तरोत्पादकं बीजं द्विविधमपि समवायस्वरूपमवतिष्ठते न पृथक्। अवयवानां सन्ततिः स्वसमानावयवोत्पादनम्। एवमुत्पादनार्हत्वं परिणामः स्यादवयवानाम्। अन्यावयवोत्पादकश्चांशो बीजमिति।

समुत्पन्नो विशिष्टाकारेणाभिव्यक्तः समुत्पादनक्षमश्च सूक्ष्मावयवः सूक्ष्मं शरीरम्। एवंविधानां सूक्ष्मशरीररूपाणामवयवानां समुदायः स्थूलो विशिष्टाकारश्च मनुष्यशरीरमित्यभिधीयते। परिणते चैतस्मिन् स्थूलशरीरे स्वसमानशरीरोत्पादकस्य बीजस्य संभवः। अनेनैवाभिप्रायेण द्विविधस्य शुक्रस्य बीजस्य वा संख्यानमायुर्वेद उपलक्ष्यते। तयोरेकं सर्वशरीरगतम्, सर्वेषु सूक्ष्मावयवेष्ववस्थितम्। यथा सुश्रुतसंहितायाम्।

"यथा पयसि सर्पिस्तु गुडश्चेक्षुरसे यथा।
शरीरेषु तथा नृणां शुक्रं विद्यात् भिषग्वरः॥"

दुग्धस्यावयवे सुसूक्ष्मेऽपि यथा सूक्ष्मांशेन घृतम्, इक्षुरसस्यावयवे च गुडस्तथा मनुष्यशरीरे शुक्रमिति सूक्ष्मावयवोऽपि शरीरस्य शुक्रान्वितो बीजान्वितो वा भवतीति सुविस्पष्टः स्यादभिप्रायः। स एव च अवयवान्तरोत्पादक इति। "शुक्रात् गर्भः प्रजायते" इत्याख्यानमनुगतार्थं भवति। नो चेत् स्त्रीशरीरे क्लीवशरीरे च गर्भोत्पादकस्य शुक्रस्याऽभावात् शरीरे रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणीति सप्त धातवः सदा विद्यन्त इति सिद्धान्तो निरस्तो भवेत्।

शुक्रं चान्यत्, यस्मिन् विविधस्वरूपाणामवस्थानां सर्वेषामङ्गोपङ्गानां च बीजं समवायरूपेणावतिष्ठते, यच्च व्यवायादिना प्रहर्षणेनोदीरितं प्रवर्तते, तत् शरीरोत्पादकं बीजम्। उपवर्णनं चास्य सुश्रुतसंहितायां यथा—

"कृत्स्नदेहाश्रितं शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा।
स्त्रीषु व्यायच्छतश्चापि हर्षात् तत्संप्रजायते॥"

प्रवर्तितं शुक्रं यथावदार्तवेन समन्वितं संततिकरं, निरर्थकं चान्यथा भवति।

पुरुषशरीरे यथाक्रममुत्क्रान्तानां धातूनां परिणामस्वरूपे शुक्रे सर्वेषामवयवानामङ्गोपाङ्गानां च बीजानां समवायेऽपि आर्तवसंयोगं विना गर्भोत्पादनक्षमत्वं न भवति। यतः शुक्रं वियोजनोन्मुखम्। संघातावस्थानं परित्यज्य बहिर्गमनाकांक्षा एव अस्य प्रस्रवणहेतुर्भवति। वियोगानुरागश्च संयोगमूलस्य संघातस्य विरुद्धः। आर्तवसंयोगेन संयोजनानुकूलो भावः संघातसाधकश्चास्मिन्संजायते इति शुक्रार्तवसंयोगो गर्भहेतुः। ततश्च शुक्रेमेव बीजं सर्वावयवानां संयोगहेतुश्चार्तवमित्यधिगम्यते। विचिन्त्यमस्मिन् विचक्षणैरिति।

VAIDYAS IN 1637 A. D.

Shri Pratapkumar Popatbhai Vaidya.

A couple of months back I placed before the readers of this Journal a not very pleasant picture of the position of Vaidyas in the year 1837 in the City and island of Bombay. The picture emanated mainly from the pen of Shri Bal Gangadhar Jambhekar, a noted Scholar and Linguist of his time and the first Indian to be appointed on the tutorial staff of the then Elphinstone Institution.

However, I have come across a manuscript which gives an extremely pleasing picture of the position of the Vaidyas in the year 1637. The manuscript, copy of which I received from my friend Vd. Prabhashanker Narottam Raval, at present a Professor in the Ayurved Mahavidyalaya, Jamnagar, an institution affiliated to the Gujerat University, is entitled वैद्यक शास्त्रे रत्नप्रकाश. It is in Prakrit Gujerati and contains 1556 chopais (चौपाई). The original appears to have been drafted in the Samvat Year 1694 (1637 A.D.) and the author is Pandit Laksmikushal (लक्ष्मीकुशल), a pupil of Pandit Jayakushal (जयकुशल). It appears that this Pandit Jayakushal was in the retinue of a Jain Muni called Vishalsuri (विशालसुरी). During the year 1694 V.S., Vishalsuri and his retinue passed their monsoon months at a place called Uda (उडा) near Idar (इदर) in Sabarkantha (साबरकांठा). I do not know if the place Uda is there or not, but the town of Idar is still there and one reaches there by meter gauge train from Ahmedabad.

The 1556 chopais written by Lakshmikushal were later copied (after 50 years) by Vaidya Shanker Bhukhandas (शंकर भूखणदास), a barber by caste, and by Bhai Shri Jivanji (जीवणजी)—the caste of Jivanji is not apparent in the manuscript—it could be the same as that of the copyist Shanker Bhukhandas. The copy of the MSS is with me for the present and if anyone is interested in the same, I shall be happy to let him have a look at it.

The Book, if it could be so called, is described as the Nidana of Atreya and the Sara of Sushruta by the copyist who considers the effort as an Uddhar (उद्धार) of that Apara (अपार) Grantha. Apart from such integral value that the MSS otherwise possesses, what has interested me is a picture of the position of the Vaidyas in those days. I reproduce 5 chopais verbatim as in the original.

The copyist enjoins that—

रसिक जन वांचो उल्लासे
मन उलटी भणीशुं प्रकाशे ।
इंह लोक वाधी जशे
ते तणो राजद्वारी महिमा घणो ।
वलि पामे नानाविधि भोग
पुरण लखमी तणो संयोग ।
पामे हस्ती तुरंगम सार
ग्रंथ तणो जे लेहेई विचार ।
वैद्य प्रति राजा दीईं मान
वैद्यराज मोटुं अभिमान ।
खीर खांड नित भोजन करी
शालिदाली घृतशु वावरी ।
वैद्य तणी सारी सउ सेव
भूपति समवडी जाणे हेव ।
दंपती प्रजा तणु धन हरी
ते धन वैद्यराज वावरी ।
उत्तम वस्त्र आरोगे पान
नरनारी दीइं बहु मान ।
सार श्रृंगार अलंकृत देह
वैद्यराजनु मोटुं गृह ।

A broad meaning of the above will be clear even to a superficial reader. "The romantic is enjoined to read the chopais (चौपाई) with enthusiasm as the same will

enlighten the mind and increase the importance of the reader in the eyes of the State. The reader will (ultimately) enjoy pleasures of various sorts and will be fully rich. The reader who carefully follows the grantha (ग्रंथ) and makes use of its contents will have elephants and horses in his backyard. The Vaidya is always given respect by the Raja and being a 'Vaidyaraja' is considered to be a matter of pride. The Vaidya will daily have in his meals ksheera (क्षीर) and sugar, along with rice, dal and ghee. The services of a Vaidya are always good and his habits are like that of a king (alternatively, it would be good thing to serve a Vaidya, because, by habit, he is just like a king). The Vaidya receives his money from the public and spends it on good food, clothes and drinks. He is always respected by men and women. The house of a Vaidya is a large one and his body is embellished with good ornaments."

Lakshmikushala very properly adds that having had in mind the (above) 'mahima' (महिमा) of a Vaidya he has written the 'hitkari' (हितकारी) chopais. In the concluding lines, the writer introduces himself as a 'das (दास) of kavijana' (कविजन), who has brought to light such 'little' knowledge that he possesses and that 'he cannot describe it further or less'. I will enjoin our influential friends to get this MSS published with the help of Vd. Prabhashanker Raval, who can be contacted at Naganath Nake, Jamnagar, Kathiawad.

To me, what is more interesting, for the present, is the contemporary picture of the position of Vaidyas of those days, as painted in the above lines. It is a very flattering picture to us because the learned Vaidya was respected by the Rulers, enjoyed the material pleasures of the life and was fully (पूर्ण) rich. He made himself an influence in the State and he had at his command horses, elephants, etc., which should go to prove that he had the usual cattle, the cart, the palakeen and a retinue of servants at his command. As the Vaidya was always respected by the Raja, it was considered to be a matter of pride to become a Vaidyaraja. The daily diet of a Vaidya had always the ksheera, (क्षीर), sugar, rice, dal and ghee and the Vaidya had regal habits.

Vaidyas of those days must have been making a good income from the public apart from such emoluments that they might be receiving from the State and/or the King and it is a reflection on the fashions of the times that the body of a Vaidya was embellished with ornaments and that his income also enabled him to have a large commodious house.

Notes by the Writer

Even if the picture reproduced above is an ideal one, it is apparently clear that the position and the circumstances of a Vaidya and his family were quite comfortable 220 years ago in a part of Gujerat and there is no reason to believe that his position could have been lesser elsewhere in India. The fact that it was considered a matter of pride to become and be called a Vaidyaraja goes to prove the influence and importance of Vaidyas of those days.

There are some other interesting considerations, as well, which may come to us as we read the above. First and foremost is the fact that the MSS is in old or Prakrit (प्राकृत) Gujerati language which may go to show that Gujerati had started to be a medium of instruction and exchange of thought over 300 years from now. The more important aspect, here, is not the emergence of Gujerati as such at the commencement of the eclipse of the Sanskrit language, even in a Book on Ayurvedic Diagnosis and Treatment. The second fact that emerges is the incidence of the above, which could be called some sort of concise 'Notes' from the Shastreeya Granthas—even the MSS is called a 'sara' and it is likely that the original Granthas must have been scarce or that its' reading must have been considered rather difficult, if not impossible.

The third interesting point is the specific information that Vaidyas used to charge, get paid and grow rich and comfortable. They lived in regal splendour and with royal lavishness. The State and the Ruler must have been equally helpful and deferential to the Vaidya.

The Author of the MSS appears to be a 'Pandit' which may mean that he was not a Vaidya. The Author says the following about himself—

आचार्यजना गुण जेटला
श्री विशालसुरीमां तेटला
प्रौढ परिवार तेहनु सार
पंडित तणो न लाभी पार
जयकुशल पंडित तेहमां जाण
ग्रहगुण मांही दीसे भाण
लक्ष्मीकुशल तस केरो शिष्य
गुरुप्रसादी हुइ जगीस
राय देश मांहि प्रसिद्ध
इडर नगर अछइ समृद्ध
तेहनी पासो उडा गाम
धर्म तणां जहां मोटां ठाम
जीनमंदिर अभिनंदन देय
प्रागवंश सरु सारी सेव
गुरूतणो आदेशज लह्यो
लक्ष्मीकुशल चुमासु रह्यो
संवत सोलचुराणुआं जेह
फागण सुदी तेरसी तेह
शुक्रवार संयोगी सही
लक्ष्मीकुशले चोपाइ कही।

A free translation of the above would be as follows : "Shri Vishalsuri possesses all the qualities as should be possessed by an Acharya and his retinue of mature (praudhha, प्रौढ़) persons contains innumerable Pandits. One of these Pandits is Jayakushal, who is like a Sun amongst others and Lakshmikushal is his Shishya, having been blessed by his Guru and God. In the country of Rayadesha, the city of Idar is well prosperous and near Idar there is the town of Uda, where there are large establishments of religion and many Jain Mandirs. At this place , being ordered (or, permitted) by his Guru, Lakshmikushal stayed for the duration of the monsoon. On Friday, Falgun Shudi 13 of the Vikrama Samvat year of 1694, Laksmikushal wrote these chopais."

This shows that both the Disciple and the Guru were not Vaidyas but Pandits ; this is rather surprising, but one probable reason could be that the good Vaidyas were busy minting moneys (vide supra) and hence it fell to the Pandits to author and create these and other MSS. I am told that all over India there are thousands of MSS on Ayurved and numberless other subjects which have been prepared and transcribed by Jain Pandits as a sheer labour of love and with the adage of 'Art for the sake of Art' and 'Knowledge for the sake of knowledge and for the purpose of the enlightenment of others'.

The colophon which follows the MSS makes it clear that the original MSS was copied by "Vaidya Shankerdas, a Barber by caste and Bhai Shri Jivanji". Of the two the first is a Vaidya and the latter is a layman. To me it seems that Vd. Shankerdas must have come across the MSS and may have engaged Jivanji to copy the same on his behalf in lieu of some remuneration or as a labour of love. From the colophon it is clear that the work of copying was completed on 'Friday the 11th day of Vaishakh, Shuklapaksha, in the year of V.S. 1844' that is to say, in the year 1787 A.D. nearly 150 years after the original MSS was drafted by Lakshmikushal.

The main colophon to the original MSS has been reproduced above and a reference is made there to 'Raydesha'. This Raydesha must be the coastal country along the river साबरमती of Gujerat, in fact, the postal district is now known as Saberkantha (साबरकांठा). In his wellknown Historical Volume, the 'Ras Mala' ('रास माला'), Forbes, who very assiduously and meticulously collected his information from such authoritative sources as he came

(शेषांश पृष्ठ ८७६ पर)

पारद अनुसंधान कार्य

वैद्य श्री नारायण स्वामी

मेरा ऐसा विश्वास है कि हमारे पारद अनुसंधान कार्यालय में विगत अनेक वर्षों से समय-समय पर जो पारद प्रयत्न हो रहे हैं उसमें से कुछ प्राप्त अनुभव हठरस बनाने वाले जिज्ञासुओं के लिये मार्ग-प्रदर्शन करेंगे। यह समझ कर 'गोपनीय प्रयत्नतः' ऐसे प्रयोगों को देश की आर्थिक दुर्व्यवस्था का विचार करते हुए छोड़ देना उचित नहीं होगा। इस संस्था द्वारा इस दिशा में अति स्पष्ट मार्गदर्शन किया जायगा। इस संस्था में चलने वाले अनुसंधान कार्य के विषय में वैद्य-समाज तथा विशेषतः गुरुकुल कांगड़ी के कुछ अध्यापक जिज्ञासापूर्वक ज्ञात किया करते हैं। अतः मैंने अपने अनुभवों को समय-समय पर प्रकाशित करने का विचार किया है। आशा है आयुर्वेद प्रेमी इनसे लाभ उठा सकेंगे। मेरी इच्छा किसी एक व्यक्ति या संस्था को अपने अनुभव बताने की नहीं है और न मैं यह चाहता हूँ कि कोई व्यक्ति-विशेष इन अनुभवों से लाभ उठाकर आर्थिक लाभ प्राप्त करें। हमारे अनुसंधान का उद्देश्य तो मानव कल्याण है।

शीगरफ, हड़ताल, संखिया और गन्धक को पूर्णतया अग्निस्थाई करने और गन्धक का अग्निस्थाई तेल बनाने का विधान वैद्यों को प्रत्यक्ष सिखाने की इच्छा है। कुष्ठ, दमा, नामर्दी, यक्ष्मा, पक्षाघात आदि में और योगवाही सिद्धांतानुसार अनेक महाव्याधियों में उपर्युक्त वस्तुएँ अवश्य काम आयंगी। वर्तमान समय में मानवी शरीर पर इनकी मात्रा निश्चित करनी होगी। इस विषय पर अनुसन्धान के लिये कोई योजना बनानी होगी। मेरी ऐसी धारणा है कि रस विद्या, पुस्तकें पढ़कर आनेवाली विद्या नहीं है।

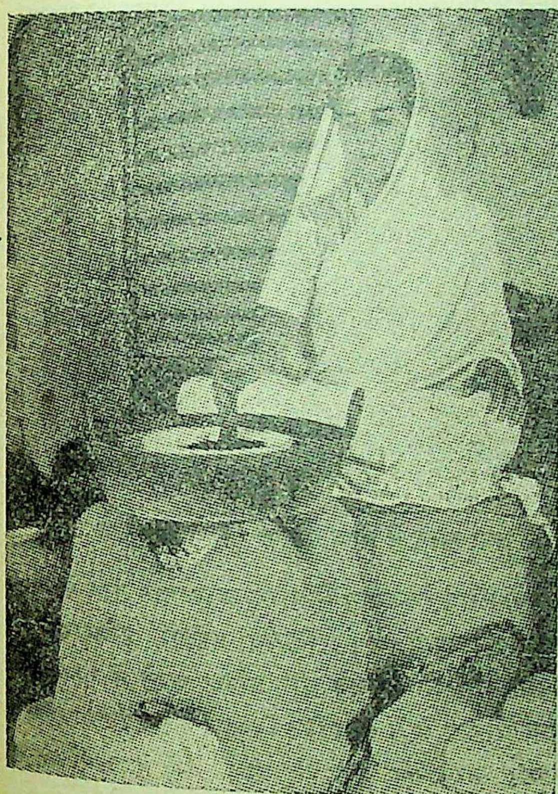
जिन वस्तुओं का उल्लेख मैंने किया है वे वस्तुएँ आयुर्वेद रसशास्त्र की सार हैं। इन वस्तुओं द्वारा निर्मित औषधियों से यदि देश के अनेकों निर्धनों का रोगोपचार हो सके और साथ ही उन औषधियों का विदेश से आना रुक सके जो भारत जैसे निर्धन देश का पैसा बाहर खींच ले जाती हैं, तो मैं समझूंगा कि इस अनुसंधानशाला का उद्देश्य सफल हुआ है। वनस्पति घी और चाय-पान के इस युग में जब तक देश की गरीबी नहीं मिटती तबतक देहसिद्धि की बात कहना कठिन है। किंतु ऐसी कोई योजना बन जानी चाहिये जिससे अनेक महाव्याधिनाशक औषधियों का निर्माण हो सके और कम-से-कम मूल्य पर वे जनसाधारण को सुलभ हो सकें।

इस समय इस अनुसंधान कार्यालय में पारद बीज जारण हो रहा है। अभी हाल ही में उत्तर प्रदेश वैद्य सम्मेलन के सभापति श्री बाबूरामजी मिश्र हापुड़ और पं० अमरनाथजी शास्त्री देहरादून वाले हमारे अनुसंधान कार्य को देखने पधारे थे। ये दोनों ही सज्जन यहाँ का कार्य देखकर अत्यन्त प्रसन्न और प्रभावित हुए। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संचालक पं० रामनारायण शर्मा जी की भी हमारे अनुसंधान कार्यालय पर विशेष कृपा रही है। वे अभी तक इस संस्था के लिये अनेकों वस्तुएँ अपने व्यय से भेजते रहे हैं। आशा है कि वे पुनः यहाँ के कार्य के लिये १० सेर संखिया श्वेत का ढाई सेर श्वेत संखिये का जौहर निर्माण कराके यहाँ के कार्य के हेतु भेजने की कृपा करेंगे। श्वेत संखिये को पत्थर के खरल में बारह घण्टे नींबु स्वरस में मर्दन कर छाया शुष्क करके ऊर्ध्वपातन यंत्र में छः घण्टे तीव्र आँच देने से स्वतः जौहर ऊपर को लगेगा। ऊपर की हांड़ी पर गीला ठंडा कपड़ा रखना चाहिये। यहाँ क्रामण और रसबंधक तरीकों से फिटकरी और संखियां के तलस्थाई सत्व की आवश्यकता है। यदि वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संचालक महोदय सावधानीपूर्वक श्वेत संखिये का जौहर बनाकर भेज सकेंगे तो हमारा बहुत समय बच जायगा। हमें यह भी आशा है कि वे एक माह के अन्दर ही ढाई सेर पक्का सत्व बनाकर भेजने का भी कष्ट करेंगे। उत्तर प्रदेशीय शासन के आयुवद विभाग के उप-संचालक श्री कुलकर्णी जी ने भी हमारे कार्यों में सदैव सक्रिय सहयोग दिया है। इस पुण्य कार्य में हाथ बंटाने वाले सज्जन सभी धन्यबाद के पात्र हैं। मैं उन्हें कोरे धन्यबाद के दो शब्दों के अतिरिक्त और दे भी क्या सकता हूँ। यदि मंगलमय भगवान की कृपा से हमें इस अनुसंधान कार्य में सफलता मिली, तो भविष्य में आयुर्वेद के इतिहास के इस अध्याय को लिखने वाले इतिहासकार उनका नाम भी स्वर्णाक्षरों में लिखें, यही मेरी शुभकामना है।

पारद अनुसंधान में प्रगति

श्री रामेश बेदी

गत नवम्बर मास में देवप्रयाग की पारद अनुसन्धान-शाला के श्री नारायण स्वामी जी ने कनखल में अपना अन्वेषण कार्य आरम्भ किया है। सितम्बर में मुझे देवप्रयाग में ही स्वामी जी के दर्शन करने का सुअवसर हुआ था। पिछले महीनों में स्वामी जी ने अपने अन्वेषण कार्य में जो प्रगति की है उसका संक्षिप्त परिचय रसशास्त्र के जिज्ञासुओं के लिये यहाँ दे रहा हूँ।



तप्त खल्व में बीज जारण (कोयले की भट्ठी)

आचार्य श्री नित्यानन्द जी पिलानी का कुछ समय पूर्व 'सचित्र आयुर्वेद' में एक लेख प्रकट हुआ था। उसका शीर्षक था—'क्या वैद्य सोना बनायेंगे ?' इस लेख के अन्दर गुरु गोरक्षनाथ जी की एक साखी थी जो, इस प्रकार है—

गीध हंस सुआ एक संग,
खटाई त्रिफला अष्टंग
कन्या रजनी गैल किराना
अगनि पुटते दारिद जावा ॥

इस लेख में आचार्य जी ने इस साखी की व्याख्या करते हुए अपने तथा अन्य विद्वानों के मन्तव्यों को दर्शाया था। उस पर जब श्री नारायण स्वामी जी का ध्यान गया तो उन्होंने इन व्याख्याओं को अस्पष्ट पाया। अमृतनाथ योगी के मत का उल्लेख करते हुए श्री नित्यानन्द जी ने दरशाया है कि इस प्रयोग में एक तोला उपर्युक्त पारद से एक तोला कलई का रजत में रूपान्तर होने की संभावना है। इस पर श्री स्वामी जी का कथन है कि इतना श्रम करने के उपरान्त यदि यह परिणाम प्राप्त होता है तो यह कहावत चरितार्थ होती है कि खोदा पहाड़ निकला चूहा।

गुरु गोरक्षनाथ जी ने साखी के अन्त में दारिद जावा जो लिखा है ये शब्द स्वामी जी की सम्मति में स्पष्ट रूप से यह ध्वनि दे रहे हैं कि इस विधि से बना हुआ पारद या तो ताम्रजारित पारद होते हुए पशवेध करेगा अथवा इस प्रयोग में जितना पारद लेंगे उसका डेढ़ गुना स्वर्ण बनेगा। इस विचार को लेकर स्वामी जी ने अपनी प्रयोगशाला में विस्तृत पैमाने पर प्रयोग आरम्भ किया। स्वामी जी इस साखी की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—गीध सर्वभक्षक प्राणी है, इसलिये इस प्रयोग में पारद को सर्वभक्षक बनाने वाले गीध (बीड़) के रूप में नरमूत्रक्षार लेना चाहिये। हंस से शुद्ध पारद का ग्रहण होना चाहिये। सुआ से शुद्ध नीला-थोथा। साथ ही, यह तुत्थ रसरत्नसमुच्चय के पाठानुसार रक्त वर्ग के द्रव्यों से भावना देकर शुद्ध किया हुआ होना चाहिये। अपनी प्रयोगशाला में चालू किये गये परीक्षणों में स्वामी जी ने उपर्युक्त द्रव्य ही लिये हैं। साखी के अनुसार स्वामी जी ने बीड़ (गीध) के रूप में नरमूत्रक्षार लिया है। हंसशुद्ध पारद, सुवाशुद्ध तुत्थ, किराना में अग्निस्थायी सुहागा, ये चारों द्रव्य एक समान लिये। इन्हें पत्थर के खरल में निम्बूस्वरस (खटाई), त्रिफला का अष्टमांश क्वाथ, घृतकुमारी का गूदा (कन्या), हल्दी और दारुहल्दी के स्वरस तथा आमाहल्दी का अष्टमांश क्वाथ—इनमें

से प्रत्येक से अलग-अलग सात-सात भावनाएँ दीं। इस सारी प्रक्रिया में एक श्रमिक को पूरे दस मास लगे, जब कि वह प्रतिदिन आठ-नौ घण्टे कार्य करता था। छाया में शुष्क करने में इसे दो मास लगे थे। तब इसे डमरूयन्त्र में बारह घण्टे मृदु, मध्यम और तीव्र आंच दी। इसमें ऊपर पौने ग्यारह तोले पारद पूर्ण रंजित, पीताभ प्राप्त हुआ। यह पारद अग्निस्थायी नहीं है। शेष द्रव्यों को भिन्न पाचक देकर स्वामी जी इस समय उन्हें क्रुसिबल (आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में काम आने वाले मूषा) में बन्द करके सम्पुट को छाया में सुखा कर अब अग्नि देना आरम्भ कर रहे हैं। स्वामी जी की प्रयोगशाला में यह परीक्षण अभी चालू है और निश्चित परिणाम प्राप्त होने पर हम पुनः रसशास्त्र के प्रेमियों को सूचित करेंगे।

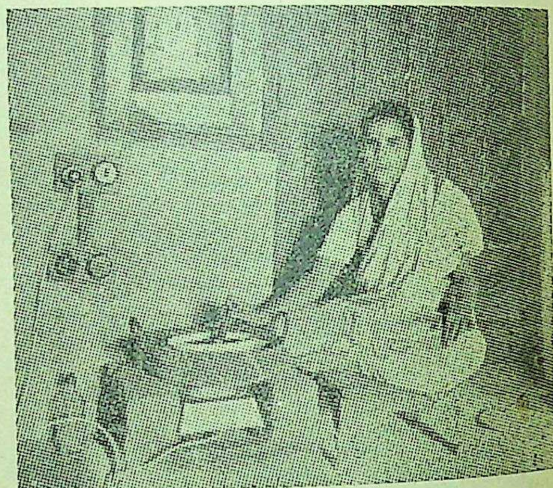
पारद के अन्य दो प्रकार

पिछले लेख में मैंने पारद के जिन प्रयोगों के विषय में लिखा था उनके अतिरिक्त दो अन्य प्रकार भी स्वामी जी ने तैयार किये हैं। रसशास्त्र में, पारद जब रंजित हो जाता है तब अग्निस्थायी, बुभुक्षित और बेधक होता है। शास्त्रकारों ने रंजन की परिभाषा में भलीप्रकार बीज आदि के जारण से पारद में रक्तपित्त वर्ण के प्रादुर्भाव को रंजन कहा है। पारद रंजित होने से लाक्षा के सदृश रंग का (लाक्षाभ जायते), उगते हुए सूर्य की प्रभा जैसा (बालार्क सदृश) और गलाये हुए स्वर्ण जैसा हो जाता है। रसशास्त्र में दिव्यौषधियों में रक्त, पीत, श्वेत और कृष्ण वर्ण की औषधियाँ बताई हैं। उनमें से रक्त पीत्त वर्ग की औषधियों को लेकर कुछ औषधियों का स्वरस, कुछ का क्वाथ और कुछ का चूर्ण लेकर स्वामी जी ने अलग-अलग औषधियों में शुद्ध पारद को पत्थर के खरल में भावित किया। परिणामस्वरूप पारद सुवर्ण सदृश वर्ण का तथा अग्निस्थायी प्राप्त हुआ। इस पारद में आपने अब बीज जारण आरम्भ कर दिया है।

पारद का दूसरा प्रकार—धरणीधर संहिता में कुछ तैलों के योग से पारद 'वेधकृत् भवेत्' ऐसा संकेत मिलता है। इसके अनुसंधान में स्वामी जी ने अपनी प्रयोगशाला में कुछ परीक्षण किये हैं। इसी ऋतु में पैदा हुई पर्वतीय भांग के बीजों से स्वामी जी ने पाताल यन्त्र द्वारा तेल प्राप्त किया और उसे समान भाग शुद्ध पारद के साथ सिलिका बेसिन (स्फटिक पात्र) में रखा। इसे बालुका यन्त्र के अन्दर प्रतिदिन बारह घण्टे लकड़ी के कोयले की अंगीठी पर पकाया गया। मध्यम अग्नि पर मृदु तथा सम तापमान पर लगभग दो मास पकाया गया। तेल के शुष्क होने पर पारद और तेल के शुष्कांश को डमरू यन्त्र में रख कर तीन घण्टे मृदु, मध्यम और तीव्र अग्नि दी गई जिससे पारद पूर्ण अग्निस्थायी और रक्ताभ पाया गया। इसमें भी अब स्वामी जी ने बीज जारण करना शुरू कर दिया है।

तप्त खल्व में बीज जारण

१७ जून १९५७ को उत्तर प्रदेश में आयुर्वेद के उप-संचालक श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी एम० एस-सी०,



तप्त खल्व में बीज जारण (विजली की भट्ठी)

आयुर्वेदाचार्य देवप्रयाग में पारद अनुसन्धान कार्य की प्रगति को देखने आये थे। विविध प्रयोगों, प्रक्रियाओं तथा उपलब्धियों को समझने और प्रत्यक्ष करने में आपने अपने अमूल्य समय में से तीन दिन निकाल कर प्रयोगशाला में ही निवास करने की कृपा की थी। श्री कुलकर्णी जी को पारद अनुसन्धान में वस्तुतः गहरी अभिरुचि है। प्राचीन आयुर्वेद के साथ-साथ उन्होंने नवीन विज्ञान का तथा नव्य रसायनशास्त्र का उच्च अध्ययन किया है। इसलिये, वे आयुर्वेद के रसशास्त्र के विलुप्त प्रकरणों तथा प्रक्रियाओं को सुलझाने के लिये योग्यतम व्यक्ति हो सकते हैं। उनके यहाँ पधारने पर श्री स्वामी जी की प्रार्थना पर उन्होंने सुवर्ण जारण का शुभ आरम्भ किया था। तप्त खल्व के अन्दर

बीज जारण करने के लिये प्रयोगशाला में विशेष प्रकार की भट्ठी बनाई गई है जिसमें सुविधापूर्वक बैठ कर निश्चित तापमान पर घण्टों सतत कार्य किया जा सकता है। देव-प्रयाग में स्वामी जी ने इसे इस प्रकार बनाया था। ईंटों की चिनाई से लगभग एक हाथ ऊँची और लगभग एक फुट व्यास की इस भट्ठी में चार इंच की गहराई में जाली लगाई गई थी जिसमें कोयले भरे जाते थे। उस पर जलेबी तलने वाली चपटी पेंदी की कड़ाही टिकाते थे जिस पर बालू बिछी रहती थी। चपटी पेंदी की कड़ाही में यह लाभ है कि तापमान सर्वत्र एक समान फैलता है। बालुका के ऊपर पोर्सलन का खरल रख कर सुगमता से जारण का कार्य सम्पन्न होता है। इस अंगीठी के पीछे उतनी ही ऊँचाई का चबूतरा बनाया था जिस पर कार्यकर्ता आसानी से बैठकर बिना कष्ट के और बिना थकान के निरन्तर प्रयोग जारी रख सकता था। इस समय अनुसन्धानशाला में सुवर्ण, ताम्र, नाग, यशद और रस बीज (माया बीज) का जारण चल रहा है। अपने कनखल के नये स्थान पर स्वामी जी ने विद्युत शक्ति का लाभ उठा लिया है। यहाँ तप्त खल्व के जारण का कार्य विद्युत भट्ठियों पर किया जा रहा है। दोनों प्रकार की भट्ठियों के फोटो अनुसन्धानप्रेमियों के पथप्रदर्शन के लिये यहाँ दिये जा रहे हैं। अपने अनुसन्धान कार्य को अधिक सूक्ष्मतया चलाने के निमित्त स्वामी जी ने हाल ही में बारह सौ डिग्री तक ताप को मापने के लिये कैमिकल थर्मामीटर भी मंगा लिया है।

स्फटिका सत्त्व

एक मन श्वेत स्फटिका तथा एक मन सैन्धव लवण को कूट पीस कर रसशास्त्र के अनुसार अग्नि के संयोग से स्वामी जी ने फिटकरी का सत्व निकाल लिया है। यह सत्व पारद में क्रामण के रूप में काम देगा। इस सत्व के साथ श्वेत मल्ल के संयोग से दोनों चीजें तलस्थायी होने के बाद इस योग से पारद को बद्ध तथा अग्निस्थायी करके पतरा बनाने की क्षमता आ जायगी। मल्ल और स्फटिका सत्व दोनों को तलस्थायी करने का यह कार्य इस समय रसायनशाला में चल रहा है।

शेषांश १६३७ ई० के वद्य [८७५ पृष्ठ का

across, when he was posted in Ahmedabad, nearly 100 years ago, states, that "the land of Idar was considered to be a dish of gold, where there is a lot of water, mangoes and sugar canes." This was round about the time, when the above MSS appears to have been written. The ruler, then, must have been Rao Jagannath, whose maternal grandmother was a sister of Rana Pratap of Udaypur. The prefix 'Rao' must be an apabhranhsa (अपभ्रंश,) of 'Raya'. Incidentally, as the crow flies, Udaypur is nearer Idar than, say, Ahmedabad.

It is my belief that some non-controversial but influential body should make it a point of collecting MSS touching Ayurved and applied Arts before they are destroyed by times and white ants. Much could be gained from such collections. As far as the above copy MSS is concerned those interested can see the same at my place (92 Atmaram Rd., Bhuleshwar Bombay 2.) for the present.

पारद पर नवीन अनुसंधान

(कांचनयुक्ति व मुक्ति)

श्री कृष्णकुमार एम० ए० आयुर्वेदालंकार

पाठक श्री नारायण स्वामीजी से सम्भवतः परिचित ही होंगे। आप रसशास्त्र के विलक्षण विद्वान् हैं। इस ७२ वर्ष की आयु में भी आप जिस लगन तथा अनथक परिश्रम से आयुर्वेदीय रसशास्त्र में शोधन कार्य कर रहे हैं, उसके लिये आयुर्वेद जगत् की ओर से बधाई के पात्र हैं। आपने अब से ६ वर्ष पूर्व गढ़वाल के देवप्रयाग नामक स्थान पर पारद पर अनुसन्धान-कार्य प्रारम्भ किया था। परन्तु कतिपय कारणों से आपको वह स्थान छोड़ना पड़ा। अब आप गंगा के किनारे कनखल नामक स्थान पर अनुसंधान-कार्य कर रहे हैं। प्राचीन काल में रसविद्या उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच चुकी थी। रस प्रयोग के अद्भुत चमत्कार प्राचीन रसशास्त्र के ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। परन्तु इन ग्रंथों की भाषा इतनी गूढ़ व रहस्यमय है कि उनका भाव ठीक प्रकार से समझ में नहीं आता तथा प्रयोग किये जाने पर उनका फल प्राप्त नहीं होता। इन रहस्यों को न समझने के कारण अनेक विद्वान् इन उपयोगों को कपोल-कल्पित ही समझते हैं।

श्री नारायण स्वामी जी इन प्रयोगों की सत्यता को सिद्ध करने के लिये अनेक वर्षों से प्रयत्न कर रहे हैं। इस कार्य में लगभग ६० सहस्त्र रुपया वे व्यय कर चुके हैं। पर्याप्त सीमा तक स्वामी जी को इस कार्य में सफलता भी प्राप्त हुई है। स्वामी जी को पूर्ण विश्वास है कि इस कार्य में सफलता अवश्यभावी है। आयुर्वेद के प्रेमी किसी समय स्वामी जी द्वारा किये गये अनुसन्धान-कार्यों से अवश्य परिचित होंगे।

मैं स्वामी जी के पास पारद-अनुसन्धान कार्यालय में अनेक बार गया हूँ तथा स्वामी जी से प्रार्थना की है कि वे आयुर्वेद-प्रेमियों के हितार्थ उनकी ज्ञानपिपासा की शांति के लिये कुछ प्रयोग बताने की कृपा करें। स्वामी जी ने अत्यन्त कृपा करके पारद को अग्निस्थायी करने के लिये स्वयं अनुभूत कुछ प्रयोगों को बताने की कृपा की है। यह अग्निस्थायी व रंजित पारद धातुवाद (लोहवेध) के लिये उपयुक्त होता है। मैं उन प्रयोगों को आयुर्वेद जगत् के सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ। कुछ समय पश्चात् अन्य प्रयोगों को भी पाठकों के सम्मुख रखने का प्रयत्न करूँगा।

आयुर्वेदीय रसशास्त्र में पारद के २५ बन्ध बताये गये हैं। पारद अनुसंधान कार्य करते हुए श्री नारायण स्वामी जी ने समय-समय पर पारद को अग्निस्थायी व रंजित करने के लिये जो अनुभव किये हैं, उनमें से सरलता से प्राप्त होने वाली वस्तुओं से पारद को अग्नि स्थायी व रंजित करने के लिये जो अनुभव स्वामी जी ने अपनी रसायनशाला में किये हैं, उनको मैं आयुर्वेद प्रेमियों के सामने रख रहा हूँ।

१---विल्वपत्र स्वरस से पारद को रंजित व अग्नि-स्थायी करने की विधि---कोमल विल्वपत्रों को प्रातः काल धूप निकलने से पहिले तोड़ कर लावें। निर्धूम उपलों की अग्नि में पाक करके पुटपाकविधि से स्वच्छतापूर्वक इनका स्वरस निकालें। एक मृत्तिका पात्र लें। मृत्तिका पात्र इस प्रकार तैयार करें---

मिट्टी का कूण्डा कच्चा (आवे में पकाने से पहिले) लें। सुहागा तथा रसरत्नसमुच्चय के रक्तवर्ग की भावना देने की विधि के अनुसार शोधित तुत्थ समान भाग लेकर पानी में बारीक पीस लें तथा कूण्डे के भीतर और बाहर लेप कर दें। इस कूण्डे को आवे में पकवा लें। इस लेख में पारद के बन्धन के लिये जितने भी मृत्तिका पात्र लिये जायेंगे उन सब में इसी प्रकार के मृत्तिका-पात्रों का व्यवहार होगा। साधारण मृत्तिका-पात्र से बिना निगड पारद बाहर निकल आता है। ऐसे पात्र बनाने में जिन्हें कष्ट मालूम हो और जिनके पास आर्थिक साधन हों उन लोगों को पोर्सिलेन या सिलिका के पात्रों में यह कार्य करना चाहिये।

एक सेर पारद के लिये १० सेर विल्वपत्र स्वरस कूण्डे में डाल कर बालुका यन्त्र या बिजली के हीटर पर ४० दिन-रात रस डाल-डाल कर पकावें। यदि कूण्डे छोटे हों तो दूसरी बार रस डाल कर पकावें। दूसरी बार रस डालने से पहिले पारद को तीक्ष्ण चाकू से खुरच कर कूण्डे

से पृथक् कर लें। बाद में फिर पकावें। ४० दिन-रात स्वरस में पकाने के बाद पारद का ऊर्ध्वपातन यन्त्र में परीक्षण करें कि यह अग्निस्थायी हुआ है या नहीं। नव्य विज्ञान के अनुसार पारद ६३५° सें० पर अग्निस्थायी रहना चाहिये। पूर्ण अग्निस्थायी होने तक पारद का विल्वपत्र स्वरस में पाक करें। इस प्रक्रिया से पारद अपने मूल स्वरूप जैसा तरल एवं लाख के रंग के समान रक्ताभ और पूर्ण अग्निस्थायी तथा बुभुक्षित होता है।

२--जयपाल के बीजों से पारद को रंजित व अग्निस्थायी करने की विधि--देशी जमालगोटा के बीजों को शुद्ध करके उनको मशीन में डाल कर तेल निकलवा लें। इस तेल में पहिले कही गई विधि के अनुसार मृत्तिका-पात्र में पारद को ४० दिन तक पकावें। बाद में ऊर्ध्वपातन यन्त्र द्वारा पारद के अग्निस्थायित्व का परीक्षण करें। यदि कोई कमी हो तो पुनः जयपाल के तेल में पाक करें। इस प्रकार से सिद्ध किया हुआ पारद तरल तथा पीताभ रंजित होता है और अग्निस्थायी तथा बुभुक्षित होता है।

३--कुसुम्भ के बीजों से पारद को रंजित व अग्निस्थायी करने की विधि--ऊपर कही गई विधि से कुसुम्भ के बीजों के तेल से पारद का मृत्तिकापात्र में ४० दिन तक पाक करें। इस विधि से सिद्ध पारद तरल तथा पीताभ रंजित और अग्निस्थायी तथा बुभुक्षित होता है।

४--अलसी के तेल से पारद को रंजित व अग्निस्थायी करने की विधि--ऊपर कही कही गई विधि से अलसी के तेल में पारद का मृत्तिकापात्र में ४० दिन तक अग्निस्थायी होने तक पाक करें। इस विधि से सिद्ध पारद माखन जैसा गाढ़ा तथा पीताभ और अग्निस्थायी तथा बुभुक्षित होता है।

५--भिलावे के तेल से पारद को रंजित तथा अग्निस्थायी करने की विधि--शुद्ध भिलावों का पातालयन्त्र में तेल निकलवा लें। इस तेल में पारद का मृत्तिका पात्र में ४० दिन तक पाक करें तथा उसके अग्निस्थायित्व की परीक्षा करें। इस विधि से सिद्ध पारद तरल तथा पीताभ रंजित और अग्निस्थायी तथा बुभुक्षित होता है।

नोट--भिलावे के तेल व जमालगोटे के तेल में पारद को पकाते समय इनके धुएँ से बचना चाहिये, अन्यथा शरीर पर सूजन आ जाती है। इनका धुआँ आँख, नाक व मुख पर बिलकुल नहीं लगना चाहिये। जहाँ तक हो सके यह कार्य खुली वायु में करना चाहिये। पित्त प्रकृति वाले को विशेष-रूप से इन तेलों में पाक नहीं करना चाहिये।

६--गन्धविरोजा 'श्रीवेष्टक' द्वारा पारद को रंजित व अग्निस्थायी करने की विधि--सर्वप्रथम गन्धविरोजे को साफ करने का कार्य करें। एक चौड़े मुख के पात्र में ३ हिस्से पानी भर कर इसके ऊपर स्वच्छ कपड़ा बांध दें। इस कपड़े पर उसी वर्ष का ताजा निकला हुआ बिरोजा बिछा दें। बर्तन को चूल्हे पर रख कर आँच दें। इससे बिरोजा छन कर नीचे के पात्र में आ जायेगा तथा कपड़े पर मैल व लकड़ी बच जायेगी। इस विधि से साफ किया हुआ बिरोजा पारद को रंजित व अग्निस्थायी करने के कार्य में आता है।

शुद्ध बिरोजे को १ सेर पारद के लिये १० सेर लें। सुहागा व तुत्थ से लिप्त पूर्वोक्त मृत्तिकापात्र में इस बिरोजे के साथ पारद का ४० दिन तक पाक करें। जब पात्र में बिरोजा पकते-पकते सूख जावे और उसमें दरार पड़ जावे तब कूण्डे को फोड़ कर पारद अलग कर लें तथा दूसरे कूण्डे में पारद और बिरोजा डाल कर पाक करें। इस प्रकार ४० दिन तक पाक करने के बाद पारद के अग्निस्थायित्व का परीक्षण करें। इस विधि से सिद्ध पारद तरल तथा पीताभ रंजित और पूर्ण अग्निस्थायी तथा बुभुक्षित होता है।

धरणीधर संहिता में कुछ श्लोक हैं जिनमें पारद के वेध का विधान बताया गया है--

> अथ वेध विधानं हि कथयामि सुविस्तरम्।
> यस्य विज्ञान मात्रेण वेधज्ञो जायते नरः॥
> धूर्त्ततैलमहेःफेनं कंगुणीतैलमेव च।
> भृंगतैलं विषं चैव तैलं जातीफलोद्भवम्॥
> हयमारशिखातैलमब्धिशोषक तैलकम्।
> एतान्यन्यानि तैलानि व्यवाय करणानि च॥
> संस्कारैः संस्कृतः सूतः समस्त तैलव्यवायिना।
> यामैकं मर्दितं सम्यक् पारदो वेधकृद्भवेत्॥

ऊपर के श्लोकों में पारद के वेध की विधि बतलाई गयी है। स्वामी जी ने अपनी प्रयोगशाला में इस विधि का प्रयोग करके अनुभव प्राप्त किया है। स्वामी जी ने इसमें दो प्रकार के अनुभव प्राप्त किये। बीजजारित पारद को उपर्युक्त तैलों से एक-एक प्रहर तप्त खल्व में घोंटने से उपर्युक्त सारे तैल अलग-अलग क्रामण करके काम देते हैं। इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने अपनी रसायनशाला में साधारण शुद्ध पारद पर इन तैलों का क्या प्रभाव होता है इसकी भी जाँच की। इनको अनुभव हुआ कि उपर्युक्त रसबन्ध के लिये बताये तैलों में पारद को द्विगुण तैल में पकाने से पारद अग्निस्थायी, रंजित व बुभुक्षित होता है। स्वामी जी ने अनुभव किया कि ऊपर की रसबन्ध की विधि से जो पारद अग्निस्थायी व रंजित होता है वह स्वयं क्रामण, बन्धन तथा वंग स्तम्भन करता है। स्वामी जी का यह भी अनुभव है कि ऐसे जो हठरस बनाये जाते हैं, उनके अभ्रक या गन्धक का जारण न करने पर भी रसशास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार पारद को आहिस्ता-आहिस्ता ग्रास देने से उसमें बीज जारण करने से उपर्युक्त सारे पारद दशवेधी होते हैं।

ऊपर के लेख से आयुर्वेद रसशास्त्र के अनुसन्धान-कार्य को एक नयी दिशा मिलती है। आशा है आयुर्वेद-प्रेमी इस दिशा में विचार करेंगे तथा अनुसन्धानकार्य को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे।

गोरक्षसंहिता

(षष्ठः पटलः)

(पूर्वतोऽनुवृत्तः)

त्रिकूटं लेपयेत्तेन क्रामणेन तु मर्दितम् ।
ताराभिष्टारविन्दां वा तारं वा स्थापयेत्क्षितौ ।।२०४।।
त्रिदिनं तद्गुरुध्मातं शतांशाद्धेममुत्तमम् ।
तदोपयोगं कर्तव्यं फलोक्तमधिकं भवेत् ।।२०५।।
उत्तरोत्तरयोगेन लेपात्क्षेपेण सूतकः ।
त्रिकूटं वेधयेदेष एकैकं च महारसः ।।२०६।।
उरगं वाऽथ संद्रव्ये क्रामणेन समायुतम् ।
धमकम (?) बलं ज्ञात्वा सत (प्त) सप्ताहवेधकः ।।२०७।।
जाम्बूनदं भवेद्द्रव्यं तारे वेधा अवेधकः ।
रसायनोपयोगेन उत्तरोत्तर (?) फलप्रदः ।।२०८।।
उक्ताङ्गुलीयकं श्रेष्ठं तन्मध्येत्वसितं घनम् ।
रसेरसायने चैव उक्तं श्रेष्ठं गुणावहम् ।।२०९।।
शोध्यं संस्कृत्य विधिवत्क्षाराम्लस्नेहभावितः ।
तेनैव वाहयेद्धेम समं वाचार्यसूतके ।।२१०।।
उक्तकर्मविधानेन विशेषो. . .उदाहृतः ।
तद्धेम पादतो दद्यात्सूतकस्याम्लमर्दनात् ।।२११।।
पूर्वशुद्धस्य दीप्तस्य पासितस्य[1] नियोजयेत् ।
शुल्वारनागवङ्गानि तीक्ष्णहेमपुटे पचेत् ।।२१२।।
माक्षिकेन (ण) कृतेनैव तच्चूर्णमम्लभावितम् ।
शिलाजितुः (तु) वति (?) कासी क्षारा पटूनि च ।।२१३।।
समभागानि सर्वाणि माक्षिकाद्ध (र्ध) गुणं भवेत् ।
क्षाराम्लपेषितं सम्यक् सितमाठरयोजितम् ।।२१४।।
कतिमानि सुपिष्टानि वध्या (न्ध्या) वज्रं च कञ्चुकी ।
सुरदालीरसं दद्यान्मोदयित्वा तु शोषितम् ।।२१५।।
क्षाराम्लयोजितंपश्चात्कान्तग्रावापुटे क्षिपेत् ।
पिधाय तेन तद्वह्नौ व. . .धौ वा क्षितौ न्यसेत् ।।२१६।।
उद्धरेत्सप्तसप्ताहात्पूजयित्वा शिवं तथा ।
उद्घाटयेद्रूपं पश्चादिन्द्रायुधसमप्रभम् ।।२१७।।
मुञ्चत्यर्चिः सहस्राणि सूर्यांशुस्पर्शने रसः ।
भागं शतो विधे. . .त भवेज्जाम्बूनदं शुभम् ।।२१८।।

तेन तारं शतांशेन रुक्मं भवति शोभनम् ।
खरकरे वा शतांशेन स रसस्य तु द्रुतस्य ।।२१९।।
मासमेकं च. . .मध्वाज्येन तु लेपयेत् ।
पद्मगर्भोपमो देही महाकल्पान्तजीवितः ।।२२०।।
जराव्याधिविनिर्मुक्तो महाबलपराक्रम :।
कुमारसदृशः सिद्धो रसेनाने (न) जायते ।।२२१।।
कदम्बमो (गो)लकं पीतं कारवेल्लमथापि वा ।
अथांगुलीयकं श्रेष्ठं शुद्धं क्षाराम्लभावितम् ।।२२२।।
स्नेहितं निर्वपेन्नागे शुद्धं तु त्रिगुणं बुधः ।
तद्वाहयेत्समं शुल्वे तारारैर्वात्रुटिक्रमात् ।।२२३।।
रक्तस्नेहे निषेकेण धातुशेषं क्षयं गतः ।
षोडशांशादिवीजं तु तदद्वात्स्व (स्व) र्णमुत्तमम् ।।२२४।।
कृष्णतारस्य हेमस्तु भवेन्मातृसमं शुभम् ।
उत्तरोत्तरकालेन षण्मासावधिसंस्थितम् ।।२२५।।
काली (लि) क (का) रहितं हेम मातृकोत्तरतां व्रजेत् ।
माक्षिकस्य रजः शुद्धं सप्ताहं तु बलारसे ।।२२६।।
महारक्तेऽथवा स्थाप्य शोष्याम्लस्नेहनेन तु ।
शुल्वपत्रं पुटे पक्वं मध्वाज्येन तु तद्रजः ।।२२७।।
क्रामणेन भवेदध्यत (?) प्यांतं स्वर्णमुत्तमम् ।
अर्द्धे (र्धे)न मातृकातुल्य कृष्णतारं विधीयते ।।२२८।।
उत्तारे तु हिमं व्यूढं द्वादशार्द्ध (र्ध) गुणोदयम् ।
षोडशार्द्ध (र्ध) विधा ज्ञेयं त्रिधा द्वादशवर्णकम् ।।२२९।।
ज्ञात्वा संयोजयेद्धेम तद्धेम तु यथा तथा ।
रजादिभिः कृतशुद्ध (–) तारारेन्दीवरे भवेत् ।।२३०।।
तारारेन्दीवरे तत्र धातुदोषविनिर्गतम् ।
रक्तस्नेहे निषिक्तं तु हेमार्द्धार्द्धे (र्धार्धे)न उत्तमम् ।।२३१।।
यं नागं वापितं तेन त्वम्लस्नेहेन वापितम् ।
तारारेन्दीवरं व्यूढं पृथक् पृथक् नियोगे (ग) तः ।।२३२।।
रक्तस्नेहे निषिक्तं तु हेमार्द्धार्द्धे (र्धार्धे)न उत्तमम् ।
पीतसाराणि भवन्ति हेमार्द्धार्द्धे (र्धार्धे)न तां व्रजेत् ।।२३३।।

(शेषांश ८८७ पृष्ठ पर)

1. पाशनमित्यत्र तालव्यः पठयते रसोपनिषदि १-७३ ।

सर्पगंधा व प्राचीन साहित्य

आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी बी० ए०, आयुर्वेदशास्त्राचार्य

'सर्पगन्धा' के नाम से आज प्रत्येक चिकित्सक व साधारण जन भी परिचित हैं। इस औषधि ने अपने गुण और कर्म के आधार पर सारे संसार के चिकित्सकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया है। सन् १९२३ में जब 'रक्तभार' का ज्ञान प्राप्त हुआ और इसकी उचित औषधि की खोज की जाने लगी तब चिकित्सकों का ध्यान इस की तरफ गया। सन् १९३० में महामहोपाध्याय गणनाथ सेन सरस्वती और उनके सहयोगी डा० कार्तिकचन्द्रबसु का ध्यान इस की तरफ विशेष रूप से आकर्षित हुआ और इसका विश्लेषण किया गया। सन् १९३१-३३ तक डा० सिद्दिकी ने इस में तीन उपक्षार तत्त्व विश्लेषित किये और पागलपन के समुचित वस्तुतत्त्व का खोज किया। इसके रक्तभार-ह्रासक गुण के ज्ञात होते ही चारों तरफ इस पर अनुसंधान प्रारंभ हुए। देहरादून की हिमालय ड्रग कम्पनी ने इसकी टिकिया बना डाक्टरों के समक्ष उपस्थित कर तहलका मचा दिया। अखिल भारतीय ड्रग-रिसर्च इन्स्टीस्यूट लखनऊ ने इस पर विशेष अनुसंधान प्रारम्भ कर दिया है और अबतक गवेषणा जारी है।

विशेषता—यह औषधि भारतीय हैं और भारतवर्ष में चिरकाल से पागलपन की जड़ी के नाम से प्रसिद्ध है और प्रयुक्त हो रही है। फिर भी बिहार और उत्तर प्रदेश के कुछ वैद्यसमुदाय को छोड़ कर सर्व सामान्य में इसका समुचित प्रचार नहीं था। यह औषधि अपने प्राकृतिक मूल चूर्ण के प्रयोग से रक्त भार का ह्रास करती है। यह इसकी बहुत बड़ी विशेषता है। इसके अतिरिक्त यह निद्राकर, वल्य व मेध्य भी है। इसी कारण और विशेषकर इस कारण कि इसके उपक्षारों को आधुनिक केमिष्ट अबतक सिंथेटिक उपक्षार न बना सके हैं, इसका प्रयोग अब अधिक बढ़ गया है। गत दस वर्षों में इसका प्रयोग नवीन होने से और यूरोप एवं अमेरिका के आमिषभोजी व्यक्तियों में 'रक्तभार' की बीमारी अधिक होने के कारण इसकी मांग भारतवर्ष से अधिक हुई और बहुत बड़ी मात्रा में यह भेजी गई। अतः पाश्चात्य देशों के चिकित्सक इसके निवास-स्थान की फिक्र में अधिक लगे और विभिन्न देशों के पर्यवेक्षण के बाद यह पता चला कि यह औषधि न केवल बिहार व उत्तरप्रदेश में होती है, बल्कि भारतवर्ष के बिहार, उत्तर प्रदेश, पहाड़ी तराई के प्रदेश, सिंगापुर, मलाया, लंका, कोंकन, देहरादून व ४००० फीट की ऊँचाई तक के प्रदेशों में भी पाई जाती है। भारतवर्ष के अलावा बर्मा, फिलीपाइन, उष्णकटिबंधीय अफ्रीका के प्रदेश आदि में भी यह प्राप्त होती है। अतः इसकी कई जातियों एवं उपजातियों का भी पता चला। कुछ पाश्चात्य उद्भिज्ज शास्त्रियों व कुछ भारतीय चिकित्सकों का भी यह विचार था कि यद्यपि इस का ज्ञान भारतवर्ष से हुआ है, किन्तु भारतीय चिकित्सा पद्धति के ग्रन्थों—आयुर्वेद के संहिता ग्रन्थों में इस का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। यह अपरिज्ञात और भारतीयायुर्वेद के निघंटुओं से परे की औषधि है। श्री घोष ने भी अपनी मेटेरिया मेडिका में इस की टिप्पणी में ऐसा ही मिलता-जुलता विचार दिया है। अतः विचारणीय विषय यह है कि 'सर्पगन्धा' का ज्ञान प्राचीन चिकित्सकों को था या नहीं और यदि था तो किस रूप में और कहां-कहां इस का प्रयोग किया गया? सर्पगन्धा पर कई बार आयुर्वेदिक पत्रों में लेख निकल चुके हैं, किन्तु आधुनिक इंगलिश के विवरणों के अनुवाद के अतिरिक्त इन पर किसी ने विचार नहीं किया है। अस्तु, प्रस्तुत विवरण इस प्रकार का है, जिस से इस संवन्ध का ज्ञान हो सके। अतः प्रथम स्थल निर्देश करेंगे।

सर्पगन्धा का प्रयोग आज से ३००० वर्ष पूर्व भी चिकित्सा के लिये हुआ था। चरक और सुश्रुत तथा वाग्भट में यह कई नामों से उल्लिखित है।

आयुर्वेद की सर्वप्राचीन संहिता सुश्रुतसंहिता व अन्य में इस का प्रयोग इन नामों से हुआ है—सर्पगन्धा, सुगंधा, सुगंधिका, महासुगंधा, नाकुली, गंधनाकुली, सर्पाक्षी, सुरसा इत्यादि। अतः क्रमशः हम इसके स्थान का निर्देश करेंगे—

सुश्रुत—(१) सर्पगन्धा, कल्प. अ. ५-८४ श्लोक एकसरगण।

डह्लन ने इसे सर्पगन्धा-नाकुली आदि लिखा है।

(२) सर्पगन्धा—उत्तर अ० ६० श्लो० ४७—अपराजिता-दिगण। वर्षासु छत्राकारा इति —डह्लन

(३) सर्पगन्धा—क० अ० ७-२९—सर्पछत्रिका इति डह्लन

(४) सुगन्धा—क० अ० ५-७६—सर्वसुगन्धा नाकुली इति यावत्—डह्लन।

(५) सुगन्धिका—क० अ० ५-६६—सर्पगन्धिका इति डह्लनः

(६) सुगन्धिका—क० अ० ६-१५—सर्पसुगन्धा इति डह्लन

(७) सुगन्धिका—चि० १७ (८-२२ श्लोक) उत्पल-सारिवा इति डह्लनः

(८) गन्धनाकुली—क० ६-२२—सुगन्धमूला रास्ना

(९) गन्धनाकुली—क० ८-११७—सुगन्धि रास्ना

(१०) गन्धनाकुली—क० अ० ३८-१७—सुगन्धि रास्ना

(११) नाकुली—सु० क० अ० ८-१०८

(१२) महासुगन्धा—क० अ० ८-११७

(१३) सर्पाक्षी—क० अ० ६-२२—रक्तपुष्पा शंखपुष्पी पूर्व देशे प्रसिद्ध—डह्लनः

(१४) सर्पाक्षी—क० अ० ८-१७

चरक—(१) गन्धनाकुली—च० चि० अ० ३-२६—अगुर्वादि तैल

(२) नाकुली— ,,

(३) नाकुली—च० चि० अ० २५-२५ च० चि० अ० २३-२१२

(४) नाकुलीद्वय—च० चि० १४-५६ ; च० चि० अ० ९-४६ ; महापैशाचिक घृत च० चि० २३-७९—महाअगद हस्ती

वाग्भट—(१) सर्पगन्ध—उ० ५-३ सर्पगन्धाख्या नाकुली —अरुणदत्त

(२) सपसुगन्धा—चि० अ० १४-१०३—नाकुली

(३) नाकुली—वा० उ० ३०-१५

(४) नाकुलीद्वय—व० उ० ६-३६

इस प्रकार ढूँढ़ने पर ये उद्धरण विषचिकित्सा, अपस्मार, उन्माद और दूषित रक्त रोगों में मिलते हैं। मद-मूर्च्छा-संन्यास-अपस्मार-उन्माद के प्रकरण या विष चिकित्सा में यह उद्धरण पाये गये हैं। सम्भव है कतिपय और स्थानों में भी नाम हों, क्योंकि सर्पगन्धा के पर्याय में सर्वनिघंटुकार निम्न विचार व संज्ञाएँ प्रदान करते हैं।

यथा—(१) नाकुली सर्पगन्धा च सुगन्धा भोजिगन्धिका।
स च सर्पसुगन्धा च तथा वारिजपत्रिका।
—धन्व० नि०

(२) नाकुली सर्पगन्धा च सुगन्धा रक्त पत्रिका।

प्रधानभेद—ईश्वरी भाग गन्धा चाप्यहिभुक् सुरसा तथा।
सर्पादिनी व्याल गन्धा ज्ञेयाचेति दशाह्वया।
रा० निघंटु

द्वितीयभेद—अन्यामहासुगन्धा च सुवहा गन्धनाकुली।
सर्पाक्षि फणिहन्त्री च नकुलाढ्याहिभुक् परा।
विष मर्द्दनिका चाहि-र्मर्दिनी विष मर्दिनी।
महाहिगन्धाहि लता, ज्ञेयास्य द्वादशाह्वया।
रा० नि०

(३) नाकुली सुरसा नाग सुगन्धा गन्धनाकुली।
नकुलेष्ण भुजंगाक्षी सर्पाक्षी विषनाशिनी।
भा० प्र०

(४) नकुलेष्ण महातीर्था विषघ्नी सुवहा च सा।
सुनन्दा विषदंष्ट्री च तथैव चिरपत्रिका।
—कैयदेव

ऊपर की संज्ञाओं का विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि उनके रूप परिचायक कई संज्ञाएँ हैं जो पत्र-पुष्प-काण्डादि का ज्ञान कराती हैं।

मूलपरिचायक—सुगन्धा, सर्वगन्धा, नागगन्धा, नाग-सुगन्धा, गन्धनाकुली, व्यालगन्धा, सर्पाक्षी।

पत्र—रक्त पत्रिका, वारिज पत्रिका, सुरसा, स्वरसा।

पुष्प—सर्पाक्षि।

गण-परिचायक—सर्पादनी, अहिभुक्, फणिहंत्री, अहिर्मर्द्दिनी, विषमर्द्दनिका, विषमर्द्दनी, विषनाशिका।

जीव-कीटप्रिय—नाकुली, नकुलेष्ठा, नकुलाढ्या।

आकार-परिचायक—सर्पांगी।

काल—वारिज पत्रिका, चिरपत्रिका।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सर्पगन्धा या नाकुली एक प्रकार की बहुवर्षायु (चिरपत्रिका) वनौषधि है, जिसके मूल में सुगन्ध होती है। मूल की आकृति सर्पाकार टेढ़ी-मेढ़ी सर्पवत् होती है। ऊपर मोटी, नीचे पतली ; पत्र लाल वर्ण के सुन्दर व मृदु होते हैं और वारिपात (वर्षा) में नये पत्ते लगते हैं। पत्र चिरस्थायी होते हैं। पुष्प रक्त-श्वेत वर्ण का व सर्प की आँख के वर्ण का होता है। नये पत्रों का वर्ण रक्त (नवपत्र) व रसदार होते हैं। नकुल

इसे अधिक पसन्द करते हैं और यह विषनाशक है। इसकी जड़ में सुगन्ध होती है। पत्र स्वरस में सर्प की गन्ध आती है। फल-पुष्प सबों में सर्प की गन्ध आती है।

इसका अहिलता एक पर्याय राजनिघंटु ने दिया है, जिससे कोई-कोई इसे लता जाति की मानते हैं और कहते हैं कि यह नाकुली कोई लता जातीय और द्रव्य है, वर्तमान सर्पगन्धा Rauwolfia serpentina नहीं है। किन्तु किसी और निघंटुकार ने इसे लता नहीं माना है। अहिलता पर्याय राजनिघंटु से पूर्व का धन्वन्तरि निघंटु लता नहीं मानता। केवल गन्धनाकुली या महा-सुगन्धा के लिए आया है। अतः उसे 'लता' मानना उचित नहीं समझा जाता (इसका निराकरण आगे देखिए)। दूसरा भेद गन्धनाकुली का है। यह पूर्व की अपेक्षा बड़े क्षुप के रूप में ३-४ फीट तक ऊँची होती है। मूल मोटी और अधिक सुगन्धित होती है। नाकुली या सर्पगन्धा जहाँ एक फीट तक ऊँची होती है, यह इससे दो-तीन गुना ऊँची होती है। मूल भी पर्याप्त मोटी होती है। अतः महा-सुगन्धा, गन्धनाकुली दिया है। यह सामान्य विवरण ऊपर के पर्याय बतलाते हैं।

सर्पगन्धा के गुण—

(१) नाकुली युगलं तिक्तं, कटूष्णं च त्रिदोषजित्।
अनेक विषविध्वंसी, किंचिच्छ्रेष्ठंद्वितीयकम्।
रा० नि०

(२) नाकुली कटुका तिक्ता तथोष्णा क्रिमिरोगहृत्।
वृश्चिकोन्दुरसर्पारि, विषं नाशयतिक्षणात्।
गदनिग्रह

(३) नाकुली तुवरातिक्ता, कटुकोष्णा नियच्छति।
भोगिलूता वृश्चिकाखु-विष ज्वर क्रिमिव्रणान्।
भाव०

(४) नाकुली कटुरूष्णंस्यात्, तिक्ताविपरिकीर्तिता।
मूषकस्यविषं हंति, क्रमिदोष विनाशिनी।
धन्व०

अर्थात्—ऊपर के विवरण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि सर्पगन्धा या नाकुली स्वाद में तिक्त व कटु, वीर्य में उष्ण होती है। यह वृश्चिक, सर्प, लूता व मूषक विष को तथा अन्य विषों का नाशक है। क्रिमि रोग व व्रण व विषम ज्वर नाशक है।

अतः इसीके आधार पर सर्पगन्धा-नाकुली-गन्धनाकुली का प्रयोग सदा अगद-सर्पविष-लूताविष-वृश्चिकविष-इंदुर-विष इन सब में मिलता है।

विशेष—ऊपर के पर्याय व गुण के विवरण से यह नाकुली या सर्पगन्धा एक वनौषधि है, जो क्षुप जातीय व वर्षा में अधिक पल्लवित होती है, ऐसा ज्ञात होता है। नाकुली के पर्याय में किसी निघंटुकार ने लता का प्रयोग नहीं किया है। नाकुली के द्वितीय भेद महासुगन्धा व गन्धनाकुली के लिए "अहिलता" शब्द आता है। इस आधार पर कतिपय वनस्पति शास्त्री इसे "रावोल्फिया सर्पेंटाइना" या सर्पगन्धा" नहीं मानते। उनका कहना है कि "ईश्वरी" नाकुली का पर्याय है, अतः "ईश्वरमूल" (Aristolochia Indica) यह लता जाति की औषधि व विषहारक है, इसका ग्रहण होना चाहिए। किन्तु यह भ्रम है। ईश्वरमूलम् का पाठ प्रत्येक निघंटु पृथक् करते हैं। ईश्वरी पर्याय यदि सर्पगन्धा का है तो सर्पगन्धा न मानना और ईश्वरी से ईश्वरमूल मानना ही क्यों अभिप्रेत है? सर्पगन्धा का वर्ग प्राकृतिक वर्ग में एपोसाइनेसी (Apocinaceae) है और ईश्वरमूलम् का एरिस्टोलोचि-एसी (Aristolochiaceae) वर्ग है। यह लता जातीय है। "ईश्वरमूल" रुद्रजटा का पर्याय है। यथा—रौद्रीजटा रुद्रजटा च रुद्रा सौम्यासुगन्धा सुवहाघना च। स्यादीश्वरी रुद्रलता सुपत्रा, सुगन्धपत्रा सुरभि शिवाह्वा पत्रवल्ली-जटावल्ली रुद्राणीनेत्र पुष्करा। महाजटा जटारुद्रा नाम्ना विंशतिरीरिता।

इस प्रकार राजनिघंटु ने ईश्वरी पर्याय दिया है। अतः एक नाम साम्य से शेष नाम का ध्यान नहीं रखा जाय, यह न्याय संगत नहीं है। राज निघंटु के अतिरिक्त अन्य निघंटु 'ईश्वरमूल' का विवरण नहीं देते। इसमें सर्प की-सी गन्ध या अन्य सुगन्ध नहीं होती।

गुण—निघंटुशिरोमणि ने इसके गुणों में निम्न बातें दी हैं —

रसे कटुस्त्वीश्वरी च श्वासकासहरा 'नृपे'।
हृद्रोग भूत विद्रावी, राक्षसानां निर्वाहिणी।

तो वे गुण जो सर्पगन्धा में है, नहीं पाये जाते। साथ ही 'ईश्वरमूल' पृथक् द्रव्य है। अतः ईश्वरमूल लता है और नाकुली को 'अहिलता' लिखा है। अतः लता होने से सर्पगन्धा के नाम पर ईश्वरमूल लिया जाय, यह तर्कसंगत बात नहीं है। वास्तव में 'सर्पगन्धा' शास्त्रीय नाकुली ही

है और इसे बिहार व उत्तर प्रदेश में 'धवल बरुआ', 'धन-मरवा', 'धवरमरवा' नाम से पागलपन की बूटी कहते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि यदि अहिलता लिखा है तो लता जाति का क्यों न माना जाय? और नाकुली को लता जाति का मान तो फिर निघंटु में "सर्पगन्धा" का विवरण किस नाम से है। इसका उत्तर यह है कि लता लिखने से सब जगह लता का ग्रहण नहीं होता। यदि लता अर्थ माना जाय तो प्रियंगु-स्पृक्का को क्या कहेंगे? यथा——

प्रियंगुः फलिनी कान्ता-लता च महिलाह्वया।

किन्तु 'लता' पर्याय प्रियंगु का होने से क्या यह लता है? नहीं, यह क्षुप जातीय २–३।। फीट ऊँची बहुशाखा क्षुप है। स्पृक्का का पर्याय लता है, किन्तु यह क्षुप व शाक वर्ग की औषधि है। अमरकोष ने इस पर्याय में इतना लिखा है——

मरुन्मालातु पिशुना स्पृक्का देवी लता लघु।
समुद्रान्ता, वधूः कोटि वर्षा लंकोपिकेत्यपि।
——अमर०

अतः जहाँ-जहाँ लता हो उसे लता मानना हानिकारक है। यद्यपि राजनिघंटु ने भी नाकुली को 'लता' पर्याय नहीं दिया है, फिर भी संदेह करने के लिए 'नाकुली' भेद में "अहिलता" आने से लता मानने का आग्रह किंचित्मात्र भी लें तो फिर लता के अर्थ में निघंटु का विचार देखिए——

"स्कंधप्रमाणस्य लता तु शाखा"——राजनिघंटु०

अर्थात्——जिसके काण्ड स्कंधप्रमाण होते हैं, उन्हें लता और शाखा कहते हैं। अतः स्कंध तक के नीचे के पौधों में सदा प्रायः लता शब्द का प्रयोग मिलता है। अतः यह क्षुप भी स्कंधप्रमाण से छोटा होता है और अधिक से अधिक ३–३।। फीट तक ऊँचा पाया जाता है। 'धवल-वरुआ' श्वेत रंग का बोआ हुआ पाया गया है। अतः लता शब्द एक स्कंधीय क्षुप के अर्थ में आ सकता है।

लता के पर्याय में——ज्योतिष्मती-दूर्वा, शाखा, वल्ली, प्रियंगु, स्पृक्का, माधवी, कस्तूरी इत्यादि आते हैं। इन सब में कौन लता हैं यह बिचारिए। अतः 'लता' शब्द के प्रयोग से 'अहिलता' के अर्थ में ईश्वरमूलम् का प्रयोग लाभकर नहीं प्रतीत होता। अतः गुण कर्म के आधार पर यह सर्पगन्धा ही मानना चाहिए।

थोड़ी देर के लिए यदि ऐसा ही मान लें तो यह सर्पगन्धा क्या निघंटु में वर्णित औषधि नहीं है? इसके उत्तर में निवेदन है कि ऐसा ही प्रश्न आज से २० वर्ष पहले भी उठा था। स्व० आचार्य यादवजी इत्यादि ने इस पर विचार किया था। स्वर्गीय रूपलाल वैश्य 'बूटीदर्पण' के सम्पादक ने एक और बिचार प्रस्तुत किया था। उनका कहना था कि निघंटु की जाम्बवती-जम्बू, यह 'क्षुप जातीय' सर्पगन्धा है और इसमें 'मदघ्नी' गुण होने से यह रक्तभार ह्रासक अर्थ भी रखती है। "रक्तभार" को चरक ने शोणित विज्ञानीय अध्याय में रक्त रोगों में 'मद-मूर्च्छा-संन्यास' का विवरण दिया है जो 'मद' नाम से 'रक्तभार' का परिचायक है, अतः इसमें स्पष्ट गुण यह भी है। यथा——

जम्बू जाम्बवती वृत्ता, वृत्तपुष्पा च जाम्ववी।
मदघ्नी नाग दमनी दुर्धर्षा दुस्सहा नव। रा० नि०
ज्ञेया जम्बू त्रिदोषघ्नी तीक्ष्णोष्णा कटु तिक्तका।
उदराध्मान विषघ्नी च, कोष्ठ शोधन कारिणी।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि जम्बू एक प्रकार की वनौषधि है, जिसके पत्र जामुन के पत्र की तरह होते हैं। मूल व काण्ड वृत्ताकार होते हैं पुष्प वृत्ताकार (वृत्तपुष्पा) जम्बू के वर्ग के होते हैं। यह मद (रक्तभार) की नाशिनी, सर्प-विषनाशक, तीव्र क्रिया करनेवाली (दुर्धर्षा) व विष-नाशक है। कोष्ठशोधन करनेवाली और उदराध्मान को दूर करनेवाली है। स्वाद में बहुतिक्त और तीक्ष्ण व उष्ण है तथा त्रिदोष-नाशक है। अतः श्री रूपलालजी का विचार था कि "मदघ्नी" का गुण स्पष्टतया रक्तभार ह्रासक होने की वजह से इसे 'सर्पगन्धा' मानना चाहिए। यह लता जाति की नहीं है, क्षुप भी है और इसे सर्पगन्धा या धनमरवा मानना चाहिए। विचार करें तो ज्ञात होगा कि 'सर्पगन्धा' के सार्थक नाम पर्यायों में कोई नहीं आये। 'नाग-दमनी' शब्द एकमात्र है जिसका अर्थ सर्पगन्धा-नाकुली के सम्बन्ध में जोड़ सकते हैं। जम्बू या जाम्बवती का सर्प-गन्धा से कोई सार्थक साम्य नहीं मिलता। गुणों में विषघ्न होने से कई द्रव्य विषघ्न हो सकते हैं, अतः अपनी आत्मा की तुष्टि में यह विचार मेल खाता दृष्टिगोचर नहीं होता। जहाँ तक "सर्पगन्धा" मूल शब्द व पत्रादि की संज्ञाएँ भी साम्यकर होती है, अतः सर्पगन्धा "रावोल्फिया सर्पेटाइना" ही है, ईश्वरमूल पृथक् द्रव्य है, जम्बू पृथक् द्रव्य है।

आखिर भ्रम क्यों?

यह भ्रम मूल ग्रन्थ लेखकों की नहीं अपितु टीकाकार श्री डल्हन की फैलाई हुई है। क्योंकि कल्पस्थान (अ० ७

श्लोक २९ में व उ० अ० ६०-४७ श्लोक–सुश्रुत) में टीका करते समय डल्हन ने पर्याय "वर्षासु छत्राकारा" व "सर्पछत्रिका" यह पर्याय दो स्थानों पर दिये हैं। कुछ स्थान पर "सुगन्धमूला" दिया है। इससे नाकुली व सर्पगन्धा के अर्थ में भ्रम हो गया है।

जो लोग सर्पगन्धा "रावोल्फिया सर्पेण्टाइना" को मानते हैं उनका कथन है कि 'वर्षासु छत्राकारा" मशरूम या 'फफूंद' के किस्म का द्रव्य जिसे साँप की छतरी कहते हैं, यह 'सर्पगन्धा' नहीं हो सकता। जहाँ सर्पगन्धा नाकुली कन्द के नामसे लिखा है वही सर्पगन्धा होना चाहिए। कहीं 'नाकुली' को "सुगन्धमूला रास्ना" लिखा है। इस प्रकार डल्हन ने भ्रम फैलाने का कार्य भिन्न-भिन्न नामों को दे कर किया है।

वास्तव में जो लोग डल्हन के भाष्य के शब्दों के प्रयोग के शिकार बनते हैं वे डल्हन के उस विचार को नहीं समझते जो कि रोग की स्थिति देख कर दिया हुआ है। अतः डल्हन का प्रयोग भिन्न-भिन्न क्यों न हुआ हो 'सर्पगन्धा' 'नाकुली' ही है और न तो ईश्वरमूल है, न वर्षा में होनेवाली 'छत्रिका'—साँप की छतरी है। डल्हन जैसे विद्वान् से त्रुटि होना संभव नहीं क्योंकि वह 'छत्रिका' 'सर्पगन्धा', गन्ध-नाकुली', 'नाग सुगन्धा' और 'रास्ना' सब का नाम लेते हैं। इन सब का ज्ञान उन्हें था, यह स्पष्ट है, किन्तु 'सर्पगन्धा' को जो विषशामक के लिए तथा अपस्मार व उन्माद में प्रयोग लेते हैं—चिकित्सा में 'सर्पगन्धा' से 'छत्रिका' का प्रयोग क्यों किया गया, इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता। हमारी सम्मति में नाकुली ही सर्पगन्धा है और यही रावोल्फिया सर्पेंटाइना है, कोई भेद नहीं है। जो विद्वान् इस विषय में विशेष विचार रखते हों, वे कृपा कर अपना विचार उपस्थित करें।

शेषांश] **गोरक्षसंहिता** [८८२ पृष्ठ का

अथवा निक्षिपेत्तारे रक्तस्नेहे निषेचनात्।
कूष्माण्डपुष्पसदृशं तद्भवेत्पादयोजितम् ॥२३४॥
हेम्ना तु हेमतां याति कर्तव्यं भूतिसाधने।
कदम्बगोलकाकार पि (पी) त्वाकारमथापि वा ॥२३५॥
सितं सिते तु वर्गेण संस्कृतं वाय (पये) द्विधा।
चूर्णयित्वाम्लवर्गेण यथालाभेन भावयेत् ॥२३६॥
शुक्लवर्गेण तद्भाव्यं दशांशाद्वेधयेद्वङ्गम्।
नीत्वारांश्च निषेक्तव्यं शुल्वसन्धानतोम्लिते ॥२३७॥
सितं सिताद्वा भवति शंखकुन्देन्दुसप्रभम्।
पटुक्षाराम्लयुक्तास्तु तेनादौ क्षालयेद्वंगम् ॥२३८॥
अथ तैः संयुतं कल्कं वेधकाले नियोजयेत्।
एवं शुद्धिमुपायाति सिते पीते च कर्मणि ॥२३९॥
अथ वङ्गे तु निर्वाह्यशैलयुक्तं त्रिधाबुधः।
पटुक्षाराम्लयुक्तं तु दशांशाद्वेधयेद्वंगम् ॥२४०॥
त्रिधानिषेचयेच्छुल्वं संधाने धातुवर्जितः।
सिद्धार्यज्जायते तारं दधिसारसमप्रभम् ॥२४१॥
तारादिजं तथा वङ्गं सितमाक्षिकपायितम्।
पटुक्षारसितैश्चैव अम्लवर्गेण संयुतैः ॥२४२॥
त्रिगुणं वापयित्वा तु तद्रसश्चाम्लभावितम् (तः)।
चारयेत्सूतके तं तु समं तारावशेषितम् ॥२४३॥
सारयेत्तेन तत्सूतं चतुःषष्टिगुणे खखम्।
आराद्योषं तथा वङ्गं तारतां नयति क्षणात् ॥२४४॥
शतवेधीद्विधा चार्यः पञ्चधा तु सहस्रकः।
दशधा लक्षवेधी स्याद्विंशधा कोटिवेधकः ॥२४५॥
वङ्गहीनो यदावद्धस्तदा श्रेष्ठो रसायने।
मासकं तु शतादूर्ध्वं निशा च तु सहस्रके ॥२४६॥
रक्तिकां लक्षके खादेत्सर्षपं कोटि वेधिनी।
अव्यदिव्यमवाप्नोतिजरामृत्युविवर्जितः ॥२४७॥
सोमवर्णास्तिद्धो[1] महाकल्पायुरुच्चलः।
उक्तक्रमेण विधिवच्चारयेदुत्तरोत्तरम् ॥२४८॥
रसे रसायने चैवाधिकाधिका (क) फलं भवेत्।
भूतिरायुर्बलं चैव खेचरत्वादिमाक्षिमान् (णिमादिकान्) ॥२४९॥
गुणान्संप्राप्य विधिवज्ज्ञानमासाद्य मुक्तिभाक्।
रसकस्याथ वक्ष्यामि यथा कर्म विधिं शृणु ॥२५०॥

(सावशेषः)

१—अक्षरद्वयं त्रुटितम्।

पंचामृत पर्पटी-निर्माण

वैद्य मिलापचन्द जैन, बी० ए०, भिषगाचार्य

पर्पटी का उपयोग साधारणतया दोनों रूप (कल्प व साधारण) में होता है, पर इसका महत्व कल्प दृष्टि से अधिक है, अतः इसे कल्प का भेद स्वीकार किया है। कुछ भी हो, जहाँ यह स्पष्ट है कि पर्पटी एवं पंचामृत पर्पटी आयुर्वेद का एक सूक्ष्मतम अंश है, फिर भी इसमें अनेक गुणों का समूह है जो मुर्झाये हुए रोगी-परिवार व रोगियों में न नवजीवन संचार कर सकता है।

इतना कहने के साथ इसके निर्माण पर भी विशेष ध्यान आवश्यक है। अतः मैं इसके निर्माण पर पूर्ण प्रकाश डालने का प्रयास कर रहा हूँ।

निर्माण विधि—

इसके प्रधानतया दो योग प्रचलित हैं।

प्रथम योग—

अष्टौ गन्धकतोलका रसदलं लौहं तदर्द्धं शुभं।
लौहार्द्धं च वराभ्रकं सुविमलं ताम्रंतदाभ्राद्धिकम्।
पात्रे लोहमये च मर्दनविधौ चूर्णीकृतञ्चैकतो,
दर्व्याबादरवह्निनाऽति मृदुना पाकं विदित्वादले॥
रम्भायालघु ढालयेत् पटुरियं **पञ्चामृता पर्पटी**।
ख्याताक्षौद्रघृतान्विता प्रतिदिनं गुञ्जाद्वयं वृद्धितः।
—भैषज्य-रत्नावली, ग्रहणीचिकित्सा

द्वितीय योग—

रसलोहाभ्रताम्राणि समभागानि कारयेत्,
गन्धकं सर्वतुल्यं तु दत्वा कुर्याद्धि कज्जलीम्।
ततः पर्पटिकां कृत्वा दद्याद्योग्यानुपानतः,
पंचामृता पर्पटिका स्मृता वह्नि दीपनी।
ग्रहणीमतिसारं च पाण्डुरोगमथारूचिम्,
श्वासं मन्दानलं हन्ति शूलं चैवाम्लपित्तकं।
—सिद्धयोगसंग्रह द्वितीयाधिकार

इन दोनों योगों का अन्तर निम्न प्रकार है—

द्रव्य नाम	भैषज्यरत्नावली	सिद्धयोगसंग्रह
गन्धक	८ तोला	८ तोला
शु० पारद	४ ,,	२ ,,
लौह भस्म	२ तोला	२ तोला
अभ्रभस्म	१ ,,	२ ,,
ताम्र भस्म	½ ,,	२ ,,

उपर्युक्त अंकन से स्पष्ट है कि दोनों ग्रन्थों में द्रव्य एक ही है और इन्हीं पाँचों औषधियों के संयोग से अमृत-रूप पंचामृत पर्पटी बनती है। अन्तर केवल मान के ग्रहण में है अतः जैसा चाहें चिकित्सक ग्रहण कर सकते हैं। दोनों ग्रन्थ पूर्ण प्रमाणभूत हैं।

आचार्य यादवजी इसी सिद्धयोगसंग्रह वाले योग में वंग भस्म २ तोला, यशद भस्म २ तोला मिला कर सप्तामृत **पर्पटी** बनाने का विधान देते हैं। साथ ही प्रयोग द्वारा उसे अधिक गुणकारक दर्शाते हैं। अन्त्र क्षय में सप्तामृत पर्पटी स्वतंत्र व स्वर्ण पर्पटी के साथ देने को कहते हैं। यह भी अच्छी लाभ करती है, क्योंकि इसमें यशद व्रण का शीघ्र रोपण करता है। अब द्रव्य किस प्रकार के ग्रहण करना चाहिए। यह विचारणीय है।

योग में द्रव्य कैसे लें—

पर्पटी के लिए पारदादि को विशेष शोधन के पश्चात् ग्रहण करना चाहिए। इसके लिए भैषज्यरत्नावलीकार ने रस पर्पटी के प्रकरण में इसका पूर्ण विवरण दिया है। इस प्रकार पर्पटी में विशेष शुद्धि के द्रव्य ले कर ही निर्माण करना चाहिए, जिससे योग अपना उचित प्रभाव दिखला सके, और चिकित्सक गर्व के साथ निश्चित फल के लिए कह सकें।

पारद—

पारद के सर्वप्रथम शोधन में 'नैसर्गिक दोषभय' नष्ट करना चाहिए। उसके लिए भैषज्यरत्नावली ने आवश्यकता बताई है—

मलशिखिविषनामनो रसस्य नैसर्गिकादोषाः।
मूर्च्छां मलेन कुरुते शिखिना दाहं विषेण हिक्काश्च॥
(भैषज्यरत्नावली ८।४४२)

इसके लिए विधि है—

गृहकन्या हरति मलं त्रिफला वह्नि चित्रकञ्च विषम् ।
तस्मादेभिर्वारान् सम्मूर्च्छयेत् सप्त सप्तैव ।।
(भैषज्यरत्नावली ८।४४३)

इस प्रकार घृतकुमारी, त्रिफला व चित्रक में तीन दोषों को नष्ट करें। फिर उसे जयन्ती, एरण्ड, आर्द्रकरस, काकमाची (मकोय) पत्र में मर्दन कर शुष्क कर पारद को ग्रहण करें। इसीको सिद्धयोगसंग्रह में भी निम्न द्रव्य बताये हैं।

जयैरण्डभृंगराजकाकमाची रसैः क्रमात् ।
रसं संशोध्य यत्नेन............ ।।
(सिद्धयोगसंग्रह, २)

इस प्रकार से पारद की शुद्धि करनी चाहिए। पारद का जितना शोधन होगा उतना ही दोष निर्हरण व गुण-वृद्धि होगी।

गन्धक—

गन्धक की भृङ्गराज में शुद्धि करने का प्रबल समर्थन सभी ग्रन्थकारों ने किया है। भैषज्यरत्नावली, रसामृतम्, सिद्धयोगसंग्रह सभी इसीके पक्ष में हैं। इसके लिए—

गन्धकं क्षुद्रितं कृत्वा भाव्यं भृङ्गरसेन तु ।
सप्तधा वा त्रिधावाऽपि पश्चाच्छुष्कं विचूर्णितम् ।

इसका समर्थन करते डा० वा० ग० देसाई ने भृङ्गराज के गुण बताए हैं—

इसकी मुख्य क्रिया यकृत पर होती है। इससे यकृत् की नियमितता सुधरती है, पित्तस्राव ठीक होता है, आमाशय और पक्वाशय की पचन क्रिया सुधरती है। इससे (तीनों मुख्य स्थानों की क्रिया सुधरने से) सर्वशरीर को शक्ति मालूम होती है। इसके साथ ही इसमें आमजन्य विकारों को भी नाश करने की शक्ति है।

इससे स्पष्ट है कि भृङ्गराज का पाचन-संस्थान पर प्रभाव होता है। साथ ही पर्पटी का कार्य भी पाचन, दीपन व ग्रहणी रोगहर है। अतः भृङ्गराज शोधक गन्धक का प्रयोग ही करना चाहिए। गन्धक का शोधन ताम्रपात्र में करें। इससे उसमें ताम्र के गुणों का संस्काराधान होता है। इस प्रकार के गन्धक से ही पर्पटी में लाभ सम्भव है।

भस्में—

सभी भस्में प्रमाणित ढंग से उचित प्रकार बनी हुई हों। उनमें भृंगराज, चित्रक, घृतकुमारी, अर्कदुग्ध, वटजटा, नागरमोथा, इत्यादि सभी दीपन-पाचन द्रव्यों का पुट देना चाहिए।

निर्माण-प्रकार—

इस प्रकार के द्रव्यों को ग्रहण करना चाहिए। उपर्युक्त प्रकार का शुद्ध पारद व गन्धक लेकर लौह खरल में कज्जली निर्माण करें। इसमें लोह खरल का विधान गुणान्तराधान के लिए है। कज्जली को अति मसृण व स्निग्ध बनाना चाहिए। इसके बाद उसमें भस्में मिलाकर मर्दन करे। इस प्रकार कम से कम तीन दिन तक मर्दन करे। अधिक दिन तक मर्दन में कोई हानि नहीं—"मर्दनं गुणवर्धनम्" लिखा है।

इस कज्जली को घृत लगी हुई लौह चम्मच में पिघला कर गर्म करे। कुछ विद्वान् इसे पात्र (तवे) में रेत गर्मकर उसमें पिघलाते हैं। साधरणतया इस प्रकार रेत में गर्म करने (Sandbath) में आँच व्यवस्थित लगती है। यह सामान्य रूप में २०० डिग्री सेंटिग्रेट (शतांक) पर पिघलती है। आयुर्वेदिक ग्रन्थकार इसे बदराग्नि देने का पोषण करते हैं। सम्भवतः बदराग्नि भी इतनी ही आँच (Heat) देती है।

इसके बाद गोबर के ऊपर कदली पत्र पर यह द्रव डाल दे और दूसरे कदली पत्र को ऊपर से ढंक कर गोबर की पोटली से दबाकर फैलावे। ऐसा करने से वह द्रव्य पर्पटी के समान पतला तैयार हो जायगा। बाद में शीतल होने पर हटावें और चिकित्सा के उपयोग में ले।

उपर्युक्त क्रम हैं—गोबर की पोटली से दबाना; आच्छादनीय कदली पत्र-द्रव द्रव्य-पर्पटी के आकार बनाने काकदली पत्र-गोबर का स्तर-पृथ्वी।

१—पर्पटी एक बार अधिक मात्रा में नहीं बनानी चाहिए। साधारणतया दो या तीन तोला तक एक साथ लेकर बना सकते हैं। अधिक लेने पर अच्छी पर्पटी बनने में असुविधा होती है।

२—इसको (द्रव को) डालना, फैलाना, पत्र से ढ़कना, दबाना आदि क्रियाएँ शीघ्र करनी चाहिए, जिससे वह अच्छा तैयार हो।

३—साधरणतया १६ तोला में १ से २ तोला वजन गंधक के उड़ने से कम हो जाता है।

परीक्षा—

पर्पटी का वर्ण श्याम व पतलापन लिए हुए होना चाहिए। इसके साथ उसमें स्निग्धता व एकरूपता प्रतीत होना चाहिए।

पाक-परीक्षा—

इसके तीन पाक हैं—(१) मृदु पाक (२) मध्य-पाक और (३) खर पाक।

१—मृदुपाक में पर्पटी प्लास्टिक के समान होती है। द्रव व स्निग्ध अधिक होती है और तोड़ी नहीं जाती। अतः उसको पुनः पाक कर बनाना चाहिए।

२—मध्यपाक में पर्पटी ठीक व व्यवस्थित होती है। सुविधा से टूटती है और टूटने पर आवाज (कट्कट्) करती है।

३—खरपाक इसमें गन्धक अधिक जल जाता है। इससे पर्पटी शीघ्र बिखर जाती है और उसका आकार रूक्ष व अव्यवस्थित प्रतीत होता है। इसका पुनः गन्धक मिला कर मध्यमपाक करना चाहिए। इस प्रकार की मध्यमपाक वाली पर्पटी का ही ग्रहण करना चाहिए।

पर्पटी का आविष्कार व उपयोग

यह हर व्यक्ति के मस्तिष्क में प्रश्न हो सकता है कि जब चूर्ण, पाक, अवलेह, आसव, अरिष्ट वटी, इत्यादि अनेक प्रकार चल रहे थे तब पर्पटी के उपयोग की क्या आवश्यकता हुई?

उत्तर स्पष्ट है कि रसशास्त्रियों ने पारदादि को व्यवस्थित रूप में संग्रहीत करने और उसके बाद उसका प्रयोग करने के हेतु ही ऐसा किया है।

पारद में गन्धक का जारण करते हुए रसशास्त्रियों ने देखा कि जब द्रव रूप में पारद, गन्धक, आँच न लगने पर जम जाता है तो उन्होंने निश्चय किया कि यह गर्मी पर पिघलता और शीतलता पर जमता है। अतः उन्होंने कदली-पत्र आदि पर जमाने की व्यवस्था की। इससे जब वह पर्पटाकार हो गया तो पर्पटी संज्ञा दी। इसके उद्देश्य थे—

१—औषध को व्यवस्थित सुरक्षित रखना।

२—गन्धक, पारद आदि में अग्निसंस्कार से गुणान्तराधान।

३—औषधि की एक नवीन कल्पना का जन्म।

इस उद्देश्य से पर्पटी का आविष्कार हुआ। ग्रन्थकारों ने कदली पत्र का महत्त्व उसके संग्राही गुण के कारण तथा पर्याप्त विस्तृत होने के कारण ही स्वीकार किया है।

पर इसका प्रथम आविष्कारक कौन हैं। इसके विषय विषय में ग्रन्थों में दो मत प्राप्त है—

"रस पर्पटिका ख्याता निबद्धा **चक्रपाणिना**" (चक्रदत्त ४।६१)

श्री वत्साङ्क विनिर्मितसम्यग्रसपर्पटी श्रेष्ठा॥

—भैषज्य. रत्नावली (६।४३६)।

इसमें वत्साङ्क कौन है इसका जबतक ज्ञान न होगा, तबतक निर्णय नहीं किया जा सकता। फिर भी भैषज्य रत्नावली ने चक्रदत्त के अनेकों योगों का ग्रहण किया है तो इसमें वत्साङ्क का क्यों स्मरण करता है। इसका समाधान भी सम्भव है कि जब वत्साङ्क के सेवाएँ आयुर्वेद-जगत् के सामने आवें।

भैषज्य रत्नावली के समय में रस पर्पटी के अनेक योग प्रचलित होंगे जो स्पष्ट है कि चक्रदत्त व भैषज्य रत्नावली दोनों में पारद-गन्धक शुद्धि में अन्तर है। अतः रत्नावलीकार ने कई प्रकार के योगों का प्रयोग कर 'वत्साङ्क' के प्रयोग को ही ठीक माना हो। इसमें इसीलिए, वत्साङ्क की रस पर्पटी श्रेष्ठ है, यह लिखा है।

कुछ भी हो, यह निर्विवाद सत्य है कि लगभग एक हजार वर्ष पूर्व से आजतक इस योग का प्रचार है। यही इसकी उपयोगिता का प्रमाण है।

इस प्रकार आयुर्वेद के योगों को शुद्ध विधि से बना कर प्रयोग करना चाहिए जिससे आयुर्वेद की अधिक उन्नति, रोगियों की सच्ची सेवा, चिकित्सक को उचित यश व धन आदि प्राप्त हो सके।

जन-स्वास्थ्य की समस्या

(संकलित)

शिक्षा और स्वास्थ्य किसी भी राष्ट्र की समृद्धि के प्रमुख अंग हैं, क्योंकि शिक्षा से जहाँ एक ओर मानसिक विकास होता है, वहाँ स्वास्थ्य से शरीर का विकास और पोषण-संवर्द्धन होता है। इसलिए सर्वतोभावेन किसी भी राष्ट्र को समुन्नत बनाए रखने के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य का अधिकाधिक विकास परमावश्यक है। स्वास्थ्य का महत्त्व इस दृष्टि से और भी बढ़ जाता है कि उसके अभाव में मनुष्य की सारी उन्नति रुक जाती है और जीवन ही भार बन जाता है। अतएव, प्रमुखता स्वास्थ्य-संरक्षण को ही दी जानी चाहिए। समुचित आहार और पोषक तत्त्वों का स्वास्थ्य-संरक्षण में जितना महत्त्व है, रोगाक्रांत होनेपर उचित औषधोपचार भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। किसी भी स्वतंत्र और सभ्य देश की सरकार का प्रथम कर्त्तव्य नागरिकों के स्वास्थ्य की रक्षा और समुचित चिकित्सा की व्यवस्था करना है। समुचित चिकित्सा के अभाव में कोई नागरिक मौत के मुंह न जा सके—इस बात की ओर से नागरिकों को आश्वस्त करना सरकार का नैतिक दायित्व होता है। विश्व के प्रायः सभी आधुनिक सभ्य देशों की सरकारें जन-स्वास्थ्य-संरक्षण की दिशा में प्राण-पण से सचेष्ट रहती हैं और इसके लिए बड़ी धनराशि व्यय करती हैं। इंगलैण्ड, अमेरिका, रूस आदि देशों में सभी नागरिकों को चिकित्सा सम्बन्धी सर्वोत्तम सुविधाएँ निःशुल्क प्राप्त हैं। उन देशों में कोई नागरिक चिकित्सा के अभाव में तड़प-तड़प कर दम नहीं तोड़ सकता। पर, मानना होगा कि हमारे देश की हालत सर्वथा विपरीत है। आंकड़े बताते हैं कि समुचित चिकित्सा के अभाव में लाखों व्यक्ति प्रतिवर्ष इस देश में रोगाक्रांत हो यमपुर सिधारते हैं और उन अभागोंकी जीवन-लीला असमय ही समाप्त हो जाती है। इस देश की विशाल जन-संख्या को देखते हुए चिकित्सा सम्बन्धी जो सुविधाएँ सम्प्रति यहाँ प्राप्त हैं—वे सर्वथा अपर्याप्त हैं। इतना ही नहीं, गरीबी और फटेहाली अलग अपना पाँव तोड़े बैठी है। गरीबी दूर कर सुन्दर स्वास्थ्य के संरक्षण द्वारा इस देश का राष्ट्रीय स्वास्थ्य उन्नत बनाया जा सकता है।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्रीयुत करमरकर ने अखिल भारतीय पोषक आहार सम्मेलन में उद्घाटन भाषण करते हुए इस पर बात पर बड़ा जोर दिया था कि लोगों को अधिक पोषक आहार मिलना चाहिए, क्योंकि राष्ट्र के समृद्ध होने से पहले उसका स्वस्थ होना जरूरी है। पिछले १० वर्षों के दौरान में जो सर्वेक्षण हुए, उनसे ऐसे रोगों का पता लगा है, जो पोषक आहार न मिलने के कारण उत्पन्न होते हैं। ऐसे रोग देहाती क्षेत्रों में अधिक होते हैं, और इसके शिकार अधिकाधिक गर्भवती स्त्रियाँ और बच्चे ही होते हैं। स्वास्थ्य मंत्री ने खानपान की आदतें बदलने की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा कि स्थानीय रूप से जो आहार उपलब्ध होता है, उसका उपयोग इस प्रकार होना चाहिए जिससे शरीर पुष्ट हो सके।

स्वास्थ्य-संरक्षण की दिशा में पोषक तत्त्वों की अनिवार्यता को प्राथमिकता देते हुए भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि समुचित चिकित्सा का भी प्रमुख हाथ स्वास्थ्य-रक्षा में होता है। जहांतक चिकित्सा का प्रश्न है, इसकी अधिक सुविधाएँ नगरों में ही हैं। ग्रामीण अंचल में चिकित्सा की सुविधाएँ नाम मात्र हैं, जब कि देश की विशाल जनसंख्या का ८०-९० प्रतिशत भाग ग्रामीण अंचलों में ही रहता है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिए स्थापित इन्स्टीच्यूट ऑफ हाइजिन एण्ड पब्लिक हेल्थ के २५वें वार्षिकोत्सव में पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्री और अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध चिकित्सक डा० विधानचन्द्र राय ने जो विचार व्यक्त किए, वे हर दृष्टि से मननीय हैं। आपने कहा कि उपाधि पत्र प्राप्त करने के पूर्व डाक्टरों को चाहिए कि वे भारत के गाँवों में जाकर ग्रामीण अंचलों की स्थिति का अध्ययन करें। डाक्टर राय का यह परामर्श इस देश में चिकित्सा करने वाले सभी व्यक्तियों के लिए आदर्श होना चाहिए। चिकित्सकों का दृष्टिकोण अधिक से अधिक मानवीय और यथार्थवादी होना चाहिए। रोग की जड़ पर ही प्रहार करना सर्वोत्तम होगा। केवल अस्पतालों और शय्याओं की संख्या-वृद्धि

से जन-स्वास्थ्य की मूल समस्या का हल नहीं निकलता। इससे रोग-प्रसार में भी कमी नहीं आती। रोग-प्रसार में कमी लाने के लिए जनता का आर्थिक स्तर ऊँचा होना तथा उत्तम आहार की सुव्यवस्था परम अनिवार्य है।

आज इस देश में रोग-व्याधियाँ जिस व्यापक रूप में तेजी से प्रसार पाती जा रही है कि उन्हें देखकर कोई भी सजग और प्रबुद्ध नागरिक चिन्तित हो उठेगा। सरकार का इसके लिए चिन्तित होना अस्वाभाविक नहीं। उसे तो इसकी चिन्ता होनी ही चाहिए, क्योंकि जन-स्वास्थ्य सम्बन्धी सुरक्षा के नैतिक दायित्व अन्ततः सरकार पर ही आते हैं। जन-स्वास्थ्य की जिम्मेवारियों से कोई भी लोकतंत्री सरकार भाग नहीं सकती। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, स्वीकार करना होगा कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय सरकार का ध्यान जन-स्वास्थ्य-सुरक्षा की ओर अवश्य गया है, और सरकारी स्तर पर इस दिशामें कुछ कार्य हुए और आज भी हो रहे हैं, फिर भी इस विशाल भू-खण्ड की विशाल-जनसंख्या को देखते हुए यह प्रर्याप्त नहीं कहा जा सकता। विचारणीय प्रश्न यह है कि इन दायित्वों की रक्षा सरकार कहाँ तक कर पा रही है। इधर पिछले कुछ वर्षों में यक्ष्मा, प्लेग, विसूचिका, मलेरिया, कुष्ठ आदि व्याधियों का अधिकाधिक प्रसार हुआ और इन व्याधियों से मरनेवालों की संख्या भी अपेक्षाकृत अधिक ही रही है। जहाँतक ग्रामीण क्षेत्रों का सम्बन्ध है, इन व्याधियों से अधिक लोग गाँवों में ही मरते हैं। इसलिए यदि चिकित्सकों का सम्पर्क सदैव गाँवों से बना रहे तो ग्रामीण अंचलों में रहने वाले अभागे मानवों को बड़ी राहत मिले और उनके जीवन की सुरक्षा की संभावना भी अधिक दृढ़ हो।

एक बात और द्रष्टव्य है। साधारण तौर पर यह देखा गया है कि सरकारी तथा गैरसरकारी अस्पतालों तथा औषधालयों में कार्य करने वाले चिकित्सक कर्मचारी प्रायः समुचित पारिश्रमिक न मिलने के कारण रोगियों के प्रति अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा करते हैं और अपनी निजी आमदनी बढ़ाने के लिए अपने अनुभव और ज्ञान का उपयोग करते हैं और निजी आय की वृद्धि के लिए ही प्रयत्नशील रहते हैं। अतएव, जन-स्वास्थ्य को इससे अपार हानि उठानी पड़ती है। निजी व्यवसाय चलाने का प्रलोभन कुछ ऐसा होता है कि जन-स्वास्थ्य की उपेक्षा अनिवार्यतः हो जाती है। स्वराज्य मिलने के बाद चिकित्सा-क्षेत्र में निजी व्यवसाय फैलाने की प्रवृत्ति और भी बढ़ गयी है, जो दुखद है। मानव-सेवा के क्षेत्र में स्वार्थपरता के कारण जो लक्ष-लक्ष नर-नारियों के जीवन के साथ खेलवाड़ किया जाता है, वह सर्वथा गर्हित है। जन-स्वास्थ्य को इस मनोवृत्ति से बड़ी हानि पहुँच रही है, इससे जितना शीघ्र इस दुखद स्थिति का अंत हो उतना ही अच्छा। पश्चिम बंगाल की सरकार ने इस दिशा में कदम उठाया है। चिकित्सा-सेवा के पुनर्गठन के बारे में पश्चिम बंगाल की सरकार ने एक योजना तैयार की है, जिसके अनुसार सरकारी डाक्टरों को चिकित्सा-क्षेत्र में निजी व्यवसाय चलाने की अनुमति नहीं दी जायगी और अपेक्षाकृत डाक्टरों के वेतन में वृद्धि होगी, जिससे कि वे लोभ के शिकार न होकर अपनी सारी विद्या-बुद्धि का उपयोग मरीजों की चिकित्सा तथा सेवा में ही करें—निजी व्यवसाय के चक्कर में वे न पड़ें। योजना विस्तृत रूप में सामने नहीं आ सकी है, फिर भी जो अंश प्रकाश में आया है, उसकी सफलता के बारे में एक प्रश्नवाचक चिह्न स्वाभाविक तौर पर लगता है। मूल प्रश्न यह है कि जबतक डाक्टरों का वेतन-स्तर प्रशासन-सेवा में संलग्न कर्मचारियों के बराबर उन्नत नहीं कर दिया जाता तबतक उनसे अवैध धनोपार्जन की प्रवृत्ति के त्याग की आशा करना दुराशामात्र ही है।

इस दिशा में केरल की साम्यवादी सरकार ने सराहनीय कार्य किया है। वहाँ की सरकार ने एक ओर जहाँ प्रशासन में संलग्न कर्मचारियोंका वेतन-स्तर घटा दिया है, वहाँ चिकित्सा और प्राविधिक सेवा में संलग्न व्यक्तियों का वेतन-स्तर बढ़ा दिया है। कुछ ऐसी ही व्यवस्था अन्य राज्यों में भी होनी चाहिए। अस्पतालों में काम करने वाले अल्प वेतन भोगी कर्मचारियोंका वेतन-मान भी निश्चित स्तर तक बढ़ना चाहिए।

सबसे आवश्यक और विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या जन-स्वास्थ्य की समस्या का हल केवल डाक्टरों की संख्या बढ़ाने से ही संभव है? जन स्वास्थ्य की समस्या को हल करने के लिए सरकार भोर कमेटी द्वारा किये गए प्रतिवेदन के अनुसार मेडिकल कालेज स्थापित करने की दिशा में प्रयत्नशील है—किन्तु यह कार्य जितना व्यय साध्य है उतना अव्यावहारिक भी प्रतीत होता है। मेडिकल कालेजों की स्थापना नगरों में ही होगी और नगर की अपेक्षा गाँव स्वास्थ्य और चिकित्सा की दृष्टि से आज कहीं अधिक उपेक्षित हैं।

इसलिए, द्वितीय पंचवर्षीय योजना में स्वास्थ्य सेवाओं के निमित्त जो बड़ी धनराशि निर्धारित की गयी है, उसका अधिकांश डाक्टरों को तैयार करने में ही व्यय हो जायगा। माननीय राष्ट्रपतिने भी कुछ दिनों पूर्व इस आशय के विचार व्यक्त किए थे कि जन-स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का हल केवल बड़ी संख्या में डाक्टर उत्पन्न करने से नहीं हो सकता। मूल बात स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का पालन और पौष्टिक आहार का सेवन ही है। स्वास्थ्य के नियमों की रक्षा के प्रति प्रायः जन-साधारण की उपेक्षा देखी जाती है--और जब मर्ज आ दबोचता है तब लोग चिकित्सकों की शरण में जाते हैं। यह प्रवृत्ति घातक है। सरकारी स्तर पर जनता में स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी नियमों का अधिकाधिक प्रचार तथा तत्सम्बन्धी साहित्य का वितरण इस दिशा में बहुत हद तक कारगर सिद्ध हो सकता है। भारतीय जनता जैसे-तैसे जीवनयापन करने में ही सन्तोष लाभ करती है और खान-पान, रहन-सहन आदि के तौर तरीके स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़े हानिकारक हैं। शिक्षा का अभाव तो इसके लिए एक बड़ा कारण है ही, किन्तु इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी नियमों का पालन जिस नियमबद्धता तथा नियमितता से होना चाहिए, वह हो नहीं पाता।

दरअसल स्वास्थ्य है क्या? विश्व स्वास्थ्य संगठन का जो विधान बना है, उसमें इसकी सुन्दर व्याख्या दी गयी है। उस व्याख्या के अनुसार केवल रोग या निर्बलता का निवारण ही स्वास्थ्य नहीं, बल्कि इसका अर्थ है शरीर, मन और समाज की पूर्ण सन्तुलित अवस्था। आदिकाल से ही मनुष्य व्याधिरूपी दानव से लड़ता आ रहा है और व्याधियों के विरुद्ध मानव का यह संघर्ष अद्यावधि जारी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन जैसी संस्थाओं से निश्चय ही सुसंगठित रूप में इस दानव के विरुद्ध प्रहारात्मक प्रयोग होते रहे हैं और मानव जीवन से रोग-शोक-परिताप की दुखद छाया को दूर भगाने की दिशा में एक-से-एक बढ़कर अनुसंधान तथा प्रयोग मानव बुद्धि ने किए हैं और इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि कुछ हदतक व्याधियों के प्रसार को नियंत्रित कर सकने में मनुष्य सफल भी हुआ है।

विश्व-स्वास्थ्य संघ जब से अस्तित्व में आया तभी से इसका जोर चिकित्सा की अपेक्षा रोगों से बचने के उपायों पर ही अधिक रहा। मलेरिया, तपेदिक और यौन रोगों को रोकने के लिये जो विश्व-व्यापी कार्रवाई की गयी है, उसमें प्राप्त सफलता से इस विचार की पुष्टि होती है। मलेरिया वाले क्षेत्रों में सारी दुनिया की लगभग एक चौथाई आबादी रहती है। मलेरिया को नियंत्रित रखने के लिए मच्छरों को नष्ट करना जरूरी है। इसी प्रकार प्रतिवर्ष कम-से-कम पचास लाख व्यक्ति तपेदिक से मरते हैं और करोड़ों की संख्या में लोग इससे कष्ट पाते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के तत्वावधान में तपेदिक की रोकथाम के लिए तीस देशों को सहायता दी गयी है और क्षय रोग निवारणार्थ कतिपय केन्द्र खोले गए हैं। विश्व स्वास्थ्य-संघ ऐसी औषधियों की खोज में सहायता भी करता है, जो तपेदिक के रोगियों को घर पर दी जा सके और उन्हें अस्पतालों में भर्त्ती करने की जरूरत न हो।

जैसा कि पहले कहा गया है, केवल रोग न होना ही स्वास्थ्य नहीं--स्वास्थ्य तो एक सामाजिक समस्या है। इसलिए लोगों में सफाई की आदत डालने और स्वास्थ्य-रक्षा विषयक जागृति पैदा करने की अधिक जरूरत है। साथ ही प्रसूती तथा बच्चों की देखभाल, स्कूलों के बालकों के स्वास्थ्य, पौष्टिक आहार उपलब्ध करने की समस्या आदि भी जन स्वास्थ्य को समुन्नत करने की दृष्टि से विचारणीय है।

जन-स्वास्थ्य को उन्नत बनाने के सम्बन्ध में कुछ लोग राष्ट्रीयकरण का सुझाव प्रस्तुत करते हैं। राष्ट्रीयकरण का अर्थ जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह होगा कि व्यक्तिगत तौर पर निजी आय बढ़ाने की दृष्टि से चिकित्सकों को सशुल्क सेवा करने की अनुमति नहीं रहेगी। चिकित्सा के क्षेत्र में व्याप्त अनाचार निश्चय ही इससे अपेक्षाकृत घटेगा और स्वास्थ्य के मद में अधिकाधिक धनराशि खर्च करने से जन-स्वास्थ्य की वर्तमान अवस्था में सुधार हो सकेगा। जिस तरह राष्ट्रीय आधार पर गरीबी और बेकारी के विरुद्ध अभियान जारी है--उसी तरह जन-स्वास्थ्य को उन्नत बनाने की दिशा में भी सरकारी तथा गैर सरकारी आधार पर हमारे प्रयत्न जारी रहने चाहिए।

यव—जौ

वैद्य चन्द्रभानु शास्त्री

हमारे खाद्य अन्नों में जौ अति प्रसिद्ध है। इसके स्वरूप परिचय के लिए लिखना पिष्टपेषण है। इससे इसके गुणों पर कुछ कहना युक्तिसङ्गत होगा।

राजस्थान प्रान्त में बहुत से स्थान ऐसे हैं जहाँ के निवासी—निर्धन हों या धनवान्—प्रतिदिन के भोजन में केवल जौ अथवा जौ का प्रधानतः सम्मिश्रण रखते हैं। आहार ही प्राणी के शरीर का मूल आधार है। बल-बुद्धि और रस-रक्त आदि धातुओं का निर्माण आहार से होता है। सन्तान-परम्परा की गति-विधि बहुत कुछ आहार पर निर्भर करती है। आहार में सबसे बड़ा महत्त्व द्रव्य का है।

"यादृशं भक्ष्यते अन्नं प्रजा भवति तादृशी।"
"अन्न मयं हि सौम्य मनः।"
"जैसा खावे अन्न वैसा बने मन।"
"अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः।"
"अन्नं लोकोऽभिधावति।"
"देहोह्याहार सम्भवः।"

ऊपर लिखे गये वाक्यों से अन्न का महत्त्व कितना है—परिज्ञात होता है। अन्नों में जौ प्रधान है, क्योंकि प्राचीन संहिताओं में जौ को ले कर जितना विचार-विमर्श हुआ है उतना गेहूँ आदि दूसरे अन्नों को ले कर नहीं।

आयुर्वेद शास्त्र में जहाँ द्रव्यों के गुणों का विचार किया है, वहां जौ को मधुर रस प्रधान अन्न कहा है।

"यवः कषायो मधुरो हिमश्च।" (सु० सू० ४६।४१)
"रूक्षः शीतोऽगुरुः स्वादुः।" (च० सू० २७।१६)
"रूक्षः शीतोऽगुरुः स्वादुः।" (वाग्भट सू० ६।१३)

सुश्रुत में 'मधुरः' कहा है, उसीके लिए चरक में तथा वाग्भट में 'स्वादुः' शब्द का प्रयोग किया है। चरक के सर्वमान्य टीकाकार चक्रपाणि ऊपर उद्धृत सूत्र की व्याख्या में 'अस्य च शीत मधुर कषायत्वेन अनुक्तमपि पित्तहन्तृत्वं लभ्यत एव, तेन सुश्रुते कफपित्तहन्ता इत्युक्तमुपपन्नम्। अर्थात् चरक ने जौ को यद्यपि पित्तनाशक नहीं कहा[1] तथापि उसे शीत, मधुर, कषाय, कहा है। इसीसे उसका पित्त नाशक होना प्रकारान्तर से कह दिया गया है, यह समझ लेना चाहिए।

चक्रपाणि ने 'स्वादु' से 'मधुर' अर्थ लिया है। 'स्वादुः' से मधुर अर्थ लिए बिना 'अस्य शीत मधुर कषायत्वेन' में 'मधुर' कहना सङ्गत नहीं होता और कोई दूसरा रस लेंगे तो अनुभव विरुद्ध होगा, सुश्रुत और चरक में विरोध भी अपरिहरणीय होगा। इससे 'स्वादु' से यहाँ मधुर अर्थ लेना ही युक्ति प्रमाण सङ्गत होगा यह च० पा० का अभिमत है। यों चरक, चरकानुसारी वाग्भट और सुश्रुत तीनों संहिताओं के आधार पर तथा प्रत्यक्ष प्रमाण के बल से—जौ मधुर रस प्रधान अन्न है, यह कहने में सङ्कोच नहीं होता।

मधुर रस शरीर के लिए कैसा है इसे यदि चरक की दृष्टि से देखें तो—"तत्र मधुरो रस" इत्यादि च० सू० २६।४२ से आगे कोष्टक (१) में पढ़ने से स्पष्ट होगा कि—**रस, रक्त, मांस, मेदा**, अस्थि, मज्जा, ओज और शुक्र की वृद्धि करना, छहों इन्द्रियों को निर्मल करना, आयु बढ़ाना, बल की वृद्धि करना, शरीर का रंग निखारना, पित्त, वायु और विष को नष्ट करना, प्यास और जलन को शान्त करना, त्वचा के दोष दूर करना, बालों को गिरने और सफेद होने से बचाना, कण्ठ दोष नष्ट करना, तृप्ति करना, किसी भारी आघात से मूर्च्छित (बेहोश) को सचेत करना, कृशता दूर करना, बल और आयु को स्थिर करना, टूटे को जोड़ना,

---

१—अनुक्तमपि का रहस्य यह है कि आचार्य की शैली ऐसी है 'जो बात एक स्थान पर सहेतुक कह दी उसे आचार्य आशा करते हैं कि दूसरे स्थान पर समान न्याय के आधार पर समझ लेना चाहिए, सब जगह शब्दों को दोहराने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। मधुर, शीत और मन्द द्रव्य अपने विरोधी गुण वाले दोष का नाशक होता है, यह बात घी का गुण वर्णन करते समय आचार्य कह चुके हैं—

"सर्पिः खल्वेवमेव पित्तं जयति-माधुर्यात्, शैत्यात्, उष्णत्वाच्च; पित्तं हि अमधुरम्, उष्णं, तीक्ष्णञ्च।" च० विमान १।१५

"यच्चान्यदपि किञ्चिद्द्रव्यमेवं वातपित्तकफेभ्यो गुणतो विपरीतं स्यात्तच्चैतान् जयति अभ्यस्यमानम्।" चरक विमान १।१७

धातुक्षय से क्षीण मनुष्य में धातुओं को उपचित करना, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वा (रसना), कण्ठ, और ओठों को सुख देना, दाह (जलन), मूर्च्छा (बेहोशी) को नष्ट करना, यह सब मधुर रस के कार्य हैं। इसके अतिरिक्त मधुर रस **स्निग्ध,** ठंढ़ा और **भारी** है। —चरक सू० स्था० २६(१)

इस सन्दर्भ को देखने से ऐसा लगता है कि मधुर के कार्यों में जिन चीजों का ऊपर वर्णन किया है, जौ में वे सब होनी चाहिए—मधुर रस के कारण। किन्तु ऐसा नहीं है, प्रत्युत जौ में कई गुण विरुद्ध हैं। जौ मधुर होकर भी स्निग्ध और भारी नहीं, उलटा रूक्ष और लघु है। यह कफ, मांस और मेद की वृद्धि नहीं करता जैसा मधुर रस युक्त द्रव्य को करना चाहिए। जौ तो कफनाशक है, मांस और मेद को कम करता है। जिनके शरीर में मेद (चरबी) बढ़ गया है और उसके कारण पेट, छाती का स्तन भाग और नितम्ब चलने में थलथलाते हैं उन्हें छाछ के साथ जौ की रोटी खानी चाहिए। लगातार ऐसा अभ्यास करने से शरीर में मेद (चरबी) का हिस्सा कम हो जायगा और बेडौल शरीर धीरे-धीरे सुडौल हो जायगा, आलस्य दूर होगा—चलने-फिरने में उत्साह बढ़ेगा। भाव यह है कि जौ मधुर अवश्य है किन्तु अन्य मधुर द्रव्य गेहूँ आदि से बहुत अंशों में विपरीत है। गेहूँ अति स्थूलों के लिए अहितकर है तो जौ हितकर है। गेहूँ मांस-मेद आदि की वृद्धि करता है तो जौ उनको कम करता है। मधुर रस कफ को बढ़ाता है, वायु को शान्त करता है, परन्तु जौ कफ को शान्त करता है, वायु को बढ़ाता है, मधुर रस सृष्टविण्मूत्र—पाखाना-पेशाब साफ लाता है, जौ मूत्र को कम करता है, इस प्रकार जौ बहुत विचित्र अन्न है। इसलिए जौ के विषय में शास्त्रकारों ने बड़ी सावधानी से विचार किया है—इसके विशेष तत्त्वों का विशेष रूप से यत्नपूर्वक अन्वेषण करके लोक हित के लिए जिज्ञासुओं के सामने उपस्थित किया है।

सुश्रुत-मत से—

यवः कषायो मधुरो हिमश्च,
कटुर्विपाके कफपित्त हारी
व्रणेषु पथ्यस्तिलवच्च नित्यं,
प्रवद्ध मूत्रो बहुवात वर्चाः।४१।
स्थैर्याग्निमेधा स्वर वर्ण कृच्च,
सपिच्छिलः स्थूल विलेखनश्च,
मेदो मरुत्तृड्हरणोऽति रूक्षः,
प्रसादनः शोणितपित्तयोश्च।४२।

सु० सू० ४६।४१, ४२।

चरक के मत से—

रूक्षः शीतोऽगुरुः स्वादुर्बहुवातशकृद्यवः।
स्थैर्यकृत् सकषायश्च बल्यः श्लेष्मविकारनुत्।

चरक सू० २७।१६

वाग्भट्ट के मत से—

रूक्षः शीतो गुरु स्वादुः सरो विड्वातकृद्यवः
वृष्यः स्थैर्यकरो मूत्रमेदःपित्तकफान् जयेत्।
पीनस श्वासकासोरुस्तम्भ कण्ठत्वगामयान्।

वाग्भट सू० ६।१३, १४।

भावमिश्र के मत से—

यवः कषायो मधुरः शीतलो लेखनो मृदुः।
व्रणेषु तिलवत्पथ्यो रूक्षो मेधाग्निवर्द्धनः।
कटुपाकोऽनभिष्यन्दी स्वर्योबलकरो गुरुः।
बहुवात मलो वर्ण स्थैर्यकारी च पिच्छिलः।
कण्ठत्वगामय श्लेष्म पित्तमेदः प्रणाशनः।
पीनस श्वास कासोरुस्तम्भलोहित तृट् प्रणुत्।

भाव प्रकाश पूर्व खं० धान्य वर्ग—२८,२६,३०

यहाँ कई ग्रन्थों से जौ के गुण उद्धृत किये हैं। इनमें जिन्होंने एक दूसरे के वचनों का संग्रह नहीं किया, जिनके अपने स्वतन्त्र अनुभव हैं, उनके विषय में कुछ विचार उपस्थित करते हैं।

चरक सुश्रुत दो ही संहिता हैं जिनमें अपने अपने स्वतंत्र विचार उपनिबद्ध हैं। शेष प्रायः संग्रह हैं। उनमें जो विशेषताएँ हैं उनकी भी चर्चा करेंगे। इससे जौ के विषय में कुछ विशेष जानकारी बढ़ेगी।

जौ के विषय में उक्त ऋषियों के अनुभव देख कर यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि जौ एक 'विचित्र प्रत्ययारब्ध' अन्न है, अर्थात् जौ के निर्माण में ईश्वर ने जिन कारण द्रव्यों का ग्रहण किया है उनमें ईश्वरीय सामान्य नियमों से कुछ विचित्रता है। जैसे मधुर रस वातशामक होता है, यह ईश्वरीय सामान्य नियम है परन्तु यवगत (जौ का) मधुर रस वातशामक नहीं, उलटा वातवर्द्धक है। यह उस रस की विचित्रता है। इससे कहना पड़ता है जौ विचित्र प्रत्ययारब्ध द्रव्य (अन्न) है, सामान्य प्रत्ययारब्ध नहीं है अथवा विषम-समवायारब्ध है, समसमवायारब्ध नहीं है।

मधुर रस 'सृष्टविण्मूत्र' होता है अर्थात् मधुर रस से पाखाना और पेशाब साफ उतरते हैं, किन्तु जौ में जो मधुर रस है वह इससे विचित्र है, पेशाब को साफ लाने का काम

नहीं करता किन्तु पेशाब को रोकने का काम करता है। इससे भी यह सिद्ध होता है, जौ ईश्वरीय साधारण नियमों के या द्रव्यों के अनुसार नहीं बना अपितु विचित्र द्रव्यों से या नियमों से बना है।

मधुर रस स्निग्ध (चिकना या गीला) होता है, किन्तु जौ मधुर रस वाला होकर भी स्निग्ध नहीं है—रूक्ष है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि जौ ईश्वरीय सामान्य नियमों के अनुसार नहीं। जौ के बनाने में ईश्वर ने विचित्र नियमों अथवा विचित्र द्रव्यों का उपयोग किया है। इससे भी जौ का विचित्र प्रत्ययारब्ध होना सिद्ध होता है।

मधुर रस का विपाक मधुर होता किन्तु जौ में यह नियम लागू नहीं है। जौ रस में मधुर किन्तु विपाक में कटु (मिर्च के स्वाद का) है। यह भी जौ की विचित्रता का बोधक है।

यहाँ एक बात और ज्ञातव्य है और वह थोड़े हेरफेर की है। उसकी ओर भी विद्वान् पाठकों की दृष्टि आकृष्ट करते हैं। चरक ने जौ के लिए—"रूक्षः शीतोऽगुरुः स्वादुः" लिखा है। चरक के अति प्रसिद्ध विद्वान् टीकाकार श्री चक्रपाणि लिखते हैं—"सुश्रुते यवो लघुः पठितः, तेन अत्रापि 'अगुरुः' इति मन्तव्यम्।" अर्थात् 'शीतो गुरुः' इन दोनों पदों के बीच में अकार है, और उसका पूर्वरूप हो रहा है। ऐसा मानने से—जौ हल्का है—अर्थ निकल आयगा और चरक-सुश्रुत का विरोध हट जायगा। यहाँ श्री यादव जी आचार्य ने एक अन्य टीकाकार 'शिवदास सेन' का मत टिप्पणी में दिया है। उन्होंने भी अकार प्रश्लेष से 'अगुरुः' पाठ ही स्वीकार किया है। वह पाठ चक्रपाणि से प्रायः मिलता है—"किं वा सुश्रुते यवो लघुः, पठितः तेन अकार प्रश्लेषेण 'अगुरुः' इति पाठो मन्तव्यः।" यहाँ एक नयी बात उठाकर खराद उतारी गयी है, उसे जान लेना चाहिए। शङ्का उठायी गयी है कि 'गुरुः' पद लिखकर 'अगुरुः' मानना यदि अभीष्ट था तो उसकी जगह 'लघुः' शब्द का उपयोग क्यों नहीं कर लिया। इससे यह 'द्रविड प्राणायाम' न करना पड़ता और असन्दिग्ध भी रहता। फिर यह झंझट किस प्रयोजन से किया?

उत्तर—ईषद् गुरुत्व प्रतिज्ञानार्थम् ईषदर्थे नञ् प्रश्लेषयन्ति अतएव 'लघुः' इति असन्दिग्धमपि न पठितम्।" तात्पर्य यह है कि मधुर-शीत होने से जौ भारी होना चाहिए था, किन्तु 'विचित्र प्रत्ययारब्ध' होने के कारण गुरुत्व उसमें न्यून है, यह प्रकट करने के लिए अकार प्रश्लेष ही करना पड़ा। यह न्यूनता 'लघुः' पद से कथमपि प्रकट नहीं हो सकती थी अकार प्रश्लेष ही से यह अर्थ लब्ध हो सकता है। नञ् के ६ अर्थ हैं उनमें एक ईषद् (न्यून) अर्थ भी है। 'अनुदरा' कन्या आदि नञ् के न्यून (अल्प) अर्थ के उदाहरण प्रसिद्ध हैं। सुश्रुत ने जौ को मधुर रस वाला होने पर भी विपाक में कटु माना है—"कटुर्विपाके" (सुश्रुत सू० ४६।४१) इसका कारण भी जौ की 'विचित्र प्रत्ययारब्धता' है। साधारण नियम यह है कि मधुर और लवण का विपाक मधुर होता है। 'स्वादुः पटुश्च मधुरम्' (वाग्भट सू० ६।२१) अर्थात् मधुर और लवण द्रव्य का विपाक मधुर होता है।" "स्वादुर्मधुरं लवणस्तथा।" चरक सू० स्था० २६।५८) अर्थात् मधुर और लवण द्रव्य का विपाक मधुर होता है। जौ यद्यपि मधुर है किन्तु इसका विपाक कटु होता है इसका कारण ऊपर कह दिया है—विचित्र प्रत्ययारब्धता।

"स्वादुर्गुरुश्च गोधूमो वातजिद् वातकृद्यवः।"
अ० हृ० सू० ६।२८

इसकी व्याख्या करते हुए सर्वाङ्गसुन्दरा टीकाकारने जौ के विषय में एवं गेहूँ के विषय में विचित्र प्रत्ययारब्धता एवं समान प्रत्ययारब्धता का खुलासा किया है। पाठक विशेष जिज्ञासा वहीं से शान्त करें।

प्रमेह में शास्त्रकारों ने यव भोजन के अनेक प्रयोग लिखे हैं, जैसे—

मांसानि शूल्यानि मृगद्विजानां
खादेद् यवानां विविधांश्च भक्ष्यान्
च० चि० ६।४७

भृष्टान् यवान् भक्षयतः प्रयोगान्
शुष्कांश्च सक्तून् न भवन्ति मेहाः।
च० चि० ६।४८

इन वाक्यों से शास्त्रकार प्रमेह में जौ खाने का उपदेश करते हैं। मेरा अपना अनुभव भी प्रमेह में विशेष कर इक्षुमेह में (पेशाब में शक्कर आने की बीमारी में) और उसके साथ बहुमूत्र (कई बार—२४ घंटे में १८ बार या २० बार तक पेशाब होने की बीमारी में) जौ की रोटी खाने से अति लाभ होने का है। जिन रोगियों को, या जिन वैद्यों की चिकित्सा में ऐसे रोगी विद्यमान हों जिन्हें पेशाब अधिक आता हो—जो प्रमेह का सामान्य लक्षण माना जाता है अर्थात् सभी प्रमेहों में होता है, जौ की रोटी या जौ के अन्य कल्प बना कर प्रयोग करके देखें यह मेरी विनीत प्रार्थना है।

पायोरिया (Pyorrhoea) एवं दन्तवेष्ट

वैद्य जाह्नवीप्रसाद जोशी, ए० बी० एस० एस०

नेत्र रोगों की भाँति आजकल दन्त रोग, विशेषतः "पायोरिया" की शिकायत आमतौर से देखने को मिलती है। दस-बीस वर्ष पहले आँखों की शिकायत, आँख के रोग, दृष्टि सम्बन्धी विकार बहुत कम देखने को मिलते थे परन्तु आजकल तो नेत्र रोग साधारण सी बात हो गई है। दृष्टि दौर्बल्य या दृष्टिपात तो दिनानुदिन की समस्या बन बैठी है। इसी प्रकार दाँत की खराबी भी प्रतिदिन बढ़ती जाती है। पायोरिया से आज पढ़ी-लिखी जनता ही नहीं, नगर में रहने वाले ही नहीं, वरन ग्रामीण अपठित लोग भी परिचित हो गए हैं। बाजारों में सैकड़ों प्रकार के मंजन चल रहे हैं और प्रायः सभी पायोरिया को अच्छा कर देने का ठेका लिए बैठे हैं। पायोरिया दाँत की साधारण बीमारी नहीं है। दाँतों के लिए यह कालस्वरूप है। पायोरिया का अर्थ है दाँतों से मवाद निकलने का रोग। डा० टोरलेण्ड पायोरिया का अर्थ इस प्रकार करते हैं—"दाँत और हड्डी के मध्यवर्ती भाग में सूजन आ जाती है। दाँत के नीचे का अस्थि-भाग नष्ट होने लगता है। दाँत ढीले पड़ने लगते हैं। इस प्रकार के रोग को 'पायोरिया' कहते हैं। जिसको यह बीमारी हो जाती है, उसके दाँत तो शीघ्र जबाव दे ही देते हैं, अनेक ऐसी भयंकर बीमारियाँ हो जाती हैं कि जीवन ही कठिन हो जाता है। आयुर्वेद में दन्तमूलगत, शीताद, दन्तपुप्पुट, दन्तवेष्ट आदि रोग जो बताये गए हैं उनमें दन्तवेष्ट के लक्षण "पायोरिया" (Pyorrhoea) से मिलते जुलते हैं। "पायोरिया" ग्रीक भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ छोटे से छोटे छेद में से पूय का स्राव होना है। डाक्टर वैदिक के कथनानुसार रक्त में अम्लता के बढ़ जाने से यह रोग होता है।

रक्तान्तर्गत अम्लता का कारण यकृत विकृति है। यकृत विकार मांसादि प्रकृति विरुद्ध एवं चटपटेदार आहार, गर्म-गर्म चाय के अति सेवन, रात्रि जागरण, अनियमित आहार-विहार के कारण होता है। इसके अलावा मुख शुद्धि न करना, पान-सुपारी-तम्बाकू का अधिक सेवन, बिना समझे-बूझे मंजनों का अधिक प्रयोग, विषाक्त औषधियों का प्रयोग, दन्तमांस को आलपीन आदि से खोदने की आदत से मसूड़ों में सड़न पैदा होती है और दाँतों की जड़ें हिल जाती है। पेट की विकृति, खूब चबा-चबा कर न खाने से तथा मुख द्वारा श्वास लेने से मसूड़े कमजोर हो जाते हैं और इस रोग को बुलाने के कारण होते हैं। प्रारम्भ में दाँतों में दरार पड़ते हैं और थोड़े दबाव से मसूड़ों से रक्त आने लगता है। मसूड़े सूज जाते हैं। धीरे-धीरे उनका क्षय होने लगता है और उनमें पीप तथा भोजन आदि के कण जम जाते हैं। जरा-सा दबाव पड़ने पर पीप आ जाता है। मुंह गन्दा रहता है और सोने के पश्चात् तकिया तथा विस्तर पर रक्त और पीप के दाग मिलते हैं। पश्चात् थूक और पीप के साथ 'पायोरिया' के कीटाणु आमाशय में प्रविष्ट होकर वातरक्त, आमवात, अतिसार, ग्रहणी, आमाशय शोथ, आमाशयिक व्रण, संधिवात, ज्वर, कण्डु, पामा, अजीर्ण, शूल, उपान्त्र शोथ, नेत्र रोग, हृद रोग, गले का दाह, पैरों में पीड़ा, झनझनाहट, मलबंध, भ्रमादि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। पाश्चात्य विद्वान भी इसी निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि आजकल अजीर्ण, अम्लपित्त, ग्रहणी विकारादि के कारण प्रायः पायोरिया ही होता है। यही नहीं "पायोरिया" के कारण अनेक नेत्र विकार भी उत्पन्न हो जाते हैं। यकृत दोष तथा दाँतों के बीच में पड़े हुए सड़ते अन्न आदि दूषित पदार्थ के करण यह अवस्था उत्पन्न होती है। इतने से ही पिंड नहीं छूटता बल्कि इसके कारण संधियों का प्रदाह, अतिशय रक्ताल्पता होने के कारण जीवनी शक्ति का अभाव हो जाता है। परिमाणतः "पायोरिया" के रोगी कालान्तर में यक्ष्मा से पीड़ित हो जाते हैं। यक्ष्मा के साथ-साथ जब यह विकार रहता है तो रोगी के अच्छा होने की बहुत कम सम्भावना रहती है। यदि स्त्री को प्रसूतावस्था में "पायोरिया" की बीमारी रहती है तो उसके स्तनों में दूध की कमी हो जाती है और दाँतों के दूषित पदार्थों के कारण उत्पन्न दोष से शिशु अस्वस्थ्य रहते हैं। वस्तुतः यह पायोरिया अत्यन्त कष्टसाध्य रोग है। जब दाँत हिल जाते हैं और उनसे पूय-रक्त मिश्रित स्राव होने लगता

है तो उसके अच्छा होने की संभावना बहुत कम हो जाती है। बिना दाँत के उखाड़े व्रणों का भरना, पूय मय रक्त का स्राव होना बन्द नहीं होता, निरन्तर भोजन के साथ विष उदर में जाता रहता है। दाँतों के हिलने से चर्वण क्रिया ठीक नहीं हो पाती। परिणामतः अनेक विकार उत्पन्न होते हैं। ऐसी स्थिति में दाँतों को निकलवा देना चाहिए।

आजकल बाजार में "पायोरिया" के लिए अनेक रामवाणे मंजन मिलते हैं। सब यह दावा करते हैं कि ये मंजन इस रोग में अव्यर्थ सिद्ध होंगे, परन्तु यह सब व्यर्थ है। अज्ञान जनता इन मंजनों की ओर दौड़ पड़ती है। उन्हें यह पता नहीं कि केवल मंजन से ही कार्य नहीं चलता है। आधुनिक दन्तकार (Dentist) भी जी-जान से दाँतों की सफाई और मंजन पर ही जोर देते हैं पर उन्हें यह मालूम नहीं कि बिना औषधि, आहार-विहार आदि के नियोजन एवं पथ्यापथ्य का विचार किए केवल मुख शुद्धि से काम नहीं चल सकता। रक्तान्तर्गत और उदरान्तर्गत विकारों के शमनार्थ लंघनादि, शोधनादि का उपचार आवश्यक है। धैर्य के साथ और बिना घबड़ाए चिकित्सा करने से प्रायः लाभ हो जाता है। गर्म पानी में नमक डालकर प्रातः सायं और रात्रि में कुल्ला करना चाहिए। अंगुलियों से पीप और रक्त को धीरे-धीरे दबाकर निकाल देना चाहिए और शुद्ध कड़ुवा तेल में बारीक नमक मिलाकर धीरे-धीरे मसूड़ों को मलना चाहिए। मौलसिरी की छाल और फलों को चबाने से भी लाभ होता है।

स्वप्न

आयुर्वेदाचार्य डा० भो० रा० यादव ए० एम० एस०

यदातु मनसिक्लान्ते कर्मात्मिन कलमान्विता।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः।।

जब इंद्रिय तथा मन क्लान्त होकर बाह्य विषयों से निवृत्त हो जाते हैं तब निद्रा उत्पन्न होती है। निद्रावस्था में ही व्यक्ति को स्वप्न उत्पन्न होता है। लेकिन वह भी उसी दशा में जब इन्द्रियाँ तो इन्द्रियार्थों से निवृत्त रहती है, किन्तु मन अनिवृत्त होता है। उस समय मन के कार्यकर होने के कारण नाना प्रकार के स्वप्न होते हैं।

नाति प्रसुप्तः पुरुषः सफलान फलानपि।
इन्द्रियेज्ञेन मनसा स्वप्नान्यश्वतनेकधा।। च. ई. अ. ५

आगे चलकर आचार्य ने कहा है कि जब वातादि दोष बलवान होकर मन का वहन करनेवाली नाड़ियों में प्राप्त हो जाते हैं तब उस समय में वह मनुष्य शुभाशुभ स्वप्नों को देखता है।

मनोवहानां पूर्णत्वाद्दोषैरति बलैस्मिभिः।
स्रोतसां दारुणान्स्वप्नान्काले पश्यति दारुणे।।

जब हम निद्रावस्था में होते हैं, हमारी त्वचा या कान अपने-अपने उद्दीपकों को ग्रहण अवश्य करते हैं, किन्तु उनकी ऐन्द्रिय उत्तेजनाएं इतनी दुर्बल होती हैं कि मस्तिष्क में ऐसी केन्द्रिय क्रियाओं को प्रभावित नहीं कर सकतीं जैसी कि चेतना अनुभव की सहचारी क्रिया से होती है। परन्तु जैसे हमारे विश्राम का समय बढ़ता है या व्यतीत होता जाता है मस्तिष्क केन्द्रों की धीरे-धीरे ऐसी अवस्था हो जाती है कि वह हल्की उत्तेजनाओं से भी प्रभावित होती है और हम सहचारी चेतना क्रियाओं को प्राप्त करते हैं। किन्तु ये चेतना क्रियाएं किसी विशेष क्रमानुसार अधिक समय तक नहीं चलतीं। इनके भिन्न अंशों में जो पहले या पीछे आते हैं, कोई युक्तिसंगत व्यवस्था या नियम नहीं रहता। ऐसी अवस्था में हमारी निद्रा प्रगाढ़ (पक्की) नहीं होती वरन कच्ची सी होती है। इस अवस्था को कच्ची निद्रा (Light sleep) कहना उचित होगा और इन कच्ची निद्रा के चेतनानुभवों को स्वप्न कहा जाता है।

फ्रायड के विचार से स्वप्न (Dream) एक उपाय है जिसके द्वारा व्यक्ति की अतृप्त दबी हुई इच्छाएँ सोते समय प्रकट होती है। उनका कथन है कि इच्छा पूर्ण हो गई तब तो ठीक है अन्यथा वह अपनी क्रियाशक्ति को भिन्न तौर पर प्रकट करती है। इच्छापूर्ति न होने का प्रधान कारण द्वार के प्रतिरोधक (Censor) का वर्तमान होना ही है। जब प्रतिरोधक शिथिल पड़ता है तब इच्छा स्वप्न के रूप में बाहर निकल पड़ती है। अतएव इन स्वप्नों के आधार पर अतृप्त इच्छाओं के विषय में अच्छा प्रकाश पड़ता है। स्वप्नों में भिन्न-भिन्न प्रकार से भिन्न-भिन्न शक्लों को धारण करके ये इच्छाएँ प्रकट होती हैं। किस शक्ल का क्या अर्थ होगा, उसके पीछे कौन सी इच्छा कम करती है—इस पर आगे फ्रायड ने बहुत ही गम्भीर विचार किये हैं।

दृष्टं श्रुतानुभूञ्च प्रार्थितं कल्पितं तथा।
भाविकं दोषजञ्चैव स्वप्नं सप्त विधं विदुः।। च. इ. अ. ५

इस प्रकार स्वप्न के ये सात भेद माने गये हैं।

(१) देखे हुए
(२) सुने हुए
(३) अनुभव किये हुए
(४) इच्छा ,,
(५) कल्पना ,,
(६) भावी कार्य को करनेवाले
(७) तीनो दोषों से होनेवाले

उपर्युक्त पर विचार करते हुए आगे बढ़ना ठीक होगा।

(१) दृष्टं (देखा हुआ)—जाग्रतावस्था में जिस किसी वस्तु को नेत्रों द्वारा देखे रहते हैं उसी को सोते समय स्वप्न में देखना।

(२) श्रुत (सुना हुआ)—श्रवणेन्द्रिय द्वारा सुनकर ही जिसके बारे में ज्ञान प्राप्त किया गया हो, फिर उसी को स्वप्नगत देखना।

(३) अनुभूत (अनुभव)— जिसका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा यथोचित ढंग से जाग्रतावस्था में हुआ था, पुनः उसी को सोते समय उसी रूप में स्वप्न में अनुभव करना।

(४) **प्रार्थित (प्रार्थना)**——जिसमें देखा हुआ, सुना हुआ या अनुभव किया होवे या जागरणकाल में मनुष्य ने अपने मन के द्वारा जिस की अभ्यर्थना की हो। उसी को स्वप्न में उसी रूप में देखना अर्थात् इच्छा के अनुरूप स्वप्न दखना।

(५) **कल्पितं (कल्पना)**——जो न प्रत्यक्ष, न अनुमान, न देखा न सुना या इनके अनुसार न अनुभूत किया गया होवे या मन के द्वारा न जिसके लिये प्रार्थना की गई हो एवं न जिसका कोई रूप भी हो। सिर्फ व्यक्ति ने जिसको अपने कल्पना-जगत में कल्पित किया हो। सोने पर उसी के अनुसार स्वप्न देखना।

(६) **भाविकं (आनेवाली बातों का)**——जो कि पूर्व के अन्य सभी से विलक्षण होवे एवं जिस स्वप्न में भविष्य में होने-वाली घटनाओं का दर्शन व्यक्ति करे। अर्थात् इस स्वप्न में व्यक्ति को भविष्य के फलाफल का ज्ञान होता है।

(७) **दोषज**——दोष (वात, पित्त, कफ) की प्रवलता के अनुरूप जो स्वप्न दिखलाई पड़े उसे दोषज स्वप्न कहते हैं।

इसके अतिरिक्त जब हम व्यक्तिगत प्रकृतियों के अनुसार विचार करते हैं तब हमें शास्त्र में मिलता है कि——

. . .विपति च गच्छति सभ्रमेण सुप्तः।। सु. शा. अ. ४।।

(ब) सुप्तः सन् कनक पलाश कर्णिकारान्
संपश्येदपिच हुताश विद्युदुल्काः।। सु. शा. अ. ५

(स) सुप्तः सन् स कमल हंस चक्रवाकान्
संपश्येदपि च जलाशयान्मनोज्ञान्।।
सु. शा. अ. ४

यहाँ पर आचार्य ने क्रमपूर्वक वातज, पित्तज एवं कफज प्रकृति का विवेचन करते हुए बतलाया है कि वातज प्रकृति का व्यक्ति सोने पर नींद ठीक न आने के कारण आकाश में संचार करने के स्वप्न देखता है। जब पित्तज प्रकृति के गुणों का उन्होंने वर्णन शुरू किया तब वे कहते हैं कि पित्तज प्रकृति का व्यक्ति स्वर्ण, पलाश, कर्णिकार, अग्नि, बिजली, उल्कापात आदि को देखता है। जो लोग कफज प्रकृति के होते हैं वे स्वप्न-काल में कमल, हंस एवं चक्रवाक युक्त सुन्दर सरोवरों को देखते हैं।

इन्हीं स्वप्नों का वर्गीकरण फलाफल दृष्ट्या जब किया जाता है तब (१) फलयुक्त (अ) शुभ (व) अशुभ और (२) निष्फल में वर्गीकरण किये जाते हैं।

'निष्फल स्वप्न' की व्याख्या अत्यन्त संक्षिप्त और सरल है। इसका वर्गीकरण अनेक बातों को दृष्टिगत करते हुए किया गया है जो आगे चल कर साथ-साथ ज्ञात होता जावेगा।

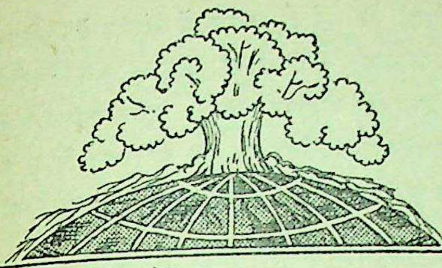
तत्र पञ्चविधं पूर्वम् फलं भिषगादिमृशेत।
दिवा स्वप्नमति ह्रस्वमति दीर्घञ्च बुद्धिमान।।
——च० इ० अ० ५

प्रथम पाँच प्रकार के स्वप्न (दृष्टं, श्रुतं, अनुभूतं च, प्रार्थितं, कल्पितं), दिन में देखा गया स्वप्न, अतिह्रस्व अथवा बहुत ही दीर्घ स्वप्न आचार्य ने निष्फल माना है।

रात्रि के प्रथम पहर में दिखलाई पड़नेवाला स्वप्न, अल्प फल करनेवाला होता है। जिस स्वप्न को देखने के बाद पुनः निद्रा न आवे वह महाफल को देनेवाला होता है। अशुभ स्वप्नों के उदाहरणार्थ हम "लाल पुष्पों के वन या पाप कर्म का होना, अन्धकारयुक्त गुफा में प्रवेश, बन्दर, भगवा वस्त्र धारण किये विकराल रूप वाले नग्न भयानक मनुष्य, शरीर पर तैलमर्दन करना, सिर पर बांस, गुल्म, वेल आदि का प्रकट होना, सिर का मुंडन देखना, कौवा, गृद्ध, उल्लू, कुत्ते आदि का देखा जाना मानते हैं। इनके देखने से स्वस्थ व्यक्ति का रोगी होना और रोगी की मृत्यु तक सम्भव मानते हैं।

फिर भी कहा गया है कि अशुभ के बाद यदि शुभ स्वप्न देखा जावे तो फल शुभ ही होगा।

अकल्याणमपि स्वप्नं दृष्ट्वा तत्रैवयः पुनः।
पश्येत्सौम्यं शुभाकारं तस्य विद्याच्छुभंफलम्।।
——च० इ० अ० ५



आयुर्वेद-जगत्

आयुर्वेद को सरकारी प्रोत्साहन

लोकसभा में एक प्रश्न के उत्तर में गत २५ फरवरी को केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री डी० पी० करमरकर जी ने अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा कि जहाँ तक सरकार का प्रश्न है, उसकी नीति आयुर्वेद तथा उसके साथ-साथ अन्य देशी चिकित्सा पद्धतियों को प्रोत्साहन देने की रही है। आपने बताया कि केन्द्रीय सरकार आयुर्वेद और अन्य देशी चिकित्सा पद्धतियों के सम्बन्ध में अनुसंधान करने वाली संस्थाओं को आवश्यकतानुसार आर्थिक सहायता भी देती रही है। किन्तु सखेद कहना पड़ता है कि सरकार की नीति से अपेक्षित लाभ नहीं उठाया जाता। आपने पुनः कहा कि सरकार की भी अपनी सीमा है और वह उस सीमा में रहते हुए ही अनुदान दे सकती है। निश्चय ही आयुर्वेद तथा अन्य चिकित्सा-पद्धतियों के लिए हम उतना व्यय नहीं कर सके जितना हमलोग चाहते थे।

दवे समिति द्वारा किए गए प्रतिवेदन की चर्चा करते हुए केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री ने कहा कि केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद् ने उक्त समिति के प्रतिवेदन पर विचार किया और परिषद् इस निष्कर्ष पर पहुँची कि वर्तमान स्थिति में देशी चिकित्सा-पद्धति के विकास के बारे में सभी राज्यों के लिए एक समान नीति निर्धारित करना कठिन है। आपने आगे कहा कि फिर भी विभिन्न राज्यों से सिफारिश की गयी कि वे अपने-अपने राज्यों में आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली तथा अन्य देशी चिकित्सा पद्धति के विकास की दिशा में कदम उठावें। श्री करमरकर जी ने कहा कि परिषद् ने इस आशय की सिफारिश की है कि केन्द्रीय सरकार को आयुर्वेद, यूनानी, होम्योपैथी तथा अन्य चिकित्सा-पद्धति में अनुसंधान-कार्य करने के लिए सक्रिय रूप में प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

मधुमेह की चिकित्सा के लिए देशी औषधियां

लखनऊ की औषधि गवेषणाशाला ने बहुत से प्रयोग करके, जामुन की गुठली को मधुमेह रोग में बहुत प्रभावकारी पाया है। पाश्चात्य चिकित्सक अभी तक मधुमेह को जड़ से मिटाने की कोई दवा नहीं निकाल सके हैं। जामुन की गुठली के आसव से रोगियों की रक्त-शर्करा (ब्लड शुगर) काफी कम हो गयी। रांगे, जस्ते और लोहे के साथ अभ्रक भस्म और बहुत थोड़ी मात्रा में तांबा तथा कोबल्ट देने से भी मधुमेह दूर हो जाता है। बीजा के सत से खरगोशों और मनुष्यों की रक्त-शर्करा में काफी कमी होती देखी गयी है। भारत में मधुमेह रोग में कई प्रकार की जड़ी-बूटियों का काफी समय से प्रयोग होता आया है और आयुर्वेदिक ग्रंथों में इस रोग और इसकी चिकित्सा का सविस्तार उल्लेख है। प्याज के रस से भी कुत्तों और खरगोशों की रक्त-शर्करा काफी कम हो गयी। रतनजोत का स्वरस देने से मधुमेह में ग्लुकोज में तो खास कमी नहीं पाई गयी, लेकिन इस रोग के अन्य सब लक्षणों में काफी कमी होती देखी गयी।

राजस्थान के वैद्यों को सूचना

देशीय चिकित्सा पद्धति के समभ्यासियों एवं देशीय धात्री विद्या की समभ्यासिकाओं को इस विज्ञप्ति द्वारा सूचित किया जाता है कि राजस्थान इण्डियन मेडिसिन बोर्ड द्वारा अनुभव के आधार पर राजस्थान देशीय चिकित्सा अधिनियम सन १९५३ के अंतर्गत रजिस्ट्रेशन तथा नामांकन की अवधि दिनांक १३-२-५८ से छः मास के लिये पुनः खोल दी गई है। अतः उक्त पद्धतियों के समभ्यासियों को चाहिये कि वे अपने-अपने आवेदन पत्र सब पूर्तियों एवं शुल्क के साथ निम्न हस्ताक्षरकर्ता के कार्यालय में उक्त अवधि में भेज दें।

(१) आवेदनपत्र, मजिस्ट्रेट का प्रमाणपत्र, जिला सभा की प्रामाणिकता तथा शुल्क के १० रुपये का पोस्टल आर्डर एक साथ में भेजें। इनको अलग-अलग न भेजा जावे।

(२) अवधि के बाद प्राप्त आवेदन पत्रों पर कोई विचार नहीं किया जावेगा।

(३) आवेदन पत्र आवश्यक पूर्ति के अभाव में अस्वीकृत कर दिया जावेगा।

(४) प्रार्थी प्रार्थना पत्र देने से पूर्व अपनी योग्यता का निर्णय करे। इस प्रकार अस्वीकृत आवेदन पत्रों का प्राप्त शुल्क किसी भी दशा में वापस नहीं किया जावेगा।

नोट :—(१) आवेदनपत्र व मजिस्ट्रेट प्रमाणपत्र कार्यालय से प्रार्थी अपना पता दिया हुआ १५ नं० पै० का लिफाफा भेज कर प्राप्त कर प्राप्त कर सकते हैं।

(२) राजस्थान देशीय चिकित्सा अधिनियम १९५३, आनियम व नियम प्रत्येक २५ न० पै० एवं आवश्यक पोस्टेज भेज कर प्राप्त कर सकते हैं।

—वैद्य रामप्रकाश स्वामी, रजिस्ट्रार, बोर्ड ऑफ इण्डियन मेडिसिन, राजस्थान, जयपुर।

उत्तर प्रदेश आयुर्वेद यूनानी चिकित्सक संघ

राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सालयों के इन्चार्ज समस्त वैद्य हकीम बन्धुओं के सूचनार्थ निवेदन है कि राजकीय आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सक संघ उत्तर प्रदेश के ग्यारहवें अधिवेशन की प्रबन्धकारिणी समिति ने विभागीय उपसंचालक महोदय के परामर्श के बाद निर्णय किया है कि संघ का ग्यारहवाँ अधिवेशन लखनऊ नगर में मई १९५८ में किया जाये। निश्चित तिथियों की सूचना बाद में यथासमय भेजी जावेगी।

संघ के प्रधान महोदय ने अपने अधिकार से निम्नलिखित पदों की पूर्ति इस प्रकार की है—उपप्रधान—(१) श्री रामानन्द वर्मा जी वैद्य बाराणसी, (२) श्री वसी अहमद अन्सारी जी हकीम, मुरादाबाद।

उपमन्त्री :—(१) कुन्दन लाल आर्यवैद्य, बारावंकी (२) श्री बदरुल हसन हकीम, हरदोई।

आयुर्वेद-तिब्बी कालेज जयपुर

राजपूताना आयुर्वेदिक व यूनानी तिब्बी कालेज के ३१वें वर्ष के दीक्षान्त समारोह पर श्री देवीशंकर जी तिबाड़ी ने अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सा प्रणालियों के प्रति श्रद्धा प्रकट की तथा छात्रों को सम्बोधित करते हुए कहा कि भारतीय चिकित्सा की प्रगति सत्य एवं लगन से ही पूर्ण हो सकती है। भाषण में आपने बताया कि किसी संस्था की प्रगति उसकी आर्थिक दशा की अपेक्षा उसके कार्यकर्त्ताओं पर निर्भर है। अन्त में आपने अपनी उपाधियों के अनुरूप योग्यता दिखाने के लिये पूर्ण श्रम एवं तत्परता से कार्य करने का अनुरोध किया। इस समारोह में ४२ छात्रों को आयुर्वेद में तथा ११ छात्रों को यूनानी में उपाधियाँ दी गई। अन्त में संस्था के रजिस्ट्रार ने धन्यवाद भाषण दिया तथा जन-गण-मन राष्ट्रीय गीत के साथ समारोह समाप्त हुआ। इसी अवसर एक आयुर्वेदिक व तिब्बी प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था जिसे देख कर सब ने उन्नति की शुभकामना प्रकट की।

आयुर्वेद सेवा सदन का उद्घाटन

कानपुर की समाजसेवी संस्था श्री अग्रसेन व्यायामशाला ने नागरिक वैद्य सभा का सहयोग प्राप्त कर अपने व्यायामशाला भवन में आयुर्वेद सेवा सदन की स्थापना की है जिसका विधिवत् उद्घाटन उत्तरप्रदेश के समाज कल्याण मन्त्री आचार्य जुगुलकिशोर जी ने हाल में ही किया है। आयुर्वेद सेवा सदन का उद्देश्य निःशुल्क चिकित्सा करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु नगर के ५ वैद्यशास्त्रियों ने अपनी ओर से अभी बिना मूल्य औषधियां सेवा सदन को दी है। सेवा सदन में रोगियों के लेटने तथा रहने की पूरी व्यवस्था है। अग्रसेन व्यायामशाला ने इसके लिए ५ कमरे बनवा दिये हैं और आतुरालय के लिए पृथक एक बड़ा स्थान बनवा दिया है।

समारोह में नागरिक वैद्य सभा के सभी प्रमुख वैद्य उपस्थित थे। समाज सेवा विभाग मन्त्री आचार्य जुगुलकिशोर के पधारने पर पं० रामेश्वर जी मिश्र वैद्य ने उनका हार्दिक स्वागत करते हुए कहा कि आयुर्वेद के प्रवर्तक तथा प्रधानाचार्य इसी राज्य में उत्पन्न हुए हैं। धन्वन्तरि, भरद्वाज, चरक, आत्रेय आदि ने इसी राज्य में जन्म ग्रहण किया। आयुर्वेद का प्रथम उपदेश भी यहीं हुआ। आयुर्वेद ही जनता की चिकित्सा पद्धति है। सरकार ने पहले भी आयुर्वेद के उत्थान के लिये अनेक कार्य किये हैं। इण्डियन मेडिसन बोर्ड की स्थापना ही इस बात का एक प्रमाण है।

समाज कल्याण मन्त्री आचार्य जुगुलकिशोर ने अपने भाषण में इस संस्था का उद्घाटन करने पर प्रसन्नता प्रकट की। आपने कहा कि यह शुभ कार्य है। मेरा भी हाथ इस सेवाकार्य में लग रहा है, इसका मुझे हर्ष है। जहाँ तक आयुर्वेद का सम्बन्ध है, इसकी महत्ता सभी मानते हैं। ८० फीसदी जनता आयुर्वेद से लाभ पाती है। सरकार भी आयुर्वेद के लिये काफी प्रयास कर रही है। आज यदि आयुर्वेद की ओर लोगों का ध्यान कम है तो इसका उत्तरदायित्व वैद्यों पर भी है जो शोध-कार्य की ओर से उदासीन

रहते हैं। आवश्यकता है कि वैद्य-समाज आयुर्विज्ञान में अधिकाधिक शोध करे और जनता का विचारशील वर्ग समाज सेवा में प्रवृत्त हो और चिकित्सा की संस्थाओं को जन्म दे और उनके संचालन में सभी अपना-अपना योग दें। जनता के कार्यों में सरकार का हाथ बंटाना उचित ही है। पर हमें अपनी शक्ति पर ही भरोसा करना चाहिये।

नागरिक वैद्य सभा के अध्यक्ष पं० सत्यनारायण मिश्र वैद्य ने अन्त में मन्त्री महोदय को धन्यवाद दिया।

शिवपुरी औषधालय का वार्षिक चुनाव

शिवपुरी जनता तथा नगरपालिका सर्व हितैषी आयुर्वेदिक औषधालय शिवपुरी का वार्षिक चुनाव गतवर्षानुसार इस वर्ष भी सेठ श्री किशनदास जी गोयल की अध्यक्षता में बड़े शान्तिपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ। औषधालय के मंत्री श्री हरनारायण जी जैन ने औषधालय का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता व्यक्त की कि इस वर्ष जनता तथा नगरपालिका के सक्रिय सहयोग एवं श्री जानकी प्रसाद जी मिश्र वैद्यशास्त्री के अकथनीय परिश्रम के कारण नगर के विभिन्न मोहल्लों तथा समीपवर्ती ग्रामों के अधिकांशतः ज्वर, मलेरिया, वातकफज्वर (फिल्यू) रक्तविकार आदि रोगों से ग्रसित होकर २२२३२ रोगियों ने निःशुल्क चिकित्सा से लाभ उठाया। इस वर्ष के लिए श्री सेठ किशनदास जी गोयल अध्यक्ष, बाबू श्रीलालजी मंगल उपाध्यक्ष तथा श्री हरनारायण जी जैन मंत्री सर्वसम्मति से निर्वाचित हुए।

बड़ौदा जिला वैद्यमंडल

बड़ौदा जिला वैद्य मंडल की साधारण सभा में निम्नलिखित पदाधिकारी १९५८ साल के लिये नियुक्त किये गये हैं:—

वैद्य मोहनलाल न० चोक्सी अध्यक्ष, वैद्य धीरजलाल मा० शाह एवं वैद्य अम्बालाल म० पटेल उपाध्यक्ष, वैद्य जगदीश चन्द्र मु० पंड्या प्रधान मंत्री, वैद्य कनुभाई गि० त्रिवेदी प्रचार मंत्री, वैद्य विष्णु प्रसाद बोरसदवाला सहमंत्री, वैद्य रविशंकर पुरोहित कोषाध्यक्ष, वैद्य तोलाशंकर जे० भट्ट हिसाब परीक्षक।

राजस्थान वैद्य सम्मेलन

राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की कार्यकारिणी समिति का अधिवेशन गत २ फरवरी को जोधपुर में सम्पन्न हुआ। कविराज श्री माधव प्रसाद शास्त्री ने अधिवेशन का सभापतित्व किया। राजस्थान में आयुर्वेद की विभिन्न समस्याओं पर विचार करने के साथ-साथ अधिवेशन में



राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन की कार्यसमिति की बैठक का दृश्य

आयुर्वेद की प्रगति के सम्बन्ध में अनेक योजनाओं पर विचार विमर्श और निर्णय किया गया।

धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय

प्रतापगढ़ शहर में सेठ बाबूलाल फूलचन्द धर्मार्थ आयुर्वेदिक चिकित्सालय का उद्घाटन उन्हीं की धर्मशाला में १५ जनवरी को धार्मिक कृत्यों के साथ संपन्न हुआ, जिसमें पहले गणेशादि तथा धन्वन्तरि पूजन के अनन्तर चरक संहिता का पारायण एवं सुश्रुत संहिता का पाठ, हवन, भिषक् पूजन, ब्राह्मण भोजन आदि कृत्य संपन्न हुए। कृत्य के समय देहात तथा शहर के प्रतिष्ठित अनेक वैद्य-विद्वान् संमिलित रहे। चिकित्सालय के आयोजक बी० एन० मेहता संस्कृत आदर्श महाविद्यालय के भूतपूर्व प्रधानाचार्य श्री हरिनारायण शर्मा वैद्य आयुर्वेदाचार्य और संस्थापक सेठ जी के पुत्र श्री बद्रीप्रसाद बी० ए० एल० एल० बी० एवं श्री ईश्वर प्रसाद का मनोयोग प्रशंसनीय है, जो शहर के लिये कल्याणकारी एक नया कार्य है। चिकित्सालय में चिकित्सक श्री सत्यदेव आयुर्वेदाचार्य की नियुक्ति हुई है।

आयुर्वेद-यूनानी कम्पाउण्डर संघ

राजकीय आयुर्वेद-यूनानी कम्पाउण्डर संघ, उत्तरप्रदेश का वार्षिकोत्सव आगामी २८-२९ अप्रेल को कन्दरावां जिला रायबरेली में होने जा रहा है। सभी राजकीय कम्पाउण्डरों को इसमें योगदान करने के लिए अनुरोध किया गया है।

राजकीय कम्पाउण्डरों को ट्रेण्ड घोषित करने के प्रश्न पर सरकार विचार कर रही है और ऐसी आशा है कि शीघ्र ही सरकारी निर्णय की सूचना कम्पाउण्डरों को दी जा सकेगी।

आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा संघ

राजकीय आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सक संघ, मथुरा का चुनाव जिला स्वास्थ्य अधिकारी के कार्यालय में संपन्न हुआ। सर्वसमिति से श्री बुद्धिसागर आयुर्वेदाचार्य को सभापति, श्री उदयवीर सिंह शास्त्री को मंत्री तथा श्री बनारसी दास को कोषाध्यक्ष चुना गया।

रसशास्त्र विषयक प्रश्न

पारद अनुसन्धान कार्यालय, विश्वज्ञान मन्दिर, कनखल (हरिद्वार) के सेक्रेटरी ने एक विज्ञप्ति द्वारा श्री नारायण स्वामी से मुलाकात करने की इच्छा रखनेवाले सज्जनों को सूचित किया है कि पारद अनुसन्धान कार्य में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण आगामी छः मास तक श्री नारायण स्वामी जी किसी से मुलाकात करने में असमर्थ हैं। रस-शास्त्र के विषय में स्वामी जी के पास तीन प्रश्न लिखकर अपने पूरे नाम-पते के साथ भेजने पर स्वामी जी उसका उत्तर दे देंगे अथवा जरूरत पड़ने पर मुलाकात करने के लिए पत्र द्वारा सूचना देंगे। धातुवाद के विषय में स्वामी जी किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देंगे और इस विषय पर कोई बात-चीत भी नहीं करेंगे।

वयोवृद्ध वैद्य का निधन

रमेश औषधालय नांदेड़ के वैद्य रामेश्वर चतुर्वेदी के पिताजी वैद्य किशनलाल चतुर्वेदी का ९० वर्ष की उम्र में देहावसान हो गया। आप अपने पीछे तीन पुत्र, एक पुत्री तथा प्रपौत्र-प्रपौत्रियों का वृहद् परिवार छोड़ गये हैं।

श्री नटराज शास्त्री को मातृशोक

आयुर्वेद-विद्यापीठ के अध्यक्ष वैद्य पं० बा० वा० नटराज शास्त्री की माताजी का हाल में ही परिपक्व आयु में देहावसान हो गया। हम श्री शास्त्री जी के प्रति आन्तरिक समवेदना प्रकट करते हैं।

वैद्य पं० सीताराम मिश्र को शोक

आयुर्वेद-विद्यापीठ के प्रधान मंत्री वैद्य पं० सीताराम जी मिश्र की माताजी का देहावसान हाल में ही हो गया। हम दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए कामना करते हुए श्री मिश्र जी के प्रति अपनी समवेदना प्रकट करते हैं।

वैद्यराज प्रो० चतुर्भुज चौधरी का देहावसान

अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेद महाविद्यालय बेगूसराय, के द्रव्यगुण विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर चतुर्भुज चौधरी का हृदयावसाद के कारण शुक्रवार ता० १४-२-१९५८ को दरभंगा मेडिकल कालेज अस्पताल में स्वर्गवास हो गया। वे लगभग १ वर्ष से हृदयावसाद रोग से पीड़ित थे। कष्ट बहुत बढ़ जाने के कारण ता० ९-२-१९५८ को चिकित्सा के लिए दरभंगा मेडिकल कालेज अस्पताल में उन्हें प्रविष्ट कराया गया था। वहाँ हृदयरोग विशेषज्ञ डा० वी० मुखर्जी की चिकित्सा चल रही थी। परन्तु रोग असाध्य था और स्थिति बहुत चिन्तनीय थी। अतः डा० मुखर्जी के अथक प्रयत्नों के बावजूद पं० चौधरी जी की प्राणरक्षा नहीं हो सकी। उनके स्वर्गवास का समाचार बेगूसराय पहुँचते ही अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेद महाविद्यालय में गहरा शोक छा गया। महाविद्यालय के सब विभाग उनके सम्मान में बन्द रहे तथा सब प्राध्यापकों, छात्रों एवं कार्यकर्त्ताओं की शोक सभा में शोक प्रस्ताव स्वीकार किया गया। सब ने आर्थिक सहायता कोष बना कर उनके श्राद्ध आदि क्रियाकर्म के लिए तात्कालिक तथा परिवार के भरण-पोषण के लिए नियमित मासिक आर्थिक सहायता देने का निश्चय किया।

श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन द्वारा संचालित बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय में गत जनवरी मास में कुल ९२१ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई। इसमें ३९४ नये और ५२७ पुराने रोगी थे। इसमें पुरुष रोगियों की संख्या २३८, स्त्री रोगियों की संख्या ६१ और बाल रोगियों की संख्या ९५ थी। इस मास की दैनिक उपस्थिति का औसत २९·७ रहा। नये रोगियों की संख्या रोगानुसार नीचे लिखे मुताबिक है :—

ज्वर २९, श्वसनकज्वर ७, मन्थर ज्वर १, उत्फुल्लिका ९, उदर रोग ५३, आमातिसार १६, कास ७६, श्वास १५, प्रमेह ४, कृमि ७, वातव्याधि ४४, आमवात ५, श्लीपद ५, रजोदोष २, प्रदर २, वृद्धिरोग २, शिरोरोग ४, नेत्र ३, नासा रोग (प्रतिश्याय) ४२, कर्ण ७, मुख १६, व्रण, ९, अम्लपित्त २, क्षुद्र कुष्ट २०, कुष्ट १ पाण्डु ३, सन्निपात १, मूत्रकृच्छ्र १, उपदंश १, अक्षिस्राव २, प्लुष्ट १, हृदय शूल १, विसर्प २।

वैद्यनाथ रस-रसायन की श्रेष्ठता

आयुर्वेदीय चिकित्सा में रसों का अति श्रेष्ठ स्थान है। हमारे वैद्यों के पास यदि रस-चिकित्सा न होती, तो वर्तमान डाक्टरी-चिकित्सा के सामने उनका ठहरना कठिन था। यदि वैद्यों के पास प्रधान-प्रधान रस न हों, तो उन्हें शस्त्रहीन योद्धा ही समझना चाहिए। हमारे देश में रस-वैद्यों को श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। रस अल्प-मात्रा (एक-दो रत्ती) में ही तत्काल लाभ दिखलाते हैं और इससे अरुचि भी नहीं होती। वैद्यनाथ-रसों की विशेषता यह है कि उत्तम और प्रामाणिक वस्तु डालकर ही हमारे यहाँ रस बनाये जाते हैं। हम निरन्तर इस बात का प्रयत्न करते हैं कि आयुर्वेद की औषधें, डॉक्टरी दवाओं के सामने विशेष गुणप्रद साबित हों। उचित मूल्य में प्रामाणिक रस चाहनेवाले सज्जन निश्चय ही हमारी चीजों से सन्तुष्ट होंगे।

अगस्तिसूतराज रस––अतिसार, संग्रहणी, आमांश-शूल, मन्दाग्नि आदि में यह बहुत उपयोगी है। कीमत––१ तोला ७।।), आठ आना भर ३।।।-), चार आना भर १।।।≡), दो आना भर १)

अग्निकुमार रस––अजीर्ण, मन्दाग्नि एवं पेट-दर्द में उपयोगी है। कीमत––१ तोला ।।।), आठ आना भर ।≡), चार आना भर ।)

अग्निसंदीपन रस––अधिक भोजन के कारण अजीर्ण होने पर इससे शीघ्र पाचन होता है। कीमत––१ तोला ।।।=), आठ आना भर ।।), चार आना भर ।)।।

अजीर्णकंटक रस––अजीर्ण और हैजे की पहली दशा में इसका प्रयोग करना चाहिए। कीमत––१ तोला ।।।=), आठ आना भर ।।), चार आना भर ।)।।

अजीर्णारि रस––यह दीपन, पाचन, और दस्तावर है। मन्दाग्नि, अजीर्ण, कब्जियत आदि को दूरकर अग्नि की वृद्धि करता है। कीमत––१ तोला ।।।=), आठ आना भर ।।), चार आना भर ।)।।

अर्द्धनारीनटेश्वर रस––सन्निपात, तन्द्रा, अनिद्रा आदि में नस्य रूप में प्रयुक्त होने से यह शीघ्र गुण दिखलाता है। कीमत––१ तोला २।=), आठ आना भर १।), चार आना भर ।।=)।।

अमरसुन्दरी (बटी) रस––सभी प्रकार के वात-रोगों में इससे लाभ होता है। सन्निपात ज्वर के प्रलाप एवं पेट में वायु भर जाने से पेट फूल जाने पर इसका सेवन श्रेष्ठ है। कीमत––१ तोला ।।।), आठ आना भर ।≡), चार आना भर ।)

अमीर रस––इसका व्यवहार वैद्य के परामर्श से करना चाहिए। कीमत––१ तोला ९), आठ आना भर ४।।-), चार आना भर २।-), दो आना भर १≡)

अमृतार्णव रस––यह अतिसार, संग्रहणी, बवासीर, अम्लपित्त आदि में बहुत लाभदायक है। कीमत––१ तोला ।।।=), आठ आना भर ।।), चार आना भर ।)।।

अर्शकुठार रस––बवासीर में कब्जियत रहने से बड़ी तकलीफ होती है। इस दवा के सेवन से दस्त साफ आकर मस्से सूख जाते हैं। कीमत––१ तोला १।।=), आठ आना भर ।।।=), चार आना भर ।≡)।।

अश्वकंचुकी रस––जीर्णज्वर, अजीर्ण, गुल्म आदि रोगों में इसका जुलाब लेना अच्छा है। कीमत––१ तोला ।।।=), आठ आना भर ।।), चार आना भर ।)।।

अश्विनीकुमार रस––पेट की वायु बिगड़ जाने से होनेवाले उदर-रोगों में और जाड़ा लगकर आनेवाले ज्वर में इस रस का उपयोग किया जाता है। कीमत––१ तोला २), आठ आना भर १-), चार आना भर ।।-)

आनन्दभैरव रस (कास)––कास (खाँसी), श्वास और कफ के विकारों में इससे अच्छा लाभ होता है। सन्निपात ज्वर और अतिसार में भी इसका उपयोग होता है। कीमत––१ तोला १), आठ आना भर ।।-), चार आना भर ।-)

आनन्दभैरव रस (ज्वर)––बुखार को पकाकर नष्ट करता है। सभी तरह के ज्वरों में इससे फायदा होता है। बुखार के तीव्र वेग को शीघ्र घटाता है। कीमत––१ तोला ।।।≡), आठ आना भर ।।)।।, चार आना भर ।)।।।

आमवातारि रस--आमवात रोग से जिस समय सम्पूर्ण शरीर में दर्द हो, उस समय इसके उपयोग से अच्छा लाभ होता है। कीमत--१ तोला ।।।=), आठ आना भर ।।), चार आना भर ।)।।

आरोग्यवर्द्धिनी बटी--अजीर्ण, मलावरोध, रक्त-विकार, ज्वर और शोथ में बहुत लाभकारी है। यकृत-रोगों (Liver complaints) की बहुत उपयोगी दवा है। कीमत--१ तोला ।।।≡), आठ आना भर ।।)।।, चार आना भर ।)।।।

इच्छाभेदी रस--यह तीव्र विरेचक है और ५-७ दस्त लाकर पेट को साफ कर देता है। कीमत--१ तोला १=), आठ आना भर ।।=), चार आना भर ।-)।।

उन्मत्त रस--सन्निपात ज्वर तथा तन्द्रा (आँखों में झँपझपी) होने पर इसका नस्य देने से होश आ जाता है। कीमत--१ तोला १।।), आठ आना भर ।।।-), चार आना भर ।≡)

उन्मादगजांकुश रस--यह वात आदि त्रिदोषजन्य विकारों की श्रेष्ठ दवा है। इससे निद्रा आकर रोगी को शान्ति मिलती है। कीमत--१ तोला २।), आठ आना भर १≡), चार आना भर ।।=)

एकांगवीर रस--इसके सेवन से गृध्रसी, विकलांगता आदि तीव्र वात-विकारों में लाभ होता है। अंगों में आई हुई अशक्तता को दूर करने में यह विशेष फलदायक है। कीमत--१ तोला ५।), आठ आना भर २।।≡), चार आना भर १।=), दो आना भर ।।≡)।।

कनकसुन्दर रस--अतिसार और संग्रहणी में, यदि आँव-दोष न हो, तो इसका उपयोग अति श्रेष्ठ है। यह वेदनाशामक, अग्निदीपक तथा संग्राहक है। ज्वरातिसार में भी लाभ करता है। कीमत--१ तोला १।-), आठ आना भर ।।≡)।।, चार आना भर ।=)।

कफकर्त्तरी--दमा-खाँसी में जमे हुए कफ को बाहर निकालकर रोगी को आराम पहुँचाने में अत्युत्तम है। कीमत--१ तोला १।।=), आठ आना भर ।।।=), चार आना भर ।≡)।।

कफकुठार रस--कफ के अधिक गिरने तथा खाँसी और दमा में इसका व्यव्रहार करने से आशाजनक लाभ होता है। कीमत--१ तोला २।।।), आठ आना भर १।≡), चार आना भर ।।।)

कफकेतु रस--कफजन्य बुखार, खाँसी, श्वास और जुकाम में इस दवा से लाभ होता है। कीमत--१ तोला ।।।=), आठ आना भर ।।), चार आना भर ।)।।

कफचिन्तामणि रस--इसके सेवन से सब प्रकार के कफ और वात-रोग नष्ट होते हैं। कीमत--१ तोला ५।।), आठ आना भर २।।।-), चार आना भर १।≡), दो आना भर ।।।)

कर्पूर रस--यह पतले दस्त, संग्रहणी, आदि में तत्काल फायदा दिखलाता है। यह संग्राहक है। कीमत--१ तोला ४।।), आठ आना भर २।-), चार आना भर १≡)

कल्पतरु रस--कफ और वातज्वर में बहुत ही लाभ करता है। कास, शीत, अग्निमांद्य आदि में लाभकारी है। नस्य भी लिया जाता है। कीमत--१ तोला ।।।), आठ आना भर ।≡), चार आना भर ।)

कस्तूरीभूषण रस--सन्निपात ज्वर में जिस समय हाथ-पैर ठंढा पड़कर नाड़ी की गति क्षीण होती जा रही हो, उस समय यह बहुत काम करता है। शरीर में शीघ्र ही गर्मी लाकर रोगी को चैतन्य कर देता है। कीमत--१ तोला २४), चार आना भर ६-), दो आना भर ३-), एक आना भर १।।-)

कस्तूरीभैरव रस--सन्निपात, सावधि ज्वर और प्रलाप में विशेष लाभकारी है। कीमत--१ तोला २२।।), चार आना भर ५।।≡), दो आना भर २।।।=), एक आना भर १।≡)।।

कामदुधा रस--रक्तपित्त, अम्लपित्त, भ्रम आदि पित्त-विकारों में लाभकारी है। कीमत--१ तोला २।।=), आठ आना भर १।=), चार आना भर ।।≡)।।

कामदुधा रस (मोती-युक्त)--पित्तजन्य समस्त रोगों की यह श्रेष्ठ दवा है। रक्तपित्त, अम्लपित्त, भ्रम, गर्भावस्था के वमन एवं रक्तस्राव आदि में उपयोगी साबित होता है। कीमत--१ तोला १०), चार आना भर २।।-), दो आना भर १।-)

कामधेनु रस--इसके सेवन से मूत्र-विकार आदि दोष दूर होकर शरीर में बल, बुद्धि और पौरुष की वृद्धि होती है। कीमत--१ तोला ३), आठ आना भर १।।-), चार आना भर ।।।-)

कालकूट रस—सन्निपात ज्वर, ग्रन्थिक सन्निपात (प्लेग) और शीतज्वर में इसका उपयोग करना चाहिए। कीमत—१ तोला २।।=), आठ आना भर १।=), चार आना भर ।।≡)।।

कालारि रस—यह सब प्रकार के वात, कफ और सन्निपात ज्वरों में लाभ करता है। कीमत—१ तोला १।।), आठ आना भर ।।।-), चार आना भर ।≡)

क्रव्याद रस—मंदाग्निमूलक रोगों की श्रेष्ठ दवा है। यह दीपन और पाचन है। कीमत—१ तोला १।।।), आठ आना भर ।।।≡), चार आना भर ।।)

कृमिकुठार रस—पेट के कीड़ों को नष्ट करता है। कीमत—१ तोला १।।), आठ आना भर ।।।-), चार आना भर ।≡)

खंजनिकारि रस—इसके सेवन से वात-व्याधि दूर होती है और यह अशक्त अंगों को सशक्त बनाता है। कीमत—१ तोला ५।।), आठ आना भर २।।।-), चार आना भर १।≡), दो आना भर ।।।)

गंगाधर रस—अतिसार और संग्रहणी की बीमारी में यह अच्छा काम करता है। कीमत—१ तोला १।=), आठ आना भर ।।।), चार आना भर ।=)।।

गंधक रसायन—सब प्रकार के रक्त-विकार, अशुद्ध पारे के सेवन से उत्पन्न विकार, खाज-खुजली, फोड़ा-फुन्सी, चकत्ता आदि रक्त एवं चर्म-रोगों को दूर कर बल-वृद्धि और पाचकाग्नि बढ़ाने में उपयोगी है। कीमत—१ तोला १।।।=), आठ आना भर १), चार आना भर ।।)।।

गर्भपाल रस—गर्भ के कारण पैदा होनेवाले वमन, अरुचि आदि की अच्छी दवा है। कीमत—१ तोला ३), आठ आना भर १।।-), चार आना भर ।।।-)

ग्रहणी कपाट रस—पुराने अतिसार और संग्रहणी में इस रस का उपयोग शीघ्र लाभदायक है। इसके सेवन से आम के विकार मिटते हैं तथा अग्नि प्रदीप्त होती है। कीमत—१ तोला २।।।), आठ आना भर १।≡), चार आना भर ।।।)

गुल्मकालानल रस—सब प्रकार के गुल्म, विशेषकर वायुगोले की अच्छी दवा है। कीमत—१ तोला १।।=), आठ आना भर ।।।=), चार आना भर ।≡)।।

चन्द्रकला रस—रक्तपित्त, रक्तस्राव, दाह, वमन, जीर्णज्वर एवं अन्यान्य पित्त-विकारों में लाभकारी है। कीमत—१ तोला ७।।), आठ आना भर ३।।।-), चार आना भर १।।।≡), दो आना भर १)

चन्द्रकान्त रस—सब प्रकार के शिरोरोग की अच्छी दवा है। कीमत—१ तोला ५), आठ आना भर २।।-), चार आना भर १।-)

चन्द्रांशु रस—आयुर्वेद-शास्त्र में इसके अनेक गुण वर्णित हैं। यह स्त्रियों के लिए बहुत लाभदायक है। चिकित्सक की राय से व्यवहार करना चाहिए। कीमत—१ तोला ४।।।), आठ आना भर २।≡), चार आना भर १।)

चन्द्रशेखर रस—जीर्णज्वर, रक्तपित्त, कास-श्वास आदि रोगों में लाभदायक है। बच्चों के तीव्र वात-विकार और डब्बारोग में उपकारी है। कीमत—१ तोला १२), आठ आना भर ६-), चार आना भर ३-), दो आना भर १।।-)

चन्द्रामृत रस—खाँसी (कास) में उपयोगी है। जुकाम और गले की खराबी से खाँसी होने पर मिश्री के साथ चूसने से शीघ्र फायदा करता है। कीमत—१ तोला १), आठ आना भर ।।-), चार आना भर ।-)

जलोदरारि रस—यह दवा जलोदर-रोग में संचित जल को सुखाती तथा बाहर निकालती और फिर जल-संचय नहीं होने देती है। यह रेचक भी है। कीमत—१ तोला २।।), आठ आना भर १।-), चार आना भर ।।≡)

ज्वरमुरारि रस—ज्वर में अजीर्ण, अनपच और दस्त की कब्जियत होने पर इस दवा के उपयोग से उत्तम विरेचन होकर ज्वर उतर जाता है। कीमत—१ तोला ।।।≡), आठ आना भर ।।)।।, चार आना भर ।)।।।

ज्वरसंहार रस—सब प्रकार के ज्वरों में, विशेषतः वात-कफ-प्रधान ज्वरों में, लाभ पहुँचाता है। नये ज्वर में इसका विशेष उपयोग होता है। कीमत—१ तोला १।।।), आठ आना भर ।।।≡), चार आना भर ।।)

ज्वरशूलहर रस—यह इन्फ्लुएंजा, मलेरिया, एकतरा, तिजारी, चौथिया आदि विभिन्न प्रकार के बुखारों में लाभदायक है। कीमत—१ तोला ४।।), आठ आना भर २।-), चार आना भर १≡)

ज्वरांकुश रस—मलेरिया बुखार की अत्यन्त प्रसिद्ध दवा है। कीमत—१ तोला ।।।=), आठ आना भर ।।), चार आना भर ।)।।

ज्वरारि अभ्र--पुराना ज्वर, धातुगत ज्वर और विषमज्वर में इसके उपयोग से विशेष लाभ होता है। कीमत--१ तोला १।।), आठ आना भर ।।।-), चार आना भर ।≡)

तारकेश्वर रस--बार-बार पेशाब लगने अथवा पेशाब के साथ विभिन्न दूषित पदार्थों के निकलने की अवस्था में रस-रक्तादि धातुओं को बढ़ाकर शरीर को पुष्ट करता है। कीमत--१ तोला ४।।), आठ आना भर २।-), चार आना भर १≡)

तालकेश्वर रस--नियमित रूप से कुछ दिन तक पथ्यपूर्वक इस दवा के सेवन से खाज-खुजली आदि कठिन-से-कठिन चर्म-रोग और रक्त-रोग दूर होते हैं। कीमत--१ तोला २।), आठ आना भर १≡), चार आना भर ।।=)

त्रिविक्रम रस--पथरी हो जाने के कारण, पेशाब करते समय, तकलीफ होती है तथा गुर्दे में दर्द होने लगता है। इस हालत में यह बहुत लाभदायक है। कीमत--१ तोला ६।।), आठ आना भर ३।-), चार आना भर १।।≡), दो आना भर ।।।=)

त्रिभुवनकीर्ति रस--ज्वर, सर्दी, जुकाम, इन्फ्लुएंजा, निमोनिया और सन्निपात में यह बहुत प्रचलित औषधि है। कीमत--१ तोला ।।।=), आठ आना भर ।।), चार आना भर ।)।।

दन्तोद्भेदगदान्तक रस--बच्चों के दाँत निकलने के समय हरे-पीले और पतले दस्त होने, दूध गिरने, ज्यादा रोने-चिल्लाने, पेट में दर्द, अपच, ज्वर आदि की शिकायतें होती हैं, जिनके लिये यह बहुत फायदेमन्द है। इसे खिलाना एवं दाँत उठने की जगह पर लगाना चाहिए। कीमत--१ तोला १।), आठ आना भर ।।≡), चार आना भर ।=)

दुर्जलजेता रस--दूषित जल-वायुवाले स्थान के जल-पान से उत्पन्न रोगों में या नई जगह जाने पर पानी लग जाने से अथवा ऋतु-परिवर्तन के समय उत्पन्न विकारों में इस रस का उपयोग किया जाता है। कीमत--१ तोला १।), आठ आना भर ।।≡), चार आना भर ।=)

नवज्वरेभसिंह रस--ज्वर की प्रारम्भिक अवस्था में इसका सेवन करना चाहिए। कीमत--१ तोला २।।=), आठ आना भर १।=), चार आना भर ।।≡)।।

नष्टपुष्पान्तक रस--स्त्रियों के लिए उपयोगी है। गुण-धर्म की जानकारी वैद्य से प्राप्त करें। कीमत--१ तोला ४।), आठ आना २≡), चार आना भर १=)

नागार्जुनाभ्र रस--अनिद्रा, भ्रम आदि की सुप्रसिद्ध दवा है। कीमत--१ तोला ४।), आठ आना भर २≡), चार आना भर १=)

नाराच रस--यह तीव्र विरेचन है। गुल्म, कब्जियत, प्लीहा, यकृत्-वृद्धि आदि रोगों में यह दवा पेट साफ करती है। कीमत--१ तोला १।।=), आठ आना भर ।।।=), चार आना भर ।≡)।।

नित्यानन्द रस--यह श्लीपद (फीलपाँव) की शास्त्रोक्त दवा है। कीमत--१ तोला १।), आठ आना भर ।।≡), चार आना भर ।=)

नृपतिवल्लभ रस--मन्दाग्नि से पैदा होनेवाले रोगों में बहुत उपयोगी है। कीमत--१ तोला १।।=), आठ आना भर ।।।=), चार आना भर ।≡)।।

पंचवक्त्र रस--वात-कफ-प्रधान ज्वर, जीर्णज्वर, सन्निपात ज्वर, इन्फ्लुएंजा, सर्वाङ्ग में दर्द, तन्द्रा, आलस्य आदि रोगों में इससे लाभ होता है। कीमत--१ तोला १।।), आठ आना भर ।।।-), चार आना भर ।≡)

पाशुपत रस--यह रस मन्दाग्नि, शूल, संग्रहणी, अतिसार, बवासीर, अजीर्ण आदि रोगों को दूर कर अग्नि दीप्त करता है और पाचन-शक्ति बढ़ाता है। कीमत--१ तोला १।), आठ आना भर ।।≡), चार आना भर ।=)

पाण्डुपंचानन रस--पाण्डु, कामला, यकृत् तथा प्लीहा-वृद्धि-विकार में लाभदायक है। कीमत--१ तोला १।=), आठ आना भर ।।।), चार आना भर ।=)।।

पीयूषवल्ली रस--संग्रहणी, अतिसार, आमशूल आदि उदर-विकारों में अत्यन्त गुणकारी है। कीमत--१ तोला २।=), आठ आना भर १।), चार आना भर ।।=)।।

पुष्पधन्वा रस--गुण-धर्म की जानकारी वैद्य से प्राप्त करें। कीमत--१ तोला ६), आठ आना भर ३-), चार आना भर १।।-), दो आना भर ।।।-)

पूर्णचन्द्र रस--यह अत्यन्त बल-वर्द्धक शास्त्रोक्त रसायन है। इसके नियमित सेवन से शरीर पुष्ट और स्नायु-मण्डल मजबूत होते हैं। कीमत--१ तोला ६), आठ आना भर ३-), चार आना भर १।।-), दो आना भर ।।।-)

प्रतापलंकेश्वर रस--प्रसव के बाद होनेवाली खाँसी, ज्वर, अतिसार, वायुविकार, मन्दाग्नि आदि की बहुत अच्छी दवा है। कीमत--१ तोला २।।), आठ आना भर १।-), चार आना भर ।।।-)

प्रदरान्तक रस—चिकित्सक की सलाह के अनुसार प्रयोग करना चाहिए। कीमत—१ तोला ३।।=), आठ आना भर १।।।=), चार आना भर ।।।≡)।।

प्रदररिपु रस—चिकित्सक से जानकारी प्राप्त करें। कीमत—१ तोला ११), आठ आना भर ।।≡), चार आना भर ।=)

प्रवाल पंचामृत—इससे उदर-रोग, अम्लपित्त, गुल्म, यकृत्, प्लीहा-वृद्धि, मन्दाग्नि, मूत्रविकार, अश्मरी, अजीर्ण, श्वास आदि रोग दूर होते हैं। कीमत—१ तोला १४।।), चार आना भर ३।।≡), दो आना भर १।।।=), एक आना भर ।।।≡)।।

बड़वानल रस—यह अजीर्ण, मन्दाग्नि, गुल्म आदि के लिए उत्तम है। इसके सेवन से पाचन-शक्ति भी ठीक होती है। कीमत—१ तोला २।=), आठ आना भर १।), चार आना भर ।।=)।।

बंगेश्वर रस—इससे बल-पौरुष की वृद्धि होती है और असंयम-जनित विभिन्न रोग दूर होते हैं। कीमत—१ तोला ८), आठ आना भर ४–), चार आना भर २–), दो आना भर १–)

बहुमूत्रान्तक रस—रक्त की कमी और दुर्बलता में विशेष लाभदायक है। कीमत—१ तोला १२), आठ आना भर ६–), चार आना भर ३–), दो आना भर १।।–)

बालरोगान्तक रस—इससे बच्चों के सब तरह के ज्वर, आमदोष, पेट की खराबी से होनेवाले दस्त, खाँसी, सर्दी, जुकाम, पसली चलना तथा दाँत निकलने के समय के उपद्रव दूर होते हैं। कीमत—१ तोला ३), आठ आना भर १।।–), चार आना भर ।।।–)

बालार्क रस—यह बालकों के वात और कफ के विकार तथा पतले दस्त, उल्टी, ज्वर आदि में फायदेमन्द है। कीमत—१ तोला १४), आठ आना भर ७–), चार आना भर ३।।–), दो आना भर १।।।–)

बेताल रस—विषमज्वर और घोर सन्निपात ज्वर में इसका प्रयोग किया जाता है। कीमत—१ तोला २।।), आठ आना भर १।–), चार आना भर ।।≡)

बोलबद्ध रस—बवासीर, खाँसी, दस्त आदि किसी भी रोग में शरीर के किसी भी भाग से खून क्यों न आता हो यह दवा उस में लाभकारी है। कीमत—१ तोला १।।=), आठ आना भर ।।।=), चार आना भर ।≡)।।

भुवनेश्वर रस—सब प्रकार के आँव, पेचिश, अतिसार, संग्रहणी, मन्दाग्नि, में लाभकारी है। कीमत—१ तोला ।।–), आठ आना भर ।–)।।, चार आना भर ≡)।।

मन्मथ रस—यह शरीर की दुर्बलता नष्टकर बल-विक्रम को बढ़ाता है। इसके विशेष गुण चिकित्सक से जानने चाहिए। कीमत—१ तोला १।।), आठ आना भर ।।।–), चार आना भर ।≡)

महागन्धक रस—इसके व्यवहार से अतिसार, पतले दस्त, संग्रहणी, बच्चों के हरे-पीले दस्त आदि रोग अच्छे होते हैं। यह पुराने आँव की अनुभूत दवा है। कीमत—१ तोला २), आठ आना भर १–), चार आना भर ।।–)

महाज्वरांकुश रस—विषमज्वर, पारी से आनेवाला ज्वर, जीर्णज्वर आदि में इसका प्रयोग करना चाहिए। कीमत—१ तोला १), आठ आना भर ।।–), चार आना भर ।–)

महामृत्युंजय रस—कफ-प्रधान एवं कीटाणु-जनित मलेरिया ज्वरों में इसका प्रयोग किया जाता है। इसके प्रयोग से मल-मूत्रावरोध दूर होता है और पसीना आकर बुखार उतर जाता है। ग्रन्थिक सन्निपात (प्लेग) में भी यह अति गुणकारी है। कीमत—१ तोला १।।=), आठ आना भर ।।।=), चार आना भर ।≡)।।

महावात-विध्वंसन रस—कठिन वात-रोग, अंगों में आई हुई अशक्तता, ग्रन्थिक-सन्निपात (प्लेग), आमवात आदि रोगों की सफल महौषधि है। कीमत—१ तोला ६), आठ आना भर ३–), चार आना भर १।।–)

मुक्तापंचामृत रस—यह कास-श्वास, पुराना बुखार, फेफड़े की कमजोरी और क्षीणता-जन्य उपद्रवों में गुणकारी है। शरीर में कैल्शियम की कमी की पूर्ति इससे बड़ी उत्तमता से होती है। कीमत—१ तोला ३६), चार आना भर ९–), दो आना भर ४।।–), एक आना भर २।–)

मृत्युंजय रस—बुखार में उपयोगी है। यह ज्वर को पकाकर दूर करता है। कीमत—१ तोला ।।।=), आठ आना भर ।।), चार आना भर ।)।।

योगेन्द्र रस—यह पुराने और जटिल वातविकारों की श्रेष्ठ दवा है। शरीर में वायु की विकृति होने से अनिद्रा, बेचैनी, शरीर का वजन कम हो जाना, अंगों की अशक्तता, घबड़ाहट आदि होने लगते हैं। इन सबों में बैद्यनाथ योगेन्द्र रस का उपयोग अति लाभदायक होता है।

कीमत—१ तोला ५८), दो आना भर ७।-), एक आना भर ३।।≡), आध आना भर १।।।=)

रत्नगिरि रस—ज्वर एवं अम्लपित्त में गुणकारी है। कीमत—१ तोला १०), चार आना भर २।।-), दो आना भर १।-), एक आना भर ।।≡)

रसपीपरी—बाल-रोगों की प्रसिद्ध दवा है। यह ज्वर, खाँसी, सर्दी, जुकाम, उल्टी, पतले दस्त एवं दाँत उठने की तकलीफ को दूरकर माता की तरह बच्चों की रक्षा करती है। कीमत—१ तोला २।।।), आठ आना भर १।≡), चार आना भर ।।।), दो आना भर ।=)।।

रस माणिक्य—सब प्रकार के रक्त एवं चर्म रोग नाश करने में प्रसिद्ध है। रक्तविकार में बहुत ही अधिक फायदा करता है। कीमत—१ तोला २।।), आठ आना भर १।-), चार आना भर ।।≡)

रसादि रस—ज्वर की गर्मी विशेष बढ़ जाने से प्यास, दाह, चक्कर, वमन आदि दोष जब उत्पन्न होते हैं, तब इसका प्रयोग किया जाता है। यह पित्तशामक है। कीमत—१ तोला १।।=), आठ आना भर ।।।=), चार आना भर ।≡)।।

रामबाण रस—बदहजमी में बहुत उपयोगी साबित होता है। यह मन्दाग्निमूलक रोगों की अच्छी औषध है। कीमत—१ तोला १), आठ आना भर ।।-), चार आना भर ।-)

लघुमालिनी वसन्त रस—सुवर्णमालिनी वसन्त के गुण अल्पमात्रा में इसमें हैं। कीमत—१ तोला ३), आठ आना भर १।।-), चार आना भर ।।।-)

लघ्वानन्द रस—यह वातरोग, भ्रम, पाण्डु, अरुचि, मन्दाग्नि, ग्रहणी, ज्वर तथा वातश्लेष्म रोगों की उत्तम दवा है। कीमत—१ तोला २।।=), आठ आना भर १।=), चार आना भर ।।≡)।।

लवंगाभ्रक योग—सब प्रकार के अतिसार, संग्रहणी, अम्लपित्त आदि रोगों में फायदेमन्द है। कीमत—१ तोला १=), आठ आना भर ।।=), चार आना भर ।-)।।

लक्ष्मीनारायण रस—बालकों का कमेड़ा (हाथ-पैरों की ऐंठन), दस्त, बालरोग, ज्वर तथा वेदनायुक्त कठिन रोगों की श्रेष्ठ दवा है। कीमत—१ तोला ३।), आठ आना भर १।।≡), चार आना भर ।।।=)

लक्ष्मीविलास रस (रसेन्द्र० कास०)—सर्दी, खाँसी श्वास, जुकाम आदि में विशेष लाभकारी है। कीमत—१ तोला ३।।।=), आठ आना भर २), चार आना भर १)।।

लक्ष्मीविलास रस (नारदीय)—निमोनिया और मियादी बुखार में, जिसे दोषी बुखार भी कहा जाता है, इसके प्रयोग से ज्वर पाचन होकर मियाद के अनुसार उतर जाता है। सर्दी, जुकाम, हरारत, इन्फ्लुएंजा आदि में भी फायदा करता है। कीमत—१ तोला १।।=), आठ आना भर ।।।=), चार आना भर ।≡)।।

लीलाविलास रस—यह प्यास, वमन, पेट और छाती की जलन और नेत्र-दाह के लिए उत्तम दवा है। कीमत—१ तोला ४), आठ आना भर २-), चार आना भर १-)

लोकनाथ रस—इससे पुराने खाँसी-बुखार, अतिसार, संग्रहणी आदि में फायदा होता है। कीमत—१ तोला २।), आठ आना भर १≡), चार आना भर ।।=)

लोकनाथ रस (बृ०)—यकृत् और तिल्ली के विकारों को नष्ट करने में उपयोगी है। कीमत—१ तोला २।।), आठ आना भर १।-), चार आना भर ।।≡)

लौहरसायन—यह पाण्डु, मन्दाग्नि, श्वास, कास, वात-कफजन्य रोग, संग्रहणी, बवासीर आदि को नष्ट कर शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाता है। कीमत—१ तोला १३), आठ आना भर ६।।-), चार आना भर १।।≡)

वातकुलान्तक रस—सभी प्रकार के वातरोगों की श्रेष्ठ दवा है। कीमत—१ तोला २०), चार आना भर ५-), दो आना भर २।।-), एक आना भर १।-)

वातरक्तान्तक रस—वातरक्त पुराना या नया जैसा भी हो, सब अवस्थाओं में इससे लाभ होता है। इसके अतिरिक्त रक्तविकार, खाज-खुजली, फोड़े-फुन्सी आदि रोगों को भी यह दूर करता है। कीमत—१ तोला २।।), आठ आना भर १।-), चार आना भर ।।≡)

वातगजांकुश रस—मोटे-ताजे आदमियों को होनेवाले वात-रोगों के लिए यह बहुत गुणदायक दवा है। कीमत—१ तोला २।), आठ आना भर १≡), चार आना भर ।।=)

वातविध्वंसन रस—इसके सेवन से सन्निपात, वायु और कफ के विकार, सर्दी लग जाने से होने वाले विकार तथा मन्दाग्नि, श्वास, कास आदि रोग दूर होते हैं। कीमत—१ तोला २।।), आठ आना भर १।-), चार आना भर ।।≡)

वातारि रस--सभी प्रकार के वात-विकारों में इसका उपयोग करना चाहिए। कीमत--१ तोला १।), आठ आना भर ।।≡), चार आना भर ।=)

विद्याधराभ्र रस--इसके सेवन से परिणामशूल (भोजन करने के बाद होनेवाला दर्द), पेट का साधारण दर्द, पुरानी मन्दाग्नि, अम्लपित्त, संग्रहणी आदि रोग आराम होते हैं। कीमत--१ तोला २), आठ आना भर १-), चार आना भर ।।-)

विश्वतापहरण रस--यह साधारण ज्वर, नवीन ज्वर, वातज्वर और कब्जियत के कारण होनेवाले ज्वर तथा उदर रोगों में विरेचन के लिए उत्तम है। कीमत--१ तोला २), आठ आना भर १-), चार आना भर ।।-)

शशिशेखर रस--इसके विषय में जानकारी वैद्य से प्राप्त करें। कीमत--१ तोला ४।।), आठ आना भर २।-), चार आना भर १≡)

शंखोदर रस--यह अतिसार, आमातिसार (दस्तों के साथ आँव आने में) तथा आमजनित शूल में बहुत फायदा करता है। कीमत--१ तोला ३।।), आठ आना भर १।।।-), चार आना भर ।।।≡)

शिरःशूलादिवज्र रस--सब प्रकार के सिर-दर्द की निर्दोष और लाभकारी दवा है। किसी भी कारण से सिर-दर्द होता हो और किसी दवा से लाभ नहीं हो, तो इसका प्रयोग करना चाहिए। कीमत--१ तोला १।), आठ आना भर ।।≡), चार आना भर ।=)

शीतभंजी रस--इसके सेवन से जाड़ा देकर आनेवाला तथा पारी का मलेरिया बुखार शीघ्र नष्ट हो जाता है। कीमत--१ तोला २।।), आठ आना भर १।-), चार आना भर ।।≡)

शूलकुठार रस--वायु के कारण होनेवाले अजीर्ण अथवा अन्य किसी कारण से उत्पन्न पेट-दर्द के लिए यह उत्तम दवा है। कीमत--१ तोला २), आठ आना भर १-), चार आना भर ।।-)

शूलगजकेशरी रस--उदरशूल अनेक तरह के होते हैं। यह दवा सभी में गुणकारी है। पेट-दर्द के रोगी इससे जरूर फायदा उठावें। कीमत--१ तोला ४।।), आठ आना भर २।-), चार आना भर १≡)

शृंगाराभ्र रस--सूखी और कफयुक्त खाँसी में यह समान रूप से गुणकारी है। कीमत--१ तोला १।।=), आठ आना भर ।।।=), चार आना भर ।≡)।।

श्वासकुठार रस--यह दवा खाने और सूंघने दोनों, काम में आती है। खाँसी-श्वास में खाने से तत्काल लाभ होता है। कीमत--१ तोला १।), आठ आना भर ।।≡), चार आना भर ।=)

श्लेष्मकालानल रस--सब प्रकार के कफ-जन्य रोगों की उत्तम दवा है। कीमत--१ तोला १।=), आठ आना भर ।।।), चार आना भर ।=)।।

सन्निपातभैरव रस--सन्निपात के तीव्र वात-विकारों में विशेष लाभदायक है। कीमत--१ तोला १।।=), आठ आना भर ।।।=), चार आना भर ।≡)।।

सर्वतोभद्र रस--यह अजीर्ण, आमदोष, हैजा, अरुचि, मूत्रकृच्छ्, संग्रहणी, वमन, अम्लपित्त आदि में लाभकारी है। कीमत--१ तोला ३), आठ आना भर १।।-), चार आना भर ।।।-)

स्मृतिसागर रस--स्मरण-शक्ति को बढ़ाता और ठीक रखता है। कीमत--१ तोला ३।), आठ आना भर १।।≡), चार आना भर ।।।=)

सिद्धप्राणेश्वर रस--बुखार के साथ दस्त होने पर इससे विशेष फायदा होता है। कीमत--१ तोला १।), आठ आना भर ।।≡), चार आना भर ।=)

सुधानिधि रस (रक्तपित्त)--रक्तपित्त आदि के लिए रक्तावरोध दवा है। कीमत--१ तोला ३), आठ आना भर १।।-), चार आना भर ।।।-)

सुधानिधि रस (शोथ)--सब प्रकार के शोथ-रोगों के लिए अति उपयोगी औषध है। कीमत--१ तोला १।।।), आठ आना भर ।।।≡), चार आना भर ।।)

सुवर्ण भूपति रस--यह आमवात, उरुस्तम्भ, कम्पवात, कमर का दर्द, गुल्म, शूल, संग्रहणी, उदर-रोग, पथरी, कब्ज, विष-विकार आदि रोगों में उपयोगी है। कीमत--१ तोला ५०), दो आना भर ६।-), एक आना भर ३≡), आध आना भर १।।=)

सचित्र आयुर्वेद

वर्ष १०   कलकत्ता, अप्रैल, १९५८   अंक १०

आयुर्वेद में अनुसन्धान की आवश्यकता

सरकार इस बात के लिए बहुत उत्सुक है कि औषधि के मामले में भारत स्वावलम्बी हो। लेकिन यह कहना गलत है कि देशी चिकित्सा प्रणाली के साथ सरकार का व्यवहार विमाता-जैसा हो रहा है। सभी चिकित्सा प्रणालियों को सहायता देने के लिए सरकार उत्सुक है। चिकित्सा के विषय पर खुले दिल से विचार कर सब से अच्छी वस्तु ही हमें ग्रहण करनी चाहिए। आयुर्वेद में अनुसन्धान कर उसकी उत्कृष्टता को सिद्ध करना चाहिए। अनुसन्धान के बाद आयुर्वेद की जिन औषधियों को अच्छा पाया जायगा, उनका सरकार व्यापक उपयोग करेगी।

श्री डी० पी० करमरकर
केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री



प्रकाशक
बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०





सचित्र आयुर्वेद के ग्राहकों से निवेदन

'सचित्र आयुर्वेद' आगामी जून १९५८ में अपने जीवन के १० वर्ष पूरे कर ११ वें वर्ष में पदार्पण करने जा रहा है। इन १० वर्षों के दौरान में "सचित्र आयुर्वेद" ने भारत की प्राचीन चिकित्सा-पद्धति के पुनरुद्धार और विकास के प्रयत्नों में उपयुक्त अंश ग्रहण करने के साथ-साथ वैद्य-समाज की सेवा पूरी ईमानदारी और सचाई के साथ की है। अपनी ईमानदारी और सचाईके कारण ही विरोधियों द्वारा किये गये मानहानि मामले में ऐतिहासिक विजय प्राप्त कर दूध-का-दूध और पानी-का-पानी की तरह मिथ्या और सत्य को सिद्ध कर दिया है। चूंकि इस मामले में सचित्र आयुर्वेद के जीवन-मरण का प्रश्न था, अतएव इसके संचालकों को एक लाख रुपये की धनराशि व्यय के साथ-साथ शारीरिक और मानसिक परिश्रम भी अत्यधिक करना पड़ा। ऐसी भीषण परिस्थिति में भी सचित्र आयुर्वेद एक सच्चे और ईमानदार सेवाव्रती के रूप में आयुर्वेद की सेवा बराबर करते हुए अपनी सच्ची सेवा में सफल रहा। सचित्र आयुर्वेद के प्रेमी ग्राहकों को हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि इनके सहयोग से आगामी वर्षों में भी आयुर्वेद-विज्ञान के विकास के साथ वैद्य-समाज को भी समुन्नत बनाने के लिए 'सचित्र आयुर्वेद' बराबर प्रयत्नशील रहेगा। अतएव, वैद्यवन्धुओं से हमारा अनुरोध है कि वे "सचित्र आयुर्वेद" का स्थायी ग्राहक बन कर नियमित रूप से अध्ययन करके अपने ज्ञान को अधिकाधिक विकसित करते रहें।

"सचित्र आयुर्वेद" का १० वाँ अंक आपके हाथ में है। आगामी मई और जून अंक मिल जाने के बाद चालू वर्ष का जिनका चन्दा जुलाई १९५७ से जून १९५८ तक के लिए जमा था, पूरा हो जायगा। अतएव, जिन ग्राहकों का चन्दा जून १९५८ में पूरा हो जाय उनसे प्रार्थना है कि वे अभी से नोट कर लें और आगामी जून '५८ के अन्तिम सप्ताह तक ५) मनीआर्डर से भेज दें।

आयुर्वेद-यूनानी समन्वयांक

सचित्र आयुर्वेद के अब तक प्रकाशित महत्वपूर्ण विशेषांक—स्वास्थ्य अंक, आयुर्वेद-शास्त्रचर्चा-परिषद अंक, राजयक्ष्मा अंक और आयुर्वेद-योजना अंक आदि विशेषांक अति ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। जिन्होंने एक बार उपर्युक्त विशेषांकों में से एक भी विशेषांक देखा-पढ़ा, वे सदा के लिए सचित्र आयुर्वेद के प्रेमी बन गये। प्रस्तुत विशेषांक उक्त समस्त विशेषांकों से विशेष व्यावहारिक एवं वैद्य-हकीमोपयोगी होगा। इस विशेषांक में आयुर्वेद और यूनानी के मूलभूत सिद्धान्त, रोग-निदान, चिकित्सा, औषध-निर्माण-गुण-धर्म और उपयोग आदि के विषय में भारत के ख्याति-प्राप्त विद्वान् वैद्य-हकीमों के विद्वत्तापूर्ण विवेचनात्मक लेखों के अतिरिक्त अनेक आनुभविक औषधों के उपयोग, जो वैद्य-हकीम समान रूप से चिकित्सा कार्य में लाते हैं, वर्णित रहेंगे तथा अत्युपयोगी जड़ी-बूटियों के सादे तथा रंगीन चित्रों से सुसज्जित यह विशेषांक होगा।

इस विशेषांक की विषय-सूची मार्च-अंक में प्रकाशित हो चुकी है और पृथक् से भी छपा कर भारत के अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् वैद्य-हकीमों के पास भेजी गयी है। विषय-सूची के अनुसार शीघ्रातिशीघ्र लेख भेजने की स्वीकृति-सूचना अधिकारी वैद्य-हकीमों द्वारा प्राप्त हो रही है। कहना न होगा कि यह विशेषांक भारतीय चिकित्सा क्षेत्र में एक सौहार्दपूर्ण सामञ्जस्य के साथ आयुर्वेद को सर्वांगपूर्ण चिकित्सा बना कर आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा के आसन पर बिठाने में अवश्य सफल होगा।

भारतीय चिकित्सा पद्धति के प्रसार-प्रचार के हितैषी वैद्य-हकीमों से सविनय निवेदन है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण विशेषांक की एक-एक प्रति अपने पास सुरक्षित रखने के लिए वे सचित्र आयुर्वेद के अभी से ग्राहक बन जायें, क्योंकि सचित्र आयुर्वेद के ग्राहकों को यह विशेषांक मुफ्त दिया जायगा।

—व्यवस्थापक

सम्पादक--पं० कामेश्वर शर्मा 'कमल'

विषय-सूची

वार्षिक मूल्य ५)

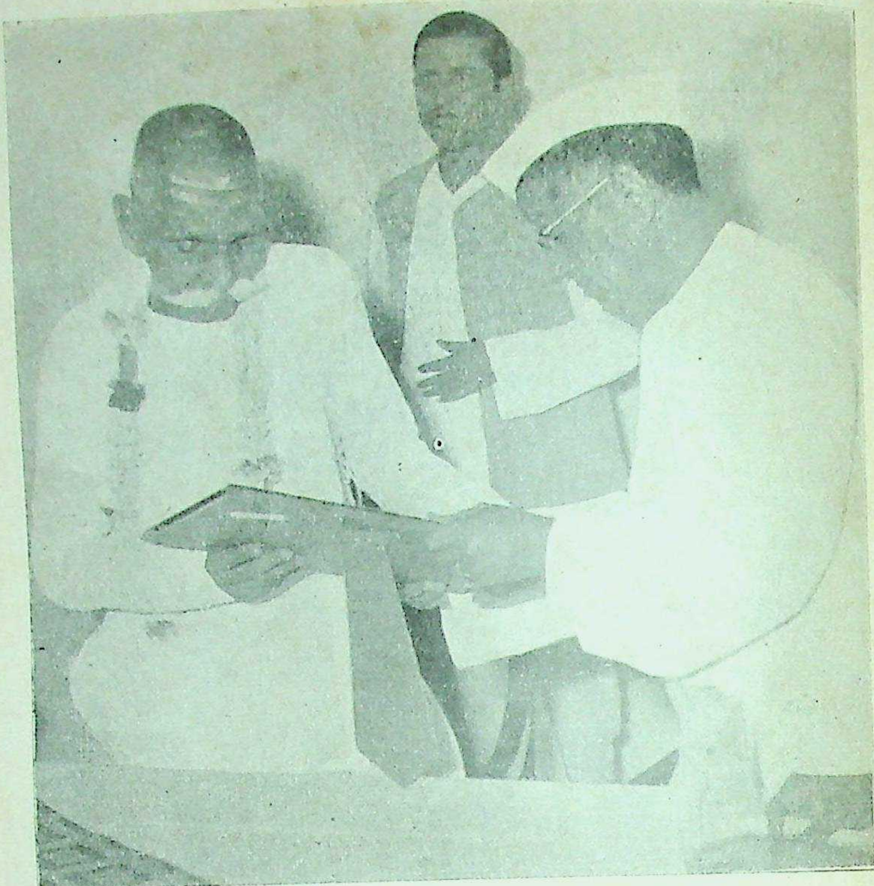
एक प्रति ।।) (५० नये पैसे)



श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के पटना निर्माणकेन्द्र में राष्ट्रपति-चिकित्सक पद्मविभूषण आचार्य पं० सत्यनारायण शास्त्री का भवन के मैनेजिंग डायरेक्टर पं० रामदयालजी जोशी स्वागत कर रहे हैं। बायीं ओर बिहार के स्वास्थ्य-मंत्री श्री वीरचन्द पटेल बैठे दिख रहे हैं।



पद्मविभूषण पं० सत्यनारायण शास्त्री स्वागत का उत्तर दे रहे हैं।



आचार्य पं० सत्यनारायण शास्त्री को पं० रामदयालजी जोशी अभिनन्दनपत्र समर्पित करते दिखायी दे रहे हैं।



श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के पटना निर्माण-केन्द्र में पद्मविभूषण आचार्य पं० सत्यनारायण शास्त्री के स्वागत समारोह के अवसर पर उपस्थित महानुभावों का समूहचित्र।

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होनेवाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख-मासिक पत्र



सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष १०	कलकत्ता, अप्रैल, १९५८	अंक १०

सचित्र आयुर्वेद का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, उपयोगी और सामयिक विशेषांक

आयुर्वेद-यूनानी-समन्वयांक

सचित्र आयुर्वेद का प्रारम्भ से ही यह मूल उद्देश्य रहा है कि आयुर्वेद स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के रूप में जनता-जनार्दन की सेवा करते हुए राष्ट्रीय स्वास्थ्य-निर्माण में अधिकाधिक भाग ले। इसी उद्देश्य से समन्वय का सिद्धान्त अपनाते हुए—आयुर्वेद में कालक्रमानुसार जहाँ जो कुछ त्रुटियाँ हों उसे अन्य चिकित्सा-पद्धतियों से लेकर उसे आयुर्वेदानुरूप बना कर आयुर्वेद में आत्मसात करके उस अंग की पूर्ति करने का प्रयत्न यह बराबर करता रहा। अबतक के अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि यूनानी चिकित्सा-पद्धति से इसका समन्वय सरलतया हो सकता है।

वास्तव में आयुर्वेद-यूनानी एक दूसरे से पृथक् नहीं है—इस तथ्य को सभी स्वीकार करते हैं। वैद्य-हकीम भी चिकित्सा कार्य में दोनों से भरपूर सहयोग लेते हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि यूनानी चिकित्सा-शास्त्र फारसी, अरबी आदि भाषाओं में है तथा आयुर्वेद संस्कृत वाङ्मय में। किन्तु अब समय आया है कि इस भाषामात्र के अन्तर को दूर कर राष्ट्रभाषा हिन्दी में हम वैद्य-हकीम एक दूसरे के सिद्धान्तों को समझें तथा पारस्परिक सद्भावना और सौहार्द से युक्त हो कर मात्र भारतीय चिकित्सा-पद्धति की उन्नति और उसके विकास, प्रसार, प्रचार में दत्तचित्त हों।

इसी उद्देश्य को ले कर 'सचित्र आयुर्वेद' का विशेषांक—**"आयुर्वेद-यूनानी-समन्वयांक"** निकालने का विचार किया गया है। हमें प्रसन्नता है कि इस विशेषांक की घोषणा करते ही भारत के सुप्रसिद्ध वैद्य-हकीमों ने एक स्वर से इस विशेषांक को सामयिक बताते हुए अपने-अपने लेख भेजने के स्वीकृति-पत्र भेजने प्रारम्भ कर दिये हैं। विशेषांक प्रकाशित होने पर 'सचित्र आयुर्वेद' के ग्राहकों की सेवा में शीघ्र प्रेषित कर दिया जायगा।

—सम्पादक



आयुर्वेद-छात्रों की हड़ताल

लखनऊ के राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय के छात्रों ने विगत २५ फरवरी से हड़ताल कर रखी है, परिणामतः तब से ही विद्यालय बन्द पड़ा है। इस आयुर्वेद महाविद्यालय में छात्रों की हड़ताल का यह पहला अवसर नहीं है। पहले भी कई बार हड़ताल हो चुकी है और प्रायः प्रतिवर्ष होती है। यह दुःखद स्थिति है। इस बार और पिछली बार भी जिन मांगों को लेकर छात्रों ने हड़ताल की है, उनको देखते हुए यह बहुत आवश्यक हो गया है कि वैद्य जगत् के उत्तरदायी जन आयुर्वेदीय शिक्षण और आयुर्वेद के भविष्य पर गंभीरता के साथ विचार करें।

ऐसी हड़तालों के प्रत्यक्ष कारण कुछ भी हों, उनके अन्तर में कुछ मुख्य बातें हुआ करती हैं : छात्रों की अनुशासनहीनता, अधिकारियों की उपेक्षावृत्ति तथा विद्यालय का कुप्रबन्ध, और किसी उद्देश्य विशेष को लेकर किसी के द्वारा छात्रों को भ्रान्त करके उभाड़ना। लखनऊ के विद्यालय की इस हड़ताल में यह तीनों बातें घुलीमिली हो सकती हैं। छात्रों में अनुशासनप्रियता का घोर अभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। विद्यालय का प्रबन्ध खराब न भी हो, परन्तु उसकी स्थिति निश्चय ही त्रिशंकु के समान है। इतने वर्ष चलते रहने के अनन्तर भी राज्य ने इसके स्थायी होने की घोषणा नहीं की है। जिस विद्यालय की योजना ही स्थायी नहीं है, उसके प्रति छात्रों और अन्य लोगों में सुरुचि जाग्रत हो नहीं सकती। ऐसा जान पड़ता है कि जानबूझ कर ऐसी परिस्थितियों को उत्पन्न किया जाता है जिनसे छात्रों में असन्तोष बना रहे, उनमें आयुर्वेद के शिक्षण के प्रति रुचि का अभाव प्रकट होता रहे और विद्यालय की उपादेयता क्षीणतर बनती जावे। फिर राज्य को विवशता दिखाकर, विद्यालय के विकास का प्रश्न तो दूर की बात है, उसको समाप्त कर देने का निश्चय करने तक की सुविधा मिल जावे।

पहिले ऐसा क्रम था कि मेडिकल कालिज में ही प्रारंभ के तीन वर्षों तक छात्रों को पाश्चात्य विज्ञान के विषयों का अध्ययन कराया जाता था, फिर अन्तिम दो वर्षों में आयुर्वेद पढ़ाया जाता था। प्रारंभिक तीन वर्ष तक पाश्चात्य विज्ञान पढ़ने वाले छात्रों के सामने जब आयुर्वेद पढ़ने का प्रश्न आता था तो वे बिदक जाया करते थे। एक-दो बार तो हड़ताल इसी प्रश्न को लेकर हुई और छात्रों ने तीन वर्ष बाद आयुर्वेद पढ़ने से इन्कार करके अपने को आगामी दो वर्षों में एलोपैथी पढ़ाकर ही एम० बी० बी० एस० बना देने का आग्रह किया। इस स्थिति के निवारण के लिए उत्तर प्रदेश के तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री श्री चन्द्रभानुजी गुप्त ने आयुर्वेद के लिए पृथक ही विद्यालय की व्यवस्था कर दी थी। लखनऊ का राजकीय विद्यालय उसी का परिणाम है। पृथक विद्यालय बन जाने पर भी छात्रों की मनोवृत्ति फिर वैसी ही दिखाई देती है। उसी मनोवृत्ति का परिणाम यह हड़ताल हैं। यद्यपि छात्रों के लिए स्थिति पहले जैसी नहीं है। पृथक विद्यालय में पाठ्यक्रम भी सुधरा हुआ है। जहां तक हमें पता है, लखनऊ का आयुर्वेद विद्यालय बहुत अच्छे स्तर का विद्यालय है। फिर भी उसमें जो छात्र वर्तमान हैं, उन पर उन पुराने छात्रों की परम्परा की छाया जान पड़ती है, जिन्होंने गत बार आयुर्वेद में दीक्षित होने से इनकार करके, अपने को डाक्टर बनाने का आग्रह लिया था। यह दुःखान्त और अकल्याणकर वृत्ति है।

हमें खेद है कि आयुर्वेद विद्यालय के छात्रगण क्योंकर ऐसी दुष्ट प्रवृत्तियों के शिकार हो जाया करते हैं। जिन मांगों को लेकर छात्रों ने हड़ताल की है, वे निश्चय ही आद्यन्त विचारपूर्ण नहीं हैं। जहां तक ज्ञानार्जन के साधनों की सुविधा और विकास का प्रश्न है, या छात्रों के उचित अधिकारों की बात है, हम छात्रों की तत्सम्बन्धित मांगों का समर्थन करते हैं। परन्तु छात्रों की उन मांगों को कैसे न्यायोचित बताया जा सकता है जिनके द्वारा छात्र यह चाहते हैं कि पाठ्यक्रम में आयुर्वेद के केवल वे ही विषय रखे जावें जिनको वे पढ़ना चाहें। यह एक अजीब-सी बात है कि छात्र चाहते हैं कि जिन आयुर्वेदीय विषयों को छात्रगण अनुपयुक्त समझते हैं वे सब के सब पाठ्यक्रम से निकाल दिये जावें। अपनी मांगों के अन्त में छात्रों ने एक ऐसी बात कही है, जिससे सम्पूर्ण आयुर्वेद-

जगत् को दुख तो होगा ही, वह छात्रों की विवेकशीलता पर भी सन्देह उत्पन्न करती है। छात्रों का कहना है कि सरकार यदि उनकी मांगें स्वीकार न कर सके तो इस विद्यालय के अस्तित्व को ही समाप्त करके उसे कानपुर के मेडिकल कालिज में मिला दिया जाय। यह मांग प्रस्तुत करके छात्रों ने निश्चय ही अपनी सीमा का खेदपूर्ण उल्लंघन किया है। जो छात्र आयुर्वेद के नाम पर चलने वाले विद्यालय के अस्तित्व को ही समाप्त करने की आकांक्षा रखते हों, उनसे भविष्य में आयुर्वेद की उन्नति की क्या आशा की जा सकती है। और ऐसी भावना के कारण उन छात्रों के प्रति आयुर्वेद जगत् की सहानुभूति भी कैसे हो सकती है।

बहुत दिनों से सर्वत्र ही यह बात खटकती रही है कि राजकीय आयुर्वेदिक कालिजों से निकलने वाले छात्र अपने को डाक्टर कहलाना पसन्द करते हैं और वैद्य कहे जाने से उन्हें झेंप या अरुचि होती है। निश्चय ही ऐसी प्रवृत्ति से आयुर्वेद का अपमान और ह्रास होता है। यों तो, जहां तक डाक्टर कहलाने का प्रश्न है, सबसे अधिक संख्या ऐसे छद्मवेशियों की मिलेगी जो अपने नाम के साथ डाक्टर लगाते हैं और भोली-भाली जनता के विश्वास के साथ खिलवाड़ करते हैं। पाँच वर्ष तक विधिवत् आयुर्वेद पढ़ने वाले छात्रों के लिए यह कोई गौरवास्पद बात नहीं है कि वे अपने को डाक्टर कहलाने की इच्छा रखें। वैद्य या कविराज कहला कर ही अपने लिए डाक्टरों के समान अधिकार समाज, व्यवसाय और सरकारी क्षेत्र में प्राप्त करने की भावना का तो हम आदर करते हैं। विधिवत् आयुर्वेद का शिक्षण पाने वाला कोई भी चिकित्सा-भ्यासी वैद्य किसी डाक्टर से कम नहीं कहा जा सकता। ऐसी दशा में वैद्य को भी डाक्टर के समान ही वेतन आदि का अधिकार सरकार को देना चाहिए—एक दिन देना ही पड़ेगा। उस अधिकार के लिए छात्र यदि प्रयत्न करते हैं तो वह श्लाघनीय कहा जायगा, परन्तु समानाधिकार की मांग के साथ अपने को वैद्य के स्थान पर डाक्टर कहलाने की इच्छा खेदजनक है। हड़ताल के सम्बन्ध में उत्तर-प्रदेशीय सरकार की जो विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है उसमें कहा गया है कि 'छात्रों का एक वर्ग आयुर्वेद में आस्था नहीं रखता और चाहता है कि विद्यालय से निकले हुए छात्र डाक्टर कहलावें, वैद्य नहीं। यदि आयुर्वेद को जीवित रखना है तो उसके समर्थकों और छात्रों दोनों को ही इस प्रकार की हीनता की भावना से ऊपर उठना होगा।' सरकार की विज्ञप्ति का यह अंश इस प्रसंग में बहुत महत्वपूर्ण है।

हम छात्रों से निवेदन करना चाहेंगे कि वे अपनी मांगों पर पुनर्विचार करें। विद्यालय को सर्वसाधन-सम्पन्न मेडिकल कालिज के रूप में विकसित करने की मांग के स्थान पर यदि वे उसको अधिक विकसित आयुर्वेदीय महाविद्यालय के रूप में बढ़ाने की मांग करते तो हम उनका हृदय से समर्थन करते; परन्तु वैसा न करके छात्रों ने जैसी अनुदारतापूर्ण मांगें की हैं उनसे हमारा क्या, सम्पूर्ण आयुर्वेद जगत का मस्तक नीचा हुआ है। हम सरकार के साथ विनम्र संघर्ष कर रहे हैं कि आयुर्वेद का विकास किया जाय, उसको प्रश्रय दिया जाय, उसको मान्यता दी जाय और देश में अधिक संख्या में साधन-सम्पन्न आयुर्वेद विद्यालय सरकार की ओर से स्थापित किये जावें, ताकि अधिकाधिक संख्या में अच्छे एवं प्रशिक्षित वैद्यों का निर्माण हो और आयुर्वेदीय व्यवसाय का समुचित विकास हो। एक ओर सम्पूर्ण आयुर्वेद जगत् सरकार से इन मांगों के लिए आग्रह कर रहा है, दूसरी ओर आयुर्वेद के छात्र इससे विपरीत अर्थ वाली मांगों को लेकर हड़ताल करें—यह स्थिति कितनी हास्यास्पद है, हमारे छात्रों को इस पर गंभीरता के साथ विचार करना चाहिए।

आयुर्वेद वैज्ञानिक विषय है। वैज्ञानिक विषय के छात्रों को राजनैतिक ऊहापोह से दूर रहकर अनुशासन में रहते हुए मननप्रिय और अध्ययनशील रहना चाहिए। आयुर्वेद विद्यालय के छात्रों ने जिस ज्ञानार्जन के मूल उद्देश्य को लेकर विद्यालय में प्रवेश किया है, उस पर ही अधिक दृढ़ रहना चाहिए। जब तक उनका अध्ययन-काल है, तबतक उन्हें अपनी शक्तियों और प्रतिभा का उपयोग उस कार्य में ही करना चाहिए। अधिकार का प्रश्न तब उठता है जब वे अपना अध्ययन समाप्त करके चिकित्सक के रूप में समाज में आते हैं। उस समय ही किसी अधिकार के लिए संघर्ष करना उनके लिए शोभाजनक होगा। इसके अतिरिक्त उन्हें यह विश्वास रखना चाहिए कि उनके अधिकारों के प्रति लाखों की संख्या वाला वैद्य-समाज निरुद्योग नहीं है। वैद्य-समाज वैद्यों के अधिकार और आयुर्वेद की श्रीवृद्धि के लिए आज भी प्रयत्नरत है और

आगे भी रहेगा। उस प्रयत्न का जो फल होगा वह वर्तमान और भविष्य के समग्र वैद्यों के लिए समान हितकारी होगा। हमारी सम्मति में छात्रों को किसी प्रकार की आन्दोलनबाजी में कदापि नहीं पड़ना चाहिए। निश्चय ही, किन्हीं मांगों को मनवाने के लिए, चाहे वे न्यायसंगत ही हों, हड़ताल का साधन शैक्षणिक क्षेत्र में कदापि उचित नहीं, प्रत्युत वह बहुत अहितकर है, उसमें छात्रों की ही हानि अधिक है। अतः हम छात्रों से अपील करेंगे कि वे तुरन्त अपनी हड़ताल को समाप्त करके विद्यालय को सुसंचालित होने का अवसर दें।

सरकारी विज्ञप्ति में यह आश्वासन दिया गया है कि आयुर्वेद प्रशिक्षण के पुनर्गठन का प्रश्न सरकार के विचाराधीन है और इस सम्बन्ध में भावी नीति निर्धारित करते समय भारत सरकार द्वारा नियुक्त उच्चस्तरीय समिति के सुझाव तथा उस विषय में केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद द्वारा पारित प्रस्ताव का पूरा-पूरा ध्यान रखा जायगा। जहां तक हमें पता है केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद ने इस विषय में राज्यों को नीति-निर्धारण की स्वतंत्रता दी है। प्रदेशीय सरकार का संकेत जिस उच्चस्तरीय समिति से है, वह दवे समिति के सुझाव ही हो सकते हैं। यदि उत्तर प्रदेशीय सरकार आयुर्वेद के प्रशिक्षण की नीति दवे समिति के सुझावों के अनुसार निर्धारित करती है, तो वह वर्तमान परिस्थिति में कोई असंतोष का कारण नहीं बनेगी। हमें किसी न किसी निश्चय को स्वीकार करके ही आगे बढ़ने में सुविधा होगी, इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए। बहुत मांगते रहने और कुछ न लेने की नीति पर यदि हम अड़े रहेंगे तो हम अपने हाथों अपना विनाश कर लेंगे।

आयुर्वेद के लिए यह संघर्ष का समय है। ऐसे समय में हमारे छात्रों को उदारता और कर्तव्यप्रियता का ठोस उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए न कि अकारण ही गत्यवरोध की स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए। हमें विश्वास है कि छात्रगण गंभीरता के साथ विचार कर तुरन्त कल्याणकर मार्ग का अनुकरण करेंगे।

इस प्रसंग में सरकार से भी कुछ निवेदन कर देना अनुचित नहीं होगा। उत्तर प्रदेशीय स्वास्थ्य मंत्री माननीय श्री हुकुम सिंहजी ने हाल ही में एक भाषण में कहा था कि छात्रों में आयुर्वेद पढ़ने के प्रति कोई रुचि नहीं है। हड़ताल के विषय में विधान सभा में किये गये प्रश्नों के उत्तर में भी माननीय स्वास्थ्य मंत्री ने छात्रों पर यही आरोप लगाया है। सरकारी विज्ञप्ति में प्रायः इसी प्रकार की बात दुहराई गई है, जिसका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। यदि हम माननीय स्वास्थ्य मंत्री महोदय के आरोप को ही सत्य मानकर चलें तो यह प्रश्न उठता है कि आखिर आयुर्वेद पढ़ने के प्रति छात्रों में कोई रुचि क्यों नहीं है? उन मूल कारणों पर सरकार को विचार करना चाहिए जिनके रहते छात्रों में यह अरुचि उत्पन्न होती है और वह यहां तक बढ़ जाती है कि आयुर्वेद जैसे स्वयं संतुलनशील वैज्ञानिक विषय के छात्र अनुशासन के नियम-संयमों का बाना फेंक कर हड़ताल के संबल का आश्रय पकड़ बैठते हैं? केवल छात्रों की अनुदारता ही इसका कारण नहीं हो सकती। कम से कम लखनऊ के राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय के विषय में तो दो-तीन कारण स्पष्ट है जिनमें पहला और गंभीर कारण यही है कि सरकार ने इस कालेज-योजना को अबतक स्थायित्व प्रदान नहीं किया। जो योजना स्थायी नहीं है उसके समाप्त करने या बदल देने के लिए स्वर उठाने या आन्दोलन कराने की सुविधा सदा बनी रहती है। सरकार यदि इस विद्यालय को सर्वथा स्थायी घोषित कर दे तो फिर ऐसा प्रश्न उठने की गुंजायश समाप्त हो जाती है। दूसरी बात, यद्यपि कालिज के प्रबन्ध के विषय में किसी न्यूनता का कोई समाचार हमें नहीं मिला, तथापि उसमें किसी सुयोग्य प्रिंसिपल का अभाव भी विवादास्पद एवं भ्रमात्मक वातावरण की सृष्टि का स्वाभाविक कारण हो सकता है। सुयोग्य और स्थायी प्रिंसिपल का न होना छात्रों में अनुशासनहीनता की भावना को बढ़ाने का कारण होता ही चाहिए। यद्यपि वर्तमान समय में मान्य श्री कुलकर्णी जी ने बड़ी योग्यता से, अपने विभागीय कार्यों के अतिरिक्त (कदाचित् बिना पृथक पारिश्रमिक लिये ही) कालेज के प्रिंसिपल पद के उत्तरदायित्व का निर्वाह किया है, तथापि विभागीय कार्यों को करते हुए, वे क्या कोई भी व्यक्ति स्थायी प्रिंसिपल की ही भांति विद्यालय की व्यवस्था को अनुशासनपूर्ण कैसे रख सकता है, विशेषकर ऐसी दशा में जब कि छात्रों में रोष उत्पन्न करने की स्थिति निरन्तर विद्यमान रहती हो। तीसरी बात, पाठ्यक्रम में जितना विषय पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का रखा गया है, उसके लिए विद्यालय में समुचित साधन न होना नितान्त अहितकर

बात है। यह कहां तक न्यायसंगत है कि अपने पाठ्यक्रम के कुछ अंश को पढ़ने के लिए छात्रों को दूसरे कालिज की भाग-दौड़ करना पड़े और ऐसे स्थान पर जाना पड़े, जहां पहुँचकर आयुर्वेदीय छात्र होने के नाते उनको नीचे स्तर का समझा जाय। स्वाभाविक है कि जब यहां के छात्र मेडिकल कालिज या बलरामपुर हास्पीटल में अपने पाठ्य-क्रम के कुछ अंश का प्रशिक्षण लेने जाते हैं तो, उनमें आद्यन्त एलोपैथी का अध्ययन करने वाले छात्र, उन्हें ठीक उस तरह देखते हैं जैसे कोई बम्बई का पढ़ा-लिखा फैशनेबुल बाबू किसी गाँव के मुड़ासे वाले ग्रामीण को देखता है। बहुत संभव है कि आयुर्वेदीय छात्रों को यदा-कदा उपहास का पात्र बनना पड़ता हो। नवयुवक विद्यार्थियों को ऐसी कोई उपहास की स्थिति अनायास ही उत्तेजना देने का कारण बन सकती है। हम कभी यह नहीं कहना चाहते कि आयुर्वेद विद्यालय को पूर्वापर मेडिकल कालिज जैसा बना दिया जाय, परन्तु निश्चय ही पाठ्यक्रम के अनुसार विषय-ज्ञान के लिए आवश्यक साधन-सामग्री तो विद्यालय में जुटाई ही जानी चाहिए। अधूरी रसायन-शाला को शीघ्र पूर्ण बनाने के लिए सरकार को सक्रिय कदम उठाना चाहिए। पाठ्यक्रम के सम्पूर्ण विषयों का प्रशिक्षण इसी विद्यालय में दिये जाने की स्थायी व्यवस्था अविलम्ब होनी चाहिए।

छात्रों में आयुर्वेद पढ़ने के प्रति रुचि न होने का आरोप बहुत गंभीर है। यह आयुर्वेद के भविष्य को ही चिन्तास्पद बनाने वाली बात है। हम इस बात को मानने को तैयार नहीं कि छात्रों में रुचि का सर्वथा अभाव है। यदि ऐसा होता तो वे छात्र आयुर्वेद कालेज में प्रविष्ट ही क्यों होते? फिर भी कुछ कारण ऐसे अवश्य हैं जो छात्रों में स्वाभाविक ही अरुचि नहीं तो एक निराशा अवश्य उत्पन्न करते हैं। वे कारण ऐसे नहीं जिनका सम्बन्ध केवल लखनऊ के आयुर्वेद विद्यालय से हो, प्रत्युत सम्पूर्ण भारत में, हर प्रदेश में विद्यमान हैं। केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारें जब तक संयुक्त रूप से उन कारणों के निवारण का प्रयत्न नहीं करतीं, तब तक छात्रों में आयुर्वेद के अध्ययन के प्रति सहज ही उत्पन्न होनेवाली उस निराशा का अन्त नहीं हो सकता। एक दोष तो हमारे देश की शिक्षा-पद्धति में बीज रूप में विद्यमान है और वह यह कि किसी भी विषय का छात्र पढ़-लिखकर आत्मावलंबन से इतना हीन बन जाता है कि उसकी सम्पूर्ण महत्वाकांक्षाएं और पुरुषार्थ नौकरी करने की इच्छा तक सीमित रह जाते हैं। जब वह अपने भविष्य के विषय में सोचता है तो उसकी विचार शक्ति यहीं आकर टकरा जाती है कि कालिज से निकल कर अमुक-अमुक नौकरी करूँगा। यह दोष सर्व सामान्य में विद्यमान है। बचपन से जो शिक्षा मिलती है, वह इतना ही सोचने की भूमिका बनाती चली जाती है। बहुत ही कम अंशों में हमारे विद्यार्थी ऐसे निकलते हैं जो नौकरी के अतिरिक्त कोई स्वावलम्बी उद्योग करते हैं और उसमें सफल होते हैं। देश में पढ़े-लिखे युवकों की भीषण बेकारी इसका ज्वलन्त प्रमाण है। तो, आयुर्वेद विषय के विद्यार्थी किसी दूसरी दुनियां के तो हैं नहीं। जब वे विद्यालय में पढ़ते हैं तो कभी-कभी अपने भविष्य के विषय में विचार करते ही होंगे। अन्यों की तरह उनकी भी विचार-परम्परा नौकरी पर जा अटकती होगी और जब वे वैद्यों की नौकरी की स्थिति को सोचते होंगे तो स्वाभाविक है कि उन्हें निराशा की झांई स्पष्ट दिखाई देती होगी। क्योंकि सरकार डाक्टरों और वैद्यों की नौकरी में, नियुक्ति और वेतन इत्यादि में, साफ भेद बनाये हुए है। वह भेद आयुर्वेद के छात्रों के मानस पर पत्थर का आघात करता है और फिर यदि उनमें आयुर्वेद पढ़ने के प्रति निराशा उत्पन्न होती है तो यह कहां अस्वाभाविक है? इस विषय में सरकार की घोर अनुदारता निश्चय ही अत्यन्त खेद का विषय है। सरकार के ही पाठ्यक्रम के आधार पर विधिवत् पांच वर्ष तक शिक्षा पानेवाला कोई आयुर्वेद का विद्यार्थी आखिर किसी डाक्टर से किस मानी में कम है, जो उसके साथ हीनता का व्यवहार किया जाता है। डाक्टरी पढ़ने वाले छात्र को तो हौसला रहता है कि यहां कालिज से निकला और वहां नियुक्ति मिल जायगी। सरकारी अधिकारीवर्ग डाक्टरों की संख्या की कमी और तीव्र आवश्यकता की घोषणाएं यदा-कदा किया करते हैं, वे घोषणाएं डाक्टरी पढ़ने वाले छात्र को चौगुना साहस देती हैं। परन्तु आयुर्वेद पढ़ने वाले छात्र का हौसला कैसे बढ़े? कहां उसके लिए गुंजायश है? स्वास्थ्य सेवाओं में उसको जगह नहीं! चिकित्सा सेवाओं में उसके लिए स्थान नहीं। प्रादेशिक सरकारों और स्वायत्त शासन विभागों ने यत्र-तत्र जो थोड़ी-थोड़ी देशी दवाओं की डिस्पेंसरियां खोल रखी हैं, उनमें भी यदि भाग्य से आयुर्वेद

छात्र को जगह मिल गई तो वेतन डाक्टर के कम्पाउण्डर से भी कम! इस पर भी आयुर्वेद कालेज के छात्र को सरकार की ओर से कोई ऐसा आश्वासन नहीं कि पढ़ने के बाद उसको किसी एलोपैथी डिस्पेंसरी में न सही, आयुर्वेदिक दवाखाने में ही नियुक्ति निश्चित मिल जायगी। अब विचार कीजिए कि आयुर्वेद के छात्र को निराशा न हो तो क्या हो? और यदि उस निराशा के कारण उसमें आयुर्वेद पढ़ने के प्रति रुचि का अभाव उत्पन्न हो जाय तो यह कैसे अन्यायपूर्ण है।

आयुर्वेद का छात्र जब सर्वत्र सरकार द्वारा पोषित डाक्टरी का चमत्कार देखता है, तो भी उसके मन में निराशा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। आयुर्वेद के सरकारी विद्यालयों में जो पढ़ाई होती है और उससे जिन छात्रों का निर्माण होता है, वे कुछ भिन्न प्रकार के चिकित्सक बनते हैं। समय का प्रवाह, शिक्षण-पद्धति और विद्यालयों का वातावरण इन्टर साइन्स करके प्रविष्ट हुए छात्रों को अनायास ही, भावना से न पूरा वैद्य रहने देता है और न पूरा डाक्टर! उपाधि मिलती है उनको अंग्रेजी की छाप लगाने वाली बी० आई० एम० एस० या बी० एम० बी० एस० इत्यादि। फिर वे अनायास ही अपने को वैद्य से कुछ भिन्न समझने लगते हैं। डाक्टरों में खपते नहीं, वैद्यों में जमते नहीं। त्रिशंकु होकर रह जाते हैं। यह स्थिति भी छात्रों में आयुर्वेद पढ़ने और वैद्य कहलाने के प्रति सुरुचि का अभाव उत्पन्न करनेवाली है। आयुर्वेद को जीवित रखने के लिए छात्रों और आयुर्वेद समर्थकों को हीनता की भावना से ऊपर उठने का उपदेश देने वाले राज्यामात्यों को इन बातों पर विचार करना चाहिए। हम कहेंगे कि सरकार हमें हीनता की भावना से ऊपर उठने का अवसर तो दे! उसके अनुरूप कुछ करे तो! स्पष्ट ही सरकार को आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धति को प्रोत्साहन देने की अपनी नीति में वास्तविकता का समावेश करना चाहिए। केवल आश्वासनों से आयुर्वेद का विकास नहीं हो सकेगा। छात्रों में यदि सरकार यथार्थ ही आयुर्वेद-शिक्षण के प्रति सुरुचि जाग्रत करना चाहती है तो अविलम्ब उसे इतना तो करना ही चाहिए कि आयुर्वेद विद्यालयों को व्यवस्थित रूप दिया जाय, पाठ्यक्रम में सुधार किया जाय और उत्तीर्ण छात्रों को उपाधियां अंग्रेजी की न देकर हिन्दी और आयुर्वेद शब्द युक्त दी जावें। अधिक संख्या में आयुर्वेद विद्यालय स्थापित किये जावें और उनमें आयुर्वेद सम्मत वैज्ञानिक वातावरण सुरक्षित रखा जाय। आयुर्वेद पढ़ने वाले छात्रों को उनके भविष्य के विषय में कोई निश्चित आश्वासन दिया जाय। प्रशिक्षित वैद्यों और डाक्टरों के अधिकार सर्वथा समान घोषित किये जायें। ग्रामीण क्षेत्रों तक में सर्वथा अनावश्यक, अनुपयोगी और महंगी डिस्पेंसरियों की बाढ़ को रोककर आयुर्वेदिक चिकित्सालयों को बढ़ाने की परम्परा अपनाई जाय। सबसे अधिक आवश्यक यह है कि केन्द्रीय सरकार अपनी राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति का निर्धारण करे और उसमें देशी चिकित्सा पद्धति का स्थान सुस्पष्ट रूप से घोषित करे। सरकार अविलम्ब अपने ऐसे प्रयासों को रोके जिनसे जनता पर अनिच्छित ही पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति का प्रभाव बढ़ रहा है। जब यह कार्य वास्तविक सक्रियता के साथ किये जावेंगे तो आयुर्वेद पढ़ने वालों में रुचि की कमी की शिकायत सरकार को नहीं होगी। तब यह शिकायत होगी कि आयुर्वेद पढ़ने वाले इतने अधिक हैं कि उनके लिए शिक्षण व्यवस्था कैसे की जाय?

लखनऊ आयुर्वेद विद्यालय की हड़ताल का यह प्रसंग, हम समझते हैं, सम्पूर्ण आयुर्वेद-जगत् के लिए विचारणीय है। छात्रों की मांगें, सरकार का वक्तव्य और स्वास्थ्य मंत्री की टिप्पणी—सबकी सब आयुर्वेद के महारथियों के लिए एक चुनौती है। हम किस आधार पर आयुर्वेद के सद्भविष्य के लिए आशाएं बांध रहे हैं। हमारे भविष्य के कर्णधार आयुर्वेद के विद्यार्थियों में यदि आयुर्वेद के प्रति अरुचि है तो क्या आयुर्वेद के भविष्य को अच्छा कहा जा सकता है। आयुर्वेद के महारथियों को गंभीरता के साथ इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए। अपने छात्रों में यदि ऐसी हीन भावना है तो उसके परिमार्जन के लिए सक्रिय प्रयत्न किया जाना चाहिए अन्यथा आयुर्वेद आगे एक-दो पीढ़ी तक चलने वाली परम्परा रह जायगा।

आयुर्वेद के छात्रों में उत्साह की कमी के एक कारण के लिए आयुर्वेद महारथी स्वयं जिम्मेवार हैं, वह है आयुर्वेद के पाठ्यक्रम में एकरूपता का अभाव। हमारे महारथी-गण अपनी वाहवाही और परस्पर के विवादों में उलझे रहकर इस महत्वपूर्ण विषय को दृष्टि से ओझल करते जा रहे हैं। डाक्टरी के शिक्षण में संसार के किसी भाग में

(शेषांश पृष्ठ ६०६ पर)

मन्त्रियों की सम्मति

श्री द्वारिकेश मिश्र

विज्ञापन कला का जो लोग अध्ययन करते रहे हैं, वे जानते हैं कि इस कला का विकास कहां से कहां तक हो गया है। एक जमाना था कि लोग अपने और अपनी चीज के प्रचार के लिए गुण-दोषों का ठोस और मनोवैज्ञानिक प्रभाव करने वाला यथातथ्य विवरण प्रस्तुत किया करते थे। फिर उस विवरण में गप्पों की प्रधानता बढ़ी। उसके बाद कालान्तर में रिवाज़ यह हुआ कि लोग अपनी चीज़ के पक्ष में नेताओं और प्रमुख व्यक्तियों की सम्मतियां प्रकाशित करने लगे। ऐसी सम्मतियां बड़ी सरलता के साथ मिल जाया करती थीं। किसी नेता को अपने यहां बुलाया, चाय-पानी किया, अभिनन्दन-पत्र दे दिया और फिर नेताजी से मुक्तकण्ठ प्रशंसा की सम्मति लिखवा ली। राजनीति में प्रतिष्ठा का उतार-चढ़ाव कभी-कभी विचित्र हो जाया करता है, इसलिए राजनैतिक लोगों को अपनी स्थिति सुरक्षित रखने के लिए बहुत लोगों को प्रसन्न रखना पड़ता था। इस फेर में भी कुछ नेता लोग प्रशंसात्मक सम्मति देने में उदार रहा करते थे। विषय का ज्ञान हो या न हो, सम्मति में प्रशंसा के पुल बांध दिया करते थे। जिन्हें कविता का एक अक्षर नहीं आता, हमने देखा कि कविता-पुस्तक पर उनकी सम्मति पहले ही पृष्ठ पर चमक रही है। पुस्तकों, दवाओं और व्यक्तियों के प्रचार में तो ऐसी प्रशंसात्मक सम्मतियों की परम्परा कुछ दिनों ऐसी चली कि हद हो गयी। सम्मति-प्राप्तकर्ताके साथ सम्मति देने वाले का प्रचार भी तो होता था, इस कारण कुछ नेताओं को तो सम्मतियां फटकारने का मर्ज हो गया था। इस प्रकार किसी भी वस्तु या व्यक्ति के प्रचार के लिए किसी नेता की सम्मति एक समय में इतनी सस्ती हो गई कि अब उसका कोई महत्व नहीं रहा। घनघोर विज्ञापनबाजों ने अब नयी परम्परा अपनायी है। नेताओं और मंत्रियों की सस्ती सम्मतियों को छोड़कर अब रिवाज़ यह चल पड़ा है कि लोग अपनी चीज के प्रचार के लिए किसी सिनेमा की तारिका की सम्मति प्राप्त करने का यत्न करते हैं, वह न मिली तो सिने-अभिनेता की ही सही। आप देख लीजिए, साबुन, तेल, कंघा, कपड़ा, दवा इत्यादि जीवनोपयोगी चीजों, यहां तक कि कलमों के विज्ञापन तक में अब किसी सिने-तारिका की तस्वीर छपी मिलेगी और साथ में उसकी सम्मति। विज्ञापन करने वाले रेडियो के पूरे कार्यक्रम तक सिने-तारिकाओं की मुलाकातों के नाम से चलते हैं। कहने का अभिप्राय यह कि नेताओं और मंत्रियों की सम्मतियों का विज्ञापन में अब महत्व नहीं रहा, क्योंकि वे इतनी सहज सुलभ और सस्ती हो गई हैं कि किसी बहाने जरा-सा संपर्क किसी नेता या मंत्री से बना लीजिए, फिर चाहे जैसी सम्मति उनसे लिखा लेना मामूली बात है। यदि किसी नेता या मंत्री से कोई राजनैतिक या अन्य प्रकार की साठगांठ फंस जाय तो, फिर उनसे तो अपने लिए मनचाहा लिखा लेना बायें हाथ का खेल है। कम से कम हमारे देश में प्रकृतिवश उदार नेताओं और मंत्रियों की सरलता का दुरुपयोग करने की वृत्ति बहुत बढ़ी हुई है।

कई वर्ष हुए, एक मित्र के यहां लड़के का विवाह था। दो-चार बहुत अंतरंग मित्र जब बैठे तो बात करने लगे कि विवाह के अमुक अवसर पर आनेवालों पर अपनी धाक जमाने के लिए क्या कार्यक्रम रखा जाय। किसी ने नाच-गान की सलाह दी, किसी ने कविता-मुशायरे की। किसी ने कहा—संगीत क्लब का कार्यक्रम कराया जाय, कोई बोला—एकाध एकांकी नाटक करा डालो, बढ़िया रहेगा। लड़के वाले ने एक न मानी। मित्रों ने कहा गजब का कंजूस है। लोग क्या कहेंगे? भाईजान चाहते तो हैं कि शहर के बड़े से बड़े लोग बुलावें, पर उन्हें बुलाकर करेंगे क्या? लड़के वाले ने अपनी सूझ-बूझ से काम लिया। बहुत बढ़िया निमंत्रण छपाया और साथ में शुभकामना की याचना के पत्र के साथ तमाम नेताओं और मंत्रियों को निमंत्रण ठोंक दिए। विशेष समारोह के दिन खचाखच भरे हुए पण्डाल में जब वर-वधू के लिए आये हुए कई वरिष्ठ नेताओं और मंत्रियों के शुभकामना सन्देश पढ़े गये तो सुनने वाले चकाचौंध में पड़ गए।

लोगों पर वह धाक जमी कि क्या कहने। आगतों ने समझ लिया कि इस व्यक्ति के सम्पर्क तो बड़े-बड़े नेताओं से हैं। स्थानीय अधिकारियों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि सलाम करने लगे। इस घटना के बाद हमने देखा कि उन सज्जन को नगर की हर सभा-समारोह के विशेष निमंत्रण पहुँचने लगे। कई समितियों में सदस्य चुन लिए गए और थोड़े ही दिनों में उनकी गणना नगर के प्रमुखतम व्यक्तियों में होने लगी। कहिए, नेताओं और मन्त्रियों की उदारता का कितना बढ़िया उपयोग हुआ? आजकल यह प्रायः देखा जाता है कि कुछ प्रमुख जन-नेता और मंत्री गण किसी सूत्र से प्रभावित होकर स्वाभाविक उदारतावश किसी भी विषय में, चाहे उस विषय से उनका कभी कोई संपर्क न रहा हो, प्रशंसात्मक अभिमत व्यक्त कर देते हैं। यही कारण हुआ कि नेताओं और मंत्रियों की सम्मति में सस्तापन आ गया-सा प्रतीत होता है। लोग व्यक्तिगत मामलों तक में उनका उपयोग करने लगे।

हाल ही में पण्डित शिवशर्मा ने आयुर्वेद जगत् में अपनी समाप्तप्राय प्रतिष्ठा को पुनः बनाने के लिए ऐसे ही साधन का उपयोग किया है। दिल्ली की एक पत्रिका में प्रकाशित अपनी वक्तव्य-शृंखला में उन्होंने अपने व्यक्तित्व और चरित्र-दृढ़ता के विषय में दो प्रमुख मन्त्रियों की सम्मतियों को उद्धृत किया है और यह प्रयत्न किया है कि वैद्य समुदाय माननीय मंत्रियों की राय से प्रभावित होकर उन मुख्य बातों को भूल जाय जिनका सम्बन्ध पण्डित शिवशर्मा के महासम्मेलन में किये कार्य-कलापों से है। कई बार यह कहा जा चुका है कि पण्डित शिवशर्मा की व्यक्तिगत योग्यता, चरित्र और कार्य अथवा उनकी ऊँचाई-नीचाई यहां विचार का विषय है ही नहीं। विशेष कर वैद्य समाज को उनके व्यक्तिगत उत्थान-पतन से प्रयोजन क्या? भगवान करे, वे सरकारी क्षेत्र में गवर्नर बन जायं या देवताओं में इन्द्रासन प्राप्त कर लें, इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? विचारणीय प्रश्न तो यह है कि महासम्मेलन में रहकर पण्डित शिवशर्मा ने संस्था और संगठन के हितों के लिए क्या कार्य किया? कितना अच्छा किया और कितना बुरा किया? आलोचकों की आपत्ति तो केवल इतनी रही है कि पण्डित शिवशर्मा ने आयुर्वेद महासम्मेलन में रहकर संस्था और वैद्य समाज के हितों की परवाह न करके व्यक्तिगत प्रतिष्ठा बढ़ाने के प्रयत्न ही अधिक किये। जो सम्मतियां पण्डित शिवशर्मा ने माननीय मंत्रियों की प्रकाशित की हैं उनमें ही एक माननीय ने यह स्पष्टीकरण किया है कि पण्डित शिवशर्मा की माननीय नेहरू से भेंट का जो यत्न किया गया था, उसमें किसी संस्था या दल का कोई उद्देश्य नहीं था, प्रत्युत् प्रयत्न माननीय नेहरू जी से व्यक्तिगत भेंट का किया गया था, जबकि हमें स्मरण है कि इस भेंट के विषय में उन दिनों वैद्यजगत में समाचार यह प्रचारित किया गया था कि महासम्मेलन के प्रतिनिधि पण्डित नेहरू से गुप्त भेंट करने जा रहे हैं।

एक माननीय मंत्री जी ने अपनी सम्मति में व्यक्त किया है कि त्रिवेन्द्रम की स्वागत समिति का एक पत्र पण्डित शिवशर्मा ने उन्हें दिखाया था जिसमें उनके और दो अन्य नेताओं को अधिवेशन में लाने का आग्रह किया गया था। सम्मति का अंश स्वयं स्पष्ट करता है कि मंत्री महोदय को स्वागत समिति ने सीधा निमंत्रित नहीं किया। न स्वागत समिति ने मंत्री महोदय को कोई पत्र लिखा। हुआ यह होगा कि पण्डित शिवशर्मा ने स्वागत समिति पर प्रभाव जमाया होगा कि मेरा व्यक्तिगत असर अमुक मुख्य मंत्री पर है, मैं उनको अधिवेशन में ला सकता हूँ। स्वागत समिति ने उत्तर में लिख दिया होगा कि ले आइए। पण्डित शिवशर्मा को यह सुविधा थी कि एक प्रदेश के मुख्य मंत्री के साथ होने से दूसरे प्रदेश के मुख्य मंत्री पर भी प्रभाव हो जायगा। इसीलिये यह प्रयत्न किया गया और केवल तीन दिन की अध्यक्षता की गयी। पण्डित शिवशर्मा अदालत में मन्त्री महोदय की गवाही से यह सिद्ध करना चाहते थे कि माननीय मंत्री जी उनके कहने से नहीं अपितु स्वागत समिति के आग्रह से अधिवेशन में गये! उन्हीं माननीय मंत्री की सम्मति स्पष्ट कहती है कि स्वागत समिति का पत्र मंत्री जी को नहीं, शिवशर्मा जी को था। और वही पत्र लेकर पण्डित शिवशर्मा ने मंत्री जी से अधिवेशन में जाने की प्रार्थना की। अब, कौन अक्ल का बुद्धू इस बात को मान जायगा कि मंत्री जी अधिवेशन में पण्डित शिवशर्मा के आग्रह से नहीं गये। पण्डित शिवशर्मा जी के ही सिद्धान्त के अनुसार निमंत्रित करने वाला वह होता है जो व्यक्तिगत रूप से किसी के पास जावे। मंत्री जी के विशुद्ध आयुर्वेद प्रेम की उत्कटता वैद्य समाज तब मान लेता जब उसका उपयोग अधिवेशन-

उद्घाटन के अतिरिक्त केन्द्र में आयुर्वेद को कुछ दिलाने में हुआ होता। मंत्री जी का कहना है कि हवाई यात्रा का बिल भी पण्डित शिवशर्मा को भेजा गया क्योंकि सरकार को यह पता नहीं था कि बिल स्वागत-समिति को जायगा या महासम्मेलन के मंत्री को। जब निमंत्रित स्वागत-समिति ने किया था तो ऐसी अज्ञानता क्यों रही ?

मंत्री जी अपनी सम्मति में मानते हैं कि जिस भाषा का प्रयोग पण्डित शिवशर्मा स्वास्थ्य-मंत्राणी राजकुमारी अमृतकौर के लिए किया करते थे, वह उनके लिए अरुचिकर था। यहां तक कि उसके कारण सरकार को आयुर्वेद की समस्याओं पर शिवशर्मा जी की सम्मति लेने तक में झिझक होती थी। फिर मैजिस्ट्रेट ने यदि इसी बात को निर्णय में कहा तो वह कैसे भ्रान्त है ?

जिन दो मंत्री महोदयों की सम्मति पण्डित शिवशर्मा ने प्रस्तुत की है वे दोनों ही माननीय यह प्रकट करते हैं कि उनकी पण्डित शिवशर्मा से घनिष्ट मित्रता है। इतनी मित्रता है कि उनसे पंडित शिवशर्माजी अपने त्यागपत्र आदि व्यक्तिगत प्रश्नों पर भी सलाह करते रहे हैं, ऐसा एक सम्मति में ही लिखा गया है। पण्डित शिवशर्मा को अच्छा मित्र कहने वाले एक मंत्री महोदय उस प्रदेश के मुख्य मन्त्री रहे हैं, जहाँ पण्डित शिवशर्माजी आयुर्वेद फैकल्टी के चेयरमैन हुए और मेडिसिन बोर्ड के भी। दूसरे मंत्री महोदय यूनिवर्सल हैल्थ इन्स्टीटयूट के चेयरमैन हैं, जिसमें पण्डित शिवशर्मा प्रधान चिकित्सक के स्थान पर नियुक्त हैं। यह पहले ही निवेदन किया जा चुका है कि दोनों मन्त्रियों ने पत्रिका में प्रकाशित अपने वक्तव्यों में पण्डित शिवशर्मा को अपना मित्र बताया है। इन मित्रताओं का कितना बढ़िया उपयोग पण्डित शिवशर्माजी ने किया, यह उनके पद और उनके पक्ष में मंत्रियों की सम्मतियाँ प्रकट करती हैं। यद्यपि वह उपयोग किसी अन्य कारण से नहीं कहा जा सकता। संसार में ऐसा होता ही है कि एक मित्र दूसरे मित्र की भलाई करता है, सकारण भी और अकारण भी ! पण्डित शिवशर्मा जी के सम्बन्ध में जो सम्मतियाँ प्रकाशित हुई हैं, स्पष्ट है कि उनमें मित्रता का भाव सर्वत्र छाया हुआ है, स्वस्थ मूल्यांकन की परम्परा नहीं है। और हो भी तो वे सम्मतियाँ पण्डित शिवशर्माजी के व्यक्तिगत चरित्र, व्यवहार और योग्यता के विषय में दी गयी हैं। व्यक्ति के रूप में पण्डित शिवशर्माजी क्या हैं, इसका विश्लेषण करना न उस मानहानि विवाद का काम था और न मैजिस्ट्रेट के निर्णय का ; ऐसी दशा में इन सम्मतियों की गवाही का अदालत में कदापि औचित्य नहीं था, क्योंकि अदालत में विचारणीय विषय था वह लेख, जिसमें पण्डित शिवशर्माजी के महासम्मेलन सम्बन्धी कार्य-कलापों की समालोचना की गयी थी !

पण्डित शिवशर्मा ने अदालत के निर्णय के विषय में अपने जो पांच वक्तव्य प्रकाशित किये हैं उनमें पूरा ज़ोर अपने व्यक्तित्व को प्रकाशित करने पर ही दिया है। और सर्वत्र यह सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया है कि निर्णय में विद्वान् न्यायाधीश ने भूलें की हैं। यद्यपि यह सभी जानते हैं कि निर्णय प्रस्तुत प्रमाणों और श्री शिवशर्मा के स्वयं के बयानों पर ही आधारित है। उन आरोपों का कोई खण्डन प्रस्तुत करने का साहस पण्डित शिवशर्मा ने नहीं किया जो महासम्मेलन में उनके कार्यों के विषय में स्थिर हुए हैं। वैद्य-समाज जिन बातों का जवाब पण्डित शिवशर्मा से चाहता है, उनके विषय में वे चुप हैं और इधर-उधर का भ्रमजाल फैलाकर वैद्य-जगत को चमत्कृत करना चाहते हैं। निश्चय ही इस निर्णय के बाद जो प्रतिक्रिया स्पष्ट देखने में आई, उससे प्रकट है कि आज आयुर्वेद जगत् में पण्डित शिवशर्मा का स्थान नगण्य हो गया है। पण्डित शिवशर्माजी स्वयं इस वस्तुस्थिति को अनुभव कर चुके हैं, इसलिए पत्रिका द्वारा पुनः अपने धुआंधार प्रचार पर जुटे पड़े हैं। उनके इस अतिशयोक्तिपूर्ण आत्मश्लाघा भरे प्रचार का कोई प्रभाव वैद्य-समाज पर नहीं पड़ रहा है।

श्री शिवशर्मा ने अपने अन्तिम वक्तव्य में यह प्रकट किया है कि उनका विवाद एक बहुत बड़े धनपति के साथ था, जिसने लाखों रुपया मुकदमे पर व्यय किया। पण्डित शिवशर्मा ने इस कथन के द्वारा अव्यक्त रूप से जो बात कहनी चाही है, वह इतनी निन्दनीय है कि उसको स्पष्ट कहते हुए स्वयं शिवशर्माजी को भी शर्म आई है। जिस प्रकार इधर-उधर के बहाने बताकर, तथ्यों की तोड़-मरोड़ करके शिवशर्मा जी ने कुछ बातों के चित्र को ही बदलने का दुःप्रयत्न किया है, उसी प्रकार सबसे अधिक बल वे इस बात पर देने पर तुले हुए हैं कि इस निर्णय और आयुर्वेद जगत में उठे हुए उनके विरुद्ध आन्दोलन का उन पर कोई प्रभाव ही नहीं है। परन्तु सत्य से कोई कहां तक आँख मूंद सकता है। सारा आयुर्वेद जगत् यह देख रहा है और अनुभव कर रहा

है कि सदा छठे आसमान पर रहनेवाले पण्डित शिवशर्मा आज पृथ्वी पर दौड़ लगा रहे हैं। जो कहा करते थे कि विरोधी प्रचार का कोई उत्तर देकर विरोधियों को वह अनपेक्षित महत्त्व नहीं देना चाहते जो उन्हें कभी मिलने वाला नहीं—वे ही शिवशर्माजी आज वक्तव्य, पत्रक और भेंट-मुलाकातों के दौरा में घर छोड़ भाग रहे हैं। मर्यादा-सम्पन्नता के अवतार इतने निम्नस्तर पर उतर आये हैं कि विगत विद्यापीठ के निर्वाचनों में उन्होंने स्वयं जो पत्रक निकाला है, वह उनके मानसिक पतन का ज्वलन्त प्रमाण है, यह बात हम नहीं कह रहे हैं वैद्य-समाज में सर्वत्र ही यही चर्चा है।

इस बीच में पण्डित शिवशर्माजी ने आयुर्वेद जगत् को यह दिखाने का घोरतर प्रयास किया है कि अब भी उनकी मान्यता पहले से अधिक है। अपने मुँह मियां मिठ्ठू बनने का इससे बड़ा उदाहरण कदाचित ही कहीं देखने को मिलेगा कि अपने प्रभाव और प्रतिष्ठा का बखान स्वयं के पत्रक में किया गया हो। हाल के महासम्मेलन चुनावों का उल्लेख करके पण्डित शिवशर्माजी ने दिखाया है कि सभापतित्व के लिए बारह प्रादेशिक सभाओं से उनका नाम प्रस्तावित किया गया जो इस बात का प्रमाण है कि आयुर्वेद जगत में पण्डित शिवशर्मा की मान्यता पहले जैसी ही है। नाम वापिस न लेकर और सदस्यों से मतदान में पण्डित शिवशर्मा विजयी होकर दिखा देते, तब तो हम वास्तव में मान लेते। प्रादेशिक सभाओं से उनके नाम के प्रस्ताव किस कला से आ गये हैं, यह बात आयुर्वेद जगत् से छिपी नहीं है। अधिकांश प्रादेशिक सभाएँ वैधानिक रूप से पूर्ण नहीं हैं और पण्डित शिवशर्मा के कठपुतली व्यक्तियों के दल को ही प्रादेशिक सभाओं का नाम दिया हुआ है। इसी कला के द्वारा पिछले पांच वर्षों से निर्वाचन का नाटक होता आ रहा है और सदस्यों को मतदान का अवसर ही नहीं आता। इस बार भी वही नाटक करने की योजना थी और सभापति उत्तर प्रदेश के एक सज्जन को बनाने का विचार था। प्रयत्न में थोड़ी भूल हो गई, इसलिए निश्चित तिथि के तीन दिन बाद उन सज्जन को भी नाम वापस लेना पड़ा। प्रादेशिक सभाओं से संकेत किये हुए नाम ही प्रस्तावित किये जाते हैं, इस बार तो पण्डित शिवशर्मा, श्री पार्थनारायण जी, भाई वामनराव दीनानाथ जी तथा श्री बाबूराम जी इन नामों के प्रस्ताव अधिकांश सभाओं के नाम से एक से ही क्रम में आये हैं क्यों कि वह सधे हुए कार्यक्रम के आधार पर थे। ऐसी प्रादेशिक सभाओं से अध्यक्षता के लिए नाम प्रस्तावित करा लेने के पैंतरों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास नितान्त हास्यास्पद है कि हमारा प्रभाव अब भी ज्यों का त्यों है! वैद्य-समाज को भ्रम में डालने के लिए पत्रकों में कैसी-कैसी सरासर झूठी बातों को गढ़ा गया, इस पर अभी हम कोई टिप्पणी नहीं करना चाहते। उन विषयों की वास्तविक जाँच करके वैद्य-समाज के समक्ष यथार्थ तथ्यों को प्रस्तुत किया जायगा।

साधारण-सी स्वार्थसिद्धि और अधिकार-लिप्सा के लिए आज के जमाने में अपने को सत्यप्रिय और दृढ़चरित्र कहने वाले लोग किस निर्भीकता के साथ सत्य की हत्या करने पर उतारू हो जाते हैं, इसका परिचय आयुर्वेद जगत् को मिलकर रहेगा।

[पृष्ठ ६ का शेषांश]

सम्पादकीय

भिन्नता नहीं है परन्तु आयुर्वेद के शिक्षण में भारत के प्रदेशों और विद्यालयों तक में भिन्नता है। कहीं के विद्यार्थी कुछ पढ़ते हैं, कहीं के कुछ। शुद्ध और मिश्र आयुर्वेद का भ्रमपूर्ण विवाद सरकार के बहाने का कारण बना हुआ है। कुछ तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे राजकीय क्षेत्र के कुछ वरिष्ठ नेतागण अपने को आयुर्वेद जगत् का महारथी कहने वाले एक सज्जन को इसी कारण मुंह लगाये हुए हैं और सब प्रकार का प्रोत्साहन देते रहते हैं कि वे आयुर्वेद के शुद्ध-अशुद्ध पाठ्यक्रम का झगड़ा बनाये रहें ताकि सरकार को सदा बहाना मिलता रहे। देखने में आता है कि सरकारी पक्ष प्रायः ही आयुर्वेद के विषय को यह कह कर टाल देता है कि सरकार तो आयुर्वेद को प्रोत्साहन देना चाहती है, परन्तु आयुर्वेद के किस रूप को प्रश्रय दिया जाय, इस विषय में वैद्यगण एकमत नहीं हैं। हाल ही में प्रधान मंत्री नेहरू जी ने संसद में कहा है कि केवल उसी चिकित्सक को चिकित्सा करने दी जायगी जिसको शरीर रचना और क्रिया विज्ञान का पूरा ज्ञान हो, चाहे वह किसी भी पद्धति का हो। नेहरू जी का यह संकेत स्पष्ट इंगित करता है कि आयुर्वेदानुयायियों को किस प्रकार का पाठ्यक्रम स्वीकार करना चाहिए।

आयुर्वेद विषय के छात्रों में उसके प्रति रुचि का अभाव मिटाने के लिए और आयुर्वेद के प्रति अधिकाधिक मात्रा में सुरुचि जाग्रत करने के लिए यह अब नितान्त अकाट्य आवश्यकता है कि वैद्य समुदाय को गंभीरता के साथ विचार करके आयुर्वेद का समयानुकूल और सर्वसम्मत पाठ्यक्रम निर्धारित कर लेना चाहिए तथा उस स्वयं स्वीकृत पाठ्यक्रम के प्रचलन को अपने बल पर विद्यालय संचालित करके व्यावहारिक सिद्ध कर दिखाना चाहिए। सरकार के सामने जब तक कोई क्रियात्मक आदर्श वैद्य-समाज उपस्थित नहीं करेगा तब तक सरकार से आयुर्वेद के लिए कुछ करा लेना कदापि संभव नहीं। स्वयं के पाठ्यक्रम पर आधारित स्वयं का विद्यालय चला कर ही छात्रों में आयुर्वेद के अध्ययन एवं वैद्य रहने के लिए वास्तविक सुरुचि का संचार किया जा सकता है।

क्या हम आशा करें कि आयुर्वेद जगत् के महारथी इस विषय में सक्रियता दिखायेंगे?

महासम्मेलन के सदस्यों से अपील

दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के ४३वें अधिवेशन के लिए सम्मेलनाध्यक्ष का निर्वाचन तो निर्विरोध सम्पन्न हो चुका है; विद्यापीठ-अध्यक्ष-पद के हेतु माननीय सदस्यों को मतदान करना है। वैद्य-समाज एवं आयुर्वेद-जगत् की वर्तमान समस्याओं को देखते हुए यह अत्यन्त ही आवश्यक है कि हम अध्यक्ष-निर्वाचन जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर बहुत गम्भीरता एवं सावधानी से विचार करें। यह हर्ष एवं सन्तोष की बात है कि आयुर्वेद के तपस्वी विद्वान कविराज श्री उपेन्द्रनाथदास महोदय, प्रमुखतम वैद्यों के आग्रह पर, इस बार विद्यापीठाध्यक्षता के निर्वाचन में प्रत्याशी रहने के लिए प्रस्तुत हुए हैं। आयुर्वेद जगत में सर्वत्र इस बार उन्हें ही विद्यापीठाध्यक्ष बनाने की प्रबल इच्छा व्याप्त है।

कविराज श्री उपेन्द्रनाथदास की योग्यता, विद्वत्ता, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं ठोस आयुर्वेद सेवा से सम्पूर्ण वैद्य-समाज भली-प्रकार परिचित है। महासम्मेलन के सदस्यगण प्रायः तीस वर्षों से कविराज उपेन्द्रनाथदासजी की कार्यकुशलता का प्रत्यक्ष अनुभव रखते हैं। वर्षों कविराजजी विद्यापीठ के मन्त्री एवं उपाध्यक्ष रहे हैं; वर्तमान में भी उपाध्यक्ष हैं। इस नाते कविराजजी को विद्यापीठ-कार्य-संचालन का निकट से गम्भीर अनुभव है। दिल्ली में स्थायी निवास होने से महासम्मेलन एवं विद्यापीठ कार्यालय पर कविराजजी जैसे अनुभवी व्यक्ति का प्रत्यक्ष नियंत्रण सब प्रकार से हितकर सिद्ध होगा।

महासम्मेलन के माननीय सदस्यगण यह बात भली प्रकार से जानते हैं कि विद्यापीठ जैसी प्राचीन संस्था, जिसके द्वारा हजारों योग्य वैद्यों का अबतक निर्माण हुआ है, अमान्य अवस्था में चल रही है। विद्यापीठ का निज का विद्यालय न होने के कारण उसकी परीक्षाओं कों राजकीय मान्यता नहीं है। विद्यालय का अभाव प्रायः चालीस वर्षों से वैद्य-जगत को खटक रहा है और अब तो विद्यापीठ का सुव्यवस्थित विद्यालय न होना हमारे लिए बड़े ही कलंक का विषय बन गया है। इस कलंक को मिटाने की सामर्थ्य कविराज उपेन्द्रनाथदासजी में स्पष्ट परिलक्षित होती है। तीन-चार माह पूर्व उन्होंने राजधानी दिल्ली में विद्यापीठ का अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय स्थापित करने की एक ऐसी योजना प्रस्तुत की है, जिसके लिए भरपूर सहयोग देने का उत्साह वैद्यजगत् में दिखाई दे रहा है। यह कविराजजी के व्यक्तित्व एवं प्रभाव का ज्वलन्त उदाहरण है कि उनकी योजना को ऐसे विशाल वर्ग का समर्थन प्राप्त है जिसके द्वारा आयुर्वेद महाविद्यालय की प्रस्तुत योजना के लिए वैद्यों द्वारा ही आर्थिक एवं बौद्धिक सहयोग मिलने की स्थिति है। संक्षेप में हम यहाँ उन सहायताओं का उल्लेख करते हैं, जो कविराजजी द्वारा प्रस्तुत महाविद्यालय योजना के निमित्त हमारी जानकारी में सुलभ हैं।

दिल्ली में विद्यापीठ के महाविद्यालय के लिए निम्न सज्जन एक-एक बड़ा कमरा (हाल) बनवा देने को तैयार हैं :—१—श्री भारत आयुर्वेद भवन, मेरठ; २—वैद्य श्री महादेव प्रसाद जी, आरा; ३—वैद्य श्री कन्हैयालाल भेड़ा, बम्बई।

विद्यापीठ के विद्यालय के लिए नियमित मासिक सहायतायें :—१—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०, ५००) मासिक; २—श्री बनवारीलाल आयुर्वेद विद्यालय दिल्ली, ३५०) मासिक; ३—विभिन्न १५ सज्जनों के मासिक सहायता के आश्वासन १७०) मासिक।

आयुर्वेदीय पत्रों में से निम्न पत्र विद्यापीठ के महाविद्यालय के हेतु धनसंचय करने के निमित्त दान-कोष स्थापित करके अपने पाठकों से धन-संग्रह करने को प्रस्तुत हैं :—(१) सचित्र आयुर्वेद मासिक, कलकत्ता; (२) आयुर्वेद मासिक, नागपुर; (३) आयुर्वेद जगत, बम्बई; (४) आयुर्वेद सन्देश, लखनऊ; (५) सुधानिधि मासिक, प्रयाग।

विद्यापीठ के महाविद्यालय के संचालन में निम्न विद्वान अध्ययन-अध्यापन की सेवाएं बिना पारिश्रमिक के देने को प्रस्तुत हैं :—१—कविराज श्री उपेन्द्रनाथदासजी; २—वैद्यराज श्री मनोहरलालजी आयुर्वेदाचार्य; ३—आचार्य श्री घनानन्दजी पन्त।

कविराज श्री उपेन्द्रनाथदास द्वारा प्रस्तुत महाविद्यालय योजना को सफल बनाने हेतु प्रायः सभी प्रभावशाली विद्वान द्रव्य-संग्रह करके देने के लिए प्रस्तुत हैं जिनमें निम्न कुछ सज्जनों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं :—वैद्य श्री वैद्यनाथ सरकार,

देहली ; वैद्य श्री ओंकार प्रसाद जी, देहली ; वैद्य श्री जयरामदास जी, जयपुर ; वैद्य श्री मणिराम जी आचार्य, रतनगढ़ ; वैद्य श्री रामेश्वर जी शुक्ल शास्त्री, ग्वालियर ; वैद्य श्री दुर्गादत्त जी शास्त्री, वाराणसी ; वैद्य श्री कविराज प्रतापसिंह जी, दिल्ली ; वैद्य श्री हरिबक्ष जी जोशी, कलकत्ता ; वैद्य श्री शिवकरण शर्मा छांगाणी, नागपुर ; वैद्य श्री श्यालीराम जी द्विवेदी, इन्दौर ; वैद्य श्री बा० वा० नटराज शास्त्री, तिरुचिरापल्ली ; वैद्य श्री वैद्यनाथ शर्मा, बम्बई ; वैद्य श्री धर्मदत्त जी एम० एल० ए०, बरेली।

इसके अतिरिक्त अनेक सज्जन अपने प्रान्तों से धन-संग्रह करके देने का आश्वासन देते हैं। इन सब साधनों का उपयोग तभी हो सकेगा जबकि विद्यापीठ का नेतृत्व सुयोग्य और कर्मठ व्यक्तियों के हाथ में हो और विद्यालय का संयोजन विश्वस्त एवं प्रभावशाली व्यक्तियों की समिति द्वारा आरम्भ हो।

अपने अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना आयुर्वेद की रक्षा के लिये अब नितान्त आवश्यक है। हम नये पाठचक्रम से शिक्षित चिकित्सक वैद्यों की समालोचना तो करते हैं, परन्तु एक भी आदर्श विद्यालय का संचालन नहीं करते। जब हमारा आदर्श विद्यालय नहीं है तो शिक्षार्थी नये पाठचक्रम को न अपनावें तो क्या करें ? मैंने स्वयं अपने प्रिय पुत्र को नये पाठचक्रम से आयुर्वेद इसीलिये पढ़ाया कि सर्वांगपूर्ण और व्यवस्थित अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय सुलभ नहीं हैं। अपनी सन्तान को अच्छी और उच्चतम शिक्षा देने की इच्छा किसको नहीं होती। आज हजारों वैद्य चाहते हैं कि उनकी सन्तानें विधिवत् अष्टांग आयुर्वेद का शिक्षण ग्रहण करके आयुर्वेद की शक्ति बढ़ावें, परन्तु जहां यथोचित रूप से शिक्षण की व्यवस्था ही नहीं और केवल केन्द्रों में बैठकर परीक्षा लेने और प्रमाणपत्र देने का क्रम चल रहा है, वह भी मान्यता प्राप्त नहीं, तो फिर आयुर्वेद का व्यवसाय कैसे प्रगति करेगा ? यह एक अत्यन्त गंभीर प्रश्न है।

अतीत में हमारे निजी महाविद्यालय की कई योजनाएं बनकर बिगड़ चुकी हैं, इसलिये इस बार हमें इस विषय में सावधानी और दूरंदेशी के साथ काम लेना चाहिये। महाविद्यालय के लिये वर्तमान में जो अनुकूल वातावरण उपस्थित है उसका सदुपयोग तभी हो सकता है जब विद्यापीठ का नेतृत्व ऐसे विद्वान के हाथ में आवे जो स्वयं महाविद्यालय के विषय में रुचि रखते हों और जिनको वैद्य-जगत के सभी वर्गों का खुला समर्थन एवं विश्वास प्राप्त हो। कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दासजी इस दृष्टि से निश्चय ही सर्वोपरि हैं। हम कह सकते हैं कि कविराज जी की अध्यक्षता में विद्यापीठ की उल्लेखनीय प्रगति तो होगी ही; उनके नेतृत्व में चिरप्रतीक्षित महाविद्यालय बन कर ही रहेगा।

इसके विपरीत वर्तमान स्थिति और आयुर्वेद जगत का वातावरण ऐसा साफ दिखाई देता है कि यदि इस बार कविराज उपेन्द्रनाथ दासजी जैसे सर्वप्रिय विद्वान को आप विद्यापीठाध्यक्ष न बना सके तो पिछले इतिहास की भांति महाविद्यालय स्थापन का कार्य फिर लम्बी-चौड़ी बातों के बाद स्थगित हो जायगा। विद्यापीठ का विद्यालय तो तभी उच्चस्तर पर संचालित हो सकता है जबकि स्वयं विद्यापीठ व्यवस्थित हो। हम नहीं कह सकते कि कविराज जी के अतिरिक्त अन्य सज्जन के हाथों में विद्यापीठ की बागडोर आने पर इस योजना का क्या स्वरूप होगा और जिन लोगों ने कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी की योजना के नाम पर ही महाविद्यालय के हेतु सहायता देने और दिलाने में उत्साह प्रदर्शित किया है, उनका उत्साह भंग होगा। इस बात में कोई संशय नहीं है कि कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी योग्यता, ज्ञान, अनुभव, कुशलता, कार्य-कर्मठता, लगन, उत्साह एवं व्यक्तित्व के प्रभाव की दृष्टि से--विद्यापीठाध्यक्षता के लिये सर्वाधिक उपयुक्त विद्वान हैं।

आयुर्वेद की उन्नति और विकास के प्रति कविराज जी में कितनी लगन है और उसके लिये वे कितना यथार्थ त्याग कर सकते हैं इसका अनुमान हमारे अनुभव में आये हुये कविराज जी के एक त्याग से लगाया जा सकता है। आयुर्वेद में शारीर विषय पर एक ऐसे श्रेष्ठतम ग्रन्थ की आवश्यकता अकाट्य है जो आयुर्वेद के शारीर ज्ञान पर सर्वोत्तम एवं सर्वांगपूर्ण पाठचग्रन्थ हो सके। हमने इस कार्य के लिये कविराज जी से प्रार्थना की। कविराज जी ने तीन वर्ष के निरन्तर परिश्रम के बाद संस्कृत में आयुर्वेद शारीर नामक अद्वितीय ग्रन्थ प्रस्तुत किया। इस कार्य की विशालता का अनुमान इस बात से हो सकता है कि इसमें केवल सहायकों को तेरह हजार रुपया पारिश्रमिक दिया गया। परन्तु कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी ने हमारे भरपूर आग्रह के अनन्तर भी एक पैसा स्वयं पारिश्रमिक रूप में स्वीकार नहीं किया। ऐसे त्यागी कदाचित्

[शेषांश पृष्ठ ६१२ पर]

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के माननीय सदस्यों की सेवा में

पुनः नम्र निवेदन

आयुर्वेद महासम्मेलन के सम्माननीय सदस्य महानुभावों की सेवा में, एक निवेदन पत्र, मैंने मार्च के मध्य में प्रेषित किया था, जिसमें सदस्य बन्धुओं से विनय की थी कि वे विद्यापीठाध्यक्षता के लिए अपना अमूल्य मत, देश के सर्वोत्कृष्ट, सक्रिय आयुर्वेदीय विद्वान कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी के पक्ष में प्रदान करें। कविराज श्री उपेन्द्र नाथ दास जी को ही विद्यापीठाध्यक्ष क्यों बनाया जाना चाहिए, इस विषय पर, अपने निवेदन पत्र में मैंने विस्तृत प्रकाश डाला था। मैं इस बात के लिए निश्चय ही हृदय से बहुत कृतज्ञ हूँ कि माननीय सदस्य बन्धुओं ने अभूतपूर्व संख्या में मेरे निवेदन में वर्णित वस्तुस्थिति पर ध्यान दिया। सदस्य बन्धुओं के जो सैकड़ों पत्र मेरे निवेदन के उत्तर में आये हैं, उनसे स्पष्ट है कि सदस्यों के विशाल बहुमत ने विद्यापीठाध्यक्षता के लिए कविराज श्री उपेन्द्र नाथ दास जी का समर्थन किया है। महासम्मेलन के इतिहास में निर्विवाद रूप से यह एकमात्र ऐसा अवसर देखने में आया है जबकि विद्यापीठाध्यक्षता के निर्वाचन में अस्सी प्रतिशत सदस्यों ने उत्साहपूर्वक मतदान किया है। यह इसका ज्वलन्त प्रमाण है कि महासम्मेलन के सदस्यगण शीघ्र विद्यालय चाहते हैं और उनमें संगठन एवं संस्था के प्रति अपूर्व जाग्रति का उदय हुआ है। आयुर्वेद और वैद्य-समाज के हित में यह अत्यन्त शुभ एवं कल्याणकर लक्षण है। सदस्य महानुभावों की महती कृपा एवं उदारता के लिए, उनके कृपापूर्ण पत्रों का पृथक्-पृथक् उत्तर न देकर इस वक्तव्य के द्वारा मैं सब माननीय सदस्यों के प्रति विनीत कृतज्ञता अर्पित करता हूँ।

कुछ भाई पहले की भांति यह भ्रान्त प्रचार न करने लगें कि इसका कोई श्रेय मैं ले रहा हूँ, इसलिए यहां मैं विनम्रता के साथ, यह बहुत स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी के लिए माननीय सदस्यों का जो विशाल समर्थन दृष्टिगोचर हुआ, निश्चय ही वह मेरे किसी प्रयत्न का फल नहीं है। सदस्यों का वह विशाल समर्थन सबसे पहले तो सदस्यों की ही उदारता का फल है। दूसरे वह वास्तव में विद्यापीठ की विद्यालय-योजना का समर्थन है। तीसरे कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी की प्रकाण्ड विद्वत्ता, प्रतिष्ठा, ख्याति एवं तीस वर्षों की सेवाओं का ही मुख्यतः यह फल हुआ कि सदस्यों ने उनका विशाल समर्थन किया। इस निर्वाचन ने यह सिद्ध कर दिया कि महासम्मेलन सदस्य यथार्थ क्रियात्मक कार्यों के लिए जागरूक हैं, और उनकी हार्दिक इच्छा है कि विद्यापीठ का केन्द्रीय विद्यालय शीघ्र संचालित किया ही जाना चाहिए।

परन्तु महासम्मेलन सदस्यों को यह जानकर हार्दिक परिताप होगा कि विद्यापीठाध्यक्षता के लिए उनके इस प्रबल मतदान को मत-गणना किये बिना ही बम्बई में २५ मार्च को स्थायी-समिति की बैठक में अवैध घोषित कर दिया गया है। अभी मैं इस मतदान को अवैध घोषित करने की घटना पर कोई विशेष टिप्पणी नहीं करना चाहता। यह बात वैद्य जगत् आसानी से समझ सकेगा कि विवादी वर्ग ने जानबूझकर स्थायी समिति की बैठक को दिल्ली के स्थान पर बम्बई में रखवाया और वहां दलगत बहुमत के बल पर, इस मतदान को अवैध कर दिया क्योंकि सर्वत्र व्याप्त वातावरण से और कार्यालय की कृपा से कुछ स्वयंभू महापुरुषों को यह आभास मिल गया था कि मतदान में कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी का समर्थन सदस्य बन्धुओं ने प्रबल बहुमत से किया है। यद्यपि बम्बई की स्थायी समिति के विचार्य विषयों में मतदान के सम्बन्ध में कोई विषय विचारणीय नहीं था। इस मतदान को अवैध घोषित करने के लिए किन बातों को आधार बनाया गया है और वे किस सीमा तक न्यायपूर्ण एवं वैधानिक हैं, इस विषय पर मैं क्या कहूँ? जिनका कार्यालय पर अधिकार है वे काला-सफेद करके कुछ भी कह सकते हैं। कार्यालय की ओर से सदस्यों की सेवा में यदि कोई विवरण आये तो वे ही विवेकपूर्ण तथ्यातथ्य पर विचार करने की कृपा करें।

स्पष्ट है कि विद्यापीठाध्यक्षता के लिए अब फिर से मतदान होगा। कई वर्ष बाद सदस्य बन्धुओं को अपने

मतदान के अधिकार का उपयोग करने का अवसर मिला है। मेरा सदस्यों से विनम्र निवेदन है कि वे इस पुनः मतदान में भी दूने उत्साह के साथ अपने अधिकार का उपयोग करें। सदस्य बन्धु और भी अधिक संख्या में मतदान करें और अपने कुछ भ्रान्त अभिमान में भूले हुए भाइयों को दिखा दें कि अब संस्था में वास्तविक विचार-पूर्वक काम करने वालों का ही बहुमत है, और सदस्यों को भ्रमजाल में नहीं उलझाया जा सकता।

माननीय सदस्य बन्धुओं से मेरा पुनः विनम्र आग्रह है कि वे दोबारा मतदान में भी अपना अमूल्य मत अधि-काधिक संख्या में विद्वद्वर आयुर्वेदवृहस्पति कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी सांख्य-दर्शन-काव्यतीर्थ, डी० एस० सी० ए० को ही प्रदान करके यह पुनः सिद्ध कर दें कि वे विद्या-पीठ का केन्द्रीय विद्यालय शीघ्र संचालित करने के प्रबल समर्थक हैं।

मुझे बड़ा खेद है कि प्रथम बार मतदान के अवसर पर कुछ भाइयों ने धुआंधार पत्रकबाजी करके बहुत-सी नितान्त झूठी बातों का प्रचार किया है और विवादग्रस्त स्थिति उत्पन्न करने के लिए इधर-उधर का भ्रमजाल फैलाकर विद्वान सदस्य बन्धुओं को मुख्य और मूल विषय से हटाने का असफल प्रयत्न किया है। यह हमारे लिए कलंक की बात है कि आयुर्वेद जगत् में भी निर्वाचन के प्रसंग में अत्यन्त ही निम्न स्तर पर उतर कर प्रचार किया गया है, जैसा कि आजकल राजनीति में देखा जाता है। कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी जैसे निर्लेप एवं पुराने यथार्थ आयुर्वेदसेवी, सीधे-सरल ऋषिकल्प विद्वान पर इस पत्रक-बाजी में जो निराधार और निन्दनीय आक्षेप किये गये हैं, उनको देखकर हृदय द्रवित हो जाता है, और लगता है कि हम अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं एवं नैतिक स्तर से साधारण-सी पद-प्राप्ति के लिए कितने विचलित हो गये हैं। किसी भी वैज्ञानिक सम्प्रदाय में ऐसी ओछी बातें होती नहीं देखीं। महासम्मेलन विद्वानों की संस्था है, उसके सब कार्य उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल होने चाहिएं, किसी एक उम्मेदवार के पक्ष में दूसरे उम्मेदवार के प्रति गाली-गलौज करना क्या उचित और क्षम्य कहा जा सकता है? यद्यपि जिस पक्ष ने यह निम्न कोटि का प्रचार किया है, उसने अपने समर्थित उम्मीदवार की योग्यता, कार्य और परिचय के विषय में अनेक नितान्त झूठी बातें लिखी हैं, परन्तु सदस्यगण जानते हैं कि कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी के समर्थकों ने दूसरे सज्जन के विषय में एक भी असम्मान-जनक वाक्य नहीं लिखा। यहां तक कि स्वस्थ वातावरण बनाये रखने के लिए असत्य एवं भ्रामक बातों का खण्डन तक नहीं किया। दूसरे पक्ष के भाइयों को इस भावना का आदर करना चाहिए था। अपनी स्वतन्त्र इच्छा से यदि कोई योग्य विद्वान का समर्थन करता है और उसको मत देता है, तो वह पैसों पर बिका हुआ है, ऐसी नीचता की बात कह देना और विज्ञ सदस्यों को अपनी नेतागिरी की लाठी से हांकने का दुष्प्रयत्न करना, सदस्यों के व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं उनकी योग्यता का खुला अपमान करना है।

मेरी सभी भाइयों से करबद्ध प्रार्थना है कि निर्वाचन सर्वथा स्वस्थ वातावरण में ही सम्पन्न होने का अवसर दें। माननीय सदस्यों के विवेक पर विश्वास रखें। शिष्टता-पूर्वक अपनी बात कहें और निर्णय को सर्वथा सदस्यों की इच्छा पर छोड़ दें। विशेषकर उन भाइयों से जो किन्हीं विशेष कारणोंवश विद्यापीठ में क्रियात्मक स्थिति नहीं आने देना चाहते, मेरी बार-बार प्रार्थना है कि अपने प्रचार के स्तर को, आगे अधिक गिरावें नहीं। जिसका उन्हें समर्थन करना है, करें, परन्तु अकारण ही दूसरों पर आक्षेप न करें। आयुर्वेद के इस संकट के काल में भी यदि सौहार्दपूर्ण एकता का प्रदर्शन नहीं कर सकते तो कम-से-कम इतनी कृपा तो करें ही कि वैद्य-जगत का वातावरण स्वस्थ बना रहे और बाहरी समाज हमारे निम्न स्तर का तमाशा न देख सके।

विद्यापीठ-निर्वाचन के प्रसंग में भाई शिवशर्माजी का एक पत्रक देख कर मुझे आश्चर्य हुआ। निश्चय ही मैं उस विषय में चुप हीं रहना चाहता था, यही कारण है कि वृथा विवाद से बचने की दृष्टि से कोई टिप्पणी नहीं की गयी। मुझ दुख है कि भाई शिवशर्माजी ने इस पत्रक में भी अपने मुंह अपनी प्रशंसा के पुल बाँधते हुए उस मुकद्दमे के कलुष को आगे रख कर प्रचार का साधन बनाया है। मैं नहीं समझता कि निर्वाचन से उस विवाद का क्या सम्बन्ध है? उनके पत्रक के विषय में मैं इससे अधिक और कुछ नहीं कहना चाहता कि वे अब अधिक फजीहत न करावें, हाथ कंगन के लिये आरसी की जरूरत नहीं होती।

कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी जैसे पूजनीय विद्वान् पर मेरी आड़ ले कर पत्रकों में जो घृणास्पद आक्षेप किये

गये हैं, उनसे मेरा अन्तर्मन पीड़ित हुआ है। जिस महा-पुरुष ने आयुर्वेद में शारीर जैसे अत्यावश्यक विषय पर विशाल मौलिक-ग्रन्थ रचना के कार्य में, आग्रहपूर्ण प्रार्थना करने पर भी एक पाई नहीं ली और जो विद्यापीठ के विद्यालय में निःशुल्क अध्यापन-सेवा करने को तैयार हैं, उनको धनक्रीत कह देना, मनुष्यता से गिर जाने के समान पाप है। यह नितान्त हास्यास्पद और सफेद झूठ है कि कविराज जी के पुत्र किसी की फर्म में नौकरी करते हैं। कविराज जी को इसलिए विद्यापीठाध्यक्ष बनाने का समर्थन किया जा रहा है कि उस पर अधिकार करके पुस्तक-विक्रय का प्रयत्न किया जायेगा, ऐसा कहना बिल्कुल ही भ्रान्त है। यही नहीं, जिन-जिन ने कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी का समर्थन किया उन सब पर आक्षेपों की बौछारें की गयीं। हमारे वर्त्तमान विद्यापीठाध्यक्ष स्वनाम-धन्य वैद्यराज श्री वी० वी० नटराज शास्त्री के लिए भी मनमाने ढंग से अनर्गल बातें कह दी गयीं। सभी उच्चतम विद्वानों को धनक्रीत कह कर विद्या और विद्वत्ता का घोर अपमान किया गया है।

कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी का चुनाव अभियान किसी के हजारों रुपयों की सहायता से चला, इसके विषय में एक ज्वलन्त तथ्य विद्वान् सदस्यों के सामने आ चुका है, वह है, दूसरे पक्ष का घनघोर चुनाव-प्रचार। सदस्यों ने इस सचाई को प्रत्यक्ष देखा है कि दूसरे पक्ष ने केवल धुँआधार पत्रकबाजी में ही कितना धन बहाया है, जब कि कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी के पक्ष में केवल दो ही पत्रक सदस्यों की सेवा में पहुँचे हैं, एक दिल्ली से-एक झाँसी से, वहाँ विरोधी सज्जन के गिन कर बारह पत्रक तो केवल कलकत्ता से प्रेषित किये गये हैं। सदस्यबन्धु इस छोटी-सी बात से इसका निर्णय कर सकते हैं कि धन के आश्रय का आरोप किस पर आता है।

मुझे क्लेश है कि इच्छा न रहते हुए भी मुझे प्रसंगवश ही यहाँ इन बातों का उल्लेख करना पड़ा। जो कुछ भी हो, जो हो चुका, वह हो चुका। अब भी हमें विवेक से काम लेना चाहिए। पहले मतदान के ज्वलन्त उदाहरण से और वैद्य-समाज में व्याप्त वातावरण से सबक लिया जाना चाहिए।

मैं तो हृदय से केवल सक्रिय और विधायक कार्यों का समर्थक हूँ। वैद्य-समाज और आयुर्वेद के हित में यथार्थ क्रियात्मक कार्यों के लिए मैं बड़े-से-बड़ा त्याग करने को हर वैद्य के लिए सौभाग्य समझता हूँ और अपने को भी उसमें ही कृतकार्य मानता हूँ। कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी का समर्थन मैं केवल इस कारण कर रहा हूँ कि वे विद्यापीठ का केन्द्रीय विद्यालय इस वर्ष स्थापित करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हैं। आयुर्वेद जगत जानता है कि मेरा वह विख्यात और इतना बड़ा विवाद केवल विश्व-विद्यालय-योजना की असफलता के कारण ही चला था। आज भी वैद्य-जगत् में जो झगड़े हैं उनका एकमात्र कारण विद्यापीठ का विद्यालय न होना है। मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि कविराज उपेन्द्रनाथ दास के विद्यापीठाध्यक्ष बनने से विद्यापीठ का केन्द्रीय विद्यालय निश्चित रूप से स्थापित हो जायेगा। कविराज जी की स्वीकृत योजना-नुसार ही आज ऐसी स्थिति है कि आनन-फानन विद्यालय स्थापित हो सकता है। जमीन मिल रही है, रुपया मिल रहा है, भवन बनवा देने वाले मिल रहे हैं, निःशुल्क अध्यापक मिल रहे हैं, जरूरत केवल लगन के साथ योजना-सम्पादित करनेवाले व्यक्ति की है, और विद्यालय-योजना के लिए वह लगन एवं अध्यवसाय वर्तमान स्थिति में केवल कविराज उपेन्द्रनाथ दास में दिखाई दे रहा है, उनके ही नाम पर विद्यालय के लिए सहयोग देने को लोग मुक्तहस्त तैयार हैं। केवल यही कारण है कि मैं और आयुर्वेद-जगत के सभी प्रमुख सेवक कविराज उपेन्द्र-नाथ दास को विद्यापीठाध्यक्ष के रूप में देखना चाहते हैं। यदि दूसरे उम्मीदवार विद्वान् यह विश्वास दिलाते हैं कि वे विद्यापीठ का विद्यालय इस वर्ष बना देंगे तो उनका भी हृदय से समर्थन करने में मुझे रंचमात्र आपत्ति न होती, और मैं ही क्या सभी विद्वान् कविराजजी को चुनाव से हटने का आग्रह करते। परन्तु सदस्यों को इंगित है कि दूसरे उम्मीदवार सज्जन ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र में भी विद्यालय का जिक्र तक नहीं किया। प्रत्युत उनके चुनाव-प्रचार में विद्यालय-योजना का उपहास किया गया।

आज के समय में विद्यापीठ की सार्थकता ही केवल निज के विद्यालय पर निर्भर है। आयुर्वेद-जगत् को मालूम है कि सरकारी पक्ष ने हाल ही में यह घोषणा की है कि आयुर्वेद के छात्र आयुर्वेद पढ़ना नहीं चाहते। इसी प्रश्न पर लखनऊ के राजकीय आयुर्वेद विद्यालय में एक माह से हड़ताल चल रही है। सरकार के इस आरोप का उत्तर

निज का विद्यालय खोल कर ही दिया जा सकता है। आयुर्वेद का भविष्य अब केवल इस आधार पर निर्भर है कि व्यवस्थित अपने विद्यालय के द्वारा सरकार को दिखाया जाये कि योग्यतम चिकित्सक किस प्रकार तैयार किये जा सकते हैं।

सदस्यगण विचार करें कि कुछ भाई जो विद्यापीठ के द्वारा निर्धन छात्रों के हजारों रुपयों का मनचाहा उपयोग कर रहे हैं, केवल इसी कारण कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी का विरोध करते हैं कि वे वास्तव में नहीं चाहते कि विद्यापीठ का विद्यालय स्थापित हो। स्पष्ट है कि वही दल कविराज जी का विरोध कर रहा है जो पिछले बीस वर्षों से निरन्तर येन-केन-प्रकारेण विद्यालय की योजना को टालता आ रहा है। उस वर्ग को भय है कि विद्यालय स्थापित होते ही विद्यापीठ की जागीर हाथ से निकल जायेगी और वह सुविधा हाथ में नहीं रहेगी जो विद्यापीठ की परीक्षाओं में मनमानी करके प्राप्त कर ली जाती है। विद्यापीठ की परीक्षाओं का क्या प्रबन्ध है इसका एक ज्वलन्त प्रमाण यह है कि आजकल विद्यापीठ की परीक्षाएँ चल रही हैं, परन्तु विद्यापीठ-मन्त्री दौरे पर हैं और कार्यालय के प्रधान क्लर्क जो अब अपने को, अपनी ही इच्छा से विधान के प्रतिकूल कार्यालय मन्त्री की उपाधि से विभूषित करने लगे हैं, वे स्थायी समिति की बैठक में बम्बई पधारे हैं। परीक्षा-काल में कार्यालय में उनके प्रति कौन उत्तरदायी है और प्रश्न-पत्रों और उत्तर-पुस्तकों की भी गोपनीयता को कौन सुरक्षित रखे, यह भगवान जाने। स्वयं का विद्यालय न होने के कारण हमारी इस पचास वर्ष पुरानी संस्था की परीक्षाओं की यह दुर्दशा है कि उन्हें कहीं मान्यता नहीं। अब सदस्यगण ही, विचार करें कि विद्यालय की स्थापना क्यों और कैसे नितान्त आवश्यक है।

इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए मैं सम्मेलन के सभी माननीय सदस्यों से पुनः पुनः आग्रह करूँगा कि वे आगामी मतदान में अपना मत कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी को ही प्रदान करें।

कविराज उपेन्द्रनाथ दास की विजय यथार्थ में विद्यालय योजना की विजय होगी। महासम्मेलन में क्रियात्मक प्रवृत्ति की विजय होगी। और सही अर्थों में वह महा-सम्मेलन के सक्रिय सदस्यों की ही विजय होगी।

जिस प्रकार पहली बार मतदान करके बहुसंख्यक सदस्यों ने कृपा करके मुझे पत्र द्वारा सूचित किया है, मेरी प्रार्थना है कि दूसरी बार भी वे अपने-अपने अभिमत की सूचना पत्र द्वारा मुझे प्रदान करके उपकृत करें।

आपके कृपापूर्ण सत्परामर्श एवं सूचनाओं की प्रतीक्षा में रहूँगा।

—वैद्य रामनारायण शर्मा, आयुर्वेदोपाध्याय
संचालक 'सचित्र आयुर्वेद', कलकत्ता।

शेषांश] **महासम्मेलन के सदस्यों से अपील** [पृष्ठ ९०८ का

ढूंढ़ने पर भी सुलभ न होंगे। आयुर्वेद के लिये कविराज जी के मन में अनन्त त्याग की भावनाएं हैं, जिन्हें हमने निकट से अनुभव किया है। विद्यापीठाध्यक्ष के रूप में ऐसे यथार्थ त्यागी को पाकर हम निश्चय ही अभूतपूर्व प्रगति कर सकेंगे और हमारी संस्था का विस्तार भी होगा।

अतः हमारा महासम्मेलन के माननीय सदस्यों से विनम्र आग्रह है कि वे विद्यापीठाध्यक्षता के लिये अपना अमूल्य मत कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी को ही प्रदान करके आयुर्वेद की रक्षा में सक्रिय योग दें।

वर्तमान संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में आयुर्वेद के हितों की रक्षा के लिये अपनी प्रतिनिधि संस्था को बलवान और प्रगतिशील बनाने में योग देना बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। संस्था के लिये योग्यतम् नेता के निर्वाचन में उत्साहपूर्वक और निर्भय एवं निर्लेप होकर मतदान करने को हम पवित्र कर्तव्य मानते हैं। अतः आपसे प्रार्थना है कि आप अपना मत कविराज उपेन्द्रनाथदासजी के ही पक्ष में देवें और एक पोस्टकार्ड द्वारा उसकी सूचना कृपया हमें भी प्रदान करें।

वैद्य पं० रामनारायण शर्मा, आयुर्वेदोपाध्याय

विद्यापीठ का विद्यालय कैसे बन सकता है ?

आचार्य मणिराम शर्मा भिषगाचार्य

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका में संपादक महोदय ने संपादकीय लेख में लिखा है, कि "आयुर्वेद विश्वविद्यालय बनाने के आज तक सभी प्रयत्न निष्फल रहे। अब नई स्कीम यह है, कि दो लाख रुपया जमा हो जाने पर विश्वविद्यालय का श्रीगणेश किया जाय, जिससे अर्थ संकट में किसी का मुँह ताकना न पड़े और विद्यालय आसानी से चलता रहे।" ऐसा होना हम भी अति प्रशस्त समझते हैं, परन्तु संपादक महोदय भी थोड़ा-सा विचार करें कि दो लाख रुपये की थैली आपको कौन किस बूते पर भेंट करेगा। स्कीमों से रुपया मिल सकेगा इसमें बहुत भारी संदेह है। हाँ; मिल सकता है, तब जब आप निष्पक्ष भाव से धूनी-रमा कर बैठ जायें, स्वार्थ-त्याग करें, अनन्यचेता होकर "उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानसवसादयेत्" का सिद्धान्त स्वीकार करें। आपके पीछे कोई परिवार का झगड़ा तो है नहीं। आप सन्त-महन्त प्रभावशाली व्यक्ति हैं, धनी हैं, अतः आप स्वयं पहिले २५-३० हजार रुपये महाविद्यालय के निमित्त प्रदान करें। ५०-६० हजार रुपया अपने सिन्धी चेलों से लें। पाकिस्तान होने से सिन्धी क्या देंगे ऐसा विचार न करें। अब भी बहुत-से सिन्धी लक्षाधीश हैं। आप उन्हें कहें तो दे सकते हैं। जोधपुर प्रस्तावानुसार वे लाख रुपया देना चाहते ही थे ऐसा आपने स्वयं लिखा है। अब वे पूरा नहीं तो ५०-६० हजार दे सकते हैं। इस तरह करीब लाख रुपया आपके पास जमा हो जावेगा, फिर श्री शिवशर्मा जी से कहें कि मैंने इतना रुपया इकट्ठा कर लिया है तथा आप एक-दो लाख रुपया इकट्ठा करके और दें। श्री शिवशर्म्मा जी प्रभावशाली व्यक्ति हैं, बम्बई में आपकी खासी धाक है ऐसा वे स्वयं मानते हैं। वे अपने परिचित सौ धनी व्यक्तियों से हजार-हजार रुपया भी लें तो लाख रुपया सहसा ही एकत्रित हो सकता है। इतना होने पर फिर हमारे संमिलित उद्योग से राष्ट्रपति जी श्री मुरारजी देसाई, एवं श्री नंदाजी भाई आदि से कहें। ये महानुभाव स्वयं नहीं दें तो सरकार से दिला सकते हैं, ऐसा मेरा विश्वास है। इस तरह करीब २ लाख रुपया आपके पास जमा हो जावेगा, करीब एक लाख रुपया विद्यापीठ के पास जमा है, सब मिलाकर चार लाख रुपये की धनराशि एकत्रित हो जावेगी। फिर श्री रामनारायणजी से एक लाख रुपया लें, पांच लाख रुपया होने से सुंदर आयुर्वेद विश्वविद्यालय का निर्माण-कार्य आरम्भ हो सकता है। ऐसा होने पर लाखों रुपाया आपके चरणों में और बरसेगा। केवल स्कीमें बनाने से रुपया नहीं मिलता। ऐसा मेरा अनुभव है।

आप तो बहुत योग्य व्यक्ति हैं। अनपढ़, उजड्ड, गँवार भी स्कीमें तैयार कर सकता है। धन मिलता है प्रेम से, प्रभाव से, दवाव से, तथा स्वार्थ-त्याग से। आप आये हुए धन को भी ठोकर लगाते हैं और थोथी स्कीमें बनाते हैं, कैसे पार पड़ेगी। जैसे श्री रामनारायणजी ने दिल्ली-आयुर्वेद महाविद्यालय के लिए पांच साल तक पाँच सौ रुपया प्रतिमास देने का वचन दिया तो आप लोगों ने स्वीकार नहीं किया। श्री रामनारायण जी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने प्रारम्भ में ही ऐसा वचन दिया। आपको यह धन सहर्ष लेना चाहिए था, जो करीब २ लाख रुपये का व्याज होता है। कार्यारम्भ होने पर धीरे-धीरे और धन आता रहता। श्रीमान् जी ? धनदाता पहिले परीक्षा लेते हैं। ठोस कार्य होने पर धन देते हैं। सुनिये—मैं जब दिल्ली विद्यापीठ कासभापति बना तो मन में विचार किया कि हमारे विद्यापीठ का आयुर्वेद महाविद्यालय कैसे बनें; क्योंकि मैंने अपने भाषण में महाविद्यालय के ऊपर ही अधिक जोर दिया था। मैंने वैद्य महानुभावों से, धनीमानी प्रतिष्ठित व्यक्तियों से, तथा साथियों से, महाविद्यालय के विषय में परामर्श किया, परन्तु किसी ने भी सहयोग नहीं दिया। हां, मुझसे पढ़े हुए स्नातकों ने परम सहयोग दिया जिससे दो लाख की संपत्ति श्री धन्वन्तरि मंदिर रतनगढ़ में जमा हो गई।

मैंने एक प्रज्ञापराध जरूर किया है। वह यह है कि श्री रामनारायण जी के बड़े भाई श्री रामदयालुजी ने कहा था कि देहली जैसे केन्द्रों में मंदिर बनावें तो हम ५०

हजार रुपया या इससे अधिक देगें यह मैंने स्वीकार नहीं किया, अगर कर लेता तो इस मन्दिर की उपयोगिता अधिक बढ़ जाती। मैं इस गलती को महसूस करता हूँ। परन्तु अब क्या होगा। देहली आयुर्वेद महासम्मेलन में मेरे एवं स्वर्गीय पूज्य श्री यादवजी महाराज के उपलक्ष्य में श्री रामनारायणजी ने सारे सम्मेलन के लिए भोजन का सुन्दर प्रबन्ध किया। प्रातः श्री रामनारायणजी मेरे पास आये और कहा कि आज प्रीति भोज में आपको सम्मिलित होना है। मैंने कहा में बिना दक्षिणा के सम्मिलित नहीं हो सकता, तब श्री रामनारायणजी ने श्री धन्वन्तरि मन्दिर के लिए ५ हजार रुपये की धनराशि दान देने का वचन दिया। साढे बारह सौ रुपया मेरे पास भेज दिया और कहा कि रचनात्मक कार्यारम्भ करें। मैं साढ़े बारह सौ से क्या कार्यारम्भ करता; एक फूस की टापरी बनायें तो पांच सौ रुपया चाहिए। एक कर्मचारी रखें तो ४०-५० रु० मासिक चाहिए। ५-६ मास में रुपया साढ़े बारह सौ खतम हो जायें, और फूस की टापरी टूट जाये। फिर रुपया गुरु खा गया ऐसा संदेह हो जाय। रुपया देने वाले के मन में संदेह बहुत जल्दी होता है। दें कि नहीं दें? मेरा रुपया अमुक कार्य में लगेगा कि नहीं? लेनेवाला व्यक्ति खा तो नहीं जावेगा इत्यादि। ऐसा होना स्वाभाविक है। संभव है श्री रामनारायणजी ने ऐसा ही सोचा हो कि गुरु ने रुपया कमाने का एक किस्म का फिरका रचा है। अतः जो भेज दिया सो भेज दिया और नहीं देना चाहिए। ऐसा मेरा अनुमान है।

खैर, मैं आयुर्वेदशास्त्रचर्चा-परिषद पटना में गया और श्री रामनारायणजी से कहा कि रुपया नहीं पहुँचा। उन्होंने उत्तर दिया कि मैंने भेज दिया है। मैंने कहा कि साढ़े बारह सौ ही भेजा है। शेष साढ़े सैंतीस सौ रुपया और भेजें। तो कहा कि रुपया मैंने नहीं कमाया है मेरे भाईजी ने कमाया हैं इत्यादि। श्री रामनारायणजी अति बुद्धिमान व्यक्ति हैं। करोड़पति होने पर भी अपने धन का प्रायः दुरुपयोग देखना नहीं चाहते––सदुपयोग चाहते हैं। संभव है श्री रामनारायणजी ने मेरी परीक्षार्थ ऐसा किया हो; उनके पास धन की कमी नहीं हैं, कार्य करनेवाला व्यक्ति चाहिए। भरपूर देते हैं। श्री रामनारायणजी मेरी अनुपस्थिति में रतनगढ़ आये और मंदिर के निर्माण-कार्य को देखकर बहुत ही प्रभावित एवं प्रसन्न हुए, और शेष रुपया शीघ्र भेज दिया। और इसके चलाने की कोई स्कीम भी विचार रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मेरा और श्री रामनारायणजी का पिता-पुत्रवत्घनिष्ठ सम्बन्ध है। फिर भी मेरी परीक्षा ली। और आपको तो बिना ही परीक्षा के इतनी धनराशि दे रहे थे जो आपने स्वीकार नहीं की। खैर, अब मैंने जो स्कीम रुपया एकत्रित करने की ऊपर बतलाई है उसको कार्य में परिणत करें।

ऐसा करने में यदि आप असमर्थ हैं तो आदरणीय श्री धुलेकरजी का झांसी आयुर्वेद विश्व विद्यालय लेनें का विचार करें। अगर श्री धुलेकरजी हमारे विद्यापीठ के नाम रजिष्ट्री करा दें तो सहर्ष स्वीकार करें। झांसी ऐतिहासिक नगरी है। श्री धुलेकरजी ने अपने प्रभाव से लाखों रुपया इसमें लगाया है। मैंने इसे श्री रामनारायणजी के साथ देखा है। यह प्रतिष्ठान अनोखा है। इसमें प्रायः आयुर्वेदज्ञ योग्य व्यक्ति भी हैं। एक आयुर्वेद कोष का निर्माण भी हो रहा है। इसमें कुछ प्रदर्शन अधिक है। ठोस कार्य होना चाहिए। विद्यापीठ इसे सुधारेगा। परन्तु श्री धुलेकरजी संभव है मन में यह विचार करें कि इतने बड़े प्रतिष्ठान को विद्यापीठ चला नहीं सकेगा। वैद्य महानुभाव कर्मठ दिखाई नहीं देते। इस कारण न दें तो श्री धन्वन्तरि मंदिर रतनगढ़ को ले लेवें। इसमें डेढ़ लाख का निर्माण कार्य हो चुका है। ५० हजार की भूमि है। यह २ लाख की स्थावर संपत्ति अवश्य स्वीकार करें। मंदिर के नक्शे के अनुसार निर्माण-कार्य पूरा करें और विद्यापीठ का कार्यालय स्थापित करें। भारत विख्यात कविराज श्री प्रतापसिंह जी का अहमदाबाद सम्मेलन में या किसी अन्य सम्मेलन में प्रस्ताव था कि जो व्यक्ति ५०) हजार रुपये भवन बनाकर महासम्मेलन को प्रदान करे, कार्यालय वहीं स्थापित किया जाय। जोधपुर सम्मेलन में भी प्रस्ताव पास हुआ कि जिस स्थान से एक लाख रुपया मिले वहां विद्यापीठ का महाविद्यालय खोला जाय। अब धन्वन्तरि मन्दिर की करीब दो लाख की सम्पत्ति महासम्मेलन को मिलती है। फिर ननु-नच क्यों? मंदिर स्वीकार किया जाय और जो दो लाख की स्कीम है वह इसीमें व्यय की जाय। जिससे सर्वाङ्गपूर्ण संस्था बन जावे। यह भी स्वीकार न करें तो श्री भाई दयानिधि जी का भवन ले लेवें, ऐसी मेरी राय है। आयुर्वेद विश्वविद्यालय अवश्य बनावें। श्री संपादकजी महोदय, मैंने आपकी समालोचना नहीं की है। सही-सही लिखकर धनसंग्रह करने का मार्ग बताया है। मेरा केवल सुझाव है। हमारे योग्य जो कार्य हो हमें कहें, करने को हम सहर्ष तैयार हैं। जैसे भी हो, आयुर्वेद विश्वविद्यालय अवश्य बने, जिससे हमारे वैद्य समाज की प्रतिष्ठा हो और सरकार हमारी विद्यापीठ-परीक्षा को मान्यता प्रदान करे। ऐसी मेरी अभिलाषा है।

सत्यान्वेषण

वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह, रसायनाचार्य

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका के प्रधान सम्पादक श्री स्वामी चेतनानन्द चिदाकाशी का २० नवम्बर '५७ का एक गश्ती पत्र देखने का मुझे अवसर मिला। पहले तो मेरा यह विचार रहा कि ऐसे अनर्गल और निम्नस्तर के प्रचार पर कोई टीका-टिप्पणी करके उसको अनपेक्षित महत्त्व नहीं देना चाहिये और एक यथार्थ महत्त्वपूर्ण कार्य को वृथा ही विवाद का विषय नहीं बनाना चाहिये, परन्तु उक्त गश्ती पत्र के सम्बन्ध में मुझे अनेक मित्रों के पत्र मिले, जिनसे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये बाध्य हो गया कि उससे मेरे मित्र दुःखी और भ्रमपूर्ण हुए हैं। निश्चय ही मुझे अत्यन्त खेद है कि आयुर्वेद महासम्मेलन कार्यालय का एक अधिकार-सम्पन्न व्यक्ति ऐसी असत्य बातें लिख कर वैद्य-समाज को भ्रमित करने का दुष्प्रयत्न क्यों करता है?

उक्त परिपत्र का भावार्थ यह है कि संसद सदस्यों को आयुर्वेद के निकट लाने के हेतु नार्थ एवेन्यू एम० पी० क्लब में जो आयुर्वेदिक औषधालय स्थापित किया गया है––उसके इस रूप में आयोजन से आयुर्वेद महासम्मेलन की प्रतिष्ठा पर आक्षेप हुआ है और उसके लिए मैं तथा वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संचालक उत्तरदायी हैं।

प्रथम तो मैं वैद्य-समाज से यह विनम्र प्रार्थना करना चाहूँगा कि जो सज्जन भी इस प्रसङ्ग में जाँच और जानकारी करना चाहें वे कृपा कर एम० पी० क्लब के अधिकारियों से वार्तालाप कर लें ताकि उन्हें वास्तविक सत्य का ज्ञान हो जाय। इसके अतिरिक्त इस विषय में थोड़ा-सा स्पष्टीकरण मैं करता हूँ।

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की प्रतिष्ठा की रक्षा करना और उसका गौरव बढ़ाना वैद्यमात्र का कर्त्तव्य है। परन्तु मिथ्या प्रचार के आधार पर गौरव कैसे बढ़ेगा, यह मैं नहीं समझ पाता। इस औषधालय-स्थापन के प्रसङ्ग में यह निवेदन है कि महासम्मेलन ने प्रस्ताव स्वीकृत किया और जो कमेटी बनाई उसमें मेरा नाम बिना मेरी स्वीकृति के रखा गया। गश्ती पत्र में लिखा गया है कि मेरी उपस्थिति में प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, परन्तु सत्य यह है कि मुझसे किसी ने नहीं पूछा कि तुम्हारा नाम होगा, इसीलिये मैंने उस कमेटी से त्याग-पत्र दिया।

संसद के माननीय सदस्यों को आयुर्वेद के विषय में व्यापक रूप से प्रभावित करने के लिये संसदीय क्षेत्र में एक सुव्यवस्थित आयुर्वेदिक औषधालय स्थापित करन के हेतु मैं बहुत दिनों से चेष्टा में था। समय-समय पर मित्रों से चर्चा करता रहता था। मेरा स्वयं का यही प्रयत्न था कि सभी आयुर्वेद औषधि-निर्माताओं के सहयोग से इस औषधालय का संचालन किया जाय। महासम्मेलन के तत्वावधान में यह आयोजन हो जाता तो मुझे हर्ष ही होता, परन्तु इस आशय के पत्र जब औषध-निर्माताओं को लिखे गये तो मुझे खेद है कि रसशाला औषधाश्रम गोंडल एवं ऊँझा फामसी के अतिरिक्त किसी ने सहयोग की रुचि न दिखाई। जो पत्रोत्तर आये उनमें कुछ ने लिखा कि हम एक बार औषध आदि की सहायता कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में एक फार्मेसी वाले बन्धु का जो उत्तर मुझे मिला उसका कुछ अंश यहाँ ज्यों-का-त्यों उद्धृत करता हूँ।

"आपकी योजना बहुत सुन्दर है। संसद-क्षेत्र में औषधालय के प्रबन्ध से हमारे लोकप्रिय संसद-सदस्यों पर आयुर्वेद का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ेगा और राजकीय क्षेत्र में आयुर्वेद का पक्ष प्रबल होगा। यह औषधालय बहुत साधन-सम्पन्न और विशाल पैमाने पर चलाया जाय तभी उसका अपेक्षित प्रभाव होगा। परन्तु महासम्मेलन के तत्वावधान में इस आयोजन का सफल होना संभव नहीं जान पड़ता। क्यों कि महासम्मेलन में निश्चय तो बड़े-बड़े होते हैं, परन्तु न जाने क्या बात है, कार्य यथार्थ हो नहीं पाते। ऐसे ही कई वर्ष पूर्व एक बार कांग्रेस क्षेत्र को आयुर्वेद के पक्ष में प्रभावित करने के लिए वर्धा में एक औषधालय संचालित करने का निश्चय महासम्मेलन में किया गया था। उस विषय में दो उद्धरण यहाँ उल्लेखनीय हैं। एक तो यह कि अपनी बङ्गाल-आसाम यात्रा का विवरण देते हुए पण्डित शिवशर्मा जी ने जनवरी '४१ की पत्रिका में पृष्ठ १७ पर

लिखा था : 'सबसे बड़ी और महत्त्वपूर्ण भेंट की, श्रीयुत रामनारायण शर्मा, अध्यक्ष बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन ने पत्रिका के पाठकों को याद होगा कि हम लोग वर्धा में गांधी जी के सिर के ऊपर एक महामण्डल का शाखा कार्यालय स्थायी रूप से इसलिए खोलना चाहते थे कि कुछ जोर कांग्रेस पर बराबर पड़ता रहे। कार्यकारिणी ने इसे पसन्द तो किया परन्तु खर्च का अन्दाज मँगवा कर कुछ इच्छा रह गई। खर्च के अन्दाज में एक भवन-निर्माण के लिए १३००) रुपया के लगभग और काम चलाने के लिए ७०) रुपये प्रतिमास के लगभग व्यय की आवश्यकता थी। हम लोगों की प्रार्थना और अपनी उदारता के फलस्वरूप श्री रामनारायणजी ने यह बोझ अपने सिर पर लेने की प्रतिज्ञा की। इस प्रतिज्ञा के फलस्वरूप १५००) रुपये केवल भवन-निर्माण के लिए उन्होंने डा० लक्ष्मीपति को भेज दिया है। राष्ट्रीय परिस्थिति सुधरते ही कार्य आरम्भ हो जायगा। अभी रुपया अलग बैंक में जमा करा दिया गया है। इस रुपये के अतिरिक्त कार्यालय और आयुर्वेदिक निःशुल्क औषधालय चलाने के लिए १२५) रुपये से १५०) रुपये माहवार तक निरन्तर कुछ वर्षों तक देने की प्रतिज्ञा भी श्री रामनारायण जी ने कर ली है। मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि इनकी प्रतिज्ञा भी एक बैंक ड्राफ्ट है, जब चाहें रुपया ले लें और इन्होंने जो कार्य किया है, वह इनकी योग्यता और स्वभाव के अनुरूप ही है।" फिर ३० वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन लखनऊ में प्रस्ताव संख्या ३ डाक्टर श्री लक्ष्मीपति जी द्वारा प्रस्तावित एवं कविराज मदनमोहन चोपड़ा द्वारा समर्थित हो कर निम्न प्रकार स्वीकार हुआ जो अप्रैल '४१ की महासम्मेलन पत्रिका में पृष्ठ २४४ पर मुद्रित है। 'वर्धा में महामण्डल का उप-कार्यालय-निर्माण करने के लिए तथा वहीं एक निःशुल्क आयुर्वेदीय औषधालय चलाने के लिए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन कलकत्ता के अध्यक्ष श्रीयुत पं० रामनारायण जी वैद्यराज ने १५००) रुपये एक बार में दिया है तथा कुछ वर्षों तक १२५) रुपये से १५०) रुपये तक मासिक सहायता देने का वचन दिया है। अतः यह सम्मेलन आवश्यक समझता है कि इस कार्य को महामण्डल के अधीन कर दिया जाय।" अब आप ही विचार कीजिए कि अनुमान से अधिक धन जब एक आयुर्वेद-प्रेमी ने महासम्मेलन को दिया फिर भी महासम्मेलन वह कार्य न कर सका। आज तक वर्धा में वह प्रतिज्ञात औषधालय न खुला। ऐसी दशा में इस योजना को भी यदि वास्तव में सफलता के साथ चलाना है तो महासम्मेलन के चक्कर में मत डालिए। बल्कि कुछ औषध-निर्माताओं के सहयोग से स्वतन्त्र प्रबन्ध में ही उसके संचालन की व्यवस्था कीजिए।"

इस पत्र में जिस तथ्य की ओर संकेत किया गया है, उसकी चर्चा मैंने किसी से नहीं की और अपने प्रयत्न को जारी रखा। परन्तु पाठक विचार करें कि हमारे कार्यकर्त्ताओं की दुःखान्त अकर्मण्यता का यह कितना बड़ा ज्वलन्त उदाहरण है। एक व्यक्ति अपनी उदारता से हमें हमारे स्वयं के अनुमान से अधिक धन देता है, इस पर भी हम अपने महासम्मेलन द्वारा प्रतिज्ञात कार्य नहीं करते। जो भी सुनेगा, वह हमारे लिए क्या कहेगा? फिर भी हम अपने कार्यों पर मिथ्याभिमान करें तो यह हमारे लिए हठधर्मी की बात है। नार्थ एवेन्यू के इस औषधालय का कार्य महासम्मेलन के कार्यकर्त्ताओं द्वारा किस सीमा तक सफलता प्राप्त करता, यह मैं नहीं कह सकता, परन्तु जब उस ओर से सफलता के कोई लक्षण नहीं दिखाई दिए तो इस महत्वपूर्ण कार्य को लम्बी प्रतीक्षा के फेर में डालना मुझे उचित प्रतीत नहीं हुआ।

महासम्मेलन ने जो प्रस्ताव स्वीकार किया उसके लिए केवल सौ रुपया व्यय करना निश्चय किया। इतने में न तो औषधालय का फरनीचर बन सकता था, न कोई सामान आ सकता था। कुछ फार्मेसीवाले जो एक बार औषध देकर सहायता करना चाहते थे, उससे भी कितने दिनों यह औषधालय चल सकता था, यह बात विचारणीय है। जब मैंने श्री चिदाकाशी जी से कहा कि वे औषधालय के लिए एक सुयोग्य चिकित्सक का प्रबन्ध कर दें तो जिन सज्जन को उन्होंने नियुक्त किया उनकी आर्थिक स्थिति इतनी अनुकूल नहीं थी कि वे औषधालय में प्रातःकाल का भी समय निःशुल्क दे सकें। ऐसी दशा में पर्याप्त औषधें नहीं, फरनीचर नहीं, सामान नहीं, चिकित्सक नहीं, कम्पाउण्डर नहीं—फिर कैसे औषधालय का संचालन हो जायगा? इस चिंता ने मुझे घोर असमंजस में डाल दिया। इधर नार्थ एवेन्यू एम० पी० क्लब वालों ने आग्रह किया कि आप औषधालय का आयोजन शीघ्रातिशीघ्र कर लें अन्यथा स्थान के उपयोग के विषय में अन्य मत उठ सकता है।

स्वनामधन्य श्री वारलिंगे जी से, श्री के० दासप्पा और क्लब के अन्य अधिकारियों ने कहा कि जो फार्मेसीवाले इस कार्य को करना चाहें उनका लिखित आश्वासन मिलना चाहिये। परन्तु जहाँ तक मुझे पता है कोई लिखित आश्वासन नहीं मिला। इस विषम स्थिति में मैं क्या कर सकता था, वैद्यगण स्वयं विचार करें। इसी समय अनेक संसद-सदस्यों ने यह भी राय दी कि भिन्न-भिन्न फार्मेसी की औषधों और प्रबन्ध से अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा, इसलिए एक की ही व्यवस्था होना उपयुक्त होगा। कार्य की आवश्यकता एवं महत्त्व को अनुभव करते हुए मैंने श्री वैद्य रामनारायण जी से इस विषय में सहायता करने का निवेदन किया और उनसे आग्रह किया कि आयुर्वेद के व्यापक प्रचार तथा संसद-सदस्यों की सेवा के द्वारा क्लब में आयुर्वेद का प्रवेश कराने के लिए यह अति उपयुक्त समय है, आप इस कार्य में मेरी सहायता कीजिये। श्री वैद्य रामनारायण जी ने कृपा करके हमारे आग्रह को स्वीकार किया और तुरन्त ही लगभग ६०००) रुपये फरनीचर, सामान एवं उद्‌घाटन आदि में व्यय करके बहुत ही सुव्यवस्थित और स्थान के अनुकूल औषधालय का आयोजन कर दिया। तब से निरन्तर औषधि, उपकरणों, चिकित्सक, कम्पाउण्डरों आदि के वेतन के रूप में प्राय: ६००) रुपये मासिक इस औषधालय पर श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० व्यय कर रहा है। श्री रामनारायण जी की इस सहायता के लिए मैं अत्यधिक आभारी हूँ और यह निस्सन्देह कह सकता हूँ कि यदि वे ऐन मौके पर सहायता न करते तो आयुर्वेद की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगता। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि विशुद्ध आयुर्वेद-हित की भावना से किये गये इस उदार परोपकार के कार्य के लिये यदि वैद्य-समाज श्री रामनारायण जी का धन्यवाद नहीं करता तो प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति इसे हमारी अक्षम्य कृतघ्नता ही कहेगा। कृतज्ञता के विपरीत यदि हमारे कुछ लोग इस विषय में अनर्गल प्रचार का अभद्र आचरण करते हैं तो वह उनकी कलुषित भावना का प्रतीक तो है ही, देखने वालों के लिये हमारा वह कलंक है कि अच्छे कार्यों में भी वैद्यगण योग देने के स्थान पर लड़ना ही जानते हैं। समाज के अन्य प्रतिष्ठित लोग जब हमारी इस वृत्ति को देखते हैं तो हमें कितना लाञ्छित करते हैं, इस बात की कल्पना विचारवान कर सकते हैं।

यह नासमझी की बात है कि उस औषधालय के द्वारा किसी फार्मेसी का कोई प्रचार होता है। औषधालय का सम्पूर्ण प्रकार का व्यय वैद्य रामनारायण जी उठा रहे हैं, परन्तु उसका प्रबन्ध और व्यवस्था एक सुगठित समिति के अधिकार में हैं जिसके आठ सदस्यों में बैद्यनाथ के केवल एक प्रतिनिधि हैं। ऐसी दशा में किसी के एकाधिपत्य का लांछन करना अदूरदर्शिता की बात है। जब से यह औषधालय चला है तब से संसद-क्षेत्र में आयुर्वेद के प्रति कुछ वातावरण का निर्माण हुआ है। जो सज्जन चाहें वे वस्तुस्थिति की जाँच करके देखें कि इस प्रयत्न से किसी व्यक्ति या संस्थान का प्रचार हो रहा है या आयुर्वेद का। औषधालय निरन्तर प्रगति कर रहा है, सुयोग्य कार्यकर्त्ताओं एवं श्रेष्ठ औषधों से लोग लाभान्वित हो रहे हैं। श्री रामनारायण जी बड़ी सुरुचि के साथ औषधालय के उत्तरोत्तर विकास करने की इच्छा रखते हैं। उनके इस यथार्थ क्रियात्मक आयुर्वेद सेवा-कार्य को विवेक दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

अधिक न लिख कर मैं वैद्य-समाज से विनम्र निवेदन करूँगा कि वह इस प्रकार के अनर्गल प्रचार से भ्रान्त न हो और समाज में ऐसी घातक वृत्तियों के दमन में सचेष्ट हों। सच्चे कार्य करनेवालों के प्रति यदि दुर्भावनावश ऐसा उपेक्षा और लांछनापूर्ण व्यवहार किया जाता है तो हमारे समाज में कृतघ्नता का विष बढ़ेगा और कोई भी सभ्य व्यक्ति क्रियात्मक कार्य करने को आगे बढ़ने में संकोच करने लगेगा। यह दुर्गति आयुर्वेद के लिये महान घातक है। वैद्य-जगत् को सतर्क हो कर विचार करना चाहिये। साथ ही मेरा यह भी निवेदन है कि आयुर्वेद महासम्मेलन और स्वामी चेतनानन्द जी यदि आयुर्वेदिक औषधालय वास्तव में संचालित करना चाहते हैं तो संसद-सदस्यों के निवास क्षेत्र में ही साउथ एवेन्यू में एक ही प्रकार का औषधालय खोल कर दिखा दें। मैं प्रयत्न कर रहा हूँ कि कोई तैयार हो जावे तो वहाँ भी एक आयुर्वेदिक औषधालय खोल दिया जाय। भगवान करे उसका श्रेय भी श्री चेतनानन्द जी को मिले। स्वामी चेतनानन्द जी अपेक्षाकृत अधिक चतुर व्यक्ति हैं, उनके बहुत चेलाचेली समर्थ हैं। मेरी कामना है कि भगवान उन्हें बल दे और वे अपने शिष्यों से, आयुर्वेद जगत् से एवं अपने लक्ष्मी औषधालय से धन-साधन जुटा कर साउथ एवेन्यू में महासम्मेलन की ओर से एक औषधालय का श्रीगणेश कर दें तो मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हो जाऊँगा। स्वामीजी आगे आवें, अन्य फार्मेसीवाले भी सहयोग दें, इससे भी अच्छा एक औषधालय संचालित हो जाय तो मुझे प्रसन्नता होगी। मेरा खुला सहयोग रहेगा, क्योंकि उससे आयुर्वेद के गौरव-प्रचार में सहायता होगी।

अनीति चरम सीमा पर पहुँच गयी

वैद्य समाज के सम्मुख एक गम्भीर विचारणीय प्रश्न

अन्याय, अनीति, भ्रष्टाचार और संकीर्णता की हद हो गयी। सारा वैद्य-समाज यह सुनकर अवाक् रह गया कि अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थायी समिति व कार्यकारिणी समिति का सम्मिलिताधिवेशन गत् २५ मार्च को दिल्ली के बदले बम्बई में हुआ और उसने विद्यापीठ प्रधान के चुनाव सम्बन्धी सम्मेलन कार्यालय में आये हुए मतपत्र की गणना के पूर्व ही चुनाव को अवैध घोषित कर दिया। वैद्य-समाज को इस बात से और भी आश्चर्य हुआ कि इतने बड़े महत्वपूर्ण प्रश्न पर इतना बड़ा निश्चय तब कर लिया गया जब कि यह विषय विचार्य-विषयों की सूची तक में नहीं था। इतना ही नहीं, ४, ५ और ६ मई को दिल्ली में होने वाले महासम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन को आगामी सितम्बर-अक्टूबर तक के लिये स्थगित भी कर दिया गया। विधान, सामान्य शिष्टाचार, संस्था की प्रतिष्ठा और साधारण विवेक (Common Sense) को ताक पर रखकर ऐसा निर्णय इतनी शीघ्रता में क्यों कर लिया गया? इस प्रश्न पर विज्ञ वैद्य-समाज को विचार ही नहीं करना होगा, इसका ठोस उत्तर भी देना होगा।

बम्बई में स्थायी समिति के अधिवेशन को बुलाने का क्या अर्थ हो सकता है? न तो बम्बई भारतवर्ष का केन्द्र स्थल है, न वहां आगामी अधिवेशन होने जा रहा है और न ही सम्मेलनाध्यक्ष या स्वागत-मन्त्री का वहां निवास स्थान है। बम्बई में स्थायी समिति के अधिवेशन को बुलाने का अर्थ तो यही हो सकता है कि सम्मेलन के पदाधिकारियों की धांधलियों से ऊबकर वैद्य-समाज में जो नवीन चेतना और जागरण का महास्रोत फूट निकला है, उसे बलपूर्वक दबा दिया जाय। विद्यापीठ के अध्यक्ष के चुनाव में इस बार अभूतपूर्व उत्साह और अद्भुत लगन देखी गयी। ८० प्रतिशत से भी अधिक मतदाताओं ने मतदान में भाग लिया। यह महासम्मेलन के इतिहास में एक नयी घटना थी जो इस बात का स्पष्ट संकेत था कि भविष्य में क्या होने जा रहा है। फलतः वर्तमान पदाधिकारियों में घबराहट, बेचैनी और विवेकशून्यता का उत्पन्न होना बिल्कुल स्वाभाविक था। अतः स्वार्थपरायणता और अनियमितता का जो नग्न नृत्य उन्होंने बम्बई में किया है, वह सारे वैद्य-समाज की विद्या-बुद्धि को खुली चुनौती है। महासम्मेलन के ५० वर्ष के लम्बे इतिहास में आजतक कभी भी वैद्यसमाज को इतना मूर्ख और बेवकूफ समझने की धृष्टता किसी पदाधिकारी वर्ग ने नहीं की थी। हम इसका उत्तर क्या दें, कैसे दें?

हम सब मतदाताओं को मालूम है कि ८० प्रतिशत जो मतदान हुए थे, उनमें ७० प्रतिशत से भी अधिक मत विद्वत्ता, प्रतिष्ठा, ख्याति एवं सेवाओं में सर्वोत्कृष्ट, आयुर्वेद-जगत के सक्रिय एवं कर्मठ नेता, कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दासजी को प्राप्त हुए थे। अधिकारी वर्ग की बौखलाहट और घबराहट का यही कारण है। तो हमें एक बार फिर यह दिखला देना है कि वैद्यसमाज की आंखों में धूल झोंककर अपना उल्लू सीधा करने के दिन अब बीत गये। अब वैद्य-समाज जागरूक और सचेत होगया है और वह अब इन धांधलियों, स्वार्थपरताओं और अनीतियों का अन्त करने के लिये बद्धपरिकर है। अब पाप का घड़ा भर गया है और वह फूटने ही वाला है। हम मतदाताओं को यह पुनीत संकल्प कर लेना चाहिए कि हम पुनः अपना मत कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास जी को ही देंगे। कविराज उपेन्द्रनाथ दास जी को दिया गया हमारा मत धांधली के मुंह पर कड़ा तमाचा होगा, अनीति के क्रूर दांत पर निर्मम घूंसा होगा और होगा २० वर्ष से अवैधानिकतावाद की उपजी हुई लतिका पर तुषारपात।

हमारे सामने अभी जो सबसे बड़ा प्रश्न है, वह है, विद्यापीठ के केन्द्रीय विद्यालय की स्थापना। इस प्रश्न को महासम्मेलन के स्वार्थी पदाधिकारी वर्षों से टालते आ रहे हैं और विद्यापीठ की रकम का दुरुपयोग करते जा रहे हैं। महासम्मेलन और विद्यापीठ के गत् कई वर्षों के आय-व्यय के ब्यौरा का यदि आप ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो देखेंगे कि ११ हजार से भी अधिक रुपये विद्यापीठ के खाते से बिना स्वीकृति के ही ये पदाधिकारी निकालकर दूसरे फजूल के कामों में खर्च कर चुके हैं। इसको यदि रोका नहीं गया तो विद्यापीठ का सारा का सारा कोष ही समाप्त हो जायेगा। हमलोगों को इस बात से प्रसन्नता है कि **कविराज उपेन्द्रनाथ दासजी विद्यापीठ के विद्यालय की स्थापना के लिये कृत-संकल्प हैं** और उन सरीखा निस्स्वार्थी समाज-सेवक ही इस काम को पूरा कर सकता है। हमारे सामने जो विद्यापीठ की अध्यक्षता के लिये दूसरे उम्मीदवार सज्जन हैं, उनके घोषणा-पत्र में विद्यालय की स्थापना की चर्चा तक नहीं है। साथ ही उनके प्रमुख समर्थक, जो महासम्मेलन के पदाधिकारी भी हैं, इतने नीचे उतर आये हैं कि वे अपने उम्मीदवार के विषय में कितनी भ्रामक सूचना वैद्य-समाज को देते हैं।

कहा गया है कि विद्यापीठ के लिये उनके जो उम्मीदवार हैं, वह कलकत्ता आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसपल हैं। भला

इससे बढ़कर झूठी बात और क्या हो सकती है। कलकत्ता में किसी ने नहीं सुना कि इस नाम का कोई आयुर्वेद कालेज है। इस सम्बन्ध में "जेनरल कौन्सिल आफ स्टेट फैकल्टी आफ आयुर्वेदिक मेडिसिन्स, पश्चिम बंगाल" से जो पत्र 'सचित्र आयुर्वेद'-सम्पादक को मिला है, वह इस मिथ्या प्रचार का भंडाफोड़ कर देता है। वह पत्र इस प्रकार है :—

GENERAL COUNCIL & STATE FACULTY OF AYURVEDIC MEDICINE : West Bengal.
8, Lyons Range (2nd floor) CALCUTTA-1

To The Editor,
Sachitra Ayurved, 1, Gupta Lane, Calcutta.

Dear Sir,

With reference to your verbal enquiry regarding affiliated Ayurvedic Institutions (College & Tols) in West Bengal, this is to inform you that the number of such institutions are six in West Bengal. These are :

COLLEGES :	PRINCIPALS :
1. Jamini Bhusan Ashtang Ayurved Vidyalaya, 170, Raja Dinendra St., Calcutta.	Kj. Manindra Lal Das Gupta, M. A., M. B., Kaviratna.
2. Shyamadas Vaidyashastrapith, 294/3/1, Upper Circular Rd. Calcutta.	Kj. Vijoykali Bhattacharji, M. A.
3. Vishwanath Ayurved Mahavidyalaya, 94, Grey Street, Calcutta.	Kj. Sachindranath Gupta, M. A.
TOLS :	**PRINCIPAL TEACHERS :**
4. Ayurvediya Pratisthan, 123, Harish Mukherji Rd., Calcutta.	Kj. Shib Ranjan Sen, Vaidyashiromani.
5. Vaidyak Pathshala, P. O Contai, Dist. Midnapore.	Kj. Raghunath Maity
6, Nabadwip Ayurved Mahavidyalaya, P. O. Nabadwip, Dist. Nadia.	Kj. Sukumar Bhattacharji.

This Faculty is not aware of the existence of any other College and Tol in West Bengal.

Yours faithfully,
J. C. Basu
REGISTRAR.

यामिनीभूषण अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय एवं आयुर्वेदीय आरोग्यशाला के प्रिन्सिपल श्री मणिन्द्रलाल दास गुप्ता से जब पूछा गया तो उन्होंने भी इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया। श्री गुप्ता ने ३-४-५८ को जो पत्र लिखा है उसका फोटो हम यहाँ इसलिए दे रहे हैं ताकि वैद्य समाज सत्यासत्य का निर्णय स्वयम् कर लें।

ऐसी एक नहीं अनेक अनर्गल बातें अपने उम्मीदवार के विषय में कहकर स्वयम्भू नेतागण वैद्यसमाज की आंखों में धूल झोंकने की चेष्टा कर रहे हैं। यह भी कहा गया है, कहा क्या गया है लिखकर पर्चे बांटे गये हैं कि दूसरे उम्मीदवार, श्री प्रभाकर चटर्जी, परम श्रद्धास्पद योगीराज रामकृष्ण परमहंस के प्रपौत्र हैं। सभी जानते हैं कि रामकृष्ण परमहंस को कोई सन्तान नहीं थी, फिर ये प्रपौत्र कहां से निकल आये? चुनाव-प्रचार इससे अधिक गन्दा और क्या हो सकता है? किन्तु अब हमारी आंखें खुल चुकी हैं। हम अब अपना मार्ग साफ-साफ देख रहे हैं। हमें अब उस पथ पर निर्भय होकर आगे बढ़ने से संसार की कोई भी मायाविनी शक्ति नहीं रोक सकती। हम विद्यापीठ का एवं महासम्मेलन का कायाकल्प करेंगे। हम महासम्मेलन में स्वस्थ वाता-वरण उत्पन्न करने के लिये निरन्तर प्रयत्न करेंगे और

JAMINIBHUSHAN
ASHTANGA AYURVEDA VIDYALAYA
AND
AYURVEDIYA AROGYASALA
Established 1322 B. S.

TELEPHONE { GENERAL HOSP: B. B. 2337 / COLLEGE B. B. 5268 / T. B HOSP. DUM-DUM 201

170-172, RAJA DINENDRA STREET.

Ref. Col-0458/

Calcutta, 5th April, 1958.

The Editor,
Sachitra Ayurveda,
1 Gupta Lane,
Calcutta-6.

Dear Sir,

I am in receipt of your letter dated 3.4.58 enquiring about the existence of Calcutta Ayurvedic College in Calcutta. So far as I am aware, there is no such College in Calcutta as mentioned in your letter nor is the College affiliated to the General Council & State Faculty of Ayurvedic Medicine, West Bengal, where the Kaviraj Pravakar Chatterjee is the Principal of the said College. At present there are three Ayurvedic Colleges in Calcutta viz:-

(1) Jaminibhushan Ashtanga Ayurved Vidyalaya
(2) Shyamadas Vaidya Sashtrapith
(3) Viswanath Ayurveda Mahavidyalaya.

Hope the above information will enlighten you about your querry in the letter addressed to me.

Yours faithfully,

[signature]
Principal.

तब तक दम नहीं लेंगे, जब तक कि महासम्मेलन से स्वार्थियों, स्वयम्भू नेताओं और कुचक्रियों का पूर्णतया अन्त न हो जाय। हम अपने इस निश्चय में, इस संकल्प में कितने दृढ़ और अडिग हैं, इसका सबूत आप अपना मत श्री उपेन्द्रनाथ दास जी को देकर दें, यही आपसे नम्र निवेदन है।

निवेदक :

मणिराम शर्मा (रतनगढ़), मणीन्द्रलास दास गुप्त, प्रिंसिपल, अष्टाङ्ग आयुर्वेदिक कालेज, कलकत्ता, अमरभूषण राय, कलकत्ता, रामचन्द्र मल्लिक, कलकत्ता, कविराज सुखराम प्रसाद, पटना, त्रिपाठी कमलाप्रसादमणि, पटना, दुर्गादत्त शास्त्री, बाराणसी।

द्रव्यगुणशास्त्र में अनुसन्धान : एक विचारणा

वैद्य रणजित राय

सचित्र आयुर्वेद में कुछ मास पूर्व मैंने लिखा था कि द्रव्यगुण-रसशास्त्र विषय आयुर्वेद के आठ अङ्गों में मुख्यतया **कायचिकित्सा का उपाङ्गभूत** है। वहीं यह भी कहा गया था कि इस अङ्ग का एक अन्य उपाङ्ग **भैषज्य-कल्प** नाम से इन दिनों प्रवृत्त हुआ है। वस्तुत: द्रव्यगुण-रसशास्त्र के पाठचक्रम में आरम्भ में ही **'आयुर्वेद में द्रव्यगुण-विज्ञान तथा रसशास्त्र का स्थान'** इस शीर्षक के नीचे इस वस्तु का भी उल्लेख किया जाना चाहिए कि यह प्रधानतया कायचिकित्सा का अङ्ग है। आज इसी विषय से संबद्ध एक अन्य वस्तु पर नम्रमति से विचार प्रस्तुत करता हूँ।

विचारणा आरम्भ हुई

बड़ौदा की **महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी** के मेडीकल कॉलेज के अन्तर्गत आयुर्वेद-विषयक अन्वेषण करने के लिए **सेठ उजमशी पीताम्बरदास आयुर्वेदिक रिसर्च यूनिट** नामक एक संस्था है। युनिवर्सिटी के अतिरिक्त बम्बई राज्य भी इसे पर्याप्त आर्थिक सहाय्य देता है। इस संस्था के अध्यक्ष हैं इसी मेडीकल कॉलेज के फार्मेकॉलॉजी विभाग के प्रोफेसर **डॉ० गोपाल के० करन्दीकर** एम. बी. बी. एस. (बंबई), एम. एस., पी-एच. डी. (येल)। सचित्र आयुर्वेद के सुविदित **वैद्य नागरदास पाठक** आयुर्वेदाचार्य इस संस्था में सीनीअर वैद्य हैं। संस्था को सलाह देने के लिए प्रतिष्ठित वैद्यों, डॉक्टरों और व्यवस्था-कुशलों की एक समिति है। हाल में ही संस्था के बाह्य रुग्णालय का उद्घाटन बंबई राज्य के स्वास्थ्य-मन्त्री **माननीय कन्नमवार जी** ने किया था। इस अवसर पर एक संभाषा रखी गयी थी—जिस में विचारणीय विषय था : आयुर्वेद में अनिर्दिष्ट द्रव्यों के रस-गुण-वीर्य-विपाक-प्रभाव का विनिश्चय आयुर्वेदीय तथा अर्वाचीन पद्धति से कैसे किया जा सकता है। आयुर्वेद के अन्य क्षेत्रों में भी इस विषय पर विचार होता ही है। एतद्विषयक कुछ मन्तव्य यहाँ उपनिबद्ध करता हूँ।

द्रव्य मात्र की औषध-रूपता

सभी संहिताओं में द्रव्यगुण विज्ञान के प्रकरण में यह सिद्धान्त स्थापित किया गया है कि **द्रव्यमात्र पञ्चभूतमय** है। उधर, **शारीर द्रव्य भी पञ्चमहाभूतमय हैं**। परिणामतया, जिस महाभूत के आधिक्य वाले शारीर द्रव्य का कभी क्षय हो तो बाह्य सृष्टि से उसी महाभूत के आधिक्य वाले द्रव्य का यथावत् उपयोग कर उस शारीर द्रव्य को समावस्था में लाया जा सकता है तथा उससे उत्पन्न हुए रोग का निर्मूलन किया जा सकता है। इसी प्रकार किसी शारीर द्रव्य की वृद्धि हुई तो ऐसे द्रव्यों का सेवन युक्तिसंगत होता है जिसमें उस महाभूत का अंश अल्प हो जिसकी अधिकता वृद्धि को प्राप्त हुए शारीर दोष आदि में है। स्थिति यह होने से सृष्टिगत **द्रव्यमात्र अपनी पाञ्चभौतिक रचना के कारण शारीर की किसी न किसी विकृति में औषधतया उपयोग में आ ही सकता है**। अन्त में वृद्धत्रयी में यह सूत्र दिया गया है कि : जगत् में कोई द्रव्य ऐसा नहीं जो अनौषध हो—जिसका औषधतया उपयोग न हो सके। गुरुकुल छोड़ने के पूर्व आचार्य ने **जीवक की परीक्षा** जिस पद्धति से ली थी, वह भी इस मन्तव्य की पोषक है। आचार्य ने कहा था, जाओ, कुल के चारों ओर चार-चार (या ऐसा ही कुछ) योजन भूमि में घूम आओ। इस भूमि में कोई द्रव्य ऐसा दीखे जिसका उपयोग तुमको विदित न हो तो वह ले आओ। जीवक पर्यटन कर आया और उसने निवेदन किया, आचार्यदेव, कोई द्रव्य नहीं मिला जिसका उपयोग मुझे विदित न हो। आचार्य ने कहा, बस तो तुम्हारी विद्या समाप्त हो गयी। अब घर जाकर व्यवसाय आरम्भ करो।

द्रव्यमात्र का ज्ञान और उपयोग—प्राचीन प्रथा

इस कथा से यह तो विदित होता ही है कि, प्राचीन काल में यह प्रवृत्ति रही होगी कि जो भी द्रव्य उपलब्ध हो उस का उपयोग जानना ही चाहिए और यह उपयोग आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार रस-गुण-वीर्य-विपाक-ज्ञान पुर:सर ही होता होगा, इसमें संशय को अवकाश नहीं। **किं बहुना,**

आज हमारे समक्ष इस प्रकार के प्रश्न उपस्थित होते हैं कि, किसी प्रथमोपलब्ध द्रव्य के रस-गुण-वीर्य-विपाक का ज्ञान कैसे हो। पुराकाल में यह स्थिति न रही होगी। जैसा कि हम आगे देखेंगे, आज भी थोड़ा विचार करें तो वैद्यों और वैद्येतरों के समक्ष **यह प्रश्न उत्तरित प्राय पड़ा है।** आज भी हम कई नवीन द्रव्यों को आत्मसात् कर चुके हैं, पर उस ओर हमारा ध्यान किसी ने आकृष्ट नहीं किया, जिससे हम इस प्रश्न को साध्य मानने को तथा ज्ञातपूर्व इन नवीन द्रव्यों के समान ही अन्य द्रव्यों का भी विचार करने की दिशा में प्रवृत्त हों। तथापि, यह प्रश्न उपस्थित ही है तो इस पर विचार करना भी आपतित है।

जीवक के काल में अध्यापन की जो परिपाटी थी, उसका स्वरूप निश्चित ही यह रहा होगा कि आचार्य मूल स्थान से वन्य औषध को ला-लाकर उसके उपयोगादि का ज्ञान कराते होंगे, किंवा पर्यटनपूर्वक अध्यापन कराते होंगे। **पश्चात् काल में** यह पद्धति लुप्त हो गयी होगी और केवल **परिगणित द्रव्यों का परिज्ञान ही आवश्यक माना जाता होगा।** अतएव धन्वन्तरि-निघण्टुकार ने द्वितीय ही पद्यमें कहा है—**नास्ति संख्या द्रव्याभिधानेषु तथौषधीषु** : द्रव्यों की गणना ही शक्य नहीं है। जैसे कूप से जिसे जितने जल की आवश्यकता होती है उतना ही ले लेता है और अपना कार्य संपादन करता है वैसे द्रव्यगुणशास्त्र तो समुद्र है। उसमें से कुछ ही औषध लेकर उनका गुण-धर्म बताया जाता है।—
प्रयोजनं यस्य तु यावदेव तावत् स गृह्णाति यथाऽम्बु कूपात्।
तथा निघण्टाम्बुनिधेरनन्ताद् गृह्णाम्यहं किंचिदिहैकदेशम्।

प्राणियों से औषध-ज्ञान

यह एकांश से काम चलाने की नीति आज किस कक्षा तक पहुँच चुकी है और उसका क्या परिणाम हुआ है यह सर्वविदित है। अच्छे से अच्छे वैद्यों और अध्यापकों का भी **औषध-ज्ञान अत्यन्त परिमित** होता है। अपने घर के चारों ओर दो-चार फुट पर लगी औषधियों का भी नाम तथा उपयोग हम नहीं जानते। जीवक के काल की स्थिति से इसकी तुलना कीजिए। ज्ञान की कक्षा हीनता को पहुँच गयी है। इतना ही नहीं, हमारी जिज्ञासा और उत्कण्ठा भी नष्ट हो चुकी हैं, अधिक खेद की बात तो यह है। जीवक के समय और उससे पूर्व वैदिक काल में स्थिति **इससे सर्वथा भिन्न रही होगी। गुरु दत्तात्रेय ने पशु-**पक्षियों से भी ज्ञान उपार्जन किया। **वेदकालिक वैद्य भी प्राणियों की चर्या का अनुसरण कर औषधियों का उपयोग जानते थे।** पशु-पक्षी किस वनौषधि का उपयोग किस रोग में करते हैं यह जानने से उस की क्रिया (उपयोग) तो ज्ञात हो ही जाती थी। साथ ही यह ज्ञात होने से कि वह औषध सविष नहीं हो सकती उसके रस-गुण-वीर्य-विपाक के ज्ञान के लिए तथा उसके द्वारा उसकी क्रिया का प्रकार जानने के लिए मार्ग निर्भय हो जाता। अथर्ववेद के नीचे दिए मन्त्रों में शूकर, नकुल (नेवला), सर्प, गन्धर्व (पर्वतवासी मूलजाति विशेष ?), अङ्ग-रस (प्रोटोप्लाज्म) को पुष्ट और अदुष्ट करनेवाली दिव्य औषधों का ज्ञान रखनेवाले गरुड़, रघट (?), पक्षी, हंस, पतङ्ग, मृग, गाय, बकरी, मेष—इन सब को जिन-जिन औषधों का ज्ञान हो उसके ज्ञान तथा उपयोग की बात कही है—

वराहो वेद वीरुधं नकुलो वेद भेषजीम्।
सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे॥
याः सुपर्णा आङ्गिरसी दिव्या या रघटो विदुः।
वयांसि हंसा या विदुर्यश्च सर्वे पतत्रिणः।
मृगा या विदुरोषधीस्ता अस्मा अवसे हुवे॥
यावतीनामोषधीनां गावः प्राश्नन्त्यघ्नया यावतीनामजावयः तावतीस्तुभ्यमोषधीः शर्म यच्छन्त्वामृताः॥
अथर्ववेद काण्ड ८। सू. ७

इसी औदार्य का अनुसरण करते हुए चरक ने **विश्वमात्र को गुरु मान कर शत्रु से भी हितकर वस्तु ग्रहण करने का उपदेश किया है** (देखिए च. वि. ८।१४)। इस वचन में आया **कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमतामाचार्यः** यह वाक्यांश वैद्य ही नहीं, पुरुषमात्र के हृदय में खचित रहना चाहिए।

औषध-ज्ञान का अनुक्रम

धन्वन्तरि-निघण्टु में वन्य अपरिज्ञात औषधों के अनुशीलन की सामान्य पद्धति यह बताई है कि प्रथम किरात (भील), गोपाल, अजपाल, अविपाल, तपस्वी आदि वनचरों, मूल जाति (आदिवासी) किंवा अन्य जानकारों से वनौषधियों का प्रमाण (ऊँचाई; वह पौधा होता है या पेड़ इत्यादि के रूप में), वर्ण, आकृति, नाम तथा जाति (?) जानना चाहिए। पश्चात् वैद्य को शास्त्र की सहायता तथा अपनी बुद्धि के द्वारा, और जो सब से अधिक महत्त्व की बात है वह यह कि, उन वनौषधियों का **प्रयोग करके द्रव्य, रस, गुण, विपाक, वीर्य और प्रभाव की निश्चिति करे।** देखिए :

किरात गोपालक तापसाद्या-
वनेचरास्तत्कुशलास्तथाऽन्ये ।
विदन्ति नानाविधभेषजानां
प्रमाणवर्णाकृतिनामजातीः ।।
तेभ्यः सकाशादुपलभ्य वैद्यः
पश्चाच्च शास्त्रेषु विमृश्य बुद्धया ।
विकल्पयेद् द्रव्यरसप्रभावान्
विपाकवीर्याणि तथा प्रयोगात् ।।

गोपालास्तापसा व्याधा ये चान्ये वनचारिणः ।
मूलजातिश्च ये तेभ्यो भेषजव्यक्तिरिष्यते ।।

राजनिघण्टुकार ने आभीर (अहीर), गोपाल आदि से रसादि के ज्ञान का भी उपदेश किया है ।—

आभीर गोपाल पुलिन्दतापसाः
पान्थास्तथाऽन्येऽपि च वन्यपारगाः ।
प्रतीत्य तेऽभ्यो विविधौषधाभिधा-
रसादि लक्ष्माणि ततः प्रचक्ष्महे ।।

निघण्टुकार यहाँ स्पष्ट कह रहे हैं कि हमने नाम, रस आदि लक्षणों का ज्ञान आभीर, गोपाल आदि से प्राप्त किया है। उनसे ज्ञान उपलब्ध करके हम यह ग्रन्थ बना रहे हैं। पाठान्तर में वैद्यों को इन व्यक्तियों से औषध के गुणों का ज्ञान प्राप्त कर प्रयोग करने का उपदेश किया गया है। च. सू. १।१२० में चरक ने भी औषधों के नाम-रूप का ज्ञान आभीर (अजप) आदि से प्राप्त करने का उपदेश दिया है ।

वनेचरों से औषधज्ञान की ऐतिहासिकता

वनेचरों से वनौषधियों के नाम, रूप तथा योग (प्रयोग) के ज्ञान की परिपाटी इतिहास-सिद्ध है। **सिनकोना** का परिचय वनेचरों से ही संस्कृत समाज को हुआ, जिससे अन्त में क्वीनाइन निकाली गयी। **तमाखू** का भी यही इतिहास है। उदर-विकृतियों में इसका उपयोग पीछे से हो गया। **सप्तपर्ण** किरातों से ही विदेशों में जाना गया। चिरायते का **किराततिक्ता** नाम कदाचित् इसका ज्ञान किरातों से होने का ही द्योतक है।

औषधज्ञान में बॉटेनी का स्थान

प्रायः सभी प्राचीन ग्रन्थों में वनौषधियों की व्यक्ति (आइडेण्टिफिकेशन) वनेचरों से करने का विधान है। वस्तुतः वनौषधियों के ज्ञान का यही उपाय है। इस ओर आयुर्वेद के शिक्षणकारों का लक्ष्य मैं सविशेष आकृष्ट करना चाहता हूँ। चेतन-अचेतन किसी भी **वस्तु के परिज्ञान का सर्वोत्तम प्रकार उसका भूयोदर्शन** (बार-बार देखना) ही है। हम अपने स्वजन-परिजन, अपनी गाय, अपने कुत्ते आदि को पहचानते हैं। उसमें उसका जीवविद्या-सम्बन्धी ज्ञान कारणभूत नहीं है। परोक्ष में किसी को उनका परिचय कराना हो तो कोई लक्षण बताना भी दुष्कर होता है। तथापि, सामने आते ही हम उन्हें पहिचान सकते हैं। इसका कारण यही है कि भूयोदर्शन से उनकी आकृति हमारे मन में बैठ गयी है। इसी प्रकार वनौषधियों का परिज्ञान भी भूयोदर्शन की पद्धति से ही करना - कराना चाहिए। कई विद्वान् इसके लिए वर्तमान उद्भिद्विद्या (बॉटेनी) का आयुर्वेद महाविद्यालयों में पढ़ाया जाना अनिवार्य बताते हैं। निघण्टु के ग्रन्थों में भले वनौषधियों का वैज्ञानिक वर्णन रहे, परन्तु उसका विधिवत् अध्ययन-अध्यापन और परीक्षा का भार भी विद्यार्थी पर रहे यह मुझे बलात्कार लगता है। जैसे हम आम, केला, टमाटर, मिर्ची, जामुन आदि से भूयोदर्शन के कारण ही परिचित हैं, वनौषधियों का परिचय भी हमें उसी मार्ग से प्राप्त करना तथा कराना चाहिए।

औषधों का वर्गीकरण आयुर्वेदिक हो

प्रसंगवश और एक वस्तु लिख दूं। वनौषधियों का वर्गीकरण भी कई महानुभाव आधुनिक उद्भिद्विद्या के अनुसार करना योग्य समझते हैं। मुझे वह भी अयुक्त-सा लगता है। द्रव्यगुण, रसशास्त्र एवं अन्य **सभी विषयों का उपयोग अन्त में रोगों की चिकित्सा** में होनेवाला है। अतः यह अब ठीक समझा जाने लगा है कि द्रव्यगुण-रसशास्त्रोक्त किसी द्रव्य के रूक्ष, शीत, आदि गुण एवं स्तम्भक, ह्लादक आदि कर्म बताकर ही संतोष नहीं मानना चाहिए, किन्तु प्रारम्भ से ही बताना चाहिए कि जिस दोष या रोग पर अमुक द्रव्य कोई क्रिया करता है उसने क्या विकृति किस प्रकार शरीर में उत्पन्न की थी (संप्राप्ति) और उस विकृति पर किस गुणके द्वारा क्रिया कर क्या परिवर्तन शरीर में या शरीरावयव में किए, जिससे विकृति की मूलभूत संप्राति का भङ्ग होने से या रोगारम्भक दोष पर अमुक प्रकार की क्रिया होने से वह रोग निर्मूल हो गया। इस **उपयोगितामूलक (एप्लाइड) अध्यापन-शैली** से ही आयुर्वेद के अधिक निकट

हम विद्यार्थी को ले जा सकते हैं, जिससे वह स्वयं भी आयुर्वेद के मूल को समझने में समर्थ हो सकता है।

इस दृष्टि से द्रव्यगुणविज्ञान को भी अधिक उपयोगी बनाने के लिए उसका वर्गीकरण उद्भिद्विद्या के अनुसार न रखकर **दोष-संशमन आदि दृष्टियों से** प्राचीनों ने जैसा विभाजन किया है वैसा ही रखना श्रेयस्कर है। विद्वज्जन विचार कर योग्य निर्णय करें।

आयुर्वेद के पुनरुज्जीवन में आदिवासियों का उपयोग

इस स्थल पर थोड़ा अधिक रुक कर अन्य एक वस्तु का उल्लेख करना उचित समझता हूँ। धन्वन्तरि-निघण्टु के ऊपर धृत वचनों में जिन जनों से वनौषधियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए उनमें एक **मूलजाति** है। मैं समझता हूँ यह नाम आज जिन्हें आदिवासी कहते हैं उनके लिए है। सो स्वीकार हो तो आदिवासी शब्द के स्थान पर प्राचीन मूलजाति शब्द को प्रचार में लाना चाहिए।

दूसरी बात। आयुर्वेद के पुनरुज्जीवन के लिए पूर्वोक्त निघण्टुकारों द्वारा दर्शित मार्ग से फिर जाने की आवश्यकता एक प्रकार से है। **परम्परा विच्छिन्न हो जाने से आयुर्वेद संपूर्ण स्वरूप में हमारे पास आया नहीं है। देश-विदेश में यत्र-तत्र विकीर्ण ज्ञान को गुम्फित कर पुनः विराट आयुर्वेद-पुरुष के शरीर का निर्माण हमें करना होगा।** इस पद्धति का अनुसरण करते हुए जिन जनों के पास हमें पहुँचना है उनमें मूलजाति भी एक है। मूलजाति अथवा आदिवासी चिरकाल से तत्-तत् वनौषधि का उपयोग तत्-तत् रोग में करते आ रहे हैं। इन में कई वनौषधियाँ वैद्यों को विदित हैं, परन्तु उन का कुछ भिन्न प्रयोग मूलजातियों में होता है। कई वनौषधियाँ तथा उनका उपयोग वैद्यों में भी प्रचलित नहीं है। इन सब वनौषधियों के प्राकृत नाम, रूप, उपयोग आदि का संकलन होना रोगपीड़ित मानवकुल के हित की दृष्टि से बहुत ही कार्यसाधक हो सकता है।

उद्यानों को आयुर्वेदीय स्वरूप-दान

एक और दृष्टि से भी औषधभूत या औषधरूपेण अज्ञात वन्य उद्भिदों के परिज्ञान का उपयोग हो सकता है। उद्यान (गार्डन) तथा उपवन (नेशनल पार्क) की कला भारत में पहले भी थी। अब उस का सविशेष विकास हो रहा है। प्रायः भारतीय और वैदेशिक द्रव्यों का इस कला में उपयोग किया जाता है। मैं समझता हूँ, वन-उपवन में हमारी सुविदित, अल्पविदित, अविदित, औषध-तया ज्ञात-अज्ञात नाना उद्भिद् द्रव्य (वनस्पतियाँ) ऐसी हो सकती हैं—हैं—जिन को उद्यान-कला के परिवर्धन के कार्य में हम अपना सकते हैं। शेष, हमारे इस कला के निष्णात अभी तो **विदेश की वनस्पतियों से ही अपनी कला की उपासना** कर रहे हैं। कौन नहीं जानता, इन वनस्पतियों में प्रायः गन्ध नहीं होती—वातावरण की शुद्धि का कोई कार्य इन से होता नहीं; साथ ही इन का औषधीय उपयोग भी कुछ होता नहीं। इनकी अपेक्षया सुन्दर एवं उपयोगी आयुर्वेदीय तथा भारतीय वनस्पतियों को घर, मार्ग, उद्यान तथा उपवन की शोभा के लिए लगाना **उपयोगिता की दृष्टि भी अधिक उपादेय** हो सकता है। भारत-सरकार के भारतीय चिकित्सापद्धति विषयक सलाहकार आदरणीय **कविराज प्रतापसिंहजी** ने इस दिशामें प्रयत्न जारी किए हैं। ऐसा एक प्रयत्न कुछ ही दिन पूर्व उनके द्वारा किया गया, मुझे विदित होने से, उदाहरणतया प्रस्तुत कर सकता हूँ। जिला सूरत की बलसाड तहसील में **अतुल प्रोडक्ट्स** नाम से अर्वाचीन औषध-द्रव्य बनाने का बड़ा कारखाना है। उसके समीप ही दो अन्य भी कारखाने हैं। इनके पास लगभग एक हजार एकड़ जमीन है। चाहने पर समीप-वर्ती पहाड़ियों का भी उपयोग ये कर सकते हैं। अतुल के कर्मठ व्यवस्थापक **श्री बी. के. मजमूदार** तथा प्रमुख केमिस्ट **डॉ० अमुल नायक** चिरकाल से बोटेनिकल गार्डन बनाने का विचार कर रहे थे। कविराज जी भी भारत में यत्र-तत्र ऐसे उद्यान खड़े करने की महत्त्वाकांक्षा रखते थे। मालूम होने पर अवसर निकाल कर कविराज जी दिल्ली से बलसाड़ गए और दोनों महानुभावों के संपर्क में आए। कविराज जी शीघ्र ही उपयुक्त वनस्पतियों की सूची आदि भेजने वाले हैं। अन्य महानुभाव भी इस दिशा में बने इतने प्रमाण में उद्योग कर सकते हैं।

आदिवासियों का औषध-प्रयोग—मध्यप्रदेश सरकार का सत्प्रयत्न

ऊपर मूलजतियों द्वारा प्रयुक्त की जानेवाली वनौष-धियों के संकलन की ओर मैंने निर्देश किया है। इस दिशा में हुआ एक प्रयत्न भी मुझे विदित है। मध्यप्रदेश सरकार की ओर से सारे प्रदेश की मूलजातियों (आदिवासियों) के विषय में कार्य करने के लिए दो संस्थाएँ छिंदवाड़ा में स्थापित हैं।

एक का कार्य मूलजातियों का कल्याण करना है तथा दूसरी इनके विषय में अनुसंधान का कार्य ही विशेषतया करती है। इस दूसरी संस्था के डाइरेक्टर हैं—मौलिक क्रियात्मक प्रतिभा के धनी, एवं कार्यदक्ष विद्वान् **डॉक्टर टी० बी० नायक** एम. ए., पी-एच. डी.। डॉक्टर नायक कुछ काल लंदन युनिवर्सिटी में प्राध्यापक भी रह चुके हैं। आपने अपने कार्य-कलाप की विभिन्न दिशाओं में एक दिशा मूलजातियों द्वारा प्रयोग में लाई जानेवाली औषधियों का अन्वेषण करना, यह भी रखी है। इस कार्य में उन्हें अनुभवी और अपने कार्य को समझने वाले दक्ष सहकारी भी प्राप्त हो सके हैं। आपने इन वनस्पतियों के शुष्क नमूने उनके कार्य के निर्देश के साथ एकत्र किए हैं, कई वनौषधियां अपने उद्यान में लगाई हैं तथा उपयुक्त पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय पर लेख भी लिखे हैं। इस विभाग को आप बहुत ही अधिक विकसित करना चाहते हैं। **कविराज प्रतापसिंह जी** डॉक्टर साहब के संपर्क में भी आए हैं।

वृद्धों का सम्पर्क : आयुर्वेद की परम्परा की प्राप्ति के लिए

कहने का तात्पर्य यह कि आयुर्वेद के पुनरुज्जीवन के लिए कार्य करने की ऐसी नाना दिशाएँ तथा क्षेत्र हैं। अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार प्रत्येक आयुर्वेद-प्रेमी इस में भाग ले सकता है। परंपरा विच्छिन्न होने के कारण टूटी हुई शृंखला को फिर से जोड़ने के लिए मूल जाति के समान ही ग्रामीण, नागरिक, वैद्य, वैद्येतर विशेषतया वृद्ध ऐसे जनों के सम्पर्क में आना उपयोगी है जिन्हें वैद्यों को भी अज्ञात किसी द्रव्य का उपयोग विदित हो, अथवा वैद्यों को ज्ञात किसी द्रव्य का ऐसा उपयोग विदित हो जिसे सामान्य-तया वैद्य न जानते हों। इन वृद्धों के पास जा कर हम कई ऐसी बातें भी जान सकते हैं जिनके ज्ञान द्वारा आयुर्वेदीय संहिताओं में लिखित कई कर्मों, उपयोगों आदि को समझने में हमें सहायता प्राप्त हो सकती है। यह प्रस्ताव रखते हुए मेरे ध्यान में किसी प्रयत्नपूर्वक गोपित औषधकल्प को उसके जानकार के पास से निकलवाने की बात नहीं है। हमारे बाग-बगीचे में या आसपास वन-उपवन में पाई जाने-वाली या पन्सारियों के यहाँ से मिलनेवाली वनस्पतियों का ही विचार इस समय मेरे मन में है। साथ ही, कई लुप्त क्रियाएँ करनेवाले भी वैद्य, वैद्येतर मिल सकते हैं, जिनके सांनिध्य से उन क्रियाओं को अधिकतर प्रकाश में लाया जा सकता है। दक्षिणापथ में आज भी प्रचलित पञ्चकर्म तथा स्नेहन-स्वेदन को भी इस प्रसंग में पुनः स्मरण किया जा सकता है।

शास्त्रीय जानकारी का संदोहन

द्रव्यगुण विज्ञान में अनुसंधान के प्रसंग से इतना आनु-षंगिक विवेचन कर पुनः मूल विषय पर आता हूँ। औषधों के रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव के ज्ञान के पूर्व स्वयं भारत में उगनेवाली असंख्यात औषधों का परिचय हमें प्राप्त करना चाहिए, यह **अबतक के वक्तव्य का मथितार्थ** है। इसके साथ कुछ विद्वान् **शास्त्रीय जानाकारी एकत्र करने आदि के कार्य में** भी नियुक्त होने चाहिए। यद्यपि स्वर्गवासी पूज्यचरण आचार्य यादवजी भाई ने द्रव्यगुण-विषयक जानकारी लगभग सभी दोहित कर ग्रन्थाकार निबद्ध कर दी है तथापि इस संदोह में अभी और भी वृद्धि करने का पूर्ण अवकाश है। हम वेद आदि से लेकर ब्रिटिश युग के पूर्व तक की सर्व शास्त्रीय सामग्री का संकलन करना आयुर्वेद के समग्र ज्ञान के लिए आवश्यक है यह उद्घोषणा प्रायः करते हैं। इस दिशा में प्रयत्न भी हो ही रहे हैं। परन्तु सम्पूर्ण आयुर्वेद-विषयक पूर्ण जानकारी (माहिती) के दोहन और संदोहन का आदर्श हमारे सामने रहे तो कार्य का नाम ही इतना आतङ्कजनक है कि उसमें हाथ लगाने की हिम्मत ही कोई नहीं कर पाता। परन्तु, छोटे-छोटे विषय प्रसंगवश लेकर उनके सम्बन्ध में सामग्री संकलित करने का आदर्श अपनी दृष्टि के सामने हो तो वह सुखसाध्य प्रतीत होने से अल्पशक्ति और अल्प धैर्यवाले व्यक्ति भी उसे करने को उद्यत हो सकते हैं। यथा, यही द्रव्यगुण विज्ञान विषयक रस-वीर्य विपाकादि सम्बन्धी सामग्री लीजिए। प्रत्येक प्रयास में थोड़ी-थोड़ी भी जानकारी जुड़ती जाए तो स्वल्पकाल में बड़ा पुञ्ज हो सकता है, जिसका उपयोग बहुत ही हितावह होने में कोई संशय नहीं किया जा सकता।

वचनों का अर्थ-विनिश्चय

पुञ्जित सामग्री जितनी आज है उतनी के विषय में कुछ कर्तव्य कार्य शेष होने की संभावना हो सकती है। यथा, **तत्-तत् वचन के अर्थ विनिश्चय का प्रश्न** इस प्रसंग में उपस्थित किया जा सकता है। उदाहरणतया, **अवस्था-**

पाक का अर्थ आज भी कोई विज्ञ एलोपेथी में वर्णित पाक-क्रिया की तीन अवस्थाएँ करते हैं। **विपाक** का अर्थ धात्वग्निजन्य पाक करनेवाले भी बहुत विद्वान् हैं। **पञ्च-महाभूत** का अर्थ द्रव्यमात्र की सॉलिड, लिक्विड आदि अवस्थाएँ भी कतिपय विद्वान् करते हैं। चरक का समन्वयात्मक वचन स्पष्ट होते हुए भी विपाक के विषय में पूर्वाचार्यों में कोई मत-भिन्नता है ऐसा हम अब भी सिखाते हैं। वीर्य के विषय में भी न मतभेद होते हुए भी मतभेद हम देखते हैं। इसके अतिरिक्त पृथक्-पृथक् द्रव्यों के रस-गुण वीर्य आदि के विषय में ग्रन्थों में कुछ तात्विक मतभेद है। उसका विचार भी किया जा सकता है। परन्तु प्रथम तो **एकत्र सामग्री में और वृद्धि कर, उस पर लघु संभाषाओं की योजना कर विवाद्य विषयों की निश्चिति कर देनी चाहिए।** यह कार्य भी कम महत्व का नहीं है। इस का एक परिणाम कमसे कम यह तो होगा ही कि अध्यापकों और वैद्यों के मन में आयुर्वेद के मूल सिद्धान्तों का निश्चित रूप जम जाएगा और आयुर्वेद के शिक्षण के आरम्भ में ही अनिश्चित सिद्धान्तों के कारण विद्यार्थी के चित्त को जो खेद रहता है वह भी न रहेगा। आयुर्वेद की चर्चाविचारणा के लिए केन्द्रीय तथा प्रादेशिक शासनों, धनपतियों, विभिन्न संस्थाओं एवं जनता की ओर से कुछ अनुकूलता अब हो चली है। आयुर्वेद के शास्त्रीय पक्ष के क्षेत्र में कार्य करनेवाले सज्जन इसका उपयोग कर एक-एक छोटा-छोटा विषय लेकर उस पर संपूर्ण सामग्री एकत्र करते जाएँ तो कालान्तर में समस्त आयुर्वेद-संबन्धी विपुल सामग्री अनायास एकत्र हो जाएगी।

द्रव्य-विषयक सामग्री का क्षेत्र

किं बहुना, आरम्भ में शास्त्रीय पक्ष में कार्य करनेवाले विद्वान् इस प्रकार रस-गुण-वीर्यादि संबन्धी सम्पूर्ण सामग्री एकत्र कर उस पर प्रादेशिक या माण्डलिक संभाषाएँ रच कर अर्थ-निश्चिति का कार्य करें। पश्चात् अथवा साथ ही एक-एक द्रव्य पर संपूर्ण सामग्री एकत्र की जाए। मैं समझता हूँ, पृथक् द्रव्यों पर केवल आयुर्वेदीय दृष्टि से ही सामग्री एकत्र करने से संतोष न मानना चाहिए। अन्य प्रकार से भी जो सामग्री प्राप्त हो उसका भी संकलन करना चाहिए। जैसे, **खदिर** पर सामग्री एकत्र करते हुए कत्थे की निर्माण-विधि तथा उसके उद्योग-सम्बन्धी जानकारी भी एकत्र करनी चाहिए। **हरीतकी** पर सामग्री का संदोहन करते हुए उसका रंग बनाने में जो उपयोग होता है उसकी भी शास्त्रीय जानकारी हरीतकी के प्रकरण में एकत्र करनी चाहिए। **शहतूत** या **एरण्ड** के वर्णन में रेशम के उत्पादन का भी विचार किया जा सकता है। **बदरी** आदि के अधिकार में **लाक्षा** को भी लेना चाहिए। इससे जो संपूर्णता विषय में आएगी उससे चिकित्सक का ज्ञान बहु-क्षेत्रीय हो उसे लोकप्रिय बनाने में भी उपयोगी हो सकता है। यह संपूर्ण सामग्री विषय को रोचक बना कर विद्यार्थी को भी उसके प्रति प्रवृत्त करने में सहायभूत होगी। परीक्षा में इन अवान्तर विषयों को महत्व न दिया जाए, यह और बात है।

द्रव्यों की क्रिया का स्पष्टीकरण

प्राचीन संहिताओं या निघण्टुओं में वर्णित द्रव्यों के संबन्ध में प्राप्त संपूर्ण सामग्री के संकलन के साथ, जैसा कि ऊपर कहा गया है, उस सामग्री का उपयोग कर ग्रन्थ निर्माण करनेवाले नये लेखक यह अवश्य स्पष्ट करते जाएँ कि कोई द्रव्य किस प्रकार किसी **रोग-विशेष की संप्राप्ति का भङ्ग कर** उसे शान्त करता है। केवल संस्कृतोक्त गुणों और कर्मों का पुनरुल्लेखन हमें अब संतोष नहीं दे सकता। हमारी बुद्धि में द्रव्य-विशेष की उपयोगिता और उपादेयता केवल इतने उल्लेख से स्थान नहीं पा सकती। अब तो विपुल **विस्तारवाले व्याख्या-ग्रन्थों की आवश्यकता है।** पुस्तक-प्रकाशक प्रकाशन का उत्साह रखते हैं। उन्हें उपयुक्त ग्रन्थ उपयुक्त स्वरूप और संख्या में मिल नहीं रहे।

असंसृष्ट द्रव्यों का उपयोग

निश्चित ही, द्रव्यों के प्राचीनोक्त किंवा किसी वर्तमान आप्त द्वारा निर्दिष्ट गुण-कर्मों पर केवल कथनमात्र से उन्हें उद्धृत करनेवाला द्रव्यगुण-विज्ञान का नवीन लेखक भी विश्वास न करेगा। उसकी प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा पुनः पुष्टि करना आवश्यक है। इसके लिए द्रव्य का शास्त्र में या आप्त द्वारा कथित रोग-विशेष में उपयोग करना होगा। कोई भी यह मानने को तैयार न होगा कि प्राचीन लोग भांग पीकर ग्रन्थ लिखने को बैठते थे और अण्ट-संट लिखे जाते थे। आवश्यकता केवल प्रयोग द्वारा वर्णित गुण-कर्मों के पुनः अनुशीलन की है। कुछ ही काल पूर्व कविराज **प्रतापसिंह जी** ने कहा था कि, **वासा** जिन रक्तपित्तादि रोगों

में उपयुक्त कहा गया है उनमें अल्प मात्रा में कार्य नहीं करती। प्रायः चिकित्सक छोटी-छोटी मात्रा में उसका उपयोग कर फलश्रुति के अनुसार परिणाम न प्राप्त कर शास्त्र के प्रति शङ्कित दृष्टि से देखने लगते हैं। वासा का कार्मुक वीर्य बड़ी मात्रा में ही, यथा एक छटांक स्वरस में ही, पर्याप्त अंश में आता है। कविराजजी ने ही सखेद यह भी कहा कि, प्रयोग करने की हममें वृत्ति ही नहीं रही है। सहदेवी शिर में बाँधने से ज्वर दूर करती है, यह हम अनादिकाल से पढ़ाते ही आ रहे हैं। कभी प्रयोग करने का विचार ही हम में किसी को आता नहीं। कितनी वनौषधियाँ शिर या कटि में बाँधने से मूढगर्भ को प्रवृत्त करती हैं। कई विश्वास करने योग्य व्यक्ति आज भी कहते सुने जाते हैं कि स्वयं अनेक रुग्णाओं में यह प्रयोग सिद्ध हुआ वे देख चुके हैं या स्वयं प्रयोग कर चुके हैं। परन्तु हमारे प्रसूतितन्त्र के अध्यापक तथा सूतिकागारों के अध्यक्ष हैं कि पढ़ा तो देंगे कि अमुक-अमुक औषध के बन्धन से मूढ़गर्भ की प्रवृत्ति ससुख होती है, पर कभी गर्भाशय की सुप्ति (यूटेराइन इनर्शिआ) में किसी औषध का उपयोग करने का विचार ही मन में नहीं लाते। काञ्चनार त्वक् किंवा युग्मपत्र (आसोंतरा) त्वक् गण्डमाला व्रणापह कहे गए हैं। उनका श्रद्धा से उपयोग करने का विचार हम में कितने अध्यापक करते हैं। पढ़ाने को पढ़ाते तो अवश्य हैं।

संपादकाचार्य श्री रघुवीर प्रसादजी त्रिवेदी ने अभी बताया था कि, वातिक हृद्रोग (हृदय-स्पन्दन) में अर्जुन के पत्र का स्वरस उपयोगी होता है, यह उन्हें उनके अनुचर की छोटी-सी भूल से विदित हुआ। बहुत ही पिच्छिल (तन्तुमान्) होता है यह पत्र रस। उधर, अर्जुन की हृद्रोगों में उपयोगिता के प्रकरण में हमारे कायाचिकित्सा-ध्यापक प्रायः यह कहते हैं कि, अर्जुन के प्रसिद्ध उपयोगी अंग काण्डत्वक् में कषायरस होता है। अतः उसका कफज हृद्रोग में ही उपयोग हितावह होना चाहिए। पूर्वाचार्यों ने कफज हृद्रोग में ही अन्य कषाय रसवाले द्रव्यों के साथ उसका विधान भी किया है। परन्तु त्रिवेदी जी इस अनुभव के पश्चात् कहते हैं—ग्रन्थस्थ वाङमय को अपूर्ण ही समझना चाहिए। उपदेशक्रम में गुरुजन इससे अनेक गुणी अधिक जानकारी शिष्यों को कराते होंगे। इसी प्रकार श्री त्रिवेदी जी ने इस बात का भी भार देकर उल्लेख किया था कि, मूत्रसाधुर्य में जम्बू के बीज की अपेक्षया पत्र ही अधिक कार्मुक होता है। अनेक अनुभवी भी वस्तुतः इस बात का समर्थन करते हैं। सुचिकित्सक अनुभव कर देखें।

यह तो शास्त्र में निर्दिष्ट वनौषधियों की बात है। अनेक विज्ञजन, जिनमें आदिवासी (मूलजाति) भी हैं, कई वनौषधियों की भिन्न-भिन्न रोगों में उपयोगिता बताते हैं। अनुभव से प्रमाणित भी होता है कि शास्त्र में निर्दिष्ट तत्त-द्रोगहर द्रव्यों की अपेक्षया इन द्रव्यों की कार्यसाधकता अधिक होती है। इन्हें भी उपयोग में लाकर, उनकी उपयोगिता का प्रत्यक्ष दर्शन कर इन्हें प्रचार में लाना चाहिए। ऊपर धृत पद्यों में धन्वन्तरि हमारे लिए स्पष्ट मार्ग-दर्शन कर गये हैं—नई वनस्पतियाँ नाम और रूप से विदित हों तो साक्षात् प्रयोग द्वारा उनके रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव का परिज्ञान करना चाहिए। इतना स्पष्ट निर्दिष्ट मार्ग होने पर भी हम आज विचार करते हैं—नवीनोपलब्ध द्रव्यों के रस-गुण-वीर्य-विपाक के ज्ञान की क्या पद्धति होनी चाहिए।

प्रयोग द्वारा शास्त्रोक्त तथा आप्तोक्त किंवा सर्वथा अपरिज्ञात औषधों के रस-गुण-वीर्य-विपाक-प्रभाव का ज्ञान प्राप्त करना हो तो हमें अपनी आज की उपचार-पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन करना होगा। जो चिकित्सक व्यवसाय में लग्न हैं उनसे तो सामान्यतया इस प्रकार प्रयोग द्वारा किसी औषध के रस-गुण-वीर्यादि के ज्ञान की आशा नहीं की जा सकती। अगली पंक्तियाँ उनके लिए प्रस्तुत नहीं की जा रही हैं। किन्तु, जो विज्ञ जन अन्वेषण (रीसर्च) के कार्य में व्यापृत या नियोजित हैं, निर्दिष्ट प्रस्ताव उनके लिए ही नम्रतया प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

सामान्यतया प्रायः प्रत्येक पद्धति के व्यवसायी चिकित्सक व्यवसाय करते हुए किसी एक कल्प पर निश्चित विश्वास कर उसी का उपयोग नहीं करते। परन्तु एक ही कार्य करनेवाले अनेक कल्पों की योजना करते हैं। नाना कल्पों का यह उपयोग कभी पृथक्-पृथक् होता है और कभी एक ही पुड़िया में। पन्द्रह-बीस-पच्चीस तक एक ही रोग पर कार्य करनेवाले कल्प कभी-कभी तो उपयोग में लाए जाते देखने में आते हैं। इससे चिकित्सक को सिद्धि और यश तो मिलता है, परन्तु यह परिणाम निकालना दुष्कर होता है कि रोग के किस लक्षण पर किस विशिष्ट कल्प या द्रव्य ने किस प्रकार कार्य किया? चिकित्सा यशस्विनी होने पर विद्यार्थी कैसे समझे कि किस द्रव्य या कल्प का

किस रोग की किस अवस्था में किस प्रकार कार्य होता है। और वह समझे ही नहीं तो उसकी उन कल्पों या द्रव्यों के उपयोग में प्रवृत्ति कैसे हो? फिर वह निश्चित ही एलोपेथी के द्रव्यों का उपयोग करने की दिशा में प्रवृत्त क्यों न हो, जिनका चमत्कारी और विश्वासपूर्ण भाषा में उल्लेख ग्रन्थों और तदाश्रित भाषणों और लेखों में होता है तथा जिसे प्रायः प्रत्यक्ष दर्शाया जाता है। आयुर्वेद को बोधगम्य बनाने के लिये इस पद्धति में हमें परिवर्तन करना ही होगा। और इस परिवर्तन के प्रयोग-स्थान होंगे अनुसंधान के स्थान तथा आयुर्वेद महाविद्यालयों से संलग्न रुग्णालय। प्रयोग का अर्थ कदापि रोगी को हानि पहुँचाना नहीं है। रोगी को अधिक आर्थिक व्यय में डाले विना, उसके रोग को निष्प्रयोजन अधिकतर दिन रहने न देते हुए, किं बहुना, सर्व प्रकार से सुरक्षित स्थिति में रोगी को रख कर भी प्रयोग-परीक्षण किए जा सकते हैं। जो महानुभाव इस दिशा में कार्य कर रहे हैं उन का अनुभव मेरी इस स्थापना का समर्थन करेगा। जिन्होंने इस दिशा में कार्य करने की ओर पाद-न्यास ही नहीं किया है वे अनुभव के विना केवल मेरे कथन से इस बात पर प्रत्यय नहीं कर सकते। अतः उभय दृष्टियों से इस विषय में अधिक कहना व्यर्थ है। जो पद्धति प्रयोग द्वारा अन्वेषण में हमें अपनानी होगी उसका स्वरूप नीचे दिया है।

रुग्णचिकित्सात्मक अन्वेषण का प्रकार

एक-दो अथवा अधिक जितने भी रोग लिए जाएँ उनकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में प्रत्येक रोगी को जो औषध देना हो उसका निश्चय पहले से ही संभाषा द्वारा कर लिया जाना चाहिए। पूर्व संभाषा से इस बात की तो निश्चिति हो ही जाएगी कि जो औषध रोगी को दिया जानेवाला है वह उत्कृष्टतम कार्यकारी होगा। एक ही औषधक्रम या उपचारक्रम पच्चीस, पचास, सौ या अधिक रोगियों को दे कर हम किसी निश्चित परिणाम पर पहुँच सकते हैं।

दूसरी बात। विचारणीय अन्वेषण द्रव्यगुण का है। प्रत्येक पृथक् द्रव्यके गुण-धर्म का इस प्रयत्न द्वारा हमें निर्णय करना है। इस का एक मात्र प्रकार यही होगा कि अनेक कल्प एक अहोरात्र में, किंवा एक साथ देने की बात तो दूर, एक साथ असंसृष्ट द्रव्य ही दें—और उन की संख्या भी परिगणित ही रखें। पृथक्-पृथक् असंयुक्तद्रव्य देने से ही तो हम जान सकेंगे कि किस द्रव्य का क्या विशिष्टपरिणाम होता है। और मैंने तो देखा है कई अनुभवी वैद्यों के यहाँ कटुरोहिणी (कटुकी), वासा, यष्टी मधु, विदारी, अश्वगन्धा, शतावरी, अशोक, पुनर्नवा, किराततिक्ता इत्यादि असंसृष्ट ही द्रव्य उपयोग में आते हैं और यश का उपार्जन भी वे करते हैं। यही पद्धति द्रव्यों के शास्त्रोक्त किंवा आप्तजनोक्त, गुण-कर्मों के निरीक्षण के लिए सर्वोत्तम और वैज्ञानिक कहना हो तो वह है।

मानवों पर प्रयोग की प्राथमिकता

द्रव्यों के गुण-कर्मों का अनुसंधान प्राणियों पर करने की प्रवृत्ति आजकल है। इससे बहुत-कुछ जानने को मिलता है, इसमें संशय नहीं। परन्तु मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार परीक्षण की इस पद्धति को प्राथमिकता नहीं देनी चाहिए। कारण दो हैं। एक तो शासन या खानगी व्यक्तियों की ओर से इन दिनों आयुर्वेद के लिए जो व्यय हो रहा है वह अत्यल्प है। इस का व्यय पुरुषों पर होगा तो उनको जो लाभ होगा उसके कारण आयुर्वेद का वातावरण जनता में उत्पन्न होने का कार्य इस प्रकार शीघ्रतर संपन्न होगा। व्यय करने को धन पुष्कल हो तो साथ-साथ प्राणियों पर भी कोई व्यय करें इसमें विप्रतिपत्ति न होनी चाहिए। विष आदि की परीक्षा प्राणियों पर करने का विधान आयुर्वेद में पहले से ही विद्यमान है। तथापि, प्राणियों पर प्रयोग को प्राथमिकता न देने का अन्य कारण यह है कि प्राणियों पर प्रयोग करने के पश्चात् भी मानवों पर तो प्रयोग करना शेष ही रहेगा। कारण, मानवों में मन का प्रभाव शारीर दोषों और शरीर पर अत्यधिक पड़ता है। भारतीय दर्शन और आयुर्वेद तो इस सत्य को कब से स्वीकारते ही आए हैं, आधुनिकों ने भी अब इसका प्रत्यक्ष किया है। रोग की अपेक्षया रोगी को, और उसके भी एक रुग्ण अवयव को केवल चित्त में न लाकर समस्त अवयवों और मन को रोग-परीक्षा तथा चिकित्सा का विषय बनाना अब आवश्यक माना जाने लगा है। मानव में विकसित मन, वातावरण के प्रति उसकी प्रतिक्रिया, औषध के प्रति उसकी चित्तवृत्ति आदि अनेक बातें उसे प्राणी से भिन्न कोटि में रखनेवाली हैं, जिनको दृष्टि में रखकर प्राणियों और पुरुषों में एक ही द्रव्य के भिन्न परिणाम आने की कल्पना सहज में की जा सकती है।

रुग्णचिकित्सात्मक अन्वेषण का महत्व

आयुर्वेद का वातावरण उत्पन्न करने के लिए सारे देश में आयुर्वेदीय औषधालयों और रुग्णालयों का जाल-सा बिछा देने की माँग हम प्रायशः करते हैं। इसी कारण प्रयोग-परीक्षण के लिए हमें जो पद्धति अपनानी चाहिए वह भी रुग्णचिकित्सा में उपयोगिनी हो और अतएव प्रजा में आयुर्वेद के वातावरण की सृष्टि में सहायक हो इस प्रयोजन से प्रयोग-परीक्षण के लिए जो द्रव्य हमारे कार्यकर्ताओं को प्राप्त हो उसका अधिकांश मानवों पर प्रयोग के रूप में हो यह प्रस्ताव मैंने ऊपर रखा है। इसी दृष्टि से मैं यह भी प्रस्ताव रखना चाहता हूँ कि—**द्रव्यों पर अन्वेषण करने की एक दिशा प्रायः उनके रासायनिक विश्लेषण की बताई जाती है उसे भी हमें प्राथमिकता (प्रायोरिटी) न देनी चाहिए।** किन्तु, उपलब्ध द्रव्य का अधिकाधिक उपयोग रुग्णचिकित्सात्मक अन्वेषण (क्लिनिकल रीसर्च) में ही हो यही हमारा लक्ष्य रहना चाहिए। आल्कलॉयड आदि कार्मुक अंश (एक्टिव प्रिंसिपल) प्राप्त करने के प्रयत्न से प्रथम तो हमारी मानव-शक्ति और धन का व्यय रुग्णचिकित्सात्मक अन्वेषण पर नहीं होता, जिससे हम उसके पूर्वोक्त लाभ से वञ्चित रह जाते हैं। दूसरे, प्रायः महान् अर्थ-राशि का व्यय करके भी प्रत्येक द्रव्य में पृथक् ही कार्मुक अंश की विद्यमानता की प्रतीति परिणामरूप में होती है और उसका वही उपयोग शक्ति और धन के इतने व्यय के पश्चात् विज्ञात होता है, जिसका उल्लेख आयुर्वेद के ग्रन्थों में बताया जाता है। पुनश्च, अब तो इस दिशा में कार्य करने वाले आप्तों का यह भी मत होने लगता है कि, पृथक्-पृथक् कार्मुक अंश की अपेक्षया आश्रयभूत संपूर्ण औषध (होल ड्रग) का ही उपयोग अधिक उत्तम है। इन सर्व दृष्टियों से द्रव्य के विश्लेषणात्मक अन्वेषण की अपेक्षया **मानवों पर रुग्णचिकित्सात्मक अन्वेषण ही अधिक उपयोगी और उपादेय है।** प्रत्येक द्रव्य में द्रव्यान्तरों से पृथक ही कार्मुक (क्रियाशील) अंश प्राप्त होता है। मूल द्रव्य के नाम में आइन या इन प्रत्यय लगा कर उस अंश को नयी संज्ञा देने की वर्तमान पद्धति है। प्राचीनों ने प्रभाव की परिभाषा बताते हुए यही कहा है कि पुनर्नवा, विदारी आदि में पुनर्नवात्व, विदारीत्व आदि 'त्व' और 'ता' प्रत्ययों से प्रतिपाद्य जो धर्म-विशेष है वही उसका प्रभाव है। 'आइन' या 'इन' प्रत्यय द्वारा आज के अन्वेषक वही बात तो कह रहे हैं।

रस-गुणवीर्य-विपाक ज्ञान की आवश्यकता

अबतक शास्त्रोक्त या आप्तोक्त द्रव्यों के कर्म की परीक्षा के प्रकार का ही हमने विवेचन किया। परन्तु तत् द्रव्य की तत्-तत् रोग पर क्रिया होती है इतना ही अन्वेषण करके हम छोड़ दें तब तो उसमें आयुर्वेदीयत्व कुछ रहता नहीं। आयुर्वेदीय द्रव्यों की उपयोगिता है, उन्हें ही हमें संमानित करते हुए एलोपेथी के निघण्टु में समाविष्ट कर लेना चाहिए, शेष रस-गुण-वीर्य-विपाक या वात-पित्त-कफ को ऐतिहासिक म्यूज़ियम में स्थान दे छोड़ना चाहिए, ऐसा मत रखनेवाले तथा उस की पुष्टि और प्रचार कर आयुर्वेद को नाम शेष करनेवाले विरोधियों के ही हाथ हम मज़बूत कर रहे होंगे, यदि हमने द्रव्यों के कर्म देखकर इस बात की उपपत्ति न बैठाई कि द्रव्य का उपलब्ध कर्म उसके रस, गुण आदि किस से होता है। यह कर्म हमारे ध्यान तथा शक्ति को सविशेष आकृष्ट करे, यह आवश्यक है।

विचारशील सज्जन इतने वक्तव्य से ही द्रव्यों की क्रिया के कारणभूत रस-गुण- वीर्य-विपाक के अनुशीलन के प्रश्न का महत्त्व भलीभाँति समझ जाएँगे। तथापि, अब तक यह भीति अच्छे-अच्छे विद्वानों के चित्त को भी विकल-विह्वल करती पाई जाती है कि नवीन द्रव्य—देशी या विदेशी, पहले से विद्यमान या नवाविष्कृत—के रस-गुण-वीर्य-विपाक का ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाए ? धन्वन्तरि ने स्पष्ट मार्ग दिखा दिया है कि द्रव्यों के रस-गुण-वीर्य-विपाक का परिज्ञान प्रयोग द्वारा करना चाहिए। इस पद्धति को प्रयत्नपूर्वक अपनाने की ओर हमारा ध्यान जाता नहीं, परन्तु आपको जान कर आश्चर्य होगा कि कई नवीन द्रव्यों को अज्ञाततया हम इस रीति से अपना चुके हैं। इनमें कुछ का नामोल्लेख कर दूँ तो इस दिशामें कार्य करने का हममें उत्साह उदित होना स्वाभाविक है।

नवीन द्रव्यों के रसादि-ज्ञान का प्रकार प्रचलित

टमाटर नवोपलब्ध द्रव्य है। इसमें हजार विटामीन और खनिज द्रव्य हों तथापि सुचिकित्सक इसे पित्त-कफ प्रकृति पुरुष को एवं शोथ, उदर, कास, श्वास, आदि रोगों से पीड़ित पुरुषों को सेवन करने की सलाह कदापि न देंगे, विशेषतया आनूप देश में। परंपरागत चिकित्सक प्रायः अपने रोगियों को यही कहते सुने जाते हैं कि टमाटर अच्छे से अच्छे हों, खूब पैसे देकर पाए हों किंवा मुफ्त मिलें तो

भी खाना नहीं। कारण, इनका विपाक अम्ल—अतएव कफपित्तप्रकोपक—होता है। अच्छे से अच्छे मधुर रसात्मक प्रतीत होनेवाले टमाटर को राँधिए—उस का रस अम्ल हो जाता है। यही स्थिति उसका जठराग्नि द्वारा पाक होने के अनन्तर होती है।

टमाटर के सदृश ही **आलू** हमारे देश में नया आया है। अनुभव से इसका वातप्रकोपक स्वभाव हमने निश्चित कर लिया है। **चाय** तो उसके भी पीछे आई होने पर भी उसके गुण-दोष का परिज्ञान हमें हो चुका है। **मिर्च** की भी यही दशा है। हरी और लाल मिर्च का भेद भी वैद्य-जन जान चुके हैं। **क्वीनाईन** तिक्त होने पर भी उष्णवीर्य और रूक्ष है, यह हम प्रयोग से निश्चित कर जान चुके हैं और उसको हठात् उपयोग करते हुए स्निग्धशीत दुग्ध के सप्रमाण उपयोग की सलाह रुग्णों को देते हैं। इन द्रव्यों को अपने समक्ष आप रखेंगे तो अन्य भी पश्चात् काल में भारत में आए **सत्यानाशी, चोपचीनी** आदि द्रव्यों की स्वयं स्मृति आपको हो जाएगी। और उसके आधार पर इतनी स्पष्टता से अपरिज्ञात द्रव्यों के रस-गुण-वीर्य-विपाक के परिज्ञान का मार्ग आपके सामने प्रशस्त हो ही जाएगा।

नव्यमत से रसादि का विचार

रस-गुण-वीर्यादि का अर्थ नव्य मत से क्या है? एवं किसी द्रव्य के रस-गुण-वीर्यादि नव्यमत से कैसे निर्धारित किए जा सकते हैं यह प्रश्न भी अन्वेषक विद्वानों की संभाषा में उपस्थित होता है। इस विषय में भी मेरा नम्र मत ऊपर निर्दिष्ट तर्क-क्रम से यही है कि, आयुर्वेद के अन्वेषण के लिए जितना भी द्रव्य सुलभ हो उसका अधिकाधिक उपयोग रुग्णचिकित्सात्मक अन्वेषण-कार्य में हो यही हमारा प्रयत्न होना चाहिए। **प्रत्यक्षप्रिय जनता तथा अधिकारियों को आयुर्वेद की उपयोगिता दर्शानेवाला इससे अधिक उत्तम उपाय अन्य नहीं।** इसके द्वारा आयुर्वेद की उपयोगिता और उपादेयता का प्रत्यय (विश्वास) होने पर ही धनपति किंवा शासन आयुर्वेद को हस्तावलम्बन देने के लिए अभिमख हो सकते हैं। अन्यथा नहीं। तथापि किसी को नव्य मत से रस-गुण-वीर्य-विपाक के ज्ञान का आग्रह हो ही तो उसकी भी पद्धति प्राचीन आचार्य दर्शा गए हैं। सुश्रुत ने कहा है—**गुणों का ज्ञान उनके कर्मों से होता है।** धन्वन्तरि निघण्टुकार ने रस-गुण-वीर्य-विपाक सभी का ज्ञान कर्मों से होता हुआ बताया है। चरक ने भी **विपाक की निश्चिति कर्म से ही** होती हुई कही है। रस के अनुसार जो कर्म द्रव्य-विशेष का होना चाहिए वह न हो—साथ ही अन्य भी लक्षण-विशेष दृष्टिगोचर हों तो विपाक रस से भिन्न और अमुक है, यह कल्पना की जा सकती है। वीर्य और गुण में भेद इतना ही है कि गुरु-लघु, उष्ण-शीत आदि धर्म स्वल्प प्रमाण में हों तो उन्हें गुण कहते हैं। वे ही अधिक शक्तिशाली (इन्टेन्स) हों तो उन्हें गुण न कहकर वीर्य कहा जाता है। (वीर्य शब्द यहाँ सामान्य धर्म के अर्थ में नहीं है, धर्म-विशेष के अर्थ में है)। जहाँ चरक ने मधुर-स्कन्द आदि के रूप में रस-भेद से द्रव्यों के वर्ग दिए हैं वहाँ उसने स्पष्ट कहा है कि मधुर रस के सदृश जिस द्रव्य के कर्म हों उसका रस मधुर होता है, यह समझना चाहिए। **खनिजों के रस का निर्णय** भी प्राचीनों ने उनके कर्म देख कर ही किया था, यह निर्णय इस वचन से अनायास किया जा सकता है। **खनिजों के मधुरादि रस होने का यह भी अर्थ है** कि-जिन द्रव्यों में अमुक शर्करा हो-या जो पाकान्तर शर्कराके रूप में परिवर्तित होने का स्वभाव रखते हों वे ही द्रव्य मधुर नहीं माने जाने चहिए। यह भी समझना चाहिए कि, शरीर का माधुर्य अमुक द्रव्यों के सेवन से शरीर में रक्षित रहता है, या उसकी उत्पत्ति सविशेष होती है। इससे यह भी समझा जा सकता है कि, प्राचीन मतको नवीन मतके ढाँचे में बिठाने के पूर्व कई आधारभूत बातें हमें खूब अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए। विशेषतया, अपने शास्त्र के मत का स्वरूप सम्यक् बुद्धिस्थ कर लेना चाहिए। केवल शब्दों का भाषान्तर जान लेना पर्याप्त न समझ लेना चाहिए।

विपाक का ज्ञान प्राणिशरीर में करना हो तो पाक की तत्-तत् अवस्था में आमाशय, पच्यमानाशय तथा पक्वाशय में स्थित द्रव्यों को बाहर निकालकर उसकी परीक्षा की जा सकती है। इसके लिए जिस द्रव्य की परीक्षा करती हो उसी को आहार रूप में देना आवश्यक होगा। प्राणिशरीर के बाहर विपाक की परीक्षा करनी हो तो जिन-जिन रसों का संयोग आमाशय आदि में होता है, उन को जितने काल द्रव्य पृथक्-पृथक् आशय में रहते हैं उतने काल उस-उस रस से युक्त परीक्षा-नली आदि पात्र में रख कर परिणाम रूप में प्राप्त द्रव्य का निरीक्षण करना संभव होगा। कह नहीं सकते, जैसे ग्रहणीगत बुद्धितत्त्व की क्रिया से भुक्त

आहार या औषध द्रव्य विवेचित हो कर उसका उपयोगी अंश रस का अङ्ग बन जाता है तथा शेष अनुपयुक्त किट्ट के रूप में पक्वाशय में पहुँचा दिया जाता है, वैसा विवेचन (सार-किट्ट विभजन) प्रयोगशाला में परिपाक के अनन्तर होगा या नहीं, और होगा तो कितने अंशमें ?

रस का निश्चय तद्गत शर्करा, लवण, अम्ल आदि की अवस्थिति से किया जा सकता है।

गुणों तथा वीर्यों का विनिश्चय तत्तत् उपकरण से करना कदाचित् संभव होगा। जिन द्रव्यों को हम उष्ण कहते हैं वे शरीर में उष्णता की उत्पत्ति को उद्दीपित करते हैं। शीत द्रव्य उसी क्रिया को क्षीण करते हैं। आधुनिक प्रयोगशाला में शरीर की आभ्यन्तर उष्णता को जाँचने का जो साधन हो उसका विनियोग इस कार्य में किया जा सकता हैं। शायद **बी० एम० आर०** (बेसिक मेटाबॉलिक रेट) जाँचने की क्रिया इसमें सहायक हो सकती है। उष्ण द्रव्य स्वेद की बृद्धि करते हैं। शरीर के महास्रोत, रस-रक्तवह स्रोत आदि की गति को भी बढ़ाते हैं। ब्लडप्रेशर कार्डीओग्राम आदि के ज्ञान के साधन इसमें उपयोगी होने संभव हैं। मन्दगुण तथा उसके विरोधी अर्थ में आया तीक्ष्ण गुण स्रोतों में वाह्य द्रव्य की गति को क्रमशः मन्द तथा तीव्र करते हैं। तत्-तत् स्रोत के वाह्य द्रव्य की गति जाँचना कदाचित् सुगम है। पाककर अर्थ में आया तीक्ष्ण गुण अग्नि की बृद्धि करता है। आमाशय आदि में पाचक रसों की स्नुति अधिक प्रमाण में हो तो द्रव्य उतने अंश में तीक्ष्ण कहा जा सकता है। धात्वग्नियों की क्रिया पर द्रव्य का परिणाम मेटाबॉलिज्म के रेट की बृद्धि से जाना जा सकता है। किसी गुण की कितनी इयत्ता (इन्टेन्सिटी) होने पर उसे गुण कहना, तथा कितना प्रमाण हो तो उसी को वीर्य कहना—इस की कोई मर्यादा प्राचीनों ने भी कही नहीं है। वह प्राचीन और नव्य उभय मत से विद्वानों को निर्धारित करनी चाहिए।

नव्यमत से सामान्य तथा विशेष रूप से रस गुण वीर्य विपाक का निर्णय कैसे करना उसकी दिशा ही ऊपर की पंक्तियों में दर्शायी है। इस विषय के निष्णात इस कार्य में स्वभावतः ही अधिक विचार स्वयं करके वास्तव में सहाय-भूत हो सकते हैं। अतः ऐसे ही किन्हीं विद्वान् से इस दिशा में मार्ग विनिश्चय करने की प्रार्थना पुनः-पुनः करता हूं।

पेनिसिलिन आदि का विचार

द्रव्यगुणविज्ञान के-अन्वेषण में पेनिसिलिन आदि का भी विचार प्राप्त है। कई विद्वान् इनके रस-गुण-वीर्य-विपाक का निश्चय करके तथा इनका तत्-तत् दोष पर परिणाम निर्धारित कर इन्हें आयुर्वेदीय निघण्टु तथा चिकित्सा में समाविष्ट कर लेने का मत दर्शाते हैं। इसके लिए **तदेव-युक्तं भैषज्यं** और **स एव भिषजां श्रेष्ठः** इत्यादि वचन भी प्रस्तुत किए जाते हैं। परन्तु मैं समझता हूँ अभी इन द्रव्यों पर **अन्तिम निर्णय अर्वाचीनों ने भी घोषित नहीं कर दिया** है। कई चिन्तक तो कहते हैं, **औषध निर्माता व्यवसायी न होते तो आज एँलोपेथी के स्थान पर निसर्गोपचार प्रतिष्ठित होता।** मुझे कुछ-कुछ ऐसी प्रतीति होती है कि प्राचीनों ने किसी काल क्षेत्रभूत शरीर की दुष्टि के साथ बीजभूत जन्तुओं का भी उपचार अपनी पद्धति में शामिल किया था। परन्तु पीछे के अनुभव से वे शरीर की दोषकृत दुष्टि को ही अधिक महत्व देने लगे। यही आयुर्वेद की परम्परा है। जो द्रव्य जन्तुओं पर क्रिया करते हैं उनका उपयोग आयुर्वेदाभिमत नहीं है। इसी प्रकार **इंजेक्शन द्वारा औषध-प्रयोग भी हमारे औषध-निर्माण की परम्परा नहीं है।** तथापि पेनिसिलिन आदि का विचार करना ही हो तो इसके लिए **दो दृष्टियाँ** रखी जा सकती हैं। एक तो विषों का औषधतया उपयोग प्राचीनों ने किया ही है। पेनिसिलिन आदि को भी विष गिन कर विषतन्त्र में दर्शित प्रकार से इनका निरूपण करना चाहिए। दूसरे, आयुर्वेद में **शुद्ध चिकित्सा** उसी को कहा है जो मूल रोग को नष्ट करे, साथ ही अन्य रोग को उत्पन्न न करे। पेनिसिलिन आदि शुद्ध चिकित्सा की इस परि-भाषा पर कहाँ तक खरे सिद्ध होते हैं यह देखना चाहिए। नव्य औषधों के विषय में संक्षेप में निर्दिशित इन मुद्दों के अनुसार अधिक विस्तृत विचार विज्ञ वैद्य कर सकते हैं।

गर्भ-स्थिति भ्रम

डा० अनन्तानन्द आयुर्वेदालंकार

गर्भ-स्थिति स्त्री के जीवन की एक अत्यन्त महवत्पूर्ण घटना है। यदि यह वाञ्छनीय है तो वरदान और अवाञ्छनीय है तो अभिशाप। इक्ष्वाकु कुल की सुदक्षिणा के लिये यदि यह गौरव की वस्तु है तो महाभारत की अविवाहिता कुन्ती के लिये लज्जा की वस्तु। इसी के निर्णय करने का भार कभी-कभी चिकित्सक के कन्धों पर ऐसे समय आ पड़ता है जहाँ उसके द्वारा दिए गए निर्णय पर एक नहीं अनेक व्यक्तियों का भाग्य निर्भर करता है। मुझे स्मरण आता है कि एक बार एक वृद्ध एक ३२ वर्ष की स्त्री को एक्सरे के लिए ले आए। वे बड़े परेशान नज़र आते थे। कहने लगे, डाक्टर जी! यह मेरी विधवा पुत्र-वधू है। लोग कहते हैं कि यह गर्भिणी है, पर यह कहती है कि मैं बीमार हूँ। अब आप ही निर्णय कीजिए कि कौन सच्चा है। यदि यह बीमार है तो मुझ से जो कुछ बन पड़ेगा मैं इसकी चिकित्सा के लिए करने को तय्यार हूँ पर यदि यह कुलटा है तो मेरे घर में इसके लिए कोई स्थान नहीं। परीक्षा करने पर उसके उदर में एक बहुत बड़ा गर्भाशय मांसार्बुद (Myomata) मिला जिससे कि गर्भ-स्थिति का भ्रम होता था। कौन जाने कितनी ही हतभाग्य स्त्रियों के सम्बन्धियों ने चिकित्सकों की सम्मतियां लिए बिना ही उनके साथ इस तरह के काण्ड कर डाले हों जिन की कल्पना से भी सिहरन होती है, विशेषतः तब जब कि इस तरह के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं कि अनुचित गर्भस्थिति होने पर सम्बन्धियों ने उस अभागी स्त्री को मार डाला है या बेचारी ने स्वयं आत्महत्या कर ली है।

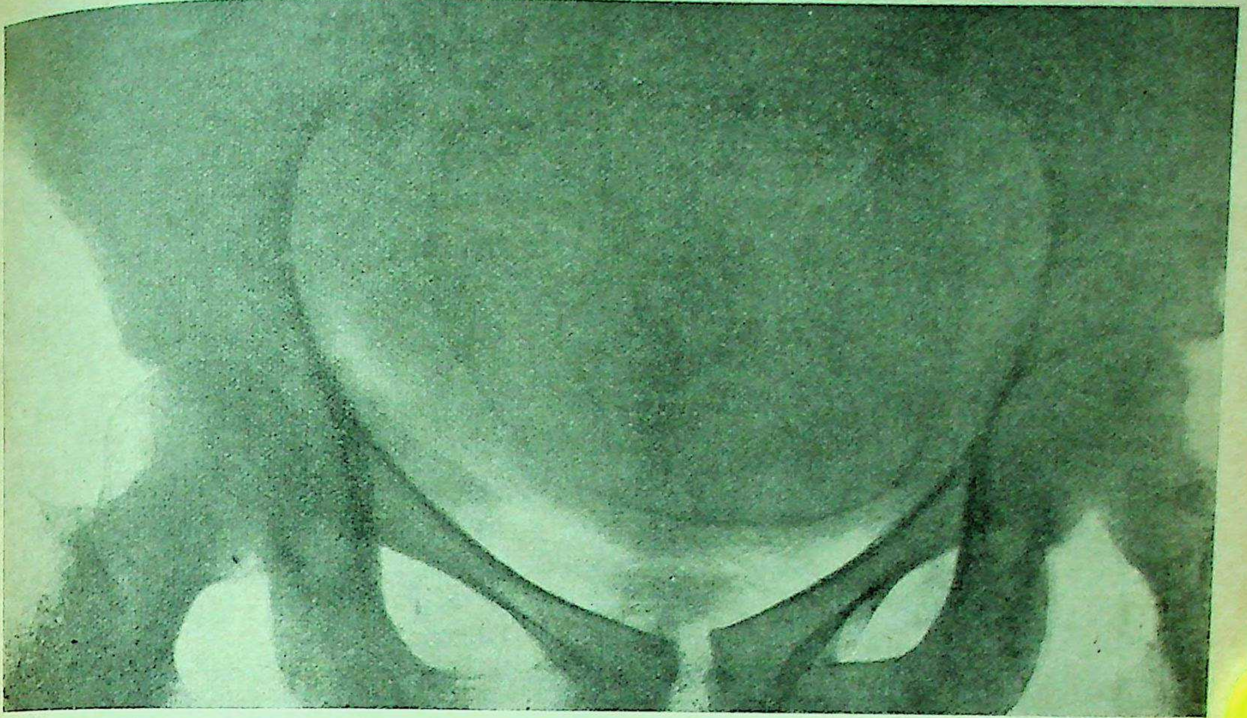
गर्भ-स्थिति का भ्रम किन-किन अवस्थाओं में हो सकता है इस पर विचार करने से पूर्व उचित होगा कि हम गर्भ-स्थिति के सामान्य लक्षणों पर पहिले विचार कर लें जिससे आसानी से उसे समझा जा सके।

गर्भस्थिति (Pregnancy)**के लक्षण**––"तस्य गर्भापत्ते द्वेहृदयस्य च विज्ञानार्थं लिङ्गानि समासेनोपदेक्ष्यामः—। आर्तवादर्शनमास्यसंस्रवणमनन्नाभिलाषश्छर्दिररोचकोऽम्लकामता च विशेषेण श्रद्धा प्रणयनं चोच्चा वचेषु भावेषु गुरुगात्रत्वं चक्षुषोर्ग्लानिः स्तनयोःस्तन्यमोष्ठयोः स्तनमण्डलयोऽश्च कार्ष्ण्यमत्यर्थः श्वयथुः पादयोरीपल्लोमराज्युद्गमो योन्याश्चारलत्वमिति गर्भे पर्यागते रूपाणि भवन्ति। च. शा."

अर्थात्–गर्भस्थिति के लक्षण हम संक्षेप में कहते हैं। जब गर्भ आ जाता है तो मासिक स्राव बन्द हो जाता है, लार आती है (अपच से), भोजन से रुचि जाती रहती है, वमन होता है, जी मिचलाता है, खट्टा खाने की इच्छा होती है, विशेषतः ऊटपटांग वस्तुओं की (जैसे ठीकरा, कोयला, मोमबत्ती आदि), शरीर भारी हो जाता है, आँखें मिचमिचाती हैं, स्तनों में दुग्धोत्पत्ति हो जाती है, होठों के किनारे तथा स्तनों के गोलचक्र (Ariola) अधिक काले पड़ जाते हैं, पैरों पर हलकी सूजन आ जाती है, रोंगटे खड़े होने लगते हैं तथा योनि चौड़ी और शिथिल हो जाती है।

देखा जाए तो उपर्युक्त लक्षणों में गर्भस्थिति के सभी सामान्य चिन्ह आ गए हैं जिन्हें गर्भिणी स्वयं अनुभव कर सकती है या एक सामान्य व्यक्ति देखकर बता सकता है। अब हम इन्हीं पर कुछ अधिक विस्तार से विचार करेंगे तथा नवीन उपायों पर प्रकाश डालेंगे जिनसे गर्भस्थिति के विषय में हम ठीक निर्णय पर पहुँचने में समर्थ हो सकें।

गर्भस्थिति या दौहृद के लक्षणों को हम दो समूहों में बांट सकते हैं, एक प्रारम्भिक और दूसरा स्पष्ट लक्षण (अथनार्याः सद्योगृहीत गर्भायाश्चलिङ्गं क्रमेण तु व्यक्त गर्भायाः। अष्टांग हृदय।)। प्रारम्भिक (सद्योगृहीत गर्भा के) लक्षणों से तो हम गर्भस्थिति का केवल अनुमान लगा सकते हैं परन्तु स्पष्ट लक्षणों (व्यक्तगर्भा के) से हम इसके बारे में निश्चित रूप से बता सकते हैं। वर्तमान वर्गीकरण में प्रारम्भिक लक्षणों को पुनः दो भागों में बांट दिया गया है। इस तरह से हम इन लक्षणों को ३ समूहों में रख सकते हैं, सन्देहकारक (Presumptive), सन्देह पोषक (Probable) और सुनिश्चित (Positive)।

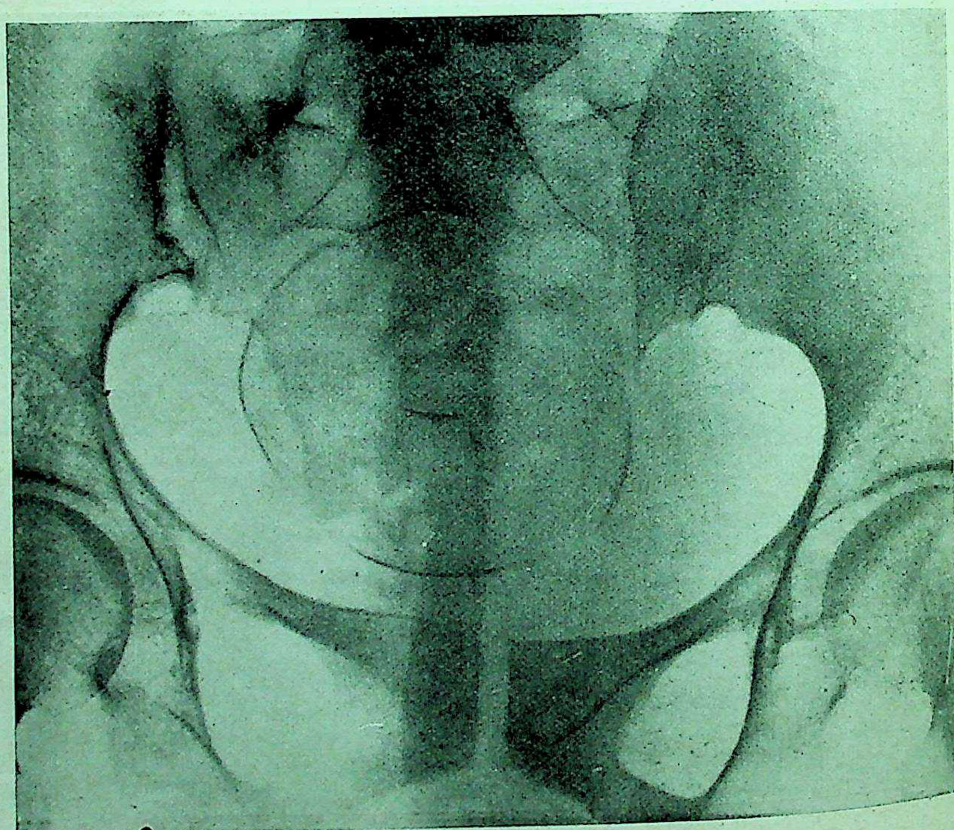


एक गर्भवती की श्रोणि-गुहा (Pelvic Cavity) का चित्र। ६ मास के एक भ्रूण के कपाल की छाया स्पष्ट देखी जा सकती है।



३० पौण्ड बोझ का बीजकोषजन्य जलार्बुद (Ovarian Cyst)

सीमित गर्भाशय मांसार्बुद (Myomata intramural)। गर्भाशय की दीवारों में बहुत से मांसार्बुद दिखाई दे रहे हैं।



एक गर्भवती के उदर का चित्र। ८ मास के एक भ्रूण की छाया उदर में स्पष्ट देखी जा सकती है। बच्चे का सिर श्रोणिगुहा (Pelvic Cavity) में और पैर ऊपर की ओर दिखाई दे रहे हैं।

द रहे हैं।

सन्देहकारक लक्षण (Presumptive Signs)

ये लक्षण समागम के २-३ दिन बाद से स्त्री को अनुभव होने प्रारम्भ हो जाते हैं, जैसे ग्लानि, प्यास, टांगों में पीड़ा आदि। (तत्र सद्योगृहीत गर्भाया लिङ्गानि श्रमो ग्लानिः पिपासा सक्थिसदनम्.... । सु. शा.।)

परन्तु वास्तविक सन्देहकारक चिन्ह बाद में प्रगट होते हैं। ये निम्न हैं—

(१) **मासिकधर्म का न होना** (Suppression of menstruation)—स्त्री को सब से पहिले इसी चिह्न से कुछ-कुछ विश्वास हो जाता है कि वह गर्भिणी हो गयी है। यदि स्त्री को मासिक धर्म नियमपूर्वक होते हों और समागम के बाद ये सहसा रुक जाएं तो स्वभावतः गर्भस्थिति का सन्देह होता है। (आर्तवादर्शनम् । च. शा.।) (शुक्र शोणितयोरवबन्धः स्फुरणं च योनेः। सु. शा.।) इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि मासिकधर्म अन्य भी कई कारणों से बन्द हो सकता है जैसे पाण्डु (Anaemia) या वृद्धावस्था का आगमन (Menopause)। स्त्रियों में मासिकधर्म बन्द होने की स्वाभाविक आयु ४० से ५० वर्ष तक मानी जाती है। परन्तु ऐसे भी उदाहरण विद्यमान हैं जिनमें ७७ वर्ष की आयु तक मासिकधर्म होता रहता है और ऐसी भी स्त्रियाँ हैं जिनमें २३ वर्ष की आयु में ही यह बन्द हो गया है। बहुत बार सन्तान की तीव्र इच्छा से तथा कई बार अवाञ्छनीय गर्भस्थिति न हो गई हो इस डर से भी, मासिकधर्म बन्द हो जाता है, जिनके विषय में हम आगे विचार करेंगे।

कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि गर्भस्थिति होने पर भी मासिक स्राव होता रहता है। विशेषतः प्रथम ३ मास में जब कि अभी गर्भ के छोटा होने से गर्भाशय-मुख ठीक प्रकार से इसके द्वारा बन्द नहीं होता। किन्तु यदि इस अवधि के बाद भी रक्त आ जाता है तो निश्चित रूप से वह गर्भ के लिए घातक है। कभी-कभी हजारों में एक ऐसी स्त्री भी मिल सकती है जिसमें जन्म से ही २ गर्भाशय हों, एक में गर्भस्थिति हो जाए और दूसरे से मासिक स्राव होता रहे।

साधारणतः ऐसा समझा जाता है कि स्त्री को यदि अभी मासिक धर्म होना प्रारम्भ न हुआ हो अर्थात् अभी वह किशोरी ही हो या वृद्धावस्था के कारण आर्तव बन्द हो चुका हो तो गर्भस्थिति नहीं होतीप; रन्तु ऐसे कई उदाहरण विद्यमान हैं जिनमें मासिक धर्म बन्द होने के १ वर्ष बाद भी गर्भस्थिति हो गई है या अभी मासिक धर्म होना प्रारम्भ नहीं हुआ और गर्भ आ गया है। ८ तथा ९ वर्ष की आयु में भी गर्भस्थिति होने की घटनाएँ मिलती हैं।

(२) **प्रातःकाल जी मिचलाना** (Morning sickness)—यह लक्षण प्रायः सभी स्त्रियों को होता है जो कि दूसरे मास से प्रारम्भ होकर चौथे मास तक रहता है। गर्भिणी प्रातःकाल उठकर जैसे ही मुंह-हाथ धोने लगती है उसका जी मिचलाने लगता है और कई बार वमन भी हो जाता है। अच्छी वस्तुओं की भी गन्ध मन को प्रिय नहीं लगती तथा मुंह में पानी भर-भर आता है (अकामतश्छर्दयति गन्धादुद्विजिते शुभात्। प्रसेकः सदनं चापि गर्भिण्या लिङ्ग मुच्यते। सु. शा.।) प्रायः यह अवस्था विशेष कष्टकर नहीं होती पर कइयों को बहुत तङ्ग करती है। कई बार जी मिचलाने के कारण खाना-पीना ठीक से न होने से रोगी की सी अवस्था हो जाती है और गर्भिणी बहुत निर्बल हो जाती है (क्षामता गरिमा कुक्षेर्मूर्च्छाछर्दिररोचकम् (अष्टांगहृदय।)।

(३) **स्तनों में परिवर्तन** (Changes in breasts)—स्तन बढ़ने लगते हैं, सख्त हो जाते हैं और चूचक के चारों ओर का मण्डल गहरे रंग का श्यामता लिए हुए दीखने लगता है (स्तन मण्डलयो कार्ष्ण्यम्। चरक। स्तनयो कृष्णमुखता। सुश्रुत। स्तनौ पीनौ श्वेतान्तौ कृष्णचूचकौ। वाग्भट्ट।) गर्भावस्था के अन्तिम दिनों में स्तनों में दूध भी पैदा हो जाता है (स्तनयो स्तन्यम्।—चरक।) जिसे हम उन्हें दबा कर निकाल सकते हैं। स्तनों में गर्भस्थिति से उत्पन्न यह मण्डल (ariola) का कालापन कुछ-न-कुछ सारी आयु बना रहता है।

(४) **उदर में परिवर्तन** (Changes in abdomen)—३ मास के बाद से उदर स्पष्टतः लगातार धीरे-धीरे बढ़ने लगता है। चौथे मास से हम गर्भाशय को आसानी से उदर में अनुभव कर सकते हैं। पेट के बढ़ने के अतिरिक्त पेट पर विशेष प्रकार की लकीरें पड़ जाती हैं जिन्हें कि क्विस (Striac gravidorum) कहते हैं। इसी प्रकार की लकीरें जांघों और स्तनों पर भी दिखाई देती हैं (उरुस्तनोदरे बलि विशेषाः रेखा कारास्तत्काले प्रायो ये जायन्ते ते किक्किस संज्ञाः। अरुणदत्त)। वास्तव में ये पेट के अत्यधिक बढ़ने के कारण त्वचा के तनने और ऊपरी त्वचा के नीचे के

लचकीले तन्तुओं के फटने से उत्पन्न होती है और गर्भावस्था के बाद भी हमेशा के लिए बनी रहती हैं।

(५) **गर्भस्पन्दन** (Qauickening)—यह बच्चे के हिलने-डुलने से उत्पन्न होती है और माता को ऐसा लगता है जैसे पेट में कोई फड़फड़ा रहा हो। यह साधारणतः ४½ मास बाद अनुभव होता है। (तस्मत्तदा प्रभृति गर्भः स्पन्दते। चरक-शा०)। इस समय तक क्योंकि गर्भाशय काफी बड़ा हो जाता है और उदर की सामने की दीवार से आ टिकता है, अतः उसमें होने वाली कोई भी गति उदर की दीवार द्वारा माता को अनुभव होती है।

(६) **मूत्राशय क्षोम्यता** (Irritability of the bladder)—गर्भावस्था के प्रारम्भिक दिनों में गर्भाशय के आगे झुकने से और गर्भावस्था के अन्तिम दिनों में गर्भस्थ शिशु के नीचे उतर आने से मूत्राशय पर दबाव पड़ने से इसकी उत्तेजना हो मूत्र बार-बार आता है।

(७) **विशेष इच्छाएं** (Various reflex nervous symptoms)—गर्भावस्था में विचित्र-विचित्र इच्छाएँ होती हैं। साधारणतः गर्भिणी अधिक खट्टा खाना पसन्द करती है पर कभी-कभी ऊटपटांग वस्तुओं की भी इच्छा करती है (अम्ल कामता च विशेषेण श्रद्धाप्रणयनं चोच्चावचेषु-भावेषु।—च. शा.)। ऐसा माना जाता है कि स्त्रियों की इन इच्छाओं को अवश्य पूरा करना चाहिए; नहीं तो बच्चे पर बुरा प्रभाव पड़ता है। (इन्द्रियार्थांस्तु यान्-यान् सा भोक्तुमिच्छति गर्भिणी। गर्भबाधाभयात्तांस्तान् भिषगाहृत्य दापयेत्। सु. शा.)। कहा जाता है कि मगध के महाराजा बिंबसार की पत्नी (अजातशत्रु की माता) जब गर्भवती हुई तो अपने स्वामी का रक्त पीने की बड़ी तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हुई। महाराजा ने इस इच्छा की पूर्ति के लिए उसे अपने कन्धे से रक्त निकाल कर पीने को दिया। इसी तरह से हम रघुवंश में दिलीप को गर्भवती सुदक्षिणा की दौर्हृद इच्छाओं को जानने के लिए प्रश्न करते देखते हैं (स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी। रघु० ३-५)। वास्तव में ये इच्छाएँ विकृत मनःस्थिति (psycho-neurosis) से उत्पन्न होती हैं।

सन्देहपोषक चिह्न (Probable signs)

ये लक्षण वास्तव में चिकित्सक के स्वयं अनुभव करने के होते हैं और वह जितना ही अधिक अनुभवी होगा उतना ही इसके सम्बन्ध में ठीक बता सकेगा। ये निम्न लिखित हैं—

(१) **गर्भाशय के आकार में परिवर्तन** (Changes in size of uterus)—गर्भस्थिति होने के बाद गर्भाशय का आकार नियमपूर्वक बढ़ता है। प्रारम्भिक सप्ताहों में यह कुछ नरम और लचकीला रहता है किन्तु बाद में तन जाता है। छठे से दसवें सप्ताह के बीच में यदि हम गर्भाशय को दोनों हाथों के बीच दबाकर (एक हाथ की अंगुलियों को पेट पर रखकर और दूसरे हाथ की २ अंगुलियों को योनि मार्ग के ऊपर के भाग में रखकर) अनुभव करने की कोशिश करें तो गर्भाशय और उसकी ग्रीवा (Cervix) के बीच का भाग नरम और आसानी से दब जाने वाला अनुभव होगा जिसे हेगर की पहिचान (Hegar's sign) कहते हैं। इसका कारण गर्भाशय के ऊपरी भाग में स्त्रीबीज (Ovum) की स्थिति है जिससे इसका निचलाभाग खाली होने से स्पञ्ज की तरह लचकीला अनुभव होता है।

(२) **रह-रह कर गर्भाशय में संकोच की लहरों का पैदा होना**—इसे हम चौथे मास से गर्भाशय के सामने पेट पर हाथ रखकर अनुभव कर सकते हैं। जैसे ही लहर आती है गर्भाशय संकुचित हो कर कड़ा पड़ जाता है। ये हर १०-१५ के मिनट बाद उठती हैं। कई बार रक्तार्बुद और मांसार्बुद (Haematoma & myomata of uterus) में भी इन प्रकार की लहरें उनके एक भाग में अनुभव की जा सकती हैं।

(३) **योनिधमन** (Vaginal pulsation)—यदि योनि में अंगुली प्रविष्ट करके अनुभव करने की कोशिश करें तो बढ़ी हुई गर्भाशय धमनियों के कारण अंगुलियों को धमन की अनुभूति होगी। दूसरे या तीसरे मास से हम इसे अनुभव कर सकते हैं। कई बार समीपस्थ शोथ आदि के कारण भी यह अनुभव होती है। आयुर्वेद-ग्रन्थों में आया, गर्भस्थिति के समय अनुभव होने वाला "योनिस्फुरण" शब्द (स्फुरणं च योनेः। सु. शा०) वास्तव में इसका द्योतक नहीं है क्योंकि वह माता के स्वयं अनुभव करने की वस्तु है।

(४) **योनि में परिवर्तन** (Changes in Vagina)—रक्ताधिक्य के कारण योनि की दीवारें नीली-सी दिखाई देती हैं; इसके अतिरिक्त यह शिथिल और चौड़ी-सी अनुभव होती है (योन्याश्चाटलत्वम्। च. शा.)।

(५) **कन्दुकक्षेप अनुभूति** (Bollottement)—इसे अनुभव करने की २ विधियाँ हैं—एक अन्तः और दूसरी बाह्य (Internal & external bollottement)।

अन्तः में मल-मूत्र आदि से निवृत्त होने के बाद स्त्री को पीठ के बल इस तरह लिटा देते हैं जिससे कि उसका सिर और कन्धा तकिए के सहारे तनिक-सा ऊपर उठे रहें। इसके बाद दो अंगुलियों को योनि में प्रविष्ट कर गर्भाशय ग्रीवा (Cervix) के ऊपर के भाग में सामने की तरफ रखते हैं और दूसरा हाथ पेट के ऊपर से गर्भाशय पर रखते हैं। तदनन्तर स्त्री को एक गहरा सांस लेकर उसे रोकने को कहते हैं और अन्दर प्रविष्ट की हुई अंगुली से, जिस पर गर्भस्थ शिशु का सिर टिका मालूम देता है, सहसा गर्भाशय को ऊपर को झटका देते हैं जिससे बच्चा गर्भाशय में ऊपर उठकर पेट पर कस कर रखे हाथ से टकराता अनुभव होता है और कुछ देर बाद फिर निचली अंगुलियों पर आ टिकता है।

बाह्य विधि में, रोगी का पार्श्व के बल लिटा कर हाथों को गर्भाशय के दोनों ओर रखकर उसी प्रकार झटका देते हैं जिससे गर्भाशयजल (Liquor amnii) में तैरता हुआ बच्चा गेंद की तरह कूद कर हाथ से टकराता अनुभव होता है। ये परीक्षण हम चौथे से ७ वें मास तक ही कर सकते हैं।

(६) **गर्भाशय फूत्कार** (Uterine Souffle)—गर्भस्थिति के चौथे मास से यदि हम गर्भाशय के निचले भाग में पार्श्व पर स्टैथोस्कोप रख कर सुनें तो माता की नाड़ी के धमन के साथ-साथ फूत्कार की-सी आवाज सुनाई देगी। इसका कारण गर्भाशय की दीवार में स्थित धमनियों की अभिवृद्धि है जो कि गर्भावस्था के समय गर्भाशय के पोषण के लिए हो जाती है। अनुगर्भाशयाधमनी (Uterine artery) की शाखाओं से, जो कि तंग होती हैं, रक्त जब गर्भाशय की दीवार की बड़ी-बड़ी रक्तवाहिनियों में आता है तो यह विशेष प्रकार का शब्द उत्पन्न होता है। गर्भाशय के बड़े अर्बुदों में भी इस प्रकार की आवाज सुनी जा सकती है।

(७) **गर्भस्थिति सूचक परीक्षण** (Pregnancy Test)—१९२८ में ऐशहिम और जोण्डक ने प्रसूतावस्था की निश्चित सूचना देनेवाली एक विशेष परीक्षाविधि (Aschheim-Zondek test) निकाली। इसके लिए प्रसूता के प्रातःकाल के मूत्र को लेकर उसमें १ बूंद Xylol या Toluol मिला दें और ३ सप्ताह से कम आयु की चूही में इसे थोड़ा-सा त्वचा के नीचे सूचिवेध द्वारा दें। ३ दिन तक ये इंजेक्शन दें। इंजेक्शन देने के ५ वें दिन यदि हम इस चूही के गर्भाशय और बीजकोश (Ovaries) को निकाल कर देखें तो उनमें हमें पर्याप्त परिवर्तन मिलेगा। गर्भाशय शृंग (Uterine horns) खूब मोटे दिखाई देगें और बीज कोषों में रक्तस्राव के निशान मिलेंगें जो कि अपरिपक्व बीज पुटों (Graafian follicles) के परिवक्व होकर फूटने से उत्पन्न होते हैं और बीजपुट किण (Corpus lutium) के बनने के सूचक हैं। ऐसा माना जाता है कि गर्भ-स्थिति होने पर भ्रूण के आवरण की कोंपलों (Chorionic vili) से एक प्रकार का स्राव उत्पन्न होता है जो कि स्त्री के उत्पादक अंगों का वृद्धिकारक है और मूत्र द्वारा बराबर बाहर निकलता रहता है। यदि इस प्रकार मूत्र का इंजेक्शन देने से चूही के उत्पादक अंगों में कोई परिवर्तन न हो तो परीक्षा नकारात्मक (Negative) समझी जाती है। गर्भस्थिति के १५ वें दिन यह परीक्षा की जा सकती है। यदि परीक्षा जल्दी अभिप्रेत है तो चूही के स्थान पर मादा खरगोश ली जाती है और उसके कान के किनारों के समीप इंजेक्शन दिया जाता है; जिसे हम फ्रीडमैन (Friedman) परीक्षा-विधि (Test) कहते हैं। इसमें ४८ घण्टे में ही उपर्युक्त परिवर्तन इस प्राणी के उत्पादक अंगों में देखे जा सकते हैं। इन प्राणियों के स्थान पर यदि हम एक विशेष प्रकार के मेंढक (Xenopus Toad) में प्रसूता के मूत्र का त्वचा के नीचे इंजेक्शन दें तो आठ घण्टे बाद ही इसका परीक्षण दृष्टिगोचर होने लगेगा। यदि स्त्री गर्भवती है तो प्राणी अण्डे उत्पन्न करने लगेगा। उपर्युक्त परीक्षा विधियाँ ९८॥ प्रति-शत ठीक परिणाम देती हैं।

सुनिश्चित चिह्न (Positive signs)

ये चिह्न ४ हैं—(१) बच्चे के हृदय के शब्द का सुनाई देना (२) शिशु की गति का अनुभव होना (३) शिशु के अंगों का छूकर अनुभव करना और (४) शिशु का एक्सरे में आना।

(१) **बच्चे के हृदय के शब्द का सुनाई देना**—गर्भ-स्थिति की यह सब से महत्त्वपूर्ण निश्चयात्मक परीक्षा है

जो न केवल गर्भस्थिति को अपितु बच्चे की दशा को भी सूचित करती है। इसे हम गर्भस्थिति के ५ वें मास से सुन सकते हैं, जो कि तकिए के नीचे रक्खी हुई घड़ी की टिक-टिक की तरह सुनाई देता है। यह शब्द १ मिनट में १२० से १४० बार तक होता है। लड़कों में साधारणतः १३० से नीचे और गर्भस्थ शिशु के लड़की होने पर इससे अधिक। यदि यह शब्द १०० से नीचे और १६० से ऊपर हो तो बच्चे का जीवन खतरे में समझना चाहिए। ७ मास से ऊपर यह हर अवस्था में सुनाई पड़ना चाहिए किन्तु ऐसी भी घटनाएँ ज्ञात हैं जिनमें गर्भावस्था के साथ जलोदर होने के कारण इसे सुना नहीं जा सका।

शब्द सुनने के लिये प्रारम्भ में सब से अच्छा स्थान भग सन्धि ऊपर मध्य रेखा का है परन्तु बाद में गर्भस्थिति के अनुसार यह स्थान बदल जाता है। यदि हम माता के उदर के उन्नत भाग को एक खड़ी और एक पड़ी रेखा द्वारा समान ४ भागों में बांट दें तो चारों भागों में से किसी एक के मध्य में हम इस शब्द को सुन सकते हैं। साधारणतः नाभी को ऊर्ध्वतन पुरः कूट (Anterior superior iliac spine) से मिलाने वाली रेखा के बीच में इसे सुनना चाहिए, चाहे दाईं ओर और चाहे बाईं ओर।

शब्द सुनते समय कई बार माता के हृदय के शब्द से इसका भ्रम हो जाता है, पर माता के हृदय का शब्द प्रति-मिनट ७२ के लगभग होगा जब कि बच्चे का १२० के लगभग। कई बार बच्चे के हृदय के शब्द के साथ हलकी फूत्कार की-सी आवाज़ (Funic souffle) आती है जो कि नाभिनाल के दब जाने या मुड़ने से, तङ्ग रास्ते में से रक्त के प्रवाहित होने के कारण, उत्पन्न होती है। इसका होना बच्चे के लिए शुभ नहीं।

(२) **गर्भस्थ शिशु के अङ्गों की अनुभूति**—हाथ को हलका-सा गरम करके, बिना हड़बड़ी के, सहज भाव से बच्चे को दोनों हाथों से अनुभव करने की कोशिश करें। ठण्डा हाथ लगने से माता के पेट की मांसपेशियाँ सहसा संकुचित हो कर कड़ी हो जाती हैं जिससे बच्चे को अनुभव करना कठिन हो जाता है। पेट पर सहसा हाथ लगाने से भी ऐसा हो सकता है। अतः रोगी की पूर्ण सहमति और जानकारी में ऐसा करें। कई बार गर्भाशय अर्बुद भी बच्चे के अङ्गों का भ्रम पैदा कर सकता है।

(३) **गर्भस्थ शिशु की गति**—प्रारम्भ में ये केवल माता को ही अनुभव होती हैं पर बाद में पेट पर हाथ रखकर श्रवणयन्त्र (Stethescope) की सहायता से अनुभव की जा सकती है।

(४) **एक्सरे द्वारा निदान**—१५ वें १६ वें सप्ताह से एक्सरे द्वारा बच्चे की हड्डियों की छाया आने लगती है पर अधिक चर्बी वाली स्त्रियों में २० सप्ताह से पूर्व इसका आना कठिन है। २४ वें सप्ताह या ६ ठे महीने से हम इसका फोटो खूब अच्छी तरह ले सकते हैं।

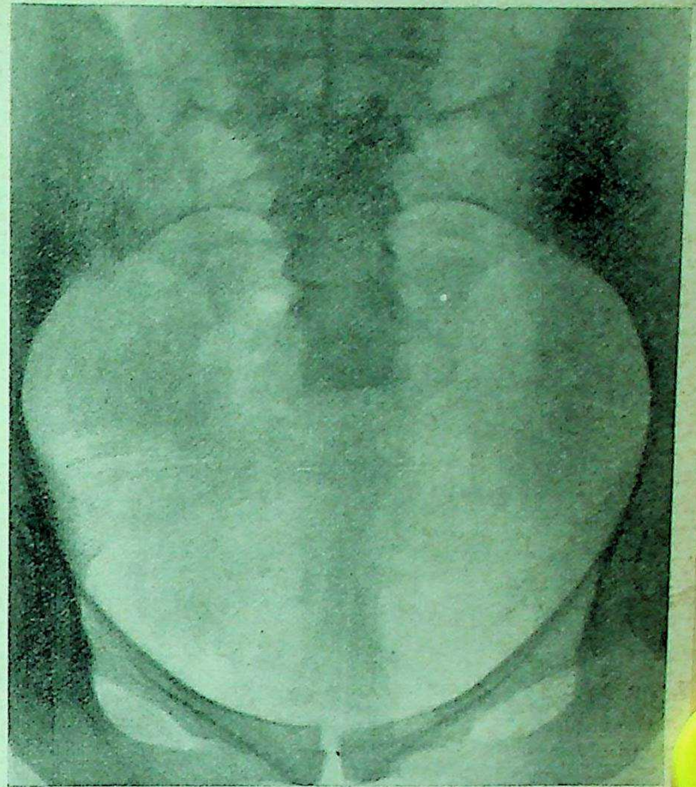
गर्भ-स्थितिभ्रामक अवस्थाएँ

निम्न अवस्थाएँ यह भ्रम उत्पन्न कर सकती हैं—

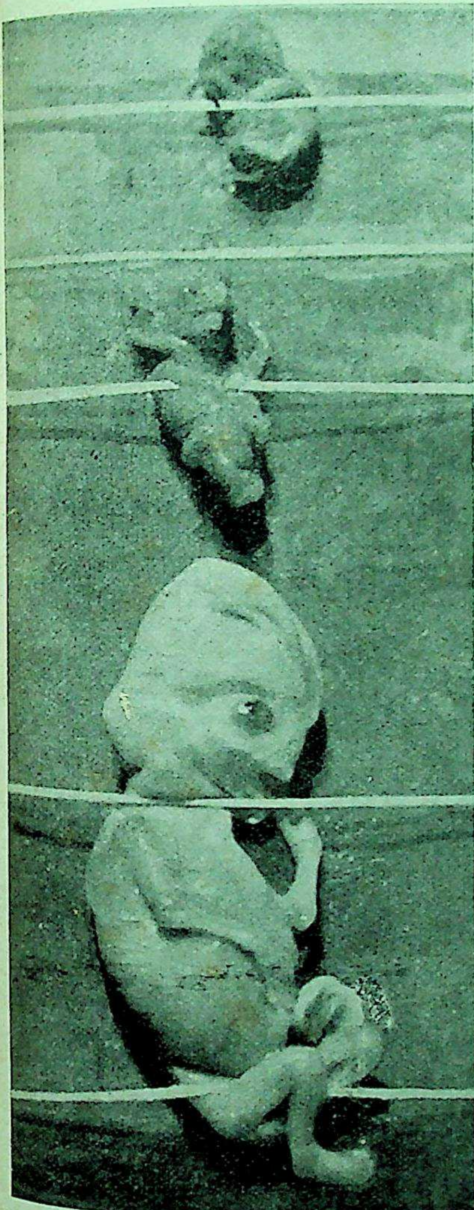
(१) झूठी गर्भस्थिति (Spurious pregnancy)
(२) नष्टार्तव (Amenorrhoea)
(३) वृद्धावस्थाजन्य नष्टार्तव (Menopause)
(४) गर्भाशय मांसार्बुद (Myomata)
(५) बीज कोशजन्य जलार्बुद (Ovarian cyst)
(६) रक्तार्बुद (Haematometra or haemato colpos)
(७) जलोदर (Ascites)
(८) अधिक वसायुक्त उदर (Obese abdomen)
(९) जलग्रन्थि समूह (Hydatidiform mole)

(१) **झूठी गर्भस्थिति** (Spurious-pregnancy or pseudo cyesis)—यह अवस्था तब उत्पन्न होती है जब बच्चे की अत्यधिक चाह हो पर बच्चा अभी तक कोई न हुआ हो। प्रायः बड़ी आयु की स्त्रियों में बहुत दिनों तक बच्चा न होने पर और आर्तव बन्द होने की आयु समीप आते जान कर कई बार अचानक यह भ्रम होने लगता है कि पेट में बच्चा आ गया। ऐसे समय मासिकधर्म सहसा रुक जाता है। प्रातःकाल जी मिचलाता मालूम होता है, पेट बढ़ता-सा लगता है और स्तन बड़े और सख्त होने लगते हैं। बहुत-से चिह्न-जिन्हें स्त्री गर्भवती के लक्षण समझ कर ध्यान में बैठाए रहती हैं, अनुभव होने लगते हैं। आंतों में वायु से उत्पन्न होनेवाली गति को वह बच्चे का हाथ-पैर मारना (Quickening) समझने लगती है।

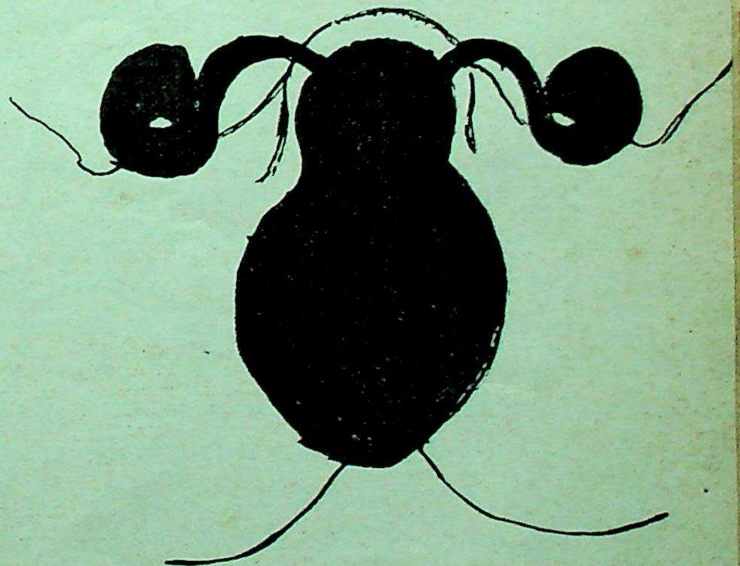
पेट में बच्चा है कि नहीं यह जानने के लिए साधारणतः जो स्त्रियां ऐक्सरे के लिए आती हैं उनमें से अधिकांश इसी भ्रम से पीड़ित होती हैं। बहुत से केस जो कि इस श्रेणी म



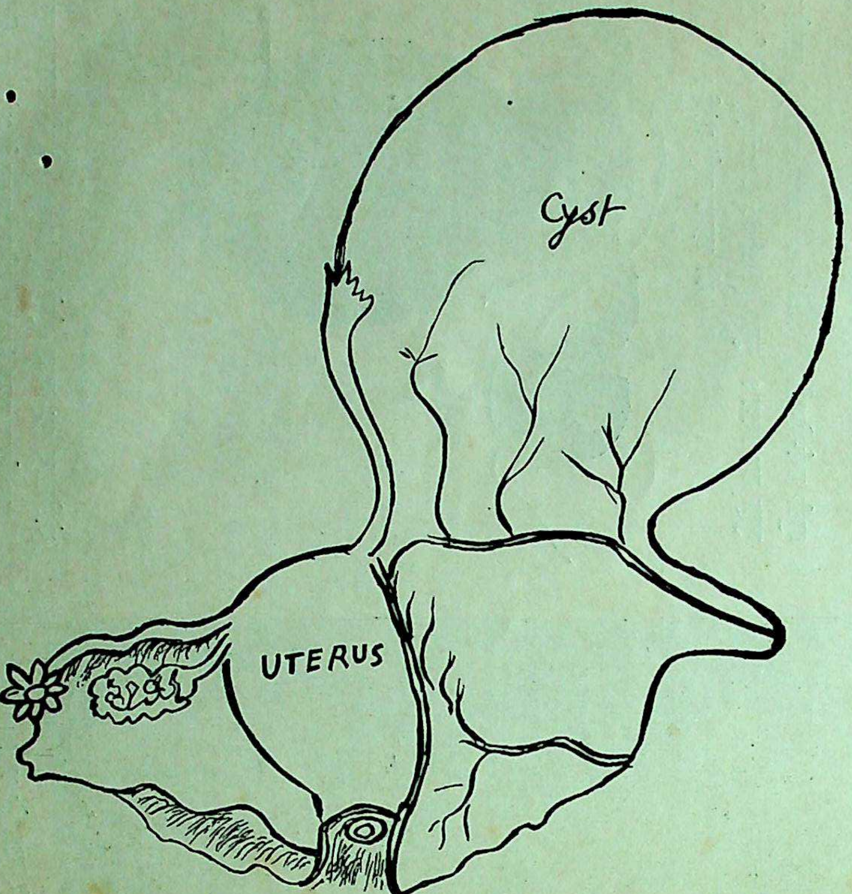
झूठी गर्भ-स्थिति (Spurious pregnancy) वाली स्त्री की श्रोणि-गुहा का चित्र। गुहा (Pelvic Cavity) में किसी प्रकार की गर्भ की छाया नहीं आई।



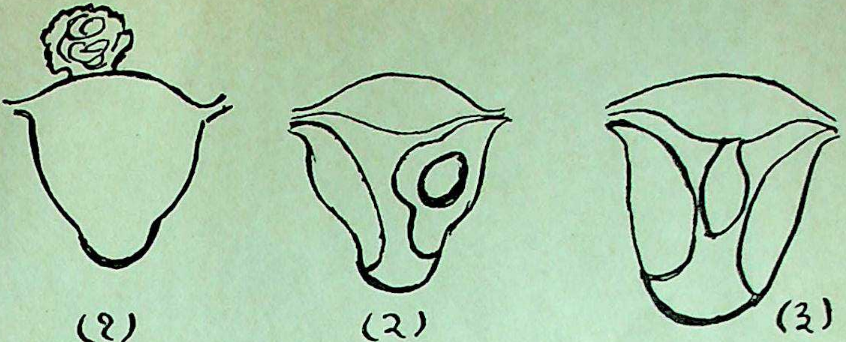
२, ३ तथा ५ मास के भ्रूण।

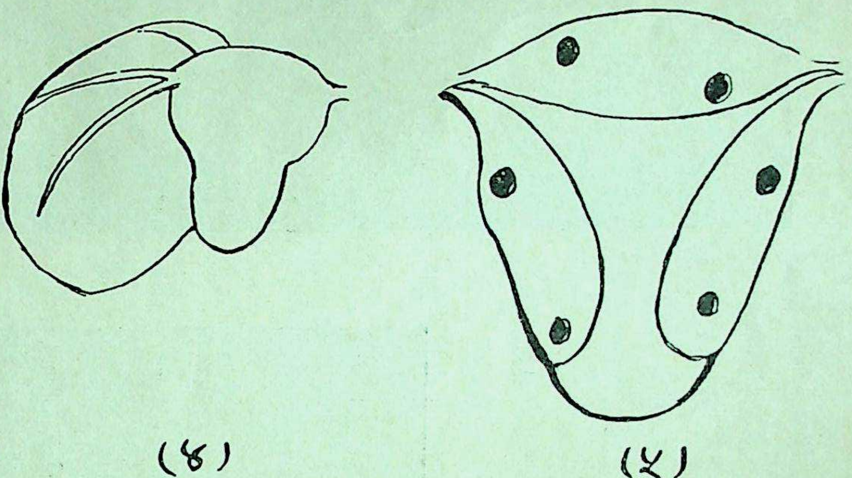


योनिद्वार के बन्द होने (Atresia) से उत्पन्न रक्तार्बुद। योनि, गर्भाशय तथा बीजवाहिनियाँ रक्त से भरे हुए दिखाई दे रहे हैं।



बाँई ओर के बीज़कोष (ovary) से उत्पन्न हुआ एक बड़ा बीजकोष जलार्बुद (Ovarian Cyst)। दाईं ओर का बीजकोष और बीज-वाहिनी (Fallopian Tube) स्वाभाविक अवस्था में दिखाई देते हैं।





गर्भाशय मांसार्बुद (Myomata) के विभिन्न रूप।

(१) कलाधःस्थित (Sub serous)

(२) सीमित (Intra mural)

(३) श्लैष्मिक कलाधःस्थित (Sub mucous)

(४) पक्षबन्धिनी मांसार्बुद (*Broad Ligament myoma*)

(५) गर्भाशय की मांसपेशी में अर्बुद उत्पन्न होने के *विभिन्न स्थान*।

नहीं आते, ऐसे भी मिलेंगे जिन्हें स्वयं पता होता है कि वे गर्भवती नहीं हैं पर बहुत दिनों तक सन्तान न होने के कारण जब पति की विमुखता देखती हैं तो झूठमूठ कहने लगती हैं कि उन्हें गर्भस्थिति है। बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करते-करते जब पति तङ्ग हो जाता है तो परीक्षा के लिए उन्हें एक्सरे के निमित्त ले आता है। कुछ स्त्रियां ऐसी भी मिलती हैं जो कि व्यभिचार के कारण गर्भस्थिति से डरती हैं और अत्यधिक डर के कारण कई बार उन्हें ऐसा लगता है कि गर्भस्थिति हो गई है और सब चिन्ह गर्भावस्था के अनुभव होने लगते हैं जैसे मासिकधर्म बन्द होना, पेट बढ़ना तथा स्तनों में भारीपन तथा जी मिचलाना। उपर्युक्त स्त्रियों की यदि ठीक तरह परीक्षा की जाए तो निदान कठिन नहीं। ऐसे समय क्लोरोफार्म सुंघाकर बेहोश कर लें और फिर परीक्षा करें। इससे गैस आदि से तना हुआ पेट पिचक जाता है और वास्तविक स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

(२) **नष्टार्तव** (Amenorrhoea)—रक्ताल्पता (Anaemia) में कमजोरी के कारण मासिक-धर्म बन्द हो जाता है। इसी प्रकार भय या अत्यधिक सन्तान की इच्छा से भी यह बंद हो सकता है। ऐसी अवस्था में गर्भाशय के आकार में वृद्धि आदि लक्षण नहीं होंगे तथा हैगर का चिह्न (Hegar's sign) लुप्त होगा।

(३) **वृद्धावस्थाजन्य नष्टार्तव** (Menopause)—वृद्धावस्था समीप आने पर ४५ से ५० वर्ष की आयु में कई बार सहसा रक्तस्राव बन्द हो जाता है तथा पेट पर चर्बी अधिक बढ़ जाने से, जो कि इस आयु में कइयों में स्वभावतः बढ़ जाती है, गर्भस्थिति का भ्रम होने लगता है। परीक्षा करने पर गर्भाशय की वृद्धि नहीं मिलेगी।

(४) **गर्भाशय मांसार्बुद** (Myomata)—यह प्रायः ४० से ५० वर्ष की आयु में पाया जाता है और २० वर्ष से कम आयु में बहुत कम होता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि ३५ वर्ष से ऊपर की आयु में लगभग १५ प्रतिशत स्त्रियों को यह अर्बुद हो जाता है।

ये अर्बुद छोटी-छोटी गोलियों से लेकर ७० सेर तक के पाए गए हैं। ये गोलाकृति होते हैं और योजकधातु (Connective Tissue) के आवरण में लिपटे रहते हैं जिससे कि आपरेशन के समय इन्हें निकालने में आसानी रहती है। कई बार ये ४०-५० की संख्या में पाए जाते हैं। सारे अर्बुद गर्भाशय की मांसपेशी में उत्पन्न होते हैं। यदि यह इसी में रहता हुआ चारों ओर फैले तो सीमित (Intramural), उदर्यामहाकला कोष (Paritoneal Cavity) की तरफ बढ़े तो कलाधःस्थित (Sub serous or Sub peritoneal), पक्ष बन्धिनी की ओर जाए तो पक्ष बन्धिनी मांसार्बुद (Broad ligament-myoma) और यदि यह गर्भाशय गुहा की ओर बढ़े और गर्भाशय की आन्तरिक कला (Endometriam) के नीचे स्थित हो तो श्लैष्मिक कलाधः स्थित (Submucous) कहलाएगा। इन में से सीमित ७३%, श्लैष्मिक कलाधः स्थित १६·६% और औदर्याकलाधः स्थित १०·४% होते हैं।

यह प्रायः बांझ स्त्रियों को या जिन्हें १-२ बच्चों से अधिक बच्चे न हों उन्हें होता है। प्रोजेस्टरोन या टैस्टोस्टीरोन, (Progesterone and Testosterone) जो कि उत्पादक अंगों से सम्बन्धित रस है, का इंजेक्शन देने से इनकी वृद्धि रुक जाती है। इससे पता चलता है कि ये स्त्री के उत्पादक अंगों से सम्बन्धित रसों के स्राव में गड़बड़ी होने से उत्पन्न होती है।

नया अर्बुद तो कुछ लचकीला होता है पर कड़ा होने पर यह काचवत् क्षीणता (Hyaline degeneration) के कारण कड़ा पड़ जाता है। पुराना होने पर इनके बीच के भाग में विशेष प्रकार के परिवर्तन होने लगते हैं और कई बार तो स्वच्छ द्रव सा वहाँ पैदा हो जाता है (Cystic degeneration)। बड़ी आयु के अर्बुद में उसके बाहर के भाग में खट लवणों का प्रक्षेप होने से एक विशेष कड़ापन वहां उत्पन्न हो जाता है (Calcareous degeneration) जिसे हम एक्सरे में देख सकते हैं। अर्बुद के रहते हुए ही यदि गर्भ-स्थिति हो जाय तो अर्बुद के भीतरी भाग में विचित्र प्रकार का परिवर्तन हो जाता है जिसे हम आरक्तक्षीणता (Red degeneration) कहते हैं। यह इसकी शिराओं में अवरोध (Thrombosis) के कारण उत्पन्न होता है। कई बार इसमें घातक अर्बुद जैसे परिवर्तन होने लगते हैं (Sarcomatous degeneration) जिससे अर्बुद शीघ्रता से बढ़ेगा, रक्तस्राव के लक्षण होंगे और रोगी शीघ्र ही क्षीण हो जाएगा। कभी-कभी अर्बुद का निचला भाग बल खा जाता हैं जिससे रुकावट होने से इसकी शिराएं रक्त से भर जाती है और सहसा तीव्र पेट दर्द होता है। इसके लिए तत्काल आपरेशन करना चाहिए। कई बार अर्बुद के

ऊपर का आवरण फट जाने से यह औदर्य्याकला गुहा (Paritoneal Cavity) में आ गिरता है या पक्ष बन्धिनी (Broad ligament) में स्थित होता है। कभी-कभी इसके आवरण की शिराओं के सहसा फट जाने से आन्तरिक रक्तस्राव के लक्षण होने लगते हैं।

लक्षण—अर्बुद के लक्षण उसके स्थान के अनुसार हुआ करते हैं। सामान्यतः ये निम्न प्रकार हैं—

(१) मासिक रक्तस्राव का समय तथा मात्रा दोनों बढ़ जाते हैं। प्रायः यह दस-दस दिन तक होता रहता है। यह अवस्था मुख्यतः श्लैष्मिक कलाधःस्थि (Submucous) अर्बुदों में होती है। इससे धीरे-धीरे पाण्डु (Anaemia) की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

(२) अर्बुद के कारण समीपस्थ रचनाओं पर दबाव (pressure) के लक्षण होते हैं। मूत्राशय पर दबाव पड़ने से मूत्र बार-बार आता है। गुदा पर दबाव पड़ने से मलबन्ध हो जाता है। अर्बुद के बहुत बढ़ने पर मूत्र की रुकावट होने लगती है और तब शल्य-क्रिया का सहारा लेना ही पड़ता है। ये लक्षण प्रायः औदर्य्यकलाधः स्थित (Sub Serous) अर्बुदों के कारण होते हैं।

(३) दर्द की अनुभूति होती रहती है, विशेषतः गर्भावस्था में अर्बुद में आरक्त क्षीणता (Red degeneration) होने पर।

(४) संक्रमण होने पर बदबूदार स्राव भी होता है।

(५) बांझपन हो जाता है क्योंकि गर्भाशय गर्भस्थिति के योग्य नहीं रहता।

(६) उदर-वृद्धि के लक्षण दीखने लगते हैं। शनैः-शनैः पेट बढ़ने से स्वभावतः इस ओर ध्यान आकर्षित हो जाता है और गर्भस्थिति का भ्रम होने लगता है। छूने पर कोई गोल कड़ी वस्तु गर्भाशय के स्थान पर अनुभव होती है।

मांसार्बुद तथा गर्भस्थिति के सामान्य लक्षण—(१) दोनों ही धीरे-धीरे बढ़ते हैं जिससे पेट के फूलने से आसानी से एक दूसरे में भेद करना कठिन हो जाता है।

(२) दोनों का स्थान एक ही होने से अनुभव (Palpation) द्वारा भी भेद करना कठिन हो जाता है।

(३) एक बड़ी आकृति के गर्भाशय अर्बुद में गर्भयुक्त गर्भाशय की तरह फूत्कारध्वनि (Uterine Souffle) सुनी जा सकती है।

(४) अर्बुद के दबाव से शिराओं में रुकावट होने से गर्भावस्था की तरह ही योनि की दीवार का रंग नीला-सा हो जाता है।

(५) कई बार अर्बुद के कारण स्तनों में भी वैसे परिवर्तन होने लगते हैं जैसे परिवर्तन हम गर्भस्थिति के समय देखते हैं। वे बड़े हो जाते हैं और यहाँ तक कि दबाकर उनसे स्राव भी निकाला जा सकता है।

गर्भस्थिति तथा मांसार्बुद के भेदक लक्षण—(१) गर्भस्थिति में मासिक धर्म रुक जाता है, जब कि साधारणतः इनमें मासिक स्राव होता रहता है और कई बार तो बहुत अधिक और काफी दिन तक।

(२) बड़ा मांसार्बुद अनियमित आकृति का होता है जब कि गर्भयुक्त गर्भाशय गोल, एक जैसा अनुभव होता है।

(३) यदि एक हाथ पेट पर रखकर और दूसरे हाथ की २ अंगुलियां योनि में प्रविष्ट कर गर्भाशय को अनुभव करने की कोशिश करें तो मांसार्बुद होने पर गर्भाशय और उसकी ग्रीवा के बीच का भाग स्पञ्ज जैसा अनुभव नहीं होगा (Hegar's sign negative) तथा अर्बुद गर्भाशय से अलग अनुभव होगा।

(४) भ्रूण (Foetus) के हृदय के शब्द मांसार्बुद में नहीं सुने जा सकते।

(५) गर्भद्योतक परीक्षा (Pregnancy test) नकारात्मक होगी।

(६) मांसार्बुद में स्तनों के बढ़ने पर भी स्तनमण्डल (areola) नहीं बढ़ेगा और काला भी नहीं पड़ेगा, जैसा कि गर्भस्थिति के समय होता है। स्तन मींचने पर यद्यपि मांसार्बुद में भी हम थोड़ा-सा स्राव इनसे निकाल सकते हैं पर वास्तविक दुग्धोत्पत्ति इनमें नहीं मिलेगी।

(५) बीजकोष जलार्बुद (Ovarian cyst)

बीज कोष (Ovary) से सम्बन्धित कई प्रकार के अर्बुद पाए जाते हैं जोकि सामान्य अर्बुद से लेकर घातक अर्बुद तक होते हैं। यहाँ हम इसके केवल एक ही अर्बुद का वर्णन करेंगे जिससे गर्भस्थिति का भ्रम हो सकता है, इसे हम कृत्रिम श्लेष्मोत्पादक ग्रन्थि जलार्बुद (Cyst adenoma pseudo mucinogen) कहते हैं। बीज कोष से सम्बन्धित अर्बुदों में में सब से अधिक यही पाया जाता है। इसके अन्दर एक पतला स्राव भरा रहता है जो कि साधारण

श्लेष्मा (Mucous) से मिलता-जुलता होता है और वास्तव में उस का ही परिवर्तित रूप है। साधारणतः जो अर्बुद आपरेशन से निकाले जाते हैं वे १२ इञ्च व्यास के होते हैं, वैसे २०० पौण्ड तक के जलार्बुद निकाले जा चुके हैं।

यह ३० से ६० वर्ष की आयु में अधिक मिलता है और बांझ स्त्रियों में अधिक होता है। शनैः-शनैः पेट बढ़ने और हलकी खिंचावट भरा दर्द के अतिरिक्त कोई विशेष लक्षण नहीं होते। मुख्य उपद्रव इसका मुड़ जाना है (Torsion or axialrotation) जिसमें अचानक ही तीव्र दर्द होकर रोगी को ठण्डे पसीने आने लगते हैं और दिल घुटने लगता है। जी मिचलाता है और वमन होता है। बाद में तापमान बढ़ जाता और पेट तन जाता है।

गर्भोत्पत्ति से मिलते-जुलते लक्षण--(१) पेट ठीक उसी तरह बढ़ा हुआ दीखता है जैसे गर्भवती का होता है।

(२) इसके दबाव के कारण मूत्राशय के उत्तेजित होने से बार-बार मूत्र आने और बाद में मूत्रत्याग में कठिनता के लक्षण उसी प्रकार के होते हैं जैसे गर्भावस्था के प्रारम्भिक-दिनों और बाद के दिनों में होते हैं।

(३) पैरों में कई बार थोड़ी बहुत शोथ (श्वयथुःपादयोः च. शा.) और रक्ताल्पता भी वैसी ही हो जाती है जैसी गर्भिणी को होती है।

(४) पेट में क्रमशः बृद्धि के लक्षण गर्भस्थिति के तुल्य ही होते हैं।

भेदक चिह्न--(१) गहरा साँस लेने पर प्रायः उदर की त्वचा अर्बुद पर फिसलती-सी मालूम देती है। गर्भवती में ऐसा नहीं होता।

(२) जलार्बुद में मासिकधर्म सहसा बन्द नहीं होता।

(३) ठीक तरह से परीक्षा करने पर जलार्बुद के उदर में एक ओर से उठने का इतिवृत्त होगा जब कि गर्भ-स्थिति में यह बीचो-बीच उठता है।

(४) टकोरने से (Percussion) से अर्बुद में द्रव की लहर उत्पन्न की जा सकती हैं।

(५) स्टैथस्कोप से सुनने पर गर्भस्थ शिशु के हृदय की आवाज़ जलार्बुद में सुनाई नहीं देती।

(६) अर्बुद में गर्भद्योतक परीक्षा (Pregnancy Test) नकारात्मक होगी।

(७) ऐक्सरे से परीक्षा करने पर जलार्बुद में शिशु के चिह्न नहीं मिलेंगे। इस प्रकरण में यह स्मरण रखना चाहिए कि कई बार मांसार्बुद और जलार्बुद के साथ ही साथ गर्भ-स्थिति होने से बड़ी परेशानी हो जाती है और जब तक इसके लिए बड़े ध्यान से परीक्षा न की जाए इस अवस्था का पता चलना कठिन हो जाता है। रोग का इतिहास विशेष सहायक होगा।

(६) रक्तार्बुद (Haematometra of Haematocolpos)

गर्भाशय या योनि के रक्तार्बुद स्त्री उत्पादक अङ्गों के अपूर्ण निर्माण के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। गर्भ के निर्माण के समय जिन मुल्लेरिअन प्रणालियों (Mullerian ducts) से गर्भाशय, गर्भाशय-ग्रीवा तथा योनि का निर्माण होता है, वे इसमें न्यूनाधिक छिद्रित होने से रह जाती हैं (Atresia)। योनि रक्तार्बुद में (Haematocolpos) में अपत्य मार्ग यद्यपि ठीक होता है पर सतीच्छद में स्वाभाविक छिद्र न होने से जब लड़की को मासिकधर्म होने लगता है तो उसे बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिलता। परिणामतः रक्त धीरे-धीरे योनि में इकट्ठा होने लगता है और एक अर्बुद का-सा रूप धारण कर लेता है। लड़की को देर तक मासिक स्राव न होने तथा इस अर्बुद के कारण मूत्रत्याग में कठिनता होने से इस ओर ध्यान जाता है। कई बार बड़ी आयु में योनिव्रणों के ठीक हो जाने पर सौत्रिक तन्तुओं (Fibrous tissue) के निर्माण के कारण भी अपत्य-पथ बन्द हो जाता है और मासिकस्राव न होने से गर्भवती के-से लक्षण होने लगते हैं (न स्पन्दते नोदर मेति बृद्धि, भवन्ति लिङ्गानि च गर्भिणीनाम्। सु. ३.।) परन्तु इस में स्पन्दन आदि के लक्षण नहीं होते और न पेट ही वैसा बढ़ता है। प्रसूतिकाल (Period of lactation) बीतने पर, जिससे किसी तरह का सन्देह न रह जाए (इस अवस्था में साधारणतः वैसे भी मासिकधर्म नहीं होता) इसकी चिकित्सा करें। (तं गर्भ कालातिगमें चिकित्स्य यसृग्भवं गुल्म मुशंति तज्ज्ञाः। सु. ३.।)

योनि रक्तार्बुद का निर्णायक रोग का इतिवृत्त है। यदि बचपन से सतीच्छद पूर्ण होने से मासिकधर्म के समय आनेवाला रक्त बाहर नहीं निकलता तो आयु बड़ी हो जाने पर भी मासिकधर्म न आने का इतिवृत्त होगा। योनि आगे को उभरी हुई और सतीच्छद नीला और तना हुआ दिखाई देगा। मूत्रत्याग में कठिनता होगी। यदि इस रक्त के निकालने का समुचित प्रबन्ध न हो सके तो रक्त

गर्भाशय की ग्रीवा से होता हुआ गर्भाशय को भी फुला देता है जिसे हम गर्भाशय रक्तार्बुद (Haematometra) कहते हैं और यदि यह रक्त गर्भाशय से होता हुआ बीज-वाहिनियों (Uterine Tubes) को भी फुला दे तो बीज कोषों का रक्तार्बुद (Haemato solpinx) बन जाता है। कई बार गर्भाशय रक्तार्बुद स्वतंत्र रूप से भी उत्पन्न हो सकता है यदि अपत्यमार्ग जन्म से या बाद में किसी कारण से गर्भाशय के नीचे से बन्द हो।

गर्भस्थिति से इसका निदान आसान है। जन्म से ही योनिमार्ग या अपत्यमार्ग (Vaginal canal) बन्द होने पर मासिकधर्म के कभी भी न आने का इतिहास होगा। इसके साथ ही साथ प्रत्येक मास में जब मासिकधर्म होता है पेट में तेज दर्द उठने की बात लड़की बताएगी। गर्भस्थिति होने पर भी यद्यपि प्रारम्भ में मूत्राशय पर दबाव पड़ने के लक्षण इस में मिलते हैं पर योनि रक्तार्बुद में यह दबाव निरन्तर बढ़ता जाता है और अन्त में मूत्रत्याग करना अत्यधिक कठिन हो जाता है। परीक्षा करने पर सतीच्छद (Hymen) छिद्ररहित मिलेगा तथा अत्यधिक तना हुआ और बाहर को उभरा दीखेगा।

(७) जलोदर (Ascites)

इसमें सिवाय इसके कि पेट गर्भावस्था की तरह फूला होता है और कई बार कमजोरी के कारण मासिकधर्म बन्द होने के लक्षण भी मिल जाते हैं, और कोई बात गर्भिणी की नहीं होती। पेट को भी यदि हम ध्यान से देखें तो जलोदर में वह पार्श्वों की तरफ अधिक फूला होगा और बीच में कुछ दबा होगा जब कि गर्भस्थिति में वह एक जैसा फूला दिखाई देगा। जलोदर में यदि हम रोगी को करवट के बल लिटा दें तो जो भाग नीचे की तरफ रहेगा पानी उस ओर चला जाएगा और पेट के ऊपर की ओर का भाग हलका पड़ जाएगा जिसे हम टकोर करके देख सकते हैं; गर्भस्थिति में ऐसा नहीं होता। जलोदर में टकोरने (percussion) से पानी की लहरें उठती मालूम देंगी, (यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते चापि टकोदरं तत्। माधवनिदान।) जब कि गर्भावस्था में ऐसी कोई लहरें पैदा नहीं होंगी। कभी-कभी जलोदर और गर्भावस्था दोनों ही साथ-साथ होते हैं, ऐसे समय में भ्रम हो जाना स्वाभाविक है। पानी की छलक अनुभव होने पर भी एक्सरे द्वारा गर्भस्थ शिशु की छाया आने पर दोनों अवस्थाओं का होना समझना चाहिए।

(८) श्लेष्मोदर (Obese abdomen)

मासिकधर्म बन्द होने की आयु (Menopause) आने पर कई बार पेट में बहुत चर्बी इकट्ठी हो जाने से पेट गर्भावस्था की तरह भारी और आगे को बढ़ा हुआ दीखता है (श्लेष्मोदरे..उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजी ततं महत्। माधवकार) और कई बार इसी समय मासिकधर्म बन्द हो जाने से तो और भी सन्देह बढ़ जाता है। यहाँ तक कि स्त्री स्वयं भी भ्रम में पड़ सकती है। ध्यान से परीक्षा करने पर निदान आसान है। श्लेष्मोदर में गर्भस्थ शिशु के हृदय के शब्द सुनाई नहीं देंगे तथा एक्सरे में बच्चे के निशान नहीं आएंगे।

जलग्रन्थि समूह (Hydatidiform mole)

यह अवस्था प्रायः गर्भावस्था के ४ थे या ६ठे मास में मिलती है जिसमें गर्भपोषक आवरण के उभार क्षीण होकर धीरे-धीरे अंगूरों जैसे उभारों में परिवर्तित हो जाते हैं, जिन में द्रव भरा होता है। यदि यह परिवर्तन अपरा बनने से पूर्व हो तो प्रायः सम्पूर्ण उभार (Chorionic villi) इस अवस्था से आक्रान्त हो जाते हैं और भ्रूण (Embryo) मर जाता है। अपरा (Placenta) बनने के बाद यह रोग होने पर प्रायः इसका प्रभाव कुछ उभारों तक ही सीमित रहता है और भ्रूण को हानि नहीं पहुँचती।

भ्रूण के मर जाने की अवस्था में भ्रूण और नाभि-नाल धीरे-धीरे लुप्त हो जाते हैं और सारा गर्भाशय इन छोटे-छोटे अंगूर जैसे उभारों से भर जाता है जिससे छूने से गुंदे हुए आटे की तरह सारा पेट मुलायम और उभरा हुआ मालूम देता है।

गर्भावस्था से भेदक लक्षण—(१) जलग्रन्थि समूह बनने पर गर्भाशय प्रसूता अवस्था की अपेक्षा अधिक तेजी से बढ़ता है।

(२) गर्भावस्था में मासिक स्राव नहीं होता जब कि इसमें अनियमित रक्तस्राव होता रहता है।

(३) इनमें गर्भाशय गुंदे हुए आटे की तरह (Douglhy) मालूम देता है जब कि गर्भ होने पर यह कड़ा अनुभव होगा।

(४) इस में भ्रूण के हृदय के शब्द (foetal heart sounds) सुनाई नहीं देते।

(५) मूत्र की गर्भसूचक परीक्षा (Pregnancy Test) करने पर जलग्रन्थि अर्बुद की स्थिति में, मूत्र अत्यधिक स्वीकारात्मक (Positive) सूचना देगा जबकि गर्भस्थिति होने पर वह साधारण रूप से ही स्वीकारात्मक होगा। इस अर्बुद के होने पर पोषक आवरण के उभार (Chorionic villi) इतना अधिक उत्पादक अंग वृद्धिकारक पदार्थ पैदा करते हैं कि मूत्र को ५०० गुना जल में हलका करने पर परीक्षा स्वीकारात्मक आती है।

(६) इस रोग में योनि से आनेवाले स्राव में यदि अंगूर जैसी कोई वस्तु आए तो इसका पूर्ण निश्चय हो जाता है क्योंकि यह वस्तु भ्रूण-पोषक आवरण के उभार का ही परिवर्तित (Hydatidiform) रूप है जो कि पानी से भर जाने के कारण अंगूर जैसा दीखता है। गर्भावस्था में ऐसा कभी नहीं होता।

(७) इस रोग में शरीर में विष संचार (Toxaemia) के लक्षण मिलेंगे।

(८) ऐक्सरे से फोटो लेने पर इस रोग में भ्रूण की छाया नहीं आएगी (यदि वह मर कर लुप्त (Absorb) हो गया है)। अन्त में इस सम्बन्ध में यह लिख देना उचित होगा कि कई बार जल्दी में निर्णय करने पर कुशल से कुशल चिकित्सक धोखा खा सकता है; अतः इस सम्बन्ध में निर्णय देते हुए कभी शीघ्रता से काम न लें। गर्भस्थिति है या नहीं इसे जानने के लिए यदि २-४ मास प्रतीक्षा भी करनी पड़े तो कोई हानि नहीं। इसीलिए रक्तगुल्म की चिकित्सा के विषय में लिखते हुए माधवकार ने १० मास तक (जब तक कि गर्भोत्पत्ति की संभावना है) प्रतीक्षा करने के लिए कहा है। (मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः)। प्रतीक्षा के अतिरिक्त हरेक रोग निदानकारक उपाय जैसे एक्सरे, गर्भसूचक परीक्षा (Pregnancy test) आदि का सहारा लें और अन्त में पूर्ण निश्चय होने पर ही कोई सम्मति दें।

भारत में चिकित्सा-व्यवसाय के नैतिक-पतन पर कुछ मननीय विचार–२

मूल लेखक––डॉक्टर सुमन्त मेहता

अनुवादक––श्री शंकरदेव विद्यालंकार

अब लीजिए दूसरी बात। बड़े-बड़े शहरों के विशेषज्ञ डाक्टर अपनी एक मण्डली बना कर एक ही मकान में अपने कार्यालय––चिकित्सागृह––स्थापित करते हैं। इस मंडली में एक चिकित्सक डाक्टर होता है, एक सर्जन होता है, एक एक्स-रे विशेषज्ञ होता है और कभी-कभी दन्त विशेषज्ञ, नासिका विशेषज्ञ और कण्ठरोग विशेषज्ञ भी होता है। माथा खूब दुख रहा हो और रोगी चिकित्सक के पास जाय और चिकित्सक को ऐसा प्रतीत हो कि आँत के रोग के कारण माथा दुखता है तो वहाँ पर शीघ्र आँत के विशेषज्ञ को बताया जा सकता है और रोगी को भी सुविधा प्रतीत होती है। इस प्रकार ये विशेषज्ञ डाक्टर मण्डली बनाकर एक दूसरे को काम दिलवाते हैं। इन लोगों की फीस भी विशेष होती है। डाक्टर नारायणराव जैसे सहृदय व्यक्ति ने भी इन लोगों के लिए "लुटेरों की टोली" शब्द प्रयुक्त किया है। पेशाब की परीक्षा के लिए ८०) रुपये लिये जाँय तो समझ लेना चाहिए कि रोगी उलटे उस्तरे से ही मूंड़ लिया गया है। इसी प्रकार रक्त की परीक्षा या पेट के रस की परीक्षा के लिए बहुत ऊँची फीस ली जाती है। मेरे जानने में आया है कि छाती के रोग से पीड़ित एक रोगी को अनेक विशेषज्ञों से अपनी परीक्षा करवाने के लिए ८००) आठ सौ रुपये देने पड़े थे। मुझे स्वयं तो अमुक एक ही रोग के विशेषज्ञों पर विशेष श्रद्धा नहीं है। ऐसे विशेषज्ञ उस रोग की दृष्टि से ही जहाँ-तहाँ परीक्षा करते हैं। ठीक निदान के लिए यह रीति उचित नहीं।

× × × ×

तीसरा प्रश्न प्रमाणित औषधियाँ देने के स्थान पर इंजेक्शन देने का तथा चौथा प्रश्न विदेशी तथा स्वदेशी (बहुत कम) अतिशय मँहगी दवाइयाँ देने का है। इन दोनों प्रश्नों पर साथ-साथ ही विचार करना ठीक होगा।

ऊपर बताया जा चुका है कि देश की चिकित्सा परिषदें (मेडिकल कौन्सिल) एक प्रमाणभूत फार्माकोपिया तैयार कराती हैं। समयानुसार उसमें संशोधन-परिवर्धन, होते रहते हैं। ग्रेट ब्रिटेन और भारतवर्ष में ब्रिटिश फार्माकोपिया प्रामाणिक माना जाता है। इस विशाल पोथी में पूरे विवरण के साथ यह बताया गया है कि डाक्टरों को सामान्यतया किन-किन दवाओं के कौन-कौन से निर्माण (Preparation) तैयार करने चाहिएँ। उसमें यह भी बताया हुआ है कि किस दवा को किस मात्रा में देना सुखावह और गुणकारक होगा।

आजकल तो पेटेन्ट दवाओं की एक आँधी-सी आ गई है। यह आँधी व्यापारिक दृष्टि का ही परिणाम है। इन पेटेंट दवाओं से पहले सभी रोगों को अनेक प्रकार के मिश्रणों, गोलियों, चूर्णों, मुरब्बों और मरहम आदि से ही ठीक करने का प्रयत्न किया जाता था। रोग को दूर करने के लिए पेटेन्ट दवाइयाँ फार्माकोपिया की दवाओं से अधिक लाभकारक तो हैं ही नहीं। हाँ, इतना जरूर है कि उन्हें घर में सरलता से रक्खा जा सकता है या उन्हें आसानी से निगला जा सकता है। विरेचन के लिए हम एरण्ड तैल या स्वर्णमुखी के माध्यम से जो दवा या गोलियाँ तैयार करते हैं उसके लिए तीन चार आने का खर्च होता है। उनके स्थान पर पेटेन्ट दवा का खर्च चार-पाँच गुना अधिक होता है। हृदयरोग के लिए हजार––दो हजार वर्ष से सर्पगन्धा का प्रयोग होता आया है। उसकी कीमत दो-तीन आना होगी। अब उस की गोलियाँ (भगवान् ही जाने वह कितनी सफल होती हैं) रुपयों की कीमत में बिकती हैं। ऊँझा (उत्तर गुजरात) में मैंने ईसबगोल के ढेर के ढेर देखे हैं। उसकी कीमत बहुत कम होती है। इसी औषधि को अमेरिकन और यूरोपियन कंपनियाँ बहुत ऊँची कीमत से बेचती हैं। इस प्रकार के सैकड़ों दृष्टान्त दिये जा सकते हैं।

× × × ×

इस लेख द्वारा मैं दो बातों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया चाहता हूँ।

(१) सामान्य रोग (अस्वस्थता, अंगरेजी भाषा में Disease—आराम का अभाव) के लिए ओषधि की आवश्यकता ही नहीं होती। इस प्रकार के रोग व्यायाम, उपवास और अल्पाहार से अच्छे हो जाते हैं। जुकाम की कोई दवा नहीं होती। दवा पीने या सूँघने से कोई लाभ नहीं होता। दो दिन आराम करने, थोड़ा खाने या उपवास से जुकाम जल्दी अच्छा हो जाता है। अनेक स्पर्शजन्य रोग भी ओषधि से नहीं मिटते। हाँ, जिन रोगों में ओषधि की आवश्यकता होती है, उन के प्रति दुर्लक्ष नहीं करना चाहिए।

(२) दूसरी बात यह है कि हमलोग सामान्य रोगों के लिए उपयोग में आनेवाली घरगथ्थु दवाइयों का ज्ञान सर्वथा भूल गये हैं। मैं यूरोप में शिक्षित हुआ था और बड़े-बड़े चिकित्सालयों का डॉक्टर रहा हूँ, तथापि सामान्य बीमार होने पर दवा नहीं लेता था। मेरी बुआ जी अपने घरेलू नुस्खों द्वारा मेरी व्यथा दूर कर देती थीं। आज आप किसी भी शिक्षित परिवार में जाइए, वहाँ पर आपको एक छोटा-सा दवाखाना दिखाई पड़ेगा। अधिक नहीं तो ३०-४० शीशियाँ घर में अवश्य होंगी। उनमें भी अधिकतर ओषधियाँ विदेशी और वे भी मँहगी। इस विषय का विशेष विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है।

आज से करीब साठ वर्ष पहले मेरे एक अध्यापक ने मुझ से एक वाक्य कहा था—उसे मैं कदापि भूल नहीं सकूँगा। उन्होंने कहा था—"ध्यान रखना, प्रत्येक ओषधि, चाहे वह कितनी भी निर्दोष क्यों न हो, जहर समान है।" आगे जाकर उन्होंने कहा, पेट में डाली हुई प्रत्येक वस्तु जहरीली बन सकती है। इस पर एक विनोदशील छात्र ने प्रश्न किया—"हमारे प्रतिदिन के आहार के लिए भी क्या यह बात लागू होती है?" उन्होंने कहा, मैं पहले ही सोच रहा था कि तुम यह प्रश्न करोगे। आहार भी जहर बन सकता है। मनुष्यजाति के अधिकतर रोग पेट और आँतों के विकार से पैदा होते हैं। और वे भी अधिक आहार या अयोग्य आहार से ही उत्पन्न होते हैं। यह सूत्र जीवन भर मुझे बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ है।

गाँधी जी ने आरोग्य के विषय में पर्याप्त लिखा है। आरोग्य पर एक-दो पुस्तिकाएँ भी उन्होंने लिखी हैं। वे प्रत्येक भारतीय को पढ़नी चाहिएँ। उन्होंने एक बात पर विशेष बल देते हुए कहा है कि सामान्य रोगों को दवाओं से ठीक करके डाक्टरों ने समाज का अहित किया है। देखिए, एक मनुष्य अधिक भोजन करके अथवा दुष्पच आहार लेकर अस्वस्थ हो जाता है। डाक्टर ओषधि देकर उसका कष्ट दूर करता है। ठीक पद्धति तो यह है कि उसको उपवास करना चाहिए या भविष्य में उस प्रकार की वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए। यह सीधीसादी बात उसकी समझ में नहीं आती। इस प्रकार के अविचारी व्यवहार के अनेक अद्भुत उदाहरण मैंने स्वयं देखे हैं। एक घटना सुनिए। एक मधुमेह का रोगी था। उसको चावल और चीनी खाने का निषेध किया गया था। एक दिन उसने खूब दूधपाक (खीर) उड़ाया। मैंने पूछा—ऐसा क्यों किया? वह कहने लगा—घर पर जाने पर डाक्टर मुझे इन्स्युलीन का इंजेक्शन देगा। ओषधियों के दुरुपयोग का इससे खराब और क्या उदाहरण हो सकता है।

बहुत-सी दवाएँ लिख कर देने का पागलपन भी आजकल बहुत चलता है। अपने कुटुम्ब का ही एक बढ़िया दृष्टान्त देता हूँ। एक व्यक्ति को घुटनों में संधिवात का कष्ट था। घुटने मोड़ते हुए उसे बहुत कष्ट होता था। वह एक विशेषज्ञ डाक्टर के पास गया। अच्छी तरह परीक्षा करके डाक्टर ने उसको निम्नलिखित दवाएँ सेवन करने का पुर्जा लिख दिया—दिन में तीन बार सेवन करने के लिए एक तरल (प्रवाही) दवा, बड़े सबेरे खाने की एक गोली, रात को खाने का एक चूर्ण, तथा दूध के इंजेक्शन। यह नुस्खा लेकर रोगी महाशय मेरे पास आए। मुझे यह सब कुछ अटपटपना-सा प्रतीत हुआ। परन्तु मैं यह नहीं चाहता था कि रोगी के मन में अश्रद्धा पैदा हो जाय। मैंने रोगी से कहा—"ठीक है, इन औषधियों को तो लेते ही रहना पर साथ ही तीन दिन अमुक क्षार प्रातःकाल गरम पानी के साथ लेने का प्रयोग भी करो तो ठीक रहेगा।" रोगी महाशय ने मेरी सलाह का पालन किया, और वे अच्छे हो गए। यह उस क्षार का ही प्रभाव था। यदि ये भाई मेरी सलाह न मानते तो कठिनाई में आ पड़ते। खर्चा भी खूब करना पड़ता।

एक महिला ने बंबई के एक बहुत विख्यात डाक्टर का नुस्खा मुझे दिखाया। उसे देख कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। प्रतिदिन दवा परिवर्तित की गयी हो, ऐसा प्रतीत हुआ। नुस्खे में एक-दो से लेकर नौ तक आंकड़े लिखे हुए थे। मैंने पूछा डाक्टर ने दवा प्रति-दिन के लिए क्यों बदल कर लिखी है। महिला ने कहा, ये नौ की नौ वस्तुएँ मुझे प्रतिदिन सेवन करनी हैं। यह सुन कर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। मैंने पूछा, इस एक दिन की दवा के लिए आपको क्या कीमत देनी पड़ी है? महिला ने जवाब दिया—एक सौ पैंतीस रुपये। यह घटना अक्षरशः सत्य है।

अगली बात यह है कि हम डाक्टर लोग पेटेन्ट दवाएँ बनाने वाली कंपनियों के दलाल बन गए हैं। परदेशी फार्मेसियाँ आकर्षक दवाएँ बनाती हैं और उनके लिए डाक्टरों के प्रमाणपत्र भी प्राप्त कर लेती हैं। रसायनशालाओं में परीक्षण भी करवाती हैं। कुछ सफल परीक्षणों के परिणामों को चिकित्साशास्त्र के सामयिक पत्रों में छपवाती भी हैं। तथापि इन विज्ञापित दवाओं के अवगुण क्या हैं? वे किस प्रकृति के मनुष्यों को अनुकूल पड़ती है या प्रतिकूल? रोग एक के स्थान पर अनेक हों तो किन परिस्थितियों में कौन दवा नहीं खानी चाहिए,—इत्यादि बातों की ठीक-ठीक खोज किये बिना दवाएँ प्रयोग में लाई जाती हैं।

फार्मेसियाँ डाक्टरों को मूल्यवान् उपहार भेजती हैं। अपनी कंम्पनी के नामवाले नुस्खा-पैड, डायरियाँ और मुफ्त में दवाएँ भी भेजती हैं।

मेरे एक आत्मीय जन को बहुत दिनों से ज्वर आ रहा था। अच्छे-अच्छे डाक्टरों ने उन की परीक्षा करके कहा—मलेरिया नहीं है, टाइफाईड नहीं है, क्षय नहीं है, अन्य कुछ भी नहीं है, परन्तु क्या है, यह वे नहीं बता पाये। अन्त में डाक्टर ने उक्त रोगी को रिलेप्सिग फीवर (चूहे काटने से होने वाला ज्वर) के लिए, माल्टा फीवर के लिए, दो प्रकार के टाइफस् के लिए तथा अन्य अनेक प्रकार की शिकायतों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की मँहगी-मँहगी और जहरीली दवाइयाँ देना प्रारम्भ किया। उन दिनों भारतवर्ष में पेनिसिलीन की एक बूंद तक नहीं थी, किसी डाक्टर को उसका अनुभव तक नहीं था—ऐसे समय में तार द्वारा पेनिसिलीन मँगाने की सलाह दी। कहने की आवश्यकता नहीं कि मुझे उस डाक्टर को बदल देना पड़ा। पेनिसिलीन के अत्यधिक प्रयोग के विषय में प्रमाणभूत चिकित्सा विषयक पत्र-पत्रिकाओं ने लोगों को सावधान किया है।

किसी मनुष्य का शरीर किसी मामूली बीमारी से बिगड़ गया हो और उसके कारण ज्वर आया हो तो मामूली दाम पर क्विनाईन दी जाती थी। वह अनावश्यक और हानिकारक थी। अब तो इंजेक्शन का फैशन बढ़ गया है। अतः डाक्टर लोग इंजेक्शन देकर अच्छी कमाई करने लगे हैं। आजकल थोड़ी-थोड़ी बात के लिए अकारण ही पेनिसिलीन का प्रयोग किया जा रहा है। इन दिनों क्षय-रोग की रोकथाम के लिए लाखों की संख्या में बी० सी० जी० का व्यवहार किया जा रहा है। इस चर्चास्पद विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है।

डाक्टर लोग पेटेन्ट औषध-निर्माताओं के दलाल बन गए हैं या नहीं, इस बात का उत्तर जानना सरल है। फार्माकोपिया द्वारा प्रमाणित औषधियों के अतिरिक्त पेटेन्ट दवाएँ किस अधिक प्रमाण में व्यवहार में आ रही हैं, इसके द्वारा ही यह स्पष्ट हो जायगा।

फार्मेसीवाले अपनी पेटेन्ट दवाओं का रामबाण कहकर बखान करते हैं। किन्तु उनकी सचाई पर लोगों को संदेह रहता है। विज्ञापन के अनुसार उन दवाओं का प्रभाव होता है या नहीं यह भी शंकास्पद है। ये दवाइयाँ अतिशय मँहगी होती हैं। कुछ मनुष्यों को हानि पहुँचाने के बाद ही इन दवाइयों के अवगुण प्रकाश में आते हैं।

अन्तिम बात यह है कि डाक्टर अतिशय लोभी हो गये हैं। इस विषय में एक अद्भुत और सच्चा उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ।

मेरे एक युवक मित्र अनेक वर्षों तक सरकारी तथा गैरसरकारी पदों पर कार्य कर चुके हैं। उनको छोटी रसौली निकल आई थी। वह बहुत कोमल और निर्दोष थी। इस बात की कोई संभावना नहीं थी कि उससे कैंसर हो सकता है। मैंने उनको परामर्श दिया कि अनुकूलतानुसार इसे कटवा देना। क्योंकि यह सामान्य ऑपरेशन से ठीक हो जायगी। घाव भी थोड़े समय में भर जायगा। प्रशंगवशात् उन्हें बंबई जाना पड़ा। उनके एक मित्र उनको एक प्रसिद्ध सर्जन के पास ले गये। मेरे मित्र की आर्थिक स्थिति सामान्य मध्यम श्रेणी के लोगों जैसी थी। अच्छी नौकरी प्राप्त होने पर भी देशसेवा के लिए उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया था। डाक्टर ने मेरे मित्र को खूब डराया

कि इस गाँठ से कॅंसर हो जायगा, अतः उसे शीघ्र ही कटवा लो। रोगी महाशय ने कहा—"मैंने तो ऑपरेशन की बात किसी से कही भी नहीं है।" डाक्टर ने कहा—"दूसरों को कहने की आवश्यकता भी क्या है?" मेरे मित्र को डाक्टर का आग्रह कुछ विचित्र अनुभव हुआ। अतः उन्होंने कहा—जिनके साथ मैं काम करता हूँ उनकी सलाह लेना आवश्यक है। इस पर डाक्टर ने उनका नाम पूछ कर कहा—ओहो, उनको तो मैं पहचानता हूँ। उनको अभी फोन करके सूचित कर देता हूँ कि आपको शीघ्र ही ऑपरेशन कराना पड़ेगा। परन्तु मेरे मित्र ने इन्कार किया और वहाँ से छटक आये। जिस छोटे से ऑपरेशन के लिए चालीस रुपये देने होते हैं, उसके लिए डाक्टर मेरे मित्र से २००-३०० रुपये ऐंठना चाहता था। यह भी सच्ची घटना है।

मेरे एक डाक्टर मित्र ने एक्स-रे का यंत्र खरीदा। उनके पास एक बीमार आया। डाक्टर ने कहा—आपका एक्स-रे फोटो लेना पड़ेगा। रोगी अच्छा पढ़ा-लिखा था। उसने कहा—डॉक्टर महाशय, इस रोग के लिए एक्स-रे फोटो की क्या आवश्यकता है? इस पर डॉक्टर महाशय बोले—"आपको यदि मुझ में श्रद्धा न हो तो आप दूसरे डाक्टर के पास चले जाँय।" रोगी ने कहा—"अपने रोग के विषय में मुझे आपके परामर्श की आवश्यकता है।" डाक्टर महाशय अपने आग्रह पर कायम रहे और एक्स-रे फोटो लिया गया। बात पता लगने पर मुझे प्रतीत हुआ कि फोटो लेने की सर्वथा आवश्यकता नहीं थी।

मेरे एक अन्य डाक्टर मित्र कहने लगे—यदि हम फोटो न उतारें तो हमारा प्रभाव नहीं पड़ता। इसके सिवाय एक्स-रे यंत्र खरीदने का दाम तो हमें वसूल करना ही चाहिए न? एक दूसरे डाक्टर मित्र ने अपनी फीस बहुत अधिक रखी थी। मैंने कहा—आप इतनी अधिक फीस रखते हैं, यह ठीक नहीं। वे कहने लगे—मैंने ऋण लेकर विद्याभ्यास किया है, उसका क्या होगा? मैंने कहा—महाशय, आपने डेढ़ लाख रुपये का तो मकान बना लिया है, आपके ऋण के रुपये तो कभी के वसूल हो चुके होंगे। इस पर बात समाप्त हो गई।

प्रसूति की विकृति के समय अनेक डॉक्टर बहुत बड़ी फीस माँगते हैं। यह बात अनेक बार देखी गई है। बीमा विषयक एक बात मैं ऊपर लिख चुका हूँ। यदि डाक्टर लोग बीमा-एजेन्ट की इच्छानुसार न लिखें तो उनको केस नहीं मिल पाते। एक बार मुझे एक केस दूसरे गाँव म जाकर देखना पड़ा। दुर्भाग्य से मैं बीमा लेने वाले को जानता था। वह स्वयं डाक्टर था। मुझे यह बात ज्ञात थी कि उनकी माता, एक भाई और एक बहन युवावस्था में क्षयरोग से मर चुके थे। मैंने डाक्टर और बीमा-एजेन्ट को स्पष्ट कह दिया—इस केस को मैं कैसे पास करूँ? मैंने इन्कार कर दिया। वह दूसरी कंपनी में, दूसरे डाक्टर के पास जाकर बीमा करवा लाया। कहने की आवश्यकता नहीं है कि वह सात महीने में ही मर गया। डाक्टरों की नैतिक अधोगति के ये स्पष्ट प्रमाण हैं।

इस प्रकार सैकड़ों उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। यह बात तो सर्वविदित है कि रोगी होने पर छुट्टी के प्रमाण-पत्र हजारों की संख्या में दिये जाते हैं। बहुत-से डाक्टर अपने रोगियों को खुश करने के लिए रोग-परीक्षा (निदान) की बातें भी रोगियों को बता देते हैं। ऐसी चर्चा करना डाक्टरों के लिए उचित नहीं है। इसके सिवाय आजकल के डाक्टर रोगी को यह भी बता देते हैं कि वे कौन सी दवा दे रहे हैं और वह कैसी है। पहले ऐसा कभी नहीं होता था। रोगी को आश्वासन अवश्य देना चाहिए, परन्तु उनके साथ निदान और चिकित्सा की चर्चा नहीं करनी चाहिए। इसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि रोगीजन बहमी बन गए हैं। इसीलिए डॉक्टर नारायणराव ने कहा है कि हम डाक्टर लोगों ने रोगियों को डरपोक (हाइपोकोंड्रियाक) बना दिया है। इस अधीरता के कारण अब तो दशा यहाँ तक आ गई हैं कि रोगी लोग स्वमेव इंजेक्शन मांगते हैं और न देने पर अप्रसन्न हो जाते हैं।

पिछले दिनों अखबार में छपा था कि अमेरिका में करोड़ों मनुष्य करोड़ों रुपयों की ऐसी दवाएँ (गोलियाँ) व्यवहार में लाते हैं जो मस्तिष्क के ज्ञानतन्तुओं को प्रसुप्त (संज्ञाशून्य) कर देती है। दवाओं के कारखाने चलाने-वालों के विज्ञापनों का ही यह प्रभाव है।

साधारणतया डाक्टरों को प्रगतिशील और अन्वेषण-परायण होना चाहिए। पर क्या डाक्टर लोग प्रगतिशील हैं? प्रत्येक डाक्टर स्वीकार करेगा कि वाष्पस्नान से रक्तवाहिनियाँ फूलती हैं। पसीने से शरीर का आंतरिक और बाहर का मैल निकल जाता है तथापि इस उपाय

को डाक्टर लोग व्यवहार में नहीं लाते। इससे स्पष्ट हो जाता है कि चिकित्सकवर्ग अनुदार मानसवाला है।

पचास वर्ष पूर्व मैंने वाष्पस्नान की एक कीमती पेटी बड़ोदा के चिकित्सालय को भेंट में दी थी। वह या तो टूट-फूट गई होगी या कूड़े-कचरे में बिक गई होगी। इसी प्रकार डाक्टर लोग मालिश का भी कम प्रयोग करते हैं। छोटे बच्चों को रोगों में डाक्टरी दवाएँ ठीक प्रकार कारगर नहीं होतीं। मनुष्य के मानसिक रोगों के विषय में डॉक्टरों का ज्ञान अभी प्राथमिक दशा में है। पथ्यापथ्य और आहार के संपूर्ण विषय में डॉक्टरों का ज्ञान कम होता है। जितना ज्ञान होता है उसका भी उचित उपयोग वे नहीं करते।

गुजरात में गरम पानी के अनेक प्राकृतिक झरने विद्यमान हैं। छत्तीस करोड़ की जनसंख्या में से छः डाक्टरों ने भी इन झरनों के पानी द्वारा चिकित्सा का अध्ययन नहीं किया होगा। उन का ज्ञान और मानस इतना दरिद्र है। प्रकृति से ही अमुक मनुष्य का शरीर शीतल या गरम होता है—इस बात को पाश्चात्य पद्धति के डाक्टर नहीं जानते। कदाचित् वे लोग यह समझते होंगे कि प्रकृति विषयक वह बात ही ठीक नहीं। तथापि वह बात वस्तुतः सत्य है।

अन्त में मुझे स्पष्टतया कहना चाहिए कि मेरी यह मान्यता नहीं है कि भारतीय डाक्टर अन्य भारतीयों की अपेक्षा या अन्य व्यवसायियों की अपेक्षा अधिक खराब हैं या उनकी नैतिक भावना हीन कक्षा की है। डाक्टर अच्छे होते हैं, कुछ बहुत अच्छे होते हैं, वे दयालु और सेवाभावी भी होते हैं, समाज के लिए उपयोगी होने की भावना भी उनमें होती है। दूसरी ओर लोभी और दुष्ट डाक्टर भी पाये जाते हैं। हमें साथ ही यह भी देखना चाहिए कि इस युग के वकील कैसे हैं? व्यापारी कैसे हैं? इन्जीनियर और ठेकेदार कैसे हैं? दालचीनी, लवंग और इलायची का सार निकाल लेने वाले व्यापारी कैसे होते हैं? दूधवाले, अनाज वाले, घी वाले, अध्यापक और प्राइवेट स्कूल चलानेवाले, व्यापारी, मिलवाले, छोटे-मोटे अमलदार ये सभी भारत-पु कैसे होते हैं? अच्छे बहुत कम और अप्रामाणिक अधिक! यदि ऐसा है तो फिर अकेले डॉक्टरों का ही दोष क्यों निकाला जाय? यह सब कुछ होते हुए भी मेरे मन में एक भावना अवश्य है। यदि कोई परिचारिका (नर्स) सचाई से परिचर्या न करे, या कोई डॉक्टर धनवानों के प्रति अधिक ध्यान दे और गरीबों के प्रति दुर्लक्ष करे तो मेरी सम्मति में वह राक्षस है।

यदि कोई धंधा सबसे खराब है तो वह है खोटी दवाइयाँ बेचने का। क्विनाइन जैसी औषधि के बदले यदि कोई सारहीन और प्रभावशून्य बनावटी दवा बेचता है तो वह कठोर से कठोर दण्ड का पात्र माना जाना चाहिए। चिकित्सालयों में सामान्य वार्ड (निःशुल्क विभाग) में रखे जानेवाले रोगियों के प्रति उचित ध्यान न देना महान् अपराध है। तथापि इस अपराध की बात चहुँओर खूब सुनाई देती है।

यदि चिकित्सा-विषयक सभी संस्थाएँ इन प्रश्नों के सत्यासत्य पर चर्चा करेंगी तो समाज पर तथा डॉक्टरों पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा।

चिकित्सा का राष्ट्रीयकरण

आयुर्वेदपंचानन पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, साहित्यवाचस्पति

आयुर्वेद क्षेत्र में इस समय आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा विज्ञान स्वीकार कराने की चर्चा चल रही है और आयुर्वेदिक क्षेत्र की आकांक्षा है कि सरकार इस उद्देश्य की घोषणा कर दे कि भारत देश का चिकित्सा विज्ञान आयुर्वेद होगा। आवश्यकतानुसार यदि कुछ दिनों तक एलोपेथी का सहारा अपेक्षित हो तो ऐसा किया जा सकता है; किन्तु इस घोषणा के पश्चात सरकार का यह कर्तव्य होगा कि आयुर्वेद का शिक्षणक्रम इस प्रकार रखे कि शिक्षित आयुर्वेदज्ञ देशके स्वास्थ्य विभाग और चिकित्साविभाग के समस्त उत्तरदायित्वपूर्ण पदों को सँभालने के योग्य हो जायँ। आयुर्वेद का शिक्षण षोडशांग आयुर्वेद के अनुसार उन सभी विषयों में हो जिनका सम्बन्ध जीवन के किसी भी अंग से हो। कालेज के द्वारा आयुर्वेदशास्त्र की पूर्ण पढ़ाई तो होवे ही; किन्तु स्नातकोत्तर ट्रेनिंग के द्वारा विश्वविद्यालय के स्तर पर ऐसी शिक्षा भी दी जाय जिससे हमारे चिकित्सक विश्व के सभी महत्वपूर्ण उन विषयों की जानकारी रखें जिनका सम्बन्ध आधुनिक जनता के स्वास्थ्य संरक्षण और चिकित्सा से सम्बन्ध रखता है। यदि अपने गुण विशेष से कोई अन्य चिकित्सा पद्धति के ज्ञाता कार्य करना चाहते हैं तो हम यह नहीं चाहते कि उनके कार्य में रुकावट डाली जाय; किन्तु सरकारी तौर पर राष्ट्र संचालन में स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन आयुर्वेद के आधार पर हो और सैनिक व्यवस्था में भी आयुर्वेद का ही अवलम्बन रहे। हम चाहते हैं कि हमारे चिकित्सक सम्पूर्ण विकसित और अनुसन्धानित विषयों के ज्ञाता हों। व्याख्या, वृंहण, पुष्टीकरण आदि द्वारा आयुर्वेद के विषय अपने आधारभूत सिद्धान्तों के आधार पर आधुनिकतम स्वरूप के प्रभावपूर्ण रूप में आ जायँ। हम स्वार्थसाधन के लिये इतने स्वार्थी नहीं बनना चाहते कि विज्ञान के किसी विभाग के विकास में हम बाधक हों किन्तु यह भी नहीं चाहते कि हमारे देश में एक वैज्ञानिक स्वास्थ्य और चिकित्सा विज्ञान के रहते विदेशी चिकित्सापद्धति का बोलबाला हो और राष्ट्रीय चिकित्सा विज्ञान दूध की मक्खी की तरह बाहर निकाल कर फेंक दिया जाय और झूठे दम-दिलासा और पुचकार में ही उसका समय व्यतीत हो। हम यथार्थ रूप में आयुर्वेद की उन्नति, शिक्षण का विकास और विस्तार चाहते हैं।

हमारे इस उद्देश्य, ध्येय और आकांक्षा का आभास पाकर 'मेंडकी को भी जुखाम" होने लगा है। एलोपैथी जमात को भी यह हौसला होने लगा है कि वे भी यह कहें कि हमारी चिकित्सा पद्धति का राष्ट्रीयकरण हो। डाक्टरों का एक "अखिल भारतीय संघ" है। लोगों के दिमाग को भ्रम में डालने और आँखों पर पर्दा डालने के लिए वे अब डाक्टर का अनुवाद "चिकित्सक" शब्द से करने लगे हैं और अपनी संस्था को कानफरेन्स न कहकर "भारतीय चिकित्सा संघ" कहने लगे हैं। इस भारतीय चिकित्सा संघ के मद्रास राज्य के डाक्टरों की संस्था का कुछ दिन पहले एक अधिवेशन कोयम्बतूर में हुआ था। वहाँ उसके अध्यक्ष डाक्टर मत्तूराय सन्तोषम् ने ऐसी राय जाहिर की कि 'चिकित्सकों के पेशे का राष्ट्रीयकरण' होना चाहिए। उनका उद्देश्य यह था कि एलोपैथी की सरकारी मान्यता ऐसी पुष्ट की जाय कि सरकार के द्वारा उसीका प्रचलन हो। स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी सभी कार्य सरकार द्वारा इन्हीं डाक्टरों द्वारा सम्पन्न हों और अन्य पद्धति या चिकित्सकों का प्रचलन जारी रहना अनावश्यक हो जाय। इस कानफरेंस का उद्घाटन अन्नामलयम् विश्वविद्यालय के उपकुलपति (वाइस-चांसलर) ने किया था। उन्होंने डाक्टर सन्तोषम् के विचारों से सहमत न हो विरोध किया था। अवश्य ही यह विरोध या समर्थन स्वार्थ को लक्ष्य में रख आर्थिक कारणों से हुआ था। इससे किसी ऊंचे आदर्श या लक्ष्य का सम्बन्ध नहीं है। जो चिकित्सक डाक्टर स्वतन्त्र रूप से पर्याप्त अर्थोपार्जन नहीं कर पाते, उन्हें सरकारी नौकरी वरदान स्वरूप मालूम पड़ती है। राष्ट्रीयकरण हो जाने पर प्राइवेट डाक्टरों की आवश्यकता न रह जायगी, सरकारी डाक्टर ही सरकारी और जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगेंगे। जो डाक्टर प्राइवेट प्रैक्टिस के द्वारा पर्याप्त

धन कमा लेते हैं, वे सरकारी नौकरी की ओर आकर्षित होना लाभप्रद नहीं समझते। प्राइवेट प्रैक्टिस बन्द होने पर यदि उन्हें सरकारी नौकरी करनी पड़ी तो वे घाटे में रहेंगे। ऐसे लोगों द्वारा राष्ट्रीयकरण का विरोध हो रहा है। डाक्टरों का लक्ष्य व्यक्तिगत लाभ है। वे सोचते होंगे कि हमारी पढ़ाई-लिखाई में माता-पिता ने जो हजारों पये खर्च किये हैं, वह हमें वसूल करना है। हमारी विद्यार्थी दशा की उमंगें, आमोद-प्रमोद, विलास की कल्पना कैसे पूरी होंगी। बढ़िया बँगला, मोटरगाड़ी और ऐश-आराम की जिन्दगी तथा शान-शौकत किस तरह पूरी होगी। सरकारी नौकरी में नुसखों का बिल कैसे वसूल होगा। लम्बी फीस कैसे मिलेगी। मुँह-माँगा रुपया कैसे मिलेगा। राष्ट्रीयकरण होने पर तो चिकित्सा सम्बन्धी उत्पादन और वितरण सरकार के द्वारा होगा, हमारे हाथ तो वही सूखा वेतन लगेगा। स्वेच्छा से चाहे जहाँ प्रैक्टिस की सुविधा नहीं रहेगी, जहाँ जिस पद पर सरकार भेजेगी, वहाँ उसी पद पर जाना होगा।

इसके विपरीत आयुर्वेदज्ञों का लक्ष्य पवित्र है, ऊँचा है, राष्ट्रीय भावना और जनहित की प्रेरणा से ओत-प्रोत है। जन समाज में आयुर्वेद के प्रचार की आवश्यकता समझ जब ऋषि लोग हिमालय की तराई में परामर्श करने के लिये एकत्र हुए थे तब उनके ध्यान में, लक्ष्य में यही था कि ये नाना प्रकार के रोग तपश्चर्या, उपवास, अध्ययन, ब्रह्मचर्य आदि में विघ्न पैदा करते हैं, अतएव इनसे बचने के लिये स्वास्थ्यरक्षक, जीवनवर्धक और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष साधक साधनों की सिद्धि में सहायक आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

विघ्नभूता यदा रोगाः प्रादूर्भूताः शरीरिणाम्।
तपोपवासाध्ययनब्रह्मचर्यव्रतायुषाम्॥
तदाभूतेष्वनुक्रोशं पुरस्कृत्य महर्षयः।
समेताः पुण्यकर्माणः पार्श्वे हिमवतः शुभे॥

वहाँ एकत्र महर्षि स्वार्थसाधन के लिये नहीं, कोठी, आश्रम या आत्मसुख के साधन एकत्र करने की लालसा वाले नहीं थे, वे ब्रह्मज्ञान, दम तथा नियम के अखण्डकोष थे। उन्होंने एकत्र होकर जो चर्चा की वह यही कि धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष जो चतुर्विध पुरुषार्थ हैं उनके साधन सिद्धि के लिये जनता का आरोग्य रहना आवश्यक है। अस्वास्थ्य और रोग स्वास्थ्य को, सुख को, चतुर्विध पुरुषार्थों को, यहाँ तक कि जीवन को भी हरनेवाले हैं। इन्हें दूर करने के लिये आयुर्वेद का सीखना आवश्यक है—

सुखोपविष्टा ते तत्र पुण्यां चक्रः कथामिमाम्।
धर्मार्थ काम मोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्॥
रोगातस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च।
प्रादुर्भूतो मनुष्याणामन्तरायो महानयम्॥
कःस्यात्तेषां शमोपाय इत्युक्त्वा ध्यानमास्थिताः।

जब महर्षि भरद्वाज इन्द्र से आयुर्वेद सीखकर आये तब उन्होंने अन्य ऋषियों को विधिवत उसका अध्ययन कराया। उस अध्ययन के फलस्वरूप उन्होंने अपथ्य-त्याग, पथ्यग्रहण और स्वास्थ्यकर नियमों का पालन कर परम सुख और अविनाशी जीवन को प्राप्त किया। यही नहीं "सर्वभूतानुकम्पया" सम्पूर्ण जीवधारियों पर अनुकम्पा करने की इच्छा से शिष्यों को अध्ययन कराने की प्रथा प्रचलित की। आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त कर चिकित्सक सब रोग के भेदों को जान कर कहाँ क्या करना चाहिये इसका ज्ञाता होता है। सब औषधि और चिकित्सा का तत्वज्ञ होता है और वह राजा और राज्य के निवासियों के प्राणों का रक्षक 'प्राणपति' होता है।

सर्वरोग विशेषज्ञः सर्वकार्यं विशेषवित्।
सर्वभेषज तत्वज्ञो राज्ञः प्राणपतिर्भवेत्॥

विद्या सीखने के बाद दीक्षान्त के समय स्नातक चिकित्सक को जो उपदेश दिया जाता था उसमें कहा जाता था कि तुम ब्रह्मचर्य का पालन करो, सत्यवादी होओ, भोजनके लालची न हो, ईर्षा-द्वेष-मत्सर से रहित रहो। मेरे कहने पर तुम सब कुछ कर सकते हो; किन्तु राज्य और राष्ट्रके विरुद्ध कार्य मेरे कहने पर भी न करो! प्राणनाशक-अधर्म और अनर्थ के काम तुम भूलकर भी न करो। सावधान एकाग्र मन से विनयसम्पन्न होकर विचारपूर्वक काम करो। दूसरे के गुणों पर दोषारोप न करो। विना कारण इधर-उधर न घूमो। कर्म की सिद्धि, अर्थसिद्धि, यश की प्राप्ति, स्वर्ग की इच्छा, गो-ब्राह्मण-प्राणियों के सुख और आरोग्य की कामना करते रहो। प्रतिदिन उठते-बैठते और सब अवस्थाओं में रोगियों को आरोग्य करनेवाले विचारों को सोचते रहो। अपने जीवन और प्राण के लिये भी कभी रोगियों से द्रोह न करो, उनका अनिष्ट न चेतो। मनसे भी परस्त्री की चिन्तना न करो। परधन और पराया

सम्पत्ति के हरण का विचार मनमें कभी न लाओ, विनयी रहो, मद्यपान आदि नशे से दूर रहो। पापसे बचो, पापी का संग न करो। आरोग्य के साधनों की सिद्धि के लिये सदा प्रयत्नवान रहो। देश-काल के विचार को याद रखो। राष्ट्रद्रोही और सत्पुरुषों से द्वेष रखनेवाले का साथ न करो। रोगी के यहाँ जाकर मन, बुद्धि और इन्द्रियों को रोगी के हित और प्रयोजन के अतिरिक्त अन्य भाव में न लगाओ। रोगी के घर की बातों को बाहर प्रकट न करो। रोगी की मृत्यु का निश्चय होने पर भी ऐसी जगह और ऐसे अवसर पर न कहो जहाँ रोगी या अन्य किसी की मृत्यु का कारण हो। आत्मश्लाघा न करो।

शल्य-शास्त्र की शिक्षा के लिये जब सुश्रुत आदि शिष्य काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि के पास गये तब उन्होंने भी यही निवेदन किया था कि जनता शारीरिक, मानसिक और आगन्तुक रोगों से पीड़ित हो कर दुखी होती है। मित्र-भृत्य-धन आदि साधन होते हुए भी, सनाथ होते हुए भी अनाथ की तरह तड़पती है, विलाप करती है। यह हमसे नहीं देखा जाता, उससे हमारे मनको पीड़ा होती है। इसलिये सुख की इच्छा रखनेवाले ऐसे लोगों के रोगादि दूर कर प्राणरक्षा के लिये और सर्वसाधारण की हितकामना के लिये हमें आयुर्वेद शास्त्र की शिक्षा दीजिये। सर्व-साधारण की प्राणरक्षा होते हुए भी जीवन निर्वाह हो, यही हम चाहते हैं। "तेषां सुखैरिणां रोगाय रोगोपशमनार्थ-मात्मनश्च प्राणयात्राऽर्थं प्रजाहितहेतोः आयुर्वेदं श्रोतु-मिच्छाम इहोपदिश्य माम्।

आयुर्वेद वालों का लक्ष्य किसी वर्गविशेष के लिये जीविका का साधन जुटाना नहीं, बल्कि सर्वसाधारण जनता को रोगों-बीमारियों से मुक्त कर स्वास्थ्य और सुख प्रदान करना है। उसे आधुनिक चिकित्सक जीविका का साधन समझ ऐश्वर्य बढ़ाने के लिये प्रयत्नशील होते हैं उन्हें हम पवित्र लक्ष्य से नीचे जाता हुआ समझते हैं। फीस और दवा के दाम जो वाजिब हैं वह तो देने में समर्थ लोग देवेंगे ही। उसे अपना चरम लक्ष्य बनाना चिकित्सक के लिये उचित नहीं है। आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा विज्ञान स्वीकार करना अपने स्वदेशी विज्ञान के प्रति आस्था और आदर प्रकट करना है। उसके नैसर्गिक अधिकार को स्वीकार करना है। यही नहीं, अपना पवित्र कर्तव्य पालन करना है। अन्य कला और विज्ञानों के समान आयुर्वेद को उसके असली स्वरूप के अनुरूप आधुनिक काल के लिये उपयोगी, समर्थ और सुदृढ़ बनाना देशवासियों का कर्तव्य है, सरकार का कर्तव्य है। लोगों का कटु अनुभव है कि जिन क्षेत्रों में राष्ट्रीयकरण हुआ है, उनमें प्रगति नहीं हुई। हम चाहते हैं कि आयुर्वेद क्षेत्र में ऐसी जिम्मेदारी और योग्यता से कार्य हो कि विरोधी शक्तियाँ उसकी प्रगति में बाधक न हो पावें। इसलिये हम चाहते हैं कि आयुर्वेद का राष्ट्रीयकरण होने के साथ ही प्रान्तों में और केन्द्र में भी आयुर्वेद का पृथक् विभाग बनाया जाय और उसके संचालन के लिये प्रान्तों में डाइरेक्टर आदि और केन्द्रों में डाइरेक्टर जनरल आदि के पदों की प्रतिष्ठा हो। यही नहीं, इस विभाग की नीति निर्धारण और कार्य संचालन की दिशा निश्चय करने के लिये आयुर्वेद की मिनिस्ट्री भी अलग और स्वतन्त्र हो। इस ध्येय के अनुकूल वैद्यों को कर्तव्य-परायण होना चाहिए और वैद्यक संस्थाओं को दृढ़तापूर्वक संगठन कर देश में अनुकूल सहानु-भूति और सहयोग का भाव उत्पन्न करना चाहिए।

रोगोत्पादन में आम का सम्बन्ध

आयुर्वेद विद्वान् एम० महादेव शास्त्री

आयुर्वेद ग्रन्थों में रोग से आम का संबन्ध बहुत सा रखा गया है। आर्ष ग्रन्थों में उसका उल्लेख कहीं-कहीं मिलता है। आगे आचार्य वाग्भट ने आम की निरुक्ति तथा इसका लक्षण अच्छी तरह विवरण किया है और आम को उन्होंने घोर विष माना है। सुश्रुत ने कहा है कि "यत्रस्थमामंविरुजेत् तमेवदेशं विशेषेण विकारजातैः" इत्यादि। अर्थात् जहाँ-जहाँ आम ठहरता है वहाँ-वहाँ स्थानविशेष के अनुसार भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। अब हम इन बातों को ध्यान में रख कर रोगों से आम का सम्बन्ध देखेंगे।

आम का अर्थ कई प्रकार से दिया है। पर इन सबसे जो वाग्भटाचार्य का विवरण है वह तो हमें सुन्दर दिखता है। उसने आम-संभव का दो प्रकार से विवरण दिया है कि एक में जठराग्नि की मन्दता से आद्य धातु-रस का ठीक नहीं बनना; दूसरे में दोषों की अन्योन्य संमूर्च्छना से रस का आम होना। पहिली की निरुक्ति ऐसी दी गई है कि—

ऊष्मणोल्प बलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम्।
दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते॥ अ. हृ. सू. १३-२५

अग्निबल जब कम हो तब आहार सेवन करने से इसका सम्यक् पाचन नहीं होता है। इस बात में कोई शंका नहीं कि हमारे नित्य जीवन में सब जानते हैं कि चुल्ही में अग्नि घटे तो बरतन में रहे हुए चावल या अन्य पदार्थ योग्य रूप से नहीं पकते जिसको हम नहीं खा सकते हैं। इसी प्रकार दुर्बल जठराग्नि के संयोग से कोष्ठगत आहार ठीक नहीं पकता जिससे बना हुआ रस शरीर के लिए हितकर नहीं होता है। यह रस अपक्व होने से इसको आम रस माना गया है। आमरस कोष्ठ में शोषित होकर जब अन्दर पहुँचता है तब यह दोषों से, धातुओं से या धातुमलों से मिलता है। ऐसे मिले हुए दोष आदि 'साम' माने जाते हैं। साम का लक्षण वाग्भटाचार्य ने वर्णन किया है कि—

स्रोतोरोध बल भ्रंश गौरवानिल मूढताः।
आलस्यापक्ति निष्ठीवमलसङ्गारुचिक्लमाः॥
लिंगं मलानां सामानां निरामानां विपर्ययः।
अ. हृ. सू. १३-२३-२४

स्रोतोरोध, दौर्बल्य, शरीर का भारीपन, अनिलमूढता अर्थात् वायुका गमन मन्द या बन्द होना, आलस्य या अपक्ति, बरावर थूकना, मलबन्ध, अरुचि और क्लम ये सब साम लक्षण हैं। जब आम पाचन होकर निराम होता है तब इन लक्षणों से विपरीत लक्षण होते हैं जैसे स्रोतः शुद्धि, बलोदय होना, लघुता आदि।

आम की दूसरी निरुक्ति ऐसी दी गई है कि—

अन्ये दोषेभ्य एवाति दुष्टेभ्योऽन्योन्यमूर्च्छनात्।
कोद्रवेभ्यो विषस्येव वदन्त्यामस्य संभवम्॥
अ. हृ. सू. १३-२६

शरीर में दुष्ट दोषों की अन्योन्य संमूर्च्छना होने से आमोत्पत्ति होती है। जैसा कोद्रव सड़ने से उसमें विष निर्माण होता है। शरीर में दोषों की कैसी दुष्टि होती है, संमूर्च्छना क्या है और इससे रोग की कैसे उत्पत्ति होती है इन विषयों को समझना चाहिए।

हम ग्रन्थावलोकन से समझते हैं कि सभी रोगों के लगभग एक ही तरह के दोषों के प्रकोपक कारण होते हैं। क्या इन के सेवन से सब को एक ही काल में रोगोत्पन्न होता है? नहीं, किन्तु कुछ लोगों को होता है और कुछ को नहीं। फिर दोष, आम, रोग आदि शब्द प्रयोग का क्या मतलब है?

स्रोतस्

शरीर में असंख्यात स्थूल और सूक्ष्म स्रोतों के द्वारा सब धातुओं को रसरूप में सदा आहार मिलता रहता है और प्रत्येक धातु अपने पोषकांश को ले कर अपनी विशिष्ट अग्नि के द्वारा आहार पाक करके पुष्टि पाती है और अपने मलांश को छोड़ती है। धातु से मिलनेवाला स्रोतो-भाग स्रोतोमुख कहलाता है। पोषकांश या मलांश इस मुख से ही जाता-आता है। धातु का अपनी अग्नि से सदा पुष्टि या ह्रास होना परिणाम शब्द से व्यवहृत है। सदा धातुपरिणाम होते रहने से जैसे-जैसे धातु-नाश होता है वैसे-वैसे पुष्टि होनी भी आवश्यक है। नहीं तो शरीर

घटता है। पुष्टिकर आहारादि (ऋतुओं के अनुसार आहार, विहार, शोधनादि चर्या) सेवन न करके विरुद्धाहारादि सेवन करें तो रस बहानेवाले स्रोत वैगुण्य पाते हैं। मतलब यह है कि अहित या असात्म्य रस बनने से स्रोत बिगड़ते हैं जैसे गन्दे पानी से नल।

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम्।
यत्रसंगः खवैगुण्यात् व्याधिस्तत्रोपजायते ।।
सु. सू. २४-१०

क्षिप्यमाणः खवैगुण्याद्रसस्सज्जति यत्रसः।
करोति विगुणं तत्र खे वर्षमिव तोयदः ।।
च. चि. १५-३७।

असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग, प्रज्ञापराध और परिणाम इन से दोषों का प्रकोपण होता है। प्रकुपित दोषों का गमन विगुण स्रोतों में अवरुद्ध होता है। अर्थात् दोष बहानेवाला रस विगुण स्रोत में रुक जाता है। इस दशा में प्रकुपित दोष और धातु का दोष परस्पर अप्राकृतिक रूप से मिलते हैं जिससे धातु परिणाम विषम होकर आम बनता है। इस दूसरी निरुक्ति के अनुसार संगति ठीक बैठती है।

पहिली निरुक्ति के अनुसार आम कोष्ठाग्निबलाल्पता से ही उत्पन्न होता है। यह प्रकुपित दोष से मिलकर स्रोतो में फैलते-फैलते विगुण स्रोत तक भी पहुँचता है जिसके बाद प्रकुपित या आगन्तुक दोष धातुस्थ दोष या स्थानिक दोष मिलकर धातु का कार्य और धातु के भागों का नाश करते हैं। इन दोष और द्रव्यों के अप्राकृतिक रूप से परस्पर मिलने को संमूर्च्छना कहते हैं।

इन दोनों प्रकार में इतना ही भेद है कि जठराग्निमान्द्य से बने हुए आम का पहिले ही प्रकुपित दोष से मिलकर विगुण स्रोतों तक पहुँचना या प्रकुपित दोषों के विगुण स्रोतों में पहुँचने के बाद आमरस बनना।

रोग

आमदोष विगुण स्रोत में मिलने से उसको बिगाड़ता है। स्रोतदुष्टि के लक्षण चरकाचार्य ने निम्नप्रकार दिये हैं—

अतिप्रवृत्तिः संगोवा सिराणां ग्रन्थयोपिवा।
विमार्ग गमनं चा (वापि) स्रोतसां दुष्टि लक्षणम् ।।
च. वि. ५

स्रोत में द्रव्य प्रमाण से अधिक बहना या नहीं बनना, सिराओं का ग्रन्थित होना और (या) स्रोत का द्रव्य या अवयव विमार्ग में रहना ये सब स्रोतोदुष्टि के लक्षण हैं। इस को एक-दो उदाहरण से स्पष्ट करेंगे। मल विसर्जन अधिक मात्रा में या अनेक वार होना अतिप्रवृत्ति सूचक है, जिससे पुरीषवह स्रोतोदुष्टि मानी जाती है। कब्जीयत या मलबन्ध पुरीषवह का संग है। पाद या हस्त में व्रण हुए तो वंक्षण या कक्षा में ग्रन्थि होती है। यह ग्रन्थिसूचक है। वमन या उल्टी अन्नवह स्रोत में विमार्गगमन बतलाती है। श्वास प्रवृद्धि प्राणवह की अति प्रवृत्ति और हृदय का स्थानापकर्ष विमार्गगमन आदि स्रोतोदुष्टि के उदाहरण हैं।

आम जठराग्नि से पैदा हो या धात्वग्नि से पैदा हो, वह रस विक्षेपण में एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलता है। प्रकोपण कारण से दोष का बल अधिक रहे तो स्रोतोवैगुण्य के स्थान में क्रियाकालों की सब अवस्थाएँ होती हैं और रोग उत्पन्न होता है। दूसरे स्थानों में स्रोतोवैगुण्य अल्प होने से पहिली की अपेक्षा वहाँ दोष की संमूर्च्छना अल्प होती है और केवल लक्षणमात्रा में रोग की अवस्था रहती है।

आमदोष कोष्ठमार्ग में अर्थात् आमाशय, पक्वाशय आदि स्थानों में रहे तो उसके अनुसार छर्दि, अतिसार, अलसकादि रोग उत्पन्न करता है। अगर धातुओं में हो तो ज्वर, प्रमेह, शोथ, राजयक्ष्मादि रोगों की उत्पत्ति करता है। वास्तव में रोग स्पष्ट होने के पहिले दोष की संचय, प्रकोप, प्रसर ये तीन अवस्थाएँ होती हैं। कई बार रोगी या वैद्य इन अवस्थाओं को नहीं पहिचानता है क्योंकि वे अवस्थाएँ बहुत सूक्ष्म रूप में रहती हैं। स्थानासंश्रयावस्था रोग का पूर्वरूप बनती है। व्यक्ति और भेद रोग के स्पष्ट रूप होते हैं।

निज रोग उत्पादन होने के लिए संग्रह में ऐसा देखा जाता है कि (१) अग्निमान्द्य, (२) आमोत्पत्ति (३) स्रोतोरोध (४) दोषदूष्य संमूर्च्छना और (५) रोग। आगन्तु रोग में इससे थोड़ा विपरीत क्रम रहता है।

दोषदूष्य संमूर्च्छना के परिणाम से कुछ धातुनाश होता है। यह नष्ट भाग मल बनता है। यह मल और धातु से विसर्जित मल दोनों आमदोष से मिलकर साम बनाते हैं। जबतक यह साम धातुओं के साथ रहता है तब तक कुछ न कुछ क्रिया या रचनात्मक विकार रहते हैं और ये विकार लक्षण रूप से देखे जाते हैं।

यह दोषदूष्यसंमूछना जनित विकृति परम्परा विशेष रोगसंज्ञक हैं।

मनुष्य की स्वाभाविक आयु

डॉ० एफ० ई० बिल्स (जर्मनी)

स्वस्थ माता पिता से जन्म लेकर, प्रकृति द्वारा दी हुई जीवनीशक्ति की पूंजी को स्वस्थ बनाये रखते हुए, सावधानी से, संयम से मनुष्य सौ वर्ष से भी अधिक जी सकता है। प्रकृति का यह साधारण नियम देखा गया है कि कोई प्राणी शरीर की प्रौढ़ता जितने समय में प्राप्त करता है उसके पाँचगुना जीता है। यथा घोड़ा पाँच वर्ष में पूरी ऊँचाई को पहुँचता है अतः वह २५ या ३० साल तक जीता है। ऊँट ८ वर्ष में युवा होकर ४० साल, कुत्ता २ वर्ष में विकसित होकर १० वर्ष, हाथी ४० वर्ष में पूर्ण विकसित होकर २०० वर्ष जीता है। यह नियम प्रायः देखा गया है। कई घोड़े तो ५० वर्ष से अधिक जिये हैं। मैंचेस्टर के अजायबघर में एक घोड़े की खोपड़ी रखी है जो ६० वर्ष से अधिक जिया था। सिकन्दर महान् ने युद्धों में विजय का श्रेय अपने हाथी को देने के लिए उसे सूर्य भगवान् को अर्पित कर मुक्त कर दिया था। यह हाथी ३५० वर्ष तक जिन्दा पाया गया था।

प्रसिद्ध प्रकृतिवादी डेमोक्रिटस आजीवन निरोगी, स्वस्थ रहकर १०६ वर्ष की उम्र में मरा था। रोम की दो नर्तकियाँ १०४ और ११२ वर्ष की होकर मरीं। फ्रांस की एक अभिनेत्री १८६७ में मरी। उस समय उसकी आयु १११ वर्ष थी। स्वीडन का एक फौजी ६७ वर्ष तक फौज में रहकर १७ लड़ाइयाँ लड़ा था, ११२ वर्ष की उम्र में मरा। ११० वर्ष की उम्र में उसने तीसरी शादी की थी और मरने के पहले दो घण्टे पैदल चला था। अंग्रेज ईफिगम एक मजदूर था, मेहनत से रोजी कमाता था, कभी बीमार नहीं पड़ा था, १४४ वर्ष में मरा। इग्लैण्ड के थॉमस पार साहब १५२ वर्ष तक जीवित रहे। वे सदा साधारण भोजन से स्वस्थ रहे। एक बार बादशाह चार्ल्स प्रथम ने मुलाकात के लिए इन्हें बुलाया और इज्जत करने के लिए बढ़िया भोजन दिया। इससे वह मर गये। उनके शव की चीर-फाड़ कर जाँच करने से पता चला कि गरिष्ट पदार्थ खाने से उनका पाचन बिगड़ गया, इससे वे मर गये। नारवे का एक व्यक्ति ड्रेकनबर्ग १४६ वर्ष जीवित रहा। १३० वर्ष की स्वस्थ उम्र में उन्होंने एक किसान की कन्या से शादी की थी। जोसफ सुरिंगटन १६० वर्ष जिया। उसका सबसे छोटा बच्चा ६ वर्ष का था, सबसे बड़ा १०८ वर्ष का। हंगरी का बोविन १७५० में १७२ वर्ष की आयु में मरा। उस समय उसकी विधवा की आयु १६४ वर्ष थी, बेटा ११५ वर्ष का था। रूस का एक व्यक्ति जो १६२३ में जन्मा था १८२५ तक, अर्थात २०२ वर्ष तक जीवित रहा।

ये लोग स्वस्थ रहते हुए इतना क्यों जिये? प्रकृति द्वारा दी हुई जीवनीशक्ति की पूंजी को संयम से आमद-खर्च करते रहे, यही एक उत्तर है। मनुष्य को कितने वर्ष तक जीना चाहिए? लोगों का मत है सौ वर्ष, परन्तु अनुभव तो इस कैद को पार कर जाता है।

इंगलैण्ड में १५वीं शताब्दी में जन्मा एक किसान १७वीं शताब्दी में, १७० वर्ष की आयु तक जीवित रहा। १२० वर्ष की उम्र में वह कठिन परिश्रम करता था। उसका भोजन सदैव सादा था, किन्तु एक भोज में माल-टाल खाने से वह मरा। वेस्टमिन्स्टर एबे में उसकी समाधि बनी है। डेन्मार्क में एक व्यक्ति का जन्म १६२४ में हुआ था, मृत्यु १७७० में हुई। वह बड़ा संयमी था। उसकी पत्नी ६० वर्ष की उम्र में मर गई तब उसने १८ वर्ष की एक कन्या से शादी करनी चाही। ऐसे बहुत से लोग हुए हैं जिनने अधिक उम्र में एवं कई शादियाँ कीं। स्कॉटलैण्ड के एक व्यक्ति ने ६ बार, और एक फ्रेन्च ने १० बार शादी की। हंगरी के लोगों में भी दीर्घायु के उदाहरण हैं। १७२४ में टेमेश्वर में एक व्यक्ति १८५ वर्ष की आयु में मरा था। कितने ही लोग मरते समय तक स्वस्थ रहे। अजीब बात मालूम होती है कि इन लोगों के दाँत और बाल पुनः ऊग आये थे और चेहरे की झुर्रियाँ गायब हो गई थीं।

डॉ० हूफलेण्ड ने दो ऐसे व्यक्तियों के प्राकृतिक कायाकल्प का हाल लिखा है। हम लोगों के जमाने में तो लोग बहुत असमय में मर जाते हैं। मुलर द्वारा लिखित

विश्व-इतिहास में ईस्वी सन् के प्रारंभिक काल में रोम के बादशाह वेस्पासियन के जमाने में एक क्षेत्र में दीर्घायुषों की जनगणना के हिसाब में बताया गया है कि एक गाँव में ५४ व्यक्ति एक सौ वर्ष से अधिक वाले थे, ४० व्यक्ति ११० वर्ष की आयु से १४० तक, दो व्यक्ति तो १५० वर्ष के थे। अरब के लोगों में, जो दूध में और जल पीते हैं, बहुत से लोग दीर्घायु होते हैं। लन्दन के सन्त लियोवार्ड गिरजाघर में जन्म-मृत्यु तिथि रजिस्टर में एक व्यक्ति थामस कार्न का जन्म २८ जनवरी १५८८, मृत्यु १७९५ लिखी है। २०७ वर्ष के जीवन में इंग्लैण्ड की राजगद्दी पर उसने बारह राजाओं को देखा।

आजकल बहुधा लोग पुरानी बीमारियों के शिकार होकर ५०–७० अथवा इससे भी पहले मर जाते हैं। यह बीमार रहते जीना भी कोई जिन्दगी है? पुरानी बीमारी से ग्रस्त होकर धीरे-धीरे ५० या ७० वर्ष तक मरते रहने की क्रिया क्या जिन्दगी है? वह भी जहरीली दवाइयाँ पीते हुए, शरीर में सुई चुभाते, चीरफाड़ की नारकीय यातनाएँ सहते हुए––बीमारी और वैज्ञानिक इलाज के नाम पर रुपये खर्च कर जहरी दवाइयाँ पीते हुए! मरने की यह क्रिया जन्म से ही आरंभ हो जाती है। ज्यों-ज्यों इन दवाइयों––जहरों द्वारा रोगनाश और स्वास्थ्य प्राप्ति का वैज्ञानिक (?) जमाना उन्नति कर रहा है त्यों-त्यों मनुष्य की दुर्दशा होती जा रही है। रूस के सेण्ट पीटर्सबर्ग के अक्टूबर १८९५ के अखबार लिस्तोक में एक किसान का समाचार लिखा है कि १३० वर्ष की आयु वाले किसान ईवान कुस्मिन का प्रवेश इस शहर के ओबुको अस्पताल में हुआ। सरकार ने उसको देश भर के सब शहरों की यात्रा करने की आज्ञा (पासपोर्ट) दी है। उसकी उम्र अधिक नहीं मालूम होती, वह स्वस्थ एवं बुद्धिमान है। वह १७५७ में जन्मा था। अपने पिता के साथ वह मालिक जागीरदार का आजीवन गुलाम नौकर था। ८५ वर्ष की उम्र में उसे साइबेरिया भेज दिया गया था। उसने जागीरदार की नौकरी करने से इन्कार किया तो उसे १० वर्ष साइबेरिया में रहने को 'देश निकाला' दिया गया था। उस कठोर प्रदेश में वह ५३ वर्ष रहा। गुलामी प्रथा का अंत होने पर वह मुक्त होकर 'सोने की खदान' में काम करने लगा। वहाँ उसके पाँव का एक अँगूठा कट गया। १८९४ में उसे घर की याद सताने लगी तब सरदार ने उसे यूरपी रूस जाने की आज्ञा और रेलवे का 'फ्री पास' दिया। मास्को आकर उसने अपने रिश्तेदारों और घर को ढूंढ़ा, परन्तु दो दिन तक बहुत ढूंढ़ने पर कोई न मिला तो सेण्ट पीटर्सबर्ग लौटकर एक कमरा किराए पर लेकर रहने लगा। वह आजीवन कुंआरा था। उसकी स्मृति तीव्र थी। इस समय वह पुगात्सू द्रोह, क्रीमिया सम्मिलन और नेपोलियन के रूस पर आक्रमण आदि का हाल अच्छी तरह बतलाता था।

पेटर माफेन्स ने भारत के इतिहास में एक व्यक्ति 'नूमिस्दे को गुआ' के विषय में लिखा है कि वह १५६६ में ३७० वर्ष की उम्र में मरा। उसके दाँत, दाढ़ी और बालों का चार बार कायाकल्प हुआ था। वेलोर मकरेन एक मकान में १९० वर्ष तक जीवित रहा।

जर्मनी के दूसरे विख्यात प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० एम० प्लेटेन ने मनुष्य की आयु के विषय में लिखा है कि "मनुष्य की स्वाभाविक आयु की कोई अवधि नहीं है। अपनी योग्यतानुसार वह चाहे जितना जिए। परन्तु इस जमाने में मनुष्य की औसत आयु ३५ वर्ष रह गई है। लोग जन्म से ही पैतृक रोग लेकर संसार में आते हैं, अथवा जो स्वस्थ पैदा होते हैं वे आगे चलकर सामाजिक चलन के असंयम, खान-पान और सभ्यता के रहन-सहन एवं आचार-विचार से स्वयं रोग पैदा कर लेते हैं। संसार में सब प्राणियों की आयु का प्राकृतिक नियम मनुष्य के लिए भी है। एशिया माइनर के हद्‌थ नामक नगर में हुदशी सोलिमन साबा नाम का एक तुर्क १३२ वर्ष तक जीवित रहा। वियेना के राष्ट्रीय अखबार "वियेनर वाटरलेण्ड" में उसके विषय में मृत्यु पश्चात् समाचार छपा था कि हुदशी के सात स्त्रियाँ थीं जो उससे पहले मर चुकी थीं। उनसे उसके ६० बेटे और ९ बेटियाँ उत्पन्न हुई थीं जो सब मर चुकी हैं। उसने ९८ वर्ष की आयु में सातवीं शादी की थी जिससे तीन बेटे पैदा हुए थे। उसकी और भी शादी करने की इच्छा थी किन्तु पैसा नहीं था। वह किसान था और दाल-रोटी खाता था, जीवन में केवल दो बार मांस खाया था। वह जीवन भर कभी बीमार नहीं पड़ा। मरने के पूर्व केवल चार दिन बीमार पड़ा।"

जनसाधारण की परम्परागत धारणा और आदत है कि गरिष्ट और खूब खाने-पीने से, मोटे होने से तन्दुरुस्ती

(शेषांश ९५७ पृष्ठ पर)

आयुर्वेद के पुनरुत्थान में आयुर्वेदस्नातकों का स्थान

कविराज सतीन्द्रनाथ बसु, एल० ए० एम० एस०, भिषग्रत्न

आयुर्वेद जगत में आजकल आधुनिक आयुर्वेद स्नातक एक समस्या का विषय बन गये हैं। उनका स्थान न वैद्यों में गिना जाता है—न उन्हें डाक्टरों की मर्यादा ही दी जाती है। इतना ही नहीं—बड़ी-बड़ी सभा-समितियों में, मासिक पत्रिकाओं में उन्हें कभी "Half Vaids & Half Doctors" और कभी "धोबी का कुत्ता, न घर का न घाट का"—यह उपाधि दी जाती है। परन्तु अफसोस तो यही है कि यह उपाधि उनलोगों ने ही दी हैं, जिन लोगों ने आयुर्वेद-स्नातकों को इस प्रकार बनाया है। उन्हें यह कहने का साहस नहीं है कि उन व्यक्तियों के कसूर से ही—उन व्यक्तियों की दूरदर्शिता के अभाव से, उन्हीं लोगों की भूल से आज आयुर्वेद स्नातकों में खराबियाँ आई हैं। ऐसे विवेकहीन सज्जनों से वाद-प्रतिवाद करना भी व्यर्थ है। सैंकड़ों लेखों में उन्हें चेलेंज दिया गया परन्तु आज तक केवल आयुर्वेद स्नातकों को गाली देना, उन्हें अपमानित करना, उनकी निन्दा करना—इसके अतिरिक्त चेलेंज के प्रत्युत्तर में एक शब्द कहने का साहस आज तक किसी को हुआ नहीं और न होने की उम्मीद ही है। इस तरह व्यक्तिगत रूप से उन महारथियों में विवेक की जागृति असम्भव देखकर समवेत रूप से उनका मुकाबला करने के लिए अखिल भारतीय नेशनल मेडिकल एसोसियेशन की स्थापना हो चुकी है और वह धीरे-धीरे प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो रही है। मैं उस संस्था का एक सदस्य होते हुए भी व्यक्तिगत रूप से इस प्रकार के द्वन्द्व का विरोधी हूँ। यह आयुर्वेद के पुनरुत्थान में घातक तो नहीं है, परन्तु बाधक अवश्य है। विवश होने पर ही इस संस्था की सृष्टि हुई है और मुझे विश्वास है कि जिस दिन उस परिस्थिति का अवसान होगा, जिस परिस्थिति ने आयुर्वेद स्नातकों को एक पृथक् ध्वज के नीचे संगठित होने को मजबूर किया, उसी दिन यह संस्था विघटित होगी। आज जब आयुर्वेद अपने जीवन-मरण के सन्धिक्षण से गुजर रहा है, इस समय सभी आयुर्वेदसेवियों को कन्धे से कन्धा मिलाकर इस लड़ाई में सम्मिलित होना चाहिये था। यह समय आत्म कलह का नहीं है, यह समय परनिन्दा या परचर्चा का नहीं है। आज का समय सभी को भेदभाव भूलकर एक स्वर से आयुर्वेद-विरोधियों से टक्कर लेने का है—और वह स्वर जितना गम्भीर तथा उच्च हो उतना ही महत्व का होगा। इस बात को हम भूल गये हैं, व्यक्तिगत स्वार्थ व प्रतिष्ठालोलुपता के शिकार बन कर आपसी मतभेद व पारस्परिक निन्दा के सहारे हम अपने विरोधियों का हाथ मजबूत बना रहे हैं। इससे न हमारा ही भला होगा न आयुर्वेद का। यह परिस्थिति जितना ही शीघ्र हमारी समझ में आ जाय, उतना ही हमारे लिये मंगल है।

यह कहा जाता है कि आयुर्वेद स्नातकों में न आयुर्वेद का ज्ञान उतनी उच्चकोटि का मिलता है जिससे वे पूर्ण आयुर्वेदज्ञ कहलाने योग्य होते हैं और न उन्हें इतनी डाक्टरी की शिक्षा दी जाती है, जिससे वे डाक्टरों के साथ मुकाबला कर सकते हैं। जहाँ तक पैसा कमाने का सवाल है, यह कहा जा सकता कि वे सफल वैद्य व सफल कायचिकित्सक डाक्टरों से बराबर टक्कर लेते हैं। परन्तु जहां तक विद्या का प्रश्न है—यह कहना असत्य होगा कि वे प्राचीन आयुर्वेद विद्वानों से—अवश्य मैं वास्तविकत: जिन्हें "आयुर्वेद-विद्वान" कहा जा सकता है उनकी बात ही कह रहा हूँ—निम्नस्तर के नहीं हैं। वैसे ही वे विशिष्ट एलोपैथी के विद्वानों के भी समकक्ष नहीं कहे जा सकते हैं। इसका कारण आयुर्वेद स्नातकों में बुद्धि का अभाव नहीं है और न उनमें शिक्षा ग्रहण करने की प्रवृत्ति का अभाव है। उन कारणों को मैंने कई बार अपने लेखों द्वारा चिन्ताशील वैद्यजगत के समक्ष रखने का प्रयास किया—परन्तु शायद ही उनका ध्यान आकृष्ट कर पाया। इसका कारण मैं लेखों की असारता नहीं समझता हूँ, क्यों कि अगर ऐसा होता तो वे मुझे समझा सकते थे। प्रत्युत्तर में मेरा मत खण्डन करने का प्रयास कर सकते थे। परन्तु इसके अभाव में मुझे यही समझना पड़ा कि वे आत्मनिरीक्षण के लिए प्रस्तुत नहीं है या निज दोष स्वीकार करने को तैयार नहीं है। आज जब मैं देख रहा हूँ कि हमारे स्नातकों में अवसर मिलने पर बड़ी-बड़ी वैदेशिक उपाधियाँ हासिल करने की शक्ति है,

प्रत्यक्ष कर्माभ्यास में वे किसी से पीछे नहीं हटते हैं तो मैं कैसे यह मान लूं कि उनमें शक्ति, अध्यवसाय तथा बुद्धि की कमी है। परन्तु आयुर्वेद स्नातकों को चारों तरफ से दबाव में रखकर उनकी प्रगति में बाधा डालने से उनकी दीप्ति का प्रकाश कैसे हो सकता है—यह मेरी समझ के बाहर है।

आज आयुर्वेद स्नातक जिन कारणों से ही क्यों न हो—जिस परिस्थिति में हैं, उस परिस्थिति में रहकर भी वे आयुर्वेद के पुनरुत्थान में बहुत ही महत्व के आधार बन सकते हैं। प्रयोजन है केवल उस महत्वको समझकर—उसे ससम्मान स्वीकार कर उसका सदुपयोग करने का ही। आज मैं उस सम्बन्ध में आयुर्वेद-जगत का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ।

आयुर्वेद एक अगाध ज्ञान का भण्डार है—इसमें सन्देह नहीं। ३-४००० वर्ष पुराना होने पर भी—पाश्चात्य जगत में विज्ञान की परमोन्नति को देखते हुए भी आज कम से कम भारतवर्ष में आयुर्वेद की विशेष उपयोगिता है—इसमें सन्देह नहीं है। विश्व में अभी भी आयुर्वेद की देन काफी महत्वपूर्ण प्रतीत होगी। आज आयुर्वेद सुप्त है—परन्तु लुप्त नहीं है और यह भी सत्य है कि आयुर्वेद फिर से विश्व में अपना मस्तक ऊँचा ही करेगा। परन्तु हमें इसके लिए प्रयत्नशील होना पड़ेगा। जनता, आयुर्वेदसेवी, हमारे देशवासी, आधुनिक चिकित्सक तथा हमारा जनप्रिय शासन—इन सभी को समवेत रूप से इस लिये प्रचेष्टा करनी पड़ेगी। देश की सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति को देखते हुए यह कहना ही पड़ेगा कि आयुर्वेद के पुनरुत्थान में प्रोत्साहन देना आज भी परमावश्यक है। इससे न केवल देश की सामाजिक व आर्थिक परिस्थिति में सुधार की आशा की जाती है, इससे देश की राष्ट्रीय मर्यादा में भी काफी वृद्धि होगी। आज आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित कर हमारा शासन देश की उन सभी परिस्थितियों में सुधार की आशा कर सकता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा के आसन पर सुप्रतिष्ठित करने के लिये शासन के समक्ष जितनी कठिनाइयाँ आ रही है—जितनी प्रचेष्टा उन्हें करनी पड़ रही है—आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति के आसन पर स्थापित करने के लिए शासन को उतनी कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा; हाँ प्रचेष्टा तो करनी ही पड़ेगी। आज हिन्दी के लिए १५ वर्ष का जो समय दिया गया है—मुझे शंका है कि उस समय तक सभी कठिनाइयाँ समाप्त हो जायंगी। उसके बराबर आयुर्वेद को २५ वर्ष का समय देकर इस दिशा में भरसक प्रयत्न किया जाय तो आयुर्वेद भी राष्ट्रीय गौरव का विषय बन जावेगा, विश्व में अपना स्थान लेकर भारत का मुखोज्ज्वल करेगा—अपना देश फिरसे सुख सम्पत्ति का घर बन जावेगा—इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

यह बात सत्य है कि आयुर्वेद के अतल वारिधितल में असंख्य रत्न अनादृत रूप से अभी भी पड़े हैं, जिसका ज्ञान हमें नहीं है। मैं कई बार कह चुका हूँ कि आज तक आयुर्वेद जीवित है—केवल अपने निर्दोष व वीर्यवान औषधियों के बल पर और आज आयुर्वेद इतनी हीन परिस्थिति में आया है—मुख्यतः आयुर्वेदसेवियों की विविध खामियों के कारण। परन्तु जो कुछ हुआ है वह तो हो चुका है, अब अरण्यरोदन से लाभ ही क्या है। जो कुछ हाथ लग रहा है, उसका सदुपयोग कैसे हो सकता है—यही प्रधानतः विचारणीय है। आयुर्वेद आज कम से कम १ हजार वर्षों से विविध कारणों से आगे बढ़ नहीं पाया। केवल इतना ही नहीं, उसके मौलिक ग्रन्थादि नष्ट हो गये हैं, उसके सिद्धान्तों का अपवाद छा गया है, हम औषधि पहचानने में गलती करते हैं, औषधि-निर्माण में विभिन्न मार्ग को अपनाते हैं, हर तरह से हमारी अवनति हो चुकी है—और हो रही है। सिर्फ हमारा आश्रय है बड़ी-बड़ी बातें कहना, शास्त्र की दुहाई देना, अपने अतीत इतिहास पर बढ़ावा का ढाक पीटना। आज हम कहते हैं—हवाई जहाज पाश्चात्य देशों का आविष्कार नहीं है, हमारे देशमें प्रागैतिहासिक युग में पुष्पक रथ था, हमारे देश में एटम बम बनता था, हमारे शल्य चिकित्सक मस्तिष्क में शस्त्रोपचार किया करते थे, प्लाष्टिक सर्जरी भारतवर्ष से ही पाश्चात्य देश ने सीखी है; परन्तु ये सब सही होते हुए भी अवास्तव है। हमारे पूर्वपुरुष बहुत बड़े आदमी थे—इस बल पर हमें भी वही इज्जत मिलनी चाहिये—यह तो बिल्कुल असम्भव है। आज आयुर्वेद के पुनरुत्थान में इसलिये परकीय सहायता की आवश्यकता है। हमारे देश की पंचवर्षीय योजना को पूरा करने के लिये विदेश से ऋण मांगने की आवश्यकता पड़ रही है। हमारे देश में अन्नाभाव मिटाने के लिए विदेश से अन्न खरीदा जाता है। हमारे देश की स्वास्थ्य-रक्षा के लिये विदेश से औषधियाँ तथा अन्य सामग्री मंगाई जा रही है, तो आज लुप्तांग आयु-

वेंद की परिपूर्ति के लिये पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान की सहायता लेने में हमें क्यों शर्म मालूम होती है, यह मेरी समझ के बाहर है। मेरी समझ में नहीं आता है कि क्यों हमारे नेता आयुर्वेद की सच्ची परिस्थिति से जनता व शासन को अन्धकार में रखना चाहते हैं। जब कि अपने घर में कोई बीमार होने पर उन्हें डाक्टर बुलाने में, डाक्टरी दवाई खरीदने में शर्म नहीं आती तो आयुर्वेद की परिपूर्ति के लिये पाश्चात्य विज्ञान की सहायता लेना परमावश्यक है—इस मूल सत्य को स्वीकार करने और जनता व शासन के समक्ष आत्मविश्वास के साथ कहने में उन्हें शर्म क्यों आती है? इससे वे आयुर्वेद का भला नहीं कर रहे हैं—यह ध्रुव सत्य है। इससे आयुर्वेद का उत्थान नहीं होगा, पतन ही होगा—इनमें सन्देह नहीं है। परन्तु साथ ही साथ मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि मैं पाश्चात्य विज्ञान के सहारे आयुर्वेद को परिपूर्ण रूप से विकसित करना चाहता हूँ, आयुर्वेद का स्वरूप पूर्णतया खोकर नहीं। विवर्त्तन व विकाश के समय इसके स्वरूप में मामूली परिवर्त्तन आ सकता है—परन्तु ऐसे परिवर्तन का मैं कट्टर विरोधी हूँ जिससे आयुर्वेद का स्वरूप इस तरह से परिवर्त्तित हो जाय कि उसे पहिचानना ही असम्भव हो जाय। इस दिशा में पहला कदम तो यह है कि आयुर्वेद में उपलब्ध विषयों का विषयानुसार दोहन हो और उसे पूर्णतया आज के युगोपयोगी बनाने के लिए कितने परिमाण में बाहरी सहायता की आवश्यकता है, इस का सही-सही निर्धारण हो। इसके बिना हमारा आगे बढ़ना असम्भव है। बहुत से नेताओं का कहना है कि आयुर्वेद के शुद्ध स्वरूप की रक्षा करनी चाहिये और आयुर्वेद को आज के युगोपयोगी बनाने के लिये निजी अनुसन्धान द्वारा प्रचेष्टा की जानी चाहिये। मुझे खेद के साथ कहना ही पड़ेगा कि प्रथम मत अंशतः तथा द्वितीय मत सम्पूर्णरूपेण भ्रमात्मक है। आज के युग में जहाँ पाश्चात्य जगत अपनी प्रचेष्टाओं के द्वारा इतना आगे बढ़ चुका है और हमारे देश में भी उसका प्रभाव पर्याप्त रूप से डाल दिया है—जहाँ हमारा दैनन्दिन रहन-सहन, चिन्तन तक उससे प्रभावित हो चुका है वहाँ आयुर्वेद के शुद्ध स्वरूप की रक्षा पूर्णतया नहीं की जा सकती है। उसमें समयानुकूल परिवर्त्तन परमावश्यक है, नहीं तो पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित हमारी जनता उसे सादर ग्रहण नहीं करेगी—बल्कि उसके वहिष्कार की ही प्रचेष्टा होगी, और निजी अनुसन्धान द्वारा उसको युगोपयोगी बनाने का स्वप्न तो स्वप्न ही रह जायेगा। आज आयुर्वेद की जो परिस्थिति है उसे देखते हुए इसको असम्भाव्य रूप से असम्भव कहा जा सकता है। इसको युगोपयोगी बनाने तथा पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञानों से टक्कर लेने में समर्थ बनाने में जो समय लग जावेगा, उसके बाद यह दिखाई पड़ेगा कि पाश्चात्य विज्ञान की वर्त्तमान उन्नति व आयुर्वेद की वर्त्तमान परिस्थिति में जो अन्तर अभी वर्त्तमान है, उस अन्तर का परिमाण काफी बढ़ गया है—शायद दसगुना से भी ज्यादा हो गया है। अब तो सरल उपाय यह है कि पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान से आवश्यक सहायता लेकर आयुर्वेद को यथाशीघ्र समानान्तर पर लाया जाय एवं युगोपयोगी बनाकर देश की राष्ट्रीय स्वास्थ्य रक्षा का भार लिया जाय। फिर हमें निजी अनुसंधान का प्रचुर अवसर मिलेगा और तब हम पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के मुकाबले में उन्नति के लिये अग्रसर हो सकेंगे। यही है आयुर्वेद के पुनरुत्थान के लिये सरलतम उपाय। इस उपाय को सर्वान्तःकरण से स्वीकार कर इस ओर प्रगति करना ही सच्चे आयुर्वेद-सेवियों का कर्त्तव्य है—धर्म है।

इस मार्ग को अपनाने के लिये आयुर्वेद-स्नातकों का महत्वपूर्ण प्रयोजन है। आज आयुर्वेद को युगोपयोगी व राष्ट्रीय स्वास्थ्य-रक्षा का भार वहन करने में समर्थ बनाने के लिए आयुर्वेद और पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के गम्भीर ज्ञान व अनुभव की परमावश्यकता है। मुझे यह कहने में जरा सी भी द्विधा नहीं हो रही है कि आज के आयुर्वेद-स्नातक इसके अधिकारी नहीं हैं—इस के लिये सम्पूर्ण उपयुक्त नहीं हैं। इसका कारण मैं पहिले कई लेखों में बता चुका हूँ। इसके लिये उनकी स्वल्पपरिसर भित्ति, साधनों की कमी, शिक्षकों का अभाव, आदि कई कारण हैं—परन्तु यह सब देखते हुए भी मैं आयुर्वेद-स्नातकों का स्थान अपरिहार्य एवं विशेष महत्वपूर्ण मानता हूँ। आज आयुर्वेद के प्राचीन विद्वान के समक्ष पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान एक कुहेलिका के बराबर हैं, वैसे ही पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के पण्डित के पास आयुर्वेद के प्रचण्ड विद्वान एक प्रहेलिका के बराबर है। दोनों शास्त्रज्ञों की बातें परस्पर में अर्थहीन प्रतीत होती है। वे एक दूसरे को समझ नहीं पाते। फल यही होता है कि दोनों का सान्निध्य व पारस्परिक चर्चा

विफल हो जाती है। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं, एक दूसरे को हीन समझते हैं। पारस्परिक भाव के आदान-प्रदान की सम्भावना ही नहीं रहती है। ऐसी परिस्थिति में आयुर्वेद को युगोपयोगी बनाने के लिये पाश्चात्य विज्ञान से सहायता कैसे मिल सकती है—यह विवेच्य है।

दोनों शास्त्रों की विचारधाराओं के आदान-प्रदान में आयुर्वेद स्नातकों का माध्यम ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है और इसी में आयुर्वेद स्नातकों का महत्वपूर्ण स्थान है। हम मानते हैं कि इनमें शास्त्र व व्यावहारिक ज्ञान की न्यूनता है फिर भी आज के युग में उनका महत्व दोनों शास्त्रों के परम विद्वानों से किसी तरह कम नहीं है। यह बात अविसंवादित रूप से सत्य है कि भूमध्यसागर व लोहित सागर की गम्भीरता स्वेज प्रणाली में नहीं है, दोनों की महानता स्वेज प्रणाली से अधिकतर विराट है। दोनों समुद्रों के वर्तमान रहते हुए भी प्राच्य-पाश्चात्य देशों का आवागमन उत्तमाशा अन्तरीप के रास्ते से हुआ करता था—जिसमें काफी समय व धन का अपव्यय होता था। इस असुविधा को दूर करने के लिये स्वेज नहर प्रणाली की खुदाई की गयी थी। अभी-अभी मिस्र देश ने स्वेज नहर को जब बन्द कर दिया तभी उस संयोजक संकीर्ण नहर का महत्व सारे विश्व में प्रतिभात हुआ था। आज स्वेज नहर का जो महत्व प्राच्य-पाश्चात्य देशों के जीवन संग्राम में है——वही महत्व आयुर्वेद-एलोपैथी के समन्वय में, आयुर्वेद को युगोपयोगी बनाने में, आयुर्वेद को हमारे देश की स्वास्थ्य रक्षा का भार सम्हालने के योग्य बनाने में, आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति का गौरवमय आसन दिलाने में और भारतीय चिकित्सा पद्धति को विश्व के लिये आदर्श चिकित्सा पद्धति बनाने में आधुनिक आयुर्वेद-स्नातकों का है। यह सत्य हमारा जनप्रिय शासन, आयुर्वेदप्रेमी जनता व आयुर्वेदसेवी प्राचीन वैद्य सम्प्रदाय जितनी ही जल्दी समझ सकें——जितनी जल्दी वे इस नीति को अपनाने में दृढ़संकल्प हों, उतना ही उनका मंगल नजदीक आ जावेगा—इसमें सन्देह नहीं है।

आज आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित कर उसकी उन्नति में जुट जाना, केवल भावुकता के दृष्टिकोण से ही नहीं, राष्ट्रीय, सामाजिक व आर्थिक दृष्टिकोण से भी परमावश्यक है। इस दिशा में गम्भीर मनन व चिन्तन की आवश्यकता है और इस ओर मैं जनता व जननेताओं का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। भगवान हमें सद्बुद्धि दें—दिव्य आलोक से हमारा पथ उद्भासित करे, हमारा गन्तव्य स्थान सुगम बना दें—यही हमारी प्रार्थना है।

शेषांश]

मनुष्य की स्वाभाविक आयु

[६५३ पृष्ठ का

अच्छी रहती है अर्थात् मोटा होना ही तन्दुरुस्ती है और खूब खाने-पीने की ही जिन्दगी है, और खा-पीकर ही खूब जिया जा सकता है। परंतु अनुभव से और वैज्ञानिक शोध से ये बातें तथ्यहीन सिद्ध हुई हैं। इन्हीं धारणाओं और आदतों के फलस्वरूप ही दुनिया रोगी है और वैज्ञानिक इलाज की सहायता से रोग दूर होने के बदले बढ़ रहे हैं। यही कारण है कि अस्पताल और डॉक्टर तथा दवा का धंधा खूब बढ़ रहा है।

कोई भी मशीन जितना अधिक चलेगी उतनी जल्दी उसकी आयु पूरी होगी। मनुष्य शरीर के अंगों का भी यही हाल है। जितना अधिक भार इन पर दोगे, ये थक कर बैठ जायँगे। नतीजा होता है रोग, तथा कड़वी जहरीली दवाओं से और भी बिगड़कर पुराना रोग, आजीवन रोग और मृत्यु। रोग दूर करने या ताकत बढ़ाने में दवा का न सम्बन्ध है, न जरूरत।

अपनी प्रकृति अनुसार पुनः संयम और सुधार करने से, शरीर के अंगों की शुद्धि करने और उन्हें आराम देने तथा अनेक प्रकार की साधना करने से शक्ति जाग्रत होकर उम्र बढ़ जाती है। जब भूख नहीं लगती, और खाने से ताकत नहीं आती, तो उपवास और शुद्धि के साधनों से ताकत आयेगी। यदि आप के जीवन में रस न हो, दवाओं से निराश हो चुके हों तो दवाओं का त्याग कर बिना इलाज की पद्धति को आजमाइए और नवजीवन प्राप्त कर उम्र बढ़ाइए।

Vitamins at our Door

Dr. A. Lakshmipathi, B. A., M. B. & C. M., Bhishagratna.

For the last one or two generations, there has been wide propaganda regarding the existence of Vitamins in the foodstuffs of man and animals and the diseases caused by the deficiency of these factors. For want of a better name, these substances are called Vitamin-A, Vitamin—B, C, D, E, F, G, H, K, L, M, P and so on and vitamin B is further subdivided as Vitamin B^1, B^2, B^3, B^4, B^5 and so on.

We may translate the word Vitamin as Satwam or Sathu in Malayalam. (Compare Guddoochi Satwam, Abhraka Satwam etc., which in Ayurveda mean the essence of a substance).

Vitamins are defined as Non-amino acid organic compounds, derived from exogenous sources supplying Hormones, Enzymes and other substances controlling the activities of the several organs and tissues in the body. Deprivation of certain Vitamins to animals or human beings produces certain diseases such as Scurvy, Ricketes, Beri-Beri. Pellagra and Sterility. These are called deficiency diseases. Vitamin deficiency may be caused by :

1. deficiency of the vitamins in food;
2. failure to absorb vitamins from food by the body ; and
3. conditions in which the vitamin needs are increased by diseases or unhealthy habits and surroundings.

For want of time, I cannot go into these details here.

This is a subject which is now taught even to children of elementary schools but the fact is that they are not told that these vitamins are at our door and that they are easily available to the villager, if not to the people living in urban areas under modern civilised conditions. A plot of land measuring only 5 cents or 50 ft.×50ft. is enough to produce fresh green vegetables which provide almost all the vitamins in a fresh state. This is really the most suitable remedy for prevention of the deficiency diseases. In America, I am told that tomatoes are cultivated in the open terraces on the house-tops in flower pots and basins.

In Ayurveda detailed instructions are given under the head of Pathyam which means diet in Health and Disease of Man, Woman and Child. The traditional knowledge is still preserved in the homes through the women members of the family. This is well-worth our careful study and research in Vitamins now propounded by the modern scientists.

The best sources of all the Vitamins in a well-balanced diet—

Constituents of well-balanced Diet

Shastikaan saali mudgaancha
Saindhavaamalake Yavaan
Aantariesham payah sarpih Jaangalam
Madhucha abhyaseth."

(Charaka Sootra-Ch. v.)

The above four lines of Charaka contain in a nut-shell all the constituents of a well-balanced diet as determined by modern experts.

(Meaning : Shastika a 60 day's crop of rice growing in dry lands) and Saali (Red Rice), Green Gram, Rock-Salt, Goose-Berry (Aamalaka) Yavaa (Barley), Rain water, Milk, Cow's Ghee, Flesh of animals living in forests and Honey should, by habit, be adapted in general diet.

1. Rice-Sashtika and Saali varieties of paddy are examples of the carbohydrate food. Raktasaali (Red Rice) which is now classed as glutinous rice is specially recommended. The red covering of the rice was known to possess special nutrient properties even in the days of Charaka and Susruta.

2. Mudga (Greengram) which represents the protein content of food, is considered the best of all pulses. Maasha (Black Gram) which was known to be more nutritious, was not preferred, because it was comparatively too hard to digest—Guru. Though both are rich in protein, Laghu or easily digestible proteid Greengram has been preferred to a heavy one as being more easily digestible.

3. Saindhava Rock salt represents the mineral content of our food. Of all salts, Saindhava is preferred because it possesses cooling qualities as compared to others. Chemically analysed, it is now known to possess peculiar oxidising properties which the sea-salt does not possess. Even in cases where common salt is prohibited, certain amount of Saindhavalavanam is permitted according to Ayurveda.

4. Aamala-Emblic Myrobalan or Emblica Officinalis (Indian Gooseberry, Nellikkai) represents the vitamin content of a balanced diet in addition to milk and vegetables. Ayurveda considers Aamalaka as the best of fruits. Recent researches show that Aamalakaas is rich in Vitamin C and that one Aamalakaa is equal to 3 Oranges. I shall speak about it again.

5. Yava (Barley) again represents the carbohydrates. It is preferred to wheat, particularly an invalid diet. It is easily digested and is a diuretic. Wheat is however proportionately more nutritive and considered to be more Saatwika.

6. Aanthariksham-Rain (Water-One)—cannot think of any water better than rain water as the safest and best drink. Although Ayurveda describes eighty kinds of wines made of fruits and flowers, etc., they are not recommended in the list of articles for diet.

7. Payah-(Cow's Milk) represents an all round food containing proteids, carbohydrates, fats, minerals and vitamins and all that is requird for man from infancy to old age. Milk is predominently a Saatwika Food.

8. Sarpi-(Cow's) Ghee represents not merely the fat content but also the intellect-building principle. The superiority of Cow's Ghee over other fats both vegetarian and animal is very beautifully described in Charaka Sootra-Chap. 27,222,29, Smrithi, Buddhi, Agni, Sukra, Ojas, Kapha, Medo Vardhanam. Ghee increases memory, intellect, digestive power. Sperm, Ojas (Lustre), Kapha (here strength) etc., Ghee improves the intellectual power in addition to physical strength.

Oil is classed as Thaamasa—intellect dulleing food whereas Cow's Ghee is classed as Saatwika i.e., intellect promoting food.

9. Jaangala is flesh of animals living in dry jungles. This represents the animal proteid. Here again, flesh of animals living in dry jungles is considered as light and easily digested compared with that of other animals.

10. Madhu or Honey is glucose in a liquid form. In addition to its carbohydrate and vitamin content, honey is recommended as kaphahara and because it is collected from numerous plants, it is said to possess certain essences of those plants.

In one Sloka of four lines, so much information is condensed. The most important point is that the food should not only be nutritive from the physical standpoint but it should be such as would develop the intellectual and spiritual faculties as well.

If a careful research is made, many new points may be made out, which will be of immese value to the modern scientists. For example, articles of diet are said to change their properties by (1) the natural constitution (Prakriti)—Greengram and Blackgram are different by nature though both are pulses, (2) Karana changing qualities of a substance as by a chemical process, e.g., milk and curd, (3) Samyoga (Combination), (4) Raasi (Quantity), (5) Desa (Place), (6) Kaala (Time), (7) Upayoga means rules regarding the use of food, depending upon the indications of digestion etc., (8) Upayogta-person taking the

food according to the individual susceptibility of temperament.

Food that has all the Six Rasaas (Tastes) in it, is the best. Food that has only one or two tastes like sweet or sour is condemned.

"*Tatra sarwarasam pravaram Avaramekarasam.*" (Charaka-vimaana)

Betel-leaf juice which is used by the Vaidyaas an Anupaanam or Vehicle for administering medicines, is now known to be a rich source of Vitamins.

A person in good health does not need any vitamin supplements. Crude sources of vitamins such as Bran, green Vegetables, Fresh Milk, Butter, Tomatoes, Citron, Oranges, Yeast, etc., are often more efficacious than the pure or synthetic tablets and mixtures now introduced into the market. Even Tamarind and Chillis which enter largely into our dishes are now reported to contain certain vitamins. Almonds, Apples, Beans, Brinjals, Bran, Bannanas, Cabbage, Cawli flower, Chillies, Citron, Carrot, Cocoanut, Cotton seeds, Cucumber, Drumstick, Embryo of seeds, Garlic, Grapes, Guava, Gourds, Grams, Green leaves, Jack fruit, Lady's finger, Lettuce, Lemons, Mangoes, Onions, Oranges, Pepper (Raw), Pine Apple, Plantains, Potatoes, Pumpkin, Reddish, Spinach (Vasela keerai), Sweet potatoes, Tamarind, Tomatoes, Tapioca, Water Melons, Yams, Yeast, etc., are all sources of Vitamin that are easily available for us in India.

The quantity of the Vitamins that is essential is so small that is measured in units, which are one millionth of a gram.

After all, in a tropical country like India where we have abundance of sunlight, we need not go in search of any of these vitamins, if only we realise that we have these vitamins at our door.

Aarogyam Bhaaskaraat Itchchet

"The sunlight is the storehouse of Vitamins."

Robert Hutchinson, an expert in Children's Diseases, says (British Medical Journal, 1934) that the importance of vitamins is over-estimated by the public. This is due to the luring advertisements of huge vested interests who trade in the name of Science and flood the market with artificial preparations and exploit the public with their extravagant claims. If the food contains a reasonable quantity of milk, ghee (animal fat), and green vegetables, the vitamins may be left to look after themselves. The glamour of the Western Institutions is making us blind to the rich treasures of Vitamins that we have, in the luxuriant vegetation that grows abundantly around us.

Our patients are often frightened by the modern doctors, whose ignorance of our Sciences is colossal but who pretend to know everything like the proverbial mother who threatens her child by telling her stories of an invisible Raakshasa or Beggar-woman. I shall give a few examples of the Vitamins at our door.

The Indian Gooseberry—Emblica Officinalis—Emblica Myrobalan—Aamalaki—Nellikkai—is perhaps the richest natural source of Vitamins-C Its fresh juice contains nearly 20 times as much vitamin as organge juice, and a single fruit is equivalent in Vitamin-C content to one or two orange. Though heating and drying of fresh fruits or vegetables usually tends to the destruction of most or all of the Vitamin-C. originally present, Aamalaka or Nellikkai is an exeption among fruits, because of its high vital Vitamin-C content and because it contians substances, which practically protect the Vitamin from destruction by heating or drying. Its juice is strongly acid, and the acidity has a protective action on Vitamin-C. Hence, it is possible to preserve Amla without losing much of the Vitamin-C. Fresh Aamala was found to be most effective in curing Scurvy, when an outbreak of the disease occured in 1940 in the Hissar Famine Area. Tablets made from Aamalaka powder contain Vitamin-C in concentrated form, which is a convenient method of preserving the fruit for future use. As a matter of fact, such tablets

were freely supplied to the soldiers during the last war. Nadkarni-Vol. II—467.

A few years ago, I saw a girl aged 7 or 8 years with dark teeth decaying upto the roots. She was the daughter of a Senior Nurse of the Governor's Staff Hospital at Madras. The cause of the rotting of the teeth was eating of chocolates and sweets without having anything to chew well. I prescribed for the girl, bits of sugarcane to chew daily for 2 or 3 months. The mother strictly followed the advice and at the end of 2 months, I was glad to find the girl with pearl white teeth coming out from the bases of the teeth. Even in ancient days, Ayurveda found out the difference between chewing the sugarcane and eating Sugar.

What is now required is not want of knowledge of Vitamins but the proper application of our resources actually in the dietary of our people.

3. Even Green grass which gets its store of Vitamin from Sun-light has a lesson to teach us. There is a village called Garikipaadu (literally Grass Village) in Andhra Pradesh. This village derived its name from a delicious Chutney that an old women prepared and made a feast of it to a Maharajah, who visited the place once upon a time, and granted the village as an Inaam (Gift) to her.

4. "*Takram Sarascha Durlabham.*"

Ayurveda says that Takram or Butter milk is the Amrita of Man. It is said to prolong Human Life. Nectar (Amritam) is available to Devas, but Takram is difficult for celestial beings even like Indra to procure. It is a poetical way of praising the qualities of Butter-milk. Butter-milk properly prepared contains a store of all Vitamins that are needed for men. Personally, I use daily about 1½ seers or 48 ozs. of Milk made into curd and churned to Butter-milk with addition of one fourth of water. I take this 5 or 6 times during day and night along with my meals and separately. I believe that this is partly responsible for the robust health that I enjoy at the age of 76. In Addition to this, I take long walks and have some physical exercises and massage to the whole body regularly. I use fresh vegetables and green leaves cultivated by myself in the small kitchen garden in the compound of my residence. I work in the field daily for about half an hour and water the plants myself. All this is necessary in order to make use of the Vitamins available to us in our food.

On the advice of an expert committee on Ayurveda of which I was the Chairman, the Government of Andhra Pradesh ordered that topics relating to Ayurveda and domestic medicines should be included in the syllabus for Girls in Secondary Schools in the State (Vide R. C. No. 1367 E 1/66 dated 17-12-'56). The Director of Public Instruction has been instructed to implement the recommendations as early as possible.

I shall be glad if the Governments of all the other States, including the Kerala State would take similar action in the matter of introducing suitable instructions of the subject of Vitamins and their availability at Our Door, instead of merely repeating parrot-like, that the foreign advertisers supply us with attractive advertisements.

We in India have been brought up to look for inspiration from the West. We have past glories of our own and I do not think for a moment, we will ever rise to the full height of Nation-hood, until we stop looking for inspiration from the West and unless we start seeking inspiration in the history of our own land and in its glories of the past.

द्रविड-सिद्धसम्प्रदाय

आचार्य सोमदेव शर्मा सारस्वत, साहित्यायुर्वेदाचार्य, बी० ए०, ए० एम० एस०

उत्तर भारत के आर्य-रससिद्धों की भाँति, दक्षिण भारत के द्रविडों में भी रससिद्ध हुए हैं, जो सिद्ध कहलाते हैं और इनका सम्प्रदाय द्रविड-सिद्धसम्प्रदाय कहलाता है। इनका साहित्य द्रविड भाषा के ग्रन्थों में हैं। इनके रस-चिकित्सा के प्रयोग भी बहुत चमत्कारी हैं। द्रविडदेश में प्राप्त दिव्यौषधियों के द्वारा ही यह पारद के स्वेदनादिवेधन-कर्मसंस्कार करते हैं।

द्रविडसिद्धसम्प्रदाय की गुरुशिष्य परम्परा

१. प्रथम मत--इस में दो मत प्रचलित हैं—जिस प्रकार भारत के शैव रससिद्ध और नाथ रसविद्या (रसतन्त्र) का प्रवर्तक 'शिव'[१] को मानते हैं उसी प्रकार द्रविड-रससिद्ध भी 'शिव' को ही रस-विद्या का प्रवर्तक मानते हैं। इस मत में शिव से पार्वती ने सिद्धसम्प्रदाय की शिक्षा प्राप्त की। पार्वती से नन्दी ने, नन्दी से अश्विनी ने, अश्विनी से विश्विनी ने, विश्विनी से धन्वन्तरि ने, धन्वन्तरि से अगस्त्य ने, अगस्त्य से पुलस्त्य ने, पुलस्त्य से तेरयर् ने, तेरयर् से यूहिमुनि ने सिद्ध-सम्प्रदाय की शिक्षा प्राप्त की। रससिद्धों की इस गुरुशिष्य परम्परा का उल्लेख यूहिमुनि ने अपने 'वादसाहस्नी' ग्रन्थ में किया है।

२. दूसरा मत--ऐसा भी प्रसिद्ध है कि रससिद्ध नन्दी से श्री मूलनाथ (आदिम, तिरुमूलि) ने सिद्ध-सम्प्रदाय की शिक्षा प्राप्त की थी और इस सिद्धसम्प्रदाय में १८ सिद्ध प्रसिद्ध हुए हैं। उनकी गुरुशिष्य परम्परा आगे लिखे अनुसार है।

(१) नन्दी, (२) श्री मूलनाथ (आदिम, तिरुमूलि), (३) कालाङ्गनाथ, (४) भोग, (५) कङ्कण, (६) अगस्त्य, (७) पुलस्त्य, (८) भुशुण्ड, (९) रोममुनि, (१०) धन्वन्तरि, (११) शैट्टमुनिः (घोड़ाचूलि), (१२) मत्स्य-मुनि, (१३) कण्व, (१४) पिडिनाक्कीश, (१५) गोरक्ष, (१६) तेरयर्, (१७) यूहिमुनि, (१८) इडेक्काडर।

१–रसविद्या शिवेनोक्ता दातव्या साधकाय वै ॥ (रसरत्नसमुच्चय, अ.३।२७)

द्रविडसिद्ध सम्प्रदाय का सिद्धान्त

दक्षिण देश के द्रविड सिद्धसम्प्रदाय के रससिद्धों के मत में यह सम्पूर्ण संसार ३ भागों में विभक्त है। यथा— (१) धातुवर्ग, (२) मूलवर्ग, (३) जीववर्ग।

१--धातुवर्ग--धातु ११२ हैं और वह निम्नलिखित ६ वर्गों में विभक्त हैं। (१) लवणवर्ग–२५, (२) पाषाण-वर्ग–६४, (३) उपरस–११२, (४) लोह–९, (५) रस–१, (६) गन्धक–१, सर्वयोग–२१२।

धातुवर्ग के ६ वर्गों का परिचय

(१) लवण--जो पदार्थ जल में डालने से विलीन हो जाते हैं, अग्नि पर डाले जाने से चटक कर ऊपर को उछलते हैं फट जाते हैं--धुआँ देते हैं और जलते हैं, वह लवण कहलाते हैं। इनकी संख्या में २५ हैं।

(२) पाषाण--जो पदार्थ अग्नि पर डालने से धुआँ देते हैं और पानी में विलीन नहीं होते हैं, वह 'पाषाण' कहलाते हैं। इनकी संख्या में ६४ हैं।

(३) उपरस--जो पदार्थ जल में विलीन नहीं होते और अग्नि पर डालने से जलते भी नहीं हैं, न धुआँ देते हैं और न चटक कर ऊपर को उछलते हैं, वह 'उपरस' कहलाते हैं। इनकी संख्या ११२ हैं।

(४) लोह--जो पदार्थ अग्नि पर रखने से पिघल जाते हैं, स्थिर रहते हैं और जल में विलीन नहीं होते हैं वह 'लोह' कहलाते हैं। इनकी संख्या ९ है।

(५) रस--मृदु अग्नि पर रखने पर भी उड़नेवाला, अणु आकार रूप में विभक्त होनेवाला, सात कंचुक दोषों से आवृत और पौरुष सत्व से युक्त पदार्थ 'रस' कहलाता है। इसकी संख्या १ है।

(६) गन्धक--जो पदार्थ अग्नि पर डाले जाने पर धुआँ देता है, जलता है और भाप बन कर उड़ता है तथा जल में विलीन नहीं होता है एवं स्त्रीसत्व संयुक्त होता है वह 'गन्धक' कहलाता है। इसकी संख्या १ है।

२—मूलवर्ग—इसका दूसरा नाम 'ओषधिवर्ग' भी है। यह मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय रस के आधार भेद से ६ प्रकार का होता हुआ भी फिर निम्नलिखित रूप से ६ प्रकार का होता है—(१) वृक्ष, (२) गुल्म, (३) लता, (४) रस, (५) नीरस, (६) सक्षीर।

उत्पत्ति की विचित्रता से इस मूलवर्ग (ओषधिवर्ग) ओषधियों की संख्या ३३०० हैं।

३—जीववर्ग—यह चार प्रकार की योनियों में छः विशेष बीजों से उत्पन्न होकर चौरासी लाख प्रकार का होता है।

रसशास्त्र में धातुवर्ग की उपयोगिता

रसशास्त्र में इन वर्गों में से धातुवर्ग का ही अधिकता से उपयोग होता है। इस धातुवर्ग के भेद स्वरूप लवण वर्ग आदि प्रत्येक वर्ग का पृथक्-पृथक् स्वभाव और विशेष गुण निश्चित होता है। द्रविड़-सिद्धसम्प्रदाय के रससिद्ध इनको शरीर के लिये उपयोगी बनाने के लिये, इनके स्वभाव और गुण के परिवर्तन के लिये प्रयत्न करते हैं। जैसे लवणवर्ग, जल में विलीन होनेवाला और अग्नि पर डालने पर चटक कर ऊपर को उछलनेवाला होता है। रससिद्ध अपने प्रयत्न से इस वर्ग की इन दोनों विशेषताओं में परिवर्त्तन करते हैं अर्थात् उसको जल में अविलेय एवं अग्नि पर रखने से पिघला कर जल के समान तरल बनाते हैं। पाषाण वर्ग, जो कि अग्नि पर रखने पर धुआँ दे कर जल कर नष्ट होता है और जल में विलीन नहीं होता है, उसको अग्नि सहन करनेवाला एवं जल में विलीन होने वाला बनाते हैं। इसी प्रकार अग्नि पर रखने से क्षीण न होनेवाले एवं जल में विलीन न होनेवाले उपरसों को उनके विपरीत गुणवाले लवणवर्ग के स्वरूप में परिवर्तित करते हैं और धातुओं का मारण और क्षारीकरण द्वारा स्वरूप बदलते हैं। धातुओं के मारण में ओषधियों का उपयोग होता ही है और इन ओषधियों में भी चन्द्र आदि ग्रहों एवं पुष्य आदि नक्षत्रों के सम्पर्क द्वारा उत्तम एवं विशिष्ट गुणों का उत्पन्न होना पाया जाता है।

इस प्रकार रससिद्ध पुरुष धातुओं के स्वभाव एवं गुणों के परिवर्त्तन के द्वारा अधम धातुओं को उत्तम धातु बनाते हैं और उनके आभ्यन्तर प्रयोग द्वारा नित्य क्षीण होने वाले शरीर को चिरस्थायी एवं दृढ़ बनाते हैं। धातुओं के स्वभाव एवं गुण में परिवर्त्तन हो जाने से उनका सरलता से शरीर में क्रामण हो जाता है। इस विनाशशील शरीर को चिरस्थायी एवं नीरोग बनाने की कामना करनेवाले सिद्ध पुरुषगण पारद को, स्वेदनादि-वेधसंस्कार पर्यन्त १८ संस्कारों से संस्कृत होने पर, इस कार्य के लिये उपयोगी जान कर, उसका शरीर पर प्रयोग करने से पहिले उसकी धातुवेध द्वारा परीक्षा करने में प्रवृत्त हुए। इस कार्य को करने में उनका मुख्य उद्देश्य यह था कि यदि यह १८ संस्कारों से संस्कृत पारद ताम्र-वंग आदि धातु को वेध कर स्वर्ण और चाँदी के रूप में परिवर्तित कर देगा तो फिर यह शरीर पर प्रयोग किये जाने पर इस विनाशशील शरीर को भी चिरस्थायी बना देगा। धातुवेध द्वारा स्वर्ण और चाँदी निर्माण-कार्य तो गौण था, क्योंकि वे इसको शरीर-धारण एवं जीवनोपयोगी आहार और वस्त्रादि के सरलता से प्राप्त करने में सहायकमात्र ही समझते थे। उन सिद्ध पुरुषों ने अभ्रक, हरिताल, मनःशिला, स्वर्णमाक्षिक आदि के उपयोग से पारद में धातुवेध-शक्ति उत्पन्न की और फिर उस पारद से अनेक प्रकार की गुटिका बना और उनको मुख आदि में धारण कर सब प्रकार की सिद्धियाँ भी प्राप्त की थीं। धातुओं की खानों के अन्वेषण करने के लिये पर्यटन करते हुए इन सिद्ध पुरुषों ने, किसी-किसी स्थान के विशिष्ट जल और विशिष्ट ओषधियों का धातुओं पर प्रयोग कर और धातुवेध करने में उनकी उपयोगिता को देख कर कृत्रिम धातु-निर्माण का भी प्रयत्न किया था और इस कार्य में उन्होंने सफलता भी प्राप्त की थी। कभी-कभी धातुओं में कुछ पदार्थों के संयोग और विश्लेषण द्वारा होनेवाले परिवर्त्तनों का ध्यानपूर्वक सतत निरीक्षण कर बनाई हुई कृत्रिम धातु ही रसायन कार्य में उनको अधिक उपयोगी प्रमाणित हुई और कभी कृत्रिम धातु से स्वाभाविक धातु अधिक श्रेष्ठ ज्ञात हुई तो फिर उस धातु की खान को ढूंढ़ने का भी उन्होंने प्रयत्न किया था।

यह सिद्ध पुरुष तान्त्रिक भी होते थे। इसलिये उन्होंने अपने ग्रन्थों में तान्त्रिक परिभाषाओं का भी उपयोग किया है जिससे वे ग्रन्थ जटिल एवं दुरूह हो गये हैं। इसके अतिरिक्त आजकल उनकी गुरु-शिष्य परम्परा भी छिन्न-भिन्न हो गई है। इस कारण उनके ग्रन्थों का प्रचार भी अब नहीं रहा है, तथापि दक्षिण भारत में उन ग्रन्थों के ज्ञाता द्रविड़ सिद्ध-सम्प्रदाय के कुछ वैद्य अब भी विद्यमान हैं। यदि इनकी सहायता से शैव एवं नाथ सम्प्रदाय के रसशास्त्रज्ञ, 'रसशास्त्र' का प्रतिसंस्कार करें तो भारतीय रसशास्त्र अत्यन्त समुन्नत हो सकता है।

ओज—एक आयुर्वेदीय विवेचन

वैद्य डाह्याभाई केशवलाल पाठक

'सचित्र आयुर्वेद' में "ओज" विषय पर कई विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण विवेचन किए हैं, जिनमें पूर्वपक्ष की स्थापना की गयी है। यहां पर मैं सिद्धान्त पक्ष में रहकर पर और अपर भेद की व्याख्या करता हूँ। पहले तो चरक, सुश्रुत, और वाग्भटाचार्य ने पर-अपर के भेद बताए बिना जहाँ-तहाँ ओज शब्द की और रस शब्द की व्याख्या की है। लेकिन यदि रसको ओज मानते हैं तो फिर तीनों आचार्यों ने ओज शब्द क्यों रखा ?

चक्रपाणि और डल्हण ने पर-अपर जो भेद बताए हैं यह मेरी बुद्धि में गलत नहीं है। यदि दोनों आचार्य ग्रंथों का दोहन कर दो भेद न बताते तो सभी आयुर्वेद पढ़नेवाले निराश याने संशयदोलारूढ़ हो जाते। मैं तो दोनों आचार्यों का उपकार मानता हूँ कि उन्होंने आयुर्वेद में ओज को समझाने के लिये सरलता कर दी है।

'तिन्दवः बिन्दवः' तो सिर्फ टीका की बात है। लेकिन विवेचक अपर ओज तो अन्नका "पोषक रस" है। और यह रसका प्रमाण लिखा है कि "नवाञ्जलयः पूर्वस्याहारपरिणाम धातोः यं रसः इति आचक्षते" च. शा. ७-१५। लेकिन वे तो 'तिन्दवः बिन्दवः' कहकर सिद्धान्तपक्ष के 'अर्धाञ्जलिः श्लैष्मिकस्यौजसः' च. शा. ७-१५ नामके पर ओजमें पड़ गये। क्योंकि "श्लेष्मिकस्यौजसः" सिद्धान्तपक्ष का पर ओज है।

अब मैं दो प्रकार के ओज दिखाने की कोशिश करता हूँ। "पुष्यन्ति त्वाहाररसाद्रसरुधिर मांसमेदोऽस्थिमज्जा-शुक्रौजांसि" च. सू. २८, ४। यहां "रसाद्रस" दो रस शब्द है। लेकिन लेखक ने "आहार-रस-रुधिर" लिखा है। तो क्या उन्होंने अपना पूर्वपक्ष का समर्थन करने के लिये लिखा है ?

"पुष्यन्तित्वाहार रसाद्रस" यह सिद्धान्त पक्षका रसाद्रस अपर ओज है और "मज्जाशुक्रौजांसि" यह भी सिद्धान्त पक्षका पर ओज है। यहाँ दो भेद साफ-साफ दिखाई देता है। यदि ऐसा न होता तो "यत्सारमादौ गर्भस्य यत्तद्गर्भरसाद्रसः संवर्तमानं हृदयं समाविशति यत्पुरा' च. सू. ३० ऐसा क्यों लिखता। यह भी पर ओजके पक्ष में समर्थनरूप है, जो शुक्र के साथ प्रथम गर्भाशय में जाता है। रस ओज कैसे हो सकता है, यह यदि साबित भी कर लें कि एक ही ओज है जो शुक्र के साथ में है तो "अष्टमे मासि रसहारिणीभिः संवाहिनीभिः मुहुर्मुहुरोजः परस्परतः आददत्ते गर्भस्यासंपूर्णत्वात्" च. शा-४-२४। यह उनका दूसरा अपर ओज और सिद्धान्त पक्षका अपर ओज है। यदि दो ओज न होता तब गर्भ के प्रारम्भ में और गर्भ के अष्टम मास में आचार्यगण ओज की व्याख्या न करते। वैसे मुझे तो क्या ; लेकिन आम जनता को भी पर और अपर दो भेद दिखाई देता है। प्रथम शुक्र के साथ "पर ओज" और गर्भावस्था में अष्टमे मासे "अपर ओज"।

अब यदि रस को ही ओज मानते हैं तब रसक्षय के और ओजक्षय के लक्षण अलग-अलग क्यों बताये गये। जैसे "घट्टने सहते शब्द" "विभेतिदुर्बलोऽभीक्ष्णं" आदि च. सू. १७।

ओज की तीन विकृतियाँ व्यापत्, विस्रंसन और क्षय एक ही प्रकार के ओज में कैसे समन्वित हो सकती हैं? मेरे खयाल में विस्रंस अपर ओज में, व्यापत् पर ओज में और क्षय दोनों प्रकार के ओज में संभावित है। क्योंकि परिभ्रमण करनेवाले अपर ओज का स्राव हो सकता है और उस ओज में व्यापत्-विकृति असंभावित ह, क्योंकि अपर ओज परिभ्रमणशील है। जब पर ओज स्थायी है, तो उसमें व्यापत्-विकृति हो सकती है। जब कि क्षय, विकृति दोनों प्रकार के ओज में हो सकती है।

ऐसा बताया गया है कि अन्न का रस प्राणवायुयुक्त होकर सारे शरीर में घूमता है और पोषण करता है। इसका कुछ बचता ही नहीं। क्या उससे आगे रस का कुछ नहीं होता? इतना ही रस तैयार होता है कि कुछ बचता ही नहीं ?

लेकिन मेरे खयाल में अन्न का रस प्राणवायुयुक्त होकर सारे शरीर में घूमता और पोषण करता है। तब वह रस अपर ओज माना जाता है, और जब पोषण करते-करते गाढ़ा बन जाता है, तब पर ओज की संज्ञाको प्राप्त

करता है। इसी से ओज के लक्षणों में कहा है कि "ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं स्थिरं सरम् विवक्तं मृदु मृत्स्नं च प्राणायतनमुत्तमम्।" इस तरह से ओज को **स्थिर** भी कहा है और **सरम्** भी कहा और इन दोनों प्रकारके ओज को "हृदयस्थमपि देहस्थिति निबन्धनम्" "देहः सावयवत्वेन व्याप्तो भवति देहिनाम्" कहा है। इससे यह पता चलता है कि ओज हृदय में और सारे शरीर में भी है।

प्रमेह के दूष्यों में भी "मज्जारसौजः" बतलाया है न कि सिर्फ ओज। ओज और रस, अपर ओज और पर ओज दोनों दूष्य हैं!

"तत्र रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत्खलु ओजः तदेव बलमित्युच्यते" "देहःसावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम्"

यहाँ साफ-साफ बताया गया है कि 'शुक्रान्तानां परंधातु' "पर ओज" और लिखा है कि "हृदयस्थम् पर ओज" और व्यापी अपर ओज हृदय में रहनेवाला पर ओज जिसको मैं Pericardial Fluid कहता हूँ। और अपर ओज को मैं Serum Albumin मानता हूँ।

यह Serum Albumin और Pericardial fluid दोनों अपने पर-अपर ओज के बराबर मिलते हैं।

अपर ओज का प्रमाण साफ-साफ लिखा है "नवाञ्जलयः" और लेखक ने तो विन्दवः की जगह तिन्दवः रखने को कहा है। वह तो हमारे पर ओज "श्लेष्मिकस्यौजसः अर्वाञ्जलिः" च० शा० ७-१५ उसका हुआ तो उन्होंने ऐसा क्यों लिखा?

'ओज' पाश्चात्य मतवाले नहीं मानते, लेकिन जो दो भेद से ओज की कल्पना मिलती है वैसी ही कल्पना पाश्चात्य फिजीयोलोजी में है। जैसे सीरम आल्व्युमीन रक्त में बताया है। जैसे—

Three proteins are usually discribed as existing in the plasma of circulating blood, namely, fibrinogan, serum globulin and serum Albumin.

अब यह पता चलेगा कि आहाररस का रस—अपर ओज रक्त में भ्रमण करता है। लेकिन पहले अपर ओज को याने आहार ओज को Nutrient element कहा जाता है और बाद में गाढ़ा होने पर serum Albumin कहा जाता है। जो रक्त में घूमता है—"व्यापि" और हृदय में भी कायम रहता है—"हृदयस्थम्"। देखिये—

Serum Albumin occurs in blood plasma and blood serum, in lymph, and in the differrent normal pathological exubations found in the body. Such as pericardial liquid, hydrocele fluid.

यह सिरम अल्ब्युमिन रक्त में भी है और पेरिकार्डिया में भी है। पेरिकार्डिया हृदय के रक्षण के लिए उसके चारों ओर होती है जिसमें पेरिकार्डियल लिक्विड कायम रहता है। इस को पर ओज मान लेने में कोई हर्ज नहीं है।

इस तरह मैं दो ओज मानता हूँ। आयुर्वेद में ओज को किसीने भी प्रत्यक्ष नहीं किया। लेकिन दोनों ओज के क्षय लक्षण मिलाने से मिल सकते हैं। जैसे Serum Albumin रक्त में हैं और Pericardial रक्त का Serum Albumin भ्रमण करता है और Pericardium हृदय में कायम रहता है, याने Pericardium में रहता है।

यदि चरकादि आचार्यों ने पेरिकर्डियम् का डिसेक्शन किया होता तो वे जरूर कहते कि पर ओज पेरिकार्डिया में रहता है। लेकिन चरकादि ऋषिगण आप्त और अनुमानको मानते थे और उनका अनुमान सच्चा भी है कि हृदय पेरिकार्डियम् ही है। दोनों में कोई फर्क नहीं है।

इस ओज को प्रत्यक्ष साधनोंवाले भी इन्कार नहीं कर सकते। हमारे ऋषियों का पर-अपर ओज ही हृदय की गतिकारक माना जायगा, वह दिन अब दूर नहीं है। आपको दो प्रकार का ओज स्पष्ट दिखाई देगा। इस पेरिकार्डियल लिक्विड का प्रमाण भी "अर्द्धाञ्जलि" याने १ से २ औंस बताया है।

आज का पश्चात्य सिद्धान्त भी यह कहने में असमर्थ है कि हृदय क्यों चलता है। लेकिन अपने आचार्यों ने साफ-साफ बाताया है कि 'यन्नाशे नियतं नाशो यस्मिस्तिष्ठति तिष्ठति' निष्पद्यन्ते यतो भावा विविधा देहसंश्रयाः"। इस से साफ-साफ पता चलता है कि दोनों प्रकार के ओज से शरीर की हृदयादि गति चालू रहती है। ओज को बल ही कहा है याने ओज बल नहीं लेकिन ओज की शक्ति ही बल है। ओज को प्राणायतन भी कहा है। मैंने पर ओज में व्यापत-विकृति और क्षय-विकृति बताई है। इस तरह पाश्चात्य सिद्धान्त में व्यापतक्षय, जैसी दो विकृतियाँ

बताई है। इसके लक्षण भी अपने क्षय, व्यापत-विकृति जैसे ही हैं। जैसे (१) Pericarditis Acute, (२) Pericarditis latent और तीसरी विकृति विस्रंस भी अतिस्रावजनक रोग में बताई है, जिसमें Serum Albumin बढ़ जाता है।

शरीर का रक्षण-पोषण और जीवित रखने का कार्य हृदय से ही होता है। उस हृदय के रक्षण के लिए पेरिकार्डियल लिक्विड रखा गया है, जिसको मैं पर ओज मानता हूँ।

"हृदि तिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत् सपीतकम्" च.सू. १७ —याने हृदय के ऊपर रहनेवाला (Pericradial) और "प्रथमं जायते ह्योजः शरीरेऽस्मिन् शरीरिणाम् सर्पिवर्णं मधुरसं लाजगन्धि प्रजायते" च. सू. १७। यह हैं आपका अपर ओज और सिद्धान्तपक्ष का भी अपर ओज। जिस तरह अन्नका रस (oxygenated) होकर "सर्पिवर्णम् मधुरसम्" हो जाता है। बाद में जब शरीर का पोषण करते - करते बचता है तब ओज का वर्ण "रक्तमीषत् सपीतकम्" हो जाता है। तब इसे पर ओज की संज्ञा प्राप्त होती है।

अन्न का रस और रक्त ओज है, यह बात बिलकुल गलत है। लेकिन अन्न का रस (oxygenated) होने के बाद जो स्थिति प्राप्त करता है, वह अपर ओज है न कि अन्न का रस। और वह अपर ओज रक्त आदि धातुओं का पोषण करता है। फिर उस रक्तको ओज "प्राणायतनमुत्तमम्" कैसे माना जाय; क्योंकि खुद रक्त अपर ओज से पोषण प्राप्त करता है।

मैंने भी एक ही प्रकार का ओज मानने की कोशिश की थी लेकिन जब ओज के "स्थिर" और "सर" दो प्रकार के भेद देखे तब मैं श्री डल्हण और चक्रपाणि जी के मत में चला गया। अगर न चला जाता तो चरक, सुश्रुत और अष्टाङ्गहृदय आदि पुस्तकों में से "शुक्रान्तानां धातूनाम् यत् परम् तेजस्तत् ओज" और "आहार रसाद्रस" इन दोनों वाक्यों को हटा देना पड़ता। अब यह प्रश्न उठ सकता है कि जब मैंने पर ओज (Pericardial Liquid)) को हृदय में स्थापित किया है और "यत्सारमादौ" को भी पर ओज कहा है तो यह किस तरह से शक्य हो सकता है। इस का उत्तर यह है कि पेरिकर्डियल लिक्विड जैसा ही एक लिक्विड अंडकोष में रहता है और शुक्रके साथ गर्भाशय में जाता है जिससे "यत्सारमादौ" और "गर्भाद्रिसाद्रस:" शक्य होता है और पाश्चात्यों से भी अनुमोदन मिलता है। जैसे—

In the semen that is ejaculated during coitus the spermatogo are mixed with the secretions of the accessory reproductive glands such as the seminal vesicles.

आयुर्वेद में जो कुछ है उसको समझकर और प्रत्यक्ष कर यदि हम विस्तृत करते तो आयुर्वेद का यह हाल न होता, लेकिन हम तो टीका और टीका की टीका करने लगे।

सिद्धान्त पक्षका पर और अपर स्थापित करने के लिये सैकड़ों-हजारों प्रमाणों की कोई जरूरत नहीं, सिर्फ शास्त्रों की रचना ही काफी हैं।

अपर ओजका प्रमाण 'नवाञ्जलय:' है। यह श्लेष्मात्मक नहीं है। पर ओज का प्रमाण अर्धाञ्जलि परिमित और श्लेष्मात्मक है। यह हृदय में कायम रहता है।

दो प्रकार के ओज मानने में कोई कठिनाई दृष्टिगोचर नहीं होती। ओज विषयक जो वचन आर्ष ग्रन्थों मे मिलते हैं, उनसे भी दो प्रकार के ओज का समर्थन होता है। परम्परा से सिद्धान्त पक्ष के ही मत प्रतिपादन होने की बात तो स्वीकार की ही जा चुकी है। किसी विद्वान की योग्यता में सन्देह करने की धृष्टता मुझ जैसा अल्पज्ञ कदापि नहीं कर सकता। फिर भी आयुर्वेद जैसे गंभीर और विशाल शास्त्र में सम्बन्धित विषयों के निरूपण में संशोधन आवश्यक है न कि संशयावृत्त हो जाने की।

यदि अपर ओज सतत गतिशील है तो किस प्रकार "श्लेष्मलस्यौजस:" सौम्य तो ठीक है लेकिन स्निग्धादि कफगुण भूयिष्ठ होने से इसी पोषक रस को श्लेष्मल ओज कहा जाय। क्या यह श्लेष्मल ओज रस-ओज से पृथक् है? पोषक रस सतत गतिशील है, ऐसा कई विद्वान् कहते हैं तो फिर श्लेष्मल ओज का अपने पक्ष में पर नाम का दूसरा ओज मानकर क्यों पर ोज साबित किया है।

स्वामी हरिशरणानन्दजी से मेरा निवेदन है कि आप होर्मोन्स को ओज मानते हैं यह ठीक है। लेकिन पाश्चात्य मतवाले होर्मोन्स को छोड़कर क्या कहते हैं यह भी दखिये—

"It is evident that some stimulating agent is present in the cardiac cells themselves and attention has recently been given to the possibility that this stimulus is a chemical one, as in the heart hormone" —Haerlandet 1941.

यह पाश्चात्यों की कल्पना को पकड़कर लिखा है। यह पुरानी बात हो चुकी, क्योंकि होरमोन्स माननेवाले आज क्या कहते हैं यह भी आपको देखने की जरूरत है। जैसे—

The second outstanding characteristic of the heart is the unique origin of the heartbeat which sets the rate of the cardiac rhythm. The sino-atrial node has been established as the cardiac pacemaker in the mammalian heart. But the explanation, or even a well-delineated discription of its action has eluded investigators to the present date 1953.

श्री हरिशरणानन्दजी ने जिस सिद्धान्त का आश्रय लिया है उस सिद्धान्त ने कल क्या कहा था, आज क्या कहा है और कल क्या कहेगा, यह निश्चित नहीं है। अतएव उस सिद्धान्त का आश्रय लेना ही उचित नहीं है। लेकिन हमारे चरक, सुश्रुत, वाग्भट के जो आप्त और अनुमान हैं वह शाश्वत रहेंगे। आप उपर्युक्त पाश्चात्यों के मत की भिन्नता दख सकते हैं और योग्य विचार कर सकते हैं।

वैद्य वासुदेव लाटा का 'ओज एक विवेचन' भी मैंने देखा है। वैद्यराज ने पूर्वपक्ष और सिद्धान्तपक्ष को छोडकर सिर्फ अपने विचार बतलाए हैं और चरक, सुश्रुत, वाग्भट सारे ओज के प्रकरण देखे हैं, एसा प्रतीत होता है। वैद्य नागरदास सिर्फ अपर ओज को मानते हैं जब कि आप पर ओज को भी मानते हैं। आप दोनों आचार्य ने मुझ जैसे सिद्धान्त पक्षवाले का समर्थन किया है। आपका पर सच्चा, और अपर भी सच्चा, और मेरे सिद्धान्त पक्ष का दोनों पहलुओं के लिए पुष्टिरूप है।

आप दोनों आचार्यों से मेरी नम्र प्रार्थना है कि चक्रपाणि ने टीका में जो पर-अपर भेद बताए हैं वह सही है। आप मेरा विवेचन देखेंगे तब पता चलेगा कि कहां और कसे दो भेद दिखाई देते हैं।

स्वामी हरिशरणानन्द से मेरी प्रार्थना है कि आप भी मेरे वक्तव्य को देखें। आपने तो पाश्चात्य सिद्धान्त देखा है। यदि आप होर्मन्सको ओज मानते हैं तो होर्मन्स क्या है यह शायद अबतक किसी को ठीक ज्ञात नहीं हो सका है। आज तो अपना पर-अपर ओज ही शरीर का कर्ता-धर्त्ता माना जाता है।

आप तीनों आचार्यों का मत देखेंगे तो पता चलेगा कि जो आप्त और अनुमान के आधार पर बताया है वह सुसंगत और योग्य है। क्योंकि अनुमान और आप्त वचन आज के सूक्ष्म साधनों से बताया है। यदि आप आयुर्वेद को आयुर्वेद की दृष्टि से देखेंगे तभी यह प्रत्यक्ष हो सकेगा।

ओजः

वैद्य पुष्करदत्त शर्मा, आयुर्वेदाचार्य

ओजस्तु धातूनां सारः, सप्तानां च रसादिनाम्।
प्रणेता च रसाद् रक्तं, रक्तान्मांसं करोत्यदः ।।१।।
मासान्मेदः प्रकुर्वत्, मेदसा मज्ज एव हि।
मज्जयाऽस्थि ततः शुक्रं, एवमोजः प्रवर्तकम् ।।२।।
सांकुरेण हि बीजेन , यथोत्पन्नो वनस्पतिः।
तथैवोजसा धातु र्धात्वन्तरं प्रपद्यते ।।३।।
बिन्दुभिः केन्द्रबोधःस्यात्, धात्वाशय इतीरितः
बिन्दवः सप्तधातूनां, सप्तानामेव संख्यया ।।४।।
अष्टमो बिन्दुहृदये, रसवाहीनाड्या चरन्।
पोषयत्यखिलंदेहं, बल-वर्णं करोत्यसौ ।।५।।
यथौजो रहितं वीर्यं, नोत्पादयति संततिम्।
तथा निरंकुरं बीजं नहि वृक्षमुत्पादयेत् ।।६।।
मातृकुक्षौ यदा बालः, ओजसा रहितोऽष्टमे।
मासे जातो मृतिप्राप्तः, जीवनं त्वोज एव हि ।।७।।
ओजो देहे विद्युत्समं, व्याप्तिमच्च क्षणात्क्षणम्।
अंजनोत्पादिता विद्युत्, बल्बस्याने प्रकाशते ।।८।।
तथैव हृदयाच्चौजः, धातुस्थानं चकासते।
धातुसारं हि यत्तेजः प्रणालि-विहीन ग्रंथिषु ।।९।।
गत्वा बलं विधत्ते च, दिप्तदीपमिवालयम्।
एकस्थाने स्थितो दीपः, सर्वगेहं प्रकाशते ।।१०।।
तथैवोजसा हृदये, सर्वदेहश्च कान्तिमान्।
धातुसारोऽष्टधाचौजो, बिन्द्वर्धजलिमात्रकम् ।।११।।
अष्टधा बिन्दुमात्रेण चरकोक्तमर्धांजलिः।
बिन्द्वाख्यं धातु केन्द्रेषु, अर्धांजलि हृदिस्थितम् ।।१२।।
भेदद्वयं समाख्यातम्, ओजसः स्थान कारणात्।
चारकं सौश्रुतं मानम्, विज्ञैश्चत्र विचार्यताम् ।।१३।।

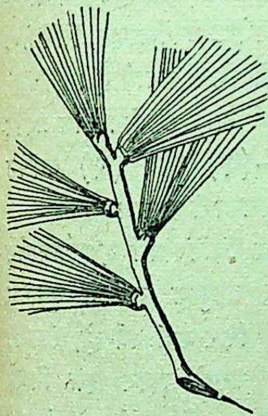
विविध उपयोगी वनस्पतियाँ

वैद्य सत्यप्रसाद 'निर्भीक' शास्त्री

देवदारु (Cedrus Deodara)

संस्कृत नाम—देवदारु, दारु, भद्रदारु, इन्द्रदारु, मस्तदारु, द्रुकिलिम, किलिम, सुरभूरूह।

परिचय—देवदार के पेड़ बहुत बड़े तथा ऊँचे होते हैं। इसके काण्ड १६-१७ हाथ ऊँचे और व्यास २ गज तक मोटे पाये जाते हैं। काण्ड सीधे और जड़ में मोटे तथा क्रमशः पतले पुच्छाकार होते जाते हैं। इसकी शाखाएँ पृथ्वी की ओर झुकी और गोल पुच्छाकार सुन्दर होती हैं। इसके पेड़ बहुत ही सुन्दर मन-भावने लगते हैं, जिसकी छाया घनी होती है।



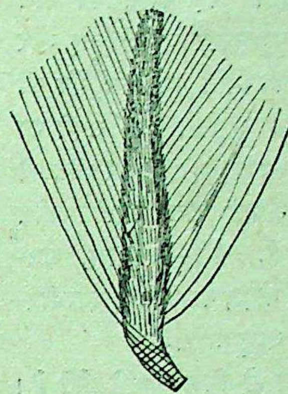
देवदारु पत्र और टहनी

पत्र—लम्बे केवल आधा इंच, गोलाईमें त्रिकोणाकार होते हैं जो एक ही स्थान से बहुत निकले होते हैं। इस प्रकार एक ही टहनी पर कई स्थानों से निकले होते हैं, जो स्वाद में कुछ अम्ल-कषाय लिये होते हैं।

पुष्प—गुच्छों में आते हैं। पुष्प के बाद फल आते हैं। फल सारीवा फल से मिलता-जुलता होता है। इसके फल को गढ़वाल में छ्यता के नाम से पुकारा जाता है। फल पकने पर प्रत्येक कोष्ठ से बीज निकलता है जिस पर एक ओर से पतला पंख-सा निकला रहता है। बीज का आकार आधे चिलगोजे से मिलता-जुलता होता है। इसके फल मई-जून में लगने प्रारम्भ होते हैं। इसके बीज मंहगे बिकते हैं।

देवदारु बीज फल

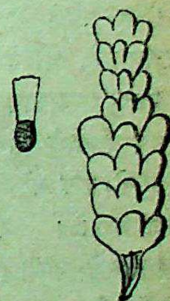
इसकी लकड़ी से तख्ते, किवाड़ तथा अन्य वस्तुएँ बनती हैं। जिस मकान में इसकी लकड़ी लगती है तथा उपकरण रहते हैं, वहां एक प्रकार की मन-मोहक सुगन्ध प्रसारित होती रहती है। इसके बुरादे को धूप में डालते हैं तथा हवन सामग्री में भी मिलाते हैं। इसके दो भेद—स्निग्ध और काष्ठ हैं। स्निग्ध देवदारु चिकना, सुगन्धित होता है और काष्ठ देवदारु के पत्रों से उत्सवों में बन्दनवार बांधते हैं। बाजार में जो चिकनी तैलयुक्त लकड़ी प्राप्त होती है तथा जो धूपक नाम से प्रसिद्ध है, वही स्निग्ध देवदारु है। इसके बन बहुत बड़े होते हैं जो पर्वतीय प्रान्तों में यत्र-तत्र कम से कम ७हजार की ऊँचाई पर मिलते हैं।



चीड़ (कैल) पत्र

प्रयोग—काष्ठ और तैल।
मात्रा-चूर्ण १ से ४आने तक, तैल २० से ३० बूंद तक।

गुण-धर्म—देवदारु काष्ठ वायुनाशक, घर्मकारक व मूत्रल है। यह ज्वर, उदराध्मान, शोथ, अश्मरी आदि मूत्र मार्ग सम्बन्धी पीड़ाओं में सेव्य है। द्रव्यान्तर के साथ उदर रोगों में दिया जाता है। देवदारु-क्वाथ सुजाक (पूयमेह), फिरंग, वात एवं आमवात में रसायन के लिये सेव्य है। हल्दी व गुग्गुलु के साथ इसका प्रलेप वेदनाहीन शोथयुक्त प्रदेशों में सेव्य है। इसका तैल रसायन है। यह पुराने चर्मरोगों में तथा कुष्ठ में प्रयुक्त होता है। क्षत में भी इसका प्रलेप करते हैं। आयुर्वेद में इसका गुण—हल्का, स्निग्ध, कड़ुवा, गरम, पाक में चरपरा और विबन्ध, अफारा, शोथ, आम, तन्द्रा, हिचकी, ज्वर, रक्तविकार, प्रमेह, पीनस, कफ, कास, कण्डु तथा वातघ्न है। गढ़वाल में चर्म तथा रक्तविकार में इसके तैल को प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त किया जाता है। कई लोग पीते भी हैं।

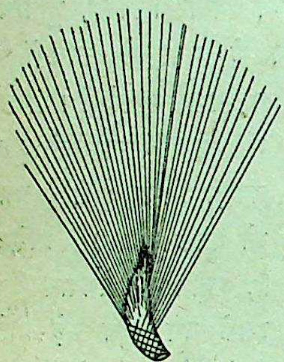


कैलका फलऔर बीज

देवदार के ही समकक्ष वाले दो-तीन और भेद हैं-जिन्हें चीड़, कैन, शैल नामों से पुकारा जाता है।

(२) **चीड़**—सं० सरल, हिन्दी-धूपरसाल, गढ़वाली-कुलों, गु० पीलो बेरजा, इं० लोंगलिव्ड, ले० पाइनस लौंग-फोलिया।

परिचय—यह पर्वतीय प्रान्तों में होनेवाला बहुशाखी वृक्ष है, जिसकी ऊँचाई कम से कम ४०-५० फीट तक होती है। पेड़ की शिखा गोल पुच्छाकार नाचते हुए मोर की भाँति पूर्ण गोल, गेंद की तरह होती है। उगने का स्थान ४-५ हजार फीट की ऊँचाई वाला पर्वतीय प्रदेश है, जैसे—गढ़वाल, अलमोड़ा, नेपाल तथा काश्मीर-जम्मू प्रदेश।



चीड़ पत्र-टहनी

पुष्प-पत्र—बिल्कुल देवदार से मिलते-जुलते होते हैं। भेद केवल पत्रों में इस प्रकार है कि देवदार के पत्र छोटे और चीड़ आदि के लम्बे (तिगुने) होते हैं, जो कि शल्य के कार्य आनेवाली सूई से मिलते रहते हैं। इसके पुष्प गुच्छों के रूप में निकलते हैं। पुष्प के बाद फल लगते हैं जो कि देवदार फल की तरह, परन्तु आकार में बड़े, ६-७ इंच लम्बे और ८-९ इंच गोलाई में होते हैं। इसके प्रत्येक अंगुली की तरह कोठों से २-२ तथा कहीं एक ही बीज पाया जाता है, जो देवदार बीज से लम्बा, चिलगोजे की तरह परन्तु अण्डाकार चपटा होता है। बीज के अगले प्रदेश पर तितली के पंख की तरह एक पत्ता-सा होता है। इसके फल को गढ़वाल में छ्यूता के नाम से पुकारा जाता है। काष्ठ की छाल खुरदरी और पत्ते निकलने वाली होती है, जिसका रंग कत्थई लिये होता है।

इसकी लकड़ी से गोंद निकाला जाता है जो अलकतरे की तरह होता है। यह वायुघ्न, घर्मकारक और मूत्रल होता है। गन्धविरोजा और तारपीन तैल भी इसी से बनाया जाता है। इसको निकालने के लिये तने में जड़ से दो फीट ऊपर कटारी से गड्ढा-सा बनाया जाता है, जहाँ पर बर्तन लगा देते हैं। चीड़ का निर्यास १-२ दिन में उस स्थान से निकल कर वर्तन को भर देता है। इसी से निम्न वस्तुएँ बनाई जाती हैं।

(क) ऑयल ऑफ पाइन (Oil of Pyne)—यह "ऐबीज सिबीरिका" नामक चीड़ के वृक्ष की पत्तियों को निचोड़कर डिस्टीलेशन क्रिया द्वारा बनाया जाता है। निर्मल, पीला, तीव्र गन्ध-स्वाद, झालदार द्रव तैलरूप होता है। इसके मूल तत्व (ऐल्केलाइड) (१) बेरीवस टैरपीन और (२) बीरनिल एसिटेट हैं।

(ख) ऑयल टर्पेन्टाइन (Oil Turpentine)—यह साधारण तारपीन के ओलियो रेजिन भाग में से "डिस्टीलेशन" क्रिया द्वारा तैल रूप में खींचकर स्वच्छ (रेक्टीफाइड) किया जाता है। यह निर्मल, तीव्र गन्ध, तीक्ष्ण स्वाद का द्रव तैल है। इसमें से मूलतत्व (ऐलकेलाइड) (१) आइसोमरिक हाइड्रो कार्बन, (२) सैक्विटेरपीन, (३) वौरनील एसीटेट आदि निकाले जाते हैं। मात्रा—२-१० मिनिम है। इससे लिनिमेण्ट टरपेन्टाइन, लिनीमेण्ट टरबेन्थीबी एसिटिकम नामक औषधियाँ बनाते हैं।



चीड़ फल

चिकित्सा में बाह्य उपयोग तीन प्रकार से होता है—(१) स्वेद (२) मालिश और (३) पिचकारी द्वारा।

(१) स्वेद चिकित्सार्थ एक फलालेन के टुकड़े को अत्युष्ण जल में डुबाकर निचोड़ लें। फिर जहां दर्द हो, तैल की मलिश करके उसके ऊपर इस निचुड़े फलालेन के टुकड़े को रखकर दबाएँ। ऐसा कई बार करें। इससे वातिक शूल शीघ्र जाता रहेगा।

(२) तारपीन तैल ४० तोला, कपूर पाँच तोला, साबुन २॥ तोला सब मिलाकर मालिश करें। जीर्ण वात, कटि रोग, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी के दर्द इससे दूर होते हैं।

(३) पिचकारी—तारपीन तैल पाँच तोला, कांजी या सिर्का ४० तोला पिचकारी से देने से मूर्च्छा, अपस्मार, शूल, अज्ञानता, प्रसवान्तर के दौरे दूर हो जाते हैं।

इसके "इरीटेन्ट" तथा "काउण्टर इरीटेन्ट" गुण के लिये पुरानी सूजन, औस्टियो आरथ्राइटिस (Osteo Arthritis) अस्थिसन्धि शोथ (Bronchitis) ब्रांकायटिस, कास, प्लुरिसी (Pleurisy) कास, फुफ्फुसावरण शोथ आदि में लिनिमेण्ट की मालिश करें। इससे दर्द दूर होता है। इसलिये न्यूरेल्जिआ, नाड़ीशूल, वातरक्त (Gout) लम्बोगो

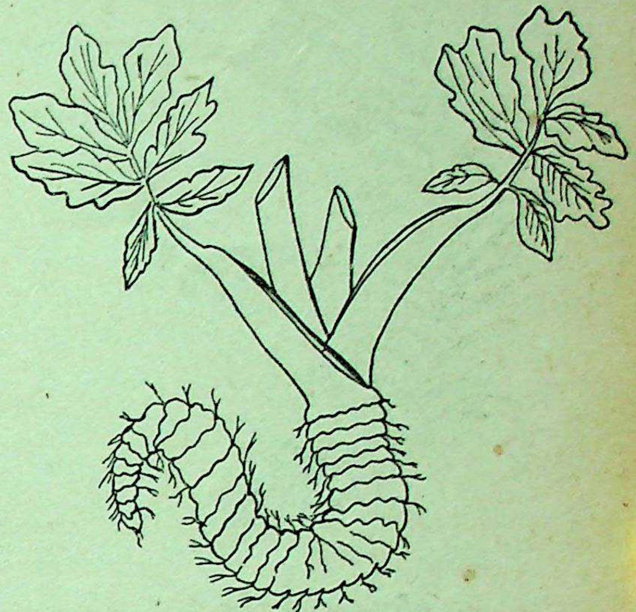
(Lumbago) कटिशूल आदि में इसका लेप करते हैं। यह दाद के कृमियों को नष्ट करता है।

आन्तरिक प्रयोग--गुदमार्ग से इसकी पिचकारी लगाना पेट के फूलने में उपकारक है। इससे आंतों की वायु बाहर निकल जाती है। यदि पेट तथा आँतों से रक्त-स्राव हो रहा हो तो इसके व्यवहार से स्राव शीघ्र बन्द हो जाता है। इस गुण-विशेष के लिये इसको पेट के घाव (अल्सर आव स्टमक) तथा टायफाइड (आन्त्रिक ज्वर) में बड़े लाभ के साथ व्यवहार करते हैं। इन रोगों में इसको गोंद के साथ मिलाकर तथा १-२ घण्टे के अन्तर से कई बार व्यवहार करते हैं। इन भागों के रक्तस्राव को रोकने में यह अमोघ है। ब्रांकाइटिस में इसको "ऐक्सपैक्टोरेन्ट" गुण के लिए व्यवहार करते हैं। गुर्दे की रोगावस्था में इसे भूलकर भी न बरतें, क्योंकि इससे गुर्दों में शोथ बढ़ जाता है। आंतों में टेप वर्म (Tape worm) स्फीत कृमि तथा थ्रेड वर्म (Thread worm) कृमियों के पड़ जाने पर इसका ऐनिमा लगाने से बड़ा लाभ होता है।

(ग) पिक्स लिक्विड (वुडतार)—यह इसी जाति की वृक्ष की लकड़ी का निचोड़ द्रव है। यह भूरा, काला, द्रव, अधगाढ़ा कीचड़ की तरह का झालदार, तीव्र गन्ध, जल में मिलाने से पीला, श्वेत, भूरा हो जाता है। इसमें से मूलतत्त्व रूप में ये औषधियां उत्पन्न होती हैं--(१) टर्पेन्टाइन, (२) क्रियाजोट, (३) फिनौल, (४) पाइरोकैटैचिन, (५) एसिड सेसिटिक, (६) एसिटोन, (७) जाइलोल, (८) टोलू औल, (९) मैथिलिक अलकोहल (१०) रेजिन्स। मात्रा—१०-३० मिनम। इसकी बी० पी० औषधि यह है—अग्यूएण्टम पिसिज लिक्विड।

बरमोलो

यह एक क्षुप जातीय वनस्पति है, जो ८-९ हजार फीट की ऊँचाई पर प्राप्त की जा सकती है। बर्फ पिघलने के बाद उगती और वर्षारम्भ में जड़ परिपक्वावस्था को प्राप्त होती है। जड़ कनखजूर नामक कीड़े के समान होती है जिस पर छल्ले-से होते हैं और प्रत्येक छल्ले पर जोड़ होती है। जड़ के ऊपर डण्ठल निकलती है जो २-३ इंच तक छोटी नहर की तरह आलबाल ऊँचे उठे हुए होते हैं। यह अन्त में बारीक होती है जिस पर इतस्ततः पत्र नीम की पत्तियों के सदृश निकलते हैं। पुष्प श्वेत आते हैं। यह स्वाद में बिल्कुल खीरा की भांति लगता है। यहां के लोग उष्ण प्रदेश से आने पर इसे पीते हैं।



बरमोलो--जड़-वृन्त-पत्र

गुण—शीत वीर्य, योगवाही, मूत्रल भी खूब है। स्वाद में राई और खीरे की तरह ही है। स्वाद से ज्ञात होता है कि खाने में यह उष्ण भी होगा। यथासम्भव राई के गुणों से युक्त है। बाह्य लेप पर शीत तथा योगवाही होने से उष्ण वस्तुओं के साथ उष्ण और शीत वस्तुओं के साथ शीत है।

विशेष गुण—इसका लेप सिरःशूलनाशक है।

खदिर

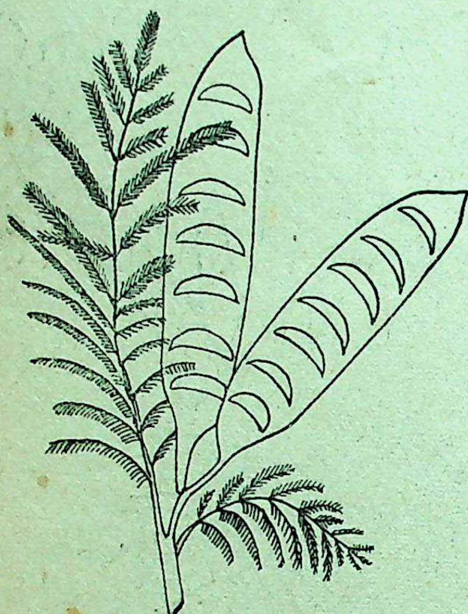
नाम—सं० बालपत्र, हि० व गढ़वाली खैर, बं० खयेरगांछ, खदिर वृक्ष, म० खैर, गु० खेर, क० कॅपिन खैर, तै० चण्डचेट्टू, लै० एकेशिया केटेच्यू।

परिचय—खैर के वृक्ष जांग्ल प्रदेश में अधिक पाये जाते हैं। इनकी ऊँचाई अनुमानतः १०-११ फीट होती है। पत्र बारीक दीर्घ वृन्त में कई जोड़े पत्तों से युक्त रहते हैं। स्थूलकांड, शाखाकाण्ड-काँटेदार, काँटे छोटे, नोक मुड़ी होती है। पुष्पकाल--ग्रीष्मान्त और बर्षारम्भ है। फली चपटी, लम्बी ६-७ बीजयुक्त होती है।

आयुर्वेदीय गुण—शीतल, दाँतों को हितकारी, कड़वा, कसैला और खुजली, खांसी, अरुचि, मेद, कृमि, प्रमेह,

ज्वर, व्रण, श्वेतकुष्ठ, शोथ, आम, पित्त, रक्तविकार, पाण्डु, कोढ़ तथा कफ का नाशक है।

पाश्चात्य मत—केटेच्यु (पीला कत्था) अनकेरिया



खदिर—पत्र और फल

गेम्बीयर वृक्ष की पत्तियों का रस निचोड़कर निकाला जाता है। पूर्वीय देशों, सिंगापुर आदि में होता है। यह डलीदार चौकौर, गन्धरहित, स्वाद में कड़ुवा, मीठा-सा होता है।

कैटेच्यू निग्रा—काला कत्था। यह कैटेच्यूट एकेशिया वृक्ष की लकड़ी में से निचोड़कर निकाला जाता है। यह टेढ़ा, कड़वा, काला, गन्दला, चमकीला डलियों वाला और छेददार होता है।

यह उत्तम शोषक है। गले तथा मसूड़ों आदि की सूजन पर इसका प्रयोग होता है। आंतों के पतले दस्त को गाढ़ा करके रोकता है।

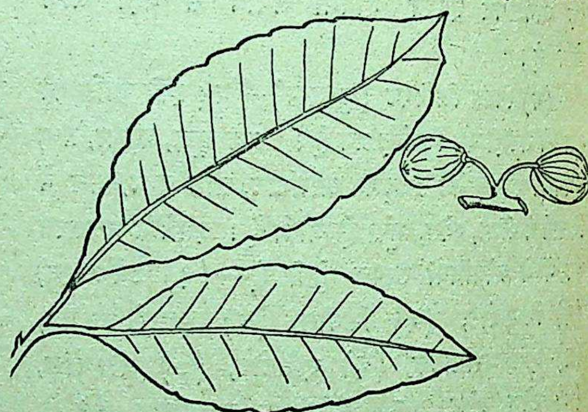
खैर—बलप्रद और रसायन है। टैनिक एसिड के कारण तीव्र प्रभाव वाला, ज्वरघ्न तथा पाचक है। यह श्लैष्मिक-धराकलाओं का घारक, संकोचक, शक्तिदाता है। पाकस्थली में वेदनायुक्त ग्रहणी व जलवत् मलस्राव में सेव्य है। बालातिसार, रक्तस्राव तथा विषमज्वर, स्नायुदौर्बल्य में उत्तम है। लालास्राव व प्रदर दोनों में हितकर है। वाट साहब कहते हैं कि अतिसार में खैर का चूर्ण १-२ आने भर और आमातिसार में ५ आने भर लें। प्रदर में डूस और व्रण, जीव-व्रण में चर्बी के साथ मिलाकर लगाने से बहुत लाभदायक है। यदि तूतिया भी डाला जाय तो अधिक उपकारक होगा। कुछ लोगों का मत है कि खैर गर्म भी है और अति सेवन से नपुंसकत्व भी लाता है। दांत व मसूड़ों के दर्द, रक्तस्राव में महोपकारी है।

श्वेत खदिर (पथरिया कत्था)—इसके काण्ड सफेद और कत्था भी सफेद पथरीदार होता है।

अम्बड़ा

नाम—सं० पीतन, हि० अम्बड़ा, गढ़वाली-आमड़ा, बं० आमड़ा, म० आंबड़ा, गु० जंगली आम्बो, क० आंवोडेकामि, तै० आमाटं, इं० स्पोडियस मिनट।

परिचय—अम्बड़े के पेड़ १५ फीट तक ऊँचे होते हैं और जांग्ल-प्रदेश में ही पाये जाते हैं। काण्ड स्थूल, त्वचा चिकनी-श्वेत होती हैं। पत्र पीले, लम्बे, दीर्घ वृन्त पर आमने-सामने जोड़े-जोड़े में लगे होते हैं। बसन्त में आम की ही तरह इसकी भी स्वर्णवर्ण की मञ्जरी निकलती है, जो स्वाद में कषाय और अम्ल होती है। इसकी



अम्बड़ा—पत्र-वृन्त-फल

मञ्जरी की पुदीना डालकर चटनी बनाई जाती है। फल गोल-गोल अण्डाकार, बड़े बेर की भांति दो अंगुल लम्बे खट्टे, कुछ कड़वाहट लिये हुए होते हैं। बच्चे इसे चाव से खाते रहते हैं। फलों का आचार भी डाला जाता है।

गुण—कच्चा आम्बड़ा खट्टा, वातनाशक, गरम, रुचिकारक, दस्तावर होता है। पक्का आम्बड़ा कसैला, स्वादिष्ट, रस व पाक में शीतल, तृप्तिकारक, कफकारी, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक, ग्राही, पुष्टिकारक, भारी, बलकारक वात, पित्त, क्षत, दाह, क्षय तथा रक्तविकार नाशक होता है।

गर्मी में स्वास्थ्य-रक्षा

श्री दीनानाथ आयुर्वेदालंकार

गर्मी के दिन आ गये। हमें अब अपने स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिए बड़ी सावधानी से काम लेना होगा।

इस ऋतु में सूर्य की प्रखर रश्मियों द्वारा पृथ्वी का जलीय अंश शोषित हो जाता है। इसी कारण ग्रीष्मऋतु को सन्ताप का काल माना गया है। इन दिनों शीतकालीन प्रफुल्लता ग्रीष्मऋतु की लू-लपटों में ध्वस्त हो जाती है। शरीर का आरोग्य तथा मन की प्रसन्नता नष्ट हो जाती है। भौगोलिक स्थिति के कारण भारतवर्ष सहस्ररश्मि सूर्य की किरणों का सीधा लक्ष्य रहता है। अतः इस देश के नर-नारियों के जीवन में ही नहीं, नद-नदियों, जीव-जन्तुओं तथा वनस्पतियों तक के जीवन में ऐसा परिवर्तन होता है, जो न स्वास्थ्यप्रद होता है और न प्रिय ही। गर्मी का प्रचण्ड ताप और झुलसानेवाली हवा के झोंके मन की मस्ती और शरीर की शक्ति को क्षीण कर देते हैं।

ग्रीष्मऋतु में सूर्य उत्तरायण होता है। इस उत्तरायण को आदान काल कहा गया है। चूंकि इन दिनों पृथ्वी का जलीय तत्त्व सूर्य की किरणों द्वारा शोषित होता रहता है, इसलिए वनोषधियों का रस क्षीण हो जाता है, जलाशय सूख जाते हैं तथा शरीर का स्निग्ध और पोषक तत्त्व कफ क्षीण हो जाता है। कफ के क्षीण हो जाने के कारण प्रत्येक व्यक्ति में स्वाभाविक निर्बलता आ जाती है।

बैशाख-ज्येष्ठ (मई-जून) के दो महीनों को ही ग्रीष्म-ऋतु कहना वास्तविक तथ्य के विपरीत है; क्योंकि बैशाख से आश्विन तक गर्मी की भीषणता और उपद्रव बने ही रहते हैं। वर्षा के दिन सारे देश में एक साथ नहीं आते और वर्षा भी सब जगह समान रूप से नहीं होती और कहीं-कहीं तो नाममात्र को ही होती है। शीतकाल के चार महीनों को छोड़कर अन्य दिनों में ग्रीष्मकालीन स्थिति ही बनी रहती है। अतः ग्रीष्मऋतु के आहार-बिहार का ज्ञान सबको अवश्य रखना चाहिए।

ग्रीष्मऋतु के कारण हमारे शरीर में ही नहीं, प्रकृति में भी कई स्वाभाविक परिवर्तन होते हैं। रूक्षता एवं उष्णता के कारण इन दिनों शरीर में वायु का संचय होता रहता है, शरीर की स्निग्धता क्षीण होने लगती है एवं कफ की क्षीणता के कारण दुर्बलता उत्पन्न हो जाती है। गर्मी की प्रचण्डता के कारण इस मौसम में वायु के जीवनीय तत्त्व (प्राणवायु) की कमी हो जाती है जिससे फेफड़ों को शुद्ध भोजन नहीं मिलता और रक्त-शुद्धि की क्रिया में शिथिलता आ जाती है। स्वेद अत्यधिक होने के कारण मूत्र का परिमाण कम हो जाता है। पाचन-संस्थान में गड़बड़ी होने से भूख की कमी, निर्बलता, प्यास की अधिकता आदि अवांछनीय विकार उत्पन्न हो जाते हैं। मस्तिष्क की कार्यशक्ति में अन्तर आ जाता है, सुषुम्ना के ताप-केन्द्र में अव्यवस्था की सम्भावना होने लगती है तथा चेहरे की कान्ति एवं त्वचा (चमड़ी) की चमक गायब हो जाती है। स्वेद निर्हरणवश क्षीण हुए जलांश की पूर्ति के लिए घड़ों पानी पीने पर भी तृप्ति नहीं होती। खाने-पीने और राग-रङ्ग के बजाय ठण्डी जगह में पड़े रहने की एकमात्र इच्छा होती है।

ग्रीष्म का गुण-धर्म रूक्ष, वायु-सञ्चयकारक, कटु और कफनाशक होने के कारण जीव-जन्तुओं और खाद्य-पदार्थों की स्वाभाविक स्निग्धता नष्ट हो जाती है। पित्त-प्रकोप-जन्य प्रदाह, रक्तपित्त, शिरोभ्रम, अग्निमांद्य, अतिसार आदि विकारों की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है।

ग्रीष्मकाल में स्वस्थ एवं प्रसन्न रहने का एकमात्र साधन है—आयुर्वेदोक्त ग्रीष्मकालीन दिनचर्या। शरीर और वायु-विज्ञान के वेत्ता हमारे त्रिकालज्ञ महर्षि ग्रीष्म के इन विकारों से बचने और स्वस्थ-प्रसन्न रहने का सरल साधन हजारों वर्ष पहले बता चुके हैं। अतः आयुर्वेद में बताई गई दिनचर्या, खान-पान और रहन-सहन के सही तरीकों का पालन ही स्वास्थ्य का सरल साधन है।

ग्रीष्मचर्या के सम्बन्ध में महर्षि चरक का मत सदैव स्मरणीय है—

"ग्रीष्मऋतु में सूर्य अपनी किरणों से संसार का सार तत्त्व पीता रहता है। अतः इन दिनों स्वादिष्ट, शीतल, मीठा और स्निग्ध खान-पान हितकर होता है। चीनी मिला सत्तू, जंगली जीवों का मांस, दूध, मक्खन और

चावल का भोजन मनुष्य को गर्मी के विकृत प्रभावों से बचाता है। शराब नहीं पीनी चाहिए, और यदि बिना पीए रहा ही नहीं जाए, तो काफी पानी मिला कर पीयें। नमकीन, खट्टे, कड़वे और गर्म पदार्थ तथा व्यायाम निषिद्ध है। दिन के समय ठंडे मकानों में और रात के वक्त चन्द्रमा की किरणों में खुली छत पर सोयें। सोने से पूर्व शरीर पर चन्दन का लेप कर लें। चन्दन और जल से भिगोये गये पंखों से हवा करें। मोती और मणियों से मंडित रहें। ठंडे बागबगीचों, जलाशय के नजदीक के ठंडे स्थानों और फूलों का उपयोग करें। मैथुन से बचें।"

उपर्युक्त कथन को विशेष स्पष्ट करने के लिए नीचे सब बातों की अलग-अलग व्याख्या की जाती है :—

गर्मी के दिनों में सूर्योदय जल्दी होता है। अतः ४ बजे उठ जाना चाहिए। वयस्क व्यक्ति के लिए ६ घंटे की नींद पर्याप्त होती है। अतः सुबह उठने में देर करना ठीक नहीं। उठते ही एक गिलास ठण्डा जल पियें और ५-७ मिनट तक ईश्वर से प्रार्थना करें कि वह आपके मन को निर्मल रखे और आपकी दिनचर्या को सानन्द सम्पन्न करे। प्रातःकाल की प्रार्थना दिन-भर मन को प्रसन्न रखती है। इसके बाद शौच से निबट कर हाथ-मुँह धो लें। फिर दंतमंजन, दातुन आदि से मुख-शुद्धि का कार्य अवश्य कर लेना चाहिए।

गर्मी का व्यायाम

शरीर को गतिशील और स्वस्थ बनाए रखने के लिए व्यायाम की आवश्यकता है, किन्तु गर्मी के दिनों में व्यायाम का निषेध है। क्योंकि उष्णता और रूक्षता के कारण इन दिनों खून में अनावश्यक गर्मी पहले से ही विद्यमान रहती है। इस मौसम की हल्की कसरत है—सुबह-शाम का भ्रमण और तैरना। प्रातः सूर्योदय से पहले और शाम को सूर्यास्त के समय डेढ़-दो मील के भ्रमण से व्यायाम हो जाता है। ठंडे जल में तैरने का व्यायाम तो बहुत ही मुफीद होता है।

हमारे इस गर्म देश के निवासियों के लिए स्नान सदा ही उपयोगी और स्वास्थ्य-रक्षक है, किन्तु गर्मी के दिनों में इसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता और भी अधिक बढ़ जाती है। गर्मी की वजह से रक्त-संचार में उत्पन्न मन्द-गतिकता स्नान से दूर होती है। अतः स्नान का एक तात्कालिक फल यह होता है कि खून के प्रवाह में स्वाभाविक गति आने से सारा आलस्य दूर हो जाता है और मन प्रसन्न हो जाता है। शरीर की त्वचा पर जमी हुई पसीने की पपड़ी स्नान से दूर होती है, जिससे रोम-छिद्रों के द्वार खुल जाते हैं और जल की शीतलता से तन-मन प्रफुल्लित होता है।

तैरना

तैरने का आनन्द वस्तुतः ग्रीष्मकाल में ही मिलता है। अतः जिनको तैरना आता हो, उन्हें सब काम छोड़कर तैरना चाहिए। तैरना एक अच्छा व्यायाम है। अतः इसमें स्नान के साथ-साथ व्यायाम भी हो जाता है। बहते हुए पानी में डुबकी लगाकर तैरने से शरीर की बढ़ी हुई गर्मी शान्त होकर अंग-प्रत्यङ्ग में शीतलता का संचार होता है और बदहजमी, सिर का भारीपन आदि गर्मी के उपद्रव शान्त हो जाते हैं। गन्दे जलाशयों में स्नान करना या तैरना तो घर बैठे रोगों को निमंत्रण देना है।

खान-पान

सर्दी के दिनों में जहाँ स्वयं प्रकृति ही भूख को जागृत कर देती है और नाना प्रकार के पौष्टिक खाद्य पदार्थों का उपहार तैयार कर देती है, वहाँ गर्मी के मौसम में स्वयं प्रकृति ही भूख को कम कर देती है। इसलिये इस मौसम में विवेकशील मानव को बहुत सोच-समझ कर अपने खान-पान की चीजों का चुनाव करना चाहिए।

आयुर्वेदशास्त्र ने सारी वस्तुस्थिति पर गंभीर विचार करने के बाद गर्मी के दिनों के खान-पान के सम्बन्ध में यह निर्देश दिया है कि मधुर, स्निग्ध, शीतल, लघु एवं द्रव आहार ही इन दिनों में हितकर होता है। जलीय अंश की पूर्ति के लिये द्रव या तरल पदार्थों की आवश्यकता है, तो कफवर्द्धन के लिये मधुर चीजें चाहिए। पित्त को स्वस्थ रखने के लिये शीतल आहार की अपेक्षा है, तो पेट को भारी न होने देने के लिये लघु यानी हल्का, सुपाच्य खाद्य चाहिए। इस तरह वैज्ञानिक आधार पर निर्धारित यह खान-पान शरीर को स्वस्थ और मस्तिष्क को शान्त रखने के साथ ही गर्मी की प्रचण्डता के कारण होनेवाले विकारों—बदहजमी, पेचिश, सिर-दर्द, अनिद्रा, नक्सीर, अंशुघात आदि—से भी मनुष्य की पूरी रक्षा करता है।

चावल, जौ-गेहूँ की रोटी, दलिया, अरहर और मूंग की दाल, ककड़ी, खीरा, तोरई, परवल और बथुए का शाक तथा दूध-दही एवं मट्ठे का आहार गर्मी के दिनों का उपयुक्त भोजन समझना चाहिए। दही का मीठा रायता लेना चाहिए। मट्ठा मीठा भी लिया जा सकता है और नमकीन भी। नारियल का पानी पीना बहुत अच्छा है। आँवले या सेब का मुरब्बा जरूर खाना चाहिए। मिठाइयों में पेठे की मिठाई ही ठीक रहती है। इन दिनों का प्राचीन खाद्य सत्तू बहुत ठीक रहता है।

लू, दस्त, बदहजमी आदि से बचने के लिये स्वयं प्रकृति ने गरीबों के उपभोग की इन सस्ती वस्तुओं का उत्पादन किया है। नियमित रूप से प्याज और पोदीना खानेवाले किसानों को लू लगने या दस्त-कै होने की शिकायत बहुत कम हो पाती है। अतः परिवार के प्रत्येक सदस्य को पोदीने की चटनी और रायता अवश्य खाना चाहिए। प्याज वैसे भी खाया जा सकता है और चटनी के रूप में भी।

ठंडा जल

गर्मी में ठंडे पानी की चाह सब किसी को रहती है और सच तो यह है कि पानी को ठंडा करने के लिये ही आजकल बर्फ का इतना ज्यादा प्रयोग होने लगा है। किन्तु थोड़ी सावधानी से प्रत्येक व्यक्ति अपने घर में ही शीतल एवं सुस्वादु पानी रख सकता है। जाड़े के दिनों में बने हुए घड़े स्वभावतः ठण्डे होते हैं। अतः जाड़ों में ही ५-७ घड़े तैयार करवा लेना चाहिए। जहाँ घड़ा रखना हो, वहाँ ३-४ परत बालू-मिट्टी को गीला करके बिछा दें और घड़े में पानी भर कर रख दें। सुगन्ध के लिये गुलाब या केवड़े का शुद्ध अर्क डाल दें। इतनी सावधानी जरूर रखी जाए कि घड़ों की जगह न रोशनी जाने पाये और न गर्म हवा।

ग्रीष्मकाल के प्रधान रोग--

हैजा और चेचक

वैद्य सभाकान्त झा शास्त्री

हैजा

आयुर्वेद में हैजे का नाम "विशूचिका" दिया गया है और अंग्रेज लोग इसे कॉलरा कहते हैं। इस रोग की उत्पत्ति प्रायः अजीर्ण से होती है, और सच पूछा जाय तो हैजा अजीर्ण का ही भयंकर रूप है। इस रोग की उत्पत्ति तथा प्रसार प्रायः गर्मी के मौसम में ही होता है। गर्मी के मौसम में खाया हुआ अन्न उतनी सरलता से हजम नहीं हो पाता। फिर अधिक मात्रा में यदि भोजन कर लिया जाय तो मौत को निमंत्रण देना ही समझें। इसमें शक नहीं कि इस बीमारी की शुरुआत अजीर्ण से ही होती है। यह बीमारी इतनी संक्रामक होती है कि एक कुटुम्ब के किसी सदस्य पर इसके आक्रमण होते-होते पूरा कुटुम्ब ही इसकी चपेट में आ जाता है। फिर पास-पड़ोस के लिए भी अछूता रह सकना मुश्किल है। पूरा गाँव-कसबा सभी इस महामारी के चंगुल में आ जाते हैं। मौत और संहार की जो दानवी लीला यह महामारी दिखाती है, उसकी कल्पना भी भयावह है। इस महामारी से अच्छे-अच्छे रौनकदार गुलजार शहर, गाँव सभी जन-शून्य और बीरान होते देखे गए हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि खास जाति के एक कीड़े से यह बीमारी उत्पन्न होती है और ये कीड़े बड़ी शीघ्रता से बढ़ते तथा रोग-प्रसार का कारण बनते हैं। कीटाणुजनित हैजे का प्रकोप बड़ा भीषण होता है और प्रकोप होने के ८-१० घंटे के अन्दर ही रोगी का प्राणान्त हो जाता है।

लक्षण--हैजे का साधारण लक्षण दस्त और वमन ही है। दस्त और वमन के शुरू होते ही लोग समझ लेते हैं कि हैजा हुआ। किन्तु मात्र दस्त और वमन ही हैजे का पर्याप्त लक्षण नहीं समझना चाहिए। हैजे की खास पहचान पेशाब का रुक जाना तथा दस्त का पानी की तरह अथवा चावल के माँड की तरह और वमन का पानी की तरह होना है। प्यास भी रोगी को बहुत लगती है। इसके अतिरिक्त शूल, भ्रम, जाँघों में पीड़ा, जँभाई, दाह, शरीर का रंग विवर्ण हो जाना, शरीर में कँपकँपी, छाती में दर्द, मूर्च्छा आदि लक्षण भी होते हैं।

इस रोग के साथ अनेक उपद्रव भी होते हैं—जैसे, नींद न आना, बेकली, कंपकंपी और बेहोशी। इस रोग का आक्रमण बहुधा पिछली रात को होता है।

कारण--निम्न कारणों से प्रायः यह रोग उत्पन्न होता है--(१) घर स्वच्छ नहीं रखना, (२) मनुष्यों की भीड़ में बैठना, (३) गरिष्ठ या भारी तथा बासी पदार्थ खाना, (४) बासी दूध, बासी रबड़ी, बासी खोआ, खट्टा दही, बासी मांस, बदबूदार घी खाना, (५) कच्चे और सड़े फल खाना, (६) ककड़ी, खरबूजा, आड़ू, कुम्हड़ा आदि खाना।

कुछ खास हिदायतें--(१) हैजे की औषधियाँ तैयार रक्खी जाँय, क्योंकि यह रोग प्रतिक्षण बढ़ता है। इसलिए जितनी ही देर होगी, उतनी ही कठिनाई बढ़ेगी।

(२) रोग के आरंभ होते ही, रोगी को दस्त रोकने-वाली तेज दवा देना खतरे से खाली नहीं। इससे पेट फूल जाने की आशंका है। इसलिए अल्प मात्रा में दस्त रोकने वाली दवा देनी चाहिए।

(३) मिथ्या आहार-विहार अथवा कर्म, अर्थ और काल के मिथ्या, हीन और अतियोग से बचना चाहिए।

(४) रोगी को रोग शमनार्थ औषधि तो दें ही; परन्तु उसकी प्यास, वमन को रोकने और पेशाब कराने का प्रयत्न भी होते रहना चाहिए।

(५) नाड़ी के एकदम मंद होने तथा हाथ-पैर के ठंढा हो जाने की स्थिति में "विषगर्भ तेल" में "तारपीन का तेल" मिलाकर मालिश करें—वमन-नाश के लिए पेट पर राई प्रभृति लगाने, प्यास के लिए सौंफ तथा पोदीने आदि का जल पिलाने तथा पेड़ पर मूत्रल दवा की लेप लगाकर पेशाब कराने की चेष्टा होनी चाहिए।

(६) रोगी की चिकित्सा तथा सेवा-सुश्रुषा जहाँ आवश्यक है, वहाँ रोगी के विस्तरे, कमरे आदि की स्वच्छता भी परम जरूरी है। घर में वायुशोधक द्रव्यों की धूनी जलाना तथा रोगी के कपड़े, विस्तरे आदि को स्वच्छ रखना भी आवश्यक है। पानी को सदा उबाल कर ही पीएँ।

(७) रोगी को ठंढ न लग सके, इसका ध्यान रहे। बोतलों में गरम पानी भरकर उन्हें रोगी के दोनों पैरों के बीच रखने से रोगी का शरीर गर्म रहेगा।

(८) हैजे के रोगी को प्यास बहुत लगती है और वह एक साथ घड़ों पानी पी जाना चाहता है। इसलिए रोगी को घूंट-घूंट जल पिलाना ठीक है। प्यास को दूर करने के लिए 'अर्क कपूर' का उपयोग लाभप्रद होता है। 'अर्क कपूर' हैजे की उत्तम औषधि है। किन्तु जिसको अर्क कपूर दिया जाय, उसको एक घंटे तक जल पीने के लिए नहीं देना चाहिए।

(९) जब हैजा फैला हो, कर्पूर को सदा साथ रखना तथा समय-समय पर सूंघना अत्युत्तम होता है। हींग, पोदीना, काली मिर्च या पिपरमिंट का दैनिक सेवन लाभकर है। भोजन के बाद दो-चार बूंद "वैद्यनाथ अर्क सुधा" लेना चाहिए। जब तक महामारी का प्रकोप एकदम शांत न हो जाय तबतक सदैव उबाल कर ही जल का सेवन करें।

पथ्यापथ्य—जहाँ तक विशूचिका के रोगी का प्रश्न है, खूब सतर्कता और सावधानी के साथ उसके पथ्यापथ्य की व्यवस्था करनी चाहिए। एक तो पथ्य तभी दिया जाना चाहिए, जबकि रोग पूर्णतया शांत हो चुका हो। रोगाक्रांत दशा में जल के अलावा कुछ भी देना ख़तरे को निमंत्रण देना है। रोग के पूर्णतया शमित हो जाने पर भी नीबू और मिश्री का शर्बत, फलों का रस, दूध अथवा दही की बर्फ मिली हुई लस्सी, मठा, बार्ली का पानी, साबूदाना, अरारोट आदि पेय प्रधान भोजन देना चाहिए। भात, रोटी आदि गरिष्ठ भोजन तो रोग-शांति के ४–५ दिन बाद दें।

चेचक

चेचक या शीतला संक्रामक रोग है। रोगी के स्पर्श से अथवा वस्त्रादि से इस रोग का संक्रमण बड़ी शीघ्रता से अन्य व्यक्तियों में हो जाता है। इसलिए चेचक होने पर छूआछूत से परहेज रखना परम जरुरी है।

साधारणतया चेचक निकलने के पूर्व रोगी को ज्वर आता है, देह में खुजली होती है तथा भूख नहीं लगती। शरीर के रंग में परिवर्त्तन हो जाता है और आँखें लाल हो जाती हैं। चेचक बच्चों को अधिक तथा बूढ़ों अथवा प्रौढ़ों को बहुत कम होती है। इस रोग का प्रसार अधिकतर फरवरी-मार्च के महीने में होता है।

लक्षण—रोगी को जाड़ा देकर ज्वर आता है। ज्वर के साथ सिरदर्द, बेचैनी, वमन की इच्छा, आदि लक्षण होते हैं। तीन-चार दिनों के भीतर रोगी के शरीर पर लाल-लाल दाने उभर आते हैं। इन दानों में बड़ी खुजलाहट होती है। यदि रोग का आक्रमण साधारण रहा तो दाने कम निकलते हैं और शरीर पर जहाँ-तहाँ दिखायी देते हैं। किन्तु आक्रमण का रूप उग्र होने पर दाने बेशुमार निकलते हैं—यहाँ तक कि शरीर पर तिल रखने की जगह भी नहीं रहती। रोगी के मुँह, नाक, कान, छाती, गर्दन अर्थात् शरीर का कोई ऐसा भाग नहीं बचता जहाँ दाने न होते हों। ४८ घंटे के भीतर इन दानों में पीव आ जाती है और दानों की शकल उभरे हुए छालों जैसी हो जाती है। रोग जब बढ़ने पर होता है तो ज्वर का तापमान भी बहुत बढ़ जाता है और रोगी प्रलाप करने लगता है—ऐसी दशा दो-चार दिन बनी रहे तो निश्चय ही रोगी का प्राणान्त समझना चाहिए। आराम होने, पर भी रोग अपना भीषण प्रभाव सदा के लिए रोगी के चेहरे पर छोड़ जाता है। कभी-कभी रोगी अंधा, काना हो जाता है। रोगी बहरा होता भी देखा गया है। चेचक के निशान तो चेहरे पर सदैव बने ही रहते हैं।

चेचक (शीतला) के कई प्रकार होते हैं—बड़ी माता, कोद्रवामाता, पाणिसहा, खसरा आदि जिनमें बड़ी माता का आक्रमण सबसे भीषण होता है। बड़ी शीतला (माता) में सारे शरीर में आग से जले हुए फफोले की तरह बहुत-से फफोले होते हैं।

चिकित्सा और निरोध—शीतला के सम्बन्ध में एक विचित्र अन्धश्रद्धा लोगों में व्याप्त है। हिन्दू मात्र इस रोग को शीतला देवी का प्रकोप समझते हैं। इसलिए, किसी प्रकार की चिकित्सा कराने की अपेक्षा देवी को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। अक्सर दुर्गा सप्तशती का पारायण, पूजन तथा झाड़-फूंक आदि चलता है। किन्तु ये बातें आधुनिकता के सम्पर्क में आए व्यक्तियों

के लिए हास्यास्पद के सिवा और कुछ नहीं हो सकती। दरअसल, चेचक एक भीषण संक्रामक रोग है और इसमें परहेज की बड़ी जरूरत है।

चेचक की प्रायः तीन अवस्थाएँ होती हैं—(१) निकलने की, (२) भरने की, (३) ढलने की। कभी-कभी चेचक तीन दिन में निकल आती है, तीन दिनों में भर जाती है और तीन ही दिन में ढल जाती है। कभी ये तीनों काम पाँच-पाँच या सात-सात दिनों में होते हैं, पर प्रायः २१ दिनों से अधिक नहीं लगते।

रोग फैलने के पूर्व ही चैत के महीने में दूध पीने वाले बच्चों की माताओं को, और दाँत वाले बालकों को रक्त-शुद्ध करनेवाली औषधियाँ पिलानी चाहिए, पहले से ही इन औषधियों का सेवन किए रहने से चेचक का प्रकोप भीषण नहीं होता। चैत मास में नीम की कोमल कोपलों को पानी में घोंट-छानकर पीने से रक्तविकार तथा वात, पित्त और कफ के रोग नष्ट होते हैं। इसी प्रकार नीम के बीज, बहेड़े के बीज और हल्दी को बराबर-बराबर लेकर शीतल जल में पीस-छानकर, कुछ दिन पीनेवाले को शीतला का भय नहीं रहता। रोटी खाने वाले बालकों को इस नुसखे को हर मौसम में महीने-दो-महीने या जितने दिन हो सके अवश्य पिलाना चाहिए—बहुत ही उत्तम नुसखा है। इसके पीने से यों चेचक होती नहीं, होती भी है तो साधारण रूप में।

चेचक निकलने पर अत्यधिक स्वच्छता बरती जानी चाहिए और ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि इस रोग का संक्रमण दूसरों तक न हो सके। रोगी जहाँ पर हो उस स्थान की खूब सफाई होती रहे—विस्तरे की चादरें रोज बदली जायँ तथा धूप-गुग्गुल आदि सुगन्धित द्रव्यों को जलाकर वातावरण को खूब सुगन्धित बनाए रखें।

रोगी को यदि अधिक प्यास मालूम पड़े तो "षड़ंग पानी" पीने को दें। चेचक के दानों में यदि प्रदाह हो तो सूखे गोबर की राख हितकारी है—'भाव प्रकाश' में इसका उल्लेख है कि गोबर की राख से दाने शीघ्र सूखने लग जाते हैं और पकते नहीं।

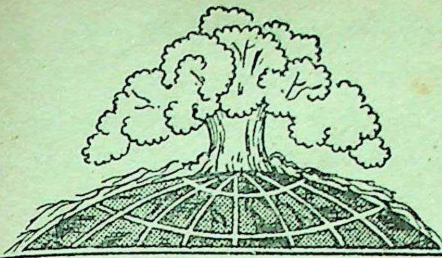
यदि दानों से स्राव होता हो तो उस पर पंच वल्कल (छाल) का चूर्ण यानी बड़, गूलर, पीपल, पाकड़ और मौलसिरी की छाल को चूर्ण कर घावों पर बुरक देना चाहिए।

पैरों के तलवों में प्रदाह होने पर चावलों का पानी बनाकर उन पर सींचें। पानी तैयार करने की विधि यह है कि आधा पाव चावल को पानी में भिगो दें। सवेरे उस जल को छानकर काम में लावें। १-२ घंटे चावल भीगने से भी चावलों का जल तैयार हो जाता है।

चेचक के दानों में जो स्राव होता है, उसको धोने के लिए नीम, बबूल, अशोक और वेंत की छाल— इनका समान भाग लेकर काढ़ा बना और शीतल करके, जख्म और लेप आदि को धोना चाहिए।

पथ्य—चेचक के रोगी को यदि अरुचि हो, तो अनार और अम्ल रस से युक्त यूष बनाकर देना चाहिए। आज-कल दूध अथवा पानी के साथ साबूदाना, दूध या बारली, चावल तथा कुटू की खीलें भी दी जाती हैं। बेदाना, अनार, किशमिश, परवल की तरकारी भी पथ्य में दी जाती है। रोगी को शीतल जल ही पीने के लिए देना चाहिए। यदि खैर और विजयसार के साथ औटाया हुआ जल शीतल करके देना संभव हो तो और भी अच्छा।

रोग की उग्रता शांत हो जाने पर भी रोगी के खान-पान अथवा पथ्यापथ्य के बारे में अधिक सतर्कता रखने की जरूरत है। ज्वर शांत हुए विना स्नान नहीं करना चाहिए। रोग के पूर्णतया शमित होने की स्थिति में आमाहल्दी, सरकण्डे की जड़ और जलाई हुई कौड़ी—इन सबको कूट-छान, भैंस के दूध में मिला चेहरे पर लगाकर रात में सो जाना चाहिए—इससे चेहरे के दाग मिट जाते हैं।



आयुर्वेद-जगत्

आयुर्वेदोन्नति के लिए सरकारी व्यय

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री करमरकर ने एक प्रश्न के उत्तर में बताया कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में देशी चिकित्सा प्रणालियों की उन्नति के लिए १ करोड़ रु० रखे गए हैं। उन्होंने अपने वक्तव्य में आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली की उन्नति के बारे में निर्धारित कार्यक्रम का एक विवरण प्रस्तुत किया। विवरण में कहा गया कि १९५६-५७ में बम्बई सरकार ने ६ लाख ५३ हजार ७४ रु० और केरल की सरकार ने १६,६६६ रु० इस कार्य पर व्यय किए। १९५७–५८ में १९५७ के अंत तक बम्बई ने ६,२४,३०० रु०, उत्तर प्रदेश ने ११,००० रु०, आंध्र प्रदेश ने ९०,००० रु०, मद्रास ने ७,२०० रु०, राजस्थान ने ४०,००० रु० और केरल ने ३०,००० रु० आयुर्वेदिक चिकित्सा की उन्नति के लिए व्यय किए।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में स्वास्थ्य मंत्रालय ने देशी चिकित्सा प्रणालियों के सम्बंध में अनुसंधान करने के लिए ३७ लाख ५० हजार रु० रखे थे। इसमें से पहले पंचवर्षीय आयोजन की अवधि में २१ लाख रु० दिए गए। चूंकि यह योजना पंचवर्षीय आयोजन के उत्तरार्द्ध में शुरु की गयी थी और चूंकि राज्यों ने अधिक रुचि नहीं प्रकट की तथा अनुसंधान संस्थाओं ने भी नियमित रूप से अनुसंधान योजनाएँ प्रस्तुत नहीं कीं, इसलिए जितने रुपए पंचवर्षीय आयोजन में रखे गए थे, वे सारे प्रयोग नहीं किये गये। देशी चिकित्सा प्रणाली के सम्बन्ध में भारत सरकार को सलाह देने के लिए केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय ने एक सलाहकार समिति नियुक्त की है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद, यूनानी और होम्योपैथी चिकित्सा प्रणालियों के सम्बन्ध में अनुसंधान की जो योजनाएँ प्राप्त होंगी, उनकी छानबीन की जायगी।

देशी औषध-निर्माता संघ की सरकार से अपील

अखिल भारतीय देशी औषध-निर्माता संघ की ओर से एक शिष्टमंडल गत २३ मार्च को भारत सरकार के भारी उद्योगों के मंत्री श्री मनुभाई शाह से मिला। इस शिष्टमंडल में सर्व श्री बनवारी लाल शर्मा (डायरेक्टर, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०, कलकत्ता), श्री अशोक बर्मन (कलकत्ता), देशी औषध-निर्माता संघ के मंत्री श्री कविराज प्राणनाथ पुष्करणा, श्री कांति प्रसाद जैन, श्री कैलाश चंद्र अग्रवाल तथा संघ के कार्यालय मंत्री श्री गौरीशंकर चौमाल सम्मिलित थे। मंडल ने सरकार द्वारा आसव-अरिष्टों पर लागू किए गए नियमों से उत्पन्न कठिनाइयों से मंत्री महोदय को पूर्ण अवगत कराया। इसके अतिरिक्त शिष्टमंडल ने इस आशय की मांग रखी कि विदेशों से आयात होने वाले कच्चे मूल द्रव्यों में कमी करने के साथ ही द्वितीय पंचवर्षीय योजना में देशी चिकित्सा पद्धति के लिए अधिक धनराशि नियत की जानी चाहिए।

श्री शाह ने शिष्टमंडल की बातों को ध्यानपूर्वक सुना और शिष्टमंडल के सदस्यों को यह आश्वासन दिया कि उपर्युक्त कठिनाइयों के निराकरण के लिए वह आवश्यक कार्रवाई करेंगे और इसके लिए सम्बन्धित सरकारी विभागों से सम्बन्ध स्थापित करेंगे।

आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने की माँग

गत २४ मार्च को लोकसभा में स्वास्थ्य मंत्रालय सम्बन्धी माँगों पर विचार करते समय संसद-सदस्यों द्वारा केन्द्रीय सरकार की स्वास्थ्य-नीति विषयक जो आलोचना प्रस्तुत की गयी, वह कई दृष्टियों से विचारणीय है। लोकसभा में इस बात पर बड़ा जोर दिया गया कि सरकार को केवल एलोपैथी की चिन्ता रहती है और जरूरत से भी अधिक सरकार की ओर से उसे प्रोत्साहन दिया जाता है। पण्डित ठाकुरदास भार्गव ने तो यहाँ तक कहा कि देशी चिकित्सा-पद्धतियों तथा होम्योपैथी के साथ विमाता-का-सा व्यवहार किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश के कांग्रेसी सदस्य श्री नरदेव स्नातक ने देशी चिकित्सा-पद्धति के प्रति सरकारी उपेक्षा की चर्चा करते हुए कहा कि सरकार अब आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली के प्रति अपनी उपेक्षा-नीति का परित्याग कर अधिकाधिक प्रोत्साहन देने की दिशा में प्रयत्नशील हो। आपने कहा कि अंग्रेजी चिकित्सा-प्रणाली में तो

सरकार करोड़ों रुपये व्यय करती है ; किन्तु आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली में लाखों रुपये तक नहीं लगाती। आपने आगे कहा कि उचित तो यह था कि देशी चिकित्सा-प्रणाली पर अधिक रकम खर्च की जाती किन्तु यदि यह सम्भव न हो तो दोनों प्रणालियों में, बराबर-बराबर पैसे व्यय होने चाहिए। आपने आँकड़ा प्रस्तुत करते हुए कहा कि देश की दो प्रतिशत जनता अंग्रेजी चिकित्सा-प्रणाली से लाभान्वित होती है, जब कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली से लगभग ८० प्रतिशत और शेष जनता यूनानी व होम्योपैथी प्रणाली का उपयोग करती है। आपने जोर देकर कहा कि सरकार की लापरवाही के कारण देशी चिकित्सा-प्रणाली का अधिक विकास नहीं हो रहा है। श्री स्नातक ने आसव-अरिष्टों पर से उत्पादन-कर हटा देने की माँग करते हुए कहा कि वंशलोचन, शिलाजीत जैसी महत्त्वपूर्ण चीजों पर सरकार को चाहिए कि वह नियंत्रण रखे। अन्य संसद-सदस्यों ने भी देशी चिकित्सा प्रणाली को अधिकाधिक प्रोत्साहन देने के पक्ष में ही अपनी राय प्रकट की।

स्वास्थ्य मंत्री श्री श्री डी० पी० करमरकर ने संसद-सदस्यों द्वारा सरकार की देशी चिकित्सा प्रणाली विषयक उपेक्षा-नीति की आलोचना के सिलसिले में लगाए गए आरोपों का उत्तर देते हुए कहा कि सरकार सभी चिकित्सा प्रणालियों को सहायता पहुँचाने के लिए तैयार है। अनुसंधान के बाद आयुर्वेद की जिन औषधियों को अच्छा और उत्कृष्ट पाया जायगा, सरकार उनका व्यापक रूप से उपयोग करेगी किन्तु इस मामले में सरकार बिल्कुल तटस्थ भाव से आगे बढ़ना चाहती है और वह किसी स्वदेशी भावना को कदापि स्वीकार नहीं करेगी। श्री करमरकर ने पुनः बताया कि सरकार इस बात के लिए बहुत उत्सुक है कि औषधियों के मामले में भारत स्वावलम्बी बने।

लोकसभा में संसद-सदस्यों द्वारा किये गए वाद-विवाद की मूल भावना यह थी कि सरकार को अपनी स्वास्थ्य विषयक नीति में, स्वदेशी मनोवृत्ति का परिचय देना चाहिए ; क्योंकि इस विशाल देश की ८० प्रतिशत जनता आयुर्वेद तथा अन्य देशी चिकित्सा-पद्धति द्वारा ही लाभान्वित होती है। जैसा कि श्री राधेलाल व्यास (कांग्रेस) ने आसवों और अरिष्टों पर से वर्त्तमान उत्पादन-कर को हटाने की माँग करते हुए सरकार पर यह जोर डाला कि वह आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली को अधिकाधिक व्यापक बनाने का प्रयत्न करे ; इसके लिए यह जरूरी है कि सरकार की सक्रिय दिलचस्पी उधर होनी चाहिए।

स्वास्थ्य मंत्री से प्रश्न पूछे जाते समय प्रधान मंत्री नेहरू ने सदस्यों की आलोचना के प्रत्युत्तर में कहा कि विज्ञान के क्षेत्र में किसी तरह का पक्षपात अभीष्ट नहीं। साथ ही स्वास्थ्य और चिकित्सा के प्रति आज के युग में दकियानूसी विचार रखना ठीक नहीं। औषधियाँ चाहे आयुर्वेद की हों अथवा किसी अन्य चिकित्सा-पद्धति की, सबसे आवश्यक बात उसकी उपयोगिता तथा गुण-धर्म है। इस कसौटी पर ही किसी पद्धति के गुण-दोष का विवेचन होना चाहिए।

प्रधान मंत्री ने आगे कहा कि चिकित्सा एक ही विषय है और मुझे इस बात पर कोई आपत्ति नहीं कि वैद्य या डाक्टर मरीज का किस चिकित्सा-प्रणाली से इलाज करता है, लेकिन हम ऐसा अनुभव करते हैं कि चिकित्सा करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को वैज्ञानिक शिक्षा अवश्य मिली हुई हो। आपने कहा—एक वैसे व्यक्ति से, जो शरीर के भीतरी रहस्यों को ठीक-ठीक नहीं जानता, अथवा कई ऐसी बातों की जानकारी नहीं रखता जो आधुनिक विज्ञान ने अनुसंधान के बल पर प्रस्तुत किया है, यह कदापि आशा नहीं की जा सकती कि वह अच्छा चिकित्सक बन सकेगा। प्रधान मंत्री ने बड़ा जोर देकर कहा कि आधुनिक विज्ञान (मॉडर्न सायंस) की जानकारी जिन व्यक्तियों को नहीं है, वे भला कुशल चिकित्सक किस प्रकार हो सकते हैं।

आयुर्वेदीय संस्थाओं को सरकारी अनुदान

पश्चिम बंगाल सरकार के स्वास्थ्य-विभाग से प्रकाशित एक विज्ञप्ति के अनुसार चालू आर्थिक वर्ष में निम्नलिखित आयुर्वेदीय संस्थाओं को निम्नानुसार अनुदान स्वीकृत किये गये हैं—

विश्वनाथ आयुर्वेद महाविद्यालय को ७०००) रु०, आयुर्वेद सेवक संघ और वैद्यक शाला कोन्नई, मिदनापुर जिला को ५००) रु०, यामिनीभूषण अष्टांग आयुर्वेद विद्यालय और आयुर्वेद आरोग्यशाला को ३००००) रु० का एडहॉक अनुदान, (१०) डा० एम० एन० चटर्जी मेमोरियल आई हास्पिटल कलकत्ता को २०००) रु०, (११) गंगाधर चैरीटेबुल आयुर्वेदिक डिस्पेन्सरी, सैदाबाद, जिला मुर्शिदाबाद को ५००) रु०, (१२) तुलसीराम लक्ष्मीदेवी जायसवाल हास्पिटल, लिलुवा हबड़ा को कुष्ठ

आश्रम के लिए २०००) रु०, (१३) श्यामादास वैद्य शास्त्र पीठ परिषद्, कलकत्ता को ८०००)।

दिल्ली में अखिल भारतीय आयुर्वेद कांग्रेस

राजधानी दिल्ली में अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के ४३ वें वृहत् अधिवेशन की तैयारियाँ उत्साहपूर्वक की जा रही हैं। उत्कल निवासी वैद्यराज श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा एम० ए०, पी० ओ० एल० आयुर्वेदाचार्य निर्विरोध महासम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित किये गए हैं। पहले इस अधिवेशन के लिए ६–७–८ अप्रैल की तिथियाँ निश्चित की गयी थीं, किन्तु, अब निकट भविष्य की किसी अनिश्चित तिथि को दिल्ली में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का अधिवेशन सम्पन्न करने का सर्वसम्मत निर्णय किया है। अधिवेशन के समय दिल्ली में देश भर के उच्च-कोटि के विद्वान् वैद्यों का समागम होगा। इस अवसर पर विभिन्न सम्भाषा-परिषदों के अतिरिक्त एक अ० भा० आयुर्वेद स्नातक सम्मेलन का भी आयोजन किया जा रहा है। बड़े पैमाने पर आयुर्वेद-विज्ञान प्रदर्शनी का संयोजन भी हो रहा है जो अपने प्रकार की अद्वितीय होगी। स्वागत समिति की ओर से देश भर के औषध-निर्माता प्रतिष्ठानों और आयुर्वेद के उच्चकोटि के विद्वानों से प्रदर्शनी एवं अन्य परिषदों की सफलता के हेतु सक्रिय सहयोग की अभ्यर्थना की गयी है।

अधिवेशन एवं उसके विभिन्न विभागों के उद्घाटन के हेतु माननीय राष्ट्रपति तथा अन्य केन्द्रीय मंत्रियों से प्रार्थना की जा रही है। स्वागत समिति के कार्यकर्त्ताओं के उत्साह और परिश्रम को देख कर यह कहा जा सकता है कि दिल्ली में आयुर्वेद क्षेत्र का यह आयोजन अत्यन्त सफल एवं ऐतिहासिक होगा।

दिल्ली में होनेवाले अधिवेशन के अवसर पर एक विशाल आयुर्वेदिक प्रदर्शनी भी की जायेगी। आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति को अवैज्ञानिक तथा अपूर्ण कह कर जनता एवं राज्याधिकारियों के सम्मुख फैलाये गये भ्रम का निवारण करने के लिए समय-समय पर आयुर्वेदिक प्रदर्शनियों का आयोजन बहुत ही आवश्यक है और इसी ध्येय को मुख्य रूप से ध्यान में रखते हुए इस बार प्रदर्शनी विशाल रूप में आयोजित की जा रही है। विशाल वैज्ञानिक ढंग पर संयोजित की गई आयुर्वेदिक प्रदर्शनी द्वारा ही हम राज्याधिकारियों को प्रभावित कर सकेंगे कि वास्तव में आयुर्वेद पूर्ण विज्ञान है—किसी समय यह समुन्नत चिकित्सा-पद्धति थी और उचित सहायता से पुनः उसी स्थान पर आरूढ़ हो सकती है।

राष्ट्रोत्थान के लिये चल रही अन्य विकास योजनाओं के समान ही आयुर्वेद को भी उचित सहायता मिलनी चाहिए। यदि वर्त्तमान विकास योजनाओं में आयुर्वेद को समुचित स्थान नहीं मिल सका तो यह विज्ञान बहुत पिछड़ा हुआ रह जायेगा। अतः प्रत्येक आयुर्वेद हितैषी भारतीय नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह इस चिकित्सा-विज्ञान को इसका उचित स्थान प्राप्त कराने में पूर्ण सहयोग दे। विशाल वैज्ञानिक आयुर्वेदिक प्रदर्शन के लिये सभी महानुभावों का सहयोग नितान्त आवश्यक है। अतः वैद्यों से नम्र निवेदन है कि आयुर्वेद से सम्बन्धित प्रदर्शन-योग्य जो भी सामग्री उनके पास उपलब्ध हो उनका प्रदर्शन इस अवसर पर अवश्य करें।

वे महानुभाव जो इस प्रदर्शनी में आयुर्वेद सम्बधी सामग्री प्रदर्शित करना चाहें, उसकी सूची हमें शीघ्र ही निम्न पते पर भेजने की कृपा करें। साथ ही मार्ग-व्यय एवं अन्य खर्च सम्बन्धी सब बातें भी हमारे साथ पत्र व्यवहार द्वारा निश्चित कर लेवें। समयाभाव होने के कारण जो महानुभाव इस अवसर पर स्वयं न आ सकें वे अपनी सामग्री हमें निम्न पते पर भेज सकते हैं। प्रदर्शन के बाद उनकी चीजें सुरक्षित रूप से उनके पास लौटा दी जावेंगी। समय कम रह गया है और प्रत्येक वस्तु के प्रदर्शन के लिये उचित स्थान निश्चित करना है। अतः हमें शीघ्रातिशीघ्र यह सूचना भेजने की कृपा करें कि हमें क्या-क्या वस्तुएँ भेज सकेंगे। आशा है सभी महानुभाव, आयुर्वेदोत्थान के इस कार्य में पूरा-पूरा हाथ बँटायेंगे। पता :—कविराज शांतिप्रसाद जैन, द्वारा राजवैद्य शीतलप्रसाद एण्ड सन्स, चाँदनी चौक, दिल्ली।

भागलपुर जिला वैद्य-सम्मेलन

भागलपुर जिला वैद्य-सम्मेलन का चतुर्थ अधिवेशन कविराज विद्यानारायण शास्त्री के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। अधिवेशन का उद्घाटन भागलपुर जिले के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता श्री राघवेन्द्र नारायण सिंह, एम० एल० ए० ने किया। उद्घाटन करते हुए उन्होंने कहा कि

आयुर्वेद के द्वारा भारत की लाखों जनता प्रति दिन स्वास्थ्य-लाभ करती है। कई पीढ़ियों से उपेक्षित रहने के बाद भी आज आयुर्वेद जीवित है। यही इसकी वैज्ञानिकता की महान् कसौटी है। आज के युग में आयुर्वेद को अन्य चिकित्सा-पद्धति के साथ मुकाबला करना है।

आज वैद्यों को सोचने की जरूरत है कि हम आयुर्वेद को किस प्रकार लोकप्रिय बना सकें। प्रजातन्त्र के युग में जनता का समर्थन जिसे अधिक मिलता है, उसकी ओर सरकार को चलना पड़ता है। इसलिये आप वैद्यों को अधिकांश जनता का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। यह सत्य है कि सरकार से जितना प्रोत्साहन एवं सुविधा आयुर्वेद को देने की आवश्यकता थी, सरकार उतना नहीं दे रही है। स्थानीय आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थिति की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि मैं अन्य लोगों के विचार के अनुसार महाविद्यालय के सुधार का प्रयास करूँगा।

अधिवेशन के प्रारंभ के पूर्व स्वागताध्यक्ष कविराज राधेश्याम मिश्र ने स्वागत-भाषण किया। सभापति के भाषण के पूर्व प्रधान मन्त्री के द्वारा कार्य-विवरण पढ़ा गया। अधिवेशन में कविराज मन्मथनाथ वन्दोपाध्याय, पण्डित श्री त्रिपाठी कमला प्र० मणि, कवि० श्री सुखराम प्रसाद एवं पं० दुर्गाप्रसाद शर्मा, श्री सत्यनारायण अग्रवाल जी का सहयोग एवं सहानुभूतिसूचक महत्त्वपूर्ण कामनाओं के संदेश प्राप्त हुए। अधिवेशन में जिले के विभिन्न थानों से आये हुए प्रतिनिधि १३६ की संख्या में उपस्थित थे। आयुर्वेद उत्थान सम्बन्धी कई प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

भागलपुर जिला आयुर्वेद-विज्ञान सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन भी कविराज श्री सत्यनारायण राय जी के सभापतित्व में इसी अवसर पर सम्पन्न हुआ।

श्री प्रेमशंकरजी का स्वागत

राजस्थान आयुर्वेद विभाग के संचालक श्री प्रेमशंकरजी भिषगाचार्य का श्रीगंगानगर में स्थानीय वैद्यों द्वारा सुन्दर स्वागत हुआ। आप आयुर्वेदीय औषधालयों का निरीक्षण करने पधारे थे। आपने अपने भाषण में आयुर्वेदोत्थान के लिये विशेष प्रयत्नशील रहने की अपील की। आपने इस प्रान्त में आयुर्वेद की सर्वप्रियता देख कर हर्ष प्रकट किया और कहा कि यह वैद्यों का ही साहस था कि सदियों तक परतन्त्र राष्ट्र में राज्याश्रय-विहीन दूसरी चिकित्सा-पद्धतियों से टक्कर ले कर भी आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति जीवित रही। अब हमारी सरकार आयुर्वेद को प्रोत्साहन दे रही है। इसलिये वैद्यों को और भी सजग तथा सचेष्ट रहने की आवश्यकता है। आपने इस बात का दुःख प्रकट किया कि आयुर्वेद के कुछ अमूल्य योग वैद्यों की अनुदारता के कारण लुप्त हो गये हैं। अब जिन वैद्य महानुभावों के पास अमूल्य योग हैं उनको जन-हितार्थ प्रकट कर देना चाहिए, ताकि आयुर्वेद सही अर्थों में जनता का हित कर सके। राष्ट्र में आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति की नितान्त आवश्यकता है। चूंकि वह वास्तविक आरोग्यता प्रदान करती है एवं सस्ती तथा सुलभ भी है। आपका बाल पक्षाघात और स्नायुविक रोग के बारे में भी वैद्यों से विचारों का आदान-प्रदान हुआ। आपने यह भी बतलाया कि इन दोनों में एक महत्त्वपूर्ण अनुसंधान चल रहा है। आशा है हम उसमें पूर्ण सफल होंगे।

श्री बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय पटना

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा संचालित बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय पटना में फरवरी में कुल ७१२ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई। इसमें २९८ नये और ४१४ पुराने रोगी थे। इसमें पुरुष रोगियों की संख्या १८५, स्त्री रोगियों की संख्या ५४ और बाल रोगियों की संख्या ५९ थी। इस मास की दैनिक उपस्थिति का औसत २५.४ रहा। नये रोगियों की संख्या रोगानुसार नीचे लिखे मुताबिक है :—

ज्वर २५, विषमज्वर २, उत्फुल्लिका, श्वसनकज्वर ७, मंथरज्वर २, उदर ४०, आमातिसार १४, कृमि ३, कास ५६, श्वास ३, वातव्याधि २३, आमवात १, वातरक्त १, श्लीपद २, कुष्ठ १, क्षुद्रकुष्ठ १५, रजोदोष २, वृद्धिरोग ४, अर्श १, प्रमेह ७, शिरोरोग १, नेत्ररोग ८, प्रतिश्याय २०, कर्ण ७, मुखरोग १०, व्रण १०, प्लुष्ट १, अम्लपित्त ६, मूत्रकृच्छ्र ३, मक्कलशूल २, गर्भवतीज्वर १, मसूरिका १, वातगुल्म २, विसर्प ३, रक्तपित्त २, व्रण २, परिणामशूल २, विविध ४।

एम० पी० क्लब आयुर्वेद औषधालय

संसदीय-क्लब भवन में एक शानदार होलिकोत्सव का आयोजन श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० की देहलीशाखा के द्वारा सम्पन्न किया गया। संसद सदस्यों की

उपस्थिति पर्याप्त रही। राष्ट्रपति भवन के कर्मचारी भी शामिल हुए। कविराज उपेन्द्रनाथ दास, श्री विद्यारत्न आयुर्वेदालंकार, राजवैद्य सुधन्वा अध्यक्ष एम० पी० क्लब आयुर्वेदीय औषधालय नार्थ एवेन्यू नई देहली, के अतिरिक्त संसद सदस्यों के भी सामयिक भाषण हुए। सभी वक्ताओं ने सरकार द्वारा देशी चिकित्सा विज्ञान की मान्यता, संसद में एतदर्थ प्रयत्न करने की आवश्यकता पर जोर देते हुए बताया कि देशी इलाज इस देश की पुरानी संस्कृति है। जिस प्रकार अपनी सरकार संगीत, ललित-कलाओं के उत्थान के लिए अकादमी खोल कर भरपूर धनराशि का एतदर्थ व्यय कर रही है, उसी प्रकार भारत की पुरानी चिकित्सा-पद्धति के उत्थान के लिए भी सरकार को प्रयत्न कर शीघ्र ही देहली में एक पृथक् डाइरेक्टरेट की स्थापना चोपड़ा कमेटी और दवे कमेटी द्वारा अनुमोदित विचार-धारानुकूल देश में इस विज्ञान की शिक्षा की समता, वैद्यमात्र के लिए चिकित्सा की स्वतन्त्रता एवं केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य-मान्यता तथा आयुर्वेदीय अनुसंधान कार्य पर प्रचुर धनराशि के व्यय की सुगमता का सक्रिय प्रबन्ध करना चाहिए। अब देश स्वतन्त्र हो चुका है। देशी इलाज देश की अपनी संस्कृति है। इसे सरकार को अपनाना चाहिए। इसके चिकित्सकों की राष्ट्र के चिकित्सा क्षेत्र में सर्वाधिक संख्या में कार्य-तत्परता प्रमाणित कर रही है कि इसे जनता का सर्वाधिक समर्थन प्राप्त है। सरकारी उपेक्षा अवांछनीय है। बंगलौर अधिवेशन में दवे कमेटी के प्रस्तावों पर केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्रालय ने न्यायोचित प्रस्ताव पास न करके अपनी जिम्मेवारी को प्रान्तीय सरकारों पर ही लादा है जो उचित नहीं। सरकार को अपना रुख आयुर्वेद विज्ञान के प्रति अधिक अनुकूल बनाना पड़ेगा। देश का जनमत यह सहन नहीं कर सकता कि सरकार दो प्रतिशत जनता की सेवारत एलोपैथिक-विज्ञान के लिए तो करोड़ों रुपयों की धनराशि खर्च करे और ९८ प्रतिशत जनता की सेवा करनेवाली देशी चिकित्सा पर मामूली धनराशि अनमने मन से व्यय कर जनता का मुँह बन्द करे। संसद सदस्यों से अनुरोधपूर्वक प्रार्थना है कि वे लोक और राज्य सभाओं में इस अन्याय को रोक और सरकार की नीति को बदल कर उसे राष्ट्रीय हितों की समर्थक बनावें। अन्त में उपस्थित सज्जनों का बैद्यनाथ भवन द्वारा सत्कारार्थ मिष्टान्न-वितरण एवं जल-पान-ताम्बूल द्वारा स्वागत किया गया और इस प्रकार संसदीय आयुर्वेदीय औषधालय नार्थ एवेन्यू, नई देहली भवन में इस रोचक आयोजन की सफल समाप्ति हुई। उपस्थित संसद सदस्यों ने नार्थ एवेन्यू संसद क्लब की ओर से इस आयोजन एवं आयुर्वेद-हितसाधक गोष्ठी द्वारा प्राप्त परिचय के लिए प्रबन्ध-कर्त्ताओं का आभार प्रदर्शन करते हुए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा संचालित इस आयुर्वेदीय औषधालय के कार्य की प्रशंसा की और विश्वास दिलाया कि वे इस दिशा में विशेष रुचि रखते हुए आयुर्वेद-हितसाधन में जागरुक रहेंगे।

उत्तर प्रदेश में आयुर्वेद की प्रगति

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय का शिलान्यास

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय मौना का शिलान्यास जिले के गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में आयुर्वेदाचार्य श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी एम० एस० सी०, उप-संचालक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग (आयुर्वेद) उत्तर प्रदेश के कर-कमलों द्वारा दिनांक २० जनवरी १९५८ वृत्समारोह के साथ सजे-सजाये पण्डाल के मध्य यथाविधि सम्पन्न हुआ। ग्राम मौना जिला देवरिया से लगभग २५ मील दक्षिण सरयू सरिता के उत्तरीय तट पर स्थित है। इस चिकित्सालय के निमित्त समुचित भवन व्यवस्था न होने के कारण श्री रामनगीना उपाध्याय के विशेष परिश्रम तथा विभिन्न लोगों के सहयोग से लगभग डेढ़ सहस्त्र रुपये एकत्रित हो चुके हैं तथा डेढ़ एकड़ भूमि भी प्राप्त हो गई है और अब पक्के भवन का निर्माण भी प्रारम्भ कर दिया गया है। शिलान्यास समारोह के अवसर पर भी दानी पुरुषों ने २०१, १५१, १०१ और ५१ रुपयों का दान दे कर चिकित्सालय भवन-निर्माण के पुण्य कार्य को पूर्ण करने में सहयोग प्रदान किया।

भारतीय चिकित्सा परिषद उत्तर प्रदेश के अध्यक्ष का निर्देशन

यू० पी० इण्डियन मेडिसिन एक्ट ६३९ (यू० पी० एक्ट संख्या १०, १९३९) की धारा ५ की उपधारा (१) के पहले खण्ड के प्रतिबन्धक द्वारा प्राप्त अधिकारों का प्रयोग करके उत्तर प्रदेश के राज्यपाल बरेली के श्री दरबारी-लाल शर्मा (रजिस्ट्रेशन संख्या ६९७) को उत्तर प्रदेश, भारतीय चिकित्सा परिषद का अध्यक्ष निर्देशित करते हैं।

भार० चिकित्सा परिषद उत्तर प्रदेश के सदस्यों का निर्देशन

यू० पी० इण्डियन मेडीसन एक्ट १६३६ (यू० पी० एक्ट संख्या १०, १६३६) की धारा ५ की उपधारा (१) के दूसरे खण्ड द्वारा प्राप्त अधिकारों का प्रयोग करके उत्तर प्रदेश के राज्यपाल निम्नलिखित व्यक्तियों को भारतीय चिकित्सा परिषद उत्तर प्रदेश, का सदस्य निर्देशित करते हैं :—

(१) श्री ज्ञानेन्द्रदत्त त्रिपाठी (श्री दुर्गादत्त त्रिपाठी के पुत्र) वैद्य लखनऊ (रजिस्ट्रेशन संख्या ११७ ए क्लास)

(२) हकीम हाजिक खाँ इटावा (रजिस्ट्रेशन संख्या २८७ ए क्लास)

(३) श्री रामगोपाल शास्त्री निजी समाभ्यासी प्राइवेट प्रेक्टिशनर (झाँसी) (रजिस्ट्रेशन संख्या २० ए० सी०)

(४) श्री रामशंकर वैद्य प्राइवेट प्रेक्टिशनर, वाराणसी (रजिस्ट्रेशन संख्या ए १६१६७)

(५) श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी एम० एस० सी० आयुर्वेदाचार्य उप-संचालक चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सेवाएँ उत्तर प्रदेश (आयुर्वेद) (रजिस्ट्रेशन संख्या १०१२ ए क्लास)

ड्रग एक्ट के अधीन वैद्य-हकीमों को सुविधाएं

वैद्य और हकीमों को अपने निजी रोगियों की चिकित्सा के लिये सल्फा ड्रग, स्ट्रेप्टोमाईसिन और अन्य एलोपथिक औषधियों को प्रयोग करने में आपत्ति नहीं है। यहाँ तक ड्रग एक्ट के अन्तर्गत उन्हें लाइसेन्स लेने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु यदि वे जन-साधारण में औषधियाँ बेचेंगे तो उन्हें ड्रग एक्ट के अन्तर्गत लाइसेन्स प्राप्त करना आवश्यक है। जब वे यह लाइसेन्स प्राप्त करें तो उन्हें संशोधित ड्रग एक्ट के अन्तर्गत निर्दिष्ट सभी वांछनीय शर्तों को पूरा करना होगा। यदि वे निर्माणशाला चलाने के लिये लाइसेन्स प्राप्त करें तो उन्हें एक रजिस्टर्ड फार्मेसिस्ट जो कि नुसखों के अनुसार औषधियाँ तयार कर सके, की नियुक्ति करनी होगी।

राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी कम्पाउण्डर संघ को मान्यता

राज्य सरकार ने राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी कम्पाउण्डर संघ को शासकीय आदेश संख्या ३४६८ वी आई (५–१५५६) ५५ दिनांक जनवरी २१, १६५८ ई० द्वारा निम्नलिखित शर्तों के अनुसार मान्यता प्रदान कर दी है :—

(१) संघ शासन को नियमित रूप से संघ के नियमों और उनके संशोधनों की प्रतियाँ प्रेषित करें।

(२) संघ उप-संचालक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं (आयुर्वेद) उत्तर प्रदेश को संघ के पदाधिकारियों को सूची प्रेषित करें।

(३) संघ अपने सभी अभ्यावेदन उप-संचालक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग (आयुर्वेद) के द्वारा शासन को प्रेषित करें।

(४) मान्यता प्राप्त संघ को शासन द्वारा समय-समय पर प्रसारित आदेशों को आंशिक रूप से अथवा पूर्ण रूप से परिवर्तित करने अथवा उसके विरुद्ध करने के लिये सम्मति प्रदान न करें।

शासन ने संघ का विधान आंशिक परिवर्तन के साथ कि संघ के पदाधिकारी संघ के साधारण सदस्यों में से ही हों, स्वीकार कर लिया।

राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी कम्पाउण्डर संघ

राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी कम्पाउण्डर संघ का वार्षिक सम्मेलन दिनांक २८–२६ अप्रैल १६५८ ई० को लखनऊ में होना निश्चित हुआ है। इस सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये दिनांक २७ अप्रैल १६५८ ई० से ३० अप्रैल १६५८ ई० तक प्रदेश के समस्त राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी औषधालयों के वितरकों को विशेष आकस्मिक अवकाश प्रदान किया गया है।

क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी

क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी, आगरा डिवीजन के पते में परिवर्तन हो गया है जो कि निम्न प्रकार है— श्री शिवनाथ शास्त्री, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी, कार्यालय आलमगंज (कारवा) आगरा।

समन्वय का आदर्श !!!

आयुर्वेद, एलोपेथी, यूनानी, होमियोपेथी आदि चिकित्सा-पद्धतियों के समन्वय का आज बोलबाला है। परन्तु इस दिशा में प्रयत्न चाहिए उतना हुआ नहीं है। वस्तुतः,

भावी पीढ़ी के मार्गदर्शनार्थ—

समन्वयात्मक पद्धति से ग्रन्थों का लेखन तथा प्रकाशन सर्वोपरि आवश्यक है।

बैद्यनाथ-प्रकाशन

आयुर्वेदीय क्रियाशारीर

समन्वय-प्रधान दृष्टि से लिखे गए ग्रन्थों में मूर्धन्य कहा जा सकता है।

ग्रन्थ के लेखक हैं : सचित्र-आयुर्वेद परिवार के सुविदित सदस्य, सूरत के आयुर्वेद महाविद्यालय के उपाचार्य तथा मुंबई राज्य सरकार के आयुर्वेदिक रिसर्च बोर्ड के सभ्य
वैद्य रणजितराय देसाई आयुर्वेदालंकार, आयुर्वेदाचार्य

संपूर्ण प्राचीन वाङ्मय से दोषों, धातुओं, उपधातुओं तथा मलों की क्रिया के रूप में **शरीर-क्रिया-विज्ञान के सिद्धान्तों का दोहन और संदोहन कर** व्याख्या के व्याज से **नव्य मत भी प्रायः संपूर्ण** इस ग्रन्थ में संकलित किया गया है। विषय का निरूपण इस दृष्टि से किया गया है कि विद्यार्थी **रोगों के निदान और चिकित्सा में क्रियाशारीर की उपयोगिता तथा उपादेयता** को भी समझते जाएँ !!!

रायल अठपेजी साइज के ११०० पृष्ठों के अनेक चित्रों से युक्त ग्रन्थ का मूल्य केवल ११) रखा गया है। **आज ही** अपनी प्रति मँगाइए। **अन्यथा चतुर्थ संस्करण की प्रतीक्षा** करनी होगी।

प्रकाशक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
१, गुप्ता लेन, कलकत्ता –६

बैद्यनाथ आसव-अरिष्ट

आयुर्वेदीय चिकित्सा में क्वाथ या काढ़ा के अनन्त गुण वर्णित हैं। किन्तु क्वाथ की मात्रा अधिक होती है और उसे रोज तैयार करना पड़ता है। पंसारियों के यहाँ से क्वाथ के लिए आवश्यक शुद्ध द्रव्य प्राप्त करने में भी कठिनाई होती है। लोगों को इसी झंझट से बचाने के लिए शास्त्रों में आसव-अरिष्टों के निर्माण और उपयोग की विधि बतलाई गई है। क्वाथ की अपेक्षा इसकी मात्रा भी कम होती है और यह लाभ भी अधिक करता है। औषधियों को पकाकर या जल आदि तरल पदार्थों में मिलाकर निचोड़ लेते हैं। फिर क्वाथ में गुड़, शहद या चीनी आदि मीठे पदार्थ डालकर कुछ दिनों के लिए सुरक्षित रख देते हैं। ऐसा करने से इस सुरक्षित द्रव्य में वैज्ञानिक परिवर्तन होता है, जिसे आयुर्वेद-शास्त्र में 'सन्धान' नाम दिया गया है। औषधियों के इस सन्धानित स्वरूप को ही आसव-अरिष्ट कहा जाता है। आसव-अरिष्ट जितने पुराने होते हैं, वे उतना ही अधिक लाभ पहुँचाते हैं। विशुद्ध रीति और उत्तम जड़ी-बूटियों के योग से तैयार पुराने आसव-अरिष्ट का प्रभाव रोगों पर तत्काल और निश्चित होता है। उत्तम आसव-अरिष्ट केवल पारदर्शी ही नहीं होते, बल्कि क्वाथ के प्रतिनिधि होते हैं। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० इस कार्य के लिए देश में सुप्रसिद्ध है। हमारी चार निर्माणशालाओं में हजारों मन आसव-अरिष्ट हमेशा तैयार रहते हैं और वे पुराने होने पर ही बिक्री के लिये भेजे जाते हैं।

बैद्यनाथ अशोकारिष्ट—बंगाल और आसाम के असली अशोक छाल तथा अन्य अनेक उत्तमोत्तम जड़ी-बूटियों के योग से तैयार किया जाता है। यह पूर्ण गुण-युक्त होने के कारण सचमुच 'अशोक' अर्थात् स्त्रियों का दुःख दूर करनेवाला है। बैद्यनाथ अशोकारिष्ट के सेवन से स्त्रियों के हाथ-पाँव के तलुवों की जलन, पेडू-पेट तथा सिर के दर्द, पित्त-दाह और उदर-शूल आदि दूर होते हैं। इससे उनके शरीर की शक्ति और मुख की कान्ति बढ़ती है। यह वयःस्थापक है अर्थात् बुढ़ापे को रोकता है। कीमत—२४ औंस ३·५०, १ पौंड २·५६, ८ औंस १·४१

अर्जुनारिष्ट—शरीर में वायु अधिक हो जाने के कारण हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, पसीना आने लगता है, मुँह सूख जाता है, नींद कम हो जाती है, शरीर में रक्त-संचार ठीक से नहीं होता, मन घबड़ाता और रोगी को मृत्यु-भय सताने लगता है। ऐसी स्थिति में बैद्यनाथ अर्जुनारिष्ट बहुत ही लाभदायक सिद्ध होता है। कीमत—२४ औंस ३·२५, १ पौंड २·४४, ८ औंस १·३४

अभयारिष्ट—सभी तरह के बवासीर की प्रसिद्ध दवा है। कब्जियत, मन्दाग्नि आदि उदर-रोगों को समूल नष्ट कर अग्नि को बढ़ाता है। कीमत—२४ औंस ३·२५, १ पौंड २·४४, ८ औंस १·३४

अमृतारिष्ट—बार-बार आनेवाले विषमज्वर, पित्त-ज्वर और जीर्णज्वर में विशेष लाभ करता है। कीमत—२४ औंस ३·००, १ पौंड २·३१, ८ औंस १·२८

अरविन्दासव (केशर-युक्त)—बालकों के सूखा (सुखण्डी) रोग, अतिसार, अपच, ग्रह-दोष आदि रोगों को दूरकर उन्हें हृष्ट-पुष्ट, बलवान और दीर्घायु बनाने में उपयोगी है। कीमत—८ औंस १·८७, ४ औंस १·०६

अश्वगन्धारिष्ट—दिमागी ताकत बढ़ाने और शरीर को पुष्ट करने के लिए आयुर्वेद-शास्त्र में 'अश्वगन्धा' का बड़ा महत्त्व है। इसे ताजी, असली अश्वगन्धा से शक्ति-वर्धक तथा दिमाग को पुष्ट करनेवाली अनेक अन्य गुण-दायक जड़ी-बूटियों द्वारा शास्त्रीय विधि से तैयार किया गया है। विदेशी टॉनिकों की अपेक्षा गुण में यह कई गुना श्रेष्ठ है। इसके सेवन से अकारण भय, चित्त की घबड़ाहट, चित्तभ्रम, अनिद्रा, याददाश्त की कमी, मन्दाग्नि, बवासीर, कब्जियत, सिर-दर्द, काम में चित्त न लगना आदि रोग दूर होकर बल, पौरुष, कान्ति और बुद्धि की वृद्धि होती है। जेनरल टॉनिक के रूप में "बैद्यनाथ अश्वगन्धारिष्ट" का सेवन अतिशय लाभदायक है। कीमत—२४ औंस ३·६२, १ पौंड २·६६, ८ औंस १·४७

उसीरासव—सम्पूर्ण पित्त-विकारों में लाभदायक है। कीमत—२४ औंस ३·००, १ पौंड २·३१, ८ औंस १·२८

कनकासव—नये व पुराने दमा—विशेषकर वायु कारण होनेवाले दमा में यह विशेष उपयोगी है। कीमत—२४ औंस ३·००, १ पौंड २·३१, ८ औंस १·२८

कालमेघासव—जीर्णज्वर, तिल्ली एवं जिगर के दोष, कालाज्वर, पाण्डु प्रभृति रोगों की श्रेष्ठ दवा है। कीमत—१ पौंड २·३१, ८ औंस १·२८

कुटजारिष्ट—खून के दस्त, संग्रहणी, खूनी बवासीर, आमांश, जीर्णज्वर आदि की उत्तम महौषधि है। इससे रक्त का गिरना भी बन्द होता है। कीमत—२४ औंस ३·२५, १ पौंड २·४४, ८ औंस १·३४

कुमारी आसव—इसके सेवन से आठ तरह के उदर-रोग (तिल्ली, जिगर, जलन्धर आदि), पक्तिशूल (भोजन के बाद का पेट-दर्द), कब्जियत, गुल्म (वायुगोला) आदि उदर-रोग नष्ट होते हैं। शरीर पुष्ट होता है, भोजन में रुचि बढ़ती है और खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह पच जाता है। यह कृमि-विकार, पाण्डु, कामला और शोथ में भी गुणकारी है। कीमत—२४ औंस ३·५,० १ पौंड २·५६, ८ औंस १·४१

कुमारी आसव न० ३—यह बालकों के लीवर (Liver) के रोग, कब्जियत, बदहजमी आदि में विशेष लाभदायक है। कीमत—८ औंस १·६२, ४ औंस ०·६४

खदिरारिष्ट—सब प्रकार के चर्म-रोग एवं रक्त-विकारों में इसके सेवन से आशातीत लाभ होता है। कीमत—२४ औंस ३·००, १ पौंड २·३१, ८ औंस १·२८

चन्दनासव—पेशाब की जलन, कड़क, पथरी आदि में गुणकारी है। यह पित्त-शामक और पुष्टिकारक है। कीमत—२४ औंस ३·००, १ पौंड २·३१, ८ औंस १·२८

चव्यकारिष्ट—जुकाम, खाँसी, उदर-विकार और अन्त्र-वृद्धि-रोग को दूर करता है। यह अजीर्ण के रोगियों के लिए विशेष लाभदायक है। कीमत—१ पौंड ३·७५, ८ औंस २·००, ४ औंस १·१३

जीरकाद्यरिष्ट—हाथ-पाँव की जलन, अतिसार एवं संग्रहणी-रोग-नाशक है। कीमत—१ पौंड ३·००, ८ औंस १·६२.

दशमूलारिष्ट (कस्तूरी-युक्त)—संग्रहणी, मन्दाग्नि, अरुचि, उदर-रोग, खाँसी, दमा, कमजोरी आदि रोगों की शास्त्रोक्त दवा है। इसके सेवन से बल और कान्ति बढ़ती है तथा शरीर पुष्ट होता है। इस देश में प्रसव के बाद इसके सेवन का प्रचलन है। कीमत—१ पौंड ३.७५, ८ औंस २·००, ४ औंस १·१३

द्राक्षासव—ताकत और ताजगी से भरा हुआ सुमधुर टॉनिक है। यह बढ़िया अंगूरी दाखों से तैयार किया जाता है। बहुत-से धनी बारहों मास इसका सेवन करते हैं। बैद्यनाथ-द्राक्षासव पीने में अत्यन्त जायकेदार है। यह भूख बढ़ाता, दस्त साफ लाता, कब्जियत मिटाता, ताकत पैदा करता, नींद लाता, थकावट दूर करता और दिल तथा दिमाग में ताजगी पैदा करता है। इससे शरीर के हर भाग को ताकत मिलती है। यह कफ, खाँसी, सर्दी, जुकाम, हरारत, कमजोरी आदि में बहुत फायदा पहुँचाता है। जिनके फेफड़े कमजोर हों, कफ, खाँसी हमेशा ही रहती हो, वे लोग इसका सेवन जरूर करें। द्राक्षासव पीने की जरूरत होने पर आप बैद्यनाथ-द्राक्षासव ही पीजिए। इससे आपको पूरा लाभ होगा। कीमत—२४ औंस ३·२५, १ पौंड २·४४, ८ औंस १·३४

द्राक्षारिष्ट—इसके गुण भी द्राक्षासव के समान ही हैं। कफ, खाँसी, शारीरिक क्षीणता और कब्जियत में इसका विशेष रूप से व्यवहार होता है। कीमत—२४ औंस ३·१६, १ पौंड २.३७, ८ औंस १·३१

पत्रांगासव (केशर-युक्त)—स्त्रियों के विभिन्न कष्ट, ज्वर, पाण्डु, सूजन, अग्निमान्द्य, कमजोरी आदि को दूर करता है। कीमत—१ पौंड ३·२५, ८ औंस १·७५, ४ औंस १·००.

पिप्पल्यासव—इसके सेवन से मन्दाग्नि, कफ-खाँसी, शारीरिक क्षीणता, गुल्म, अर्श, संग्रहणी आदि रोग नष्ट होते हैं। कीमत—१ पौंड २·३७, ८ औंस १·३१

पुनर्नवारिष्ट—यह शोथ, उदर-रोग, प्लीहा-वृद्धि, अम्लपित्त, बढ़े हुए लीवर, गुल्म आदि रोगों को नष्ट करता है। इसका प्रभाव हृदय और यकृत् पर विशेष रूप से होता है। कीमत—२४ औंस ३·००, १ पौंड २·३१, ८ औंस १·२८

बब्बूलारिष्ट—इसके सेवन से अतिसार, कफ-खाँसी, शारीरिक क्षीणता, उरःक्षत, रक्तपित्त तथा रक्तरोग आदि नष्ट होते हैं। यह श्वास-नलिका को साफ कर खाँसी के साथ आनेवाले खून को रोकता है। कीमत—१ पौंड २·५०, ८ औंस १·३७

बलारिष्ट--वातरोग-नाशक एवं शरीर को ताकत देनेवाला है। कीमत--१ पौंड २·५०, ८ ग्रौंस १·३७

वासारिष्ट--ज्वर-युक्त पुरानी खाँसी, खाँसने के साथ-साथ कफ ग्रौर खून का निकलना, श्वास, सूखी खाँसी तथा रक्तपित्त के लिए ग्रत्युत्तम है। कीमत--२४ ग्रौंस ३·२५, १ पौंड २·४४, ८ ग्रौंस १·३४

विडङ्गासव--पेट में होनेवाले सभी प्रकार के कृमिरोगों में इसका उपयोग होता है। इसके ग्रतिरिक्त यह गुल्म, विद्रधि, कफ, खाँसी, भगन्दर ग्रादि रोगों में भी लाभदायक है। कीमत--१ पौंड २·५०, ८ ग्रौंस १·३७

महामंजिष्ठाद्यरिष्ट--सब प्रकार के रक्तदोष, खाज-खुजली ग्रौर श्लीपद रोगों में ग्रकेला या गन्धक ग्रथवा रसमाणिक्य के साथ इसके प्रयोग से ग्रच्छा लाभ होता है। कीमत--२४ ग्रौंस ३.००, १ पौंड २.३१, ८ ग्रौंस १.२८

मुस्तकारिष्ट--इसके सेवन से ग्रतिसार, ग्रजीर्ण, ग्रग्निमान्द्य, संग्रहणी, हैजा ग्रादि ग्रच्छे होते हैं। यह पतले दस्त को गाढ़ा करता है तथा कुपित वात को शान्त कर जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। कीमत--१ पौंड २.५०, ८ ग्रौंस १.३७

रोहितकारिष्ट--यह तिल्ली, लीवर, वायुगोला, ग्रग्निमान्द्य, पाण्डु, संग्रहणी ग्रादि रोगों को नष्ट करता है। लीवर ग्रौर तिल्ली के बढ़ जाने पर इसके उपयोग से विशेष लाभ होता है। कीमत--१ पौंड २.३१, ८ ग्रौंस १.२८

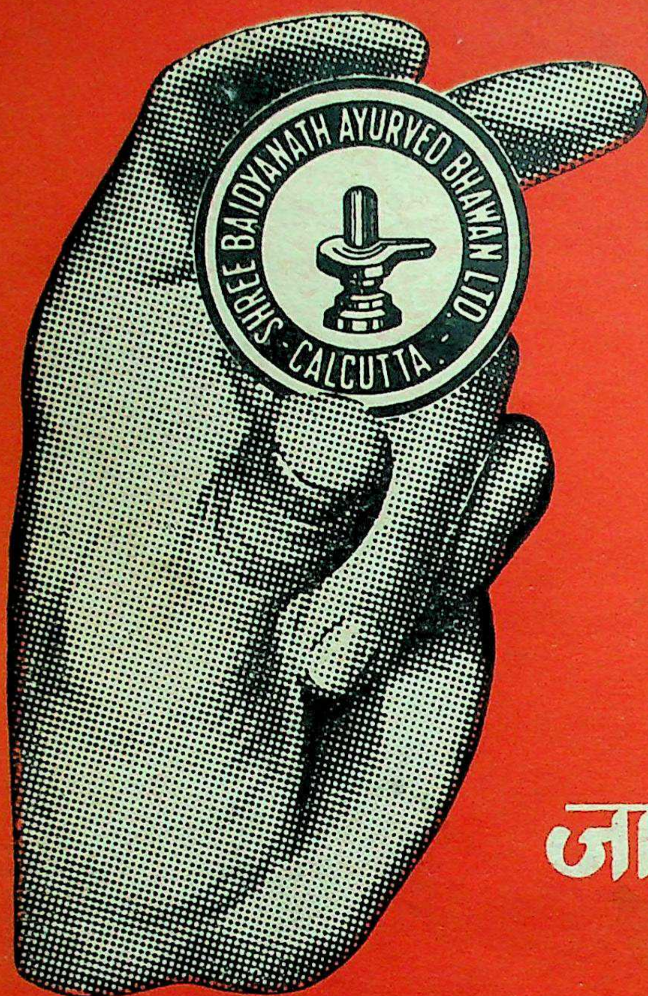
लोध्रासव--पेशाब की जलन ग्रादि बीमारियों में इसका उपयोग होता है। यह स्त्रियों के लिए विशेष उपयोगी है। कीमत--१ पौंड २.३१, ८ ग्रौंस १.२८

लोहासव--खून बढ़ाने की सुप्रसिद्ध ग्रौषधि रक्ताल्पता (Anaemia), जीर्णज्वर, ज्वरान्तदौर्बल्य बढ़े हुए जिगर ग्रौर तिल्ली में विशेष लाभदायक है। कीमत--२४ ग्रौंस ३.००, १ पौंड २.३१, ८ ग्रौंस १.

सारस्वतारिष्ट--ब्राह्मी का यह ग्रपूर्व कल्प दिमाग ताकत, स्मरण-शक्ति, कान्ति एवं बुद्धि बढ़ाने में ग्रति श्रे है। मानसिक एवं शारीरिक दुर्बलता, नींद न ग्रान स्वरभंग, रुक-रुककर बोलना (तोतलापन), कानों तरह-तरह की ग्रावाज का होना, कम सुनाई देना ग्रादि भी इससे ग्रच्छा लाभ होता है। दिमागी काम करनेवाल के लिए उत्तम ब्रेन टॉनिक तथा स्मृति ग्रौर बुद्धि बढ़ानेवाला एक उत्तम रसायन है। कीमत--१ पौंड ४.००, ८ ग्रौंस २.१३, ४ ग्रौंस १.१९

सारिवाद्यरिष्ट--रक्त-शुद्धि की मशहूर दवा है यह खून ग्रौर पित्त की खराबी को मिटाता है। खून जहर को जड़ से नाश करता है। यह जिगर (लीवर) दोष ग्रौर ग्रम्लपित्त में भी फायदेमन्द है। यह फो फुन्सी, खाज, खुजली, चकत्ते ग्रादि रक्त-विकार ; भगन्द हाथ, पैर, ग्राँख, छाती की जलन, ग्रामवात, वातव्या सभी प्रकार के रक्त-दोष के उपद्रव ; ग्रशुद्ध पारे के विका कुनाइन से पैदा हुग्रा उपद्रव, कमजोरी, खून की क बदहजमी, कब्जियत ग्रादि की उत्तम शास्त्रोक्त द है। यह पित्तशामक ग्रौर रक्तशोधक ग्रौषधियों में प्रधा है। कीमत--२४ ग्रौंस ३.३१, १ पौंड २.४४, ८ ग्रौंस १.३

सारिवाद्यासव--गुण-धर्म उपर्युक्त सारिवाद्यरि के समान है। कीमत--२४ ग्रौंस ३.३१, १ पौंड २.४ ८ ग्रौंस १.३४



क्या आप इसे जानते हैं ?

मनुष्य को जीवन के त्रितापों से मुक्ति प्रदान करनेवाला यह सनातन ज्योतिर्लिंग देश के सबसे बड़े और विश्वासी आयुर्वेदीय प्रतिष्ठान का बोध-चिह्न बनकर लाखों-करोड़ों लोगों के जीवन को आरोग्य प्रदान करने के कार्य में आज अग्रसर है। आपने यदि अब तक बैद्यनाथ औषधियों के गुण का स्वयं अनुभव नहीं किया है, तो एक बार इसे अवश्य आजमाइये।

देशी दवाओं का सब से बडा और विश्वासी कारखाना

श्री बैद्यनाथ

आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

P-42.

प्रकाशक—पं० सभाकान्त झा, १, गुप्ता लेन, कलकत्ता के लिए, [illegible] प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्राइवेट लि० कलकत्ता में मु

